अक्टूबर, १९३६ मूल्य ।)

प्रयाग की विज्ञान-परिषद् का मुख-पत्र, जिसमें आयुर्वेद-विज्ञान भी सम्मिलित है संख्या १

Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces & Central Provinces, for use in Schools and Libraries.

विज्ञान

पूर्ण संख्या
२५९

वार्षिक मूल्य ३)

नोट—बदले के सामयिक पत्रादि, लेख और समालोचनार्थ पुस्तकें, यदि वे आयुर्वेद पर न हों, तो 'संपादक, विज्ञान, बनारस शहर' के पास भेजे जायँ। अन्यथा वे स्वामी हरिशरणानंद, पंजाब आयुर्वेदिक फ़ारमेसी, अकाली मार्केट, अमृतसर के पास भेजे जायँ।

प्रबंध-संबंधी सब पत्र तथा मनीआर्डर 'मंत्री, विज्ञान-परिषद, इलाहाबाद' के पास भेजे जायँ।

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते,

विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५।।

भाग ४४ | प्रयाग । तुलार्क, संवत् १९९३ वि० । अक्तूबर, सन् १९३६ ई० | संख्या १

मङ्गलाचरण

चारु-चाह

[साहित्यरत्न पं० भगवतीलाल श्रीवास्तव्य, "पुष्प", काशी]

[१]

आनँद-ओक-विशोक-लोक-आलोक-उजागर ।
साधक-साधन-सरल-सुभग-सौभाग्य-सुखाकर ॥
प्रीति-रीति-नव-नीति-कीर्ति-कैवल्य-सु-आगर ।
प्रेम-पयोनिधि-पोत पुष्ट-प्रण-पाल-गदाधर ॥
सब दलहु दुराशा-दैत्य-दल-दुखद-अतुल-अज्ञान-प्रभु ! ।
शुभ योग-जुगुति-युत-जप भरहु योगेश्वर-विज्ञान-विभु ॥

[२]

सुख-सम्पति-ऐश्वर्य्य शौर्य सब भयो स्वप्नसम ।
भूरि-भोग-भ्रम-भ्रमत-भोर-भ्रव भयो स्वप्नसम ॥
बाधक विपुल-विचार-शून्यता छयो विघ्न-तम ।
सभ्य-सौम्य-उत्तुंग-ऊन अति भयो नग्न-नम ॥
जुरि जोग-हीन-जञ्जाल-जग विफल कियो उद्योग-दल ।
प्रभु ! पसरि विमल-विज्ञान-मय सफल करहु शुभ योग बल ॥

गावोंकी सम्पत्ति और उसके साधन

[साहित्यरत्न पं० भगवतीलाल श्रीवास्तव्य, काशी]

आज दिन सारा संसार साम्पत्तिक-उलझनोंके सुलझानेमें व्यग्र है। सम्पत्ति-विषयक भीषण विभीषीकाओंसे कौन त्रस्त नहीं? भारतकी तो बात ही जुदी है—जहाँ केवल सात पैसे मात्र ही पर प्रति मनुष्यका व्यय अवलम्बित होना अनिवार्य-सा है, वहाँकी सम्पत्तिकी चर्चा ही क्या? 'एक पिताने अपने हंसोड़ बालकसे, अपने घर आये हुए नाकरहित अतिथिके नाककी चर्चा न करनेका प्रतिरोध किया। लड़केने अवसर पाकर बापसे कहा कि पिताजी? अतिथिजीको तो नाक ही नहीं मैं चर्चा किसकी करता' ठीक यही दशा भारतीय सम्पत्तिकी भी है। फिर भी आशा किसे उद्वेलित नहीं करती तथा ममताका कौन शिकार नहीं-के नाते कुछ कहना ही पड़ता है?

भारतकी सम्पत्तिका मूल कौन है?

भारतीय सम्पत्तिके मूलाधार कृषक हैं, जो गावोंमें रहते हैं। ईंट तथा पत्थरोंकी निर्मित गगन चुम्बी प्रासाद भी इन्हींके प्रसाद हैं, इनका पृथक कोई अस्तित्व नहीं। छोटे कोपोंसे लेकर बड़े कोपोंतक अभी इन्हींकी बदौलत आबाद हैं। आजतक जब किसीको सम्पत्तिकी आवश्यकता पड़ी, इन्हींका सिर पीटनेसे उसकी पूर्ति हुई। इन्हींके सस्ते सामानोंसे सेठ साहूकारोंकी गोटी लाल है।

भारतीय अक्षय्य कोष

इतना होनेपर भी ये चूंतक नहीं करते। हज़ार चिल्लपों करके भी भवानीका भण्डार भरना ही पड़ता है। उनके निकट यह चिन्ता कुछ क्षणतक टिकती है फिर भी ये मस्त रहते हैं। बेहिसाब खर्च करना इनकी बरकत है। फिर भी हिसाबसे खर्च करनेवालोंका पूरा नहीं पड़ता। इसमें सन्देह नहीं कि ये ग[illegible] भारतके अक्षयकोष हैं।

गावोंकी सम्पत्ति

गावोंमें सम्पत्तिके नाते मुख्यतः अन्न हैं। वहां रुपये पैसेका सर्वथा अभाव सा है किन्तु दूसरोंको उन्हें अधिकतर रुपया पैसा ही देना पड़ता है। इसके लिए उन्हें अपनी गाढ़ी कमाईका अन्न पानीके भाव बहाना पड़ता है। वर्तमान कालमें कृषिकरमें यही भारी त्रुटि है जो कृषकोंको पीसे डालती है। चाहे उनके खेतमें अन्न न हो किन्तु फिर भी करका सोलहो आना उन्हें चुकाना पड़ता है। ऐसी स्थितिमें उनकी सम्पत्ति इने गिने दिनोंतकके लिए ही उनके पास रहने पाती है। खाली होनेमें वे देखते हैं घरमें उनके लिए दरिद्रता ही रहती है, यदि उनकी वह सम्पत्ति घरमें आती भी है तो दो या तीन माससे अधिकके लिए नहीं, विवश होकर उन्हें बनियोंके हवालेकर लहनदारोंकी लाल लाल आंखोंसे अपनी रक्षा करनी पड़ती है।

गावोंकी सम्पत्तिके साधन

गावोंकी सम्पत्तिके मूल साधन मुख्यतः उनके खेत, उनके बैल तथा हल आदि यंत्र हैं। इनकी उपयोगिता तथा अनुपयोगिता पर ही उनकी सम्पत्तिकी अच्छाई बुराई निर्भर है। यों तो सम्पत्तिके अनेक साधन गौणरूपमें और भी गावोंमें मिलते हैं पर प्रधानता उक्त साधनोंकी ही है। छोटी मोटी दूकान, फेरी सूदखोरी तथा दलाली और छोटी-मोटी नौकरी आदि अनेक गौण साधन हैं। कहीं-कहीं स्वतन्त्र व्यवसाय जैसे चरखा, करघा तथा वकीली, मुख्तारी भी चलते हैं किन्तु अन्तिम दो व्यवसायी प्रायः नगरोंके ही हामीदार हैं उन्हें इन मूल सम्पत्ति साधकोंसे प्रायः घृणा-सी रहती है। ऐसे ही व्यवसायोंमें जातीय कर्मोंकी भी गणना की जा सकती है यथा, कुम्हारी, लोहारी आदि। गौण साधन प्रायः उदरपूर्ति मात्रके ही लिए पर्याप्त हैं उनसे कुछ विशेष उपकारकी आशा दुराशा मात्र है। मूल साधन कृषिपर भारत क्या सारे संसारका अवलम्बन है।

साधनोंकी अवस्था

भारतीय सम्पत्तिके इन मूल साधनोंकी अवस्था किसीसे छिपी नहीं। इनमें शक्तिका एकदम अभावसा होगया है। उनके खेतोंपर पैसा-लोलुपोंकी कुदृष्टिने नजर लगा दी है। स्वयं उनके पोपणभर भी भूमि उनके पास नहीं। यदि

कहींसे किस्तपर लिया भी तो नौ की लकड़ी नब्बे खर्चकी लोकोक्ति चरितार्थ होने लगती है। अन्ततः प्रवासी होनेकी नौबत आ जाती है। उनके जानवरोंकी तो उनसे भी बुरी हालत है। अन्य दुर्गतियोंके साथ पशु चिकित्साकी जो कठिनाई वहां है उसका स्मरण ही अधोगतिकी याद दिला देता है। जहां इतनी मात्रामें पशु वहां एक भी पशु-चिकित्सालय नहीं और न तो उन्हें चिकित्सा सिखानेका कोई साधन ही है। प्रायः ऐसे पशु चिकित्सालय नगरोंमें ही मिलते हैं। हाँ! कानीहौज़ जिनसे पैसा प्राप्त होता है अलबत्ता गावोंमें दिखलाई पड़ते हैं। प्रभु योशुके मतानुयायी दीर्घजीवी हों कि उनकी कृपासे कहीं कहीं मिशन हास्पिटल देहातोंमें भी खुले हैं जिनसे देहाती मनुष्योंकी रक्षा होती है, अन्यथा पशुको कौन कहे जन भी कुत्तेकी मौत मर जाते हैं। केवल पैसेवाले नगरोंमें स्थित चिकित्सालयोंसे लाभ उठाते हैं—भगवान हम संतोषियोंकी रक्षा करें।

आखिर क्या किया जाय

ऐसी परिस्थितिमें यह प्रश्न होना आवश्यक है कि आखिर क्या किया जाय? इसका सीधा और विवशतापूर्ण उत्तर है 'स्वावलम्बन तथा प्राकृतिक ढंगोंका उपयोग'। हम दिहातियोंको अपने पैरों खड़ा होना पड़ेगा तभी कल्याण होगा। हमें यह कहावत भूल जानी पड़ेगी कि 'हमारे दादा घी खाते थे'। अब प्राकृतिक उपायोंसे अवस्थाका सुधार करके तब घीका नाम लेना होगा बहुत सोच विचारके साथ काम करना होगा तथा अनुभूत अवलम्बनोंके सहारे अपनी सहायता आप करनी होगी।

खेत कमकरो और जोतो अधिक

प्रायः कृषक लोभवश अधिक खेतोंसे खेती करना लाभप्रद समझते हैं किन्तु फल बिलकुल उलटा पड़ता है। प्राय देखा जाता है कि किसान खेतको पूरा जोत भी नहीं पाते और नमी निकल जाती है और वे किसी प्रकार कुरेद-कर उसमें बीज डाल देते हैं। ऐसा करनेसे खेतके साथसाथ बीजकी भी हानि होती है और सारा परिश्रम व्यर्थ जानेके साथ साथ खेत बञ्जसे भी कड़ा होकर अगली फसलके योग्य भी नहीं रह जाता। ऐसी सूरतमें सम्पत्तिकी वृद्धिके लिए आवश्यक है कि खेत कम रक्खा जाय और जैसे शक्ति-भर खूब जोता जाय।

अधिक मालगुजारीपर खेत कदापि न लो

प्रायः किसानोंके पास उदरपूर्तिका कोई साधान होनेसे वे जमीनवालोंसे अधिक करपर खेत लेते और खेती करते हैं। विवशतावश उन्हें ऐसा करना पड़ता है। फल इसका यह होता है कि मालगुजारी भर भी वे उससे पैदा नहीं कर सकते। लालचवश ऋणलेकर मालगुजारी देते और खेती करते रहते हैं। अन्ततः इस परिणामतक पहुंचते हैं कि उसीके पीछे उनका सर्वस्व स्वाहा हो जाता है। ऐसी सूरतमें उन्हें अपने ही थोड़े खेतोंपर संतोष करना चाहिए और इस सर्व-नाशी प्रथासे सर्वथा दूर ही रहना चाहिए।

मालगुजारी बाकी न रक्खो

आजदिन अधिकांश किसान मालगुजारी न चुका सकने के ही कारण बेरोजगार हो गये हैं। बेदखलीका भूत उन्हें इतना व्यग्र किये हुए हैं कि उन्हें कहीं शरण ही नहीं। बकाया लगानमें उन्हें सूद खर्च आदि जोड़कर तीनका तेरह देना पड़ता है। ऐसी सूरतमें किसानोंका प्रथम कर्तव्य है कि उपरोक्त ढंगसे काम करें और किस्तकी अवधिपर अवश्य निश्चित रकम अदा करते रहें ऐसा करनेसे उनका भार हलका रहेगा और व्यर्थके भारसे बचे रहेंगे। बहुतेरे किसान यह समझकर लगान रोक रखते हैं कि दूसरे साल दे दूंगा किन्तु उन्हें ज्ञात होना चाहिए कि यह एक सर्वनाशका मार्ग तय्यार हो रहा है—खाना कुछ कम करो पर लगान चुकाओ अवश्य।

बीज बढ़िया बोओ

हमारे देहातोंमें बीजोंकी सच पूछिये तो कोई पूछ नहीं जोजैसा ही पाता है खेतमें छोड़ना ही खेती समझता है। हमने कितने किसानोंको देखा है कि घुने बीज बोकर भी पूरा परिश्रम करते और फल न मिलनेपर दैव और भाग्यको कोसते हैं। यद्यपि हम जानते हैं कि बुरे बीज उग नहीं सकते अच्छा फल देना तो दूर रहा फिर भी ऐसा करनेसे नहीं हिचकते। सम्पत्तिकी रक्षा और वृद्धिके लिए बीजोंकी रक्षा और चुनाव परम आवश्यक हैं। इससे बहुत बड़ी

हानिसे बच जाना होता है। बहुतेरोंको तो कईबार परिश्रम करना पड़ता है किन्तु लोभवश वे ऐसा करनेसे बाज़ नहीं आते। इसमें सन्देह नहीं कि बीजोंका घटिया होना हमारे लिए अधिकांश मात्रामें घाटा देनेवाला है।

व्यापारिक खेती बढ़ाओ

दिहाती किसानोंके यहां प्रायः पुरानी लकीर पीटी जाती है। वे अक्षरशः इस लोकोक्तिको चरितार्थ करते हैं कि "बाबा कह गये कि सरसों ही लादो"। उन्हें समयकी प्रगतिको देखते हुए अपनी खेतीमें सुधार करना चाहिए। ऐसी चीजें बोनी चाहिए जो बाजारमें जाकर खप जाँय और कुछ पैसे दे जाँय। जौ, गेहूं, ईख, चना आदिके साथ साथ उन्हें पैसा देनेवाली चीजें भी बोनी चाहिए। ऐसी फस्लोंमें रकसा कोहड़ा, मूँगफली, धुनिया, लहसुन, पियाज तथा भिन्न प्रकारके फल तथा तरकारियाँ हैं जो अपनी खपतके अनुसार काफ़ी पैसा दे सकती हैं। यदि किसान उद्योगसे जी न चुराये तो इन फस्लोंसे वह अच्छा लाभ उठा सकता है।

अपने खेतोंकी रक्षाका पूरा साधन ठीक करो

प्रायः देहातोंमें खेतोंकी रक्षाका प्रबन्ध न होने अथवा "जबरदस्तका ठेंगा सिर पर" होनेसे उनकी फस्लोंको नुकसान होता है और लाभ देनेवाली फस्लें भी हानि दे जाती हैं। ऐसी सूरतमें कृषकोंका परम कर्तव्य होना चाहिए कि वे अपने खेतोंकी पूरी चौकसी रक्खें और जानवरोंसे बचनेके लिए साधन विशेषका उपयोग करें। बहुतेरे किसान आलस और भयके कारण अपनी लाभदायक फसलसे हानि उठा जाते हैं।

बाजार भाव जांचते रहो

दिहातोंमें किसान अन्न पैदाभर करने जानते हैं। उन्हें नमक तेलके अतिरिक्त इस बातका कुछ भी पता नहीं रहता कि बाजारकी दशा क्या है। उनके यहाँ से गावोंमें फेरी लगाने वाले बनिये उनकी गाढ़ी कमाईकी वस्तुएं पानीके भाव उठा ले जाते और पूरा लाभ उठाते हैं। मैंने अपने कानों सुना तथा आँखों देखा है कि एक नहीं अधिकांश किसान यह कहकर बनियोंके हाथ सौदा दे देते हैं कि पाव आध पावकी क्या बात है लेजाव भाई अब हम कहां जाँचने जाँय" उन्हें इस बातका पूरा ध्यान रखना चाहिए कि "कनकन जोरे अनजुरै" अर्थात् कौड़ी कौड़ी जुटानेसे बड़ा कोष हो सकता है। उन्हें देखना सोचना चाहिए कि भारीसे भारी रोज़गारी भी छटाँक आधी छटाँक बचानेकी चेष्टा करते हैं। इस छटाँक आधी छटाँकके ही बूते उनकी गोटी लाल है और वे सेठ महाजन बने हैं और उसकी कदर न करनेके ही कारण भारतीय कृषक कूपमण्डूक और दरिद्रराज बने हुए हैं। उन्हें चाहिए कि घबड़ाकर अथवा आलसके वश होकर कभी अपनी प्यारी वस्तु फेंक न दें। थोड़ा परिश्रमद्वारा बाजार भाव जाँचकर उचित मूल्य पर दें—डर या धमकानेमें आकर कदापि उनकी अवहेलना न करें। बाजार भाव होने अथवा माँग आनेपर अवश्य ही लोग उनके यहाँ आवेंगे और उन वस्तुओंका उचित मूल्य देकर ले जायंगे यद्यपि प्रारम्भमें कुछ कठिनाई होगी फिर भी सिलसिला लग जानेसे काम आसान हो जायगा।

व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित करो

यहांपर एक बात ध्यान देने योग्य है कि आप कृषक घर बैठे बनियोंका मार्ग देखते रहते हैं कि वे आवेंगे और ले जायेंगे—ऐसा करनेसे वे प्रायः गरज़ वाले समझे जाते हैं और वे बनिये इनकी वस्तुका कोई मूल्य नहीं समझते इस त्रुटिको दूर करनेके लिए कृषकोंको चाहिए कि बाजारमें जाकर वे अपनी वस्तुओंके लिए, व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित करें। ऐसा करनेसे उन्हें किसीका मुंह नहीं ताकना पड़ेगा और न अपनी कमाइयोंको सस्तेमें बहाना पड़ेगा। ऐसा करनेसे उनकी साख भी बढ़ जायगी।

अपने परिश्रमका मूल समझो

प्रातः कृषक पैदावारकी ढेरी देखकर ही प्रसन्न होजाते हैं और यह कहकर भूल जाते हैं कि मुझे तो चैतीमें चालीस मन गल्ला मिला ईखसे पचास रुपये मिले। उन्हें इस बातपर भी ध्यान रखना चाहिए कि हमारा परिश्रम कितनेका हुआ जिसके परिवर्तनमें हमको यह चीजें मिली हैं। यदि वे अपने परिश्रमका भी मूल्य समझें और उसका लेखा रक्खें तो कदाचित् उनकी आँखें खुल जायें। उनका परिश्रम

इस फलका कई गुना होता है। उनको इस थोड़ी सी-पूँजी पर प्रसन्न होकर अपनेको भूल न जाना चाहिए बल्कि परिश्रम और कमाईका पूरा ध्यान रखते हुए उचित ढंगसे काम लेना चाहिए और उसीके अनुसार उचित खर्च और देनलेनसे अपनेको बारसे बचाते रहना चाहिए। ऐसे समयमें कृषक प्रायः खर्च वाले नये काम आरम्भ कर देते हैं और अपनी फसलके ऊपर बार भी लाद देते हैं और ऐसा करके उस उमंगमें प्रसन्न रहते पर अन्तमें खूब पछताते हैं।

व्यर्थके दानी न बनो

देहातोंमें अधिक मात्रामें मुफ्तखोर भिखमंगे फकीर आदि चैतके महीनेमें ही नजर आते हैं। वे मांगकर तो खाते हैं अवसर पानेपर रातको चोरी भी करते हैं और देहाती औरतोंको अनेक धार्मिक भय दिखाकर उनकी गाढ़ी कमाई हड़पनेकी चेष्टा करते हैं और मैंने कानो सुना है कि हट्टे कट्टे भिखमंगे भीख न पानेपर धमकाते भी हैं। किसानोंको पता नहीं है कि उनकी कमाईका अधिकांश भाग इनकी वजहसे व्यर्थ चला जाता है। इस व्यर्थके दानसे हानि छोड़ कोई लाभ नहीं। एकतो इनकी आदतें बिगड़ती हैं और दूसरे तुम भविष्यमें दरिद्र हो जाते हो। इससे तो यही अच्छा है कि उनसे दूर ही रहो। दान उन्हींको दिया जाय जो दैवी कारणसे उदर पालन और अपने पालन-पोषण में असमर्थ हों। कहा भी है कि—

दान दीनको दीजिये, हरे दरिदकी पीर।
ओषधि ताको दीजिए जाके रोग शरीर॥

अपव्यय रोको

समय-प्रवाहके साथ भारतकी दरिद्रता ज्यों-ज्यों बढ़ती गयी उसके धार्मिक कृत्य आदि भी विकृत होते गये। देखनेसे स्पष्ट ज्ञात होगा कि देहातोंमें किसी उत्सवपर जहां पहले दो-चार नेग लेनेवाले थे वहां अब पचीसोंकी संख्यामें दिखलाई पड़ते हैं और देनेवाले कोई दिखलाई ही नहीं पड़ते। ऐसी स्थितिमें किसानोंको चाहिए कि वे मौन और धीरतासे काम लें, अपनी सम्पत्तिका अन्दाजा रखकर खर्च करें। थोड़ी देरकी वाहवाहीमें घर फूँक देनेवाला बहादुर नहीं। बापदादोंके नामके पीछे देहातोंमें नहीं ज्ञात कितने घर बरबाद हो गये। किसानोंको चाहिए कि वे समय की बात सोचें और उसके अनुसार काम करें। एकके दो खर्च करना और एक दिनकी उमङ्गको कई दिनतक जारी रखना नाशके मूल हैं।

खाद बनाना सीखो

ऊपरके खर्च और पैदावारका ध्यान करनेसे रोंगटे खड़े होजाते हैं। कृषि-सुधारके बहुमूल्य साधनका स्मरण होतेही घोर निराशा होती है। ऐसी सूरतमें सिवा इसके कि पैदावार बढ़ायी जाय दूसरा कोई उपाय नहीं। इस युगमें पैसेका महत्व और प्राप्ति देखते हुए भारतीय कृषक यन्त्रों और मशीनोंका प्रयोग कुछ भी नहीं कर सकते। हां, एकही बात है जिससे वे अपनी पैदावारमें कुछ उन्नति कर सकते हैं वह है खादका उपयोग। केवल खेत चीरकर उसमें बीज डाल देनेसे कुछ लाभ नहीं और न तो गोबरको खेतमें फेंक आनेसे ही कुछ लाभ हो सकता है। इन सब चीज़ोंको जब तक सड़ा गलाकर उचित ढंगकी खाद न बनायी जायगी तबतक कूड़ा करकट राख आदिके फेंक आनेसे खेत कुछ भी लाभ नहीं दे सकते। खादकी ही दुर्गतिका यह दुष्परिणाम है कि भारतकी भूमि वसुन्धरासे दरिद्रधरा सी हो रही है। इसके लिये किसानोंको सचेत होजाना चाहिए और खाद बनाना सीखकर अपनी उपज बढ़ाकर सम्पत्तिकी बढ़तीमें योग देना चाहिए। बात तो खादकी है किन्तु ध्यान देनेसे ज्ञात होगा कि यह बात उनके जीवनकी है।

अपनाही मत देखो

किसानोंमें अधिकांश ऐसे मिलते हैं जिन्हें अपने आगे दूसरोंका लाभ कुछ भी नहीं अच्छा मालूम होता। इसका पूरा प्रमाण कार्तिक और अगहनमें सिंचाईके समय खूब मिलता है। सभी अपना खेत पहले करना चाहते हैं। कितने तो ऐसे हैं कि बिला ज़रूरत सीनाजोरी दिखलाते हैं और ज़रूरतवाले निर्बलतावश पीसे जाते हैं। उन्हें इस बातका ध्यान नहीं रहता कि हमारा लाभ भी नहीं और दूसरेकी हानि हो रही है—हम ऐसा क्यों करें। किसीकी मटर नहीं भर जाने पाती और दूसरा लट्ठ दिखाकर अपना जौ भरना चाहता है। ऐसा करनेसे कल्याणकी कोई आशा नहीं और न तो गावोंकी सम्पत्तिही बढ़ सकती है। प्रत्येक कृषकका परमधर्म होना चाहिए कि वह अपनाही न देखे बल्कि ऐसे

ढंगसे कामले कि दूसरोंकी हानि न हो और अपना लाभ भी न जाय।

व्यर्थके टंटेसे बचो

मसल है कि 'ज़र-ज़मीन झगड़ेके घर हैं'—इस बातको लेकर प्राय देहातोंमें नित्यही बेकार टंटे हुआ करते हैं और उनका परिणाम इतना भयङ्कर होता है कि समूल नाशका दृश्य उपस्थित हो जाता है। एक डांड़के लिए नाहक खून-ख़राबी हो जाती है। शिक्षाके अभाववश ये किसीकी सुनते भी नहीं और जोशमें आकर सर्वस्व स्वाहा करनेपर तुल जाते हैं। 'एक तो तितलौकी दूसरे चढ़ी नीम' के अनुसार उनकी गतिही विचित्र हो जाती है। किसानोंके लिए यह बात बहुत आवश्यक है कि वे व्यर्थके टंटेसे अपनेको बचायें और जहांतक हो सके अपनी सीमाके भीतर समझ बूझकर काम करें। ऐसा न करनेसे सिवा हानिके उनका कोई लाभ न होगा और न उनके सम्पत्तिकी रक्षाही हो सकेगी। उन्हें ऐसे अवसरों पर बहुत समझबूझ और धैर्यसे काम लेना चाहिए।

अदालती दलालोंके फन्देमें न पड़ो

प्रायः देखा जाता है कि गावोंमें कुछ ऐसे दलाल भी होते हैं जो व्यर्थकी आग धराकर किसानोंमें मतभेद पैदा करके अपना मतलब गाँठनेकी चिन्तामें रहते हैं। उनकी एक प्रकारसे यही कमाई होती है। ये प्रायः मूर्ख और दरिद्र किसानोंको अपना शिकार बनाते हैं और अन्त समयमें उन्हींके पूरे दुश्मन भी बन जाते हैं। मैंने अपनी आंखों देखा है कि एक आदमीकी सारी जायदाद एक ऐसेही दलाल यहां दलालीमें गिरवीं हो गयी और अदालती खर्च अलगही ऋणके रूपमें उसे गांव छुड़ानेवाला बना। किसानोंको ऐसे दलालोंसे बचना चाहिए और किसी सज्जनसे परामर्श लेकर अपनी रक्षा करनी चाहिए।

संगठनसे काम लो

ऊपरके सारे उपयोग एक आदमीके किये नहीं हो सकता फिर भी चाहने और करनेवाले व्यक्तिगत रूपमें भी अपनी रक्षा करही सकते हैं। ऊपरके उपाय पूर्णतया तब और लाभदायक सिद्ध होंगे जब एकताका प्रचार होगा और व्यर्थके वितण्डावादोंकी ओरसे मन हटाकर हमारे किसान भाई असली बात सोचेंगे और आपसमें संगठन करेंगे। अदालती चक्करमें पड़कर अपना सर्वस्व खोदेनेका प्रमाण देना व्यर्थ है क्योंकि यह सब जानते हैं। इसीकी ही दुर्दशासे बचनेके लिए सरकार ने गावों में पंचायत स्थापित कर दी है किन्तु अभाग्य है कि अधिकांश पंचायतें गयाका दण्ड ही हो गयीं और मूर्ख निर्बल एक दम जबरदस्त अथवा लोलुप पंचोंके आ जानेसे वे अपने उद्देश्यकी सिद्धिसे कोसों दूर जा पड़ीं। जहाँ की पंचायतें ऐसे घोर संखोंसे बचीं हैं वे बहुत अच्छा काम कर रही हैं और वह गाँव भी अच्छी दशामें है। इससे हमें स्वयं उद्योग करना चाहिए कि अपना सब टंटा इन्हीं पंचायतों अथवा स्वयं पंच बनकर निपटा लें। किसानोंको यह बात स्मरण रखनी चाहिए कि 'चतुर वही है जो सर्वस्व जाते हुए देखकर आधा बचाले' न कि आधे के लिए सर्वस्व स्वाहा कर दे। मैं एक देखी घटनाकी चर्चा करता हूं कि एक किसानका केवल दो क्यारी चना चोर काट ले गया। भ्रममें पड़कर वह एक किसानसे लड़ बैठा—यहांतक कि लाठी गड़ासातक चल गया। अदालती चक्करमें हजारों रुपये स्वाहा हो गये, सजा आदि बेलुएमें रहीं। आजदिन वे और उनके ऋण न जाने भविष्यमें क्या करेंगे। चना आदि सोचा जाय तो अधिकसे अधिक चार या छः आने या एक रुपयेका रहा होगा। शिव।

जानवर कम रक्खो सेवा खूब करो

ऊपरकी सारी बातें किसानोंकी सम्पत्तिके मूल साधन खेतसे सम्बन्धित हैं या उसीकी किसी शाखामें पड़ती हैं। उनकी सम्पत्तिके दूसरे साधन उनके जानवर बैल, गाय, भैंस आदि हैं। इनकी भी अवस्था अकथनीय है। प्रायः किसान अपनेको चार हल या आठ हलका खेतिहर कहलानेमें ही अपना बड़ा गौरव समझते हैं और व्यर्थके सस्ते जानवर द्वारपर बांध रखना अपनी इज्जत समझते हैं। इसका फल यह होता है कि वे उनको पूरा चारा नहीं दे पाते और अपना और उनका दोनोंका सर्वनाश करते हैं या दूसरेकी खेती चराकर दूसरोंकी हानि करते हैं।

देहातोंमें जानवरों की खूराकपर बहुत कम ध्यान दिया जाता है। केवल दूध देनेवाले पशुही कुछ खली भूसी आदि पाते हैं। इतने उपयोगी बैलोंको कितने किसान खली भूसी

चना आदि देते हैं ? इसका हिसाब लगाना कठिन है। चैतकी कमाई यदि उन्हें सालभर मिल जाय तो यही गनीमत है। कितने किसान तो अन्नके साथ बैलोंके चारे (भूसे) तक को बेचकर अपना ऋण चुका देते हैं और स्वयं कष्ट तो सहते ही हैं। बेचारे पशु भूसा भी न पाकर असमय ही में बेमौत मरने लगते हैं। कितने जबरदस्त किसान ऐसे भी हैं कि दुनियांके पशु जुटानेकी चिन्तामें रहते हैं और दूसरोंकी खेती ताका करते हैं—ऐसोंसे तो भगवान ही बचाये। उनके लिए जिसकी लाठी उसकी भैंस वाली लोकोक्ति चरितार्थ होती है।

किसानोंके लिए पशु बड़े, कामकी चीज हैं। उन्हें पशुओंकी रक्षा अपनेसे कहीं बढ़कर करनी चाहिए। यह बात तभी हो सकती है जब पशु आवश्यकतासे अधिक न होंगे। अधिक होनेपर दरिद्र बहु सन्तानवाले जनकी दुर्दशा हुए बिना न रहेगी। मैंने एक किसानको हरसाल बैल खरीदते देखकर पूछा भाई आपको ऐसा क्यों करना पड़ता है। उन्होंने जवाब दिया कि भगवानका कोप है और हमारे खूंटेमें दोष है। जब पता लगाया तो ज्ञात हुआ कि वे हरसाल सस्ते कमजोर बैल इसलिए खरीदते हैं कि सेवा करके हट्टा कट्टा करके काम लूंगा किन्तु वे सेवा तो कर नहीं सकते और काम भी नहीं रोक सकते। उसका फल यह होता है कि वे बैल सालसे अधिक नहीं चलने पाते। इस लिए किसानोंका परम धर्म है कि अपनी सम्पत्तिकी रक्षाके लिये मूल साधन पशुओंपर ध्यान दें और आवश्यकतानुसार पशु रखकर उनकी पूरी सेवा करके पूरा लाभ उठायें।

पशु-चिकित्सा सीखो

पशु-चिकित्सालयोंकी अवस्थाका जिक्र मैं ऊपर कर चुका हूं। खेद है कि वे हमारे देहातोंमें नहीं मिलते जहाँ इतने पशु हैं और जहाँ इनकी आवश्यकता है। ये गरीब किसान स्वयं बीमार पड़नेपर मामूली डोलीका खर्च सहन न कर सकनेसे पड़े-पड़े मर जाते हैं। पशुओंको ढोकर लाना तो एक टेढ़ी खीर है। प्रायः देखा जाता है कि देहातके अधिकांश पशु कुत्तेकी असामयिक मौतसे मरा करते हैं। कुछ पशु चिकित्सक गावोंमें मिलते हैं जो इतने कम हैं कि सब जगह नहीं पहुंच सकते और सच तो यह है कि अपनी गृहस्थीसे उन्हें फुरसत ही कहां ? और जो निठल्ले हैं भी शिक्षाके अभावसे उतने उपयुक्त नहीं, यदि हैं भी तो अहंकार की मात्रा उनमें इतनी है कि सभीका उपकार नहीं कर सकते। यदि पिघले भी तो दादाका मोल होने लगता है। एक गरीब गृहस्थके नाते सरकारसे इस बातकी सविनय प्रार्थना है कि वह देहातोंमें पशु चिकित्सालय खुलवानेकी कृपा करे ऐसा करनेसे दरिद्र किसानोंके हाथ पशुओंकी पूरी रक्षा होगी और अधिक मात्रामें व्यर्थ होनेवाला उनका द्रव्य बच जायगा।

जबतक सरकारकी कृपा इधर नहीं होती तबतक किसानोंको स्वयं अपने बलपर खड़ा होनेकी चेष्टा करनी चाहिए और स्थूलरूपमें पशुओंकी बीमारी और उनकी प्राकृतिक चिकित्सा सीखकर अपने पशुओंकी रक्षा करनी चाहिए। बात सुननेमें साधारणसी प्रतीत होगी पर विचार पूर्वक देखा जाय तो इसका वास्तविक रूप समझमें आ जायगा। पुस्तक लिखनेवाले पशु चिकित्साके जानकार महोदयोंको चाहिए कि सरल भाषामें कम दामकी पुस्तकें देहातोंमें फैलावें और किसानोंका उपकार करें और किसानों का परम कर्तव्य होना चाहिए कि ऐसी उपयोगी बातको चेष्टा करके सीखें और अपना कल्याणमार्ग प्रशस्त करें।

यथा शक्य अपना काम अपने हाथ करो

प्रायः देखा जाता है कि किसान छोटी छोटी बातोंके लिए भी दूसरोंका मुंह ताकते रहते हैं। मैंने यहांतक देखा है कि हलकी कीली न होनेसे कई रोज एक किसानका हल चलना इसलिए बन्द था कि लोहार मेहमानी चला गया था। इसके लिए हम कृषकोंको चाहिए कि छोटे मोटे काम और कामकी चीजें स्वयं बनालें और कर लें जिससे हमारे लिए हर समय कठिनाई उपस्थित न हो। हलका बनाना औजारों पर शान रखना, हँसिया, खुर्पी आदि बनाना, रस्सी से सम्बन्ध रखनेवाली चीजें जैसे खोता पशुओंके बांधनेकी रस्सियां आदि ऐसी चीजें हैं जिनको हम आसानीसे स्वयं बना सकते हैं—और अपनेको हानिसे बचा सकते हैं। इस बातकी परमावश्यकता इसलिए और है कि हमारा काम समयके अधीन है। आज वृष्टि हुई और न चला तो फिर भूमिमें नमी आनेतक हमें रुकना पड़ेगा। ऐसा करनेसे हमारी छोटी पूंजी भी बच जाती है और काम भी नहीं

रुकता। अतएव प्रत्येक किसानको इस बातकी चेष्टा करनी चाहिए कि यथा शक्य अपना काम अपने हाथों करनेका अभ्यास डाले और इस बातकी शिक्षा अपने बच्चोंको दे। खटिया, मचिया, झौवा, खाँची आदि ऐसी चीजें हैं जिनकी हर समय आवश्यकता पड़ती है—ऐसी चीजें किसानोंको स्वयं बना लेनी चाहिए।

प्राकृतिक चिकित्साके आदी बनो

समयप्रवाहका प्रभाव देहातोंमें ऐसा पड़ा है कि रोगके खानेवालोंको आज रोग स्वयं खा रहा है। पहले गावोंमें वैद्य रहा करते थे और साधारण वनस्पतियों द्वारा भारी चिकित्सा कर डालते थे। किन्तु अभाग्यवश अब गावोंकी हवा कुछ ऐसी दूषित हो चली है कि रोगोंकी गणना अपार सी है। अब तो उन्हीं स्वर्गसदृश गावोंमें ऐसे ऐसे रोग मिल रहे हैं जिनका नाम देहाती वैद्योंको कौन कहे बड़े बड़े डाक्टरों और आयुर्वेदाचार्योंको भी दङ्ग कर रहे हैं। फैशनके साथ देहातके रहनेवालोंमें कुछ अस्पतालोंकी हवासी लग गयी है और वे अब मामूली रोगमें भी शहरकी गली झाँकते दिखाई पड़ते हैं। शहरका खर्च तो दूर रहा दवाओंका दाम ही इतना होजाता है कि गाँवमें पहुँचनेके कुछ दिन बादही उन्हें फिर नगरमें आना पड़ता है।

एक दिन मैं घरपर बैठा था। एक देहाती किसानने आकर मुझे एक रुपया देते हुए कहा भैया! हमारे लड़केको दो रोज़से कुछ लादमें गरमी रहती है इससे कोई अच्छी दवा लेते आइएगा—मैंने उसे समझाया भाई इस प्रकार रुपया क्यों फेंक रहे हो पासके वैद्यको दिखाकर क्यों नहीं दवा लेते। इतनेपर तो वह इतना रुष्ट हुआ जिसका ठिकाना नहीं और यह कहते रुपया लेकर चला गया कि "हमारा क्या नहीं देखा है" आदि। इसी भावके आधार पर आजदिन गावोंकी सम्पत्ति बेढंगे खर्च हो रही है। मेरे कहनेका यह अभिप्राय कदापि नहीं कि शहरमें दवा करने न जाओ बल्कि हमारा अभिप्राय यह है कि साधारण रोगोंके लिए अनेक रोग पैदा करनेवाली दवाइयोंका आश्रय न लो बल्कि प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा उन्हें रोकनेकी चेष्टा करो।

हमारे गावोंकी जड़ी बूटियां, हवा, पानी तथा अन्न ही ऐसे हैं कि यदि उनका विधिवत् प्रयोग किया जाय तो अनेक रोग समूल नाश हो सकते हैं। शहरकी देखादेखी हम अपनी स्वाभाविकताको इतना बिगाड़ बैठे हैं कि प्राकृतिक चिकित्सालयमें रहते हुए भी अनेक रोगोंके शिकार हो रहे हैं। हमें इस बातमें अपनी पुरानी लकीर पीटनेसे ही मर्यादा लाभ हो सकता है। आज दिन जिसको खानेका भी ठिकाना नहीं वह भी शहराती दवाओंपर लट्टू हो रहा है और पाई की हर्रेसे काम न ले बहुत दामोंवाली दस्तकी पिचकारी लेनेके फेरमें पड़ रहा है। विज्ञापनोंकी मनोहारिताने किसानोंको और भी लुभाया है। जिसे देखो वही धातुपुष्ट, वीर्यवर्द्धक, पुष्टकर चूर्ण आदिकी वी० पी० मँगाता ही रहता है। तात्पर्य यह कि हमें इन नाशकारी उपायोंकी ओर इस प्रकार न खिंच जायें बल्कि ईश्वरदत्त वस्तुओंसे अपना स्वास्थ्य ठीक करनेकी चेष्टा करें इससे हमारे सम्पत्तिकी बहुत रक्षा होगी।

व्यर्थ नाशकरी ठाटबाट तथा आदतोंको रोको

इस फैशनके युगमें इसकी हवा किसे न लगी। हमारे देहात भी इससे न बचे। बीड़ी, सिगरेट, चुरुट मदक आदिका प्रचार आजकल ऐसा फैला है जिसकी सीमा नहीं। इस प्रचारसे गावोंके स्वास्थ्यके साथ साथ खेत खलिहानों तकको हानि पहुंच रही है। एक बार एक सिगरेट-शौकीन महाशयने अपना सिगरेट पीकर एक ईखकी खेतमें फेंक दिया—उनके हटतेही वह अग्नि भड़की कि किसानकी जेठकी कमाई छणभरमें स्वाहा हो गयी। इन वस्तुओंके कारण गावँके लड़कोंमें कई बुराइयां आगयी हैं और वे पैसेके लिए खड़ी खेतीके बाल नोचते और पैसे सेर बेचकर पैसा पैदा करनेकी धुनमें लगे रहते हैं। एकबार होलीके अवसरपर मुर्रा पड़ाका आदि बनारससे खरीदनेकी धुनमें एक लड़का पकड़ा गया जो चार पंसेरी जौ एक बनियेको दो आनेमें बेचकर आ रहा था। उसके मां बाप ऐसे दीन कि घर खानेका ठिकाना नहीं पैसेकी तो बात जुदी।

हमारे गावोंमें रेह एक ऐसी मिट्टी है जिससे वस्त्र साफ किये जाते हैं किन्तु आज उसे कोई नहीं पूछता। जिसे देखो 'सनलाइट सोप' के पीछे मस्त है। अब तो कदाचित ही कोई देहाती बालक बचा हो जिसे आगे बाल रखनेका शौक न हो और जिसके लिए वह बनारसी शीशीका सुगन्धित तेल प्रयोगमें न लाता हो। कहां वह समय था जब

कि भारत स्वर्णपक्षी कहलाते हुए भी मिर्जई, साफा, चमरौधा जूता तथा मोटे कपड़े पर गुज़र करता था और कहां आजका समय है कि दरिद्रराज होते हुए भी, कोटबूट हैट सूट नकटाई कालर पालिश के पीछे जीजानसे पड़ा हुआ है। मेरे इस कहनेका अभिप्राय कदापि नहीं कि ये चीज़ें बेकार तथा व्यर्थ हैं बल्कि हमारा कहना यह है कि—

जैसा देश वैसा भेष बनाओ

हम ऐसी दुनियामें रहते हैं जहां इनके न होनेपर भी काम चल सकता है और एक तरहसे तो हम दिहाती दुनियांमें इनके प्रयोगको बेकदरीका कारण समझते हैं। इन वस्तुओंका प्रयोग तो उन्हीं तक समुचित है जिन्हें इनके योग्य स्थान प्राप्त हैं। इनके लिए कितने पैसोंकी आवश्यकता है इसका अन्दाजा वेही लगा सकते हैं जो इनके चक्करमें पड़ चुके हैं और देहात पैसोंसे जैसा भरापुरा है वैसा सभी जानते हैं। यदि असत्य नहीं और अपराध नहीं तो मैं कह सकता हूं कि इन फैशनोंने देहातकी ओरसे योग्य और जानकार माता के लालोंको विमुख सा कर दिया। वे आज यह कहकर देहातसे घृणा करते हैं कि मैंने अपना इतना रुपया लगाया है शहरमें न रहूँ तो घाटा कैसे पूरेगा और देहातमें इसकी कदर ही कौन जानता है जो उनमें जाऊँ, आदि। मुझे यह सुनकर बहुत दुःख हुआ कि एक देहाती रईस सज्जनके यहां शहरसे कसोरे इसलिए मँगवाये गये कि देहाती कोहार ऐसा कसोरा नहीं बना सकते। कहिए यह सब क्या है? क्या इनसे हमारे पैसे व्यर्थ नहीं जारहे हैं। हमारे एक मास्टर साहब अपने अंग्रेजीदां भाईको गृहस्थीके काममें इसलिए नहीं लगाना चाहते कि पोज़ीशनके विरुद्ध है और गांववाले यह कहकर चिढ़ाते हैं कि "पढ़े फारसी बेचैं तेल।" हमको इन बातोंके चक्करमें क्या आना चाहिए? ऐसे समयमें जब दुनिया अपने लाभकी ओर झुकी है और कमसे कम व्ययमें अपना जीवन व्यतीत कर अपनी साम्पत्तिक दशा सुधार रही है! सामर्थ्य रखनेवालोंके लिए हमें कुछ नहीं कहना है केवल ग्रामीण जीवन व्यतीत करनेवाले भाइयोंसे यह प्रार्थना है कि वे इसीमें अपना भला जानें कि हम गावोंमें रहते हैं, मोटे काम करते हैं। अस्तु हमें ऐसेही सामानोंके प्रयोगमें कल्याण है।

ऋणके आदी न बनो

प्रायः देखा जाता है कि गावोंमें जब किसीके यहां कोई उत्सव अथवा भारी काम पड़ता है तो लोग ऋण लेनेकी धुनमें घूमने लगते हैं और उससे वे कहांतक अपना भला समझते हैं भगवान जाने। कितनोंको तो जब ऋण नहीं मिलता तो अपनी सम्पत्ति ही पर हाथ साफ़ कर बैठते हैं। ऐसा करना किसी समयमें अच्छा नहीं। ऐसे समयमें हम देहातियोंको इस धुनमें आजाना चाहिए कि इस कामको कौनसा रूप दें कि कम खर्च लगे और यह काम हमारी पूँजीके अन्दरही पूरा हो जाय। वे वाहवाहीके फन्देमें इस कदर बँध जाते हैं कि उस समय अपनेको भूल जाते हैं और ऋण—पाशमें पड़कर सूदही भरते भरते मर जाते हैं या सारी सम्पत्तिसे हाथ धो बैठते हैं। हमको इस बातको धर्मकी भांति सत्य समझना चाहिए कि ऋण लेना कोई महाजनी नहीं बल्कि अपनी आमदनीके भीतरही अपना काम चलाना बड़ा भारी गौरव है और इसीमें अपना कल्याण है। कितनोंको मैंने यह कहते सुना है कि वह रईसही कैसा जिसके यहां चार आदमी रोज़ तकाज़ेके लिए न पहुँचे रहें। प्रायः ग्रामीण भाई यह कहकर ऋण लेनेसे नहीं हिचकते कि 'इतना भारी गवर्नमेण्टका राज्य है वह भी ऋण लेती है"। ऐसी बुद्धिवाले भाइयोंको अपनी और गवर्नमेण्टकी सत्ताका भी विचार करना चाहिए। व्यर्थकी बातोंमें पड़कर अपना सर्वनाश कदापि न करना चाहिए।

बच्चोंको औद्योगिक शिक्षा दिलाओ

हमारे देहातोंकी बहुत सम्पत्ति बच्चोंकी प्रचलित शिक्षा में भी खर्च हो जाती है जो व्यर्थ होते हैं उन्हें उनका कुछ भी लाभ नहीं—वे इस शिक्षाप्राप्तिके पश्चात् बेकारसे हो जाते हैं। हमें अपने बच्चोंको प्रारम्भ हीसे ऐसे स्कूलोंमें भेजना चाहिए जहांसे निकलकर वे कुछ सम्पत्ति-साधनमें योग दे सकें। सरकारकी कृपासे अब ऐसे स्कूलोंकी भी कमी नहीं और भविष्यमें विशेष होनेकी आशा भी है। बढ़ईगीरी, दर्जीगरी, कृषि बुनाई तथा अनेक प्रकारकी दस्तकारीके स्कूल अब खुलने लगे हैं, ऐसे समयमें लड़कोंको ग्रेजुएट बनानेकी ही धुनमें अपनी सम्पत्ति लुटानेवाला ग्रामीण जन कभी भी लाभ नहीं उठा सकता। अस्तु हमें चाहिए कि बच्चोंको ऐसे

स्कूलोंमें भेजें जहांसे निकलकर वे निठल्ले और फैशनपर जान देनेवाले न बन जायँ बल्कि कुछ न कुछ सम्पत्ति प्राप्त करनेमें लग जायँ। इससे गावोंकी सम्पत्तिके अच्छे अच्छे साधन तय्यार हो जायँगे।

उपसंहार

स्थानाभावके कारण मैंने अपनी अल्प देहाती बुद्धिकी उपज यहां थोड़ेमें प्रकट कर दिया वास्तवमें विचार करनेके लिए बहुत समय और कागज़की आवश्यकता है। बातें बहुतसी हैं किन्तु विवशता है कि सबका प्रकाशन ही दुरूह है और फिर मुझ देहातीकी बकवाद ही क्या? इसके स्थूल नियमोंके उल्लेखके साथ मैं अपने प्रिय पाठकोंसे आग्रह करूँगा कि वे इसके भीतरकी छोटी-छोटी बातोंको स्वयं सोचें और इसका अनुसरण कर देहातकी सम्पत्तिके साधनों को चिरस्थायी तथा लाभप्रद बनानेकी चेष्टा करें। इस लेखमें मैंने सरकारी रिपोर्टोंका जिक्र नहीं किया है बल्कि अपने अनुभव तथा भुक्तभोगी होनेके कारण बीते वातावरणोंका ही सहारा लिया है और वास्तवमें सोचा जाय तो देहातकी दुर्गतिके कारण उनकी दैनिक छोटी छोटी कठिनाइयां ही हैं, जिनको हम तुच्छ दृष्टिसे देखते और उनपर ध्यान देना व्यर्थ समझते हैं, उन्हें ही घटाते भी हैं। मेरी बहुत दिनोंसे इच्छा है कि देहातके नाशकारी आन्तरिक कार्य्योंका एक बृहद् पोथा तय्यार करूँ किन्तु कौन जानता है इच्छा कब पूरी होगी। इस लेखमें उसके कुछ अंश विद्यमान हैं।

गावोंकी सम्पत्तिका अधिकांश भाग व्यर्थ चला जाता है और उसके साधन ऐसे लचरसे पड़ रहे हैं कि भविष्यका स्मरण ही भयंकर हो रहा है। गावँके रहनेवालोंको चाहिए कि चेतें और सरकार तथा विद्वान् सज्जनोंका परमधर्म है कि उन्हें उठावें क्योंकि उन्हींसे भारत भारत है अन्यथा केवल पश्चात्ताप करनेके सिवा कुछ हाथ न आयेगा। हमारी तो भगवानसे यही प्रार्थना है कि हम गांववालोंको सद्बुद्धि दे कि हम अपनेको चेतें।

सूर्य्यके कलंक या भँवर

[श्री कार्तिकप्रसाद, बी. एस.-सी]

सूर्य ठोस नहीं है वह गैसका गोला है जो भयानक गरम है। भीषण आकर्षणके कारण वहाँकी गैस ठोस पदार्थके समान ठस है। तो भी वहां अनेक घटनाएं ऐसी हुआ करती हैं जो ठोस वस्तु पर नहीं हो सकतीं। दूरबीन से देखनेपर इसका प्रत्यक्ष प्रमाण मिलता है।

चंद्रमामें कलंक होनेकी बात तो सभी जानते हैं परन्तु दूरबीनसे देखने पर सूर्यमें भी कलंक दिखलाई पड़ते हैं। वर्षोंतक इनकी सूक्ष्म जांच करनेसे पता चला है कि ये गड्ढे हैं। कुछ सूर्य-कलंक तो इतने बड़े होते हैं कि उनमें हमारी पृथ्वीके समान कई एक पिंड विलीन हो जायंगे।

परंतु ये कलंक हैं क्या? यदि सूर्य ठोस होता तो कहा जाता कि जैसे अन्य ठोस वस्तुओंमें गड्ढे हो सकते हैं वैसे सूर्यमें भी होंगे—गड्ढोंके रहनेमें कोई विशेष बात नहीं है। परन्तु सूर्य-कलंक टिकाऊ नहीं होते। वे बना बिगड़ा करते हैं। उनकी संख्या घटा-बढ़ा करती है। इसलिये निश्चय ही वे ठोस पदार्थके गड्ढे नहीं हैं। परन्तु यदि सूर्य ठोस नहीं है तो उसमें गड्ढे कैसे बन सकते हैं? तरल पदार्थोंकी सितहपर तो गड्ढे बन ही नहीं सकते फिर वायव्य पदार्थ में कैसे गड्ढे बनेंगे? शीरे ऐसे गाढ़े तरल पदार्थोंमें भी यदि गड्ढे बनानेकी चेष्टा की जाय तो गड्ढे क्षणभरमें भर जाते हैं। फिर सूर्यकी सतह पर गड्ढे कैसे बनते होंगे?

केवल एक ही बात हमलोग जानते हैं जिससे तरल पदार्थोंमें गड्ढे बन सकते हैं। वह यह है कि जहाँ भँवर होते हैं वहाँ गड्ढे बन जाते हैं।

अगली बार जब आप किसी नदी या तालाबमें जायं तो आप अग्रलिखित प्रयोग करें। एक बड़े-से थालको खड़ा और पानीमें आधी दूर तक डूबा हुआ रक्खें। अब इस थालको पानीमें शीघ्रतासे चलाने पर दो छोटी-छोटी

भँवरियां आपको दिखलाई पड़ेंगी। यही प्रयोग छोटे पैमाने पर घरकी बड़ी बाल्टी, कंडाल या टब में किया जा सकता है। चम्मच या छोटी कलछुलीके गोल भागको पानीमें आधी दूर तक डुबा कर उसे जोरसे चलाना चाहिये। कलछुली यदि गहरी होनेके बदले चिपटी हो तो भँवरियां आसानीसे बनेंगी।

उपरोक्त प्रयोग में, यदि आप ध्यानपूर्वक देखेंगे तो पता चलेगा कि इन भवरियोंमें पानी विपरीत दिशाओंमें चक्कर मारता है। यदि एकमें घुमाव घड़ीकी सुइयोंकी दिशा में हैं तो दूसरी भँवरीमें घुमाव इसके विपरीत है।

इस प्रकारकी दो भँवरियोंको भँवर-युग्म कहते हैं। हो सकता है सूर्यमें भी इसी प्रकारके भँवर-युग्म, या शायद साधारण एक ही भँवर हों। यदि सूर्यके प्रकाशको रंगीन शीशेसे छान डाला जाय * जिसमें केवल एक रंगका ही प्रकाश बच जाय और उस प्रकाशसे सूर्यका फोटो खींचा जाय तो कुछ विशेष बातोंका पता चलता है। बात यह है कि प्रत्येक धातुके खूब गरम होनेपर एक विशेष रंग का प्रकाश निकलता है। महताबी इसी सिद्धांतके बलपर बनायी जाती है। जब महताबीवालेको लाल प्रकाश उत्पन्न करना रहता है तब उसमें वह स्ट्रांशियम धातुका कोई क्षार छोड़ देता है। जब उसे पीले प्रकाशकी आवश्यकता होती है तब वह उसमें साधारण नमक (सोडियम-क्लोराइड) छोड़ देता है, इत्यादि। इसलिये यदि सूर्यके प्रकाशको छानकर इसका केवल एक अवयव लिया जाय तो स्पष्टरूप से देखा जा सकता है कि सूर्य पर वह धातु कहां हैं जिससे उस विशेष रंगका प्रकाश आरहा है।

इस सिद्धांतपर ज्योतिषियोंने इस बातके पता चलाने की चेष्टा की है कि सूर्यपर कैलसियम कहां-कहां है। (कैलसियम वही तत्व है जिसके साथ आक्सिजनका संयोग हो जानेसे साधारण चूना बन जाता है)। रंगीन शीशेसे प्रकाशको छाननेके बदले ज्योतिषी एक विशेष यंत्रसे काम लेते हैं, क्योंकि ऐसा रंगीन शीशा अभी नहीं बन सका है जिससे केवल कैलसियम ही का धूमिल-रक्त प्रकाश पार हो सके, दूसरे तत्वोंका प्रकाश पार न होने पाये।

ऐसे एक रंगके प्रकाशसे खींचे गये फोटोग्राफोंमें अद्भुत ब्योरे उतरते हैं। इस प्रकारका एक फोटोग्राफ इस अंकके कवरपर छपा है*। इसके देखनेसे तुरंत पता चलता है कि सूर्य-कलंक भंवर हैं और साधारणतः उनकी जोड़ी लगी रहती है। चित्रमें दो भंवर-युग्म स्पष्ट दिखलाई पड़ रहे हैं।

यदि किसी विशेष तत्वके प्रकाशको अलग करके फोटो न लिया जाय तो भिन्न-भिन्न तत्वोंके फोटोग्राफ एक दूसरेके ऊपर पड़ जाते हैं और इस प्रकार लीपा पोती हो जानेसे ब्योरा रहित फोटो उतरता है।

हाइड्रोजनके प्रकाशको छानकर अलग करके इस प्रकाशसे फोटो लेनेपर कई बार हाइड्रोजनके बादल इन भँवरोंमें फँसते और इनके गड्ढोंमें गोते खाते देखे गये हैं, ठीक उसी प्रकार जैसे तैराक किसी बलिष्ठ भँवरमें फँसकर इच्छा न रहते हुए भी नीचे खिंच जाता है। इससे भी सिद्ध होता है कि सूर्य-कलंक भँवर हैं।

* श्वेत प्रकाश अनगिनत रंगोंके प्रकाशोंका मिश्रण है (इनमें ७ मुख्य रंग है)। लाल शीशेसे केवल लाल प्रकाश छनकर आता है। शेष रंगके प्रकाश रुक जाते हैं।

* इस चित्रका ब्लाक हमें हिंदुस्तानी एकेडेमीके सौजन्यस प्राप्त हुआ है। चित्र डा० गोरख प्रसादके "सौर-परिवार" से लिया गया है।

विषाणुओंसे रक्षा

[डाक्टर सत्यप्रकाश, डी० एस-सी०]

जबसे कीटाणुओंका आविष्कार हुआ है तबसे चिकित्साशास्त्रका ही नहीं प्रत्युत साधारण दिनचर्य्याकी सावधानियोंका भी दृष्टि–कोण परिवर्तित होगया है। हमारे चारों ओर वातावरणमें इतने कीटाणुओंकी भरमार है कि यदि हमें दिव्यचक्षुएं प्राप्त हो जायँ और हम अपने इस सूक्ष्म परिवारको नेत्रों द्वारा देख सकें, तो हमें अपने नित्यप्रतिके कार्य्योंके करनेमें बड़ी घबराहट हो। प्रतिक्षण हमें ऐसा प्रतीत होने लगेगा मानों कि इन छोटे–छोटे जीवों का झुण्ड हमारे मुखके चारों ओर भनभना रहा है। अस्तु, निस्सन्देह हमारे चारों ओर इन जीवाणुओंकी असंख्य संख्या विद्यमान है।

ये समस्त जीवाणु और कीटाणु तीन प्रकारके हैं। एक तो, वे जो हमारे न शत्रु हैं और न मित्र। उनसे हमें किसी प्रकारकी आशंका नहीं है। दूसरे प्रकारके कीटाणु ऐसे हैं जो निस्सन्देह हमारे शत्रु हैं और वे हमारे नाशपर तुले हुए हैं। तीसरे प्रकारके कीटाणु ऐसे हैं, जो हैं तो शत्रु पर उनका सतत–प्रहार हमारे लिये इतना स्वाभाविक होगया है, कि अब हम उनकी उपस्थिति और आक्रमणोंसे अधिक भयभीत नहीं होते।

हानिकारक कीटाणु न केवल वायुमण्डलमें ही हैं, प्रत्युत हमारे व्यवहारके प्रत्येक पदार्थमें पाये जाते हैं। इनकी वृद्धि अनुकूल आहार पानेपर इतनी तीव्रतासे होती है कि कुछ घण्टों अथवा कुछ दिनोंके अन्तर पर ही एक-एक कीटाणुमें अच्छा खासा एक साम्राज्य बन जाता है। हम इस लेखमें कुछ ऐसे साधनोंका उल्लेख करेंगे जिनमें इन कीटाणुओंके प्रभावसे बचा जा सकता है। इन साधनोंके उपयोगसे या तो कीटाणु बहुत कुछ मर जाते हैं, या निश्चेष्ट पड़ जाते हैं।

कुछ प्राकृतिक साधन

प्रकृतिने हमें इन कीटाणुओंसे बचनेके स्वयं कुछ साधन दिये हैं। निस्सन्देह इन सबमें श्रेष्ठतम साधन सूर्य का प्रकाश है। भारतके समान उष्ण प्रदेशोंमें सूर्य्यका समुचित प्रकाश प्राप्य है, अतः बहुतसे रोगोंके कीटाणु स्वयं मर जाते हैं। सूर्यके प्रकाशकी पराकासनी किरणें इस काममें अधिक सहायक होती हैं।

सूर्यसे प्रकाशके अतिरिक्त गरमी भी मिलती है। रोगाणु विशिष्ट तापक्रमकी सीमाके अन्दर ही अपना अपना प्रभाव दिखाते हैं, और ज्यों ज्यों तापक्रम बढ़ता जाता है उनकी उग्र चेष्टाएं मन्द पड़ती जाती हैं। गरमीकी ऋतुमें दोपहरको बाहरका तापक्रम कभी कभी ६०°श तक हो जाता है, अतः गरमीमें ये रोगाणु बहुतसे मर जाते हैं। अतः गरमीका अधिक पड़ना हमारे लिये एक अच्छी ही बात है।

प्रकाश और गरमीके अतिरिक्त अधिक शीत भी कीटाणुओंके निश्चेष्ट करनेमें सहायक होती है। यह कहना तो कठिन है कि अधिक शीत पड़नेपर कीटाणु नितान्त मर जाते हैं। पर यह बात तो अवश्य है, कि उनकी चेष्टाएं बहुत ही क्षीण पड़ जाती हैं। उनकी प्रजनन शक्तिका ह्रास होजाता है, और इस प्रकार उनकी मात्रा बढ़ने नहीं पाती। अतः जिन शीत प्रदेशोंमें बर्फ बहुत पड़ती है, अथवा कड़ाका जाड़ा पड़ता है, वहां भी वातावरण रोगाणुओंसे मुक्त रहता है। जिस प्रकारका जाड़ा हमारे संयुक्त प्रदेशमें माघ-पौषमें होता है उसमें भी कीटाणुओंकी निश्चेष्ट कर देनेकी समुचित शक्ति विद्यमान है। हमारे यहां गरमी भी उपयोगी है और जाड़ा भी, पर रोगाणुओंकी दृष्टिसे बरसात सबसे बुरी है, क्योंकि बादलोंकी विद्यमानतामें न तो सूर्यका प्रकाश ही मिलता है, और न गरमी ही। शीत भी विशेष नहीं होता है। साथही साथ इस ऋतुमें तरह तरहके कीटाणु अधिकाधिक संख्यामें उत्पन्न होजाते हैं।

प्राचीन साधन

भारतवर्षमें वायुकी शुद्धिका अति प्रसिद्ध साधन हवन या यज्ञ करना था। यज्ञमें घृतके अतिरिक्त चन्दन, अगर, तगर, बालछड़, नागरमोथा, गूगुल आदि अनेक पदार्थ ऐसे

डाले जाते थे जो जलनेपर ऐसी गैसें देते हैं जिनसे दूषित कीटाणुओंके नाश होनेकी बहुत सम्भावना है।

गन्धकका जलाना भी उपयोगी समझा गया है। हिप्पोक्रेटीज़के समयमें प्लेगके प्रभावको दूर करनेके लिये गन्धक जलाया जाता था। जहां चीड़ या देवदारके वृक्ष होते हैं वहांके वायुमण्डलमें तारपीनके अंश पाये जाते हैं जो वायुके ओषजनसे ओषदीकृत फिर ऐसे पदार्थ देते हैं जो विषाणुनाशक हैं। पुराने समयमें लोहबान जलाकर भी हवाको शुद्ध रखा जाता था।

पानीकी शुद्धिके लिये सुश्रुतमें तांबेके उपयोगका उल्लेख है। तांबेके बर्तनोंमें पानी भरकर धूपमें रखनेका विधान है। अथर्ववेदमें तांबेको गरम करके पानीमें बुझानेका वर्णन आता है जिससे कि दूषित जल पवित्र होजाता है।

वायुकी शुद्धि

प्रकृतिमें वायुकी शुद्धि प्रकाश द्वारा तो होती ही है, इसके अतिरिक्त और साधन ये हैं-(१) ओषोन (ozone) और उद्जन परौषिद वायुमंडलमें स्वतः विद्यमान होते हैं। (२) नगरोंके वातावरणमें अम्लोंकी बाष्पें होती हैं जो कि कारखानोंके धुओंके साथ निकला करती हैं। ये भी विषाणु-नाशक हैं। (३) पिपीलमद्यानार्द्र या फारमलडीहाइड की बाष्पें भी हवामें होती है। यह पदार्थ हवामें स्थित जलकण और कर्बनद्विओषिद्के संसर्गसे सूर्यके प्रकाशकी विद्यमानता में बनता रहता है।

वायुकी शुद्धिके लिये आजकल निम्न रासायनिक पदार्थ प्रयोग में लाये जाते हैं।

(१) **फारमलडीहाइड**—इसके घोल बाजारमें "फारमेलिन" नाम से बिकते हैं। बोतलकी डाट खोलने पर आंख और नाकमें जलन पैदा करनेवाली तीव्र गन्ध निकलने लगती है। इसी फारमलडीहाइडको जमानेसे पैरा-फारमलडीहाइड बनता है जो कि ठोस होता है और पोटाश परमांगनेत (पांशुज परमांगलेत) के साथ फारमलडी-हाइड की बाष्पें देता है। इसकी बहुत थोड़ी मात्रासे ही विषाणु तीव्रतासे मारे जा सकते हैं। इसकी बाष्पोंको वायुमें फैलानेके लिये अनेक प्रकारके यंत्र भी आते हैं जैसी अगर बत्ती" बनती हैं, उसी प्रकार पैरा फारमलडीहाइड और पोटासपरमांगनेतके मिश्रणकीभी बनाई जासकती है जिसके जलानेसे फारमलडीहाइडकी बाष्पें निकलेंगी। बाष्पोंको निकालनेके लिये निम्न मिश्रणोंके नुसखे दिये जाते हैं:—

(१) फारमेलिन—		१ पैण्ट
पोटाश परमांननेत—		०-५ पौण्ड
(२) फारमेलिन	—	१ पैण्ट
सोडा क्लोरेट	—	६ आउन्स
(३) फारमेलिन	—	१ पैण्ट
ब्लीचिंग पाउडर	—	५/६ पौंड
(हरिन् संयुक्त चूना)		
(४) फारमेलिन	—	१ पैण्ट
सोडा डाइक्रोमेट	—	१० आउन्स
गन्धकाम्ल	—	१ १/६ द्रव आउन्स
ग्लैसरीन	—	१ १/६ द्रव आउन्स

गन्धक द्विओषिद्—विलायतमें कमरोंकी दूषित वायुको शुद्ध करनेके लिये जलते हुए गन्धककी वाष्पोंका बहुत उपयोग किया जाता है। कमरेको बन्द कर दिया जाता है और ६ घंटेतक बाष्पोंके प्रभावमें रखते हैं। एक साधारण कमरेके (लिये १०′ × १०′ × १०′ के लगभग) तीन पाव गन्धक तक जलाया जाता है। यूरोपके भिन्न-भिन्न देशोंमें इसकी अलग-अलग मात्रायें निश्चित की गयी हैं, हमारे यहां जहां कमरेका तापक्रम काफी ऊंचा रहता है, एक छोटे कमरेको पूर्ण पवित्र करनेके लिये पावभर गन्धक का जलाना काफी होगा। कमरा इस प्रकार बन्द होना चाहिये कि बाष्पें निकलने न पावें। दो घंटेतक कमरा बन्द रहे और बादको छत, दीवार, फर्श आदि पानीसे धो डाले जायं और फिर शुद्ध वायुके लिये दरवाजे खोल दिये जायँ। गन्धककी बनी हुई बत्तियों का भी प्रयोग किया जा सकता है।

हरिन्—(क्लोरीन)—यह नमकके तेजाबको मांग-नीज द्विओषिद्के साथ गरम करके बनायी जा सकती है, इसकी बाष्पोंमें कुछ पीलापन लिये हुए हरा रंग होता है।

"ब्लीचिंग पाउडर" भी जो चूनेको हरिन् गैससे संपृक्त करके बनाये जाते हैं, इस काम आसकते हैं। इस पाउडर से हरिन् निकालनेके लिये कुछ नुसखे यहां दिये जाते हैं–

(१) ५ ग्राम–मांगनीज़ द्विओषिद, २० ग्राम–नमकका तेजाब } १ लीटर हरिन्‌गैस

(एक बड़े कमरेके लिये १/२ औन्स मांगनीज द्विओषिद काफ़ी हैं।)

(२) १ भाग ब्लीचिंग पौडर

२ भाग गन्धकाम्ल (१·५३ घनत्व)

समुचित मात्रा पानीकी जिससे कि पौडर डूबा रहे।

(३) ६०० ग्राम पोटाशडाइक्रोमेट

३००० ग्राम नमकका तेज़ाब (१·१६ घनत्व)

इतनेसे १३०·६ लीटर हरिन् गैस निकलेगी

हरिन्‌का पूर्ण प्रभाव जलकण और प्रकाशकी विद्यमानतामें ही होता है, अतः कमरेको पहले पानीसे धो लेना चाहिये, और किसी कांचकी खिड़कीसे धूप अन्दर आसके तो और भी अच्छा है।

भोजनकी विषाणुओंसे रक्षा

भोजनके दूषित होनेके कारण ये हैं (१) ओषिदीकरण या अवकरणकी प्रक्रियायें। ओषिदीकरण तो वायुके ओषजनसे होता है, और अवकरण बर्तनकी धातुसे। (२) तांबेके बर्तनोंमें अम्ल-भोजन बहुत शीघ्र खराब होजाता है। तांबा भोजनके लिये दूषित धातु है। लकड़ी, पत्थर, कांच या लोहेके बर्तन इस कामके लिये बहुत उपयोगी हैं। (३) कीटाणुओंके प्रभावसे खाना सड़ने लगता है। हवाके प्रभावसे ये कीटाणु भोजनमें प्रविष्ट होजाते हैं और फफूंदी लगने लगती है सड़ाँद आने लगती है। हवाके इस प्रभावसे बचनेके लिये बहुधा ऐसे बर्तनोंमें भोजन रखनेकी प्रथा है जिनमेंसे हवा और धूलके कण निकाल लिये गये हों। पर हवा निकालनेसे पूर्व भोजनमें स्थित कीटाणु भी मार डालने चाहिये।

मांसाहारियोंको सड़े हुए मांससे बहुत बचनेकी आवश्यकता है। सड़े हुए शाकाहारी भोजन इतना विषैला नहीं होता है, जितना कि सड़ा हुआ मांस। ८५° श तक गरम करनेसे विषाणुओंके मरनेकी बहुत संभावना है।

भोजनको सड़नेसे बचानेके निम्न साधन हैं––

(क) नमकका प्रयोग––नमककी बहुतसी मात्रा मिलानेसे सड़न नहीं पैदा होती। मांस–मछलीकी रक्षा इस प्रकार की जाती है।

(ख) तैलका प्रयोग––तैलमें अचार डालनेकी प्रथा इस देशमें बहुत है, और तैलमें पड़े हुए अचार बहुत दिनों सुरक्षित रह सकते हैं। रोटीकी अपेक्षा तैल या घीमें सिकी पूरियां अधिक दिनों तक खायी जा सकती है।

(ग) शक्करका प्रयोग––चीनी या शक्करमें सुरक्षित रखनेका गुण बहुत है। मुरब्बे इसीके कारण वर्षों सुरक्षित रखे जा सकते हैं। गुलकन्दके समान ओषधियां भी इसी लिये सुरक्षित रहती हैं।

(घ) शीतका प्रयोग–भोज्य पदार्थोंको बर्फमें ठण्डा रखनेसे भी सड़न नहीं पैदा होती है। जहाज़ पर भोजन इस विधिसे सुरक्षित रखा जाता है।

(ङ) गरमीका प्रयोग––भोजनको गरम करनेसे भी सड़नसे बचाया जा सकता है। बासी भोजनको एक बार फिर गरम कर लेनेसे ताज़गी आजाती है और विषाणु नष्ट हो जाते हैं। गरमीके कारण ही खूब भुनी हुई खोयेकी मिठाइयां महीनों सुरक्षित रखी जा सकती हैं।

(च) खुली वायुऔर प्रकाशका प्रयोग––बरसातके दिनोंमें बन्द भोजनमें उमस आ जाती है, अतः अचार मुरब्बे आदिके बर्तनोंको खुली हवामें धूपमें कभी कभी रख देना चाहिये। इस प्रकार भोज्यपदार्थ सड़नेसे बचे रहेंगे।

सड़नसे बचानेके लिये कुछ रासायनिक पदार्थोंका भी प्रयोग किया जाता है जैसे––

(१) **बोरिक एसिड** (टंकिकाम्ल)–यह सफेद चूर्ण ३० भाग पानीमें १ भाग घुलनशील है। यह बहुत क्षीणअम्ल है, और इसमें न तो कोई स्वाद होता है, और धातुओंपर इसका प्रभाव भी नहीं पड़ता है। फलोंमें बोरिक एजिड वैसेही पाया जाता है, जैसा कि निम्न अङ्कोंसे स्पष्ट है।

फल	बोरिक अम्ल
सेब	·००९ – ०·०१३ प्रतिशत
नासपाती	·०१ प्रतिशत
अनार	·००५ प्रतिशत
अंगूर	·००४ प्रतिशत

(२) **फारमेलिन**—इसके २ प्रतिशत घोलमें फलों को १० मिनट पड़े रहने देनेसे फल इस योग्य हो जाते हैं, कि सड़नेसे बहुत कुछ बचे रहें। यदि फलोंको कई दिन रखना हो, तो फारमेलिनके घोलमेंसे बाहर निकालकर बिना धोये ही फलको सूखने देना चाहिये।

(३) **बानजोइक एसिड**–मुरब्बे और चटनियोंमें ०·१२५ प्रतिशत बानज़ोइक एसिड मिला देना बहुत उपयोगी है, और इसकी विद्यमानतामें पदार्थ १०–१५ दिन सुरक्षित रखे जा सकते हैं।

पानीकी शुद्धि

पानी साधारणतः छानकर साफ़ कर लिया जाता है। कोयला और बालूकी तहोंमेंसे रिसकर छना हुआ पानी बहुत कुछ शुद्ध होता है। बालूमें नोषदीकारक कीटाणु भी होते हैं, ये कीटाणु पानीके दूषित जीवाणुओंको नष्ट कर देते हैं इसलिये इसलिये बालू न केवल छाननेका ही काम करती है, प्रत्युत और भी तरहकी सफाई कर देती है।

पानीकी शुद्धिका सबसे अच्छा उपाय यह है कि इसको उबाल लिया जाय और फिर ठण्डा करके पिया जाय। सूर्य्य का प्रकाश भी पानीको स्वच्छ बनाये रखता है। कुँएका गन्दा पानी पोटाश परमांगनेत (लाल दवाई) डालकर दो तीन दिनमें शुद्ध कर लिया जा सकता है। इसके अतिरिक्त चूना, लोहेके लवण, कार्बनिकाम्ल, सोडा अलूमिनेट आदि पदार्थ भी पानीके दोषोंको दूर करनेमें कुछ समर्थ हैं। ओज़ोनके प्रयोगसे भी पानीकी शुद्धि की जाती है। १ लाख भाग पानीमें ३ भाग सैन्धक दाहक क्षार (कास्टिक सोडा) और ३ भाग सोडियम परोक्साइड (सैन्धक परौषिद) मिला देनेसे जीवाणु शीघ्र मर जाते हैं और पानी शुद्ध हो जाता है। टाइफायड कीटाणुओंको मारनेके लिये २००० भाग जलमें १ भाग कैल्शम परौक्साइड जो 'बाइकैलज़िट' नामसे बिकता है, काममें लाना चाहिये।

नलका पानी हरिन् गैस (क्लोरिन) द्वारा बहुधा शुद्ध किया जाता है। यह गैस तीन प्रकारसे उपयोगमें आती है। एक तो ब्लीचिंग पाउडरके रूपमें, दूसरे सोडियम हाइपोक्लोराइटके रूपमें और तीसरे क्लोरीन गैसके रूपमें। क्लोरीनपरौक्साइड जो पोटाश क्लोरेट और गन्धकाम्ल के प्रभावसे बनती है, पानीके विषोंका बड़ी उग्रतासे नष्ट कर देती है। तांबेकी थोड़ीसे मात्रा पानीके रोगाणुओंको नष्ट करनेमें समर्थ है।

पानीमें थोड़ासा अम्ल डाल देना भी बहुत हितकर है। कास्टिक चूना टाइफायड के रोगाणुओंको शीघ्रतासे मार डालता है।

कमरोंकी सफाई

कमरोंकी सफाईके लिये नित्य झाड़ देना, और दीवार के कोनोंका दरवाज़ोंके पल्लोंके पीछेका और छतकी धन्नियोंका जाला दूर करना तो आवश्यक ही है। फर्श यदि कच्चा है तो गोबरसे लिपाई करना बड़ा उपयोगी है। गोबरमें फारमेल्डीहाइड (पिपीलमद्यानार्द्र) होता है जो विषाणुनाशक है, और इसीलिये गोबरसे लिपे स्थान पर मक्खियां भी कम बैठती हैं।

कमरेकी दीवारें चूनेसे पोता जाना हितकर है, यद्यपि साधारण पोतामिट्टीसे भी पुताई की जा सकती है। इसमें थोड़ा चूना मिला लिया जाय तो और अच्छा होगा। गोबर भी मिला लेना बुरा नहीं हैं, तूतिया, कसीस, नीमकी छालका अर्क या पारदिक हरिद (मरक्यूरिक-क्लोराइड) की थोड़ी सी मात्रा मिलाना बहुत लाभकर है।

पक्के चिकने फर्शोंको धोनेके लिये ऐसा साबुन जिसमें बहुतसा कार्बोलिक एसिड पड़ा है बहुत उपयोगी है। फिनायलका कोल जो सधारणतः बाज़ारमें मिलता है फर्श दीवारों के धोनेके लिये अच्छा है।

कमरेके अन्दरकी वायुको बाहरके विषाणुओंसे रक्षा करना भी बड़ा आवश्यक है, विशेषकर तब जब कि कमरे में किसी रोगीका आवास हो, दरवाजे पर थोड़ा सा चूना डाला जा सकता है, जिस परसे चलनेपर जूतोंके विषाणु दूर हो जायंगे। कमरेकी दीवालपर विषाणु-शोषक कागज चिपकाये जा सकते हैं। विलायतमें ऐसे कागज़ बनाते समय लुग्दीमें ही पारदिक हरिद [मरक्यूरिक क्लोराइड]

मिला दिया जाता है। यह पदार्थ बहुत ही डबल विष है। रिसार्सिनोल या, सैलिसिलिक एसिडके घोलोंमें सोखता कागज़ भिगोकर दीवारपर लटकाये जा सकते हैं। प्लेगके बीमारोंके कमरोंके फर्श तो मरक्यूरिकक्लोराइडके हलके घोलमें अवश्य धोने चाहिये। तूतियाका घोल भी बुरा नहीं है। जिन घरोंमें गोबरकी लिपाई हो, उनमें मरक्यूरिक-क्लोराइडके साथ बहुतसा अम्ल भी डाल देना चाहिये क्योंकि गोबरमें क्षारीय पदार्थ होते हैं जो उक्त पदार्थके प्रभावको दूर कर देते हैं। भारतवर्षके कच्चे फर्शोंके लिये प्लेगके दिनोंमें रोजरके अनुसार ये घोल उपयोगी हैं— (१) पचास भाग पानीमें एक भाग कार्बोलिक एसिड (२) ५०० भाग पानी में १ भाग मरक्यूरिकक्लोराइड, जिसमें थोड़ासा नमकका तेज़ाब भी मिला दिया गया हो।

मेज़, कुर्सी, अलमारी आदि वस्तुयें भी १०० भाग पानीमें १ भाग मरक्यूरिकक्लोराइडके घोलसे या २½ प्रतिशत फारमेलिनके घोलसे धोनी चाहियें (धोते समय हाथोंकी रक्षा करनी चाहिये)। इन वस्तुओंपर मोम (मधुमक्खीका) या तारपीनके तैलकी वार्निश बहुत अच्छी होती है।

यह कहनेकी आवश्यकता नहीं है कि शुद्ध वायु और धूप ये दो चीज़ें तो कमरेकी सफ़ाईके लिये बहुत ही आवश्यक हों।

विषाणुओंसे बचनेके लिये घरमें निम्न पदार्थ होने चाहिये—

(१) पोटाश परमांगनेत

(२) चूना या ब्लीचिंग पाउडर

(३) तूतिया

(४) फारमेलिन

(५) फिनायल या लायसोल (क्रीसोल या क्रिओसोट तैल और साबुनका मिश्रण)

(६) बोरिक एसिड

(७) पारदिक हरिद (मरक्यूरिकक्लोराइड)

अष्टपादोंसे मुठभेड़

[डा० गोरखप्रसाद, डी० एस-सी०]

मेरी पहली डुबकी कैसी रोमांचकारी थी! मेरे लिये सबसे आश्चर्यजनक बात वहाँकी पूर्ण निःशब्दता थी। गहरे समुद्रके विचित्र तलपर इतना सन्नाटा रहता है कि भय लगता है। पहली बार डुबकी लगानेपर समुद्रके भीतर रहनेवाले अनेक विचित्र और अद्भुत निवासियोंने मुझे घेर कर स्वागत किया। वे मुझसे डरते नहीं थे, परन्तु यही जान पड़ता था कि वे बेचारे मुझे भी एक मछली समझते थे।

पत्थरोंके अंधेरे कोनों—अंतरोंमेंसे केकड़े और झींगे आंख फाड़कर मेरी ओर देख रहे थे। प्रकाश वहाँ बहुत मंद और हरा-हरा था। छोटी छोटी मछलियोंका एक समूह चांदीके समान चमकते बादल की तरह हमारे सरके ऊपर तैरता हुआ निकल गया। एक छः फ़ुटी मछली अंधकार से निकल पड़ी और मेरे चारों ओर मंडराने लगी। उसने भी बड़ी-बड़ी आखें निकालकर मुझको देखा और फिर अंधेरे में विलीन हो गयी। मैं उस क्षण एक साथ ही उल्लसित, भयभीत और श्वास रहित हो रहा था। खैर, किसी प्रकार शिक्षककी बातोंमेंसे इतना स्मरण रह गया था कि मैं ऊपर निकल सकूं, और उसी दिनसे मैं समुद्रमें डुबकी लगानेका भक्त हो गया।

उस दिनसे आज तक मैंने सैकड़ों गोते लगा प्रत्येक डुबकीमें नयी-नयी रोमांचकारी घटनाएं हुआ करती हैं। मैं सच कहता हूं कि प्रत्येक डुबकी में मैं कोई-न-कोई नयी बात अवश्य सीखता हूं।

पहली डुबकी मैंने मेक्सिकोके दक्षिणी तटके पास लगायी थी। मेरे शिक्षक जापानी थे। डुबकी लगानेका पहिनावा जो उस समय मैं पहने था वह ऐसे पुराने ज़माने

का था कि मुझे आज भी आश्चर्य होता है कि मैं कैसे जीता-जागता निकल आया। जापानी सारगासाकी खेती करते हैं। उनके खेत समुद्रके पेंदे पर थे। समुद्रमें डुबकी लगाकर वे सचमुच वहां जोतते-बोते हैं। परंतु डुबकी लगानेका यंत्र उनका सन् १९०५के ज़मानेका है। उनकी फसल सारगासा नामक समुद्री पौधेकी होती है। यह पौधा दवाके काममें आता है और इसका दाम भी खूब मिलता है। 'अगर-अगर' नामक सुगंध भी इसीसे निकाला जाता है।

समुद्रकी नालीको तैयार करनेमें और वहांसे जंगली पौधोंको जड़से खोदकर निकाल फेंकनेमें चारसे नौ वर्ष तक लगता है। तब कहीं सारगासाकी अच्छी फसल तैयार होती है। जापानी लोग सारगासाको सुखाकर, मशीनमें उसे दबाकर बड़े-बड़े गट्ठर बनाते हैं और तब जापान भेज देते हैं। एक बार जब सारगासाकी फ़सल समुद्रतलमें जड़ पकड़ लेती है तब वह बराबर उगता रहता है और प्रत्येक अच्छा गोताखोर ढाई सौ से लेकर एक हजार रूपयेका माल एक दिनमें बटोर लाता है। उनकी इतनी आमदनी उचित ही है क्योंकि मृत्युसे उनकी भयानक मुठभेड़ अकसर ही हुआ करती है।

ऐसी कठिन पाठशालामें मुझे गहरे समुद्रकी गोताखोरीका जान-जोखिम काम सीखना पड़ा। परंतु जापानी बड़े अच्छे शिक्षक होते हैं और मैंने उनसे कई भेद सीखे जिनसे पीछे मेरी जान कई बार बच गयी। मैंने डुबकी लगाना इसलिये सीखा, कि मैं देखूं कि समुद्रकी तलीपर सिनेमा खींचना संभव होगा या नहीं। नहीं, तो स्टूडियोमें टंकी बनाकर उसमें सिनेमा खींचना पड़ता परंतु तब चित्र इतना स्वाभाविक न बन सकता। अन्तमें यही निश्चय हुआ कि समुद्रकी तलीपर जाकर सिनेमा खींचा जा सकता है। तबसे आजतक मैंने कई एक चित्र गहरे समुद्रके भी तैयार किये हैं। समुद्रके भीतर खींचे गये चित्रोंकी बात ही कुछ और है। वहां कई एक घटनायें ऐसी घटित होती हैं, जिन्हें देखकर रोंगटे खड़े हो जाते हैं।

मेरे नाविकोंमें से चार जवान अब डुब्बी लगानेमें उस्ताद हो गये हैं। अब भी जब हम सबको अपनी पहली डुब्बीका ख्याल आता है तो रोंगटे खड़े हो जाते हैं। कैसा पुराना सामान पहनकर हमलोगोंने वह डुब्बी लगायी थी? अभी हालमें जब मैं उधर गुज़रा तब देखा कि वहांके छोटेसे जापानी क़ब्रिस्तानमें बाइस कब्रें थीं। जब मैंने डुब्बी सीखना आरम्भ किया था तब वहाँ केवल नौ कब्रें थीं। परन्तु जापानी अब भी वही पुरानी चालकी पोशाक पहिन कर डुब्बी लगाते हैं। पूछनेसे पता चला है, कि इन जवानों मेंसे अधिकांशकी जान घासमें फँस जानेके कारण गयी है। जब ऊपरसे उनको खींचा गया तो रस्सी टूट गयी और सदाके लिये उनका निवास समुद्र ही हो गया। मैंटा नामक मछलियाँ भी वेही जो देखनेमें दैत्याकार चिमगादड़ोंकी तरह होती हैं—उधर बहुत पायी जाती हैं। कुछ रस्सियोंको तो इन मछलियोंने तोड़ दिया होगा। डुब्बी लगाना कोई खेल नहीं है। हमलोगोंको यह बला अपने सरपर इसलिये लेनी पड़ती है कि जनता असली चित्र चाहती है।

सैकड़ों बार मुझसे पूछा गया है "यदि कहीं समुद्र-तल पर आपकी अष्टपादसे मुठभेड़ हो जाय तो आप क्या करेंगे? हो जायकी क्या बात, कई बार होगया है। ऐसे अवसरपर मैं पत्थरकी मूर्त्तिकी तरह निश्चल हो खड़ा हो जाता हूँ। साँस रोक लेता हूँ और परमेश्वरपर भरोसा रखता हूँ।

मेरे उस्तादोंने मुझे बार-बार समझाया था, कि जब अष्टपाद तुमको पकड़ ले तो हिलो—डोलो मत। यदि तुम छटपटाओगे तो उसको भी जोश आ जायगा और तुम्हारा सत्यानाश कर डालेगा, परन्तु यदि तुम स्थिर रहोगे तो शायद वह तुमको अपनी एक सूँड़से यहाँ—वहाँ छू—टटोलकर और अपनी जिज्ञासाकी शान्ति कर चला जायगा। इस सलाहने मुझे कई बार पन्द्रह—पन्द्रह और अट्ठारह—अट्ठारह फुटके अष्टपादोंकी भुजाओंमें फँसकर भयानक मृत्यु पानेसे बचाया है। इससे भी बड़े अष्टपाद होते हैं, परन्तु मुझसे उनसे भेंट नहीं हुई है। केवल आठ या नौ फुटके अष्टपादमें भी भयानक बल होता है और यदि एक बार उसे क्रोध आ जाय तो आपका वह भीषण शत्रु हो जायगा। ये दीर्घकाय जन्तु मनुष्यको आसानीसे भक्षण कर सकता है और सब माँस चट कर जानेमें उसे कुल पन्द्रह बीस मिनट लगेंगे।

अष्टपाद अकसर समुद्र तलके चट्टानोंके बीच अँधेरे स्थानोंमें रहते हैं। बड़े अष्टपाद केवल ठंडे समुद्रोंमें पाये जाते हैं। मादा अष्टपाद एकबारमें चालीस या पचास हज़ार

अण्डे देती है। समुद्रतलकी किसी गुफाके मुँहमें अण्डे देकर वह बच्चोंके निकल न आनेतक वहीं पहरा दिया करती है। इसमें करीब पचास दिन लगते हैं। इस समय वह सहज ही में कुपित हो जाती है और जो ही समुद्री-जानवर उधर चला जायगा उसीपर धावा करेगी। इसीलिये उससे सभी जानवर दूर ही रहते हैं। अण्डेसे निकलनेपर अष्टपाद के बच्चे करीब मटरके बराबर होते हैं। उनकी भुजायें उस समय बड़ी छोटी होती हैं और भुजायें ही टाँगका काम करती हैं। इसलिये बच्चे समुद्र तलपर चल नहीं सकते, पानीमें तैर सकते हैं। साधारणतया वे तुरन्त धूपसे गरम हुए ऊपरी जलमें उठ आते हैं। परन्तु शीघ्रही उनको चिड़ियाँ और मछलियाँ हज़ारोंकी संख्यामें हड़प कर जाती हैं। यदि कहीं ऐसा न होता तो समुद्र अष्टपादोंसे ठसाठस भर जाता। बचे-खुचे बच्चे छिछले चट्टानी किनारोंके पास अपना अड्डा जमाते हैं। उनका आहार छोटी छोटी वे मछलियाँ और कीड़े-मकोड़े होते हैं जो जलमें तैरा करते हैं।

जैसे-जैसे वे बड़े होते हैं वैसे-वैसे वे अधिकाधिक गहरे पानीमें चले जाते हैं। सालभर हीमें बढ़कर वे चार-पाँच फुटके हो जाते हैं और तब वे मछलियां खाकर अपना उदर-पोषण करते हैं। जब वे चलते हैं, तब वे अपने आठों भुजाओंसे चलते हैं। तैरनेके लिये वे सिरके नीचे स्थित नलीसे बड़े जोरसे पानी बाहर फेंकते हैं और इस प्रकार वे पीछे मुँह तैरते हैं। बड़े-बड़े अष्टपाद इस रीतिसे इतनी तेजीसे लपकते हैं कि आश्चर्य होता है। प्रत्येक भुजामें १६० से लेकर २४० तक चूसनेके मुँह होते हैं। प्रत्येक मुँहके खिंचावका जोर एक वर्ग इञ्चपर १० सेरका पड़ता है। जब वे किसी शत्रुसे भिड़ते हैं तो तीन या चार भुजाओंके मुँहोंसे चूसकर समुद्रतलकी चट्टानोंको जोरसे पकड़े रहते हैं और शेष भुजाओंसे प्रतिद्वंदीको पकड़ते हैं।

अष्टपादोंका प्रधान शस्त्र उनकी चोंच है। यह सुग्गेकी चोंचकी तरह टेढ़ी होती है और उनके सरके बीच स्थित रहती है। इस चोंचसे बड़े अष्टपाद गोताखोरकी पोशाकको सुगमतासे फाड़ सकते हैं। ऐसे दुश्मनसे बचनेके लिये मनुष्यका सबसे अच्छा शस्त्र तेजाबी तमञ्चा है। इसमें शीशे की नलियोंमें बन्द शोरेका तेजाब भरा रहता है और घोड़ा खींचनेसे तेजाब पानीमें फैल जाता है। जब इस पिस्तौलको अष्टपादके पास चलाया जाता है तब तेजाब पानीमें मिल जाता है। सांस लेतेही यह तेजाबी पानी उसके पेटमें चला जाता है, जिससे अष्टपाद तुरन्त मर जाता है। यह पिस्तौल अभी हालहीमें ईजाद हुआ है। जब मैं मेक्सिकोके तटपर समुद्रके भीतर सिनेमा ले रहा था तब ऐसा पिस्तौल नहीं चला था।

तो भी मेरे जापानी शिक्षकोंने एक बात ऐसी बतलायी थी जिससे काम चल जाता था। यदि अष्टपादको चूसनेके लिये कोई अच्छी सितह न मिले तो वह हार जाता है। जबतक कोई चिकनी ठोस सितह उसे नहीं मिलेगी तब तक वह चूसकर किसी जीवधारीको पकड़ही न सकेगा। साधारणतः अपनी भुजाओंमें लपेटकर वह अपने शत्रुको नहीं पकड़ना चाहता और जब वह जान जाता है कि दुशमन ठीक तरहसे नहीं पकड़ा जा सकता तो उसे छोड़कर चुपकेसे चल देता है। जापानियोंने यह बतलाया कि लोहेके कवच पर बोरेका ओवरकोट पहन लेनेसे अष्टपाद नहीं पकड़ सकेगा और यह बात ठीक निकली।

साधारणतः अष्टपाद बड़ा सङ्कोची और डरपोक होता है। जब वह किसी गोताखोरको पहले पकड़ता है तो केवल यही देखनेके लिये कि यह क्या है। यदि कोई दुर्घटना हो तो इसका कारण यही होता है कि गोताखोर कोई गलत चाल चल पड़ता है। सभी गोताखोर अपने साथ छुरा रखते हैं परन्तु अष्टपादकी भुजाको काटनेकी चेष्टा करना बेवकूफी है क्योंकि छुरा चलातेही वह वार करेगा। गोताखोरों को अष्टपादसे डर इसलिये लगता है, कि वह उनको समुद्र-तलपर पकड़ रख सकता है और गोताखोर लोग अधिक समयतक समुद्रके नीचे नहीं ठहर सकते। गहराईके अनुसार एक नियत समय होता है जिससे अधिक समयतक गोताखोर यदि पानीमें ठहरें तो बड़ी हानि होती है, क्योंकि अधिक दाबके कारण नोषजन गैस उसकी खूनमें भिन जाती है और जब वह बाहर लाया जायगा तो उसे बेहद पीड़ा होगी। उसकी धमनियाँ फट जायगी और वह तुरन्त मर जायगा। इसलिये यदि गोताखोर गहरे पानीमें अधिक समय तक रहे तो उसे कुछ ऊपर आकर पानीमें ही लटका रहना पड़ता है। कुछ समयके बीतनेपर वह थोड़ा और ऊपर आ सकता है। इसी प्रकार उसे धीरेही-धीरे ऊपर आना पड़ता

है और इसमें उसे घन्टों लग जाते हैं।

सबसे रोमाञ्चकारी घटनायें वे होती हैं, जो इतनी अचानक आ जाती हैं कि क्षण भरमें वे घटित हो जाती हैं और पीछे पता चलता है कि कैसी भारी दुर्घटनासे छुटकारा मिला। चार वर्षसे मैं डुब्बी मार रहा हूँ। इतने दिनोंमें केवल एक बार एक अष्टपादसे भिड़न्त हुई थी। कसूर मेरा ही था। बात यह हुई कि मैं काफ़ी देरतक चुप-चाप खड़ा नहीं रहा। इस ग़लतीसे मेरा प्राण प्रायः चला ही गया था। यादद़ाश्तके लिये मैंने उस भुजाको जिसने मुझे यमराजकी तरह पकड़ रक्खा था अब भी बड़े बोतलमें सुरक्षितकर रक्खा है। यह आठ फुट लम्बा है इसलिये वह अष्टपाद कमसे कम १६ फुट का तो जरूर ही होगा।

यह घटना मेक्सिकोके दक्षिणी तटपर हुई थी। हमलोग पनडुब्बी जहाज़की फ़िल्म खींचनेके लिये उपयुक्त स्थान खोज रहे थे। समुद्र वहां ५० फुट गहरा मिला और मैं नीचे देखने उतरा। सोच रहा था कि कहीं किसी पुराने जहाज़का भग्नावशेष मिल जाय तो फिल्ममें जान आ जाय। मुझे चट्टानोंके बीचमें गहरी, काली गुफ़ा मिली और मैंने सोचा कि देखना चाहिये इसमें क्या है। बड़ी सावधानीसे मैं इस गुफामें उतरा। यह लगभग २० फुट गहरी और ४० फुट व्यासकी रही होगी। मैं तलके पास पहुंचा तो मेरा एक पैर एक उभरी हुई चट्टानपर पड़ा। उसीपर मैं खड़ा हो गया। उस अन्धकारमें घूरनेसे मुझे दो बड़े अष्टपाद दिखलाई पड़े। वे इतने बड़े थे कि कुल गुफा उन्हींसे छेंकी हुई दिखलाई पड़ रही थी। पहिली बात तो मुझे यही सूझी कि मैं वहांसे भाग चलूं। परन्तु इस इच्छाको मैंने दबा रक्खा। मैंने निश्चय किया कि भलाई इसीमें है कि पहले स्थिर रहकर पता लगाऊँ कि अष्टपादोंने मुझे देख तो नहीं लिया है।

इस प्रश्नका उत्तर मुझे तुरन्त मिल गया; क्योंकि बड़े अष्टपादने तुरन्त एक भुजा बढ़ाकर मेरा पैर टटोलना आरंभ किया। मैं तो डरके मारे काठ हो गया। अपनी खुली हथेली को बग़लमें दबाकर पूर्णतया स्थिर होकर खड़ा रहा। ग़नीमत हुई कि उस दैत्यने अपनी भुजाओंको मेरे पैरमें लपेट कर मुझे खींच नहीं लिया।

एक या दो मिनट बाद—और इतना समय मुझे पहाड़ ऐसा जान पड़ा—अष्टपाद अपने साथीके पास चला गया। अपने जूतेको चट्टानमें फँसाकर मैंने अपनी पोशाकमें गैस भरली, जिसमें मैं जल्दीसे ऊपर उठ सकूँ। ज्योंही मैं पैर छुड़ाकर ऊपर उठा त्योंही मुझे ख्याल हुआ कि इतना जल्द चल पड़नेमें मैंने अच्छा नहीं किया। बात भी यही ठीक निकली, क्योंकि अष्टपादसे काफ़ी दूर होने नहीं पाया था कि इतनेमें उस शैतानने सड़ाकेसे एक भुजा फैलाकर मेरी टांग पकड़ ही तो ली। कदाचित अभीतक उसका कौतूहल शान्त नहीं हुआ था। सौभाग्यवश वह उस समयतक शायद रोड़ों और टूटे-फूटे पत्थरोंपर बैठा था क्योंकि वह ज़मीन पर चिपक न सका और मेरे साथ ऊपर घसीट आया।

साधारणतः जब अष्टपाद समुद्रतलको नहीं पकड़ सकता तो अपने शिकारको छोड़ देता है। परन्तु इसने हमको नहीं छोड़ा। जबतक मैं सितहपर पहुँचा तबतक मुझसे चिपट गया और थोड़े ही समयमें अपनी बलिष्ट भुजाओंसे हमारी हड्डी-पसली चूर कर देता, परन्तु तबसे मेरे सहकारियोंने उसकी भुजाओंको कुल्हाड़ीसे टुकड़े-टुकड़े काट डाले।

इस स्थानसे जानेके पहले हमको कई एक और भी गुफायें दिखलाई दीं जिनमें बड़े-बड़े अष्टपाद अवश्य रहे होंगे। अबकी साल गरमीमें हमलोग फिर वहीं जानेवाले हैं और निश्चयही अबकी बार तेज़ाबी पिस्तौल, बोरेके ओवर-कोट और अन्य शस्त्र जो कुछ भी उस समयतक आविष्कृत हो सकेंगे, साथ रक्खेंगे। सदा ही हमलोगोंकी इच्छा रही है कि एक बार दैत्याकार अष्टपाद और शार्क मछलीकी असली लड़ाईकी फिल्म लें। कदाचित् शायद इस खोजमें हम सबको बार-बार निराश होना पड़े, तो भी जब यह युद्ध चित्रित करनेका अवसर मिलेगा तब सब परिश्रम सफल हो जायगा। क्या कोई हमारे साथ इस युद्धमें पक्ष बनने चलना चाहता है?

[प्रसिद्ध गोताख़ोर कैप्टेन जॉन डी० क्रेगके एक लेखका स्वतन्त्र अनुवाद]

आग लगानेवालोंके करिश्मे

[श्रीराधेलाल मेहरोत्रा, ऐम० ए०, एल० एल० बी०]

अग्निविभागके जासूसोंकी वैज्ञानिक रीतियां

आग लगजानेके कारणका कैसे पता लगाया जाता है ?

अभी हालमें ही अमरीकाके एक बड़े शहरमें किसी दफ्तरके अन्दर दो व्यक्ति आपसमें बातचीत कर रहे थे। पासही एक दीवारकी आड़में खड़ा हुआ अग्निविभागका जासूस इनकी बातचीत दत्तचित्त हो सुन रहा था। उनमेंसे एक व्यक्ति बोला ',भाई तुम जिस प्रकारकी अग्नि चाहो मैं तैयार कर सकता हूँ। कहो तो गोदामके सारे मालको जला कर राखकी ढेरी लगा दूँ, अथवा बमका गोला बनाकर उससे उड़ा दूँ और यदि तुम्हारी इच्छा हो तो ऐसी अग्नि बनाऊं जिससे केवल धुआंही निकले अथवा लपटसे ही प्रत्येक वस्तुकी सूरत बिगड़ जाय।" जासूसोंने ध्यानपूर्वक इस व्यक्तिकी बातको सुना। इसका तो पेशाही आग लगानेका था। दफ़तरमें बैठे हुए वह गोदामके मालिकसे जो बातें कर रहा था वह गोदाममें आग लगानेके ही सम्बन्धमें थीं जिससे कि गोदामके मालिकको बिना नुकसान हुएही आग बीमेका रुपया मिलजाय। आजकल बीमा किये हुए मकानों में बदमाशीसे आग लगानेकी प्रथा चल पड़ी है और आग लगानेवाले पेशेवर लोग भी हर प्रकारकी अग्नि बनानेका दावा रखते हैं। धुंएदार अग्नि बनानेके लिये वे धीरे-धीरे जलनेवाले रासायनिक पदार्थोंका प्रयोग करते हैं जिसकी गाढ़ी कलौंस आसपासकी वस्तुओंपर जम जाती है और भकभक जलानेके लिये वह ज्वलनशील गैस काममें लाते हैं, जो एकदम तेज़ीके साथ जलकर प्रत्येक वस्तुकी चमक-दमक को खराब कर देती है। ऐसा करनेसे कोई वस्तु जलकर राख तो हो नहीं जाती तो भी वह बिलकुल खराब होजाती है।

बहुधा मनुष्योंका यह ख्याल है कि आगमें पड़कर तो वह वस्तु जिससे आग लगायी जाती है या जिसकी सहायता से आग फैलायी जाती है जलकर निशान भी नहीं छोड़ती फिर जासूस लोग उस वस्तुका कैसे पता लगा लेते होंगे। यह तो ठीक है किन्तु जसूस लोग भी दो चार जले हुए टुकड़ोंकी सहायतासे ही जादूगरोंकी सी करामात कर दिखाते हैं। जलती हुई लकड़ीके टुकड़ोंपर कटनेके जो निशान पड़ जाते हैं उनसे यह अन्दाज़ा लगा लिया जाता है कि लकड़ी किस तापक्रम पर जली है और यह जान लेनेके बाद यह भी सरलतासे निश्चय हो जाता है कि आग लगानेके लिये किसी रासायनिकका प्रयोग तो नहीं किया गया, तब वह बता सकते हैं कि आग किसीने जानबूझकर लगायी है या अचानक आपसे आप लगी है। आमतौरपर यह समझा जाता है कि यदि आग लगानेके लिये ऐसे बमके गोलेका प्रयोग किया जाय जिसमें केवल रासायनिक पदार्थ ही हों तो सारे रासायनिक पदार्थ जलभुनकर गायब हो जायँगे और पता लगानेके लिये निशान भी बाक़ी न रहेगा, परन्तु जब अमरीकाके एक शहर में इस ढंगसे आग लगायी गयी तो जासूसोंने जली हुई लकड़ीमें भी रासायनिक पदार्थोंके छोटे-छोटे कण निकाल कर उस व्यक्तिके आगे रख दिये जिसने रासायनिक पदार्थ खरीदकर बम बनाया था। **यहांतक कि जब कोई अदृश्य** गैस काममें लायी जाती है तब भी तो जासूस लोग जले हुए मकानमेंसे काफ़ी सबूत इकट्ठा करही लेते हैं। दस साल पहले अकेले (Los Angeles) लॉसएन्जिल्स में ही प्रत्येक वर्ष बदमाश लोग ४० करोड़ रुपयेका माल जला दिया करते थे, परन्तु अब अग्निद्वारा एक वर्षमें केवल ४ करोड़ रुपयेकी ही हानि होती है। इसका यही कारण है कि जासूसोंके सरदार पाल वुकको अग्निका कारण जान लेनेकी वैज्ञानिक रीतियां मालूम हैं।

जासूसोंके पास एक औजार तो अणुवीक्षक होता है जिससे वह तसवीर खींचकर यह जान लेते हैं कि किस वस्तु द्वारा आग लगायी गयी थी।

एक समूर बेचनेवाले व्यापारीकी दूकानमें, जिसके थोड़ेसे मालका बीमा हो चुका था, आग लगी। बहुत नुकसान हुआ। श्वेत लोमड़ियोंकी सारी क़ीमती समूरें जलगयीं। जासूसोंको जली हुई दुकानमें कुछ छोटे बाल पड़े हुए मिले। इनकी परीक्षा सूक्ष्मदर्शकद्वारा की गयी। असली

श्वेत खालके बालोंकी यह पहचान है कि सूक्ष्म दर्शकसे देखनेसे वह एक काली रेखाके समान दीख पड़ते हैं और उनके सिरोंपर कुछ सफेदी होती है। परन्तु जो बाल जासूसोंके हाथ लगे थे उनके तो किनारे भी काले ही दिखाई देते थे। इससे तुरन्त पता चलगया कि जिन श्वेत खालोंमें आग लगी थी वह लोमड़ीकी बजाय मामूली खरगोश की खालें थीं और यह साबित होगया कि दुकानदारने दुकान मेंसे लोमड़ीकी क़ीमती खालें निकालकर उनकी जगह खरगोशकी सस्ती खालें रखकर आग लगादी थी ताकि उसको बिना नुक़सान हुए ही बीमा कम्पनीसे मुफ्त रुपया मिल जाय।

कुछ चालाक लोग अपनी तरफसे शक मिटानेके लिये अपने नाम धमकियोंके जाली पत्र बना लेते हैं या यह जाहिर करते हैं कि आग अचानक ही लग गयी है। कभी कभी वह यह दिखानेकी कोशिश करते हैं कि जितना रुपया उनको बीमेका मिलेगा उससे कहीं अधिक रुपयेका नुकसान आगसे हुआ है।

एक दिन जासूसोंके सरदारको एक कपड़ेवाले की दुकानमें जिसमें आग लग गयी थी। तहकीकात करने जाना पड़ा। दुकानदारकी लोहेकी तिजोरीमें बहुतसे ग्राहकोंके आर्डर आये हुए पड़े थे। मालूम होता था कि दुकान बड़े जोरोंसे चल रही थी और नुकशान भी बहुत ही हुआ था। ग्राहकोंके जो आर्डर आये हुए थे इनमें कोई भी झूठा या जाली नहीं था परन्तु जासूसोंको पता चला कि इतनी मांगें आनेका कारण यह था कि दुकानदार एक तिहाई दामपर माल देनेको राजी हो गया था, यदि इस भावसे बेचता तो यों भी नुक़सानमें ही रहता।

कभी-कभी ऐसी आग लगायी जाती है जिसमें एक प्रकारकी चोरी सम्मिलित है—इसमें सरासर बदमाशी होती है। दुकानदार थोड़ा सा माल दुकानमेंसे निकालकर अलग कर देता है। फिर कुछ दिया सलाईकी सींकें इधर उधर बखेरकर आग लगा देता है। जब आग भड़क जाती है तो अग्नि विभागको सूचना दीजाती है। आग बुझाने वाले आकर आग बुझा देते हैं और सारी दुकान जलने नहीं पाती। तब दुकानदार यह कहता है कि दुकानमें से थोड़ा सामान भी गायब होगया है। इसके अतिरिक्त दिया सलाई की सींके जो डाल दी थीं पड़ी मिल जाती हैं। इन दो बातों के होनेसे यह सन्देह पैदा होजाता है कि किसी चोरने आग लगायी होगी। परन्तु जासूस लोग इस चालाकीका पता लगा लेते हैं।

सचमुच तो आग बहुत कम लगती है। इसलिये कारणका पता लगा लेना कोई मुशकिल काम नहीं है। एक दफा एक बदमाशने एक मकानके पीछेकी खिड़कीकी जाली चाकूसे काट डाली और उसकी राहसे आदमी अन्दर घुसाकर आग लगादी गयी। पॉलवुल्फ़ने उस व्यक्तिसे चाकू मांग लिया और सूक्ष्मदर्शक (Microscope) द्वारा उसकी जांच की। अभीतक चाकूके फलपर जालीके लोहे और सीसेके बारीक-बारीक कण चिपटे हुए थे। पता चल गया। कभी कभी आग लगाने वाले बड़ी चालाकीसे काम लेते हैं। वह ऐसा षड्यंत्र रचते हैं जिससे यह जान पड़े कि उनका स्वयम् आग लगाना असम्भव था। गतवर्ष एक स्त्रीके मकानमें आग लगी। उस स्त्रीने कहा कि एक चोरने उसके हाथपैर बांधकर डाल दिया और मकानमें आग लगा दी। जासूसोंके सरदारने देखा कि उस स्त्रीके पांवमें बूट जूते कसकर बंधे हुए थे जिनको वह हाथ पांव बंध जानेके बाद नहीं पहन सकती थी। फिर पूछनेपर उस स्त्रीने बताया कि चोरने जेबमेंसे कपड़ा निकालकर हाथ पांव बांधे थे। परन्तु देखनेसे जासूसोंको पता लगा कि जिस कपड़ेसे हाथ पैर बंधे हुए थे उसपर उसी स्त्रीके धोबीके यहांका निशान पड़ा हुआ था। बात असल यह थी कि स्वयम् उसीने आग लगायी थी और आग लगाकर वह बाहर चली गयी थी। वहां उसीके एक साथीने हाथ पांव बांध दिये थे।

अग्नि प्रकोपकी एक घटनामें तो जासूसोंको बड़ी कठिनाई पेश आयी। एक रातको जब कि एक घरके सारे निवासी कहीं बाहर गये हुए थे यकाएक घरमें आग लगी और सारा घर जल गया।

अंगोठीमें थोड़ी सी आग रह गयी थी और यह तो प्रत्यक्ष ही था कि उसीके द्वारा आग लगी थी। परन्तु एक कमरेके बीचमें एक जासूसको लकड़ीकी एक गांठ दिखाई पड़ी जो जलकर कोयला हो गयी थी उसमें कई हाथ लम्बा

तार बंधा हुआ था। इस जरासे अतोगतेसे ही एक पेचीदा चालाकीका भेद खुल गया। इसने पता लगाया कि घरका कुत्ता रहनेवाले कमरेमें ही एक सन्दूकमें पड़ा रहता था और कुत्तेको यह शिक्षा दी गयी थी कि जब वह सन्दूकसे बाहर निकले तो एक नीची बंधी हुई डोरीपर छलांग मार कर निकले। जिस रातको आग लगी थी उस जगहपर एक मोटी डोरी बांधी गयी थी—डोरी के एक सिरे में तार बांधकर उसको अंगीठीके पास एक जलती हुई लकड़ीमें बांध दिया गया था। जब कुत्ता डोरीपर छलांग मारकर निकला तो डोरी पांवमें हिलगकर खिंच गयी। चूल्हेमें से लकड़ी निकलकर पास ही पड़े हुए ज्वलनशील पदार्थोंपर जा पड़ी और कमरेमें आग लग गयी।

कभी-कभी अग्नि-विभागके जासूस ऐसे मनुष्यको जिस पर भारी सन्देह हो निर्दोष साबित कर देते हैं। कुछ किसानों ने एक दफा जासूसोंके सरदार बुल्फसे प्रार्थना की कि वह एक मकानमें आग लगजानेकी जहां नाज भरा हुआ था जांच करें। आगमें जई, मोथी और गेहूं जल गये थे। उनका संदेह गोदामके मैनेजरपर था। वह कहते थे कि मैनेजर माल निकालकर ले गया है और उसीने चोरीको छिपानेके लिये आग लगा दी होगी। इस सन्देहका मुख्य कारण यह था कि गोदाममें आग बुझनेके बाद राखकी ढेरी ज़रासी ही रह गयी थी। बुल्फने कुछ नाज उसी प्रकार का लेकर जलाकर देखा और इसीसे मैनेजर निर्दोष साबित हो गया। थोड़ी राख रहनेका कारण यह था कि मोथी जलनेपर तीन चौथाई नष्ट हो जाती है और जई सैकड़ा पीछे चालीस भाग। एक मकानमें आग लगी। मालूम पड़ता था कि मालिकने ही लगायी होगी। मकान ऐसा उड़ गया था मानो बमके गोलेसे आग लगायी हो। मकान का खासा बीमा भी कराया हुआ था। किन्तु बुल्फने मामलेकी जांच करनेके बाद मालिक मकानको तो गिरफ्तार नहीं किया। हां, गैसकी कम्पनीको लिखा कि वह अपने गैसके नलोंकी मरम्मत कराये। मकान एक चट्टानपर बना हुआ था और आग बुझनेके बाद बुल्फने देखा कि चट्टानमें से गैस निकल रही है। बात यह थी कि कुछ दूरीपर नलोंमेंसे गैस उड़ रही थी जो कि चट्टानों तक आ रही थी और जब काफी गैस इकट्ठी हो चुकी थी, तब आग लग पड़ी थी।

जासूस लोग ऐसी अग्निका भी कारण निकाल लेते हैं जिसका आम तौरपर न कोई लगानेवाला होता है न कोई प्रत्यक्ष कारण ही जान पड़ता है। यों तो बिना कारण आग लग ही कैसे सकती है, फिर भी एक बार जांच करने वाले चक्करमें आगये। एक दोहरी दीवारके पीछे जिसके दरवाजे मुहर बन्द थे, आग आपसे आप लग गयी और सब हैरान थे कि कैसे लगी। बुल्फने देखा कि दीवारपर एक हजामत बनानेका आतशी शीशा लटक रहा है उन्होंने सोचा कि आग का यही कारण हो सकता है। फिर उन्होंने उस शीशेपर सूर्यकी किरणें डालकर देखा तो मालूम हुआ कि उससे दीवारका चूना तो जलता नहीं है, परन्तु दीवारके पीछे लगी हुई लकड़ीकी दीवारपर उसकी तापका इतना प्रभाव पड़ा कि वह एकदम भभक उठी और उसमें से आगकी लपटें निकलने लगीं। समस्या हल होगयी।

दूसरी बार कुछ रेशमी पर्दोंमें आग लग गयी जिसका कोई प्रत्यक्ष कारण न था। जासूसोंने पता लगा लिया कि असलमें आग लगनेका कारण आग बुझानेवाली मशीन ही थी। वह शीशेकी बनी हुई थी। उसके अन्दर आग बुझानेका मसाला भरा था और वह एक दीवारपर लटक रही थी। सूर्यकी किरणोंसे उस शीशेमें ताप इकट्ठा हो गया था और जैसे आतशी शीशेसे लकड़ी जल गयी थी वैसे ही इससे पर्दे जल उठे थे। कभी-कभी तो गोदामोंमें जो शीशेकी बोतलें और शीशियां आलमारियोंमें रखी होती हैं उन्हींके द्वारा गोदाममें आग लग जाती है।

[पॉपुलर मेकैनिक्सके एक लेखके आधारपर]

बाल-शिक्षणका सच्चा मार्ग

[पं० रामावतार शर्म्मा विद्याभास्कर, रतनगढ़, बिजनौर]

१—शिक्षामें क्रान्तिकी आवश्यकता

बच्चोंको आज़ाद बनाना ही भारतको स्वाधीन करना है आज-कल बच्चोंके दिलोंमें दासताका ज़हरीला बीज बोया जा रहा है। उसे फ़ौरन ही रोक देना चाहिये। रोटी कमानेको ही जीवनका उद्देश्य समझना गुलामीका बीज है।

बच्चेको होश आतेही उसके माता-पिता जल्दीसे-जल्दी रोटी कमानेकी फ़िक्र पैदा करनेके लिये बेचैन हो जाते हैं। इसी ख़यालसे उसे लिखना-पढ़ना सिखानेकी कोशिश करते हैं। यह शिक्षा नहीं है, धोखा है। इस धोखेमें आकर धनी लोग काफ़ी रुपया खर्च करके अपने बच्चोंके दिमागमें जबर-दस्ती किताबोंका निकम्मा बोझ लाद देते हैं और गरीब ठीक उनकी नक़ल करनेकी कोशिशमें बरबाद हो जाते हैं। बचपन में विचारशीलता और ऊँची भावना पैदा करना ही शिक्षा का लक्ष्य है। हिन्दुस्तानकी वर्तमान गिरी हालतमें बच्चोंमें सच्ची शिक्षाकी अत्यन्त आवश्यकता है।

२—शिक्षाका उद्देश्य

मनुष्यत्वका विकास करनाही शिक्षाका उद्देश्य है। रोटी कमाना शिक्षाका कदापि लक्ष्य नहीं। प्राणीमात्र शरीर मन और बुद्धि—इन तीन चीजोंको लेकर उत्पन्न होते हैं। संसारके सभी प्राणी सुख चाहते हैं। जिसके मनमें जैसे सुखकी इच्छा होती है, वह अपने शरीरको अपनी बुद्धिके द्वारा वैसेही कामोंमें लगाता है। मनसे ही मनुष्य और पशु की पहिचान की जाती है। पशुके मनमें केवल भौतिक सुख भोगनेकी इच्छा होती है। यह इच्छा मनुष्यमें भी है। यदि मनुष्य इसी भौतिक सुखको अपना लक्ष्य समझकर बुद्धिके द्वारा इसीको प्राप्त करनेमें लगा रहे तो वह अपने-आपको एक बुद्धिमान् पशु बना सकता है, मनुष्य नहीं। पशुतासे बचना ही मनुष्यता है। अज्ञान और पशुता एक ही बात है। अज्ञानका न रहना ही ज्ञान है। ऐसे ज्ञानको प्राप्त करना ही सच्ची शिक्षा है।

३—शिक्षाका सबसे बड़ा साधन रुकावटें दूर करना है।

छोटे-बड़े, अमीर-ग़रीब सभीको शिक्षा प्राप्त करनेका अधिकार है, और इसे पाना उनका कर्तव्य भी है। शिक्षा प्राप्त करनेकी शक्ति प्रत्येक मनुष्यमें है। परन्तु मनुष्यको इस शक्तिका ज्ञान तबतक नहीं होता, जबतक कि शिक्षाके मार्गकी सब रुकावटोंको दूर न कर दिया जावे। आज-कल देशका सारा वातावरण अर्थात् घर-बाहर चाल-चलन, रहन-सहन, सोच-विचार आदि सभी कुछ सच्ची शिक्षाके मार्गकी रुकावटें बनी हुई हैं। ऐसी परिस्थितिमें आज हिन्दुस्तानमें सच्ची शिक्षा-पद्धतिको प्रारम्भ करना एक गंभीर एवं विचारणीय समस्या है। ऐसा जो भी ढङ्ग होगा, वह अवश्यही वर्तमान परिपाटीके विरुद्ध होगा, तब भी उसको दृढ़ताके साथ जारी करना देशहित चाहनेवाले समाजका कर्तव्य है।

४—सहज ही शिक्षण

प्रकृति जैसे हवा, पानी और धूप आदि सब साधन नन्हें पौदोंको पालनेके लिये जुटा देती है और वे पौदे उसमें से अपनी शक्ति और आवश्यकताके अनुसार अपना भोजन लेकर पुष्ट होते जाते हैं, उन्हें कोई परिश्रम नहीं करना पड़ता। ठीक इसी प्रकार शिक्षकका भी कर्तव्य है कि वह भी कोमल बच्चों रूपी पौदोंपर किसी प्रकारका बोझा डाले बिना, प्रकृतिकी तरह उसका साथी बनकर उसकी शक्ति और आवश्यकताके अनुसार उसके ज्ञानका विकास करते हुए उसके मनको पुष्ट करनेका प्रयत्न करे। बच्चोंको शिक्षा देनेके लिये उनके स्वभावके मुख्य भेदोंको जान लेना चाहिये।

५—बच्चोंके स्वाभाविक गुण

(१) कोमलता, (२) विनोदप्रियता, (३) अनु-करणप्रियता, (४) चञ्चलता, (५) स्वतन्त्रता तथा (६) जिज्ञासा ये बच्चोंके स्वाभाविक गुण होते हैं।

शिक्षकका कर्तव्य है कि बालकोंको इस प्रकारकी सहायता देता रहे कि जिससे ये सद्गुण स्वाभाविक रीतिसे पुष्ट होते जावें।

१. कोमलता—कोमलताकी रक्षा करनेसे आगे चलकर प्रेम, सरलता और निरहङ्कारिताकी उत्पत्ति होती है। बालकोंकी कोमलतापर चोट पहुंचानेसे अर्थात् डांट-डपट, मार-पीट आदि उपायोंसे बालकोंके मनमें उलटी क्रिया उत्पन्न हो जाती है। जिससे बालकमें द्वेष, मिथ्याचार (झूठा दिखावा) अत्याचार करनेकी प्रवृत्ति, भय और पराधीनता की भावनाएं उत्पन्न होने लगती हैं, जो कि इष्ट नहीं है। इसलिये बच्चोंके साथ थोड़ी-सी भी कठोरता करनी लाभप्रद नहीं है। जैसे कुल्हाड़ीसे पेड़का नाश हो जाता है, या जैसे नन्हा पौदा नाखूनसे ही मर जाता है, इसी प्रकार बच्चोंकी हृदयकी कोमल कली अधखिली रह जाती है या मुरझा जाती है। बच्चोंको आत्म-विश्वासी तथा वीर बनाने के लिये आवश्यक है कि उन्हें कभी भी डराया या धमकाया न जाय। किन्तु उनके अच्छे भावोंको ही सदा जगानेका प्रयत्न किया जाय।

२. विनोद-प्रियता—विनोदप्रियतासे बच्चोंके मनमें सन्तोष आनन्द और शान्तिकी इच्छा पैदा होती है। इससे सत्य-असत्यका विचार करनेकी बुद्धिका विकास होता है। बच्चोंकी विनोदप्रियताको रोकनेसे उनके हृदयमें उदासीनता बढ़ती है। उनके स्वभावमें चिड़चिड़ापन और क्रोध आ जाता है। अर्थात् रुकी हुई विनोद-प्रियता बच्चोंके मनमें अनेक दुर्गुणोंको उत्पन्न कर देती है।

३. अनुकरण-प्रियता—बच्चे अपने बड़ोंको या अपने पास रहनेवालोंको जैसा व्यवहार करते हुए देखते हैं, वैसा ही व्यवहार स्वयं भी करना चाहते हैं। अर्थात् वे अपनी रुचिके (पसन्दके) अनुसार बनना चाहते हैं, इसी अनुकरणप्रियतासे पूर्णताको पानेकी इच्छा जाग उठती है। इसी लिये शिक्षक और संरक्षकका कर्तव्य है कि वह अपने बर्ताव या बातचीतसे कभी भी कमज़ोरी या मिथ्याचारका उदाहरण बालकके सामने न रक्खे। बालकके सामने एक भी निरर्थक या अनुचित बात न कहे। बालकको हँसानेके लिए झूठी- कहानियां कभी न सुनानी चाहियें। बालकोंकी पुस्तकोंमें 'सच कहु' "मत डर" इत्यादि शिक्षाप्रद वाक्य अधिक होने चाहिए। ऐसे वाक्योंसे सत्य और निर्भयता की भावना पैदा होती है। यह अत्यन्त आवश्यक है कि ऊंचे लक्ष्यवाले शिष्यवा शिक्षकोंके आचरणके अच्छे उदाहरण बच्चोंके सामने रक्खे जायें। इस प्रकार उनकी अनुकरण-प्रियताका पूरा-पूरा लाभ उठाकर उन्हें सन्मार्गपर डाल देना चाहिए। यदि अच्छे व्यवहारके उदाहरण बालकों के सामने न रक्खे जायँगे, तो वे इसी अनुकरण-प्रियताके के कारण बुरे रास्तेपर पड़ जावेंगे। जिन शिक्षकोंका आचरण स्वयं अच्छा नहीं है, वे यदि ऊँची-ऊची बातें बालकोंको सिखाते रहेंगे तो इससे बालकोंके भी मिथ्याचारी बन जानेका पूरा-पूरा डर है। इससे बचानेके लिये शिक्षकोंको अपना लक्ष्य स्थिर कर लेना होगा। फिर उस लक्ष्यसे विरोधी कोई भी बात और पदार्थ बच्चोंके सामने न रखना होगा। यह ध्यान तो रखना ही चाहिये कि बच्चे बाहरी अनुकरणमें न पड़कर आदर्शके अनुगामी बनें और अच्छे भावोंके ग्रहण करनेके अभ्यासी हो जावें।

४. चंचलता—चंचलता रजोगुणका चिह्न है। यह बच्चोंमें स्वभावसे होती है। बच्चोंकी चंचलताको देखकर उन्हें दबावसे निश्चल करके बैठा देनेकी प्रवृत्ति हानिकारक है। इस स्वभावको यदि दबाया जायगा, तो बच्चोंमें तमोगुण बढ़ जावेगा या आलस्य उत्पन्न हो जावेगा। इसलिए बच्चोंकी रुचिके अनुसार उन्हें प्रत्येक समय किसी-न-किसी ऐसे काममें लगाये रहना चाहिये जो हमारी शिक्षाके लक्ष्यतक पहुंचनेमें सहायक हों। बच्चोंकी चंचलताका ऐसा उपयोग करते रहनेसे बालकोंमें सत्वगुण बढ़ जावेगा और शुद्ध कर्म करनेकी शक्तिका विकास होगा।

५. स्वतंत्रता—बच्चोंके विचार और जोशकी कोई हद नहीं होती। यही तो इनकी स्वतन्त्रताका अभिप्राय है। बच्चे किसी भी नियमके या किसी भी पदार्थके मोहमें आना नहीं चाहते। उनकी दृष्टिमें कोई भी बात असम्भव नहीं होती, यही इनमें अनन्त शक्तिकी झलक पायी जाती है। बच्चोंमें रहनेवाला जो स्वतन्त्र्य-प्रेम है, वही उनमें रहनेवाले परमात्माका स्वरूप है। इस स्वातन्त्र्य-प्रेमको बढ़ानेके लिये बच्चोंमें परमात्माके सहारेसे रहनेकी भावना को बड़े प्रयत्नसे बढ़ाना चाहिये। उन्हें यह सिखाना चाहिये कि ईश्वरके सहारेसे असम्भव भी सम्भव हो जाता है।

जो पदार्थ हमारी तुच्छ दृष्टिमें असम्भव प्रतीत होता है वही पदार्थ ईश्वर कृपा होनेपर सम्भव हो सकता है। ऐसी आस्तिक स्वतन्त्रताकी ओर ही बच्चोंको बढ़ाना चाहिये। इस स्वतन्त्रतामें रुकावट आनेसे मनुष्य बन्धन में फँस जाता है।

स्वतन्त्रता पर बार-बार चोट पहुंचते रहनेसे बालकों की आत्म-शक्ति नष्ट हो जाती है। ऐसे बच्चोंके मनमें भय निर्बलता और पराधीनताकी भावनायें उत्पन्न होने लगती हैं।

६ जिज्ञासा-बच्चोंमें ज्ञानकी प्यास स्वभावसे होती है। जिस किसी नये पदार्थको वे देखते हैं उसीके विषय में कुछ-न-कुछ मालूम कर लेना चाहते हैं। बच्चे जब कोई भी प्रश्न करें तब शिक्षकका कर्तव्य है कि उसके प्रत्येक प्रश्न का उत्तर संतोषजनक रीतिसे दें और उसके प्रश्नको साधारण समझकर टाल न दें। डाँटने-डपटनेसे भय-व्याकुल होकर बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है और बालकोंकी ज्ञान पिपासाको शान्त करनेके लिये बालक जिस शिक्षकसे प्रश्न करते हैं, यदि वे ही शिक्षक उन्हें डाँटने-फटकारने लगें और बालकोंके सखा न रहकर डाँटने-डपटनेवाले बन जाएँगे, तो बालक प्रश्न करना छोड़ देंगे। यों ज्ञान-दाता और ज्ञान-गृहीताका सम्बन्ध हट जावेगा तथा ज्ञान-दानका जो हमारा लक्ष्य है, उसी लक्ष्यसे हम च्युत हो जावेंगे। ऊपरके पांच गुण बालकोंमें अक्षुण्ण रहें तो उनमें जिज्ञासा स्वभावसे बढ़ती जाती है; ऊपरके पांच गुण न रहें तो जिज्ञासा मर जाती है।

६—बालकोंमें स्वाभाविक दोष

इन छः गुणोंके अतिरिक्त छोटे-छोटे बालकोंमें तीन दोष भी पाये जाते हैं। शिक्षकका कर्तव्य है कि बालकोंके इन दोषोंमें किसी भी प्रकारकी सहायता न दें। इन दोषोंको नष्ट कर देना शिक्षकका कर्तव्य है। वे दोष ये हैं—

(१) रोना (२) लड़ना और (३) शिकायत करना।

१ **रोना**—कमजोरीका चिह्न है। अभिलषित पदार्थके न मिलनेसे बच्चे रोया करते हैं, इसलिये जहांतक सम्भव हो रोनेका कारण उत्पन्न ही न होने दें। यदि किसी कारणसे बालक रोने लगे तो किसी पदार्थका लालच देकर उनको रोनेसे रोकना ठीक नहीं है। क्योंकि लालचसे उनका मन बिगड़ने लगता है। फिर तो वे सदा ही रोनेको अपनी इच्छा पूरी करनेका साधन बना लेते हैं। रोते हुए बच्चोंको प्यार भी न करना चाहिये। वे कुछ देरतक रोकर अपने आप ही शान्त हो जाया करते हैं। ऐसा उनका स्वभाव होता है। रोते समय बच्चोंको प्यार करना तो रोनेमें सहायता करना है। इसलिये उन्हें रोकर शान्त होलेने देना चाहिये।

२ **लड़ना**—भी मानसिक कमजोरीका चिह्न है। बेकार रहनेसे या किसी भी वस्तुके लालचसे बच्चे लड़ पड़ते हैं। रोकनेसे लड़नेकी इच्छा तीव्र हो जाती है। बालकोंको आपसमें लड़ते देखकर उनका लड़ाईका उत्साह समाप्त होने देना चाहिये, जिससे वे लड़ाईका अनुभव प्राप्त कर सकें। हां इतना तो रखना ही चाहिये कि किसी बालकके शरीर पर घातक चोट न पहुंचे। ऐसा मौका आनेसे पूर्व ही लड़नेवालोंको अलग कर देना चाहिये।

३ **शिकायत करना**—यह भी मानसिक निर्बलता का चिह्न है। अपने प्रतिपक्षी बालकको हरानेके लिये तथा तीसरे शिक्षकको अपना तरफ़दार बनानेके लिए शिकायत का भाव आता है। जब तीसरा मनुष्य दण्ड देनेको तैयार रहता है, तब ही शिकायतकी इच्छा उत्पन्न होती है। शिकायत सुननेसे शिकायत करनेवालेके मनमें पराधीनताकी भावना और असत्य बोलनेकी इच्छा पैदा होती है। इसके साथ ही अपने मनमेंसे न्याय करनेके स्वभाव नष्ट हो जाते हैं। शिक्षकको उदासीन रहकर दो बातोंपर ध्यान रखना चाहिए; शिकायतका क्या कारण है और दोष किसका है! किसी दूसरे मौकेपर बातचीतके द्वारा अच्छी कहानियां सुनाकर इस दोषको सुधारनेका प्रयत्न करना चाहिए।

(७) ध्यान देने योग्य अन्य सात बातें

शिक्षाका उपार्जन करनेके लिए अर्थात् बालकके जीवन का लक्ष्य स्थिर करवानेके लिए विद्यार्थीका एक पैसा भी खर्च नहीं किया जाना चाहिए। शिक्षासे हमारा अभिप्राय कोरे अक्षर ज्ञानसे या किसी विषयके विशेषज्ञ बननेसे नहीं है। उसको तो हम शिक्षा न कहकर एक प्रकारकी कला (हुनर) कहना उचित समझते हैं।

(२) बालक जब पाठशालामें आवें, तब उन्हें घरसे ख़ाली हाथ आना चाहिए, तथा पाठशालामें जितनी विद्या अनायास ग्रहण कर सकें, उतनी लेकर ख़ाली हाथ घर लौट जाना चाहिए। पोथियोंके और पढ़नेके साधनोंके बोझके नीचे विद्यार्थीके मनको दबाना नहीं चाहिए। शिक्षकका कर्तव्य है कि वह विद्यार्थीके मन और शरीरको हलका रखनेका पूरा पूरा प्रयत्न करे।

(३) प्रत्येक शिक्षकका ऐसा अनुभव है कि उसने अपने विद्यार्थी-जीवनमें बहुत-सी फ़िजूल बातें सीखी थीं, जो उसके जीवनमें कभी भी काममें नहीं आयीं। अब शिक्षकके नाते उसका कर्तव्य है कि वह विद्यार्थीको फालतू अनुपयोगी बातें न सिखाकर केवल उपयोगी बातें सिखावे।

(४) किसी परीक्षाको पास करानेके लिए जल्दबाज़ीसे केवल लिखने-पढ़नेमें चतुर बना देनेकी निर्जीव भावनाकी शिक्षा नहीं देनी चाहिए। विद्यार्थीके मनमें भी परीक्षा और जल्दबाज़ीके लिए कोई भी महत्त्व पैदा नहीं किया जाना चाहिए।

(५) बालकके समयको (क) भाषाज्ञान (ख) उच्चविचार तथा (ग) कर्म इन तीन भागोंमें बांट देना चाहिये। अक्षर शिक्षाके साथ-साथ भाषाज्ञान प्रारम्भ किया जावे और अपने विचारोंको प्रकट करनेके लिये तथा दूसरेके विचारोंको ग्रहण करनेके उद्देश्यसे ही लिखना-पढ़ना सिखलाया जावे। मौखिक इतिहास सुनाकर या बार्तालापके द्वारा बालकोंको उच्च विचार दिये जावें। उच्च विचारोंको व्यवहारमें परिणत करनेके लिये कर्म करनेकी भी शक्तिको जगाया जाये।

(६) ऊपरके तीन विभागोंके अनुकूल रामायण भगवद्गीता, उपनिषद् आदि उत्तम ग्रन्थ तथा अन्य उपदेशप्रद सच्ची कहानियोंकी पुस्तकें, जिनमें कि मनुष्यके जीवनका लक्ष्य तथा मार्ग अनुभवी लेखकों या अनुभवी उपदेष्टाओंके द्वारा स्पष्ट समझाया गया हो, शिक्षकलोग केवल अपने पास रखें।

(७) सफाई, खेती, स्वास्थ्य, उद्योग-धन्धे शिल्पकला और भजनके साधन बच्चोंके उपयोगके लिये खिलौनेके रूपमें छोटे-छोटे बनाकर रक्खे जावें और जहांतक हो सके सुलभ प्राकृतिक उपायोंसे ही शिक्षा देनेका प्रयत्न किया जाय। कागज़ोंके बदलेमें पेड़ोंके पत्ते दीवार और ज़मीन लिखना सिखानेके काममें लायी जावें और क़लमके स्थानमें सरकण्डे या उस जैसी कोई चीज़ काममें लायी जावे* स्याहीके लिये नागफनकी फलीका रस काममें लाया जावे। मिट्टी, बांस या बेलकी दवातें प्रयोगमें लायी जावें।

प्राकृतिक आहार-विज्ञान

[श्री गङ्गाप्रसाद गौड़ "नाहर" भूपतिपुरी]

क्या दूध मनुष्यका प्राकृतिक आहार है ?

नाजके बीजोंकी तरह दूध भी, सदा मनुष्यका प्रधान आहार नहीं होसकता। हाँ, प्रधान आहारके अभावकी पूर्तिके लिये उसका प्रयोग अवश्य किया जासकता है। क्या मनुष्य, क्या पशु-पक्षी, सभी जानवरोंके बच्चे अपनी माँका दूध, कुछ कालतक ही पीते हैं—अर्थात् जबतक उनके दांत नहीं निकल आते तभीतक। इधर बच्चोंके दांत निकलने आरम्भ हुए और उधर आपसे-आप माताओंका दूध भी क्षीण होते-होते बंद होजाता है। बच्चोंका दांत निकलना गोया प्रकृतिका मूक आदेश है कि अब तुम्हें दूधकी आवश्यकता नहीं रही अब तुम फल-फूल खासकते हो। अस्तु—

दांत निकल आनेपर दूधको मनुष्यका मुख्य खाद्य पदार्थ समझते रहना अस्वाभाविक है।

एक बात और। दांत निकल आनेपर दूध प्राकृतिक रूपसे

*या चिरागकी स्याहीमें थोड़ा गोंद मिलाकर अथवा बादामके जले हुए छिलकोंको पीसकर उसमें गोंद मिलाकर लिखना चाहिए। कच्ची हरड़को पानीमें डाल लोहेके बर्तनमें पकानेसे भी स्याही बन सकती है।

हर एक रंगकी मिट्टी भी लिखनेमें काम आ सकती है।

ग्रहण भी नहीं किया जा सकता। दांत निकल आनेपर माताका स्तन पान करनेमें बड़ी असुविधा होती है। क्योंकि "पीयूषाऽभिनवे पय" लोकोक्तिके अनुसार दूध स्तनसे निकलकर तुरन्त हमारे शरीरमें प्रवेशकर जाना चाहिये, तभी वह अमृतका कार्य्य करेगा, अन्यथा दूधमें वायुका स्पर्श होतेही, उसका अधिकांश गुण नष्ट होजाता है, और आगपर रख देनेसे तो उसमें कुछ रहही नहीं जाता। ऐसी स्थितिमें दूध गरिष्ट होजाता और देरमें पचता है। यह व्यर्थकी धारणा है कि यदि दूधमें कोई रोगके परमाणु होंगे तो वे गरम करनेसे नष्ट हो जायंगे, सच बात तो यह है कि यदि दूधमें कोई रोगपरमाणु होंगे तो वे गरम करनेसे भी नहीं जायँगे। परमाणुओंका क्या कभी नाश होता है? किसी-न-किसी रूपमें वे बनेही रहते हैं। इस लिये दूधको गरम करके पीनेकी प्रथा बड़ीही हानिकारक तथा दोषपूर्ण है। ऐसी दशामें जब कि प्रकृति, दूध को गरमतक करनेकी आज्ञा नहीं देती है, उससे बनी हुई रबड़ी, मलाई आदि पदार्थ तो घोर आपत्तिजनक सिद्ध होंगे ही। यह अनुभवगम्य है कि दूधमें चीनी आदि डाल कर पीना तो उस दूध और उसके कर्त्ता प्रकृति दोनोंका अपमान करना है। दूधमें चीनी आदि डालकर मानो हम यह संकेत करते हैं कि प्रकृतिदेवीने भूल की थी जो दूधको और अधिक मीठा नहीं बनाया। यह प्रकृतिमाताका अपमान करनाही तो हुआ, हालां कि, इस अपमानका बदला भी हमको बिना मिले नहीं रहता, अर्थात् दूध, चीनीके संयोगसे और भी अधिक गरिष्ट बनकर हमारे स्वास्थ्यको हानि पहुंचाये बिना नहीं रहता।

अपनी चटोरी जीभके वशीभूत हो, केवल स्वादके लिये हम दूधका सेवन, विविध रूपोंमें करते हैं जो हमारे लिये कदापि लाभदायक नहीं है। सच पूछा जाय तो दूध-घीसे स्थायी लाभकी भावना करना अपनेको उसी प्रकार भ्रममें डालना है, जिस प्रकार औषधियों द्वारा रोग निवृत्तिका स्वप्न देखना।

यह नितान्त असत्य नहीं है कि दूधसे वीर्य्य अधिक नहीं पैदा होता। अवश्य आरम्भमें, जबतक पाचन-शक्ति तीव्र रहती है वीर्य्यकी अधिकताका भान होता है, पर इस प्रकारका बनावटी वीर्य्य, उत्पादक कार्य्यके लिये सर्वथा अयोग्य होता है, यह तो शरीरसे निकल जानेके लिये सर्वदा उद्यत रहता है, जैसे कामुकोंकी वृत्ति होती है। फलतः शरीरको अनावश्यकही इसके उत्पन्न करने तथा निकाल फेंकनेके लिये, अपनी जीवनी शक्ति नष्ट करनी पड़ती है, अर्थात् घी-दूधके पचानेमें पाचन-शक्ति व्यर्थही खर्च होती है, और फिर बिना किसी लाभके. विजातीय द्रव्यकी शकल में, उसे बाहर फेंकनी भी पड़ती है। यह कार्य्य भी तभी तक हो सकता है, जबतक कि पाचनशक्ति बलवती होती है किन्तु जब कालान्तरमें वह शक्ति निर्बल पड़ जाती है, तो इस अनावश्यक चिकनाईको नहीं निकाल सकती परिणाम यह होता है कि वही घी-दूध, बलगम बनकर शरीरके भीतर, तह-ब-तह जमना आरम्भ होजाता है और शरीर अनावश्यक रूपसे फूलकर बेकार होजाता है। मारवाड़ियों और धनी परिवारोंकी यही दशा होती है, अधिकांश मारवाड़ी, विशेषकर उनकी स्त्रियां, पतली और स्वस्थ न दिखाई देंगी, सभी थोथी, थल-थल और भद्दी होती हैं, जिसका मुख्य कारण दूध-घीका अधिक सेवन है।

युवक समुदाय घी-दूधका व्यवहार बहुतायतसे इसलिये करता है कि, जिसमें विषयभोगसे होनेवाली क्षतिकी पूर्ति होती रहे। यह विचार सर्वथा निर्मूल है। स्वभावतः ये पदार्थ वीर्य्यको अत्यन्त चञ्चल तथा द्रवीभूत बना देते हैं, जो ज़रासी उत्तेजनामें निकल पड़नेके लिये उद्यत रहता है, और यही कारण है कि ऐसे युवक-युवतियोंको प्रायः वीर्य्य-सम्बन्धी रोग भी होजाया करता है।

माँका दूध उसके बच्चोंके लिये ही प्राकृतिक आहार है

दूध, मनुष्यका प्राकृतिक भोजन है, सही, और उसमें सारे आवश्यक पोषक तत्वों तथा गुणोंका भी समावेश है, परन्तु वह शिशुरूपी मनुष्योंके लिये ऐसा कहा गया है। क्योंकि वेही उसको प्राकृतिक रूपसे ग्रहण करते हैं। हां, यदि पूरा मनुष्य भी अपनी मांका दूध, ठीक एक दुध-मुँहे बच्चेकी भांति पीनेमें फलीभूत होसके, तो बेशक वह उसके लिये गुणकारी सिद्ध होसकता है, किन्तु यह प्रणाली उसके लिये अप्राकृतिक सिद्ध होगी, क्योंकि एक पूर्ण युवककी माताके स्तनमें दूध होगा ही नहीं इसलिये उसको किसी

दूसरेकी माताका वा बछड़ेवाली गाय इत्यादिकी शरण लेनी पड़ेगी, जो नितान्त अन्यायकी बात होगी। क्योंकि प्रकृतिका नियम है कि किसी भी पशुकी माताको उतनाही दूध उत्पन्न होता है, जितना कि उसके बच्चेके लिये आवश्यक तथा पर्याप्त होता है। इसके अतिरिक्त किसीको, न्याय की दृष्टिसे, अधिकार भी तो नहीं है, कि वह किसी दूसरेके हिस्सेका अपहरण करे। हां बिना बच्चेवाली दुधारी गाय, अर्थात् कामधेनु मिल सके तो कोई हर्जकी बात नहीं, किन्तु तब भी स्तनमें मुँह लगाकर पीनेसेही, दूधके पीनेका पूरा-पूरा मन्तव्य सिद्ध होगा, जो एक भोंडी सी बात प्रतीत होती है।

मुख्य भोजनके बदले, दूधसे, अधिकसे अधिक लाभ कैसे उठाया जाय?

उन गायों और बकरियोंका दूध, जो स्वच्छन्द रूपसे जङ्गलों और चरागाहोंमें चरती फिरती हैं, अधिक लाभदायक होता है, बनिस्बत उन पशुओंके दूधके, जिनको खूटोंपर बांधकर नमक, दाना, भूसी आदि विविध प्रकारके दूध उतारनेवाले पदार्थ खिलाये जाते हैं। दूध सदैव धारोष्ण पीना चाहिये, और पीते समय, उसमें चीनी आदि मिलाकर पीना बड़ी भारी भूल है। दूधका प्रत्येक घूँट, धीरे-धीरे मुँह में घुलाकर कण्ठके नीचे उतारा जाय, एक सांसमें सेरों दूध गलेके नीचे उतार जाना हानि करता है। भोजनके साथ दूध खानेकी प्रथा ठीक नहीं, दूध तो अकेलेही पीनेकी वस्तु है। दूधको आगपर रखना, उसके गुणोंको नष्ट कर देना है। बासी दूध कभी न पीना चाहिये।

क्या मांस मछली मनुष्यका भोजन है?

मछली, मांस आदि सदासे अमानुषिक तथा आसुरी आहार रहे हैं, और अब भी हैं। इसके विरोधमें, अबतक न जाने कितना लिखा जा चुका है। इसलिये इसके विषयमें अब और अधिक लिखना, इस अनावश्यक प्रश्नको व्यर्थ महत्व देना है।

मनुष्यका पेय पदार्थ

मनुष्यका प्राकृतिक पेय पदार्थ, केवल शुद्ध ठंढा जल है, इसके सिवा अन्य सभी कृत्रिम पेय, शराबसे लेकर सोडावाटर और शरबततक अप्राकृतिक और अनिष्टकर हैं। चाय, जिसका प्रचार आज देहातोंतक फैल चुका है, मानव-स्वास्थ्यका एक प्रबल शत्रु है।

विदेशी खाद्य पदार्थ

प्रकृतिने, मनुष्यके प्राकृतिक आहारका विधान, देशकी जलवायुके अनुसार ही किया है। किन्तु हम, प्रकृतिके इस रहस्यको न समझकर, तथा भक्ष्याभक्ष्यके भेदभावको भुलाकर, अपने आहारकी व्यवस्था, अपने मनमाना करते हैं। विदेशियोंकी देखादेखी, हम भी उनकी नकल करते हुए उनके आहारको बड़े शौकसे अपनाने लगे हैं और फलस्वरूप अपना अमूल्य स्वास्थ्य दिनोंदिन गँवा रहे हैं। हमारे चिर-रोगी बने रहने, तथा अल्पायु होनेका एक कारण यह भूल भी है। विदेशी आहारके प्रति हमारा यह अनुराग, हमको तबाह कर रहा है।

प्रत्येक प्रान्त, देश तथा महादेशका मनुष्य-भोजन भिन्न होता है, और होना चाहिये। जिस स्थलपर, जिस ऋतुमें, प्रकृति जो खाद्य-वस्तु उत्पन्न करती है, उस स्थलपर उस ऋतुमें, वहांके रहनेवालोंको वही भोजन लाभप्रद और स्वास्थ्यकर होता है, यही प्रकृतिका नियम है। बंगाल के बंगाली पंजाबियोंके आहारको अपनाकर अपना स्वास्थ्य सुरक्षित नहीं रख सकते, उसी प्रकार अंग्रेजोंका खाद्य-पदार्थ, एक भारतवासीके अनुकूल कदापि नहीं पड़ सकता।

कृत्रिम खाद्य-पदार्थ मानव स्वास्थ्यके शत्रु हैं

इस वैज्ञानिक युगमें, सुख सुभीतेके तमाम साधनोंके उपस्थित होते हुए भी, संसारमें मनुष्योंकी स्वास्थ्य-सम्बन्धी निर्बलता अपना विकराल रूप धारण किये हुए है। इस निर्धन भारतवर्षको छोड़िये, यहांके लोगोंके स्वास्थ्यकी दशा तो अवर्णनीय है ही, पर योरोप और अमरीका जैसे सम्पत्तिशाली मुल्कोंके रहनेवालोंके स्वास्थ्यकी दशा भी अच्छी नहीं है। वहांकी सरकार और डाक्टर असीम परिश्रम करके और करोड़ों, अरबों रुपया व्यय करके, किसी एक रोगको निर्मूल करनेका प्रयत्न करते हैं, तो उसकी जगह, दो नये रोग उत्पन्न होजाते हैं। पता लगानेपर ज्ञात हुआ है कि इस उपद्रवका मूल कारण केवल प्राकृतिक नियमोंका उल्लङ्घन, तथा चटोरी जीभका आज्ञापालन ही है। आजकल हम कृत्रिमताके ऐसे भक्त बन गये हैं कि

प्राकृतिक रहन-सहन, तथा खान-पानसे एक प्रकारकी घृणा सी होगयी है। उदाहरणके लिये, मिलकी बनी हुई सफेद चीनीको ही ले लीजिये, जिसके आगे हम शुद्ध तथा स्वास्थ्यवर्धक गाँवकी बनी हुई गुड़-मेलीको उपेक्षाकी दृष्टिसे देखने लगे हैं, और उनका ग्रहण करना फैशनके विरुद्ध समझते हैं। हालाँकि मिलकी चीनी विष-तुल्य होती है और उसमेंके सारे पौष्टिक तत्व नष्ट हुए रहते हैं। इसके अतिरिक्त चीनीको पचानेके लिये पेटको, गुड़की अपेक्षा, अधिक मेहनत करनी पड़ती है। चीनीमें, गुड़से कहीं कम मिठास होती है। गुड़ अकेले खाकर भी, जैसा गन्नेके मौसिममें बहुतसे देहाती करते हैं कुछ दिनोंतक पेट पाला जा सकता है, पर चीनी अकेलेखाई नहीं जाती, और यदि जबरन् खाई भी जाय, तो पेटकी बीमारी अवश्यमेव होकर रहेगी। 'डाइरेक्टर मेजर-जेनरल सर रॉबर्ट मैककैरीसन' के कथनानुसार गुड़में प्रोटीनका कुछ अंश (०-६ प्रतिशत), खनिजक्षार (mineral salts) ३ से ६ प्रतिशत, और कुछ (Vitamines) जीवनद्रव्यों का थोड़ा सा अंश पाया जाता है किन्तु चीनीमें तो ये पदार्थ बिलकुल पाये ही नहीं जाते। गुड़में एक आवश्यक द्रव्य तैल भी बहुत अधिक पाया जाता है, किन्तु यह तैल मिलोंकी चीनीमें होता ही नहीं। गुड़में (Iron Content) भी बहुत होता है, जिसमे उससे उसमें रक्तहीनता रोगको नाश करनेवाला गुण होता है, जो चीनीमें कत्तई नहीं होता। इन सब अवगुणोंके होते हुए भी, मानवसमाज, इस विष तुल्य चीनीका इतना आदर क्यों करता है, यह बात समझमें नहीं आती।

इसी प्रकार कुछ दिनोंतक कृत्रिम घी और कृत्रिम आटा का भी खूब प्रचार हुआ था, और शायद अब भी है। इसके अतिरिक्त कृत्रिम दूध (condensed milk and malted milk) का प्रचार तो आजकल दिन दूना रात चौगुना बढ़ रहा है। इस विषयमें, और अधिक लिखकर, मैं सन् १९३४-३५ सालके आंकड़े पाठकोंके सामने रखता हूं, जिससे पता चल जायगा कि हम भारतवासी कृत्रिम आहारके कितने आदी हो चुके हैं।

पहले वर्षकी अपेक्षा इस वर्ष लगभग १८॥ लाखके कृत्रिम खाद्य, हमने विदेशोंसे अधिक खरीदे हैं—

टीन और बोतलोंमें सुरक्षित भोजन	= ५९,१८,०००)
बिस्कुट और केक	= ३३,३७,०००)
चाकलेट	= १७,९३,०००)
पेटेन्ट भोजन	= ७०,८६,०००)
जमे हुये सुरक्षित भोजन	= ४८,३७,०००)
अन्यान्य खाद्य पदार्थ	= ५९,४९,०००)

पौष्टिक पदार्थोंका अधिक मात्रामें सेवन करना भी खतरेसे खाली नहीं है

कुछ लोगोंकी धारणा है कि केवल पौष्टिक पदार्थोंके अधिक सेवनसे मनुष्य बलवान बना है, किन्तु ऐसा समझना अपनेको भ्रममें डालना है। यह अनुभवकी बात है कि बहुत पौष्टिक और अनाप-शनाप भोजन करनेवाले खूब मोटे होनेकी जगह, पतले ही रह जाते हैं, उसका कारण यह कि भोजन उनके शरीरमेंसे होकर निकल तो जाता है, पर उससे, उस शरीरको कोई लाभ नहीं पहुंचता और आहारका अधिक अंश बेकार चला जाता है। इससे साबित होता है कि आहारका केवल शरीरसे होकर निकल जाना ही पाचन शक्तिकी उत्तमताका चिन्ह नहीं है, जैसा कि कुछ लोग भूलसे समझे बैठे हैं, बल्कि हमारा शरीर आहार को जितना शीघ्र पचा सकता है उतना ही उस आहारसे लाभ उठाया जा सकता है और उससे उतनाही जीवनी शक्ति उत्पन्न होगी। अतः जीवनी-शक्तिके उपजकी मात्रा, आहारके उत्तम रीतिसे पचनेपर ही अवलम्बित है। आहार जितना अधिक गरिष्ट तथा पौष्टिक होता है, उसके पचनेमें उतनाही अधिक समय लगता है।

हमारे शरीरकी उपमा, कुछ अंशोंमें (Locomotive Engine) से दी जा सकती है। यदि किसी इञ्जिनमें आवश्यकतासे अधिक कोयला डालकर, उसकी साधारण गर्मीमें वृद्धि कर दी जाय, तब भी वह अपनी आवश्यकता के अनुसार ही गर्मी काममें लायेगा, शेष गर्मी योंही बेकार नष्ट होजायगी, वा वह इञ्जिन, उस अधिक दिये गये कोयले को, राखमें मिलाकर, जला वा अध-जला, नीचे गिरा देगा। फिर भी यदि ड्राइवर मूर्खतावश, बार-बार कोयला-पानी दिये ही जायगा तो कुछ दिनोंमें परिणाम यह होगा कि वह इञ्जिन, अपना कार्य्य, भली प्रकार न करते-करते बिगड़

जायगा, वा एकदम ही बंद हो जायगा। ठीक इसी प्रकार अधिक आहार करनेसे, वा अधिक पौष्टिक वस्तुओंके सेवनसे जिनकी उत्पादक शक्ति हमारे शरीरकी आवश्यकतासे अधिक है, हम अपने शरीरके कल-पुरजोंको नष्ट कर डालते हैं।

प्राकृतिक नियमानुसार, हमारे शरीरके अवयव, हमारी इस मूर्खताको, ठीक करनेका प्रयत्न करते हैं, अर्थात् अपनी (Reserved Power) संचित शक्तिसे पचानेका यत्न करते हैं और जबतक जीवनी-शक्ति प्रबल रहती है, तबतक वे इस कार्य्यके करनेमें सफल होते हैं, किन्तु निरन्तर कार्य्य आधिक्यसे ऊबकर अंतमें वे भी एकदम जूआ डालदेते हैं, और तब परिणामतः बिना पचा भोजन ही विष्टा होकर निकलने लगता है और इस अनावश्यक कार्य्यमें, हमारी अमूल्य जीवनी शक्ति अकारणही नष्ट होती है। अतः भोजन में वेही और उतने ही पदार्थ लाभदायक होते हैं, जिनकी शक्तिका उपयोग शरीरके अंग प्रत्यंग भलीभांति कर सकें, अर्थात् दूसरे शब्दोंमें, जिनको हम स्वाभाविक तौर पर आसानीसे पचालें।

उपरोक्त सिद्धान्त सर्वसाधारणके लिये लागू है। अब, यदि किसी ऐसे रोगीको, जिसके पाचन-यन्त्र सर्वथा बेकार हो चुके हैं, एक डाक्टर, केवल पौष्टिक पदार्थ, जैसे 'कॉड-लिवर ऑयल', अन्डा, गर्म दूध आदि आदि इस नियतसे देता है कि वह रोगी, कुछ ही दिनोंमें, उनके सेवनसे 'इवगन सैन्डो, हो जायगा, तो यह उस डाक्टरकी अज्ञानताके सिवा और क्या कहा जा सकता है और उस रोगीका तो खुदा ही हाफ़िज़ है।

एक प्राकृतिक चिकित्सकका इस सम्बन्धमें विचार उद्धृत करने ही योग्य है। वह कहता है—

'The purer the nourishment, the more poisonous it will be. But the medical slogan is "Nourishment"; the average doctor prescribes diet for the sick, with a view to nourishment; boiled milk, dead flour, white bread, sugar, meat extracts, cod-liver-oil and the like are relied upon, to sustain the vital power, in the imaginary fight against disease.'

खाद्य पदार्थोंमें, नमक मसालोंका मिश्रण अप्राकृतिक है

ऊपर लिखा जा चुका है, प्रत्येक स्वाभाविक भोजनमें, चार तत्व, प्राकृतिक रूपसे मौजूद होते हैं, उनमेंसे चौथा नम्बर नमक या क्षारका है। अर्थात्, जितनी क्षारकी आवश्यकता, हमारे शरीरको होती है, उतनी हमारे खाद्य पदार्थोंमें, प्राकृतिकरूपसे ही मौजूद रहती है, तब ऊपरसे और अधिक क्षार लेनेकी क्या आवश्यकता ?

'रिचेट' एक फ्रेंच वैज्ञानिकने यह निष्कर्ष निकाला है कि हमारे एक समयके भोजनमें ½ ड्राम (३० ग्रेन) प्राकृतिक क्षार पाया जाता है। उसका यह भी दावा है कि मनुष्यको, एक समयके भोजनसे जितने नमककी आवश्यकता होती है, वह ½ ड्रामसे भी कम है, इसलिये इससे अधिक नमकका उपयोग कदापि उचित नहीं है।

बहुतोंका विश्वास है कि नमक पाचक है, और शरीर को लाभ पहुंचाता है, यह विश्वास नितान्त निर्मूल है। अनायास (Common Salt) नमकका सेवन करते रहनेसे बहुतोंको हानि उठानी पड़ी है। एक डाक्टर मवेशी, इस बातको जानता है कि २, ३ पौण्ड नमक एक तगड़े घोड़ेको मार डालनेके लिये पर्याप्त होता है और ४, ५ पौंड एक गाय या बैलके लिये। इससे पता चलता है कि जिस नमकका प्रभाव पशुओं पर इतना विषैला पड़ सकता है, वह मनुष्योंके लिये कब लाभदायक होगा।

Dr. C. Heman Barrow जो बहुत दिनोंतक चीनमें एक डाक्टरकी हैसियतसे रह चुके हैं, कहते हैं —

'The drinknig of a saturated solution of salt is a common mode of committing suicide and there is none more difficult to treat...... ...'Salt is taken for suicidal purposes............... The amounts taken vary with the determination of the person taking it, but usually are ½ a pint to a pint.'

परन्तु, यह मानी हुई बात है कि जनता, कमसेकम नमकको तो, एक-ब-एक छोड़नेसे रही, फिर भी यह कहना ही पड़ता है कि सत्-स्वास्थ्यके जिज्ञासुओंको अपने दैनिक खाद्य पदार्थोंमें नमककी मात्रा, धीरे-धीरे कम कर देनी चाहिये ।

कुछ लोग, जामुन अमरूद, खीरा ककड़ी आदि फलों को, नमकके योगसे खाते देखे जाते हैं. यह अत्यन्त अनावश्यक है। इससे अस्वाभाविक स्वाद भलेही बढ़ जाय किन्तु उल्टे हानिही होती है ।

विविध प्रकारके मसाले भी नमकसे कम हानिकारक नहीं हैं। मैं तो कहूंगा कि, मनुष्य ही एक ऐसा पशु है जो अपने आहारको नमक-मिर्च लगाकर स्वादिष्ट बनाता है, और अन्तमें हानि उठाता है। इन मसालोंका प्रभाव हमारे स्वास्थ्यपर बहुत बुरा पड़ता है। पाचन शक्ति नष्ट होजाती है, सात्विक भोजनके अभावमें तामसिक वृत्ति आजाती है। इससे वीर्य्य भी ढीला पड़ जाता है, और शीघ्रही स्खलित हो जाता है, क्योंकि मसालोंमें 'पायकोलिन' और 'प्रसिक एसिड' नामक विष, वीर्य्यकी चेतना-शक्तिको नष्ट कर देते हैं, जिससे वीर्य्यमें सन्तानोत्पत्तिकी शक्ति या तो रहती ही नहीं, या रहती भी है तो सन्तान कमज़ोर. मूर्ख तथा रोगी उत्पन्न होती है ।

संसारके महान व्यक्ति केवल प्राकृतिक आहार करते हैं

लेख बेतरह बढ़ता चला जाता है, इसलिये, कुछ महान व्यक्तियोंके दैनिक भोजनका उदाहरण, संक्षेपमें देकर, इस लेखको समाप्त करदूंगा ।

सादे, निरामिष तथा बिना अधिक नमक, मसालावाले प्राकृतिक आहारसे ही मनुष्य स्वस्थ, परिश्रमी तथा दीर्घ-जीवी हो सकता है. यही इस लेखका सारांश है। देहाती जीवन, जिसमें इस सिद्धान्तकी कुछ अंशोंमें पूर्ति होती है, शहरी जीवनसे लाखगुना स्वास्थ्यवर्द्धक तथा प्राकृतिक है।

इसके अतिरिक्त, समस्त संसारकी महान आत्माएं जो आहार अपने शरीरके लिये चुने हुए हैं, वह इस बातका ज्वलन्त प्रमाण है कि, प्रस्तुत लेखमें दर्शाये गये सात्विक भोजन, मनुष्यमात्रके लिये कितने उपयोगी हैं। नीचे, संसारके कुछ महापुरुषोंके दैनिक भोजनकी तालिका दी जाती है, जो कभी 'युगान्तर' के किसी अङ्कमें प्रकाशित हो चुकी है ।

सर सी० वी० रमन—(नोबुल पुरस्कार विजेता, तथा प्रसिद्ध भारतीय वैज्ञानिक) सादा भोजन करते हैं। पक्के निरामिषहारी हैं। अण्डे भी नहीं खाते ।

हर हिट्लर—(जर्मनका सर्वेसर्वा) ग़रीबों जैसा मोटा-झोंटा खाता है. मोटा पहनता है। मांस कभी नहीं खाता। फल और क़हवापर ही गुज़र करता है। शराब और सिग्रेटको छूतातक नहीं ।

स्टालिन—(रूसके डिक्टेटर) अपने भोजनमें जौकी रोटी, प्याज़, मक्खन और चटनीका ही प्रयोग करते हैं।

मुसोलिनी—(इटलीका भाग्यविधाता), उसके अच्छे स्वास्थ्यका रहस्य यह है कि वह शराब और तम्बाकूको हाथ नहीं लगाता। फल, उबली भाजी, यही उसका भोजन है।

मि० रूज़वेल्ट—(अमरीकाका राष्ट्रपति) इनका मनचाहा भोजन पनीर और रोटी है ।

जार्ज बर्नार्डशा—का कहना है:-"४० वर्षोंसे मैंने मांस छोड़ रखा है। मैं शराब नहीं पीता। तम्बाकूके विषय में पूछना मेरा अपमान करना है ।"

प्रो० राममूर्त्ति—(भारतके दूसरे भीम) 'मेरी भोजन-सामग्री में कोई विशेष वस्तु नहीं. सिर्फ दिनमें एक बजे मैं भातदाल और तरकारी खाता हूं। मांस या मछली नहीं खाता। भोजनके साथ दूध नहीं पीता। ज़रा सा घी खाता हूं।"

भारतहृदय महात्मागांधी—प्रातः दूध और फल। ११ बजे दूध, फल और एक सादी और बिना नमककी भाजी। ५ बजे शामको फिर फल।

छुट्टीके समय बच्चे क्या करें ?

[श्री राधारमण याज्ञिक, काशी]

प्रायः यह देखा आता है कि बच्चे स्कूलसे लौटनेके बाद या छुट्टीके दिनोंमें अपने घरवालोंको हैरान कर देते हैं और कोई काम शान्तिसे नहीं करने देते। घरवाले उनकी शरारतसे कुढ़कर मार बैठते हैं। उनको ऐसा कोई उपाय नहीं सूझता जिससे कि बच्चे बहल जावें और मारना भी न पड़े।

बच्चे चुपचाप नहीं बैठ सकते। उन्हे तो काम चाहिये जिसमें वे लगे रहें। यदि उन्हें कोई ठीक काम दिलबहलावके लिये नहीं मिलता है तो वे शरारत न करेंगे तो करेंगे क्या? ऐसे समय कोई उपाय न खोजकर उन्हें केवल धमकाना या मारना उनकी देह और मनकी बाढ़के लिये घातक सिद्ध हो सकता है।

नीचे कुछ ऐसे उपाय दिये जाते हैं जिनसे कि बच्चे बहले रहेंगे और उनके बड़े व्यर्थ हैरानीसे बच जावेंगे।

(१) कागज कतरना

बालकोंको कागज कतरनेमें बड़ा आनन्द आता है। एक कम-धारवाली छोटी कैंची और रद्दी कागज दे दीजिये, बस वे उस काममें लीन हो जावेंगे। आप अपना काम करनेके लिये स्वतन्त्र हैं। वे अनेक प्रकारसे कागज काटेंगे। इससे उनकी अंगुलियों और हाथोंके स्नायु दृढ़ होंगे। धीरे धीरे वे कागज काटनेमें सिद्धहस्त हो जावेंगे।

एक प्रकार यह भी है कि कागजको चौकोना तिकोना मोड़ दे और कोनेपर थोड़ासा काटनेसे छेद हो जावेंगे और कागजको खोल देनेसे समानान्तर पर कटे हुए छिद्र बड़े सुहावने मालूम पड़ेंगे। बस ज़रासा सिखा देने भरकी देर है, वे भांति भांतिके नमूने आपही आप बनाने लगेंगे। कोई ऐसी वस्तु दीजिये जिसमें कि वह अपना संग्रह रख सकें।

इसी तरह बच्चे कुछ सीख जानेपर पुराने अखबारोंसे मोटे अक्षर, फोटो आदि सावधानीसे कतर सकते हैं। इनका एक अलबम बनाकर उसे देख देखकर प्रसन्न होंगे। कलाकी तरफ उनकी अभिरुचि बढ़ेगी। प्रत्येक महीनेके चित्रोंको अलग अलग बांधकर रख दीजिये। इससे उनका एक चित्र सङ्ग्रहालय बन जायगा।

(२) खाली या भरे दियासलाईके बक्स

दोनों प्रकारके बक्सोंसे बालक खेल सकते है। छोटे बच्चे भरे हुए बक्सोंसे सींके निकाल डालेंगे और फिर भरेंगे। इसी प्रकार खाली करते और भरते उनका बहुत समय कट जावेगा। इससे उनका चित्त एकाग्र होगा तथा दृष्टि स्थिर होगी।

खाली बक्सोंको उघाड़ना और बन्द करना यह भी एक खेल है। इससे आंख और हाथोंकी कसरत होगी। खाली बक्सोंसे मकान, दीवाल, चबूतरा, मीनार, रेलगाड़ी आदि बनायी जा सकती हैं जो कि लड़कोंको बहुत पसन्द आवेगी। इन इमारतोंको बनानेके लिये एक आसन और दियासलाई रखनेके लिए एक पेटी बच्चोंको दे देना चाहिये।

(३) लकड़ीके टुकड़े आदि

घरमें कभी कभी बढ़ईका काम लगता है। उसमें टुकड़े आदि बच जाते हैं। उनसे लड़के बड़ी अच्छी तरह खेल सकते हैं। इनसे भी कुवां, तालाब, घर, मीनार आदि बनाये जा सकते हैं। इससे बच्चोंकी कलाकी तरफ प्रवृत्ति होगी वे आप ही अन्य अनेक प्रकारकी डिजाइनें निकालने लगेंगे। इसे कई लड़के मिलकर खेलें तो अधिक अच्छा होगा। लकड़ीके टुकड़ोंको एक जगह रखनेका प्रबन्ध कर देना चाहिये।

(४) चित्र देखना और खींचना

बालकोंको चित्र देखना स्वभावतः बहुत अच्छा लगता है। संरक्षकोंको चाहिये कि पोस्टकार्ड चित्रोंको लड़कोंके लिये इकट्ठा करें। यदि कार्ड चित्रोंको खरीद न सकते हों तो रद्दी समाचार पत्रोंसे चित्रोंका संग्रह किया जा सकता है। ये चित्र अनेक प्रकारके होने चाहिये। चित्रोंको एक एक या दो दो करके बालकोंको देना चाहिये। इकठ्ठा देनेसे वे उन्हें थोड़ी देरमे फेंक-फांक देंगे। इससे बच्चोंके हृदयमें कलाके प्रति असम्मानका भाव उत्पन्न होगा जो कि ठीक

नहीं है। विभिन्न कालमें थोड़े थोड़े चित्रोंको पाकर उनकी उत्सुकता बढ़ेगी।

जिस प्रकार चित्र देखनेसे बालकोंको कलाके प्रति प्रेम उत्पन्न होता है, उसी प्रकार चित्र खींचना भी लाभदायक है। एक काली पाटी और खड़िया दे दीजिये और उनसे चित्र बनानेके लिये कहिये। पहिले तो वे अण्डबण्ड लकीरें खींचेंगे पर धीरे धीरे वे आसपासकी वस्तुओंकी नकल उसपर करेंगे। उचित सहायता और शाबाशी मिलनेपर वे बहुत उत्साहित होंगे।

कुछ उन्नति करनेपर उन्हें रंगीन पेन्सिल और कागज चित्र खींचनेके लिये देना चाहिये। दीवालपर खड़ियासे भी तस्वीरें बनायी जा सकती हैं। जमीनपर धूल बिछाकर उसके ऊपर अंगुलियोंसे खींचनेका भी एक प्रकार है जो सर्व सुलभ है।

[५] मिट्टीके बर्तन

कुछ समय बालकोंको मिट्टीके खिलौने बनानेके लिये दिया जाय तो बहुत लाभ होगा। मिट्टी सानना सिखा देना चाहिये। दो चार लड़के मिलकर आपसमें खिलौना बनानेकी प्रतियोगिता करेंगे। अनेक प्रकारके खिलौने उनके पास नमूनेके लिये रख देने चाहिये। फिर उनमेंसे उन्हें पसन्द करने देना चाहिये। इससे बालककी प्रवृत्ति किस तरफ है यह मालूम करनेमें बड़ी सहायता मिलेगी।

ईंट ढालनेके लिये छोटे २ सांचे बनवाकर उन्हें दे देना चाहिये। वे उनसे ईंटें ढालेंगे। दियासलाईके चौकठे प्राथमिक अवस्थाके लिये काफी होंगे। इससे बच्चोंके हाथ पुष्ट होंगे।

जो पैसा खर्च कर सकते हों वे यदि क्ले (Clay) मिट्टीको उपयोगमें लावें तो अच्छा हो। रंगीन खिलौनेके लिये पीली मिट्टी काममें लायी जा सकती है।

[६] आलपीन और कागज

आलपीन और कागजका भी एक खेल है। बहुत बालकोंको पिन-कुशनसे सब आलपीन निकालकर फिर भरना बहुत पसन्द आता है। पर बहुत छोटे बच्चोंको यह काम नहीं देना चाहिये क्योंकि हो सकता है कि वे पिन अपने शरीरमें चुभो लें।

आलपीनोंको कागजपर अनेक प्रकारसे लगाकर विचित्र विचित्र आकार बनाये जा सकते हैं। आलपीनोंसे गिनती करनेका काम भी मजेमें चल सकता है।

कुछ आलपीनें पिन-कुशनके साथ और कागज बच्चोंको दे देना चाहिये।

[७] पुराने फटे कपड़े

घरके पुराने फटे कपड़ोंसे भी बच्चोंको बहलाया जा सकता है। कपड़े गन्दे न होने चाहिये। कपड़ोंको चौखूटे रूमालकी तरह टुकड़े कर देना चाहिये। रंग बिरंगे हों तो और अच्छा है। छोटे-छोटे बक्स कपड़ा रखनेके लिये दे देना चाहिये। कपड़ा गंदा होजाय तो धुला देना चाहिये।

[८] पूजाके पार्षद और मन्दिर

बालकोंकी खेलकी तरफ प्रवृत्ति होती है यह निर्विवाद है। परन्तु प्रायः यह देखने में आता है कि बालकोंकी यह प्रवृत्ति दुष्ट दिशाकी ओर चली जाती है। वे दोषोंको खेल रूपमें अपनाने लगते हैं। इस लिये यह आवश्यक है कि उन्हें अच्छे खेलोंकी तरफ लगाया जावे।

घरमें अपने भगवानकी पूजा करना मन्दिरको साफ रखना पूजाके वर्तन साफ करना इत्यादि बातें ऐसी ही हैं जो कि बालकके हृदयमें भक्ति संचार और ईश्वरसे डरनेकी आदत डालती हैं। ऐसे खेलमें लगे रहनेसे वे दोषपूर्ण खेलों से बच सकते हैं।

घरवालोंको चाहिये कि बालकका पूजास्थान अलग नियत कर दें। कुछ पूजाके पात्र दे दें। भगवानकी मिट्टीकी मूर्ति या तशवीर आदि रख दें। कुछ कपड़ा, फूल पत्ती आदि श्रृङ्गारके लिये दे दें और उससे नित्यप्रति अपने पूजास्थानका प्रबन्ध भगवानकी पूजा श्रृङ्गार आदि करनेको कहें। जब घरमें उत्सव हो तो उसके मन्दिरका भी उत्सव करावें। बच्चेको जलपानके लिये जो कुछ देना हो उसे ठाकुरजीको भोग लगानेकी चीज कहकर दें। बस आप देखेंगे कि किस तन्मयता तथा नियमके साथ वह अपने भगवान्‌की पूजा तथा मन्दिरकी सफाई करता है। इससे बच्चेके चरित्र पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ेगा।

मन्दिरका प्राथमिक प्रबन्ध तथा दिग्दर्शन घरवालोंको करा देना चाहिये, फिर आपही आप सब काम बालक करने लगेगा। कई बालक इस खेलमें शामिल रहें तो अच्छा होगा।

हरी तरकारियाँ

हर आदमीके लिये अपनी साधारण खूराकके साथ समय तथा ऋतुके अनुसार थोड़ी बहुत सब्जी या तरकारियोंका प्रयोग अनिवार्य है, क्योंकि इनसे स्वच्छ रुधिर पैदा होता है और शरीर बढ़ता है। इसके सिवाय भिन्न भिन्न तरकारियोंमें भिन्न भिन्न स्वाद तथा गुण होता है जिससे खानेकी रुचि बढ़ जाती है।

बड़े बड़े शहरों और कस्बोंमें तो पैसेवालोंको लगभग हर ऋतुमें किसी न किसी तरहकी हरी तरकारी मिल ही जाती है, परन्तु छोटे-छोटे कस्बों और देहातोंमें सिवाय उनके जो अपने बागों और बगीचोंमें मौसिमी सब्जी तरकारियां बो देते हैं, अच्छे अच्छोंको भी कोई भाजी और तरकारी नहीं मिलती। इसलिये चाहिये कि जिस किसीको मौका मिले क्यारियोंमें, आंगनमें छप्परपर जहां कहीं होसके वहांही अपने लिये शाक भाजी उपजा ले। इनसे सब तरहके लाभ हैं।

हरी तरकारियोंकी खेती बहुत थोड़ी भूमिमें हो सकती है और इसे हर किसान अपनी जरूरतभर थोड़े ही परिश्रम और लागतमें तैयारकर सकता है। हरी तरकारियां ऐसी भूमिमें तो भलीभांति हो सकती हैं जिसमें गेहूँ, जौ या मटर उत्पन्न हो सकें। इनके बोनेके लिये जुताई गहरी और मिट्टी बहुत बारीक होनी चाहिये। बहुत कड़ी तथा चिकनी भूमि इसकी खेतीके अनुकूल नहीं होती। जिस भूमिकी मिट्टी तर होकर कीचड़ हो जावे या सूखनेपर लोहेकी भांति कड़ी हो जावे वह जमीन हरी तरकारियोंकी खेतीके लिये ठीक नहीं है।

जिन लोगोंके पास ऐसी भूमियां हों जो तरकारियोंकी खेतीके लिये उपयोगी हों और सिंचाईके लिये नहरों कूओं, तालाबों इत्यादिका साधन उपस्थित हो तो वह उचित समयपर जहां भूमि उपजाऊ हो या खाद देकर उपजाऊ बनायी जा सके और सिंचाई करनेके साधन जुट सकें, छोटे छोटे टुकड़े करके उनमें जिस किसी को जो जो तरकारियां पसन्द हों अवश्य उपजा लिया करें।

स्थानीय जलवायु तथा भूमिकी दशाके अनुसार प्रत्येक प्रकारकी तरकारीके बोनेकी तैयारी तथा बुआईका समय और बोने की रीतियां खादका प्रयोग एवं सिंचाई, गुडाई इत्यादिके समयका साधारण ज्ञान रखनेवाले पहलेतो कोई न कोई प्रत्येक देहातमें मिल जायगा यदि किसी स्थानपर इन तरकारियोंमेंसे किसीके बोनेकी रीतियोंके जाननेवाले किसी गांवमें न मिल सकें तो अपने पासके शहरोंके किसी चतुर मालीसे मिलकर मालूम कर लें।

तरकारी	बोनेका समय
१ भिण्डी	मार्च के आरंभसे जुलाई के अन्ततक
२ मीठा कद्दू (कुम्हडा)	फरवरीके आरंभसे जुलाईके मध्यतक
३ लौकी	मार्चके आरंभसे अगस्त के मध्य तक
४ घिया तोरई	मार्चके आरंभसे जुलाई के अन्ततक

५ करेला	मार्चके आरंभसे जुलाई के मध्य तक
६ छोटी सेम	मईके आरंभ से जून के अन्त तक
७ चिचिंड़े	अप्रैलके मध्यसे जुलाई के अन्त तक
८ लोबिया	मध्य जूनसे जुलाईके अन्ततक
९ रतालू	आरंभ फरवरीसे मईके अन्ततक
१० शकरकन्द	अप्रैलके अन्तसे जुलाईतक
११ बैंगन	१ फरवरीके अन्तसे मार्चतक, २ मध्य जूनसे जुलाईके अन्ततक, ३ अक्तूबर
१२ अरुई	१ मार्चसे अप्रैल तक, २ जुलाई
१३ टमाटर	१ देशी बीज जुलाई २ विलायती बीज अक्तूबर
१४ विलायती सेम	मध्य अगस्त से मध्य अक्तूबरतक
१५ चुकन्दर	सितम्बरके अन्तसे अक्तूबरके अन्ततक
१६ बन्दगोभी	मध्य अगस्तसे अक्तूबरके अन्ततक
१७ गांठगोभी	मध्य अगस्तसे अक्तूबरके अन्ततक
१८ फूलगोबी	मध्य सितम्बरसे अक्तूबरके अन्ततक
१९ मूली	अगस्तके आरम्भसे जनवरीके अन्ततक
२० शलजम	१ देशी बीज जुलाईके अन्तसे सितम्बर तक, २ विलायती बीज सितम्बरके मध्यसे नवम्बरके अन्ततक
२१ गाजर	देशी बीज मध्य अगस्तसे मध्य सितम्बरतक
२२ आलू	सितम्बरसे नवम्बर तक

आयुर्विज्ञान

[श्री गङ्गाप्रसाद गौड़ "नाहर" द्वारा संकलित]

१—पेटके रोगोंके लिये सुलभ आसन

पेटके लिये अधिकांश लोग ऐसे उपाय कर रहे हैं कि जिनसे आरोग्य एवं बल-वीर्य क्षीण हो रहा है। सौ में निन्यानबे लोग विष-रूप औषधियोंपर ही विशेष विश्वास करते हैं। उससे दशांश भागपर भी यदि आसनोंके अभ्यास पर, जो कि अमृतका सागर है विश्वास बैठजाय तो मनुष्य मात्रका कल्याण होकर उत्तम स्वास्थ्य और बल प्राप्त हो सकता है। आसनोंके अभ्याससे तत्काल फल प्राप्त होता है। दो चार मासके अन्दर ही पाठक इसका अनुभव स्वयं कर सकते हैं। आसनोंके अभ्याससे १५ वर्षकी कब्जियत, मलावरोध, अपचन, अरुचि आदि पेटके समस्त समस्त रोग पूर्णतया सर्वदाके लिये दूर हुए हैं। जो गुण औषधियोंसे प्राप्त नहीं हो सकते उस आरोग्यताकी प्राप्ति आसनोंकी क्रियाओंके करनेसे हो सकती है। मैं पहिले लिख चुका हूं कि अधिकतर रोग पेटके बिगाड़से होते हैं। मन्दाग्नि, अजीर्ण, अफरा, कब्जी, शौच-शुद्धिका न होना इत्यादि उदर सम्बन्धी समस्त रोगोंके लिये कुछ सरल उपाय दिये जाते हैं। आशा है कि पाठक महोदय उनसे अवश्य लाभ उठावेंगे—

(१) सर्वप्रथम उदर-चालन अर्थात् पेटको हिलाना-डुलाना, पेटमें गति पैदा करना है। प्रथम पेटको सामनेकी ओर जितना फूल सके फुलाएं फिर सिकोड़ें, नाभीको रीढ़ की हड्डीके साथ लगानेका प्रयत्न करें। दोनों हाथोंको पेट पर रखें, अंगूठे पीछे रहें और अंगुलियां सामनेकी ओर हों। अब पेटको पूर्ववत् फुलावें और बायें हाथसे दांई ओर और दांयें हाथसे पीछेकी ओर दबाव डालें। अब पेटको पीछेसे दाईं ओरसे फुलावें। इसी प्रकार कई रोज अभ्यास करनेसे पेट स्वयम् बाईं ओरसे दाईं ओर होकर पीछे होकर बाईं ओर आजायगा; इसी प्रकार दाईं ओरसे चक्कर लगानेका अभ्यास करें। इस प्रकार जब पेट चारों ओर खूब हिल-डुल

जायगा तो पेटके अन्दरका दूषित पदार्थ बलात् बाहर होने लगेगा।

(२) सावधान खड़े होकर श्वासको बिलकुल बाहर फेंककर कोखके दोनों पार्श्वोंको भीतर खींचनेका यत्न करें, मध्य-प्रदेश-नाभि स्थल ऊपर उभरा रहे। दोनों हाथोंको घुटनों पर रख लीजिये और झुककर खड़े हो जाइये। जितनी देर श्वास बाहर रोक सकें उतने समयमें पेटको बार-बार कई बेर भीतर खींचे और छोड़ें।

(३) कुत्ते और बिल्लियोंको अँगड़ाई लेते हुए देखा होगा, ठीक उसी प्रकारकी स्थितिमें हो जाइये। हाथोंको सीधा आगे फैलाइये, जमीनपर ठुड्डी या गाल लगा रहे और घुटने अलग अलग करके रखें कमरको जितना हो सके झुकावें। अपानको बाहर करनेका प्रयत्न करें।

(४) पृथ्वीपर बैठकर पावोंको आगे फैलाइये फिर दोनों हाथोंसे दोनों पांवोंके अंगूठे पकड़ लीजिये और सिर को दोनों घुटनोंके बीचमें रखिये, पेटको भीतर खींचे रहिये। पांव जमीनसे लगे रहें, उपर उठने न पावें। पहले यह अभ्यास कठिन प्रतीत होगा किन्तु निरन्तर अभ्याससे सिद्ध होने लगेगा।

(५) एक पांवकी एड़ी गुदा एवं अण्डकोषके बीचमें जमाकर तलवा दूसरी जांघसे लगावें और दूसरे पांवको सीधा आगे रखें, फिर दोनों हाथोंसे उस फैले हुए पांवको पकड़कर उसी पांवके घुटनेपर सिर अथवा नाक लगाकर बैठिये। नाभि समेत पेटको पीठकी ओर अन्दर खींचिये। इसी प्रकार दूसरे पांवसे करें।

उपर्युक्त क्रियायें उदरके समस्त रोगोंको समूल नष्ट करनेवाली हैं। लेकिन थोड़ा, या कभी कभी करनेसे विशेष की आशा करना व्यर्थ है।

प्रारम्भकालमें कमसे कम एक सप्ताह तक पांच मिनिट से अभ्यास करना शुरू करना चाहिये और क्रमशः साप्ताहिक वृद्धि करते हुए बढ़ाकर १५ मिनिटतक लेजाना चाहिये। आंतोंके दोष दूर होकर पाचन-शक्ति बढ़ जायगी। क्षुधा खूब लगने लगेगी। परन्तु भूख बढ़नेपर दूध, घी, मक्खन, फल, सात्विक भोजन करना श्रेयस्कर रहेगा। चटपटे, मसालेदार पदार्थ अथवा और अन्य रूक्ष पदार्थ कदापि न खाने चाहिये। यदि हो सके तो भोजनोपरान्त छाछका नित्य-प्रति सेवन करते रहें।

[कल्पवृक्षसे अंशतः संकलित]

गोमूत्र और उसके सेवनसे अनेक लाभ

[श्रीयुत कृष्णगोपाल माथुरके एक लेखसे प्रक्षिप्त]

भगवान् पुनर्वसुने गोमूत्रके गुण और क्रियाके विषयमें कहा है—"यह कटु और कुछ खारा है, उष्ण-वीर्य है और तेज गुणों वाला है; पर तीक्ष्ण और गरम गुणवाला होनेपर भी रूक्ष यानी रूखा नहीं है बल्कि स्निग्ध है। यह पेटकी अग्निको दीप्त करता है और विष तथा कीड़ोंका नाश करता है। श्लेष्मका नाशक है वायुकी अनुलोमताको साफ करता है और पित्तको अधोमार्गसे खींचकर विरेचन कर देता है। यह पांडु रोगके बीमारोंके वास्ते बड़ी ही श्रेष्ठ ओषधि है। पेटकी बीमारियोंमें, अर्शमें, गुल्ममें, कुष्ठमें यह बहुत ही काम आता है। शरीरकी बाहरी और भीतरी शुद्धिके लिये गोमूत्र एक खास चीज है। विषको दूर करनेके लिये भी यह एक विशेष उपादान है।"

कौनसी गायोंका मूत्र उपयोगी है ?

जो गायें जंगलमें फिरकर घास खाती हैं उनका मूत्र ही दवाके काममें लेना चाहिये। जो पशु घरपर बँधे रहते हैं उनके शरीरसे चलने फिरनेका परिश्रम नहीं होता और शरीरसे परिश्रम न होनेके कारण उनके शरीरके धातु और मलकी शुद्धि ठीक तौरपर नहीं हो पाती। इसीसे उनका मांस और दूध हलका होनेके बजाय भारी होता है। इस लिये मूत्र भी हल्का नहीं हो सकता। ऐसा मूत्र यदि काममें लाया जाय तो यह बदहजमी पैदा करता है और मूत्रके साथ साथ नाना प्रकारका पदार्थ निकालता है। इसी तरह रोगिणी, गर्भिणी और बूढ़ी गायोंका मूत्र भी काममें लानेके लायक नहीं है। असलमें जिन गायोंके बच्चा

पैदा हुए दो साल हो गये हों उन्हींका मूत्र ग्रहण करना चाहिये। अगर प्रसूता गायका मूत्र ही लेनेकी जरूरत हो तो प्रसवके दो मास बाद उसका मूत्र काममें लेना चाहिये।

बैलका मूत्र सूजनको मिटाता है और कृमिका नाश करता है, पेटकी अग्निको दीप्त करता है और कामला ग्रहणी तथा पांडु रोगका नाशक है। परन्तु पीनेके काममें प्रायः इसे लेते नहीं हैं। पीनेके काममें तो ऊपर लिखे गुणोंवाली गायोंका मूत्र ही श्रेष्ठ है।

जलोदर-पेटकी बीमारीमें

इस रोगमें दस्त पतला आता है। दस्तका रंग सफेद या काला होता है। सारे शरीरमें सूजन आजाती है। साथ ही साथ थोड़ा थोड़ा ज्वर भी रहता है। इसके लिये दिनमें दो बार पेटका जल निकालकर गोमूत्रका प्रयोग करनेसे विशेष लाभ होता है। पथ्य दूध और चावल देना चाहिये।

यकृत और प्लीहा रोग

पेटमें दाहिनी तरफ प्लीहा होता है। यह बढ़ जाता है तो अग्नि मन्द पड़ जाता है। शरीरका रंग फीका और सफेदसा हो जाता है। मल कठिन तो जाता है। साथमें थोड़ा थोड़ा ज्वर भी रहने लगता है। इसके लिये दिनमें दोबार गोमूत्रका प्रयोग करना चाहिये। पथ्य दूध और भात। इसके सिवाय दिनमें दो-बार प्लीहाके ऊपर भाफ भी देना चाहिये। इसी प्रकार यकृतकी भी चिकित्सा करनी चाहिये।

कृमि रोगमें

पेटके अन्दर बालकोंके और बड़े मनुष्योंके कीड़े पड़ जाते हैं। ये छोटे भी होते हैं और बड़े भी। इससे मल अत्यन्त कठिन हो जाता है। इसके लिये दिनमें दो बार गोमूत्रका सेवन कराना चाहिये। प्रायः देखा जाता है कि पशुओंके बच्चोंके शरीरमें जूं पिस्सू या ऐसेही किस्मके कीड़े पड़ जाते हैं। पशुओंके हो क्यों, हमारे यहांकी गन्दी आलसी और काम धन्धेमें ज्यादा फँसी रहनेवाली औरतोंके बच्चोंके माथे तथा कपड़े लत्तेमें भी जूँएं पड़ जाती हैं। उनको दूर करनेके लिये गोमूत्रसे माथा या सारा शरीर अच्छी तरह धो डालना चाहिये।

जीर्ण ज्वरमें

जोरसे बुखार आजाना अच्छा, मगर शरीरके अन्दर हल्का बुखार रहना बहुत बुरा है। यह जाता भी है कई उपाय करनेसे। इसमें दोपहरको थोड़ा थोड़ा ज्वर आजाता है। यकृत् और प्लीहामें वेदना होती है। आँखोंके कोने सफेदसे हो जाते हैं। मल कठिन हो जाता है और उसका रंग खराब होता है। इसके लिये दिनमें दो बार गोमूत्रका सेवन कराना चाहिये।

शूल रोगमें

पेटमें शूल चलते हैं यानी कठिन वेदना होती है, जिससे रोगी बेचैन हो जाता है। इसके लिये जिस वक्त प्रबल वेदना हो उसी वक्त गोमूत्रका सेवन करना चाहिये। मात्रा माशासे लगाकर ४ तोले तककी है। इसमें मल भी कठिन और विवर्ण हो जाता है, जिसको गोमूत्र ठीक कर देगा।

पेटके दर्द और गड़गड़ाहटमें

जब कि मलका अंश पेटमें रह जाता है, तब पेटमें थोड़ी थोड़ी पीड़ा होती है और पेट गड़गड़ किया करता है। मल सख्त हो जाता है और उसका रंग भी खराब हो जाता है। ऐसे समयमें गोमूत्रको कुछ गरम करके पीना चाहिये अथवा उसे गरम जलमें रखकर गरम कर लेना चाहिये। इस तरह दिनमें दो बार सेवन करना योग्य है।

सूजन पर

शोथ यानी सूजन पर गोमूत्रको गरम करके पिलाना चाहिये। चूंकि सूजन कई प्रकारकी होती है, इसलिये इसका थोड़ा खुलासा करदेना भी ठीक होगा। पित्तकी सूजनमें दूधका भोजन करनेवाला निशोत्ता, गिलोय, त्रिफला के क्वाथको गोमूत्रमें मिलाकर और एक तोला त्रिफलाका चूर्ण डालकर पीवे। कफकी सूजनमें पीपल, शक्कर, पुरानी खल, सहजनाकी छाल, हल्दी इनका लेप करे और कुलथी सोंठको पानीमें या गोमूत्रमें डालकर सेचन करे। सांठी, देवदार, सोंठ, इनके क्वाथमें अथवा केवल गोमूत्रमें युक्त किया हुआ गूगल सूजनका नाश करता है। गूगलको गोमूत्रके साथ खावे तो सूजनमें बहुत लाभ होता है।

नये आविष्कार

१—आँख के बदले आँख

अबतक 'आँखके बदले आँख' की कहावत वाणीका ही विषय था, किन्तु इधर कुछ दिन हुये, वैज्ञानिकोंने इसको प्रत्यक्ष करके भी दिखा दिया।

हालकी बात है कि लंडनके दक्खिनी अस्पतालमें एक लड़कीका इलाज हुआ जिसकी एकही देखनेवाली आंख खराब हो रही थी। शालाक्य तंत्रियोंने सोचा कि इसको निकाल दी जाय और दूसरेकी आंखकी कनीनिका लेकर इसकी आंखमें लगा दी जाय तो आसन्न दोष दूर हो जायगा।

एक रोगीकी कनीनिका इसलिये अस्पतालमें सुरक्षित रखी थी कि उस रोगीकी आंखका नष्ट होजाना निश्चय था। वही कनीनिका इस लड़कीकी कनीनिकासे बदल दी गयी। दस ही सप्ताह पीछे लड़की बहुत अच्छी तरह देखने लगी

२—सर्प-विष औषध है ?

सर्प-विष, प्राण-हर भी है और प्राणदाता भी। वात और कफसे उत्पन्न रोगोंपर जब रोगी मरणासन्न हो जाता है, सर्प-विषकी एक सूचिकाभर मात्रा गजबका असर दिखाती है।

हैजेके ऐसे असाध्य रोगी जिनको खाटसे नीचे उतारकर अन्तिम दानादि करा दिया गया था, जिनके बचनेकी कोई आशा नहीं थी सर्प विष और उसके मिश्रणोंसे बनी हुई औषधियोंके प्रभावसे निरोग हुए हैं। सन्निपातके रोगी जिनके शरीर ठंडे पड़ गये थे, सर्प-विषके प्रभावसे अच्छे हो गये हैं।"

मतलबके सवाल जवाब

प्रश्न—कोष्ठबद्धता कैसे दूर हो ?

उत्तर—रेचक औषधियोंके स्थानपर रेचक खाद्य पदार्थोंकाही व्यवहार इस रोगके लिये विशेष फलदायक सिद्ध होता है। सर्वप्रकारकी सब्ज़ियां, पूरे गेहूंका दलिया तथा गदरे फल, रेचक खाद्य वस्तुएं हैं। इसके अतिरिक्त शौच कार्य्यके बाद नित्य अपने पेड़ू और पेटको कमसे कम १०० बार इस प्रकार सिकोड़े और छोड़े कि पेट सिकोड़ते और फुलाते समय सांस भी छोड़ता और खींचता रहे तथा यह साधन नित्यप्रति शौचके बाद करते रहनेसे, कोष्ठबद्धताकी शिकायत कभी न होगी और यदि होगी भी तो शनैः शनैः दूर हो जायेगी।

प्रश्न—शरीर कैसे मोटा हो ?

उत्तर—कुछ लोगोंको शरीर मोटा करनेकी भी फिकर रहती है, हालाँ कि यह उनकी अज्ञानता है, फिर भी यह जानना उनके लिये लाभदायक हो सकता है कि दूध, मलाई, घी, तेल, स्टार्च शकर और चावल, ऐसे पदार्थ हैं जिनके अधिक प्रयोगसे शरीर मोटा होसकता है। पैरोंको मोटा करनेमें तिलका तेल अधिक सहायक होता है।

प्रश्न—आखोंकी ज्योति किन-किन कारणोंसे क्षीण होती है ?

उत्तर—वैसे तो यह अङ्ग स्वभावत कोमल होनेके कारण, शारीरिक स्वास्थ्यमें तनिक भी हेर-फेर होजानेसे रोगी हो सकता है और उसकी नैसर्गिक ज्योतिको भी क्षति पहुँच सकती है किन्तु नेत्रोंकी ज्योति क्षीण होनेके कुछ प्रधान कारण निम्नलिखित हैं—

१—दिनमें कृत्रिम ज्योतिका प्रयोग करना।

२—अति तीव्र जैसे बिजलीकी कड़ी रोशनीमें सदैव कार्य्य करना।

३—सदा कोष्ठबद्धताकी शिकायत रहना।

४—लेटकर पढ़ना।

५—त्राटक करना।

६—पलकोंको अधिक न मारते रहना।

७—रातमें अधिक जागना।

वैज्ञानिक संसारके ताजे समाचार

१—रबरके समान लचीला शीशा

वियनाके वैज्ञानिकोंने लचीला शीशा बनानेमें सफलता पाई है। इसको खींचकर या मोड़कर तोड़नेके लिये कई मन बोझके बराबर ताक़त लगानी पड़ेगी परन्तु खौलते पानीमें कुछ समयतक रखनेसे यह इतना नरम हो जाता है कि इसे आप जिस तरह चाहें ऐंठ सकते हैं। देखनेमें साधारण शीशेसे यह किसी प्रकार भिन्न नहीं है, केवल लचीला होता है। मोटरकारोंकी खिड़कियोंमें और सामने इसे लगाया जायगा। अमरीकाके सिनेमा–केन्द्र हॉलीवुडमें अभी हालमें इस शीशेका ताल–वृक्ष बनाकर एक बरामदे की शोभा बढ़ायी गयी थी।

२—जले हुए नोटसे जालसाजी पकड़ी गयी

अभी हालमें जब कुछ जालसाजोंपर अमरीकाकी पुलिसने छापा मारा तो देखा कि बदमाश रफूचक्कर हो गये थे और वहां केवल जले हुए कुछ काग़ज़ पड़े थे। शक था कि वे व्यक्ति जाली नोट बनाया करते थे। पुलिसने तुरन्त वैज्ञानिक विशेषज्ञोंको बुलाया। एकने अपने पराकासनी कैमरेसे ३०० झुलसे और जले पुरज़ोंका फोटो उतारा। यद्यपि आँखसे देखनेपर ये जलकर प्रायः राख हो गये थे, तो भी कुछ पुरज़ोंके स्पष्ट चित्र उतर आये, और उनसे सिद्ध हुआ कि ये जाली नोट थे। इस प्रकार जालसाज़ोंकी सज़ा हो सकी। बात यह है कि पराकासनी प्रकाशमें काग़ज़ और विविध रंगकी रोशनाइयोंकी राख विविध रंगों की चमकती है, यद्यपि आंखको साधारण प्रकाशमें सब कालाही काला दिखलाई पड़ता है।

३—कौनसा घोड़ा जीता

जीतनेवाले घोड़ेको जो इनाम मिलता है सो तो मिलताही है, घोड़ोंके हार-जीतपर लाखोंका लेन-देन हो जाता है। यह युग तो जुआका युग है। कौन–सा घोड़ा जीतेगा इसपर लाखोंकी बाज़ी लगती है। परन्तु कौनसा घोड़ा जीता, इसका निर्णय करना कभी–कभी बहुतही कठिन होजाता है क्योंकि कभी–कभी प्रथम और द्वितीय घोड़ोंमें केवल कुछ इञ्चोंका ही अन्तर रहता है। इसलिए अब बड़े घुड़दौड़ोंमें सिनेमा–चित्र खींचकर तय किया जाता है कि कौन–सा घोड़ा जीता इससे प्रत्यक्ष दिखलाई पड़ता है कि उस समय घोड़े कहाँ–कहाँ थे, जब प्रथम घोड़ेकी नाकसे रस्सी छू गयी। यदि दो घोड़े इञ्च, दो इञ्च, भी आगे पीछे रहते हैं तो चित्रमें यह बात स्पष्ट दिखलाई पड़ती है। फ़िल्मके डेवेलप करने और उससे प्रवर्द्धित चित्र छापनेमें कुल दो मिनट समय लगता है।

४—सत्तर मनका कैमेरा

पांचसौ मनके आरोपपर सत्तर मनका कैमेरा अभी हाल में एक व्यक्तिके निजी वेधशालामें लगाया गया है। डाक्टर गुस्टावस डब्ल्यू० कुकका इरादा आकाशका मानचित्र फोटोग्राफ़ीसे बनानेका है और इसीके लिये यह कैमेरा उन्होंने विशेष रूपसे बनवाया है। इस कैमेरेमें बीस इञ्च चौड़े चौबीस इञ्च लम्बे प्लेट लगेंगे। डाक्टर कुक आकाश-गङ्गाके फ़ोटोसे कार्य आरम्भ करेंगे।

५—मोटरमें भागनेसे भी चोर न बचेगा

दुनियाँमें सबसे तेज़ मोटर 'ब्लू बर्ड' के सञ्चालक सर मैलकम कैंटबेलने एक नया आविष्कार किया है। यह एक फ़ौलादका बना डंडा है जिसके सिरेपर चंगुल लगा है। पुलिस अपनी मोटरमें इसको आगे लगाये रहेगी और इसका सञ्चालन मोटरके भीतरसे ही कर सकेगी। जब कोई चोर मोटरमें भागेगा तो पुलिस अपनी तेज़ मोटरमें बैठ उसे दौड़ायेगी और काफ़ी नज़दीक आ जानेपर अपने चंगुलवाले फ़ौलादी भुजदण्डसे भागती गाड़ीके पिछले पंपर या फ़ालतू पहियेको पकड़ लेगी।

—गो० प्र०

साहित्य-विश्लेषण

कविवर रत्नाकर

स्वर्गीय बाबू जगन्नाथदास "रत्नाकर" की रचनाओंका आलोचनात्मक परिचय। लेखक पं० कृष्णशंकर शुक्ल, एम० ए०, प्रकाशक, देवेन्द्रचन्द्र विद्याभास्कर, विद्याभास्कर बुक-डिपो, ज्ञानवापी, बनारस सिटी। सं० १९९२। मूल्य २।) मात्र। सजिल्द डबलक्रौन। पेजीके ३८६+४=३९० पृष्ठ।

कविवर रत्नाकरजी हम लोगोंकी तरह अपना ढिंढोरा आप पीटनेवाले साहित्यकारोंमें होते तो इस समय अपनी अनुपम योग्यता और प्रतिभाके दूने बलपर कीर्तिके कंगूरेपर पहुंच गये होते। परन्तु वह ख्यातिकी परवा नहीं करते थे। कविता उनके लिये आत्मानन्दकी वस्तु थी और थी भी अत्यन्त उच्च कोटिकी। जबतक वह हमारे साहित्य लोकको अपनी सूक्ति किरणोंसे आलोकित करते रहे, हम उनके मूल्यको समझ नहीं सके। और समझ भी कैसे सकते, वे सचमुच रत्नाकर थे रत्नोंकी खान थे। उनके पारखी हम न थे। उनके लिये जैसे जौहरीकी जरूरत थी, उनके जीते जी कोई पैदा न हुआ। उनके काव्यरत्नोंके जौहरी तो भविष्यमें होंगे जब वे देव दास, बिहारी, तोष और पजनेसकी पंक्तिमें बिठाये जायंगे और जब उनकी प्रतिभा इन कविवरों से भी अधिक ज्योति विकीरण कर सकेगी।

हमारे प्रस्तुत समालोचक पं० कृष्णशंकर शुक्लजी उन भावी समालोचकोंके लिये दागबेल डालनेवालोंमें होंगे। शुक्लजीने रत्नाकरजीका परिशीलन किया है और मर्म्मज्ञतासे किया है। उनकी अभिव्यंजन शैलियां, विभाव चित्रण भावव्यंजना और भक्ति भावनापर शुक्लजीने गंभीर वीचार किये हैं। आपकी विचारशैलीसे रत्नाकरके भावी आलोचकों को भारी सहायता मिलेगी इसमें तो सन्देह ही नहीं। मुझे तो आपकी आलोचना पढ़कर यह भावना उत्पन्न हुई कि शायद विस्तार भयसे शुक्लजी स्वयं अपने लिये सन्तोषदायक समीक्षा नकर सके। कहीं कहीं किंचित् मतभेद होते हुए भी हम यह मुक्त कंठसे कह सकते हैं कि आपकी आलोचना न्याय्य, सुसंगत और मार्मिक है।

अत्युक्ति वर्णन प्रसंगमें आपने रत्नाकरका यह कवित्त उद्धृत किया है—

रमत रमाके संग आनन्द उमुंग भरे
अंग परे थहरि मतंग अवराधेपै।
कहै रत्नाकर बदन द्युति औरै भई,
बूंदैं छई छलकि दृगनि नेह नाधे पै।
धाये उठि बार न उबारनमें लाई रंच
चंचला हूं चकित रहीहै बेग साधे पै।
आवत वितुंडकी पुकार मग आधे मिली,
लौटत मिल्यो त्यौं पच्छिराज मग आधे पै।

यहां यद्यपि साधारणतया कारणसे पहले कार्य्य होना प्रकट होता है और अतिशयोक्ति समझी ही जानी चाहिये, तथापि परमात्माके सगुण रूपके सम्बन्धमें कथित होनेसे यह अत्युक्ति नहीं है। हाथी चिग्घाड़ता है और वायुमंडलमें शब्दकी गति तेज है। यदि एक सेकंडमें ११०० फुट मानें तो अत्यन्त धीमी है। यदि प्रकाशके वेगके समान मान लें, तो १ लाख ८६ हजार मील प्रति सेकंड हो सकती है। प्रकाशके इतने वेगवान होते भी कई तारोंसे लाखों बरसमें प्रकाश आता है। वैकुण्ठलोक कहां है, इसका तो पता नहीं है परन्तु उसकी दूरी और

"तदेजति तन्नेजति तद्दूरं तद्वन्तिके"

"अनेजदेकं मनसोजवीयो, नैनद्देवा आप्नुवन्पूर्वमर्षत्"

परमात्माके सगुणरूपकी जवीयता दोनों हदद्रजेकी है ही, कि आवाज़के आरम्भमें चल पड़े और खतम होनेके पहले पहुंचकर उद्धार किया, फिर लौटती बेर आधी दूरपर गरुड़ मिले। यदि तड़िच्चुम्बकीय लहरोंपर आवाज चली तो गरुड़की गति उन लहरोंके बराबर या कुछ ही अधिक हुई और भगवानकी गति तो इन सबसे अत्यधिक वेगवती हुई।

परमात्माकी कल्पना करनेवाले इस वेगको परमात्माकी शक्तिकी तुलनामें किसी गिनतीमें न समझेंगे। अतः प्राकृत घटनाओंके सम्बन्धमें जो बात अत्युक्ति होगी वह परमात्मासंबन्धी वर्णनमें स्वभावोक्ति होगी।

परन्तु समीक्षकका ईश्वरवादी होना आवश्यक नहीं है। जो परमात्मशक्तिका कायल नहीं है, वह रत्नाकरजीकी उपर्य्युक्त उक्तिको अतिशयोक्तिके सिवा और कुछ नहीं कह सकता।

यह ग्रंथ रत्नाकरजीका बड़ा अच्छा परिशीलन है। प्रत्येक साहित्य-प्रेमीके पढ़ने लायक है। रा० गौड़

नवंबर १९३६
भाग ४४

प्रयाग की विज्ञान-परिषद् का मुख-पत्र, जिसमें आयुर्वेद-विज्ञान भी सम्मिलित है

संख्या
मूल्य ।

Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces & Central Provinces, for use in Schools and Libraries.

विज्ञान

पूर्ण संख्या
२६०

वार्षिक मूल्य ३)

नोट—बदले के सामयिक पत्रादि, लेख और समालोचनार्थ पुस्तकें, यदि वे आयुर्वेद पर न हों, तो 'संपादक विज्ञान, बनारस शहर' के पास भेजे जायँ। अन्यथा वे स्वामी हरिशरणानंद, पंजाब आयुर्वेदिक फ़ारमेसी, अकाली मार्केट अमृतसर के पास भेजे जायँ।

प्रबंध-संबंधी सब पत्र तथा मनीआर्डर 'मंत्री, विज्ञान-परिषद, इलाहाबाद' के पास भेजे जायँ।

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते,

विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ०।३।५॥

भाग ४४ | प्रयाग । वृश्चिकार्क, संवत् १९९३ वि० । नवम्बर, सन् १९३६ ई० | संख्या २

मङ्गलाचरण

यो विज्ञाने तिष्ठन् विज्ञानादन्तरो, यं विज्ञानं न वेद,
यस्य विज्ञान ७ शरीरम्, यो विज्ञानमन्तरो यमयति,
एष त आत्मा अन्तर्य्यामि अमृतः ॥ [बृह० ३।७।२२]

जो विज्ञानमें रहते हुए (भी) विज्ञानसे भिन्न और बाहर है, जिसको विज्ञान नहीं जानता, विज्ञान जिसका शरीर है, जो विज्ञानको भीतरसे अपने काबूमें रखता है, यह तेरा आत्मा अन्तर्यामी और अमृत है ।

प्रेत-माध्यमोंकी धूर्त्तताका भंडाफोड़

(श्री० 'विश्वासहीन')

धूर्तोंकी पहुंच कहां नहीं हो सकती ? उनके लिए तो सभी जगहें सुगम हैं; अमरीका, ग्रेट ब्रिटेन, जरमनी, फ्रांस सभी जगह प्रेत-विद्याकी रोटी खानेवाले मिलते हैं। परन्तु वहां जब वैज्ञानिक किसी प्रेत-माध्यमके पीछे पड़ जाता है तब साधारण परीक्षा करके ही वह नहीं छोड़ देता। आधुनिक विज्ञानके नवीनतम साधनोंकी वह शरण लेता है। सुननेमें आया था कि जरमनीमें एक विचित्र प्रयोगशाला बनी है जिसमें अँधेरेमें ही फोटो लिया जाता है और जहाँ सूक्ष्म विद्युत-यंत्र लगे हैं जिनके द्वारा कई एक प्रेत-माध्यमों की ठगीका भंडाफोड़ हुआ है। पापुलर सायंस मंथलीने अपने संवाददाताको जरमनी भेजकर इसका विवरण मँगाया था। उस संवाददातकी रिपोर्ट कुछ दिन हुए उसी मासिक पत्रिकामें छपी थी। पाठकोंके मनोरंजनार्थ उनका संक्षिप्त विवरण यहां दिया जाता है।

बर्लिनके एक बँगलेकी बड़ी कोठरीमें घोर सन्नाटा छाया हुआ था। वहीं अँधेरेमें कुछ व्यक्ति चुप्पी साधे बैठे थे। पालिश की हुई कुर्सियोंकी रूपरेखा-मात्रका आभास दिखलाई पड़ रहा था। इस समहसे कुछ दूरपर माध्यम बैठी थी। वह गहरी साँस ले रही थी। उसने प्रतिज्ञा की थी कि उस दिन वह प्रेतोंको बुलाकर उनके अस्तित्वका प्रत्यक्ष प्रमाण देगी। वस्तुतः भूतोंके खटखटानेका शब्द सुनाई पड़ने लगा। एक दर्शक डरके मारे चिल्ला पड़ा। एक भारी-सी कुरसी हवामें उठ गयी, मानो कोई अप्राकृतिक शक्ति उसका संचालन कर रहीहो। दर्शकोंके सरोंके ऊपर से यह कुरसी हवामें उड़ती हुई चली गयी !

दर्शकोंका चेहरा पीला पड़ गया; उनमेंसे केवल एक शांत था। उसने चुपकेसे अपना हाथ बढ़ाया। क्षणमात्रके लिये कोठरी चमक उठी, मानों बिजली कौंध गयी—कैमेरेने इतनेहीमें फोटो खींच लिया। डेवेलप करनेके बाद फोटोग्राफने एक दूसरा ही किस्सा बयान किया, जिसकी दर्शकोंके उत्तेजित मस्तिष्कोंमें नाममात्र भी धारणा न थी। कुरसी तो अवश्य हवामें थी, परंतु मज़बूत और कौशलसे छिपाये गये तारपर चल रही थी !

कुछ माध्यम' तो जान-बूझकर, विश्वासी लोगोंसे धन उपार्जन करनेके लिए इस प्रकार धोखा देते हैं। परंतु कदाचित् ऐसे भी माध्यमोंकी संख्या कम नहीं है जो भ्रमवश विश्वास करते हैं कि वे वास्तविक माध्यम हैं और उनपर प्रेत उतरते हैं।

इस प्रकारके आश्चर्यजनक कार्य दिखलानेवालोंकी जांचके लिये जरमनीके प्रसिद्ध जीव-विज्ञानवेत्ता और अध्यात्मविद्या-कोविद, डाक्टर श्नेडरने हालमें ही एक विचित्र प्रयोगशाला बनवायी है।

इस प्रयोगशालामें माध्यम विचित्र-विचित्र वैज्ञानिक यंत्रोंके सामने अपना कार्य दिखलानेके लिये बुलाये जाते हैं। साधारणतः डाक्टर श्नेडर इन यंत्रोंको छिपा रखनेकी चेष्टा नहीं करते। इसलिये उन माध्यमोंमेंसे जो जानबूझ कर धोखा देते हैं केवल वे ही परीक्षा देने आते हैं जो बड़े कड़े दिलके होते हैं। इनसे कहीं अधिक संख्यामें, और अधिक प्रसन्नताके साथ, माध्यम आते हैं जो वस्तुतः विश्वास करते हैं कि उनपर भूत उतरता है। डाक्टर श्नेडरका सबसे अधिक उपयोगी यंत्र वह है जिससे पूर्ण अधिकारमें सिनेमाचित्र उतरता है। इससे प्रत्येक क्षणका सच्चा चित्र उतरता रहता है और केवल इसका ही पता नहीं चलता कि प्रेत क्या कर रहे हैं, परंतु इसका भी सूक्ष्म रीतिसे पता चलता है कि माध्यम क्या कर रहा या कर रही है। अंधेरेमें फोटो खींचनेकेलिये या तो पराकासनी (अल्ट्रा-वायलेट) या उपरक्त (इनफ्रा-रेड) प्रकाशका उपयोग किया जाता है। ये प्रकाश आंखको दिखलाई नहीं पड़ते, परंतु इनसे फोटो खींचा जा सकता है। पराकाशनी प्रकाशसे तो साधारण प्लेटोंपर ही फोटो उतर आता है। परन्तु उपरोक्त प्रकाशसे फोटो लेनेवाले प्लेटोंका आविष्कार अभी हाल हीमें हुआ है। डाक्टर श्नेडरने विज्ञानके नवीनसे नवीन शक्तियोंका प्रयोग किया है।

जब माध्यमोंकी बैठक होनेको होती है तब कमरेसे साधारण प्रकाश बुझा दिया जाता है। परन्तु विशेष लैंपों-से निकले पराकासनी प्रकाशसे सारा कमरा भर उठता है। यह प्रकाश कई बिजलीके लैंपोंसे निकलता है जिनपर ऐसा काला शीशा लगा रहता है कि साधारण प्रकाश बाहर नहीं निकल सकता। केवल पराकासनी प्रकाश ही निकल पाता है। इन लैंपोंपर शीशेके लेंज़के बदले बिल्लौरका लेंज़ लगा रहता है, क्योंकि शीशा पराकासनी रंगके लिये अपारदर्शक होता है। मेजके पास माध्यम बैठती है। उसकी आंखोंपर काली ऐनक लगा दी जाती है जिससे पराकासनी प्रकाश से उसकी आंखें खराब न हो जायें। सिनेमामशीनसे माध्यमकी प्रत्येक चालका फोटो उतारा जाता है। कैमेरा इस स्थितिमें रक्खा जाता है कि माध्यमके पीछे टंगी घड़ीका भी फोटो उतरा करे। घड़ीमें सेकंडवाली सुई बहुत बड़ी लगी रहती है। फोटोग्राफोंमें इस सुईको देखनेसे स्पष्ट पता लग सकता है कि किस समय माध्यमने क्या किया।

इस यंत्रसे थोड़े ही दिन हुए प्रत्यक्ष प्रमाण मिला कि किस प्रकार एक माध्यम अपनेहीको अनजानमें धोखा दिया करती थी। वह स्त्री एक दिन डाक्टर श्नैडरके पास आयी और उनको विश्वास दिलाना चाहा कि वस्तुतः उसपर प्रेत उतरता है। अँधेरेमें जब वह छोटे मेजपर हाथ रखती थी तो मेज हाथके साथ उठ आता था। जब पराकासनी प्रकाशमें इस स्त्रीका सिनेमा-चित्र लिया गया तब पता चला कि वह भद्दी रीतिसे धोखा दे रही थी। चित्रमें उसके अंगूठे स्पष्टरूपसे मेजके नीचे दिखलाई पड़ते थे और जैसे दूसरा कोई मेज़ उठाता उसी तरह वह भी उठाती थी। जब उसे फोटोग्राफ दिखलाया गया तो वह बड़ी कुपित हुई। कहाकि मैं अंगूठेसे हरगिज़ मेज नहीं उठाती। परंतु जब पूछा गया कि आखिर अंगूठे मेजके नीचे क्यों लगाये गये तो कुछ भी उत्तर न दे सकी।

यदि माध्यम चालाक हो तो वह बड़े आश्चर्यजनक कार्य दिखला सकती है चाहे उसके हाथोंको बगलवाले व्यक्ति पकड़े ही क्यों न रहें। जरा-सी हाथकी सफाईसे वह अपने हाथोंको छुड़ा सकती है और अपने एक पड़ोसी का हाथ दूसरेको पकड़ा सकती है, तब मेज़पर रक्खी तुरही 'अपने-आप' बजने लगती है और दर्शकोंके मुखड़ोंको प्रेतकी-सी अंगुलियां छूती हुई निकल जाती हैं। इसलिये डाक्टर श्नैडरने बिजलीका कनेक्शन रक्खा है जिसको चतुरसे चतुर हाथकी सफाई दिखलानेवाली जादूगरनियां भी धोखा नहीं दे सकतीं। माध्यमका बिजलीसे इस प्रकार कनेक्शन कर दिया जाता है कि यदि वह मेजपर रक्खे हुए, किसी भी वस्तुको अपने हाथसे छूए तो बिजलीकी धारा चलने लगेगी और तुरंत मैगनीशियमकी बुकनी भकसे जल जायगी, जिससे फोटो खिंच जायगा और उसीका भंडाफोड़ हो जायगा।

डाक्टर श्नैडरकी प्रयोगशालामें एक बार ऐसी बात हुई जिससे डाक्टर श्नैडर भी चक्करमें पड़ गये। एक प्रसिद्ध माध्यमकी बैठक होते समय भूतका रोमांचकारी चीत्कार सुनकर दर्शक डर गये। यह बोली ऐसी विचित्र थी कि न तो यह किसी प्राणीकी हो सकती थी और न किसी यन्त्रकी ही. सभीने कहा कि यह चीत्कार सुनाई अवश्य दिया था, केवल एक व्यक्तिने कहा कि उसने तो कुछ नहीं सुना था। इससे डाक्टर श्नैडरको इस चीत्कारके भेद पाने का सूत्र मिल गया। उन्होंने उस कोठरीमें माइक्रोफोन और शब्द-लेखक लगा दिया और बैठकको दुबारा करवाया। कार्यवाहीके मध्यमें वही बीभत्स चीत्कार फिर सुनाई पड़ा। जब बैठक समाप्त हुई तब रेकार्डोंकी जाँच बड़ी उत्सुकतासे की गयी। परन्तु उस विचित्र शब्दका नाम मात्र भी पता नहीं था, यद्यपि उपस्थित व्यक्तियोंमेंसे प्रत्येककी बोली रेकार्डमें सुनाई पड़ रही थी। केवल एक परिणाम इससे निकल सकता था—यही कि चीत्कार हुआ ही नहीं था, केवल लोगोंको भ्रम हुआ था।

इस तरहकी बातका कारण बतलाना असम्भव नहीं है। कितनेही अच्छे हों तो भी मनुष्यकी आँख और कान पूर्णतया दोषरहित यन्त्र नहीं हैं—विशेषकर अन्धेरेमें चित्त शान्त नहीं रहता परन्तु एक साथही माध्यम कई एक व्यक्तियोंको एक साथही कैसे ठग सकती है—या ठग सकता है—यह बतलाना अधिक कठिन है। तो भी यह जानी हुई बात है कि ऐसा होता है। इसीको कहते हैं "सामूहिक वशीकरण।"

परन्तु प्राणरहित वैज्ञानिक यन्त्रोंको धोखा देना संभव नहीं है। इन यन्त्रोंसे दिनबदिन माध्यमोंकी धूर्त्तताका पता लग रहा है।

जूतोंके फीतोंके निर्माणके लिये योजना

(लाला श्री[illegible]जी अग्रवाल मन्त्री असोसियेशन फोर दी डेवलपमेन्ट ऑफ स्वदेशी इन्डस्ट्रीज़ दिल्लीद्वारा संग्रहीत तथा पं० ओंकारनाथ शर्माद्वारा लिखित)

हमारे देशमें अंग्रेजी शिक्षाके बढ़नेके साथही बाबू सम्प्रदायके लोगोंमें अंग्रेजी जूतोंको बाँधनेके फीतों अर्थात् तस्मोंका भी प्रतिदिन खर्चा बढ़ताही जा रहा है। ये फीते अकसर जापान और अन्य यूरोपीय देशोंसे मँगवाये जाते हैं। इनका बनाना कोई कठिन नहीं है, फिर भी समझमें नहीं आता कि इनके न बनायेजानेका क्या कारण है जब कि कपड़ेकी नयी-नयी मिलें प्रतिदिन धड़ाधड़ खुलती जा रही हैं। तस्मोंकी सालाना कितनी खपत है यह बतानेके लिये तो इस समय हमारे पास आंकड़े नहीं हैं लेकिन बाजारकी रंगत देखकर यह अवश्य कहा जा सकता है कि कई लाख रुपयेके फीते प्रतिवर्ष हमारे देशमें मँगाये जाते हैं।

संक्षिप्त निर्माण विधि—तस्मोंकी निर्माण विधि अत्यन्त सरल है। पहिले सूत ऐंठनेकी मशीनोंसे सूतको आवश्यकतानुसार ऐंठ लिया जाता है। फिर उस सूतको तस्मे बुनने वाली मशीनोंमें चलादिया जाता है, जिनमें इच्छानुसार फीते बनकर तैयार हो जाते हैं। इसके पश्चात् बुनेहुए फीतोंको इच्छित लम्बाईमें काटकर दोनों सिरोंपर धातुकी नोकें छोटे-छोटे प्रेसोंसे दबाकर लगादी जाती हैं। बस इतनेहीमें तस्मा तयार हो जाता है। जूतोंके लिये अक्सर तीन प्रकारके तस्मे बनाये जाते है, यथा—चपटे, गोल और चौड़े। प्रत्येक प्रकारके फीते बनानेके लिये अलहदा-अलहदा तरहकी मशीनें काममें लायी जाती हैं लेकिन वे सब एकही ढाँचे पर लगी होती हैं।

यन्त्र इत्यादिके खर्चेका अनुमान—८ घन्टे प्रतिदिन काम कर, तस्मोंकी लगभग ५५०० जोड़ियाँ तयार करनेके लिये जिनजिन यन्त्रों और औजारोंकी आवश्यकता पड़ेगी, उनकी सूची और खर्चेका अनुमान यहां दिया जाता है। जिन्हें इस विषयमें अधिक जाननेकी इच्छाहो वे संग्रहकर्त्तासे उपरोक्त पतेपर पत्रव्यवहार करें।

मशीनोंको जमानेके लिये ढाँचा

यह ढाँचा लोहेका बनाया जाता है, जिसकी लम्बाई लगभग १६ फुट होनी चाहिये और इसके पाये भी लोहेके मजबूत बने होने चाहिये। इस फ्रेमके ऊपर १४ मशीनें लगायी जा सकती है। प्रत्येक दो मशीनोंको चलानेके लिये एक बड़ा चक्का होना चाहिये, इस प्रकार १४ मशीनोंको चलानेके लिये ७ चक्कोंकी जरूरत पड़ेगी। ढांचेके ऊपर १४ मशीनोंको जमानेके लिये २८ ब्रेकट चाहियें जो गटरमें लगा दिये जावें और साथहीमें २८ ही लोहेके खंभे होने चाहिये जो १४ मशीनोंको आगेकी तरफसे सम्हाल लें। इसके अलावा प्रत्येक मशीनके लिये ढीली और पक्की पुलियोंका एक एक जोड़ा और धुरा भी चाहिये। उपरोक्त सब सामानका खर्चा ७०० रुपया होगा।

गोल तस्मे और फीते बनानेकी मशीनें

१—४ मशीनें ४ चक्के और १६ तकुओं सहित (प्रतिमशीन ३६० रु०) = ११४० रु०

२—४ मशीनें ३ हेड और २० तकुओं सहित (प्रति मशीन ३६६ रु०) = १३४४ रु०

३—२ मशीनें २ हेड और ४८ तकुओं सहित (प्रति मशीन ५५५ रु०) = ११११० रु०

४—२ मशीनें १ हेड और ६४ तकुओं सहित (प्रति मशीन ३९० रु०) = ७८० रु०

चपटे तस्मे और फीते बनानेकी मशीनें

५—२ मशीनें २ हेड और ४१ तकुओं सहित (प्रति मशीन ५१८ रु०) = १०३६ रु०

साज सामान

१—३००० रीलें, तकुओंके लिये ७ रु० प्रति सैकड़ाके भाव = २१० रु०

२—1010 सोकल (socles) रीलोंके लिये २ रु १५ आ० प्रति सैकड़ा = २१ रु०

३—२००० खिंचाव देनेके लिये बांट ६ रु ४$\frac{8}{84}$ आ० प्रति सैकड़ा = १२६ रु०

४—२८ किर्रे (change wheels) (प्रति किर्रा १ रु० ६$\frac{3}{4}$ आ०) = ३९ रु०

५—फुटकर साजसामान = १० रु०

कुल योग—६८१६ रु०

मशीनोंपर चुङ्गी और बीमा आदि ५० % के हिसाबसे ३६५० रु०

विजलीकी मोटर उपरोक्त मशीनोंको चलानेके लिये १$\frac{3}{4}$ अश्वबल (*H. P.*) ३०० रु०

तस्मोंके धातुकी नोकें लगानेके लिये मशीनें ४ प्रेस १४३ रु०

४ डाइयोंकी जोड़ी (फालतू) ३२ रु०

उपरोक्त मशीनोंको बैठानेका खर्चा ३०० रु०

उपरोक्त मशीनोंका रेलका किराया ४०० रु०

कुलयोग—११६४१ रु०

इन सब मशीनोंको एकदम खरीदना बहुत आवश्यक है। वैसे एकही प्रकारके तस्मे बनानेके लिये, यदि आरम्भमें चेष्टाकी जाय तो २००० रु० से अधिक खर्च न होगा। लेकिन इससे बहुत अधिक फायदेकी आशा नहीं की जा सकती।

कारखानेके लिये मकानः

कारखानेके लिये ३६ फुट लम्बा, २४ फुट चौड़ा २० फुट ऊँचा मकान काफी होगा। इतना बड़ा एक छतका मकान ४००० रुपयेमें तयार हो सकता है।

कारखानेका काम चलानेके लिये कर्मचारियोंका खर्चा निम्न प्रकारसे होगा।

१—विशेषज्ञ—५० रु० मासिकके हिसाबसे ५० रु०

२०—कारीगर-प्रत्येक २५ रु० मासिकके हिसाबसे ५०० रु०

४०—कुली-प्रत्येक १५ रु० के मासिकके हिसाबसे ६० रु०

मासिक वेतनका योग—६१०

सूतकी मिलोंमें काम करनेवाले साधारणतः इस फैक्टरी की मशीनोंको चला सकते हैं, और नये आदमी भी बड़ी आसानीसे सिखाये जा सकते हैं।

कारखानेके आमद और खर्चेका हिसाब

प्रथम वर्षमें आमद और खर्च लगभग निम्नलिखित प्रकारसे होगा।

खर्चा

१ कच्चेमालका खर्चा—

(क) १६ पौंड सूत जो एक दिनमें ५५२० तस्मोंकी जोड़ी तयार करनेमें खर्च होगा १ रु० ९ आ० ७ पा० पौंडकी दरसे २५ रु० ९ आ०

सूतका एक मासका खर्चा ७६७ रु०

(ख) धातुकी नोकें जो एक मासमें ५०५१ पौंड खर्च होंगी १२ आ २० पा० प्रति पौंड की दरसे १२६ रु०

२—एक मासका वेतन ६२५ रु०

३—यन्त्रोंको चलानेके लिये शक्तिका खर्चा ६५ रु०

४—किराया और कर इत्यादि २ % के हिसाबसे उपज पर १८ रु०

५—यन्त्र आदिकी मरम्मत १५० रु०

६—कारखानेकी इमारत पर छीजनकी लागत २ % के हिसाबसे ६ रु०

७—यन्त्र आदिकोंपर छीजनकी लागत १० % के हिसाबसे ९७ रु०

८—अन्य खर्चे २६ % के हिसाबसे जिसमें मालकी बरबादी आदि भी शामिल है २२५ रु०

कुल मासिक खर्चा—२०७९ रुपये

आमद

५६२० तस्मोंकी जोड़ियोंकी विक्रीसे प्रतिदिनकी आमदनी जिसमेंसे कमीशन और दलाली आदि काढ़दी गयी है, २०९९ पाई प्रति तस्मेकी दरसे ८४ रु० ४ आ०

एक मासकी आमदनी २५८८ रु०

एक मासका लाभ ५०९ रु०

एक वर्षका लाभ ६१०८ रु०

इस प्रकारसे पूँजीपर २४०१ की दरसे वार्षिक ब्याज मिल जाता है।

चेतावनी

इस समय इस देशकी मिलें तम्बे बनानेके योग्य सूत नहीं तयार करतीं, अतः यह सूत विदेशोंसे मँगवाना पड़ेगा।

दस करोड़का जहाज

(डा० गोरखप्रसाद डी० एस-सी०)

समाचार पत्रोंने खबर छापी है कि अटलांटिक महासागर पार करनेमें 'क्वीन मेरी' ने बाज़ी मार लिया। अब तक जितने जहाजोंने इस महासागरको पार किया था उसमें 'क्वीनमेरी' सबसे शीघ्रगामी निकला। पांच वर्ष इसके बननेमें लगे और लगभग दस करोड़ रुपया खर्च हुआ।

यद्यपि आविष्कारमें जरमनी और भारी-भारी इमारत और मशीन बनानेमें अमरीकी बढ़ा-चढ़ा है, तो भी जहाज बनानेमें स्कॉच लोगोंको कोई नहीं पा सका है। क्वीनमेरी' इनके इस कला-कौशलका सबसे अच्छा नमूना है। स्कॉच और अँग्रेज अपने इस सफलतासे इतने प्रसन्न हैं कि वे इसी तरहके एक और जहाज बनानेमें जुट गये हैं और उसे शीघ्रहीं तैयार कर डालेंगे।

'क्वीनमेरी' वस्तुतः दो जहाजा है जो एकके भीतर एक बने हैं। इन दोनोंके भीतर पेंदेके पास सर्वत्र इतनी जगह रक्खी गयी है कि आदमी खड़ा होकर चल सके। जहाजके अगल-बगल इन दोनोंमें लगभग २० फुट जगह है। पेंदेसे लगभग ४० फुटकी ऊंचाई तक जहाज इसी प्रकार दोहरा बना है दोहरा बनानेका अभिप्राय यह है कि यदि बाहरी खोल किसी प्रकार कहींसे फट भी जाय तो जहाजके भीतरी भागमें पानी न आ सके। इसी उद्देश्यसे बाहरी और भीतरी खोलोंके बीचका भाग १६० जल-अभेद्य भागोंमें बाँट दिया गया है, जिसमें अगर बाहरी खोल कहीं एक जगह फटे तो इन भागोंमेंसे केवल एक भाग ही पानीसे भर सके और इस प्रकार जहाज अधिक भारी न होने पाये। भीतरी खोलमें ही यात्रियों और नाविकोंके रहनेके लिये कोठरियाँ बनी हैं। दोनों खोलोंके बीच भी हजारों कोठरियाँ हैं परंतु उन सबमें दूकान, थियेटर भोजनालय, बैठक, स्नानागार, तैरनेके हौज हवाखोरीके मैदान, व्यायामशाला पुस्तकालय और बाटिकाएँ हैं।

एक हवाखोरीका मैदान लंडनके शाही महलसे—भी लंबा है। 'क्वीनमेरी' जहाज स्वयं इतना लंबा है कि यदि उसे सिरके बल खड़ाकर दिया जाय तो वह दुनियाके सबसे ऊँची मीनार ईफ़ल टॉवरसे भी चौंतीस फुट ऊंचा हो जायगा! जहाजोंमें अभीतक जितने इञ्जन लगे हैं उनसे कहीं बड़ा इञ्जन इसमें लगा है। ये दैत्याकार इञ्जन कुल मिलाकर २ लाख घोड़ोंकी शक्ति उत्पन्न करते हैं। क्वीनमेरी' में चार प्रोपेलर (चरखियाँ) हैं और प्रत्येकको पचास हजार घोड़ों की शक्ति मिलती है। इतनी शक्ति रहनेका परिणाम यह है कि इस जहाजका वेग बहुत है। 'क्वीनमेरी' बाजी मारने के लिये बनाया ही गया था और इस कामके लिये उसे अपनी सब शक्ति न लगानी पड़ेगी।

वह आसानीसे घंटे में ३२ नाविक मील जा सकता है। इसका मतलब यह है कि यदि जहाजका कप्तान चाहे तो वह समय-कुसमय इसको ३५ नाविक मील प्रति घंटेके वेगसे दौड़ा सकता है।

जहाजके कप्तान सर एडगर विटन 'क्वीनमेरी' का संचालन बैठे-बैठे एक छोटी कोठरीसे करते हैं जिसको वस्तुतः इस जहाजका मस्तिष्क समझना चाहिये। इस कोठरीकी घड़ियोंपर एक दृष्टि डालनेसे इतनी सारी बातोंका पता चल जाता है जितनी का पता दूतोंकी एक पूरी सेना रखनेपर भी न लगता। इस कोठरीमें बैठे ही बैठे जहाजके कोने-कोनेका पता प्रतिक्षण कप्तानको लगा करता है।

इतना ही नहीं, कप्तान सारे संसारसे बात कर सकता है, क्योंकि इसमें बेतार-के-तारके नौ यंत्र लगे हैं और ये सभी एक साथ ही चालित किये जा सकते हैं। इनमें सबसे बड़े यंत्रका एरियल ६०० फुट लंबा है। यात्रियोंके सुभीते के लिये तो ऐसे टेलिफोन लगे हैं जिनसे वे तटस्थ नगरोंसे बात कर सकते हैं। इनके अतिरिक्त ऐसे यंत्र भी हैं जिनसे यात्री संसारके किसी भी टेलिफोनवाले शहरसे बात कर सकते हैं। यह पहला ही जहाज ऐसा बना है जिसमें दूसरा प्रबंध है। इन बेतारवाले यंत्रोंमें बिजली पहुंचानेकी मशीनें दोहरी बनी हैं, जिसमें यदि एक बिगड़ जाय तो दूसरेसे काम चलता रहे। कुसमयके लिये बैटरी भी तैयार रहती हैं जो तुरंत उपरोक्त यंत्रोंमें लगा दी जा सकती हैं।

तार भेजने और लेनेके जो यंत्र हैं वे हाथसे नहीं चलाये जाते। इसलिये एक मिनटमें लगभग तीस संदेशे भेजे या सुने जा सकते हैं। हाथसे भेजनेमें एक संदेशके खटखटानेमें लगभग एक मिनट लग जाता। शीघ्रताकी आवश्यकता इसलिये पड़ती है कि 'क्वीनमेरी' को समाचार व्यक्तिगत संदेश, गर्मी-वर्षाकी रिपोर्ट, बाजारकी दर, और टेलीफोनसे बात-चीत इन सबको एक साथही हाथमें लेना पड़ेगा। जहाजके मस्तूलमें जो संत्री बैठेगा उसके लिये टेलीफोन और बिजलीकी घंटी लगी है और उसे जाड़ेके दिनोंमें गरम रखनेके लिये बिजलीकी अंगेठी भी। संत्रीका यह 'घोंसला' समुद्र तलसे १३० फुट ऊँचा बना है और अगले मस्तूलके भीतर बनी हुई सीढ़ीसे इसमें सन्त्री जाता है।

'क्वीन मेरी' चाहे जाड़ा हो चाहे गर्मी चाहे बरसात, बराबर यात्रा किया करेगी। विशेषज्ञोंका मत है कि दिन चाहे कैसा भी खराब हो क्वीन मेरी' अपने स्थानपर समयसे पहुंचा करेगी—लेट न होगी। यात्रियोंको न ओले और बर्फ की सरदी सहनी पड़ेगी और न ग्रीष्मकी गरमी, क्योंकि क्वीन मेरी' में बहुत अच्छा सुन्दर-मन्द-सुगन्ध वायु-यन्त्र लगा हुआ है। इससे हवाको छानकर पहले गर्द निकाल दिया जाता है। फिर उसे गरमीमें ठंडा करके, और जाड़ेमें गरम करके कोठरियोंमें बिजलीके एक बृहत्काय पंखेसे मोटे-मोटे पाइपोंद्वारा भेजा जाता है। नाचघर आदिमें जो हवा भेजी जाती है वह सुगन्धित भी कर दी जाती है। अपनी अपनी कोठरियोंमें यात्री लोग इस गर्म या ठंडी हवाको इच्छानुसार कमोबेश कर सकेंगे। बैठक और भोजनागारकी हवाको न्यूनाधिक करनेका भी पूरा प्रबन्ध रहेगा।

अन्य जहाजोंमें जितनी मजबूती मामूली तरहसे रक्खी जाती है उससे कहीं अधिक मजबूती 'क्वीन मेरी' में रक्खी गयी है। यही कारण है कि इसमें लोहेके बड़े मोटे चादर रक्खे गये हैं और उनको एकके-ऊपर-एक चढ़ाकर अच्छी तरह जड़ दिया गया है। प्रत्येक चल-अवयव बहुत भारी परन्तु साथही बहुत सच्चा बनाया गया है। इसमें चार दांतीदार पहिये प्रत्येक दस-दस हजार मनके हैं, परन्तु उनकी दाँतियाँ इतनी सच्ची कटी हैं कि उनमें कहीं भी इन्चके हजारवें हिस्सेसे अधिक फर्क नहीं पड़ा है। क्वीन मेरी' में अग्निसे रक्षाके लिये ऐसा प्रबन्ध है कि गधा भी उसके प्रयोगमें गलती नहीं कर सकता। अपनी कोठरीमें बैठे-ही-बैठे इस विभागके अध्यक्षको पता लग सकता है कि माल गोदाममें किसीने सिगरेटके लिये दियासलाई जलायी है। अध्यक्ष यदि चाहे तो क्षणभरमें इस मालगोदामके चारों ओर आगको रोकनेवाली दीवाल खड़ी कर सकता है और इस प्रकार मालगोदामको बाकी जहाजसे बिलकुल अलग कर सकता है। इसी प्रकार प्रत्येक रास्ता अग्नि-अभेद्य दीवारोंसे सुरक्षित है और बाकी जहाजसे अलग किया जा सकता है, और यह सब काम संरक्षक बैठे-बैठे अपनी कोठरीसे कर सकता है। प्रत्येक फर्शपर पाइप लगे हैं जिसमेंसे पानी बड़ी जोरके साथ निकल सकता है। विशेषज्ञोंका मत है कि 'क्वीन मेरी' में आग बुझानेका इतना अच्छा प्रबन्ध है कि इसमें यदि पेट्रोल भरा रहे और उसमें आग लगजाय तो उसे भी काबूमें किया जासकता है—यहाँतक कहा गया है कि बारूदमें भी आग लगजाय तो शायद 'क्वीन मेरी' के ये नल उसे बुझा डालेंगे।

प्रत्येक जहाजमें कुसमयके लिये कई एक नावें रक्खी रहती हैं और इनकी बनावट ऐसी होती है कि वे प्रचंड वायु से मथित समुद्रमें भी नहीं डूबतीं। 'क्वीन मेरी' में ऐसे जीवन-रक्षक नैयाओंकी संख्या २४ है। प्रत्येक नावमें इतने मुसाफिर आ सकते हैं जितने पुराने जमानेके जहाजोंमें भी नहीं आ सकते थे। इन चौबीसों नावोंमें मिट्टीके तेलके

(शेष पृष्ठ ४९ के नीचे देखिये)

आधुनिक फ़ैशनका टेबुललैंप

बिजलीके वास्ते

लकड़ीका बना यह टेबुल-लैंप बिल्कुल नये फ़ैशनका है। बहुत सरल यन्त्रोंसे ही यह बनाया जा सकता है, केवल एक फ्रेट-सॉ और सरल बढ़ईगीरीके कुछ औजारोंसे काम चल जायगा। प्लाइवुड* की भी आवश्यकता पड़ेगी। परन्तु यदि फ्रेट-सॉ न भी हो या प्लाइ-वुड न भी मिले, तो भी यह लैंप बनाया जा सकता है। दोनों रीतियोंका वर्णन नीचे दिया गया है। यह टेबुल-लैंप अपने निजीकाम, या उपहार या बेंचनेके लिये बहुत उपयुक्त है। डिजाइन सुन्दर होनेके कारण ऐसा लैंप खूब बिकेगा।

शीशमका) हो। बक्सके चारों बगलोंपर एकही प्रकार की नकाशी या चित्रकारी हो। बक्स यदि प्लाइवुडका हो तो इसमें झँझरी काटी जा सकती है। एक डिजाइन चित्र १ में दिखलाया गया है। झँझरी चोट लगनेसे टूट न जाय, इस ख्यालसे प्लाइवुडकी एक ओर सरेशसे मजबूत रंगीन कपड़ा चिपका देना अच्छा होगा। यदि प्लाइवुडके बदले बक्स साधारण लकड़ीका बनाया जाय तो इसपर पालिश करनेके बाद कोई चित्र रंग दिया जा सकता है। इसके लिये एक डिजाइन चित्र २में दिखलाया गया है। आजकल अमरीकामें
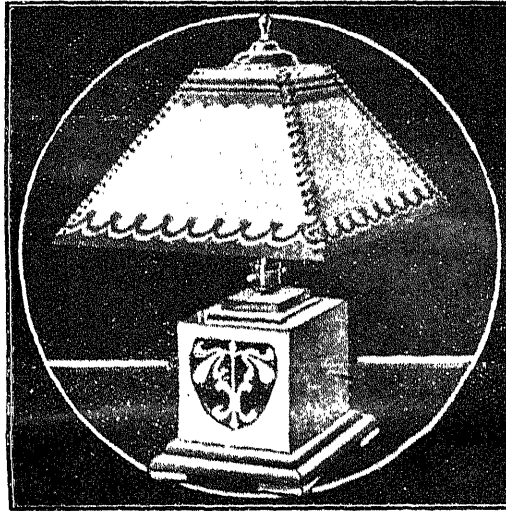
पाया—चित्रसे ही इस लैंपके बनानेकी रीति स्पष्ट हो जायगी। इसलिये ब्योरेवार वर्णनकी कोई आवश्यकता नहीं है। लैंपका पाया बक्स-नुमा है। बक्सकी नाप ४½ या ५ इन्च रक्खी जासकती है। लम्बाई, चौड़ाई और ऊंचाई बराबर रहे। पेंदा किसी भारी लकड़ीका (जैसे

'क्यूबिस्ट' फैशन चला है जिसमें सभी वस्तुओंकी रूप रेखायें सीधी रक्खी जाती हैं। क्या मकान, क्या कुरसी, क्या टेबुल-लैंप और क्या नकाशी सभीके निर्माणमें इसी बातका ध्यान रक्खा जाता है। यह फैशन अन्य देशोंमें भी चल निकला है और भारतवर्षमें भी बहुतसे लोग इसे

* पतली लकड़ी जो वस्तुतः लकड़ीके तीन परतोंको सरेशसे जोड़कर तैयार की जाती है। बाजार में ≶) या ।) प्रतिवर्ग फुटकी दरसे बिकती है।

इसे पसन्द करते हैं। यदि इस फैशनकी चित्रकारी लैंप पर करनी हो तो चित्र ३ से सहायता ली जा सकती है।
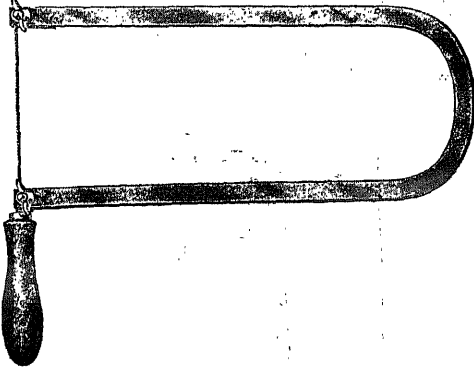
फ्रेट-सा, बारीक कामकी आरी

इसके लिये किसी हल्के रंगकी लकड़ी (जैसे तुन) का बक्स बनाकर उसमें किसी दूसरे रंगकी लकड़ी जैसे शीशम, या आबनूस और लालचन्दनकी पच्चीकारी करनी चाहिये। इसमें मेहनत पड़ेगी, परन्तु पच्चीकारीके बदले केवल रंग देनेसे किसीको यह फैशन पसन्द न आयेगा क्योंकि "क्यूबिस्ट स्टाइल" के पसन्द करनेवाले धनिक ही होते हैं।

अन्तमें, यदि बहुत शोख, परन्तु सस्ता काम बनाना हो तो ऐसे चित्रमोल लिये जा सकते हैं जो कागज़पर बने होते हैं और पालिश की हुई लकड़ीपर विशेष मसाला लगाकर उतार दिये जा सकते है। चित्र लकड़ीपर उतर जायगा

फ्रेट-सा को इस तरह काममें लाते हैं

और कागज़ अलग हो जायगा। इसको 'ट्रैंसफ़र डिज़ाइन' या केवल 'ट्रैंसफ़र' कहते हैं। ये और इनके उतारनेका मसाला प्रयोग विधि सहित बड़े शहरों में खरीदे जा सकते हैं, या ये (Messrs, Hobbies Ltd, Dercham, Norfolk, England से मँगाये जा सकते

चलनेवाले इञ्जन लगे हैं और उनकी सहायतासे ये नाव ६ मील प्रतिघन्टे जा सकती हैं। ये नाव तीस-पैंतीस फुट लंबी हैं और प्रत्येकमें १४५ मुसाफिर सवार हो सकते हैं। प्रत्येक में हमेशा भोजन, पानी, महताबी, बसूला कुतुबनुमा, रस्सी और दो बेतारके यन्त्र तैयार रक्खे रहते हैं।

यात्रियोंके मनोरंजनके लिये भी इस जहाजपर पूरा प्रबन्ध है। तैरनेके लिये दो झीलें कसरतके लिये तीन व्यायामशाला गेंद खेलनेके लिये मैदान, गरम पानीसे स्नान करनेके लिये प्रबन्ध अलग और बर्फका मजा उठानेके लिये प्रबन्ध अलग है। हवाखानेके मैदानमें तीन चक्कर लगानेसे पूरे एक मीलका टहलनाहो जाता है।

सौंदर्य पर भी वैसाही ध्यान रक्खा गया है। केवल सजावटमें ही ५९ तरहकी नायाब लकड़ियाँ लगी हैं। भोजनागारकी सीढ़ीके ऊपरवाली समूची दीवालपर अटलांटिक महासागरका चित्र बना है जिसपर 'क्वीन मेरी' की चलती हुई मूर्ति लगी है जिससे यात्रियोंको अपने जहाजकी स्थितिका ठीक पता प्रतिदिन लगा करता है। नाचघरकी रोशनी और बाजेमें ऐसा सम्बन्ध रक्खा गया है कि जैसे जैसे गानेका स्वर चढ़ता-उतरता है वैसे-वैसे रोशनीका रंग भी बदलता रहता है।

(एक अंग्रेजी लेखके आधारपर)

चित्र सब 'हॉबीज़ वीकली' से लिये गये हैं।

हैं। एक नमूना चित्र ४में दिखलाया जाता है।
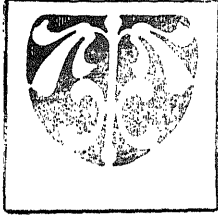
चित्र १—झँझरी काटनेके लिये डिज़ाइन
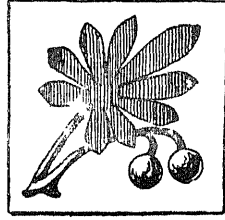
चित्र २—चित्र रंगनेके लिये एक डिजाइन।

बक्सनुमा पाया बनानेकी रीति चित्र २से पूर्णतया स्पष्ट हो जायगी। सादगीके ख़यालसे कहीं चूल नहीं रक्खा गया है। केवल लकड़ियोंको सच्चा चौकोर काटकर सरेशसे जोड़ और पेंचसे कस देना चाहिये। यदि चूल रक्खे जायँ तो काम ज्यादा मज़बूत बनेगा। पेंदीके किनारोंको गोल कर देना चाहिये और कोनोंपर 'गोड़ा' (लकड़ीके टुकड़े) लगा देना चाहिये।
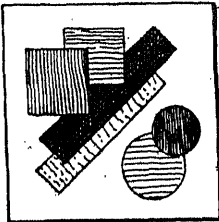
चित्र ३—पच्चीकारीके लिये डिज़ाइन
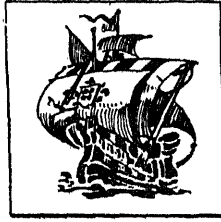
चित्र ४—ट्रैंसफरके लिये एक डिज़ाइन

पायेके सिरपर जो दो लकड़ियाँ लगी हैं वे क़रीब ३″ × ३″ और २″ × २″ की रहें। सरेशसे जोड़नेके बाद नीचेसे चार पेंच कसकर इनको स्थायी कर देना चाहिए। अब $\frac{1}{8}$″ व्यासका छेद ठीक बीचमें करना चाहिये। यह सिरके हिसाबसे सच्चा खड़ा (अर्थात् लंब) रहे। इसमें लैंप होल्डर कसा जायगा। इसलिये पहले लैंपहोल्डर खरीदकर उसीके अनुसार छेद करना चाहिये, जिसमें छेद ढीला न होने पाये। यदि 'बैटन-होल्डर'का प्रयोग किया जाय तो ढीले होनेका प्रश्नही नहीं रहता, क्योंकि ऐसा होल्डर ऊपर से तीन पेंच द्वारा कसा जाता है।

लैम्प होल्डर आदि—होल्डर ऐसा मोल लेना चाहिये जिसमें स्विच भी हो। फिर झाँप या शेडके लिये
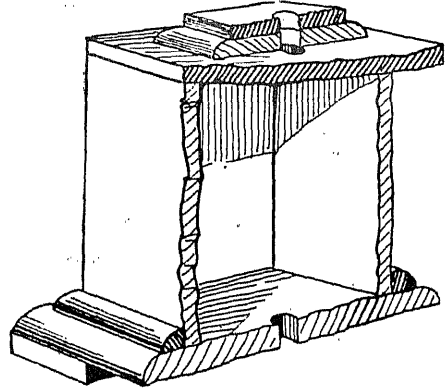
चित्र ५—पायेकी बनावट। भीतरी बनावट दिखलानेके लिए आधा भाग काटकर निकाल दिया गया है।

पीतलका बना-बनाया होल्डर बाज़ारमें बिकता है। इसके बीचमें जोड़ रहता है जिससे झाँपका मुँह इच्छित दिशामें तिरछा कर दिया जासके। झाँपकी मज़बूतीके लिये कड़े तारका ढाँचा स्वयं बनाना पड़ेगा। इसमें कोई कठिनाई नहीं पड़नी चाहिये। जहाँ कहीं दो तारोंको जोड़ना हो वहां एकको दूसरेपर चढ़ाकर पतले पीतलके तारसे बाँध देना चाहिये और राँगेसे जोड़ (या जोड़वा) देना चाहिये
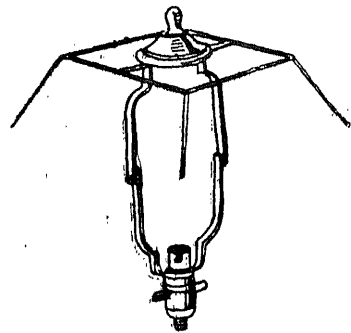
चित्र ६—शेड-होल्डर पर झाँपके ढांचेको कसनेकी रीति

शेड होल्डरकी ऊपरी टोपीको खोलकर, उसीमें इसे पहना कर, टोपीको कस देना चाहिये।

तार (फ्लेक्स) को लैंप होल्डर तक लेजानेकेलिये पहले इसको पेंदीके छेदमें और तब सिरके छेदमेंसे निकाल कर होल्डरमें कसना चाहिये।

झाँप—पार्चमेंट या उसी तरहके किसी काग़जको काट कर झाँप बनाना चाहिये। नीला या हरा रंग आँखोंको सुखदाई होता है, परन्तु कुछलोग पीला, नारंगी या लाल ही पसन्द करते हैं। २५″ × २०″ के काग़ज़से ऐसा झाँप बन सकता है जिसमें केवल एक जोड़ पड़े, काग़ज़को इस आकारका काटना चाहिये कि एक बगल आधा इञ्च चौड़ी पट्टी बढ़ी रहे। इसको लेईसे दूसरे किनारेपर चिपका देने पर झाँप तैयार हो जायगा। परन्तु यदि इच्छा हो तो काग़ज़ के चार टुकड़े काट लिये जायँ। छोटी सुंभी (पञ्च) से लगातार छेद प्रत्येक किनारेपर करके फ़ीतेसे बाँध देनेसे भी बहुत सुन्दर झाँप बन सकता है, जैसा फ़ोटोमें दिखलाया गया है।

झाँपके ऊपर और नीचेवाले किनारोंपर हाथसे कोई बेल बनादेनेसे झाँपकी सुन्दरताई बढ़ जायगी। एक नमूना चित्र ७ में दिखलाया गया है।
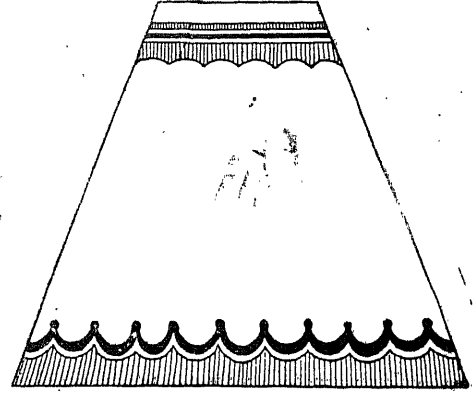
चित्र ७—झाँप पर रँगनेके लिये एक सरल परन्तु सुन्दर डिज़ाइन।

लकड़ीके सब कामपर बारीक रंग मारकर पालिश कर देना चाहिये। काले रंगका पालिश भी बड़ा सुन्दर जान पड़ता है।

छुट्टीके समय बच्चे क्या करें ?

(श्री राधारमण याज्ञिक, काशी)

(९) फुलवारी

बहुत बालकोंको पौधे लगाना, बोना, गोड़ना इत्यादि बहुत पसन्द आता है।

ऐसे बच्चोंकी एक अलग क्यारी नियत करदेनी चाहिये जहां कि वे अपना पौधा लगा सकें, फूल बो और सींच सकें। उन्हें एक छोटी सी खुरपी गोड़नेके लिये और एक छोटी सी बालटी सींचनेके लिये देदेनी चाहिये। वे अपनी फुलवारीमें अपने परिश्रमसे फूल आदि तैयार करेंगे, जो कि उनके मन्दिरकी पूजा आदिमें काम आवेंगे।

थोड़ा गेहूं, जव, चना आदि भी दे देना चाहिये और उन्हें बोना सिखा देना चाहिये। बस आप देखेंगे कि आपके छोटे-छोटे बालक छोटे-छोटे हाथोंसे काम कर रहे हैं। उनके शरीरसे पसीना निकल रहा है। और वे परिश्रम करनेमें एक दूसरेसे प्रतियोगिता कर रहे हैं।

इससे कृषि एवं बनस्पति शास्त्रकी तरफ उनकी प्रवृत्ति हो जावेगी और परिश्रम करनेसे उनका स्वास्थ्य भी अच्छा रहेगा। एक पन्थ दो काज।

(१०) पशु-पालन

बच्चोंमें पशु पालनकी स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है। कुत्तेके पिल्लों, बिल्लीके बच्चों, बकरीके छोटे छोटे बच्चोंके साथ लड़के खेलना बहुत पसन्द करते हैं, उन्हें वे खिलाते पिलाते हैं, उनके साथ सोते हैं तथा उनके सुख-दुःखमें सुख-दुःख का अनुभव करते हैं। इसलिये इस तरफ उन्हें प्रोत्साहित करना बहुत अच्छा है।

घरके पशुओंको बच्चोंमें विभक्त कर देना चाहिये । फिर देखिये किस प्रकार वे उनकी सेवा करते हैं । इससे पशु प्राणियोंके प्रति दया भाव बढ़ेगा और वे उनकी उपयोगिता का अनुभव करेंगे । जहाँ पशु न रक्खे जासकते हों वहां तोता आदि पक्षियोंसे ही काम चल सकता है ।

(११) नाटक करना

हमलोगोंमेंसे बहुत व्यक्तियोंने बचपनमें बालमण्डली द्वारा खेले हुए नाटकोंमें भाग लिया होगा । नाटक भी एक कला है और मनुष्य इस ओर स्वभावतः झुकता है । मनुष्य जीवनमें जितना उत्थान, पतन हुआ करता है, और जो कि सांसारिक परिस्थितिके परिवर्तनके लिये आवश्यक है, उसका अभिनय करना, कर्तव्याकर्तव्यके प्रभावोत्पादक निर्देशके लिये अत्यन्त लाभकारी है । इस लाभकी ओर बालकोंको प्रवृत्त करना चाहिये, जिससे कि वे आगे चल इसमें अधिक सफल हो सकें ।

बच्चे जब स्वतन्त्र होकर खेलते हैं तो बहुतसे दोष भी आ जाते हैं, और उनसे बचानेके लिये अभिभावक लोग उनका खेलना ही बन्दकर देते हैं । यह तो, ठीक दवा देते हुए भी अनुपानकी भूलसे दवा फायदा न करे तो कारणका बिना विचार किये दवाको ही एकदम बन्द करदेनेके समान है । अभिभावकों को चाहिये कि बच्चे जब कोई खेल करनेमें ऊधम मचावें, तो उसका निराकरण करें, और उन्हें सरल रीतिसे समझावें कि कैसे खेलना चाहिये । यदि कोई प्लाट असंगत हो तो उसे सुधार दें । कभी कभी खुद भी शामिल होकर उनका उत्साह-वर्धन करें ।

बालकोंकी रंगशालाके लिये आंगन, दालान या छत उपयुक्त होगी । दिनमें सूर्य और रातमें चन्द्रमा या लालटेन रोशनीका काम देंगे । पोशाकका काम उनके साधारण कपड़ोंसे चलाया जायगा । कभी पगड़ी, कभी टोपी कभी साफापर कभी नंगा शरीर ही पोशाकमें परिवर्तनका काम देगा । कंडेकी राख पाउडर बन जावेगी । सीन सीनरीकी कोई विशेष आवश्यकता नहीं । खेलके विषयको बच्चे खुद तय कर लेंगे, या पिता-माता बता दें । फिर बाकी काम बच्चे अपनी स्वाभाविक मनोवृत्ति द्वारा करेंगे ।

इस प्रकार नाटक करनेसे बालक मनोरञ्जन करते हुए अच्छे उदाहरणोंको ग्रहण करेंगे, जोकि उनके स्वभाव निर्माणके लिये परमोपयोगी सिद्ध होंगे ।

(१२) फूल पत्तियोंको इकट्ठा करना

किसी चीजको खोजना उसका संग्रह करना और अनिच्छित वस्तुको हटा देना, यह भी बालकोंको स्वभावतः प्रिय लगता है, फुलवाड़ीमें जाकर तरह-तरहके फूल और पत्तियोंको पसन्द करना उन्हें अपने पास रखना बहुत लाभ दायक है । इससे उनका चित्र कागजपर बनानेमें सहायता मिलेगी । उनसे, किसी वस्तुको देखकर उसकी शकल बनाने की योग्यताका आविर्भाव होगा ।

माता पिताको चाहिये कि बच्चोंको फूल पत्तियोंकी उपयोगिता बतावें । उनका संग्रह कैसे करना चाहिये उनका दुरुपयोग करनेमें हानि क्या है, इससे भी उन्हें सावधान करदें जिससे कि वे फूल पत्तियोंको बर्बाद न करें । माला बनाना, पत्तियोंको सजाना भी सिखलाना चाहिये । इससे बालककी प्रवृत्ति बनस्पतिविद्याकी तरफ कैसी है इसका पता भी सहजमें ही लग जायागा ।

(१३) तकलीपर सूत कातना

मनुष्य जीवनकेलिये वस्त्र अत्यावश्यक वस्तु है । और ये वस्त्र सूतसे बनते हैं । इस लिये बालकको इस ओर भी प्रवृत्त करना चाहिये । सूत कातना सीखनेसे वे वस्त्रके विषयमें स्वावलम्बी बन सकेंगे ।

छोटे बालक चर्खेपर सूत नहीं कात सकते, इसलिये तकलीपर कातना सुगम होगा । उन्हें रुईकी पोनी और तकली दे देना चाहिये । और कातना बता देना चाहिये । पहले तो कुछ दिन उन्हें सूत ठीक तरहसे निकालनेमें कठिनाई होगी पर धीरे-धीरे सब ठीक हो जावेगा ।

बच्चोंको अच्छा सूत कातने पर इनाम देना चाहिये । इससे वे दूने उत्साहके साथ कताईका काम करेंगे । उनके काते हुए सूतको अलग रखना चाहिये । इकट्ठा हो जानेपर रूमाल बुनवा देना चाहिये । अपने परिश्रमके इस फलको पाकर उनमें अपार आनन्द एवं उत्साह होगा । बच्चोंमें इस विषयकी प्रतियोगिताका भाव उत्पन्न करना चाहिये । इससे वे चढ़ा-ऊपरीमें पड़कर दिनदूनी रात चौगुनी उन्नति करेंगे । इस खेलसे बच्चोंकी दृष्टि स्थिर तथा उंगलियां पुष्ट होंगी ।

(१४) रसोई बनाना

आजकल जहां देखो वहां भोजन बनानेके विषयमें पराचलम्बन नजर आता है। जहांतक बनाबनाया मिल जाय, लोग अपने हाथसे बनाना नहीं पसंद करते। कारण पूछनेपर सैकड़ों बहाने उपस्थित कर दिये जाते हैं। पर यदि वास्तविक कारणकी खोजकी जाय तो पता चलता है कि अधिकांश लोग आलस्यवश यह गुलामी स्वीकार करते हैं। पर ऐसे भी लोग कम नहीं हैं जिन्हें कि भोजन बनाना आता ही नहीं। इस ओर उनका ध्यान कभी किसीने आकृष्ट ही नहीं किया कि यह भी एक सीखने योग्य काम है। अब हमलोगोंको चाहिये जो गलती हमलोग कर चुके हैं उसके चंगुलमें अपने प्रिय बच्चोंको न आने दें, और छोटेपनमें ही उनमें रसोई बनानेके काममें प्रीति उत्पन्न कर दें।

रसोई बनाना बच्चोंके खेलमें शामिल कर देना चाहिये। माताएं रसोई बनानेके समय बच्चोंको पास बैठा लिया करें जिससे कि भोजन बनानेके प्रकारको वे रोज अच्छी तरह देख सकें। बच्चोंके लिये छोटे-छोटे रसोईके वर्तन ला देना चाहिये। बस सब लड़के मिलकर भोजन बनावेंगे और खेलेंगे। कुछ बड़े होनेपर उनमें इतनी दक्षता हो जावेगी कि समय पड़नेपर वे कुटुम्बके लिए गाढ़ेकी तलवार सिद्ध होंगे।

इसी प्रकार अन्य बहुतसे खेल पाठक स्वयं सोचकर बच्चोंको उस तरफ झुका सकते हैं। ऊपर लिखे हुए खेल केवल दिग्दर्शन मात्र हैं। इनसे बालकोंका मनोरञ्जन और साथ-ही साथ क्रियात्मक लाभ भी होगा।

यहाँपर पाठकोंका इस ओर ध्यान दिलाना अनुपयुक्त न होगा कि बच्चोंके खेलोंके प्रकारका प्रधान उद्देश्य, उनकी प्रवृत्ति किस ओर जाती है इसका अनुसंधान करना, होना चाहिये। पश्चिममें अनेक प्रकारोंसे पहले यह देख लिया जाता है कि बालक किस कार्यको अधिक पसन्द करता है उसी ओर बालकको लगा दिया जाता है। इससे उसे अपने जीवनमें आशातीत सफलता मिलती है।

हमारे देशमें इसके विपरीत यह दशा है कि बालकका मन उस ओर हो या न हो उसे जबर्दस्ती उसी ओर एक ही रास्तेसे होकर जाना पड़ता है। इसका फल यह होता है कि उस बेचारेका जीवन असफल होते होते बीतता है।

इसलिये हमारी सबसे यह प्रार्थना है कि बच्चोंको किसी ओर लगानेके पहले यह हरएक प्रकारसे देख लें कि बच्चेकी स्वाभाविक प्रवृत्ति किस ओर है। फिर उसी ओर उसे लगा दें। इससे उसका जीवन सफल होगा और वह पीढ़ीके लिये इस आदर्शकी रक्षा करेगा।

इस लेखके लिखनेमें गिजुभाई लिखित गुजराती पैम्फलेट 'घरमा वालके शुं करवु" मे सहायता ली गयी है, अतः वे धन्यवादके पात्र हैं।

विकासवादका प्राण मेंडेल

[ठाकुर दूधनाथसिंह, लेक्चरार, कृषिकालेज, कानपुर]

१-आरंभिक जीवन

विकासवादका आरम्भ डारविनने किया। परन्तु स्वतन्त्र रीतिसे मेंडेलने उसपर इतना अधिक और महत्त्वका काम किया कि उसीके व्यक्तित्वसे विकासवादका भी विकास समझा जाता है। प्राणियोंमें सुजननवादका जो यह परमाचार्य्य माना जाता है। किन क्रियाओं और विधियोंसे अच्छे प्राणी और अच्छे पौधे पैदा हों, यह विद्या इसीकी ईजाद है।

इस पादरीका पूरा नाम था "जान ग्रेगर मेन्डेल" आप यूरोपके मोराविया देशके हेन्ज़ेनडार्फ नामी छोटेसे ग्राममें ता० २२ जुलाई सन् १८२२ ई०को पैदा हुए थे। अपनी माता-पिताके इकलौते बेटे थे। दो बहिनें थीं। वंश-परम्परायसे इस कुलके लोगोंको बागबानीसे अधिक प्रेम था।

यों भी मेन्डलके पिता कभी बहुत धनी न थे और जो कुछ रुपया उनके पास था उसको एक बाग लगाने और मकान बनवानेमें खर्च कर दिया, जिससे आर्थिक दशा कुछ बिगड़ गयी। छोटी ही अवस्थासे अपने पिताके साथ बागमें

मेन्डेल काम किया करता था। पिताको बालकको इस ओर रुचि देखकर यह सन्तोष था कि अपने पीछे घर बार इनपर आसानीसे छोड़ सकेगा।

आरम्भमें मेन्डेल जिस स्कूलमें भर्ती हुआ उसमें बागवानी भी सिखायी जाती थी। यहीं इस प्रतिभावान बालकने अपनी विशेष योग्यताका परिचय दिया और अध्यापकने पितासे इस बातपर जोर दिया कि लड़का और आगे पढ़ाया जाय। पिता घरके काममें लगानेके विचार में था। परन्तु मां क्या चाहती थीं कि गृहस्थीके झगड़ोंमें न पड़कर लड़का कोई बड़ा आदमी हो। आखिर मांहीकी चली और मेन्डेल लिपनिकके स्कूलमें तीसरे दर्जेमें भर्ती हो गया। यहां भी इसके परिश्रम और बुद्धिसे लोग बहुत प्रसन्न थे। फिर हाईस्कूलमें प्रवेश हुआ। यहाँ खर्चेकी कठिनाई पड़ने लगी। यद्यपि स्कूलसे बहुत कुछ सहायता मिली थी, तो भी खाने-पहिननेका ठीक सुभीता न हो सका और अन्तमें इसी कारण सोलह वर्षकी अवस्थामें रोटी कमानेकी ओर ध्यान देना पड़ा। इसी आयुमें "स्कूल कैन्डीडेट्स और प्राइवेट ट्यूटर्स"का कोर्स लिया और विशेष योग्यताके साथ इसकी परीक्षा भी पास की।

स्कूलमें तो आप कठिन परिश्रम करते ही थे और इसके अतिरिक्त घर आकर छुट्टियोंमें भी आपको खेतों और बागमें काम करना पड़ता था। फलतः सन् १८२८ ई०में मेन्डेल बहुत बीमार हो गया। और सितम्बर सन् १८३९ ई० तक अपनी पढ़ाई स्थगित करनी पड़ी। यह सब होते हुए भी उसने अन्तमें स्कूलकी अन्तिम परीक्षा पास की।

इसके बाद मेन्डेलने सन् १८४१ ई०में ओल्मुज़में दर्शक का अध्यायन शुरू किया और दो साल बाद इस विषयकी अन्तिम परीक्षा पास कर ली। इस समय कुछ तो प्राइवेट ट्यूशनसे अपना खर्च चलाता रहा और कुछ सहायता छोटी बहिन थेरेसियाने दी जिसके कारण मरते दमतक छोटी बहिनके आभारी रहे और भरसक उसके बच्चोंकी सहायता की।

जब मेन्डेलने देखा कि स्वास्थ्य और आर्थिक दशा ऐसी नहीं कि और आगे पढ़ाई जारी रक्खी जाय तब नौकरीकी खोज शुरू की और सन् १८४३ ई०में अलबनके मठमें रख लिया गया। यहाँ धीरे-धीरे तरक्की की और अगस्त सन् १८४७ ई०में आप पादरी बना दिये गये। सन् १८४९ ई० में आप नायम हाई स्कूलमें सहकारी अध्यापक नियुक्त किये गये। बाद इसके आप मई सन् १८५४ ई०में ब्रन-मार्डन स्कूलमें अध्यापक होकर चले गये। वहांके कायदेके अनुसार मेन्डेल ऊंची कक्षाओंको पढ़ानेके योग्य जभी समझे जा सकते थे जब वह एक खास परीक्षा जो वहां हुआ करती थी पास कर लेते। मेन्डेल इस परीक्षामें दो बार बैठे परन्तु दोनों बार अनुत्तीर्ण रहे।

(२) अनुसंधानका आरंभ

इस परीक्षामें दुबारा फेल होनेके कुछ ही दिनों बाद सन् १८५६ ई०में चौंतीस वर्षकी अवस्थामें मेन्डेलने मटरके ऊपर अपने तजरबे शुरू किये। उसने विविध पौदोंके नर मादाको कृत्रिम ढंगसे मिलाकर उनसे बीज पैदा किये और उनको प्रतिवर्ष बोकर पौदोंके गुणोंका अध्ययन करते रहे। सात सालके तजरबेके बाद मेन्डेलने संसारको यह भली भांति दिखा दिया कि यदि वे पौदे जिनके नर-मादा मिलाये गये थे केवल एक ही गुणमें एक दूसरेसे भिन्न थे तो उनकी बीजसे उत्पन्न पहली सन्तान पहले सालके पौदेमें उसी गुणका भास होगा जो बाह्यरूपसे अपना प्रभुत्व दूसरे भिन्न गुणपर जमा सकता था। लेकिन जब इस पौदेके बीज दूसरी साल बोये जायंगे. हर चार पौदोंमेंका एक पौदा ऐसा होगा जिसमें वह गुण दिखाई पड़ेगा जो पहिले साल के सन्तान पौदेमें छिपा हुआ था और इस पौदेकी सन्तानें भविष्यमें इसी रूपकी होंगी जिनमें कोई परिवर्तन न होगा। शेष तीनमें एककी सन्तान भविष्यमें ऐसे पौदे सदैव पैदा करती रहेगी जिसमें वह प्रभुत्ववाला गुण जो पहले सालके पौदेमें दृष्टिगोचर हुआ था बराबर प्रकट हुआ करेगा। और बाकी दो रंग बिरंगे पौदे इसी अनुपातमें पैदा करती रहेंगी।

इससे यह पता चला कि पहिले सालके सन्तानमें दूसरा गुण भी छिपे रूपसे बर्तमान था जो कि बाह्यरूपसे उस पौदेमें प्रगट न हुआ था।

थोड़ेमें बात यों हैं कि नर-मादावाले पौदोंमें भिन्नता केवल एक बात या गुणकी है तो दूसरे साल पौदे बाह्य गुणोंके अनुसार ३ और १ के अनुपातमें पैदा होंगे। पहिले

तीनमेंका एक और चौथा अपनी जैसी सन्तान पैदा करते रहेंगे और शेष दो जिनमें मिश्रित रूपसे दोनों गुण मौजूद हैं उसी भांति विविध रूपके पौदे पैदा करेंगे जैसा कि पहिले सालकी सन्तानने किया था। इसी भांति यदि पौदों में भिन्नता दो गुणोंमें होगी तो दूसरे सालकी सन्तानें ९: ३: ३: १ के अनुपातमें उत्पन्न होंगी।

उपर्युक्त बातोंकी खोजका श्रेय और महत्ता क्या है यह वेही वैज्ञानिक ठीक रूपसे बता सकते हैं जिनने पौदों या जानवरोंको उन्नति करनेका कार्य किया हो या कर रहे हों। मेन्डेलकी इस खोजने उनके मार्गका एक बड़ा भारी रोड़ा हटा दिया है और उनका काम किसी हदतक बहुत ही सरल और सुगम हो गया है। मेन्डेलके इस महत्वपूर्ण खोजका नाम उनके नामपर ही मेन्डैलिज्म रक्खा गया है। मैंने इस बातको बहुतही सरल रूपसे संक्षेपमें बयान किया है लेकिन मेन्डैलिज्म न तो इतना संक्षेप है कि इतनी थोड़ी जगहमें बयान किया जा सके और न इतना सरल है कि उसका अर्थ हरएक, आसानीसे लगा सके। आजकल इस विषयपर बड़ी-बड़ी और बहुत सी पुस्तकें लिखा जा चुकी हैं। लोग अनुभव करते हैं कि मेन्डैलिज्ममें अब भी वह गहरे तत्व छिपे हुए हैं जिनके अनुसन्धानकी संसारको बहुत आवश्यकता है।

मेन्डेलको अपना निजी काम ही बहुत तथा और इसी अनुसन्धानके सात सालके बीच आपके माता-पिता दोनों परलोकबासी हुए। तिसपर भी आपने कुछ समय बचाकर इस खोजमें कठिन परिश्रम किया और संसारका एक बड़ा भारी अन्धकार दूर किया।

यह लिखना अनुचित न होगा कि मेन्डेलको इस बीच जो विद्यार्थी जीवनकी अपेक्षा अधिक सुख मिला तो आप बहुत मोटे हो गये। इस मोटेपनके कारण आपको चलने फिरनेमें कठिनाई पड़ने लगी और अन्तमें खेतमें बहुत कम काम आपसे हो पाता था। मेन्डेलको पौदोंसे इतना प्रेम था कि जो कोई आपके मठमें आता उसे वह अपने तजरबेके खेत अवश्य दिखाते थे। बहुधा वह आगन्तुकोंसे कह बैठते 'चलिये, मैं आपको अपने बच्चे दिखा लाऊं।" बहुतसे लोग इसको सुनकर आश्चर्यान्वित हो उठते और सोचते कि भला, मठाधीशके बच्चे कैसे। लेकिन उनका समाधान तब हो जाता जब बच्चोंके स्थानपर मेन्डेल अपने पौदे दिखाने लगते।

मेन्डेलने अधिकतर काम दो पौदोंपर किये एक तो मटरपर और दूसरे ह्यारासियमपर। ह्यारासियम गेंदेकी जातिका एक पौदा है जो कि यूरोपके ठंढे प्रदेशोंमें पाया जाता है।

उस जमानेमें नगेलीकी गणना अच्छे वैज्ञानिकोंमें थी। इन्हींके कहनेपर मेन्डेलने ह्यारासियमपर काम करना आरम्भ किया और इसके कारण मेन्डेलको बड़ी कठिनाइयां झेलनी पड़ीं क्योंकि पहिले तो इसके फूल इतने बड़े न थे जितने मटरके और मेन्डेलकी आंखें इस पौदेपर काम करनेसे जल्दी दुखने लगती थीं। दूसरी बात यह थी कि ह्यारासियम और पौदोंसे भिन्न होता है क्योंकि इसमें बीज बिना नर मादाके मिले भी पैदा हो सकता है और यह बातें उस समय मेन्डेलको मालूम न थीं।

मेन्डेल मठके बागमें भी काम किया करते थे। इसके अतिरिक्त उन्हें मधुमक्खियोंके पालने में बड़ी दिलचस्पी थी यहांतक कि आप विविध जगहोंसे मक्खियां मंगाकर रखते और उनपर उसी प्रकार तजरबे करते जैसे कि उन्होंने पौदोंपर किये थे। साथ-ही-साथ मेन्डेलने उन पौदोंकी भी ढूंढ़की जिन्हें मधुमक्खियां अधिक पसन्द करती हैं। जाड़ेमें इन मक्खियोंको सुरक्षित कैसे रक्खा जाय, उसके लिये आपने यह उपाय निकाला कि छत्ते इस प्रकार रक्खे जांय जिससे उसका निचला भाग फर्शपर ३०°का कोण बनाये। यह ढंग अब भी बहुत सी जगहोंमें प्रचलित है।

मेन्डेलका ध्यान उपरोक्त बातोंतक ही नहीं सीमित था इसके अतिरिक्त आपको आकाश तथा वायु-विज्ञानके अध्ययन से भी महान् प्रेम था। इसके सम्बन्धी सारे प्रयोग आप स्वयं करते थे और कभी किसी दूसरेके भरोसे नहीं छोड़ते थे!

मेन्डेल अपने मठके सर्वेसर्वा बन चुके थे। यह पद यूरोपमें योंही बड़ा आदरणीय माना जाता था और साथ ही इस मठके साथ एक बड़ी सम्पत्ति जुड़ी हुई थी। इससे लोगोंमें मठाधीशका और भी मान था। इस पदपर पहुंचकर आपको मठाधीशका धर्मिक कृत्य तो करना ही पड़ता था और साथ ही मठके रियासतकी भी देखभाल करनी पड़ती थी इससे आपको अवकाश कम मिलता था। इसी बीच

गवर्नमेन्ट और मेन्डेलसे मठकी आयकर कर देनेके सम्बन्धमें एक बखेड़ा उठ खड़ा हुआ जिसमें उनका और भी अधिक समय नष्ट हुआ और उनको अपनी वैज्ञानिक खोजकी इतिश्री कर देनी पड़ी।

कामकी अधिकताके कारण मेन्डेलका स्वास्थ्य भी बहुत बिगड़ गया और आप हृदय रोगके शिकार बन बैठे। फल यह हुआ कि आप जनवरी सन् १८८४ ई०में ६२ वर्षकी आयुमें इस संसारसे चल बसे। यद्यपि मेन्डेल आज हमारे बीच नहीं हैं तथापि उनकी कीर्ति सदैव अमर रहेगी और वैज्ञानिकोंको अनुसन्धानके मार्गपर अग्रसर होनेमें सहायता प्रदान करती रहेगी।

गुलाब

नवम्बरका महीना गुलाबोंकी कलमोंके रोपनेके लिये सबसे अच्छी ऋतु है। देशी गुलाबोंकी कलमें बरसातके शुरूमें भी लगती हैं, परन्तु वह समय विलायती गुलाबोंके लिये उपयुक्त नहीं है।

गुलाबोंके उत्पन्न करनेको साधारण रीति यह है कि चश्मा बाँधा जाय, परन्तु कलम रोपनेसे भी बहुतसे गुलाब तैयार किये जा सकते हैं और यह रीति अधिक आसान है।

गुलाबकी बहुतसी जातियाँ हैं। कुछ लता कुछ पेड़ और कुछ झाड़ीके रूपमें उगते हैं। फूलोंके रंग भी सैकड़ों तरहके होते हैं, परन्तु इन जातियोंके नाम अधिकांश अँग्रेजी हैं और साधारण माली उनको जानते नहीं। फिर शब्दोंमें लिखे वर्णनसे उनकी पहचान अत्यन्त कठिन है और सब जातियोंका फोटोग्राफ देना तथा उनका सूक्ष्म वर्णन करना सम्भव नहीं है। इसलिये इसकी चेष्टा न की जायगी। अपने पसन्दके पौधोंकी कलमें लगानेसे पता चल जायगा कि कौन-कौन सी जातियाँ कलम से पैदा की जा सकती हैं।

कलम लगानेकी रीति

कलमें उन डंठलोंको काटकर लगायी जाती हैं जो लगभग एक साल पहले के उगे हों। गुलाबके प्रत्येक पौधेमें नयी शाखायें उत्पन्न हुआ करती हैं। इनमेंसे एक सालवाली डालियाँ ही काटनी चाहिये। इनको बालू या तीन हिस्सा बालू और १ हिस्सा मोटा पिसा हुआ लकड़ीके कोयलेके मिश्रणमें रोप देना चाहिये। कलम अर्थात् कटे हुए डंठलके चारों ओर बालूको अच्छी तरहसे दबा देना चाहिये। बालू या बालू और कोयलेके बदले साधारण बलुही मिट्टीका उपयोग भी किया जा सकता है परन्तु कलमोंके लिये खाद पड़ी मिट्टी अच्छी नहीं है। उसमें कलमोंके सड़ जानेका बहुत डर रहता है। बाहर मैदानमें विलायती गुलाबोंकी कलमें रोपनेके बदले गमलों या अथरियोंमें उनका रोपना अच्छा है। ज्योंहीं इन कलमोंमें आध इन्च या १ इन्चके जड़ निकल आयें, और नवीन पत्तियां लालके बदले हरी हो जायँ त्योंही उनको छोटे-छोटे गमलोंमें अलग-अलग रोप देना चाहिये। इन गमलोंमें साधारण मिट्टी और नाममात्र खाद

रहे और पौधोंको सबेरेके समय धूप भी लगने दिया जाय। जुलाईमें वे नये और कुछ बड़े गमलोंमें लगा दिये जा सकते हैं। इन गमलोंमें खाद खूब रहे और ये गमले धूपमें रक्खे जायँ। इस प्रकार आगामी अक्टूबरतक पौधे जमीनमें रोपनेके लायक तैयार हो जायँगे और उनके मरनेका कोई डर नहीं रहेगा। यदि कलमें शुरूसे आखीरतक बाहर जमीनमें ही रहें तो उनमेंसे कई एक गरमीमें अधिक धूप या बरसातमें अधिक पानीके कारण मर जायँगी।

कलम काटनेकी रीति

कलमको तेज चाकूसे साफ काटना चाहिये। माली लोग अकसर खुरपीसे ही कलम काटते हैं। परिणाम यह होता है कि कलमोंका सिरा भरता हो जाता है और कलमें वहाँसे अकसर सड़ने लगती हैं। पहले कलमोंको कुछ बड़ा काट लिया जाय। पीछे खूब तेज चाकूसे काटकर उनको उचित नापका कर लिया जाय। कभी भी एक साथ इतनी कलमें न काटी जायें कि लगाते-लगाते वे सूख चलें। थोड़ी-थोड़ी वे काटी जायें और शीघ्र वे रोप दी जायें।

गुलाबके डंठलोंमें थोड़ी-थोड़ी दूरपर आँखें रहती हैं। कलमको इस प्रकार काटना चाहिये कि इसका मोटा सिरा एक आँखके नाम मात्र नीचे रहे। यहाँ कलम चौरस (डंठलके लम्ब दिशामें) काटी जाय। दूसरी ओर कलम आंखसे एक अंगुल ऊपर काटी जाय। एक आंख बीचमें रहे तो अच्छा है, जिसमें यदि एक आँख खराब हो जाय और न उगे तो बीचवाली आँख ही उगे। कलममें केवल एक-दो पत्तियाँ लगी रहें। शेष काट दी जायँ। चित्रमें जड़ और नवीन पत्तियाँ निकल आनेके बाद एक कलम दिखलायी गयी है। इससे कलमके काटनेकी रीतिका स्पष्ट पता चल जायगा। कलमका ऊपरी सिरा तिरछा काटा जाता है जिसमें उसपर पानी न रुक सके। पानी रुकनेसे वहांसे कलमके सड़नेका डर रहता है।

कुछ लोग कलमोंको काटनेके बाद उन्हें पानीमें रखते हैं। इससे अच्छा यह है कि वे केवल स्वच्छ भीगे कपड़ेसे ढककर रक्खी जायं। पानीमें रखनेसे डंठलोंका रस कुछ बह जाता है और वे उतने शक्तिशाली नहीं रह जाते।

कलम रोपनेकी रीति

बहुतसे माली खुरपीसे जमीनमें सँकरासा छेद करके उसीमें कलमको ठूँस देते हैं। इससे कलमका छिलका उखड़ जाता है और कलमें सड़ने लगती हैं। कभी-कभी कलमोंका सिरा हवामें ही टँगा रह जाता है, जिससे जड़ अच्छी तरह निकल नहीं पाती। सबसे अच्छी रीति यह है कि यदि जमीनमें कलम रोपना हो तो उसमें गोल खूँटा (½" व्यास का) धँसाकर छेद किया जाय और उस छेदमें कलमें रोपी जायँ। यदि मिट्टी कड़ी हो तो छेदमें बालू या बलुही मिट्टी भर दी जाय। यदि बालू, मिट्टी और कोयलेके मिश्रणमें कलम रोपनी हो तो कोई विशेष कठनाई न पड़ेगी।

कलमके चारो ओरकी मिट्टी या बालूको अच्छी तरह दबा देना चाहिये। मिट्टी फुलफुली रह जायगी तो कलम अच्छी तरह उग न सकेगी। रोपनेके बादही मिट्टीको हजारेसे सींच देना अच्छा है। यदि कलमें मैदानमें लगायी गयी हों और धूप तेज हो तो ऊपरसे अखबारसे ढक देना चाहिये। परंतु अखबारको शाम होते ही उठा देना चाहिये। दो चार दिन बाद छाँहकी विशेष आवश्यकता न पड़ेगी।

गमलेमें लगी कलमोंको रोज, और जमीनमें लगी कलमोंको दूसरे-तीसरे दिन बराबर पानी देना चाहिये। परन्तु उनके पास पानी जमा न होने पावे। बस इतनाही चाहिये कि मिट्टी नम रहे।

चित्रमें एक गमलेमें पच्चीस-तीस कलमें दिखाई गई हैं, परन्तु यह विशेष बड़ा गमला है। साधारण गमलोंमें छः-सात कलमें काफी होंगी। (चित्र अन्यत्र देखें)

चश्मा बाँधनेके लिये पौधे

नवम्बरही महीना चश्मा बाँधनेके लिये भी बहुत उपयुक्त है। इसलिये चश्मा बाँधनेकी रीति भी यहाँ बतलायी जाती है। चश्मा बाँधनेके लिये (रोज़ एडुअई) देशी गुलाबके हरे-भरे पौधोंकी आवश्यकता पड़ेगी। ये पौधे कलमसे उगाये जाते हैं और इसकी रीति वही है जो ऊपर बतलायी गयी है अन्तर केवल इतनाही है कि बलिष्ट होनेके कारण देशी गुलाबके लिये उतनी सेवाकी आवश्यकता नहीं है जितनी अन्य गुलाबोंके लिये। देशी गुलाबकी क़लमें नवम्बर में भी लगायो जाती हैं और शुरू बरसात जुलाईमें भी। ये गमलोंके बदले जमीनमें आठ-आठ इन्चपर लगायी जा सकती हैं और आगामी बरसातके आरम्भमें पौधे क्यारियोंमें लगा दिये जा सकते हैं। केवल कलम लगानेके दो-चार

दिन बादतक, और पौधोंको क्यारियोंमें लगानेके समय भी कुछ दिनतक, उनको कड़ी धूपसे बचा देना काफी होगा, यद्यपि यदि ऐसा न भी किया जाय तो पौधे साधारणतः बच जाते हैं।

क्यारीमें पौधे हाथ-हाथकी दूरीपर लगाये जायँ। सितम्बरमें इनको छाँटकर छोटा कर देना चाहिये। वे केवल ६ इन्चके रह जायँ। शीघ्रही उनमें जड़के पाससे नयी शाखायें निकल आयेंगी। इन शाखाओंमेंसे केवल एक या दोको बढ़ने देना चाहिये और शेषको काट डालना चाहिये पुराने तनेको भी प्रायः ज़मीनतक काट डालना चाहिये। यदि एक दो शाखायें निकल आयें तो सबसे मज़बूत शाखा को रखना चाहिये, चाहे यह सितम्बरका हो, चाहे उससे भी नया हो। १५ नवम्बरके बाद चश्मा बाँधनेका काम शुरू किया जा सकता है। उद्देश्य यह होना चाहिये कि चश्मा अच्छी मोटी रसभरी नयी डाली पर बाँधा जाय। यदि पौधे बड़े पेड़ोंके सायेमें या बिना खादकी मिट्टीमें लगे होंगे तो शायद ऐसी डालियाँ न मिलें। १५ नवम्बरतक एक चुनी हुई डालीको छोड़ शेप डालियोंको काट डालना चाहिये।

चश्मा निकालनेकी रीति

किसी भी होशियार माली या शौकीन बागवानको चश्मा बाँधते देखनेसे यह क्रिया तुरन्त आ जाती है। प्रत्येक व्यक्तिकी रीतिमें ज़रा-ज़रा अन्तर रहता है। निम्नलिखित रीति अच्छी है।

जिस गुलाबके फूलको उगाना हो उसके पौधेकी एक नयी डाली ऐसी लेनी चाहिये जिसमें फूल लगे हों या खिलकर झर गये हों। इसमेंसे स्वस्थ आँख चुन लेनी चाहिये। पत्तियाँ काट डाली जायँ। पत्तियोंके डंठल (आध इञ्च लम्बे) डालीमें लगे रहें। चुनी हुई आँखसे आध इन्च ऊपर हटकर तेज चाकूसे छिलका काटना चाहिये। छिलके के साथ लकड़ी भी थोड़ीसी कट आये। आँखकी दूसरी ओरसे फिर चाकू चलाना चाहिये। इस प्रकार छालका एक कुछ लम्बा टुकड़ा ढालकी शकलका निकल आयेगा, जिसके बीचमें आँख रहेगी।

ज़रासा मोड़नेसे या चाकूकी नोकसे उठानेसे लकड़ी छटककर छालसे अलग हो जायगी। यदि लकड़ीके साथ आँखका जड़ नुचकर उखड़ जाय तो उस आँखको फेंक देना चाहिये। यदि आँखकी जड़ नुची न रहेगी तो यह भीतर की ओर उभड़ी हुई स्पष्ट दिखलाई पड़ेगा।

चश्मा बाँधनेकी रीति

अब देशी गुलाबकी चुनी हुई डालीमें, जड़से चार-पाँच इञ्चकी दूरीपर, अँग्रेज़ी अक्षर T की तरह दो चीर तेज़ चाकूसे लगा दी जाती हैं। डालीको चीरकी ओर झुकाकर कटे हुए छालको कुछ दूर तक भीरतकी कड़ी लकड़ीसे छुड़ा दिया जाता है परन्तु छालको टूटने नहीं दिया जाता। इसकेलिये किसी चिपटी स्वच्छ लकड़ीकी सहायता भी ली जा सकती है। चश्मा बाँधनेके लिये जो चाकू विशेष रूपसे बाज़ारमें बिकते हैं उनकी बेंटें हाथी दांत, हड्डी या सींगकी होती हैं और वे पतली और नुकीली बनायी जाती हैं। यदि ऐसा चाकू पासमें हो तो बेंटकी नोकसे छिलकेको उभाड़ना चाहिये। चाकूके फलसे छालके उभाड़ने में छालके कट जानेका डर रहता है। माली लोग तो नाखून से छिलका उभाड़ लेते हैं, परन्तु नाखूनसे काम करना ठीक नहीं। खेंच चुभ जानेसे नाखूनके पकनेका डर रहता है और नाखूनकी गन्दगीसे चश्माको सड़ जानेका भय रहता है, डालको झुकानेसे छाल जल्द उखड़ती है।

छालके कुछ दूरतक उभड़ जानेके बाद छाल और कड़ी लकड़ीके बीचमें चश्मा पहना दिया जाता है जिससे यह हीरपर उसी प्रकार चिपक जाय जिस प्रकार यह अपने असली हीर पर चिपका था। अब पुराने छालको इसपर सफ़ाईसे लौटाकर कुलको केलेकी नससे बांध दिया जाता है। इसके लिये पहले ही से केलेके सूखे पत्तेकी रीढ़को चीर-चीरकर पतले ($\frac{1}{8}$ इंच चौड़े) फ़ीते बनाकर रख लेना चाहिये। इन फ़ीतोंको पानीमें भिगाकर नरमकर लेना चाहिये। बांधते समय ये फ़ीते नरम भर रहें। पानीसे तर न रहें। बांधनेकी रीति चित्रकी जांचसे स्पष्ट हो जायगी।

अंग्रेजी अक्षर T की तरह चीर लगानेके बदले केवल एक खड़ी चीरसे भी काम चल सकता है। परंतु तब लकड़ीको कुछ अधिक झुकाकर, छिलका ढीलाकर उसमें चश्मा पहनाना चाहिये।

माली लोग अक्सर एक बड़ी भूल करते हैं। वे बहुत

सी आँखें (चश्मे) एक साथही काटलेते हैं और इस ख्याल से कि सूखने न पायें इनको वे पानीमें रखते हैं। परिणाम यह होता है कि आंखोंका सब रस बह जाता है और वे आसानीसे अपने नये स्थानमें नहीं जमते। या तो वे सूखकर मर जाते हैं या सड़ जाते हैं।

सूखी आँखोंको जीभसे चाटकर लगाना भी बुरा है। नियम यह बना लेना चाहिये कि आँखें काटते ही बाँध दी जायँ। हाँ, जबतक डाली चीरी जा रही हो तबतक वे किसी स्वच्छ स्थानपर रख दिये जायें।

चश्मा बाँधनेके बाद

चश्मा बाँधनेके एक दिन बाद उस डालीकी फुनगी काटदी जाती है जिसमें चश्मा बाँधा गया था। तीन चार दिन बाद इस डालीको और भी काट दिया जाता है। केवल तीन चार टहनियां और थोड़ीसी पत्तियाँ छोड़ दी जाती हैं। कभी भी इस डालीमें से ज़ोरदार पत्तियाँ और डालियाँ न निकलने देना चाहिये। यदि निकलें जो उनको काटते रहना चाहिये, नहीं तो सब जोर इन्हीं पत्तियोंमें चला जायगा और चश्मा बढ़ने न पायेगा। परन्तु ऐसा भी नहीं करना चाहिये कि सब पत्तियाँ काटकर वह डाली एक दम ठूँठी करदी जाय, क्योंकि तब पत्तियोंके एक-दम न रहनेसे रस-को ऊपर खींचनेके लिये कुछ रहेगा ही नहीं। एक दो छोटी टहनियाँ जरूर रहें और उनकी पत्तियाँ भी रहें।

महीने सवा महीनेमें आँखमेंसे टहनी और पत्तियाँ निकलकर इञ्च, डेढ़ इञ्चकी हो जायँगी। अब देसी गुलाब की असली टहनीको छाँटकर कुछ और छोटा कर देना चाहिये। थोड़ा और समय बीतनेपर, जब चश्मेसे निकली डाली मजबूत होजाय, तब असली डालीको प्रायः चश्मेसे सटकर काट देनी चाहिये और ध्यान रखना चाहिये कि इसके बादसे असली डालीमें कहीं भी पत्ती न लगने पाये। कभी-कभी असली पेड़के जड़के पाससे दूसरी डालियाँ निकलती है। इनको तुरन्त जड़के पाससे काट डालना चाहिये।

इसके बाद सिंचाई, निराई और खुरपोसे मिट्टी-गोड़ाई करते रहनेसे, और फ़रवरीके करीब फिर एक बार खाद दे देनेसे पौदे बढ़ते ही जायँगे और एक सालमें फूलने लगेंगे।

(शेषांश अन्यत्र देखिये)
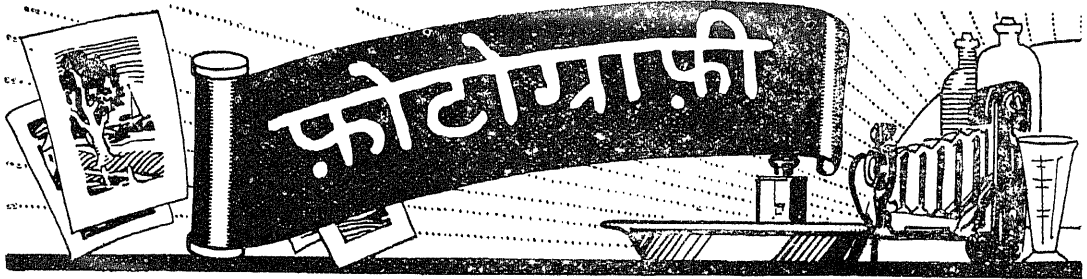
पैनक्रोमैटिक प्लेट और फ़िल्म

इन दिनों पैनक्रोमैटिक प्लेटों और फ़िल्मोंका इतना व्यवहार होता है कि प्रत्येक फ़ोटोग्राफरको चाहे वह व्य-साथी हो चाहे अनुरागी, इनके उपयोगकी रीति जाननी चाहिये। बीस वर्ष हुए पैनक्रोमैटिक फ़िल्म खोजनेसे भी न मिलते थे। अब उनका प्रचार इतना बढ़ गया है कि वे मामूली शहरोंमें भी मिल सकते हैं। पैनक्रोमैटिक प्लेटों और कट-फ़िल्मोंका व्यवहार उतना सर्व-व्यापी नहीं हो सका है, परन्तु यदि उनकी प्रयोगविधि लोगोंको ज्ञात हो तो कोई कारण नहीं है कि उनका प्रचार भी उतना ही न हो जितना पैनक्रोमैटिक रोल-फिल्मोंका।

सभी फ़ोटोग्राफ़र जानते हैं कि लाल प्रकाशमें साधारण प्लेटोंपर कोई असर नहीं पड़ता। तभी तो अन्धेरी कोठरी' में लाल प्रकाशका प्रबन्ध किया जाता है, साधारण प्लेटोंपर सबसे अधिक नीले प्रकाशका प्रभाव पड़ता है। पीले प्रकाशका प्रभाव भी बहुत ही कम पड़ता है। उदाहरणतः यदि किसी दृश्यके लिये प्रकाशदर्शन (एक्सपोज़र) १ सेकेन्ड लगे तो लेंज़पर नीला 'छनना' अर्थात् नीले रंग का शीशा, लगाकर फ़ोटो खींचनेके लिये प्रकाश-दर्शन शायद डेढ़ सेकेन्ड लगेगा। परन्तु पीले रंगका छनना लगाकर फोटो लेनेसे उसी दृश्यका एक्सपोज़र शायद इसका सौ गुना—करीब १५० सेकेन्ड—लगेगा और लाल प्रकाशका छनना लगानेसे एक्सपोज़र तो शायद कई घन्टोंका लगेगा!

इससे स्पष्ट है कि साधारण प्लेटके लिये लाल प्रकाश का रहना-न-रहना प्रायः बराबर है। परिणाम यह होता है कि यदि दृश्यमें कोई लाल वस्तु है तो वह फोटोमें एक-दम काली उतरेगी। यदि उसमें कोई पीली वस्तु है तो वह भी प्रायः काली उतरेगी।

साधारणतः इससे कोई विशेष बुराई नहीं होती थी, परन्तु कभी-कभी विशेष अड़चन पड़ जाती है। जैसे, मान लीजिये किसी पुष्प-गुच्छका फोटो खींचना है। इसमें सफेद नीले, लाल, पीले सभी रंगके हैं। साधारण प्लेटपर लिये गये फोटोग्राफमें लाल फूल एक दम काला उतरेगा। पीला भी चटक उतरनेके बदले बहुत गाढ़े रंगका उतरेगा। साथके दो फोटोग्राफों की तुलना करनेसे इस बातका प्रमाण तुरन्त मिल जायगा। देखिये, बीचमें लाल रंगके जो फ़्लोक्सके फूल थे वे साधारण प्लेट पर कितने काले उतरे हैं।
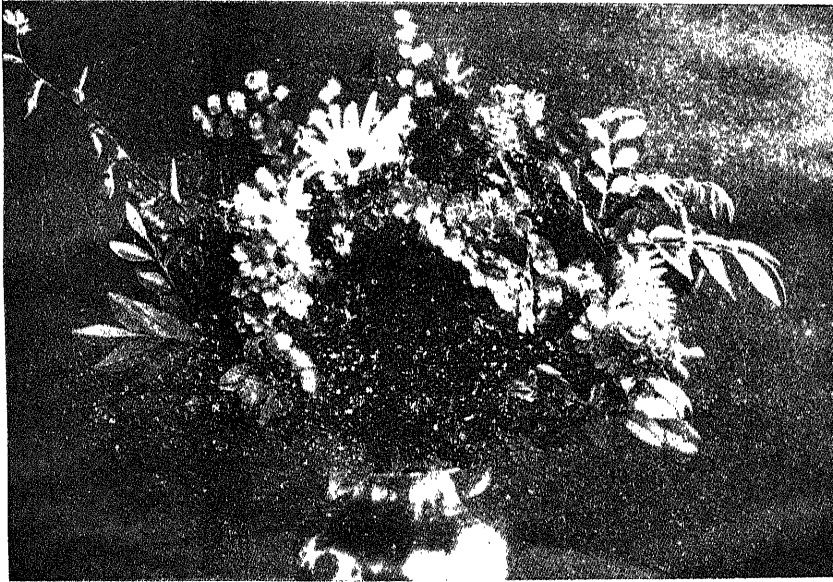
चित्र १—साधारण प्लेटपर लिया गया फ़ोटो*।

परन्तु केवल पुष्प-गुच्छों या इसी प्रकारके रंगीन विषयोंके फोटोग्राफमें ही यह कठिनाई नहीं पड़ती। यही कठिनाई एक-रंगी वस्तुओंके फोटोग्राफोंमें भी पड़ती है। मानलीजिये कैटलगमें छापनेके लिये लकड़ीकी बनी और खूब पालिश की हुई, कुरसी या अलमारीका फोटो लेना है। लकड़ीका रंग लाल या मैला नारंगी होता है। इसलिये फोटो लेनेपर लकड़ीका फोटो तो उतरने नहीं पाता। केवल लकड़ी ही रहती तो नेगेटिव वहाँ सफेद या करीब-करीब

* इस लेखके सभी चित्र इण्डियन प्रेसकी कृपापूर्ण अनुमतिसे डाक्टर गोरखप्रसादकृत "फोटोग्राफी" से लिये गये हैं।
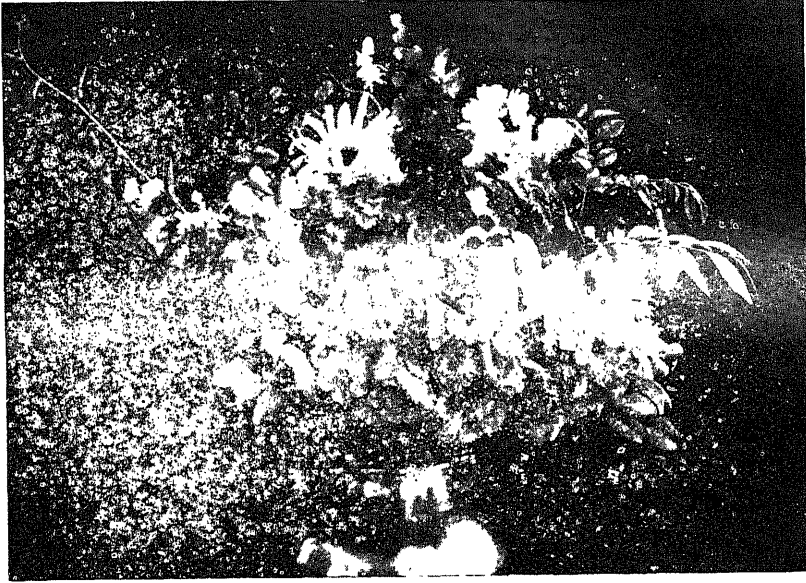
चित्र २—पैनक्रोमैटिक प्लेटपर प्रकाश छननेकी सहायतासे लिया गया फ़ोटो। चित्र १ से तुलना कीजिए।

सफेद रह जाता। परन्तु लकड़ीपर पॉलिश किया हुआ है। यह पालिश चमकदार होता है। इसलिये इससे बहुत सा प्रकाश प्लेटपर पहुंचता है और सच पूछा जाय तो इस पालिशका फोटो उतर आता है। परन्तु पालिश सर्वत्र एक-सा नहीं चमकता। वस्तुके आकार और खिड़कियों-दरवाजों की स्थितिके अनुसार इसमें कहीं कम, कहीं ज्यादा झलक दिखलाई पड़ती है, इतना ही नहीं। पालिश पर कहीं, खरोंच रह जाता है, कहीं गर्दका कण। परिणाम यह होता है कि साधारण प्लेटपर फ़ोटो लेनेसे लकड़ीका फ़ोटो नहीं उतर पाता। केवल ऊपरी वार्निश या पालिशका फ़ोटो उतरता है और उसीके खरोंच आदिका ब्योरा दिखलाई पड़ता है। चित्र ३ और ४की तुलनासे इस बातका समर्थन हो जायगा। साधारण प्लेटपर लिये गये फ़ोटोमें खरोंच आदि खूब दिखलाई पड़ रहे हैं और एक ओर जिधरका पालिश खूब चमक रहा था, फ़ोटो सफेद दिखलाई पड़ रहा है। दूसरी ओर फ़ोटो काला हो गया है

इसी दरवाजेका चित्र, उसी समय, उसी प्रकाशमें, पैनक्रोमैटिक प्लेटपर लिया गया तो चित्र ४ मिला। कितना अन्तर है।

परन्तु पैनक्रोमैटिक प्लेटकी विशेष उपयोगिता केवल पुष्प-गुच्छों और पालिशदार फ़र्निचरके ही फ़ोटोग्राफ़ोंमें नहीं दिखलाई पड़ती। मनुष्य-चित्रणमें भी यह बहुत लाभदायी है।

भारतीय लोग अधिकांश एक-दम गोरे तो होते नहीं, उनके फोटोग्राफ़ लेनेमें साधारण प्लेटपर चमड़ेके ब्योरे उतरनेके बदले चमड़ेकी चमकका फ़ोटो उतरता है। चमड़ेके ऊपर प्रायः सदा ही कोई तैल पदार्थ सा चढ़ा रहता है। यदि फ़ोटो खिंचानेके तुरन्त पहले साबुनसे मल-मल कर चेहरा धो लिया तो बात दूसरी है नहीं तो इसी तैल पदार्थ का फोटो उतर आता है और नाककी नोक अकसर चमकीली उतरती है। इसी प्रकार माथेपर भी कहीं—कहीं अस्वाभाविक चमकका एक चकत्ता दिखलाई पड़ने लगता है। मनुष्य जितना ही अधिक काला रहता है, उतनाही अधिक इस कारणसे कठिनाई उत्पन्न होती है। ऐसी दशामें पैन-क्रोमैटिक प्लेटोंसे विशेष सहायता मिलती है।

[सांवले मित्रोंका मज़ाक उड़ाना उचित नहीं है, इसी से उनके तुलनात्मक फोटोग्राफ़ यहां दिये जा रहे हैं।]

परंतु गोरे मनुष्योंके चित्रण में दूसरे तरहकी कठिनाई

पड़ती है। उनके चेहरेपर मुहासे आदि जो रहते हैं वे साधारण प्लेटपर खूब स्पष्ट दिखलाई पड़ने लगते हैं। कारण यह है कि मुहासे आदि कुछ लाल होते हैं और इसलिये वे फ़ोटोंमें काले उतर आते हैं। अंग्रेज़ोंको तो इस कारणसे विशेष कठिनाई पड़ती है। साधारण प्लेटके बदले पैनक्रोमैटिक प्लेटपर फ़ोटोग्राफ़ लेनेसे मुहासे आदि बहुत हलके उतरते हैं—इतने हलके कि उनपर ध्यान आकर्षित नहीं होता।

अधिक लगता था और उनको डेवेलप करनेमें बड़ी असुविधा होती थी। अब ये बातें नहीं रहीं। पैनक्रोमैटिक प्लेट और फ़िल्म कलकत्ता और बम्बईमें बराबर मिलते हैं और वहांसे प्रत्येक रोजगारी इनको तुरंत मँगा सकता है।

आज-कलके पैनक्रोमैटिक प्लेट और फ़िल्म काफ़ी टिकाऊ होते हैं*। दाम अब भी पैनक्रोमैटिक प्लेटोंका अधिक लगता है, परंतु अब साधारण और पैनक्रोमैटिक मालोंके मूल्योंमें अधिक अंतर नहीं है। अंतमें, डेवेलप
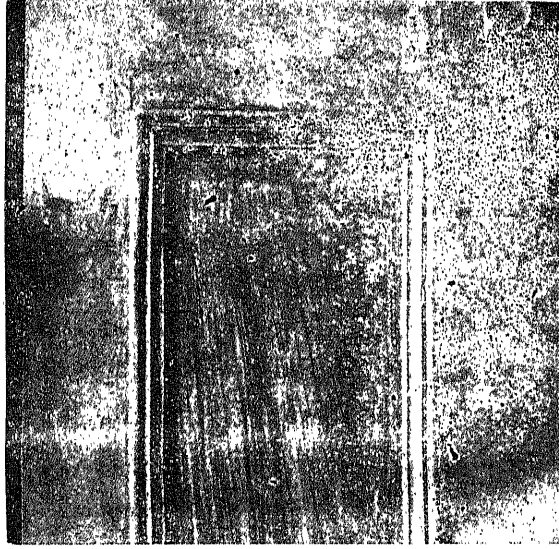
चित्र ३—साधारण प्लेटपर लिया गया फ़ोटो।

पैनक्रोमैटिक प्लेट क्या है

अविष्कारकोंने बहुत खोजके बाद पता चलाया कि प्लेटके मसालेमें विशेष रासायनिक पदार्थोंके छोड़ देनेसे, या बने हुए प्लेटोंको इन पदार्थोंके घोलोंमें कुछ देरतक डुबाकर सुखा लेनेसे प्लेटमें ऐसा परिवर्तन हो जाता है कि उसपर लाल प्रकाश भी असर करने लगता है। ये रासायनिक पदार्थ उन रंगोंमेंसे दो चार विशेष रंग हैं जो साड़ियोंके रंगनेके काममें आते हैं और जो असलमें अलकतरेसे रासायनिक क्रियाओं द्वारा बनाये जाते हैं।

पहले पैनक्रोमैटिक प्लेट साधारण दूकानोंपर नहीं मिलते थे। फिर, प्लेट अधिक दिनतक नहीं ठहरते थे—शीघ्र बिगड़ जाते थे। इतना ही नहीं। उनका मूल्य भी

करनेके लिये या तो विशेष यंत्र मोल लिये जा सकते हैं, या—जैसा इस नोटका लेखक करता है—ये आसानीसे एक-दम अँधेरेमें डेवेलप किये जा सकते हैं।

प्रकाश-छनना

सब कुछ होते हुए भी ऐसे पैनक्रोमैटिक प्लेट अभी नहीं बन सके हैं जिनपर नीले और लाल प्रकाशका बराबर-बराबर प्रभाव पड़ता हो। आज-कलके पैनक्रोमैटिक प्लेटों

* तो भी यथासंभव ताजा ही माल खरीदना चाहिये। आरंभमें नौसिखेको एक-दम ताजा माल मोल लेना चाहिये। किसी बड़े थोक-फरोशके यहांसे स्थानीय विक्रेताकी मारफत विशेषरूपसे आर्डर देकर माल मँगाना ठीक होगा।

चित्र ४—पैनक्रोमैटिक प्लेटपर प्रकाश-छननेकी सहायतासे लिया गया फोटो। पिछले चित्रसे तुलना कीजिये।

पर भी लालकी अपेक्षा नीलेका प्रभाव अधिक पड़ता है। इसलिये नीले प्रकाशको कुछ कम करना पड़ता है। इसके लिये लेंज़पर एक टोपी चढ़ा दी जाती है। इस टोपीमें लेंज़ के सामनेवाला भाग रंगीन शीशा रहता है और प्रकाश-दर्शन शटरसे दिया जाता है। शीशा कुछ लाल या नारंगी रंगका रहता है। इस शीशे द्वारा लाल प्रकाश पूर्णतया नहीं पार हो सकता है। यदि शीशा गाढ़े लाल रंगका रक्खा जाय तो नीला प्रकाश इसमेंसे घुसकर प्लेटतक पहुंच जायगा। इस लिये प्रत्येक कारखानेके बने प्लेटोंके लिये वहांके प्लेटोंकी लाल प्रकाशके लिये तेजीके अनुसार) विशेष प्रकाश-छनने बनते हैं और साधारणतः दो या तीन गाढ़ेपनके नौसिखेको चाहिये कि वह पहले केवल एक कारखानेके प्लेटका व्यवहार करे और प्रकाश- छनना मध्यम गाढ़ेपनका खरीदे। पीछे हाथ मँज जानेपर आवश्यकतानुसार वह अन्य प्लेटों और छननोंका प्रयोग आसानीसे कर सकेगा।

अपने हाथसे लाल शीशा काटकर प्रकाश—छनने नहीं बनाये जा सकते, क्योंकि साधारण टट्टीके शीशेके लगानेसे चित्र तीक्ष्ण नहीं आवेगा। प्रकाश छननेका शीशा तो लेंज के ही समान सच्चा होना चाहिये।

प्रयोग-विधि

पैनक्रोमैटिक प्लेटों या फिल्मोंके प्रयोगमें कोई विशेष कठिनाई नहीं है। यदि रोल—फ़िल्म हो तो कोई बात ही नहीं है, नहीं तो प्लेटघरमें प्लेट लगानेका काम एक दम अँधेरेमें करना पड़ेगा।

फिर, प्रकाश-दर्शनका पता किसी प्रकाश-दर्शन-सारिणी से लगायी जा सकती है। कारखानेवाले प्लेटकी तेजी अपने कैटलगमें या डिब्बेपर बतला देते हैं। यह भी बतला देते हैं कि अमुक नंबरके प्रकाश छननेसे एक्सपोज़र कितना बढ़ जायगा। इससे प्रकाश-दर्शनका पता तुरन्त लगजाता है। जैसे, यदि प्लेटकी तेज़ी ६०० एच० डी० है और प्रकाश छनना × ३ वाला है तो २०० एच० डी० के लिये प्राप्त प्रकाश दर्शनको ३से गुणा कर देना चाहिये।

यदि प्लेट या फ़िल्मपर कोई तेजी न लिखी हो, या प्रकाश-छनना ठीक उसी प्लेट या फिल्मके लिये न बना हो, तो प्लेटको ६०० एच०डी० का और प्रकाश—छननेको × २ मानकर एक—दो फोटो लेनेसे शीघ्र पता चल जायगा कि शुद्ध प्रकाशदर्शन क्या होना चाहिये।

डेवलप करना

पैनक्रोमैटिक प्लेट या फ़िल्मको एक-दम अँधेरेमें ही डेवेलप करना अच्छा होता है। प्लेटके डिब्बेपर डेवेलपरका नुसखा लिखा रहता है। उसपर यह भी लिखा रहता है

कि किस तापक्रमपर कितने समयतक डेवेलप करना चाहिये। इसलिये डेवेलपर बनाकर उसका तापक्रम थर्मामीटरसे नापकर और सब सामान ठिकानेसे रखकर अँधेरी कोठरीका प्रकाश बुझा देना चाहिये और बाहर किसीको घड़ी लेकर खड़ा कर देना चाहिये। प्लेटपर डेवेलपर डालते समय बोल देना चाहिये। बाहर खड़ा व्यक्ति उस क्षणसे समय गिनने लगेगा। जब निश्चित समय व्यतीत हो जायगा तो बाहरवाला व्यक्ति बोल देगा और उस क्षण डेवेलपरसे प्लेट निकाल लेना चाहिये।

फ़िल्म डेवेलप करनेके लिए ऐसी टंकियाँ मिलती हैं जिनमें फ़िल्म लटका दिया जाता है या किसी दूसरी रीतिसे खोल दिया जाता है और डेवेलपर इस क्रियाके पहले या पीछे छोड़ दिया जाता है। यहां भी तापक्रम और समयवाली रीतिसे डेवेलप किया जाता है।

अँधेरी कोठरीमें यदि कुछ प्रकाश रखनेकी आवश्यकता प्रतीत हो तो रक्खा जा सकता है। परंतु इसको हरे रंगका होना चाहिये। सो भी साधारण हरे रंगका नहीं। पैनक्रोमैटिक प्लेटोंके लिए जो विशेष लैंप मिलते हैं उनमेंसे एक लैंप मोल लेना चाहिये। परंतु स्मरण रखना चाहिये कि इन लैंपोंमेंसे इतना कम प्रकाश आता है कि इनके रखने और न रखनेमें कोई विशेष अन्तर नहीं रहता। हां, यदि कोई दूसरा व्यक्ति न मिल सके जो बाहर खड़ा रह कर समय बता सके, या ऐसे व्यक्तिके अभावमें ऐसी विशेष अलार्म-घड़ी न रखी जा सके जो इच्छानुसार ठीक दो या तीन या चार आदि मिनटोंपर बजनेके लिये लगायी जा सके, तो घड़ी देखनेके लिये कुछ-न-कुछ प्रकाशकी आवश्यकता पड़ेगी। इस लिये तब हरा प्राकाशवाला लैंप मोल लेना पड़ेगा। या इसके बदले इसी कामके लिये बिकनेवाला हरा अर्धपारदर्शक काग़ज मोल लेना चाहिये। इसको किसी टॉर्च (सूखी बैटरीसे जलनेवाली हाथकी बिजली-बत्ती) के सिरपर तान देनेसे भी घड़ी देखनेभरके लिए काफी प्रकाश मिल जायगा।

जहांतक हो सके पैनक्रोमैटिक प्लेटको हरे प्रकाशसे भी बचाना चाहिये।

— सिद्ध हस्त'

सिल, क्षयी, क्षय रोग या राजयक्ष्मा

[डा० त्रिलोकीनाथ वर्मा, बी० एस-सी०, एम० बी०, बी० एस०]

यक्ष्मा, राजयक्ष्मा, शोष इस रोगके दूसरे नाम हैं। यूनानी हकीम इसको तपेदिक और सिल कहते हैं। डाक्टरी में इसके कंजंप्शन (Consumption) थाइसिस (Phthisis) और ट्यूबक्युलोसिस (Tuberculosis) कहते हैं।

यह कोई नया रोग नहीं है जैसा कि कुछ लोग कहा करते हैं। प्राचीन मिश्रवासियोंको यह रोग मालूम था। प्राचीन यूनानी हकीमोंने अपने ग्रन्थोंमें इसका वर्णन किया है। भारतवर्षके प्रसिद्ध चरक संहिता नामक ग्रन्थमें इस रोगका विस्तारपूर्वक वर्णन है। (देखो चरक, चिकित्सा-स्थान अ० ८)

क्षयरोग किसी विशेष देश या जातिमें ही नहीं पाया जाता। युरोप अमेरिका, भारतवर्ष इत्यादि सभी देशोंमें होता है। यह रोग केवल मनुष्यको ही नहीं प्रत्युत गाय, बैल, बंदर पक्षी और मछलीको भी होता है। मनुष्य जातिमें यह रोग कितना पाया जाता है इसका अन्दाजा निम्नलिखित बातोंसे लगाया जा सकता है।

१. जांच पड़तालसे यह मालूम हुआ है कि जितनी मृत्यु संसारभरमें होती है उसके सातवें भागका कारण यही रोग होता है।

२. सभ्य संसारमें प्रति सेकन्ड कमसे कम एक मृत्यु क्षय रोगसे अवश्य होती है। या यह समझिये कि नित्य कोई ८ ००० मनुष्य इस रोगसे मर जाते हैं।

३. उन्नीसवीं शताब्दीमें जितने युद्ध हुए उन सभोंमें

कुल १,४०,००० मनुष्य मारे गये। हिसाब लगाया गया है कि इन्हीं देशोंमें उसी शताब्दीमें क्षयरोगके कारण ३,००००० के लगभग मौतें हुईं।

४. लखनऊ जैसे बड़े बड़े और गुंजान बसे हुए शहरोंमें २०% मौतें इस रोगसे होती हैं।

क्षयरोगको हैजा महामारी [प्लेग] इत्यादि भयानक रोगोंसे भी अधिक हानिकारक और भयानक समझना चाहिये। ये रोग सालभरमें दो चार महीने ही अपना काम करते हैं और अपनी भेंट लेकर चले जाते हैं, परन्तु क्षय रोग सालभर बराबर अपनी भेंट लिया करता है।

रोगका कारण

क्षयरोग उन रोगोंमेंसे है जो (Micro-organisms) जीवाणुओंसे उत्पन्न होते हैं। हैजा प्लेग टायफौयड फुफ्फुसप्रदाह, इसी प्रकारके रोग हैं। क्षयका कारण एक शलाकाकार कीटाणु (Bacillus) है। इसकी लम्बाई $\frac{१}{२४०००}$ इंचसे $\frac{१}{१००००}$ इंचतक और चौड़ाई अथवा मोटाई $\frac{१}{१०००००}$ इंच होती है। यद्यपि ये शलाकाएं नंगी आंखोंसे दिखाई नहीं देतीं तथापि इसमें संदेह नहीं कि वे अत्यंत परिश्रमी, पराक्रमी, भयानक और दृढ़ होती हैं। सीत, अंधेरा, मैल और धूल इन कीटाणुओंके लिये बहुत हितकारी हैं। वे बहुत नीचे दर्जेके शीतको सह सकते हैं परन्तु अधिक गर्मी और सूर्यका प्रकाश उनको बहुत हानि पहुंचाता है। सूर्यकी तेज रोशनीमें वे थोड़ी ही देरमें मर जाते हैं।

जब ये कीटाणु हमारे या अन्य प्राणियोंके शरीरमें किसी प्रकार घुस जाते हैं तो अवसर मिलनेपर वे अति शीघ्रतासे बढ़ते हैं और तंतुओंका नाश करते हैं। वे विष भी बनाते हैं जो रक्त और लसीका (Lymph) द्वारा संपूर्ण शरीरमें भ्रमण करते हैं और अंगोंको हानि पहुंचाते हैं।

ये कीटाणु शरीरके किसी भागपर आक्रमण कर सकते हैं जैसे अस्थि, संधियां, त्वचा, लसीका ग्रन्थियां, अंत्र, फुफ्फुस। अधिकतर उनका आक्रमण फुफ्फुसोंपर होता है। जो बातें इस लेखमें लिखी जायंगी उनको फुफ्फुसके क्षय रोगके संबन्धमें ही समझना चाहिये। फुफ्फुसीय क्षय रोग न केवल उस विशेष व्यक्तिके लिये ही अत्यंत विषम और भयानक है प्रत्युत उससे और लोगोंकी जानें भी जोखममें रहती हैं। जब रोग पुराना हो जाता है तो क्षयीके बलगम में करोड़ों कीटाणु रहते हैं। यदि किसी विधिसे इस कफका कुछ भाग और मनुष्योंके शरीरमें पहुंच जावे तो वे वही रोग पैदा कर सकते हैं। अस्थि, ग्रन्थि इत्यादि अन्य अंगोंका क्षयरोग विशेष व्यक्तिके लिए तो संकट है. परन्तु अन्य मनुष्यके लिये फुफ्फुसीय क्षयरोगकी भांति हानिकारक नहीं।

क्षयके पूर्वके लक्षण

१. बार-बार जुकाम (प्रतिश्याय) और खांसीका होना। खांसी कुछ दिनों पीछे ठहर जाती है और उसका ठसका बना रहता है। मामूली खांसीकी औषधियोंसे यह खांसी पूरे तौरसे अच्छी नहीं होती। कुछ समयके लिये (जबतक औषधिका प्रयोग किया जावे) जाती रहती है फिर ज्यों-की-त्यों हो जाती है। बहुधा ऐसा देखा गया है कि शीत ऋतुमें जुकाम हुआ औ धीरे धीरे बढ़ता गया और खांसी भी शुरू हुई। मामूली चिकित्सासे जुकाम अच्छा हो गया परन्तु खांसीका कुछ ठसका शीत ऋतुके अंततक बना रहा। रोगी और उसके माता पिताका खयाल रहा कि ग्रीष्म ऋतु आते ही खांसी अपने आप जाती रहेगी। ग्रीष्म ऋतु आती है. खांसी घटनेकी जगह बढ़ती है। इतनेमें रोगके और लक्षण भी दिखाई देने लगते हैं और निदानमें अब अधिक संदेह नहीं रहता। (यह बात याद रखनी चाहिये कि क्षय रोग कभी-कभी बिना खांसीके भी हो सकता है)।

२. दुर्बलता और शरीरका भार धीरे धीरे घटना। सामान्यतः २५-३० वर्षकी आयुतक स्वस्थ मनुष्यका भार धीरे-धीरे बढ़ा करता है। इस आयुके पश्चात् भार बहुत वर्षोंतक एकसा रहता है न बहुत घटता है और न बहुत बढ़ता। यदि जवान मनुष्यका भार उस समयमें जब कि उसको या तो बढ़ना चाहिये या स्थिर रहना चाहिये दिन प्रति दिन घटता जावे और दुर्बलता बढ़ती जावे तो उसका कारण जाननेकी बड़ी जरूरत है। क्षय इसका एक बड़ा और सामान्य कारण है, इसको कभी न भूलना चाहिये।

३. हर समय एक प्रकारके थकानका रहना—शारीरिक और

मानसिक परिश्रम करनेकी अधिक इच्छा न होना, बदनका टूटना, तबियतका गिरा रहना, अरुचि ।

४. मंद ज्वरका रहना—पहिले ज्वर कभी-कभी आता है और बहुधा यह ख्याल किया जाता है कि मामूली मौसमी बुखार है। फिर ज्वर प्रतिदिन आने लगता है। यह ज्वर बहुधा दोपहरके पीछे चढ़ा करता है—विशेषकर सायंकालको। जब रोग बढ़ जाता है तो ज्वर थोड़ा बहुत हर समय बना रहता है। मामूली ओषधियोंसे यह ज्वर नहीं टूटता।

५. रात्रिके समय पसीना आना—इस पसीनेका शारीरिक परिश्रम और गर्मीसे कोई सम्बन्ध नहीं होता। जाड़ेके दिनोंमें जब स्वस्थ मनुष्योंको परिश्रम और व्यायाम करनेसे भी सहजमें पसीना नहीं आता तब भी क्षयीको रातमें पसीना आया करता है। तेज़ बुखारका होना भी इस पसीनेके लिये आवश्यक नहीं।

६. खांसते समय बलग़म या थूकमें रक्तका आना—रक्तकी चाहे लकीर ही दिखाई दे, चिह्न मात्र हो, चाहे उसका वमन (कय) हो।

जब किसी मनुष्यको जो पहिले स्वस्थ था धीरे धीरे ऊपर लिखे हुए लक्षण दिखाई दें तो उसको क्षणभर भी चुपचाप न बैठना चाहिये। उचित है कि वह तत्काल किसी योग्य डाक्टर या वैद्यसे अपने स्वास्थ्यकी परीक्षा करावे और जैसी वह सलाह दे वैसा काम करे। यह बात कभी न भूलनी चाहिये कि नवीन क्षयरोग बड़े-बड़े साधनोंसे अच्छा हो जा सकता है, परन्तु जब रोग पुराना हो जाता है तब वह असाध्य हो जाता है। नवीन क्षय रोगमें अधिक बलगम नहीं आता और बलगममें अधिकांश क्षयके कीटाणु भी नहीं पाये जाते। ज्वर भी हलका रहता है और मनुष्य अपना काम करता रहता है। फुप्फुसोंकी परीक्षा करनेसे वे विशेष बातें जो ज़रा बढ़े हुए रोगमें पायी जाती हैं आसानीसे मालूम नहीं की जा सकतीं। जब बलगममें कीटाणु पाये जावें और फुप्फुसोंकी परीक्षासे क्षयके विशेष चिह्न मिलें और मनुष्य शय्यापर लेट जावे और उसको तेज ज्वर रहे तब रोगको बहुत बढ़ा हुआ समझना चाहिये। ऐसी दशामें रोगके अच्छे होनेकी अधिक संभावना नहीं रहती।

रोग किस प्रकार फैलता है

क्षय रोग आतशक या उपदंश फिरंगरोगकी भांति पुश्तैनी या पारम्परीण नहीं है। यदि क्षयीकी सन्तानको क्षयरोग हो जावे तो उसका कारण यह नहीं है कि जन्मसे ही उसके शरीरमें रोगके कीटाणु थे। यदि क्षयीकी संतान का पालन-पोषण भली प्रकार हो और वह क्षयग्रस्त माता या पिताके पास न रखी जावे तो उसको क्षय रोग न होगा। क्षयी कमज़ोर होता है, इस कारण उसके बालक भी कमजोर होते हैं। क्षयके कीटाणु (और अन्य रोगोंके कीटाणु भी) कमज़ोर शरीरोंमें भले प्रकार बढ़ते हैं। इस कारण ऐसे बालकोंको भी क्षय रोग होनेकी अधिक सम्भावना रहती है—विशेषकर ऐसी दशामें जब कि बेपरवाहीके कारण उनके माता या पिताके कीटाणुसे भरे हुए बलग़मके कण वायु या भोजनद्वारा हर रोज़ उनके शरीरमें पहुंचते रहें।

क्षयके कीटाणु हमारे शरीरमें क्षय रोगियोंसे ही आते हैं, चाहे ये रोगी मनुष्य हों चाहे अन्य प्राणी। वैज्ञानिक इस विचारमें एकमत हैं कि जो कीटाणु मछलियों और पक्षियोंमें क्षय उत्पन्न करते हैं वे मनुष्यमें क्षय उत्पन्न नहीं कर सकते, परन्तु गाय, बैलमें क्षय उत्पन्न करनेवाले कीटाणु मनुष्यके शरीरमें पहुंचकर क्षय रोगका कारण हो सकते हैं। गाय, बैलके क्षय रोगके कीटाणु हमारे शरीरमें मांस या दुग्ध द्वारा पहुंचा करते हैं। क्षयके कीटाणु हमारे शरीरमें निम्नलिखित विधियोंसे पहुँच सकते हैं—

१. श्वास द्वारा—जब क्षयरोगी खांसता है तो उसके मुखसे बलग़मके नन्हे नन्हे ज़र्रे निकलकर वायुमें मिल जाते हैं। हर एक ज़र्रेमें करोड़ों कीटाणु रहते हैं। श्वास द्वारा ये कीटाणु भरे हुए ज़र्रे दूसरे मनुष्योंके फुप्फुसोंमें पहुंच सकते हैं और रोग उत्पन्न कर सकते हैं।

क्षयी मकानके फर्श या दीवारोंपर थूकता है। बलगम सूख जाता है और धूलमें मिल जाता है। धूलमें मिले हुए बलग़मके ज़र्रोंमें कीटाणु बहुत समयतक जीवित रहते हैं। मकानमें झाड़ू लगायी जाती है। श्वास द्वारा यह धूल हमारे फुप्फुसोंमें पहुंच सकती है। धूल भोजनकी वस्तुओंपर भी बैठ जाती है और इस प्रकार भोजनद्वारा कीटाणु हमारे शरीरमें पहुंच सकते हैं।

२. भोजनद्वारा—(अ) बलग़मके ज़र्रे रोगीके मुखसे निकलकर आसपास रक्खे हुए भोजनपर बैठ जावें।

(आ) झाड़ूसे उड़ायी हुई धूल भोजनपर बैठ जावे।

(ई क्षय रोगी स्वस्थ मनुष्योंके साथ एकही बासन में भोजन करे या स्वस्थ मनुष्य रोगीका जूठा भोजन खावे या जूठा जल पीवे।

(उ) रोगी अपने मैले हाथोंसे जिनमें बलग़मका कुछ अंश लगा हो दूसरोंका भोजन छुवे।

(ऊ) मक्खियां बलग़मपर बैठकर फिर भोजनपर जा बैठें (मक्खियोंके विषयमें विज्ञानके पाठकोंका ध्यान हम एक बार पहिले भी आकर्षित कर चुके हैं। देखो विज्ञान भाग ३ सं० ५ पृष्ठ २०१)

३. जखमों द्वारा—हमारे शरीरमें कोई ज़खम हो या त्वचा कहींसे कट जावे और इन ज़खमोंमें रोगीका बलग़म या क्षयज फोड़ेकी पीप लग जावे तब भी रोगके होनेका भय रहता है।

४. ऐसी गायका दूध पीना जिसे क्षयरोग विशेषकर स्तनोंका क्षय रोग है। यदि गाय या बैलके मांसमें क्षयके कीटाणु हैं और यह मांस बिना भले प्रकार पकाए खाया जावे तब भी क्षय रोगके होनेकी सम्भावना रहती है। बच्चोंमें क्षय रोगी (विशेषकर अंत्रका क्षयरोग) बहुधा क्षय-रोगवाली गायोंका दूध पीनेसे होता है।

किन-किन दशाओंमें क्षयके होनेकी अधिक सम्भावना रहती है ?

यह आवश्यक नहीं है कि जब क्षय रोगोत्पादक कीटाणु किसी व्यक्तिके शरीरमें पहुंच जावें तो उसको क्षयरोग हो। हममेंसे बहुत कम मनुष्य ऐसे होंगे जिनके शरीरमें कभी न कभी क्षयके कीटाणु न पहुंचे हों, फिर भी हम सभोंको यह रोग नहीं होता। इसका कारण यह है कि प्रत्येक मनुष्यमें एक स्वाभाविक रोगनाशक शक्ति होती है [देखो विज्ञान भाग ४ सं० १ पृष्ठ २] जो किसी मनुष्यमें कम होती है किसीमें अधिक। जब यह शक्ति अधिक होती है तब मनुष्य स्वस्थ रहता है और रोग उसको बहुत कम सताते हैं। जब यह शक्ति कम होती है या किसी कारण एकदम कम हो जाती है (जैसे स्त्रियोंमें प्रसवके समय) तब रोग, विशेष कर क्षय ऐसे भयानक रोग, उसको तुरन्त घेर लेते हैं। हमारे शरीर भूमिके समान हैं और रोगोत्पादक जन्तु बीजके समान। बीज ऊसर भूमिमें नहीं जमता परन्तु उर्वरा भूमिमें शीघ्र ही जम जाता है। शरीर रोगोत्पादक जन्तुओंके लिये ऊसर भूमिके समान है। स्वाभाविक रोगनाशक शक्तिके कारण ये जन्तु पनपने ही नहीं पाते और तुरन्त मृत्युको प्राप्त होते हैं। अन्यतः अस्वस्थ शरीर उर्वरा भूमिके समान है जिसमें जन्तु बिना रोकटोकके बढ़ते हैं और रोग उत्पन्न करते हैं। अब हम वह बातें बतलाते हैं जिनसे हमारे शरीर रोगोत्पादक जन्तुओंके लिये विशेषकर क्षयके कीटाणुओंके लिये उर्वरा भूमि बन जाते हैं—

(१) गन्दी और अशुद्ध वायु। शुद्ध वायु हमारे जीवन के लिये एक परमावश्यक चीज़ है। भोजन बिना मनुष्य तीन सप्ताह जीवित रह सकता है, जल बिना तीन दिन जीवित रह सकता है परन्तु वायु बिना तीन मिनट भी जीवित रहना कठिन है। जिन कारणोंसे वायु खराब हो जावे उन सबको स्वास्थ्यके लिये शत्रुके समान जानना चाहिये। शहरोंकी गलियों और कूचोंमें जहां ऊंचे-ऊंचे मकान बहुत पास पास बने रहते हैं वायुका संचार भले प्रकार नहीं होता। एक कमरेमें बहुतसे मनुष्योंका रहना, सोनेके कमरेमें बहुतसा असबाब रखना, मकानमें खिड़कियों और दरवाज़ोंका कम होना, सोते समय सब खिड़कियों और दरवाज़ोंको बन्द करके वायुका रास्ता बन्द करदेना मुंह ढांककर सोना जिससे मलिन पदार्थ जो एकबार श्वासद्वारा शरीरसे बाहर निकल चुके हैं फिर फुफुसोंमें घुस जावें रहने-सहनेके मकानमें डंगरोंको भी रखना मकानके पास अस्तबल और कूड़ाखानेका होना ये सब बातें वायुको गन्दा और अशुद्ध करती हैं। आबादीके पास बड़ी-बड़ी फैक्टरियों, कारखानों और पुतलीघरोंका होना भी अच्छा नहीं। ऐसे स्थानोंके आसपासकी वायुमें धूल मिट्टी बहुत रहती है।

भारतवर्षमें स्त्रियोंमें जो परदेका रिवाज है वह उनके स्वास्थ्यके लिये अत्यन्त हानिकारक है। परदेके कारण स्त्रियों को घरोंके भीतर ही अपना जीवन व्यतीत करना पड़ता है और बाहरकी खुली और पवित्र वायु बेचारियोंको कभी मिलती ही नहीं। यह बात किसीसे छिपी नहीं है कि भारत-

वर्षमें उन जातियोंकी स्त्रियोंका स्वास्थ्य जिनमें परदेका रिवाज नहीं है परदा करनेवाली स्त्रियोंके स्वास्थ्यकी अपेक्षा बहुत अच्छा होता है। पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्रियोंमें क्षयरोगके अधिक पाये जानेका एक कारण परदेका रिवाज भी है। मुसलमान स्त्रियोंमें हिन्दू स्त्रियोंकी अपेक्षा क्षय अधिक पाया जाता है।

(२) दरिद्रता—भोजनका कम मिलना। हमारा शरीर उस भोजनसे बनता है जो हम खाते हैं रोगनाशक वस्तुएं भी इसी भोजनसे उत्पन्न होती हैं। जब पौष्टिक भोजन यथेष्ट परिमाणमें नहीं मिलता शरीर निर्बल हो जाता है, हमारी रोगनाशक शक्ति घट जाती है और अनेक प्रकारके रोग विशेषकर क्षयरोग जो सदा मुंह बाये अपने शिकारकी घातमें बैठा रहता है, धर दबाते हैं।

छोटे बालकोंके लिये दूध एक बड़ी आवश्यक चीज़ है। भारतवर्षमें अच्छे दूधका सस्ते मूल्यपर आसानीसे प्राप्त होना दिन-प्रति-दिन कठिन होता जाता है। लाखों बच्चे अच्छे दूध न मिलनेके कारण बेमौत मर जाते हैं। हरएक भारतहितैषीका यह बड़ा धर्म है कि वह ऐसी तदबीरें सोचे और काममें लावें जिससे अच्छा दूध इतना सस्ता मिले कि मामूली आमदनी वाले मनुष्य उसको मोल ले सकें।

गर्भवती स्त्रियोंको अच्छा पौष्टिक भोजन मिलना चाहिये जिससे वे बलिष्ठ सन्तान उत्पन्न करें और अपनी सन्तानको अपने स्तनोंसे दूध भी अच्छी तरह कमसे-कम नौ महीनेतक पिला सकें। बच्चा जननेके पीछे भी उनको अच्छा सहजमें पचनेवाला पौष्टिक भोजन यथेष्ट परिमाणमें मिलना चाहिये।

३. थकान—अपनी शक्तिसे बढ़कर कार्यमें प्रवृत्त होना। अधिक शारीरिक और मानसिक परिश्रम स्वास्थ्यको बिगाड़ कर हमारी स्वाभाविक रोगनाशक शक्तिको घटाता और हमारे शरीरको रोगोत्पादक कीटाणुओंके लिये उर्वरा भूमि बनाता है। अपनी शक्तिसे बढ़कर युद्ध करना, पढ़ना, भार उठाना, मार्ग चलना, लंघन करना, नदीके वेगको बलपूर्वक रोकना, छलांग मारना; ईर्षा, भय, उत्कण्ठा, क्रोध, शोक, मैथुनादि सब क्षयके परोक्ष कारण हैं। [देखो चरक संहिता चिकित्सास्थान अ० ८ श्लोक १२ से १६ तक]

प्रसवके पीछे स्त्री निर्बल हो जाती है और उसकी रोगनाशक शक्ति कम हो जाती है। यदि इन दिनों उसको गन्दे मकानमें जहां शुद्ध वायु और सूर्यके प्रकाशका प्रवेश न हो, रखें, सहजमें पचनेवाला भोजन न दें, बदनकी सफाई के लिये मैला-कुचैला कपड़ा दें तो उसको क्षयके हो जानेकी अधिक संभावना होती है।

जो स्त्रियां थोड़े-थोड़े समयके पीछे बच्चे जनती हैं उनको भी इस रोगके होनेकी अधिक संभावना रहती है।

४. अस्वच्छता—शरीरको जलसे धोकर शुद्ध न करना जिससे त्वचाके छिद्र मैल या सूखे हुए पसीनेसे बन्द हो जावें और पसीनेको भले प्रकार बाहर न निकलने दें, गहरा श्वास न लेना जिससे फुप्फुस भले प्रकार न फूलें और उनकी शिखर और किनारे वायुसे खूब न भरें और उनमें अच्छी तरह रक्तका संचार न हो, अशुद्ध वायुमें श्वास लेना जिससे रक्त भली प्रकार शुद्ध न हो और ओषजन जो सब कार्यों और क्रियाओंके लिये परमावश्यक है यथा-परिमाण शरीरमें न पहुंचे। दांतों और मुँहका दातौन, मञ्जन, कुल्ली इत्यादिसे खूब न धोना जिससे भोजनके अंश मुंहमें सड़ें और उनके सड़ावसे उत्पन्न होनेवाली विषैली वस्तुएं शरीर में पहुंचकर हानि पहुंचावें। कब्जका रहना जिससे मल अंत्रमें सड़े और विषैले पदार्थ रक्तमें पहुंच स्वास्थ्यका नाश करें। जब शौचकी इच्छा हो तब मलत्याग करने न जाना अथवा उसको थोड़ी बहुत देरतक रोके रखना। मूत्रको रोकना जिससे वे मलिन पदार्थ जो शरीरसे तुरन्त ही बाहर निकलने चाहियें थे न निकलें और मूत्राशय और वृक्कोंको हानि पहुंचे। ये और ऐसी-ऐसी और बातें शरीरको अस्वच्छ बनाती हैं और स्वास्थ्यको बिगाड़ती हैं।

५. भंग, अफीम, तम्बाकू, चरस, मद्य इत्यादि चीजोंका सेवन हमारे स्वास्थ्यपर ज़हरीला असर डालता है। हुक्का पीना दो प्रकारसे हानि पहुंचाता है—

(१) तंबाकूका ज़हर हमारे शरीरमें पहुंचता है।

(२) एक मनुष्य दूसरेका थूक और बलग़म चाटता है। किसी दूसरे मनुष्यका थूक चाटना चाहे वह व्यक्ति कितनाही प्यारा और माननीय क्यों न हो स्वयं ही इतनी मलिन आदत है कि उसको त्यागनेमें ज़रा भी देर न करना चाहिये। कौन जानता है कि जिस मनुष्यका जूठा हुक्का आप पी रहे हैं उसको क्षय रोग है या नहीं? यदि है तो

क्षयके कीटाणु आपके मुखमें आसानीसे आ सकते हैं। न भी हो तब भी दूसरेका थूक अपने मुखमें ले जानेकी कौन आवश्यकता है।

(६) बालविवाह—यह कुरीति भारतवर्षकी बहुतसी आपत्तियोंका एक मूल कारण है; इससे न केवल दोनों व्यक्तियोंको प्रत्युत सम्पूर्ण जाति और देशको अत्यन्त हानि पहुंचती है। छोटी आयुमें बच्चा जननेसे स्त्रीका स्वास्थ्य बिगड़ जाता है और क्षयके भयानक कीटाणु जो सदा निर्बल मनुष्योंकी घातमें रहा करते हैं उनके शरीरमें प्रवेश करते हैं और उनको अपना शिकार बनाते हैं। इस संयोगसे जो सन्तान उत्पन्न होती है वह निर्बल होती है और इस जीवनके घोर संग्राम अर्थात् जीवन प्रतिवादिताके लिये सर्वथा अयोग्य होती है। ऐसी निर्बल, अस्वस्थ सन्तानसे गुलामीके सिवाय और किस चीजकी आशा की जा सकती है।

(७) अन्य रोगोंके कारण उत्पन्न हुई निर्बलता। उपदंश, फुप्फुसप्रदाह, चेचक, खसरा जैसे रोगोंसे शरीर अत्यंत निर्बल हो जाता है। ऐसे रोगोंके पश्चात् बड़ी सावधानीसे रहना चाहिये। उपदंश (आतशक) रोगके विषयमें हम यह कहे बिना नहीं रह सकते कि उसका एक बड़ा कारण वेश्यागमन है और वेश्यागमन तथा मद्यपानसे घना संबंध है। मद्यपान, वेश्यागमन उपदंश (और सूजाक भी) यह तीनों चीजें देशके लिये अत्यंत हानिकारक हैं। यदि इनमेंसे एक भी चीज कम हो जावे तो शेष दोनों चीजें कम हुए बिना रह नहीं सकती और तीनों चीजोंके कम होनेसे क्षय जैसे रोग भी अवश्य कम होंगे।

वैज्ञानिक जासूसी

[श्री कार्त्तिकप्रसाद]

ऑस्कर मर गया। वह अपने ही कमरेमें मरा हुआ पाया गया। हत्याका पता लगानेके लिये सूत्रोंकी कमी नहीं थी पर वे सूत्र केवल अनुभवी निरीक्षकोंके ध्यानपूर्वक खोज करनेही पर मिल सकते थे। इस रहस्यपूर्ण घटनाका भेद यह है कि ऑस्कर केवल एक पुतला था जो अमेरिकाके पुलिस विभागके आदमियोंकी शिक्षाके लिये इस्तेमाल किया गया था। जब दृश्य तैयार कर लिया जाता है तब विशेष परीक्षकोंको उस कमरेकी परीक्षा करनी पड़ती है। उनके नतीजोंपर उनके कामके अनुसार क्रमसे नंबर दिया जाता है। इस प्रकारका काम अत्यन्त उपयोगी है क्योंकि यहीं कई एक ऐसे सूत्र मिलते हैं जो किसी अभियोगके भेद का पता लगानेमें बहुत मदद देते हैं। इसी कारणसे विशेष परीक्षकोंको इस तरहके कामकी यहाँ पूरी तथा उचित शिक्षा दी जाती है। घटनास्थलमें पहुंचनेपर निरीक्षकके लिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि वह इस बातका ध्यान रखे कि यथासंभव कोई वस्तु हाथ द्वारा तबतक न छुई जाय जब तक कि परीक्षा पूर्ण रूपसे समाप्त न हो जाय। पुलिस विभागके विशेष परीक्षकोंके पास वह सब सामग्री तथा यन्त्र रहते हैं जिनके द्वारा वे उन सूत्रोंका ठीक तरह पता लगाकर लिख सकें जिनकी सच्चाई वे बादमें कचहरीमें साबित कर सकें।

अकसर घटनास्थलका फोटोग्राफ लेना बहुतही उपयोगी सिद्ध हुआ है। पुलिस विभागके हर आफिसमें आधुनिक ढंगके कैमरे रहते हैं जिनसे काम करनेके लिये किसी विशेषज्ञकी कोई जरूरत नहीं और जो मकानके भीतर और बाहर सब जगह आसानीसे काम दे सकें। इन कैमरोंमें कुछ ऐसे भी होते हैं जिनमें दोहरे विस्तारकी भाथी लगी रहती है जिससे कि वे विषयके बहुत निकट रखे जा सकें और विषयका पूरे असली नापका फोटो लिया जा सके। ये कैमरे किसीके हाथकी लिखावट दस्तखत, अथवा उँगलियोंके निशानके भी फोटो ले सकते हैं और ऐसे कामोंके लिये उनमें एक-एक इञ्च लम्बा स्केल भी लगा रहता है। उन सब कामोंमें जिनमें दोहरे विस्तारके कैमरे काममें लाये जाते हैं, फोकस कैमरेकी पीठपर लगे हुए धुन्ध शीशे

द्वारा किया जाता है। इस तरहके फ़ोकस करनेमें एक मुख्य लाभ यह है कि इसके द्वारा मनुष्य-चित्र अच्छी तरह लिया जा सकता है। कैमरेमें स्वयं संचालित होनेवाले शटर लगे रहते हैं जिससे एक सेकेण्ड या आध सेकेण्डका प्रकाश-दर्शन ठीक-ठीक दिया जा सकता है जो कि जोड़ बटोरकर बनाने वाले फोटोग्राफके तैयार और नक़ल करनेमें बड़े कामका सिद्ध हुआ है। दूसरी तरफ बाहरी दृश्योंके फोटो खींचनेमें १/२५० सेकेण्डतकका भी प्रकाश-दर्शन सुविधासे दिया जा सकता है।

फोटोके खींचनेका समय, जिस जगह फोटो खींचा गया हो उसके आसपासके वस्तुओंकी स्थिति इत्यादि ठीक-ठीक नोट कर लिये जाते हैं। जहाँ हो सकता है चीजोंकी सूरत शकल तथा उनका पूरा नाप और वर्णन भी लेनेका प्रयत्न किया जाता है। नाप लेनेके लिये फीता अथवा अन्य औजारोंको काममें लाया जाता है जिससे ग्राफ खिंचे कागज पर नकल उतार ली जाती है। चित्रों और नकशोंके खींचने के समय एक कुतुबनुमा भी रहता है जिससे सब चीजोंकी स्थिति बिलकुल ठीक मालूम रहे।

जब ऊपरी तौरसे सब बातोंकी जांच हो जाती है तब घटनास्थलकी विशेष परीक्षा की जाती है। इस बातका विशेष ध्यान रखा जाता है कि जांचके समयकी कोई बात छूट न जाय। आतिशी शीशा जो कि विशेष परीक्षकके सामानमें रहता है काममें लाया जाता है। परीक्षक इसका ध्यान रखता है कि परीक्षाकी किसी वस्तुसे अभियोगके विषयमें किसी अत्यन्त आवश्यक सूत्रका पता चल सकता है।

यह अत्यन्त आवश्यक है कि अगर परीक्षककी समक्ष में कोई वस्तु ऐसी है जो पुलिस विभागके आफिसकी प्रयोगशालामें भेजी जानी चाहिये तो वह बहुत सावधानी से पैक करलेनी चाहिये। पत्र तार या अन्य कोई कागज जो कामके हों सेलोफोनके बने लिफाफोंमें बन्दकर लिये जाते हैं। धूलके कण या अन्य इस प्रकारकी वस्तुएँ जो प्रयोगशाला के कामकी है छोटे-छोटे डिब्बोंमें बन्द कर ली जाती है। इसी प्रकार तरल पदार्थ साफ नलिकोंमें सुरक्षित कर लिये जाते हैं जिनके ऊपर लिख दिया जाता है, "खोलो मत, प्रयोगशालाके लिये सूत्र।" तब विशेष परीक्षक जिसने इन वस्तुओंको पाया है उनके ऊपर अपना दस्तखत करता है और मुहर लगाता है। जब कि यह सामान प्रयोगशालामें पहुंचता है तब उसका ब्योरा एक रजिस्टरमें लिख लिया जाता है।

कभी घटनास्थलपर पाये धब्बोंकी जाँचकी आवश्यकता पड़ती है। खूनके धब्बोंका पता लगानेके लिये 'बेंजीडीन परीक्षा"की आवश्यकता पड़ती है। इस प्रयोग को करनेके लिये धब्बेके थोड़ेसे हिस्सेको, जिस वस्तुपर धब्बा पड़ा है उससे चाकूसे छुड़ाकर एक रासायनिक प्रकारसे साफ सोख्तेपर रखते हैं और उसपर थोड़ासा विशेष प्रकार से तैयार किये हुए नमकके घोलको डालते हैं जिसमें धब्बा घुल जाता है। अब इसपर थोड़ा बेंजीडीन डालते हैं। अगर धब्बा खूनका है तो सोख्तेका रंग नीला हो जाता है। इस बातकी जांचके लिये कि कोई गलती न हो जाय एक दूसरे उसी प्रकारके सोख्तेपर केवल नमकका घोल तथा बेंजीडीन डाला जाता है अवश्य ही इस कागजपर कोई रंग नहीं आता जिससे इस बातकी जांच हो जाती है कि प्रयोग ठीक किया गया है।

बेंजीडीनका घोल तैयार करनेके लिये थोड़ा शुद्ध बेंजीडीन एक परखनलीमें रखकर ऊपरसे अनाजकी शराब इतनी डाली जाती है कि वह कुल बेंजीडीनको घोलनेके लिये काफी हो। इस प्रकार बेंजीडीनका (Saturated) संपृक्त घोल तैयार हो जाता है। तब दो तीन बूंद तेज सिरकेका तेजाब डालकर कुल अच्छी तरह हिलाया जाता है इसके बाद दो तीन बूंद हाइड्रोजन परॉक्साइड (उदजन द्विओषिद) डालकर घोल फिर हिला दिया जाता है। यह घोल तुरन्त काममें लाया जाता है और हर दफा परीक्षाके लिये ताजा नया घोल बनाया जाता है।

नमकका घोल—नमकको स्रुतजलमें घोलकर बनाया जाता है। यह घोल ८५% होता है अर्थात् मोटी तौरसे एक चम्मचका चौथाई नमक एक प्याले साफ पानीमें डाला जाता है।

खूनकी स्थितिसे इस बातका कुछ सबूत मिलता है कि चोट कैसे लगी। जैसे जिस दिशामें खूनके छींटे गिरे मिलते हैं उनसे यह पता चल सकता है कि किस ओरसे और कितनी तेजीसे खून गिरा है। किसी घायल मनुष्यके शरीरसे

जो चल रहा है खूनकी बूंदें लट्टूनुमा होती हैं, बूंदका छोटा सिरा जिस ओर मनुष्य जाता है, उसी ओर होता है। अगर घायल हिस्सा अपनी जगहसे हटता नहीं तो बूंदें गोल होती हैं। अगर चोट घायल व्यक्तिके हाथमें है तो जब वह व्यक्ति चलता है तो हाथ पीछे जानेके समय खून की बूंदें उस व्यक्तिकी चालसे भिन्न दिशामें गिरी मिलेंगी और बूँदोंके छोटे सिरे जिस दिशामें वह गया है उससे विपरीत दिशामें होंगे।

खूनकी स्थितिके अलावा उसकी हालतसे भी बहुत सी बातें जानी जा सकती हैं। खूनके जमनेकी स्थिति देखकर यह पता चल सकता है कि कितना समय बीता है। मामूली तौरसे मनुष्यका खून २ या ३ मिनटमें जमने लगता है और ७से ९ मिनटमें जमता है।

समय, स्थान, तथा अन्य कारणोंका भी असर खूनके जमावपर पड़ता है पर अगर खून जमा न हो तो यह निश्चय ही समझ लेना चाहिये कि दुर्घटना बहुत थोड़े समय पहले हुई है।

खूनका सूखना, जमनेसे भिन्नहै और दाग अथवा धब्बों के समयका निर्णय करनेमें सहायक सिद्ध हुआ है। एक बूँद खूनके सूखनेमें १ से २ घंटेतक लगते हैं। इसके अलावा अधिक खून और धीरे-धीरे सूखना है।

दागका रंग भी बहुत जरूरी है। ताजे खूनके दागका रंग सुर्ख लाल रंगका होता है जितना ही समय बीतता है रंग उतनाही गाढ़ा होता जाता है। आरंभमें भूरा, फिर गाढ़ा भूरा और अन्तमें बिलकुल कालेके लगभग हो जाता है। भिन्न-भिन्न दशामें इस परिवर्तनके लिये भिन्न-भिन्न समय लगता है पर मोटी तौरसे खूनकी दशा देखकर दुर्घटनाके होनेके समयका काफी अच्छा अन्दाजा लगाया जा सकता है। कभी-कभी खूनके दागका रंग, बैंगनी, हरा पीला अथवा अन्य किसी प्रकारका हो सकता है। अतः इन रंगके दागोंकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये, क्योंकि इस बातकी संभावना रहती है कि ये खून के दाग हों।

अकसर घटनास्थलपर ऐसी चीजें मिलती हैं जो कुछ समयमें नष्ट हो जा सकती हैं या सड़ जा सकती हैं। एक विशेष प्रकारके मोमद्वारा, जिसका आविष्कार वियनाके डा० ऐलफौन्स पॉलरने किया था, इस प्रकारके विषयोंकी नकल तैयारकी जा सकती है। फोटोग्राफी नष्ट होनेवाली चीजोंकी नकल लेनेमें बहुत उपयोगी सिद्ध हुई है पर इसके द्वारा ली हुई नकलमें लम्बाई, चौड़ाई और मोटाई तीनों चीजें नहीं आ सकतीं।

इस प्रकारका मोम किसी चोटकी ठीक शकल अथवा मृत्युके बाद चेहरेकी शकल इत्यादिके उतारनेमें अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुआ है। इसी प्रकार किसी फलमें दांतके चिन्ह, कीचड़, बालू अथवा धूलपरके चिन्होंकी हूबहू नकल तैयार करनेमें भी मोमद्वारा बड़ी सहायता मिली है।

मोमसे मूर्ति बनानेकी क्रियाको सीखनेके लिये बहुत चतुराई तथा मेहनतकी आवश्यकता नहीं है। किसी भी व्यक्ति द्वारा प्रशंसनीय काम थोड़ेसे अभ्यासद्वारा किया जा सकता है।

इसके बनानेकी क्रिया इस प्रकार है। पहले एक बहुत सूक्ष्म पदार्थसे सांचा तैयार किया जाता है फिर इसके ऊपर एक प्रकारका मोम लगाकर मूर्ति उतार ली जाती है। इन दोनोंको छापपर लगानेसे पहले गरम किया जाता है। गरम करके सांचा तैयार करनेवाले मसालेका लेप छापपर ब्रशसे लगाया जाता है। यह सूख जानेपर कड़ा हो जाता है और आसानीसे छापपरसे अलग कर लिया जाता है। अब दूसरा मसाला पिघलाकर इस सांचेमें डाल दिया जाता है। इसके सूख जानेपर ऊपरका सांचा चाकूसे या और किसी प्रकार काटकर अथवा छीलकर अलग कर दिया जाता है और छापकी मूर्ति तैयार हो जाती है।

मोमद्वारा सांचा बनानेका सामान तैयार करके घटनास्थलपर हवासे शून्य बोतलों या बर्तनोंमें बन्द करके भेजा जाता है। नकल तैयार करनेमें विषय अपने स्थानपर ज्योंका त्यों पड़ा रहे तो भी कोई कठिनाई नहीं होती। विषयको बिना हिलाये-डुलाये मोमकी मूर्ति आसानीसे तैयार की जा सकती है।

जब ऐसे विषयकी जिसके नष्ट होनेकी सम्भावना हो बहुत सूक्ष्म रूपसे नकल न लेनी हो तो प्लास्टर ऑफ पेरिस काममें लाया जा सकता है। यह मिट्टी या बर्फपर पैरके चिन्ह, गाड़ीके टायरों और पहियोंके चिन्ह इत्यादिकी नकल लेनेमें बड़ी उपयोगी है। प्लास्टर ऑफ पेरिसका मिश्रण पानीमें मिलाकर कामके लिये तैयार किया जाता है और

इस बातका ध्यान रखना चाहिये कि हवाके बुल्ले न रह जायँ और पानी और प्लास्टर ऑफ पेरिस खूब अच्छी तरह मिल जायँ। जिस वस्तुकी नकल उतारनी होती है उसके ऊपर इस मिश्रणको इस प्रकार सावधानीसे डाला जाता है कि उसकी शकल न खराब होने पाये। तब इसे कड़ा होने देते हैं, जिसमें करीब २० मिनट लगते हैं। इसको मजबूत बनानेके लिये इसमें तार या लकड़ीके टुकड़े मिला देते हैं। सूखनेपर यह अलग कर लिया जाता है। मिट्टीके सांचेपर थोड़ा तेल पोत देनेसे प्लास्टर मिट्टीसे चिपकता नहीं। अगर चिन्ह बरफपर है तो उसके ऊपर पहले थोड़ा टैलकमकी बुकनी (टैलकम पाउडर) छिड़क दी जाती है।

खोज विभागके दफ्तरमें करीब १८०० तरहके भिन्न-भिन्न टायरोंके नमूनोंकी नकल रखी है और जब किसी टायर इत्यादिका सांचा उनके दफ्तरमें आता है तब इन नमूनोंसे उसका मिलान किया जाता है। इस प्रकारसे अगर घटनास्थल पर कोई मोटरकार काममें लायी गयी थी तो उसकी बनावटका पता चल जाता है।

साइण्टिफिक अमेरिकनके अनुसार प्रतिदिन इस विभागकी प्रयोगशालामें विशेषज्ञ नये-नये तरीकों तथा औजारोंके लिये प्रयोग किया करते हैं जो विशेष परीक्षकोंके काममें सहायक सिद्ध हों।

विशेष परीक्षकोंको नये प्रयोगों तथा उनके उपयोगों का समाचार समय-समयपर बराबर भेजा जाता है। प्रति मास अनुसन्धान विभागके सब लोग मिलकर सभा करते हैं जिसमें वैज्ञानिक रीतिसे षड्यन्त्रों तथा हत्या इत्यादिके पता लगानेके विषयमें नये-नये उपायोंके बारेमें तर्क करते हैं। घटनास्थलपर बिना विज्ञानकी सहायता लिये प्रयोग-शालाका काम अधूरा ही रह जाता है। अतः इन दोनों बातोंका सहयोग किसी अपराध या हत्याके भेदको सुल-झानेमें अत्यन्त आवश्यक है। और विशेष परीक्षकको घटनास्थलकी जांचमें बहुत सावधानी करनी पड़ती है।
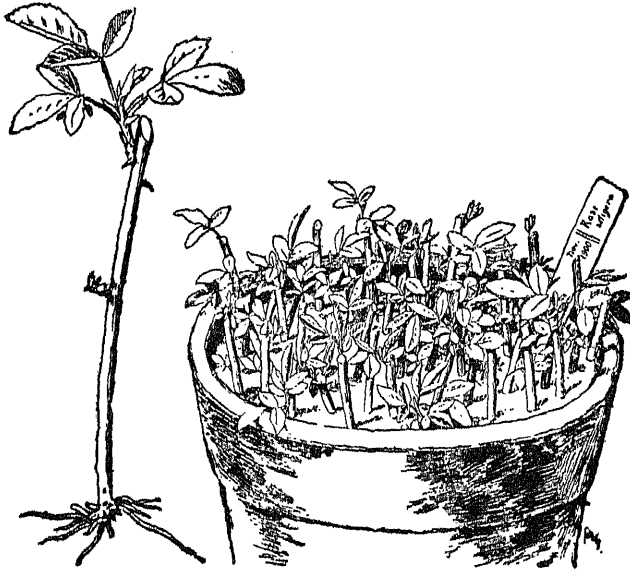
बागवानी

गुलाब

(इसी लेखके पृ० ५९ का शेषांश)

क़लम लगानेकी रीति

(पृ० ५७, कालम २ पंक्ति २३ का चित्र)

दाहिनी ओर दिखलाया गया है कि गमलेमें क़लमें कैसे लगायी जाती हैं, बायीं ओर एक क़लम अलग बड़ेपैमानेपर दिखलायी गयी है।

गुलाबकी कटिंग

चायकी महकवाला गुलाब

(टीसेंटेड रोज़) । भारतवर्षमें यह गुलाब खूब फूलता है । सन् १७८९ ई०में भारतवर्षसे इसे लोग विलायत ले गये और वहां अन्य जातियोंके गुलाबोंसे इसका मेल करके वर्णसंकर जातियाँ उत्पन्न कीं । आधुनिक चायकी महक वाला गुलाब इन्हींमेंसे एक जातिका है । इस ज तमें पीलासे लेकर लालतक हज़ारों रंगके गुलाब होते हैं । अधिकांशमें हल्की-हल्की चायकी सी महक होती है । इसीसे इस जातिका नाम टीसेंटेड रोज या लैटिनमें Rosa thea indica पड़ गया है । भारतवर्षमें लगानेके लिये इससे बढ़कर कोई दूसरा गुलाब नहीं है, क्योंकि यह क़रीब बराबर फूलता है और खूब फूलता है, और इसके लिये विशेष सेवाकी आवश्यकता नहीं है । पहाड़ोंपर जाड़ेमें इसे पालेसे बचाना पड़ता है । क़लमोंसे और चश्मा बांध कर दोनों रीतियोंसे यह उत्पन्न किया जा सकता है ।

चायकी महकवाला गुलाब

चश्मा बांधनेकी रीति

क—गुलाबकी डाली । पत्तीकी जड़में आंख दिखलाई पड़ रही है । बारीक बिंदियोंवाली रेखासे बतलाया गया है कि पत्ती कहांसे काटी जाय, मोटी बिंदियोंसे बतलाया गया है कि आँख निकालनेके लिये डाली कहांसे काटी जाय । ख-आंख काटकर निकालना । ग-आंख, काटकर निकालनेके बाद । घ-आंखसे लकड़ी अलग करनेके बाद, उल्टी ओरका
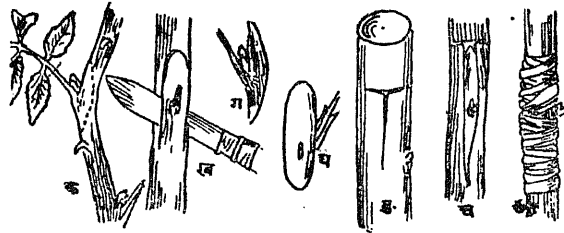
चश्मा बाँधनेकी रीति

दृश्य । ङ-देसी गुलाबपर चीर लगानेकी रीति । च-देसी गुलाबपर बढ़िया गुलाबका चश्मा लगा दिया गया है । छ-चश्मेको केलेकी नससे बांधनेकी रीति ।

नोट—पृ० ६३ परका चित्र पृ० ६२ पर, और पृ० ६३ परका चित्र ६२ पर समझना चाहिये । पाठक सुधारकर पढ़ें ।

आयुर्विज्ञान

[श्री गङ्गाप्रसाद गौड़ "नाहर" भूपतिपुरी]

१—बेदामकी मिट्टीसे घावोंका इलाज

मानव शरीर मिट्टीसे ही बना है, ऐसी दशामें यदि कहा जाय कि उसके क्षत-विक्षत होजानेपर मिट्टीही द्वारा वह पुनः पूर्ण स्वस्थ बनाया जा सकता है, तो इस कथनको साधारणसे साधारण बुद्धि भी स्वीकार करलेगी। प्रयोगोंसे सिद्ध हो चुका है कि घावोंके लिये, तथा अन्य सभी चर्म-रोगोंके लिये गीली मिट्टी ही एक राम-बाण ओषधि है। भारतवर्षकी जंगली जातियां, अपने घावों और चोटोंपर सदा गीली मिट्टी ही लगाती हैं, जिससे उनको शत-प्रतिशत लाभ होता है। जानवर भी घावोंपर गीली मिट्टी लगाते देखे गये हैं। उदाहरणार्थ, यदि किसी हाथीको लाठियोंसे मारकर उसके शरीर पर घाव कर दिये जायँ, तो वह फौरन अपनी लारसे मिट्टी भिगो-भिगोकर उन घावोंपर लगा लेगा। घोड़ोंकी टाँगमें जब कोई रोग हो जाता है, तो हम गीली मिट्टीही काममें लाते हैं, जिससे उसका वह अङ्ग तुरत रोगमुक्त हो जाता है।

वास्तवमें गीली चिकनी मिट्टीसे सारे घाव, घावोंकी भयानक सूजन, उनकी प्राणलेवा पीड़ा तमाम चोट-जनित ज्वर, समस्त चर्म-रोग तथा सब प्रकारके फोड़े फुन्सी दाद मुहाँसे, घमौरी, जुलपित्ती और नासूर इत्यादि बहुत जल्द अच्छे होजाते हैं।

इस स्वाभाविक प्रयोगसे तमाम खतरनाक आपरेशन (घावोंका चीड़फाड़) बन्द किये जा सकते हैं, और उनसे होनेवाली बुराइयाँ दूर की जासकती हैं। यह प्राकृतिक प्रयोग इतना बढ़िया इलाज है कि इससे घावों और चमड़े की समस्त बीमारियोंका इलाज करना बायें हाथका खेल हो जाता है। एक सुविधा और भी तो है. हर्रे-लगे-न-फिट-किरी-रंग-चोखा-आवे, वाली उक्तिके अनुसार यह प्रयोग इतना सस्ता और सरल है कि एक ग़रीबसे ग़रीब और मूर्ख-से-मूर्ख व्यक्ति भी इससे पूरा-पूरा लाभ उठा सकता है। अन्य ओषधियों की भाँति इस प्रयोगसे हानि होनेकी संभावना तो किसी भी दशामें नहीं है।

तात्कालिक रोगोंमें और विशेषकर लड़ाईके मैदानमें तो मिट्टीकी पट्टी बहुतही लाभदायक सिद्ध होती है।

गोली वगैरः के घावोंमें, रक्तचापके बढ़नेपर जानवरों के डंक, काटने, बीधनेपर, विषैले खूनके लिये, तथा कोढ़, हड्फूटन चोट और सूजनकी जगहपर गीली चिकनी मिट्टी की पट्टी लगाना जादूका असर दिखाता है।

गीली मिट्टी अपनी द्विधा शक्तिद्वारा रोग-शमनका कार्य्य करती है। शरीरके कुछ रोगोंमें वह अपनी घोलनेकी शक्तिसे काम लेती है और कुछमें शोषकशक्ति से। जैसे, यदि शरीरके किसी स्थानपर कोई फोड़ा हो जाय या पीठ पर कारबङ्कल निकल आये तो उसके ऊपर मिट्टीकी पट्टी देनेसे वह फोड़ा या कारबङ्कल पक जायगा और उसके भीतर से दूषित द्रव्य पीबके रूपमें बाहर निकल जायगा और ज़ख़म पुर जायगा। यहाँपर मिट्टीकी विलायकशक्ति यानी घोलनेकी ताकतने गुण किया। और यदि वही फोड़ा, इस योग्य हुआ कि वह मिट्टीकी पट्टी देतेही बैठ जाय और वहाँ पर रोगका कोई चिन्ह न दिखाई दे, तो ऐसा समझना चाहिये कि मिट्टी की पट्टीने उस रोगका कारण, अर्थात् उस स्थानकी बढ़ी हुई गर्मीको अपनी सोखनेकी ताकतसे सोख लिया और फलतः घाव अच्छा होगया।

निःसन्देह इस तथोक्त वैज्ञानिक युगमें साधारण मिट्टी की पट्टीके प्रयोगको कुछ लोग तुच्छ दृष्टिसे देखेंगे और बड़े-बड़े वैज्ञानिकों द्वारा तैयार किये हुए मरहम वगैरःकोही अधिक प्रश्रय देंगे चाहे वे बिल्कुलही बेकार और खर्चीले क्यों न हों। याद रहे. ये मरहम कभी-कभी हानिकारक तथा नवीन रोगोत्पादक भी सिद्ध हुए हैं, किन्तु शुद्ध प्राकृतिक

तिक मृत्तिकामें तो किसी प्रकारकी हानिकी सम्भावनाही नहीं है।

बहुतोंकी धारणा है कि गीली मिट्टीकी पट्टीसे खूनमें ज़हर दौड़ जायगा, क्योंकि मिट्टीमें गन्दगी मौजूद रह सकती है, किन्तु कदाचित ही कोई समझदार आदमी ऐसा हो जो गन्दी जगहकी मिट्टी काममें लावे। अतएव, इस व्यर्थकी शंकाकी कोई आवश्यकता नहीं है कि घाव मिट्टीसे बिगड़ जायगा। मिट्टी कभी किसी भी दशामें, सिवा लाभके हानि नहीं कर सकती, ऐसा प्राकृतिक चिकित्सकोंका विश्वास है और विस्तृत अनुभव इसे पुष्ट करता है।

मिट्टीकी पट्टी बनानेकी विधि

इस कार्य्यके लिये शुद्ध पीली मिट्टी या चिकनी मिट्टी अधिक उपयोगी होती है। थोड़ीसी ऐसीही मिट्टी लाकर पहले उसे शोधले और उसमेंसे कंकड़-पत्थर निकालकर फेंकदे, फिर उसे बारीक पीसकर, ठंढे जलमें सानकर, गाढ़ी लेईके समान कर लेवे। तत्पश्चात् उसको गाढ़ेके कपड़े पर, अथवा बारीक टाटके टुकड़ेपर जैसे पुल्टिस बनाते हैं उसी तरह, एक अंगुल मोटी मिट्टी फैला लेवे और उठाकर, मिट्टी की ओर से शरीरके पीड़ित अंगपर धीरेसे रख देवे, और ऊपरसे एक ऊनी कपड़ेकी सूखी पट्टी लपेट दे। यदि आवश्यकता हो तो सेफ्टी-पिनादिसे पट्टीको सुरक्षित कर ले।

एक पट्टीको अधिकसे अधिक आधा घन्टातक रहने देना चाहिये, फिर उसे बदलकर उसी प्रकारकी दूसरी पट्टी चढ़ा देनी चाहिये। यह क्रम उस समयतक चलता रहना चाहिये जबतक कि आहत-स्थान स्वस्थ न होजाय।

ज्वर चेचक, काळरा आदि रोगोंमें ये पट्टियाँ पेड़पर लगायी जाती हैं, और ऐसी दो-ही-एक पट्टियोंसे आशातीत सफलता प्राप्त होती है।

यदि इस प्रयोगको, सादा खानपानके साथ किया जाय तो इसका प्रभाव मानव शरीरपर मन्त्रवत् पड़ता है।

२—कुछ नये आविष्कार

(१) हँसते-हँसते दाँत उखड़वाइये

टिंक्चर कैनेबिस इंडिका यानी भंगका टिंक्चर अंग्रेजी दवाखानोंमें मिलता है। इस बातको कमलोग जानते हैं कि दांतके आसपास इससे तर फाहा कुछ देर रखके दांत उखाड़नेमें रोगीको जरा भी कष्ट नहीं होता।

(२) संगीतद्वारा रोगोंका इलाज

यह तो सभी जानते हैं कि मनुष्यके मनपर संगीतका बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। किन्तु जर्मनीके एक मनोविज्ञानके प्रसिद्ध पंडित तथा चिकित्सक डा० वाल्टर क्यूगने इस विषय पर बहुत दिनों तक विशेष रूपसे अन्वेषण किया है, कि किस-किस राग-रागिनीका मनुष्यके मनपर कैसा-कैसा प्रभाव पड़ता है। इस कार्य्यमें उक्त डाक्टर साहेबको बड़ी सफलता मिली है। वे अब भिन्न-भिन्न राग-रागिनियों द्वारा विभिन्न रोगोंका इलाज करते हैं। कोई राग-पागलपन और चिन्ताको दूर कर देता है, तो कोई रागिनी मलेरिया ज्वरके लिए रामबाणका काम करती है, आदि आदि। यदि इस प्रयोगको पर्याप्त सफलता मिलगयी तो भविष्यमें डाक्टर-वैद्योंके औषधालयोंके स्थानपर गवैयोंके संगीतालय मिलेंगे, जहाँपर मरीज़ लोग अपनी-अपनी चिकित्सा करवाने जाया करेंगे।

(३) झूठ पकड़नेका औजार

मनुष्य झूठ बोल रहा है या सच इस विषयमें किसी के दिलकी बात जान लेना अबतक कठिन ही नहीं, एक प्रकारसे असम्भव था। परन्तु विज्ञानकी सहायतासे अब एक ऐसा यन्त्र तैयार किया गया है, जिसके जरिये, यदि कोई आदमी झूठ बोल रहा हो तो उसका पता तुरत लगा लिया जाता है। अमेरिकामें इस यन्त्रका काफ़ी इस्तेमाल होने लगा है और गवाही देते समय जज और जूरी लोग अदालतोंमें भी इससे काम लेने लगे हैं। संयुक्त राष्ट्रके नार्थवेस्ट विश्वविद्यालयमें अपराध-परीक्षा-प्रयोगशालाके मि० लियोनार्ड कोलरने इस यन्त्रका आविष्कार किया है। अमेरिकाके जस्टिस वान पेल्टने सर्व-प्रथम अपनी अदालतमें इस यन्त्रके प्रयोगकी इजाज़त दी थी। दो व्यक्तियों पर राहज़नी और हत्याका अभियोग था। बयान देते समय यह यन्त्र उनकी बाँह और वक्षस्थलपर लगाया गया। उनके झूठ बोलते समय यन्त्रमें टेढ़ी-मेढ़ी लकीरें पड़ने लगी

थीं, बस इसी सबूतके आधार पर उन दोनों व्यक्तियोंको सजा दे दी गयी।

(४) स्वास्थ्य और सौन्दर्यका साधन साँपका तेल

'ईस्टइण्डीज' द्वीपोंके निवासी एक ऐसा तेल काममें लाते हैं जिसके प्रयोगसे शरीरपर आश्चर्यजनक प्रभाव पड़ता है। वृद्ध और शिथिल शरीर दृढ़ और युवा-सा हो जाता है। इस तेलमें अद्भुत गुण और शक्ति है, जिसका पता पा जानेपर, यूरोपवाले अब इस तेलको वहाँके नगरोंमें मँगानेकी चेष्टा कर रहे हैं। अमेरिकामें तो इसका प्रचार आरम्भ ही हो गया है। वहाँपर एक महिलाने एक 'बाथ-हाल' खोल रखा है, जिसमें वह अपने ग्राहकोंकी, इसतेलसे मालिश किया करती है, जिससे शरीरकी सब झुर्रियाँ मिट जाती हैं और ढीला माँस सख्त बन जाता है। यह प्रयोग अभी बहुत कीमती है। तेलके एक छोटे टिनका दाम लगभग ८० गिनीके पड़ता है। यह तेल जीवित साँपोंसे निकाला जाता है, इसमें साँपोंकी सी गन्ध भी आती है। मनुष्य शरीरकी त्वचा इस तेलको बड़ी जल्दी सोख लेती है। तेल शरीरके भीतर प्रविष्ट होकर शिथिल मांसको दृढ़ बना देता है। चालिस दिनतक लगातार इस तेलसे मालिश करनेके बाद किसी भी प्रौढ़ या अधेड़ मनुष्यका शरीर १५ वर्ष पहलेका सा हो जाता है। और केवल दो-चार दिनके मालिशसे शरीरकी ग्रन्थियां मजबूत, भारीपनमें कमी, तथा स्वास्थ्य बिल्कुल तरोताज़ा हो जाता है।

(५) रबरके हृदयके सहारे आहत हृदयका उपचार

हालहीमें एक रशियन नाविकको आपसके झगड़ेमें एक सांघातिक चोट लगी, जिसके कारण वह बेहोश हो गया और अस्पताल पहुंचाया गया। वहांपर उसकी डाक्टरी की गयी तो मालूम हुआ कि उसके हृदयमें चाकूका वार लगनेसे हृदय फट गया था और वह व्यक्ति कुछही मिनटोंका मेहमान था। इसपर डाक्टरोंने एक नकली रबरका हृदय बनाया और असली हृदयको निकालकर उसे उसकी जगह पर लगा दिया। रबरके हृदयको बिजलीके मोटर द्वारा चालू किया गया, जिससे खूनका दौरा साधारण रूपसे होने लगा, अब असली हृदय जो निकालकर अलग कर लिया गया। उसे सी दिया गया और सब ठीक-ठाक कर लेनेके बाद रबरके दिलको निकालकर उसकी जगह फिर असली दिल लगा दिया गया। इस कार्यमें कुल लगभग एक घन्टा चालिस मिनट लगे। कहा जाता है कि यह प्रयोग सफल हुआ था।

३—उपयोगी सवाल-जवाब

प्र० क्या बिजलीसे आदमी मरता नहीं?

उ० बिजलीका तेज़ करेंट छू जानेसे अक्सर लोगोंकी मृत्यु हो जाया करती है। किन्तु वैज्ञानिकोंको ऐसे कई व्यक्ति मिले हैं जो करेन्ट छूजानेसे मरे हुए मालूम पड़ते थे पर वास्तवमें उनकी मृत्यु नहीं हुई थी, क्योंकि बादको इलाज करके उनलोगों को जिला लिया गया। इन वैज्ञानिकोंने चेतावनी दी है कि जो लोग बिजलीका करेन्ट छू जानेके कारण मरे हुए मालूम पड़ें, उनके शरीरकी डाक्टरी परीक्षा, इस बातका पता लगानेके लिये, कि वे दरअसल मरे हैं अथवा नहीं भलीभांति करवा ली जाया करे, और तब कहीं मृत शरीरका अन्तिम संस्कार किया जाय।

प्र० बच्चे अपना अँगूठा क्यों चूसते हैं?

उ० एक विशेषज्ञने पता लगाकर बताया है कि अँगूठेमें एक विशेष प्रकारका रस होता है जिसके चूसनेसे मनुष्योंकी विरेचन कियामें तीव्रता आजाती है। बच्चोंके अँगूठा चूसनेका यही रहस्य है।

प्र० तुतलाहट कैसे दूर हो?

उ० एक पाश्चात्य विशेषज्ञका कथन है कि तुतलाहट दूर हो सकती है, और बिना किसी ओषधिके दूर हो सकती है। उसका कहना है कि वर्तमान युगमें व्याधि या अस्वस्थताको दूर करनेके लिये लोग ओषधियोंका व्यवहार करते हैं, किन्तु प्रकृतिके विधानको नहीं मानते, यही हमारी सबसे बड़ी भूल है, जिसके कारण हममें कितने ही कुटेव आ जाते हैं। आजकल ओषधिके व्यवहारमें वृद्धि होनेके साथ-साथ रोगोंमें भी वृद्धि हो रही है जिनका निवारण कठिनतासे हो रहा है।

वाणीमें रुकावट होने से तुतलाहट नहीं होती अपितु मस्तिष्कमें बाधा उपस्थित होनेसे तुतलाहट होती है। इस

प्रकारके मनुष्योंको उचित है कि वे अपना सारा काम केवल बायें हाथसे करें। लिखना, खाना, देना, लेना सब काम बायें हाथसे करते रहनेसे कुछ ही दिनोंमें तुतलाहट बिना ओपधिके दूर हो जायगी।

प्र० क्या चौड़ा माथा बुद्धिमान होनेकी निशानी है ?

उ० युनाइटेडस्टेट्स अमेरिका नेशनल म्युज़ियमके प्रसिद्ध विशेषज्ञ डा० हाडलिकाने लगभग अर्द्ध शताब्दि तक विभिन्न जातियोंके मनुष्योंकी पेशानियोंको नापकर यह पता लगाया है कि अमेरिकाके पुराने बाशिन्दे, जो टेनेस्सी की पहाड़ियोंमें रहते थे, और जो आजकल गोरे अमेरिकनों के सामने मूर्ख प्रसिद्ध हैं, उतनेही चौड़े माथावाले थे जितना चौड़ा माथा आजकल अमेरिकाके नेशनल एकेडमी-आफ़-साइन्सके किसी बड़े-से-बड़े वैज्ञानिकका होता है। इसके अतिरिक्त अफ्रीकाके हबशियोंका माथाआत्यधिक चौड़ा होता है, तथा उनके बाद इस विषयमें अमेरिकाके लाल आदि निवासियोंका नम्बर आता है। एस्कीमो जातिके लोगोंका माथा तो सबसे ऊँचा होता है, परन्तु वे इस सभ्यताके युगमें भी जंगलीके-जंगली ही बने रह गये।

प्र० कोई पतला क्यों होता है ?

उ० यों पतला होना कोई बीमारी नहीं है, किन्तु अस्वाभाविक पतलापन व्याधियोंकी सूचीमें आसकता है, जिसके कारण हैं (१) शरीरके भीतर किसी व्याधिका सुपुप्तावस्थामें उपस्थित होना। (२) अधिक परिश्रम तथा व्यायाम करना। (३) कम सोना। (४) सदैव चिन्तित रहना। (५) अस्वाभाविक भोजन करनेसे कोष्ठ-बद्धताका सदा बना रहना। (६) दैनिक भोजनमें पौष्टिक, विशेषतया चरबी बढ़ानेवाले पदार्थोंका कम समावेश रखना।

वैज्ञानिक संसारके ताजे समाचार

मच्छड़ोंकी पहचान

अमरीकाके वैज्ञानिकोंको यह जाननेकी इच्छा हुई कि मच्छड़ उड़कर कितनी दूरतक जा सकते हैं। क्या वे किसी मनुष्यको काटने एक मीलतक उड़कर जायँगे ? विशेषज्ञोंका विचार है कि वे इतनी दूरतक न जाते होंगे, परन्तु इस बातका स्पष्ट प्रमाण पानेके लिये वे लाल, नीला, हरा, पीला आदि, रंगोंके बारीक फ़ुहारेसे विशेष-विशेष दलदलोंके मच्छड़ों को भिन्नभिन्न रंगोंमें रँग डाले हैं। जब मच्छड़ मनुष्यके खोजमें चलेंगे तो उनकी खोजमें वैज्ञानिक चलेंगे। गो० प्र०

रिकशा-कुलियोंकी मददमें

कलकत्तेमें जो एक बार भी गया होगा उसे रिकशा गाड़ियाँ न भूली होंगी। किस प्रकार दोपहिया गाड़ीमें मनुष्य जुते रहते हैं ! मलायाके एक रिकशा-कूलीने नवीन ढंगका रिकशा बनवाया है। यह बाइसिकिलकी तरह रबर चढ़े छर्रेदार तीन पहियोंका ट्राइसिकिल है। पीछे रिकशेकी तरह गाड़ी है जिसमें दो यात्री बैठाये जा सकते हैं। सामनेका भाग ठीक बाइसिकिल सा है। उस पर बैठकर कुली अपने पैर से गाड़ी चला है। लैम्प, घन्टी, हैंडल, ब्रेक, सभी इसमें बाइसिकिलसे ही लगे हैं। गो० प्र०

ग्रामोफ़ोनके रेकार्ड घरपर बनाइये

आज भी आप ग्रामोफ़ोनके रेकार्ड अपने घरपर बना सकते हैं, परन्तु ये रेकार्ड टिकाऊ नहीं होते, एक इञ्जिनियरने इन रेकार्डोंके बनानेकी नई रीतिका पता पाया है। रेकार्ड शीशे पर बनते हैं। पहले शीशेपरमोम, पालिश और खड़ियाकी एक तह पोत दी जाती है। सूखकर कड़-कड़ा होनेके पहलेही इसमें बोली भर दी जाती है। इसके लिये साधारण ग्रामोफ़ोनमें एक विशेष अवयव जोड़ देना पड़ता है। उक्त शीशेपर इस्पातकी सूई लकीर खरोंच देती है। शीशेतक सूई पहुँच जाती है। चूंकि शीशेपर चढ़ा मसाला बड़ा बारीक पिसा रहता है, इसलिये इसमें बने खरोंचके किनारे चिकने रहते हैं। फलतः बोल बहुत स्पष्ट निकलता है। जब मसाला खूब सूख जाता है तब रेकार्ड काममें लाया जा सकता है और बहुत दिनतक चलेगा। परन्तु यदि यह इच्छाहो कि इसका साँचा बना लिया जाय, जिससे दूसरे रेकार्ड मनमानी संख्या में बन सकें, तो वह भी आसान है। इसके लिये उक्त शीशेके रेकार्डपर बिजलीसे ताँबा चढ़ाया जाता है। ताँबेको अलग कर लेनेसे ऐसा ठप्पा मिल जाता है जिससे मनमाने रेकार्ड मसाले लगे शीशेपर छाप लिये जा सकते हैं। पहले

भी ऐसे ठप्पे बनते थे परन्तु इतनी सुगमतासे नहीं। कुछ हलुआई तो चीनीकी ऐसी पट्टी भी तैयार करते थे जिनपर गानेका ठप्पा मारा रहता था। उसे ग्रामोफ़ोनमें चढ़ाकर और उसका गाना दो-एक बार सुनकर लड़के उसे खा जाते थे! गो० प्र०

इंफ्लुएंज़ाके कीड़े पराकासनी प्रकाशसे मर जाते हैं

वैज्ञानिकोंको पता चला है कि इंफ्लुएंज़ा बुखारके कीड़े पराकासनी प्रकाशसे मर जाते हैं। अब अस्पतालों, थियेटरों, और स्कूलोंकी वायु शायद पराकासनी प्रकाशसे शुद्ध किया जाय। इन दिनों तो यदि कोई इंफ्लुएंज़ाका रोगी छींक देता है तो आधे घन्टेतक उसके कीड़े हवामें उड़ा करते हैं और रोग फैलाते हैं। गो० प्र०

एक रत्तीकी सूक्ष्मताकी हद २,०० ००० महाशंखभाग

यदि थोड़ा-सा नमक, सोरा, कसीस, या तूतिया आदि ज्ञात अथवा अज्ञात पदार्थ लिया जाय जो तौलमें केवल एक रत्ती हो, उसके २०,००,००,००,००,००, ००,००,००,००,००,००,००० भाग किये जायँ, और फिर इनमेंसे केवल एक भाग डाक्टर डेम्पस्टरको दिया जाय तो वे बतला सकेंगे कि यह पदार्थ नमक है, कि शोरा है, कि कसीस है, कि क्या है। उनकी रीति यह है कि वे इस कणको प्लैटिनमके तारके सिरे पर रक्खेंगे और उसके सामने दूसरे तारका सिरा रखकर बिजली कि चिनगारी इन तारोंके बीच पैदा करेंगे। चिनगारी निकलतेही उसका रश्मिचित्र खिंच जायगा जिससे उस पदार्थकी पहचान हो जायगी। एक चिनगारीमें १ रत्तीका २ ००,००० महाशंखवाँ भाग भर जलता है। इसी लिये कहा जाता है कि केवल इतनी ही मात्रासे किसी पदार्थकी पहचान हो सकती है। गो०प्र०

बिजलीसे खेती

अमरीका का एक परिवार खेती-सम्बन्धी सारा कार्य बिजलीसे करता है। दरवाज़ोंपर जो जाली लगी है उसमें भी बिजली लगी है जिसमें मक्खियाँ और फतिंगे उसे छूते ही मर जायँ। बागको कीड़ोंसे बचानेके लिये वहाँ बिजली का छोटा सा यन्त्र लगा है जो कीड़ोंको आकर्षित कर लेता है और उनको मार डालता है। चरी काटने और गाड़ीमें लादनेके लिये बिजलीके यन्त्र अलग लगे हैं छोटे-बड़े नारंगियोंको अलग-अलग करनेके लिये भी मशीनें हैं यहाँ तक कि दूध दुहने, बरतन माँजने आदिका काम भी बिजलीकी मशीनोंसे किया जाता है। गो० प्र०

सम्पादकीय टिप्पणियां

हा! प्रेमचन्दजी !!

प्रेमचन्दजी यद्यपि आजकलकी रूढ़िके अनुसार वैज्ञानिक नहीं थे, तथापि वे मनोविज्ञान और समाज विज्ञानके तो सैद्धान्तिक और व्यावहारिक विद्वान् थे। स्वभाव-निरीक्षणही उनकी विशेष विधि थी जो विज्ञानमात्रका जीवनधन है और एकमात्र साधन है। उनकी एक एक कहानी और हर एक उपन्यास इन दो विज्ञानोंकी प्रगाढ़ विद्वत्ताकी गवाही देता है। मानव स्वभावका गम्भीर निरीक्षण, उसपर उनके दूरगामी निष्कर्ष और उनके अत्यन्त मनोहर व्यक्तीकरणमें उनका अद्भुत कलाकौशल अद्वितीय था, और अब उनकी स्थानपूर्त्ति तो असम्भवही है। वह जहां वैज्ञानिक थे, वहां गद्यकाव्यके बड़े प्रतिभाशाली कवि भीथे और वैज्ञानिकका कवित्व तो सत्यम् शिवम् सुन्दरम् की सम्पूर्ण मूर्त्तिको व्यक्त करदेनेमें चतुराननका काम करता है। आख्यायिका जगत्में वे अपने वर्त्तमान स्वदेशी इतिवृत्तकी छाप छोड़ गये हैं। विज्ञान परिवारकी ओरसे हम उनकी पुण्यस्मृतिमें सादर श्रद्धांजलि अर्पण करते हैं। उनके वियोगपीड़ित परिवारको भगवान् इस महाविपत्तिके झेलनेका सामर्थ्य दे और उनके असंख्य पाठकोंको सान्त्वना, कि सभी सांसारिक सुख सान्त हैं, इस प्राकृतिक नियमपर किसीका बस नहीं है। रा० गौ०

हिन्दी लेखक-संघ

यह संस्था दो बरससे स्थापित है। इसकी स्थापनाके लिये इस संस्थाके प्राण श्रीभारतीयजीने प्रस्ताव किया और देशके प्रमुख लेखकों और पत्रोंने बड़े उत्साहसे समर्थन किया और अच्छी तरह सोच समझकर इसका संघटन हुआ। इसके उद्देश्य हैं साहित्यकी श्रीवृद्धि और उसके सेवकोंकी सब तरहकी हितकामना। इन उद्देश्योंसे किसे विरोधहो सकता है? स्वर्गीय प्रेमचन्दजी इस संघके सभापति थे। जब काशीमें एक सभा करके प्रगति-शील लेखक-संघ स्थापित करना चाहा तो उन्होंने उस संघकी दो विशेषताएं बतायीं, एक तो यह कि उसमें भाषाकी कैद नहीं और दूसरे वह अन्ताराष्ट्रीय संस्था है, जो दोनों बातें हिन्दी लेखक संघमें नहीं हैं।

अब इलाहाबादमें ही १४-१५ नवम्बरको हिन्दुस्तानी प्रगतिशील लेखक-सम्मेलन होने जा रहा है। इसमें, जहां तक मैं समझता हूँ, हिन्दुस्तानी शब्द भाषाकी अभिधा लेकर प्रयुक्त हुआ है और होनाही चाहिये। जहांतक साहित्यका सम्बन्ध है मैं तो हिन्दी और हिन्दुस्तानीमें कोई अन्तर नहीं समझता। उद्देश्य भी इस सम्मेलनके स्पष्ट हैं और ऐसे नहीं हैं जिन्हें हिन्दी लेखकसंघ न अपनाता हो। ऐसी दशामें समान उद्देश्यवाली दो संस्थाएं अलग-अलग चलें और देशकी जीर्ण-शीर्ण बची-खुची शक्तियोंको सान्द्र और केन्द्रित करनेके बदले बेकार बिखेरें, यह कोई अच्छी नीति नहीं कही जा सकती। रही अन्तर्राष्ट्रीयताकी बात। हम इस बातसे पूर्णतया सहमत हैं कि लेखकसंघ संसारकी तथोक्त "प्रगतिशील" संस्थाका भारतीय अंग बन जाय, क्योंकि यद्यपि प्रगतिशीलता किसी विशेष भाषाकी सीमाओंमें बँधी न रहेगी, फिर भी संसारके सभी लेखक अपनी अपनी भाषाको ही तो साधन बनावेंगे। हां, यदि आवश्यक समझा जाय तो "हिन्दी लेखकसंघ" अपनेको "हिन्दी प्रगतिशील लेखक-संघ" कहे। नाम और उद्देश्यकी शब्दावलीमें परिवर्त्तन करनेमें क्या कठिनाई है? हमें आशा है कि अभी होनेवाले सम्मेलनमें दोनों संस्थाओंका सम्मिलन हो जायगा और सबलोग मिलकर ठोस काम करेंगे और अलग-अलग संस्थाओंमें अकारणही बँटकर अपनी शक्ति-सम्पत्तिको वृथा न बिखेरेंगे।

हमारे कवरका चित्र

[श्रीचन्द्रिकाप्रसादजी]

टेपिरजंतु जगतका एक अनोखा जीव है। यह मोटी खालवाली श्रेणीका जीव है पर इसके शरीरकी बनावट इस श्रेणीके अन्य जन्तुओं जैसे हाथी, हिपो, गैंडा इत्यादि सभी से भिन्न है। टेपिरकी हड्डियाँ अति प्राचीन पत्थरोंमें पायी गयी हैं। विज्ञानवेत्ताओंके अनुसार इन पत्थरों और हड्डियों का युग बीते बीस लाख वर्ष हो चुके। दीर्घकालमें जन्तु जगतकी प्रत्येक जातिमें बहुतसे आश्चर्य्यजनक परिवर्तन हो गये परन्तु टेपिर बिलकुल लकीरका फकीर बना रहा। आज भी इसके शरीरकी रचना ठीक उसी प्रकारकी है जैसी बीस लाख वर्ष पहले थी। इस विचारसे सचमुच टेपिर पृथ्वी का एक सबसे पुराना निवासी है।

इस जन्तुकी ३, ४ उपजातियाँ हैं जो दक्षिण अमेरिका तथा मलय प्रायद्वीपमें पायी जाती हैं। छोटी जातिके टेपिर ब्रेज़ीलमें मुख्यकर पाये जाते हैं। टेपिरकी लम्बाई ५ फुट होती है। शरीर पुष्ट गर्दन मोटी, टाँगें छोटी छोटी और रंग धुमला काला होता है। दुम छोटी होती है जिसके कारण शरीर बड़ा भद्दा लगता है। मलय जातिका टेपिर बहुत बड़ा होता है। इसका शरीर ८ फुट लंबा और ऊँचाई ३-३॥ फुटकी होती है। पीठ और शरीरके पार्श्व भूरे रंगके और टाँगें, गर्दन, मुँह सब धुमले काले होते हैं और देखने से ऐसा लगता है जैसे पीठपर काठी कसी हो।

टेपिर शाकभोजी है। उसकी प्रकृति अहिंसक एवं भीरु होती है। भयभीत होनेपर वह आँधीके समान वृक्षों और झाड़ियोंसे टकराता जंगलको भागता है। वह दिनमें बनके किसी घने भागमें जलके किनारे रहता है। वह जलका प्रेमी है और प्रायः गोता लगाया और तैरा करता है। जन्तु-शास्त्र-वेत्ताओंका मत है कि यह पालतू करके बोझ लादनेके काममें आ सकता है।

['जन्तु जगत'के आधारपर]

साहित्य-विश्लेषण

भारतवर्षका इतिवृत्त—लेखक (अज्ञात), प्रकाशक भारतधर्ममहामण्डल शास्त्रप्रकाशन विभाग पृ० १५ + २४ + ३८० + १६ = ४३५, मू० २)

यह पुस्तक अपने ढंगकी निराली है। भारतमें ऐसे पुस्तकोंका अभाव है। जो पुस्तकें हमारे देशमें बच्चोंको पढ़ायी जाती हैं वे आद्योपान्त भ्रमपूर्ण तथा राष्ट्रीयताके घोर विरोधक हैं। यह पुस्तक एक स्वतन्त्र भारतीयकी दृष्टिसे लिखी गयी है। इस पुस्तकमें ब्रह्माण्डका मानचित्र, मनुष्य सृष्टिका आदिस्थान और वर्णाश्रम बन्ध, भारतद्वीपका सामाजिक संगठन, प्राचीन भारतकी शिक्षाप्रणाली तथा महाभारत सम्बन्धी अध्याय विशेष मनन योग्य हैं। इस पुस्तककी उपादेयता अकथनीय है। जो लोग अभीतक समझते हैं कि हम भारतवासी बाहर विदेशोंसे आये और मुसलमान अंगरेजोंके समान इस देशके आदि निवासियोंको कुचलकर भारतपर अधिकार जमा लिया वे कृपया आंखें खोलकर इस पुस्तकको पढ़ें। इस पुस्तकके अनुसार सारी सृष्टिकी उत्पत्ति आर्यावर्तसे हुई। यथा

देविकां लोक विश्रुताम्, प्रसूतिर्यत्र विप्राणां श्रूयते भरतर्षभ॥

(महाभारत प्रस्थानपर्व अ० ८२), यह देविका नदी वितस्ता (झेलम) की एक शाखानदी है जो समुद्रमें गिरनेवाली सरस्वती नदीसे दूर नहीं थी और वेदोंके अनुसार सरस्वती नदी के ही तीरपर प्रथम जीवोत्पत्ति हुई। यथा **त्वे विश्वा सरस्वती श्रितायूंषि देव्याम्।** ऋग्वेद २।४१।१७

यद्यपि भारतके किसी भी पुस्तकमें आर्योंका बाहरसे आना नहीं लिखा है तथापि न जाने कौन सा स्वार्थ सिद्ध करनेके लिये लोगोंने लिखमारा कि सारे भारतवासी मध्यैशियासे आये। भारतकी प्राचीनता तथा इसकी श्रेष्ठता दिखलानेके लिये अनेकों धुरन्धर विद्वानोंके उद्धरण दिये गये हैं। इसमें वर्णाश्रम धर्म तथा भारतके पारिवारिक जीवन को समझानेके लिये शास्त्रीयप्रमाणों तथा वैज्ञानिक युक्तियों को ढूंढ़ निकालनेमें विशेष परिश्रम किया गया है। यह पुस्तक पाश्चात्य सभ्यतासक्त नवयुवकोंको भारतीय सभ्यतामृतपान करावेगा तथा नासमझ सुधारकोंका मुखभञ्जक होगा। भारतीयके नाते हर एकको यह पुस्तक पठनीय है।

विषयसूची

ब्रह्मचारी शङ्करचैतन्यने काशी—विश्वनाथ प्रेसमें मुद्रित किया
तथा मंत्री विज्ञानपरिषत्के लिये वृन्दावनबिहारीसिंहने विज्ञान-कार्यालय काशीसे प्रकाशित किया।

दिसंबर, १९३६

मूल्य ।)

भाग ४४, संख्या ३

प्रयाग की विज्ञान-परिषद् का मुख-पत्र, जिसमें आयुर्वेद-विज्ञान भी सम्मिलित है
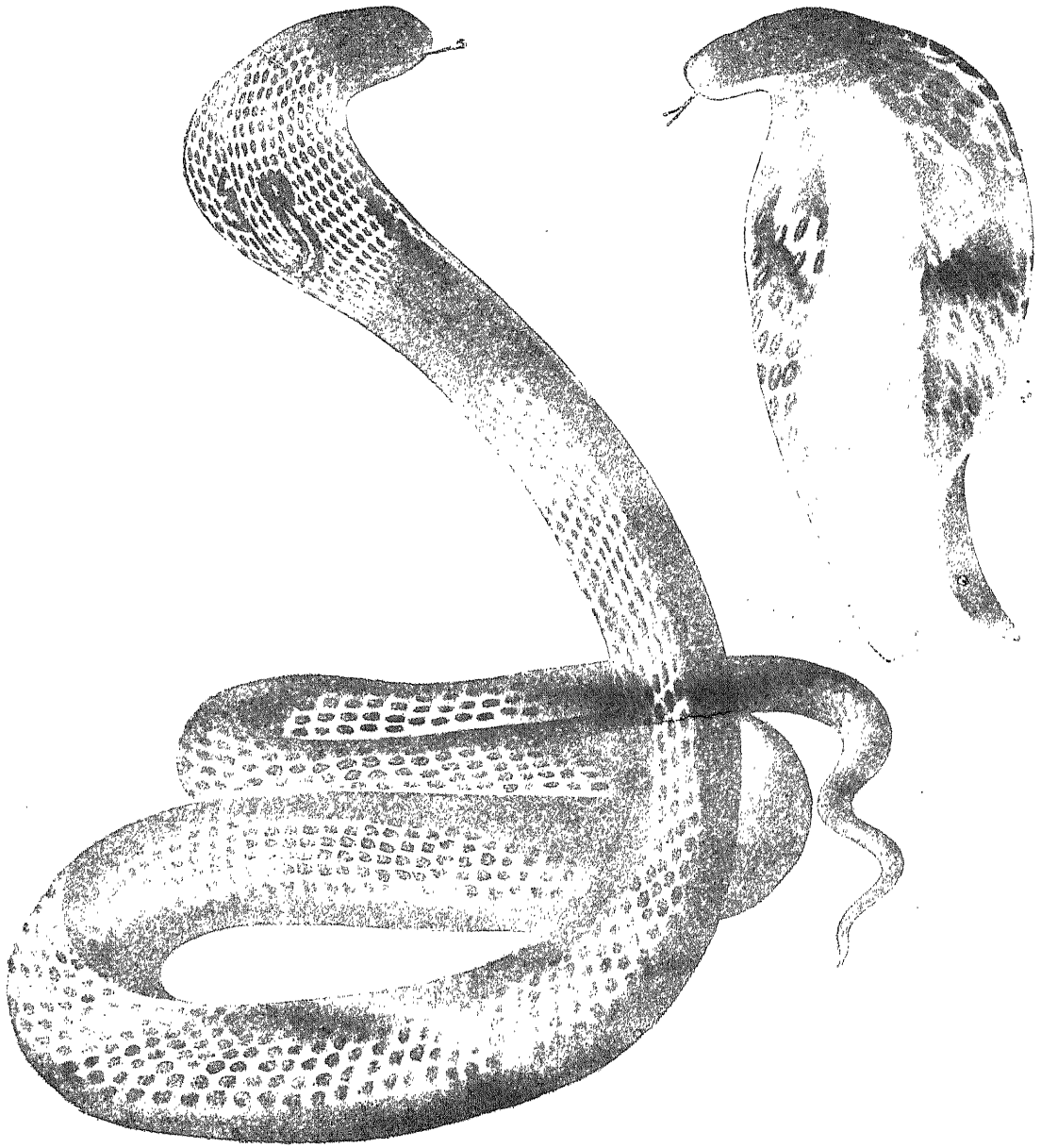
नाग

डा० उमाशंकरप्रसादके लेखमें इन विषधर सर्पोंके बारेमें अत्यंत रोचक बातें बतलाई गई हैं।

इंडियन प्रेस, लि०, प्रयाग]

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते,
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५॥

भाग ४४ } प्रयाग, धनुष्यर्क, सं० १९९३ वि० । दिसम्बर, सन् १९३६ ई० { संख्या ३

मंगलाचरण

जगकी मिटे अशान्ति शान्ति सबको सुखकर हो ।
चिर-निर्धनता मिटे सम्पदा प्रिय घर-घर हो ॥
होकर प्रबल समर्थ न होवें अत्याचारी ।
छद्मित तज व्यवहार बनें हम स्नेह पुजारी ॥
मेरे प्रभु विज्ञानमय हमको यह वरदान हो ।
सबके ही कल्याण हित अति-उन्नत विज्ञान हो ॥

—सत्यप्रकाश
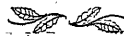
सँपेरोंका कला-कौशल तथा सर्प सम्बन्धी कुछ बातें

[डाक्टर उमाशंकरप्रसाद, एम० बी०, बी० एस०]

जीवन-निर्वाहकी कठिन समस्याकी पूर्तिके लिये मनुष्यको कितनेही प्रकारकी साधनाओंकी शरण लेनी पड़ती है। इनमें कुछ तो इतने अधिक कठिन हैं कि मनुष्यके जीवनकी भी जोखिम प्रत्येक पदपर रहती है। फिरभी पैसेके लोभमें कठिनसे कठिन कार्यभी मनुष्य करता ही है।

सँपेरा धनोपार्जनमें दूसरोंका मनोरंजन करता है, पर क्या आपके हृदयमें यह विचारभी कभी उठता है कि कुछही पैसोंके लिये वह अपनी जान हथेलीपर रखकर बहुतही विषैले और भयानक साँपोंसे खेला करता है? इस लेखमें हम उसके जीवनकी कुछ बातोंपर, उसके कला-कौशलपर तथा साँपोंके स्वभावपर कुछ विचार करेंगे। एच० डब्ल्यू० ऐक्टन साहबने इन विषयोंपर बहुतही सुन्दर और जानने योग्य बातें अपने अनुभवसे लिखी हैं। इन्होंने स्वयं सँपेरोंकी सब विद्या सीखी थी और अत्यंत विषैले साँपोंको वे सहजहीमें पकड़ सकते थे। उन्हींकी पुस्तकके आधारपर यह लेख लिखा गया है। सँपेरे भारतवर्षहीमें पाये जाते हैं। उनकी जातिके सम्बन्धमें उनसे पूछनेपर किसी विशेष बातका पता नहीं चलता। वे केवल इतनाही बतला सकते हैं कि उन्होंने अपनी सर्प-विद्या अपने पितासे सीखी थी। वे अपने आदि पूर्वजोंके बारेमें प्रायः कुछ नहीं जानते। इन लोगोंका कोई निश्चित निवास स्थान नहीं है। वे एक स्थानसे दूसरे स्थानपर घूम-घूमकर धनोपार्जन किया करते हैं। इसलिये वे अपने स्वजातियोंसे बहुत पृथक् होकर समूचे भारतवर्षमें जगह-जगह फैल गये हैं और वे जहाँ अब रहते हैं उसी स्थानकी स्वजातीय रस्मोंका पालन करते हैं। प्रारम्भमें ये लोग शूद्रोंके वर्णमें थे और नट जाति कहलाते थे। इस समय उत्तरी भारतमें इनकी चार मुख्य पृथक् जातियाँ पाई जाती हैं। इनमेंसे अपने कार्यमें सबसे अधिक सिद्धहस्त माल जातिवाले हैं जो अपने निवासस्थानकी प्रचलित हिन्दू रस्मोंका पालन करते हैं। इनके कुलदेव सर्प या नाग हैं और इनकी पूजा नाग पंचमीके त्योहारपर दूध, लावा, मिठाई आदिसे की जाती है। इन लोगोंके जीविका-निर्वाहका मुख्य साधन साँप पकड़ना और दूसरे सँपेरों या अन्य व्यक्तियोंके हाथ सांप बेचना है। ये लोग जादूगरों, ओझाई, वैद्यक इत्यादि विषयोंसे अपना सम्बन्ध नहीं रखते। ये अपनी स्त्रियोंको अपने निवास-स्थानमें ही छोड़ देते हैं और स्वयं स्थान-स्थानपर घूमते रहते हैं। हिन्दू धर्मके आचार-विचारको अभिमानसे अपनाते हैं और गो-मांस या सूअरका मांस छूते भी नहीं, परंतु गीदड़, साही, बड़े-बड़े चूहे और छिपकली खानेमें इन्हें कोई आपत्ति नहीं होती।

दूसरी जाति जो उत्तरी भारतमें सभी जगह पाई जाती है वैद कहलाती है और बहुत लोग इन्हें बंगाला कहते हैं क्योंकि इनका निवासस्थान कभी बंगाल था। ये लोग मदारी और ज्योतिषी होते हैं और वे गँठिया आदि बिमारियोंको अच्छा करनेका दावा भी करते हैं। इनकी एक उपजाति फुंकवा कहलाती है जो दाँतोंका दर्द और दाँतोंमें कीड़े लग जानेका रोग अच्छा करनेमें विशेष चतुर गिनी जाती है। ओझाई, सिंगी लगाने, फ़स्द खोलने तथा जोक लगानेमें भी वे सिद्धहस्त होते हैं। माल जातियोंकी प्रथा के विपरीत इनकी स्त्रियां इनके साथ-साथ रहकर इन्हें सहायता देती हैं और स्वयं भी नाच-गाकर तथा वेश्यावृत्तिसे धनोपार्जन करती हैं। वैद जातिके सँपेरे साँपोंको अपनी आवश्यकतानुसार प्रायः माल तथा नट जातियोंसे खरीदते हैं। नट लोग उत्तरी भारतमें रहते हैं और साँप पकड़कर तथा भीख माँगकर जीवन व्यतीत करते हैं। ये लोग गीदड़ आदिके शिकारमें पालतू कुत्तोंकी सहायता लेते हैं और छिपकली तथा गिरगिट भी खाते हैं।

सांई अथवा तुमड़ीवाले बंगालमें मिलते हैं और लम्बी पगड़ी तथा लम्बा पीला चोगा पहनते हैं। ये लोग बीन या तुमड़ी बजाते हैं जो लौकीकी बनी रहती है और जिनमें बाँसकी दो नलियाँ लगी रहती हैं। यह तुमड़ी

केवल इसी जातिवाले बजाते हैं। वे कहते हैं कि तुमड़ीके रागसे सर्पोंको मोहित करके दीवारोंकी दरार या छेदों तथा खड़हरोंसे बुला लेना उनके वशमें है। इस दावेको सिद्ध करनेके लिये वे चालाकीसे एक या अधिक साँप अपने लम्बे ढीले कपड़ोंमें पहिलेसे छिपाये रहते हैं और उचित अवसर आनेपर उन्हें बाहर निकालकर कहते हैं कि तुमड़ी बजाकर साँपको बुला लिया है। ये लोग घूमते रहते हैं और मौक़ा मिलनेपर चोरी करनेसे भी नहीं चूकते। कभी-कभी तो मदारीका तमाशा केवल बहाना रहता है और इसी बहानेसे मकानोंमें घुसकर दरवाज़े, खिड़कियां आदिका भेद भली प्रकार ले लेते हैं जिससे बादमें रातके समय घरमें घुसकर चोरी करनेमें सुविधा रहे। बहुतसे तो साथही साथ सँपेरेका भी पेशा करते हैं।

सँपेरे प्रायः एक गोहुआं साँप, एक अजगर और कई विषहीन जातिके साँप जैसे धामन, दोमुँहा आदि रखते हैं। करैत साँप बहुतही चालाक सँपेरोंके ही पास कभी-कभी देखनेमें आता है। सँपेरा कभी भी नेवले और सांपकी लड़ाई नहीं दिखलाता है क्योंकि इन लोगोंमें सर्प पूजनीय तथा इष्टदेव माना जाता है। तमाशेके लिये साँप मारना पाप समझा जाता है। सँपेरोंका विश्वास है कि यदि वे कभी सांपको मार डालें तो वे अपना मंत्र सर्वदाके लिये भूल जायँगे। सांप और नेवलेकी लड़ाई केवल मुसल्मान सँपेरे ही दिखलाते हैं। सँपेरोंके विवाहमें अजगर दहेज़ रूपमें दिया जाता है। वरसे पूछा जाता है कि वह दुल्हिनके साथ रुपया लेना अधिक पसन्द करेगा अथवा अजगर। वह अकसर अजगर ही चुनता है, क्योंकि इनके विचारमें अजगरके आगमन से घरमें लक्ष्मी और स्वास्थका भी आगमन होता है।

सर्पमोहिनी कला

इस विद्याके सीखनेवालेको चाहिये कि वह सर्पोंको छूनेकी प्राकृतिक घृणाको अपनेसे दूर कर दे। सँपेरे तो बचपनसे ही भांति-भांतिके विषहीन सांपों और अजगरोंको पकड़नेमें अभ्यस्त होते हैं। इसलिये उन्हें घृणा कभी नहीं होती। जब ये लड़के बड़े हो जाते हैं तब धीरे-धीरे उन्हें नाग भी पकड़ना और उनसे खेल करना सिखलाया जाता है। जब साँपोंको छूनेकी प्राकृतिक विरक्ति दूर हो जाय तब सीखनेके लिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि वह सर्वदा इस बातपर बहुत ध्यान रक्खे कि सभी साँप जिन्हें वह छूये यह समझें कि छूनेवाला साँपसे कुछ भी नहीं डरता; वल्कि साँपका वही स्वामी है। इसके लिये वह व्यक्ति सर्पोंको सर्वदा बिना किसी प्रकारकी हिचकिचाहटके निर्भयतासे पकड़े। सांपको ऐसा मौक़ा न देना चाहिये कि वह काटनेके लिये अपना आसन जमा ले, क्योंकि ऐसा करनेसे जब सांप काटनेके लिये फन उठायेगा तब पकड़नेवाला घबड़ा जायगा और सांपके ऊपर अपना रोब न जमा सकेगा। यही बात अन्य जानवरोंके लिये भी लागू है। घोड़ेपर चढ़नेवाले भली भांति जानते हैं कि नये घोड़ेपर चढ़नेमें कभी अपनी दुर्बलता या घबड़ाहट घोड़ेपर न प्रगट होनी चाहिये, अन्यथा जब घोड़ा समझ लेगा कि सवार कच्चा है तब सवारके क़ाबूमें घोड़ा रहनेके बदले परिस्थिति उलटी हो जायगी।

अनाड़ी सांप पकड़नेवाला तो विषहीन सांप पकड़ते समय भी हिचकता है और आगा-पीछा करता है। डरते हुये ही वह सांपके पिटारेमें हाथ डालता है। यदि सांप ज़रा भी हिलता-डुलता है, तब पकड़नेवाला उसी क्षण हाथ खींचना चाहता है और सांप अपनी प्रकृतिके अनुसार उसी क्षण चोट करता है। लेकिन पक्का संपेरा पहलेही यह निश्चय कर लेता है कि सांपका मुंह उसकी ओर नहीं है और तब चुपकेसे अपना हाथ अंदर डालकर सांपकी पूंछ पकड़ उसे ऊपर उठा लेता है, जिससे वही सांप कुछ कर नहीं पाता। तात्पर्य यह है कि संपेरा अपना मौक़ा देखकर सुअवसरोंका उपयुक्त प्रयोग करता है। सांप संपेरेका हाथ अपनी ओर बढ़ता हुआ नहीं देख पाता है और बेचारा यह जाननेसे पहले ही कि कोई नई बात हो रही है, धीरेसे ऊपर उठा लिया जाता है।

दाँत तोड़ना

संपेरोंको बचपनमें सांपके विषैले दांत तथा विषकी थैली ढूंढ़नेकी शिक्षा सर्वप्रथम दी जाती है। साधारणतः विषैले दांतोंको निकाल दिया जाता है। इसके लिये सांपको किसी कपड़ेको काटनेका अवसर दिया जाता है और ज्योंही सांप

अपने विषैले दाँतोंसे कपड़ेको भली भांति पकड़ लेता है, त्योंही कपड़ेको ऐंठकर बलपूर्वक झटका दिया जाता है। इस प्रकार साधारणतः विषैले दांत जड़से टूटकर कपड़ेमें फंसे हुये निकल आते हैं। उसके बाद सांपको पकड़कर उसके विषैले दांतोंकी परीक्षा साहीके कांटोंसे की जाती हैं। यदि कोई दांत बचा रहता है तो छोटी सड़सीसे उसे निकाल दिया जाता है। यह देखनेके लिये कि कोई नया दांत तो नहीं निकल आया, मुँहकी परीक्षा थोड़े-थोड़े दिनके अंतरपर बराबर जारी रक्खी जाती है। अच्छे सँपेरे दांतों को नहीं निकालते हैं; उन्हें वैसे ही छोड़ देते हैं और सांपको किसी कपड़ेमें काटनेका अवसर देकर विषकी थैलियोंसे सब विष ही दबाकर दिकाल देते हैं। ऐसे सांपसे वे अपने अंगको कटाकर जहरमोहरासे सांप कटाने और अच्छा करनेका काम भी दिखला सकते हैं। इस तमाशेमें बड़ी सावधानीकी आवश्यकता है। पहले विषैले थैलोंसे विष प्रायः पूर्णतया दुहकर फेंक दिया जाता है। परिणाम यह होता है कि जब सँपेरा अपनेको सांपसे कटाता है तब सांपमें इतना विष नहीं बचा रहता कि वह अपनी पेशियोंको दबाकर सँपेरेके शरीरमें विष डाल सके। इसके बाद उसी सांपसे मुर्गी-के बच्चेको कटाया जाता है और इस समय संपेरा अपनी उँगलियोंसे सांपकी विषवाली थैली दबा देता है। इस बातका पता स्वभावतः दर्शकोंको नहीं लग पाता है। फल यह होता है कि तौलमें एक रत्तीके कुछ हज़ारवें हिस्सेके बराबर विष मुर्गीके बच्चेके शरीरमें भिन जाता है। इतना ही थोड़ा विष मुर्गीके छोटे बच्चेके लिये बहुत हो जाता है और मुर्गीका बच्चा देखते-देखते ही कुछ मिनटों-में मर जाता है। यह खेल बहुत ही कम दिखलाया जाता है। इस प्रकारके दृष्टांतोंसे असली भेद न जाननेके कारण, बालकी खाल खींचनेवाले मनुष्य भी सच समझ बैठते हैं कि अवश्य ही जहरमोहरे तथा मंत्रोंमें बहुत शक्ति रहती है।

संपेरा सांप पकड़ना भली भांति जानता है। सांप तभी काट सकेगा जब वह फन काढ़े रहेगा। सँपेरा धीरेसे अपना पिटारा खोलता है और बड़ी सावधानीसे देख लेता है कि कोई भी सांप काटनेकी मुद्रामें फन उठाये तो नहीं है। जो सर्प सबसे सीधेमें पकड़ा जा सकता है पहले उसकी ही पूंछ पकड़ कर वह उसे बाहर निकाल लेता है। यदि कोई सांप इस प्रकार बैठा रहता है कि वह चोट-कर सके तब संपेरा किसी अन्य ऐसे साँपकी दुम पकड़कर उठायेगा जो इस काटनेवाले सांपकी पहुँचके बाहर हो। सर्पको पूंछके बल उठानेका एक विशेष कारण है। इस स्थितिमें सर्प पकड़नेवाले व्यक्तिके हाथोंतक अपना मुँह नहीं उठा सकता; इससे काट भी नहीं सकता। दुम पकड़ कर उठाये जानेसे सर्प अपने शरीर-की लम्बाईके केवल तीन चौथाई तक ही अपना मुँह उठा सकता है।

फणधर सांप काटते समय एक वृत्तखंडमें ही चोट करता है केवल उसी रेखामें स्थित बिंदुओंपर वह चोट कर सकता है जिनपर फन झुकानेसे उसका मुँह पड़ता हो। इस रेखासे अधिक समीप या दूरके बिंदुओंपर वह चोट नहीं कर सकता। फिर दिनमें चकाचौंधके कारण सांप साधारणतः सच्ची चोट नहीं करता; क्योंकि चोट करते समय वह अपनी आँख प्रायः बंद रखता है; मुँह भी बंद रखता है। ऐसी चोट अंधी चोट कहलाती है। इस हालतमें फनसे सांप भले ही मार दे पर मुँह न खुले रहनेसे वह अपने दांतोंसे न काट सकेगा और न विष डाल सकेगा। आँख बन्द किये हुये वह केवल धनुषाकार रेखापर अपना फन पटक सकेगा। इस लिये जबतक संपेरेका हाथ चोट करनेके वृत्तखंडके बाहर या भीतर रह जायगा तबतक कुछ भी डर न रहेगा। यदि हाथ सांपके फनके नीचे चोट करते समय आ जाय तब जल्द ही हाथको वृत्तखंडके भीतर या बाहर खींचा जा सकता है, जिससे उसकी चोट खाली जायगी और मुंह भूमिपर गिरेगा। ऐसा बार-बार करनेसे सांपको चोट लगेगी और तब वह क्रोधमें आँख और मुंह खोलकर सच्ची चोट करेगा। कुछ जातिके सांप फन घुमाकर भी काटते हैं. कुछ दिनमें भी आँखें खोले रहते हैं। ऐसे सांपोंके साथ तमाशा करनेके लिये उनके सब विषैले दांत अवश्य तोड़ दिये जाते हैं।

नचाना

यह प्रचलित विश्वास है कि फणधर सांपको ऐसी

शिक्षा दी जा सकती है कि वह संपेरेके आज्ञानुसार हिले या चले। लेकिन सच बात तो यह है कि सँपेरा वही काम कराता है जो साँपोंसे स्वाभाविक आशा की जा सकती है। हम सांपोंसे इन स्वाभाविक क्रियाओंकी आशा कर सकते हैं जैसे फन उठाना, फिर दायें घूमना, तब क्रमानुसार सामने मुँह करना, फन और ऊंचा उठाना एकाएक चोट करना, सीधा हो जाना, और अंत में भूमि पर अपना फन रख देना। इन कार्योंको करानेके लिये संपेरा अपना हाथ धीरेसे दाहिनी ओर ले जाता है और उसी क्षण सांप भी दाहिनी ओर अपना सर घुमाता है। जब हाथ दाहिनी ओरसे सामने लाया जाता है तब सांप भी उसीके साथ-साथ अपना मुँह सामने ले आता है, मानों वह संपेरेका आज्ञापालन कर रहा है। यदि हाथ धीरे-धीरे ऊपर उठाया जाता है तो सांप भी उसीका अनुकरण करता हुआ अपना फन उठाता है। तब धीरेसे हाथको सांपके फनसे नीचे लाकर शीघ्रतासे खींच लिया जाता है। उसी क्षण सांप भी चोट करता है। उसका सर ज़मीन पर पड़ता है, इतनेमें हाथ फैलाकर साँपके फनके पीछे कर लिया जाता है, जिससे जब सांप फन उठाता है तब हथेली फनके पिछले भागको छूती है। अब जब हाथ धीरे-धीरे नीचे गिराया जाता है तब दबावसे सांपका फन भी धीरे-धीरे नीचे भूमिसे आ लगता है, मानों सांप संपेरेके आज्ञानुसार प्रणाम कर रहा हो।

पालतू बनाना

यदि किसी साँपको पालतू बनाना हो तो उसे नित्य पिटारेसे बाहर निकालकर ऐसा प्रयत्न करना चाहिये कि वह चोट करे। कुछ दिनों बाद साँप निष्फल चोट करते-करते थककर अपनी यह आदत भूल जायगा। कुछ दिनों बाद साँप समझने लगता है कि सँपेरेका उसपर पूर्ण रूपसे अधिकार है और चोट करके वह अपनेही नाकको घायल करेगा।

साँप क्या तुमड़ीका राग सुनता है ?

सँपेरे बीन या तुमड़ीका प्रयोग बराबर करते हैं। साँपोंके कानमें मनुष्योंकी तरह पर्दा नहीं रहता कि वे संगीत या शब्द मनुष्योंकी तरह सुन सकें। इनके कानमें केवल हड्डियांही होती हैं। इसलिये साँप केवल वही शब्द सुन सकता है जिसका कंपन भूमि द्वारा इन हड्डियोंतक पहुँच सके। यह तभीतक संभव है जबतक साँपका सर भूमिसे लगा रहे, परंतु जब साँप अपना फन काढ़े रहता है तब इसका सर भूमि से नहीं लगा रहता। इससे पृथ्वीका कम्पन इसके कानोंकी अस्थियोंतक नहीं पहुँचता। इससे स्पष्ट है कि वह फन उठानेके बाद कुछ भी नहीं सुन सकता है। परन्तु प्रचलित विश्वास यह है कि साँप बीनके मधुर संगीतकी आहट पातेही दौड़ आता है और फन उठाकर बाजा सुनने लगता है। उसकी ध्वनिसे मस्त होकर वह झूमने लगता है। परन्तु यह बिल्कुल मिथ्या धारणा है। न तो साँप बीन सुनकर दूरसे आही सकता है, न फन उठानेपर कोई शब्द सुनही सकता है। संगीत समझना और झूमना तो कोरी कल्पना है। यह बात बड़ी सरलतासे सिद्ध की जा सकती है। यदि साँपकी दोनों आँखोंपर पट्टी लगा दी जाय जिससे वह कुछ देख न सके, और उसको फन काढ़कर बैठने दिया जाय, तब किसी प्रकारका और कितने भी ज़ोरका शब्द करनेसे साँपपर कुछभी असर न पड़ेगा। पैरोंकी आहट, या किसी वस्तुके भूमिपर गिरनेका शब्द साँपको तभी ज्ञात हो सकेगा जब वह भूमिपर फन रक्खे पड़ा रहे। बीन बजाते समय साँपके हिलनेका कारण केवल हिलते हुये हाथ और तुमड़ीका अनुकरण करना है न कि बीनकी ध्वनि सुनकर झूमना। बीन बजाते-बजाते यदि कुछ कालके लिये बीनका बजाना रोक भी दिया जाय तबभी सर्प उसी भांति हाथोंके हिलनेका अनुकरण करता रहेगा; पर यदि हाथ हिलाना रोककर बीन बजातेही रहें, तब साँपभी स्थिर होजायगा।

सँपेरे खेल दिखलाते समय साँपोंको सर्वदा टोकरी या हाँड़ीमें रखना पसन्द करते हैं। इस प्रकार रखनेसे साँपोंको चोट करनेका अवसर नहीं मिलता क्योंकि साँप बड़ी असुविधामें बैठा रहता है।

टोकरीमें बैठा साँप जब चोट करनेके लिये फन पीछे करता है तब उसकी पीठपर टोकरीके पिछले हिस्सेकी चोट लगती है। जब चोट करनेको आगे फन पटकता है तब अपनेही शरीरपर चोट खाकर वह व्यथित हो

जाता है। हाँड़ीमें रखनेसे तो बेचारेकी औरभी अधिक दुर्दशा होती है, क्योंकि हाँड़ीका पेंदा गोल रहनेके कारण वह इधर-उधर लुड़का करता है और जब साँप चोट करनेके लिये पीछे हटता है तब हाँड़ी पीछे उलटने लगती है जिससे वह पीछे गिरने लगता है और इसलिये वह भरपूर पीछे नहीं हटता। फिर यदि साँप आगे चोट करनेको बढ़ता है, तो बोझमे हाँड़ी आगे उलटने लगती है और साँपभी उसी झोंकेमें आगे लुढ़ककर अपनी नाकको घायल करता है। इसलिये वह चुपचाप सीधा खड़ा रहता है और अपनेको सीधेही रखनेके प्रयत्नमें भूला रहता है। साँप बीनका सङ्गीत सुनही नहीं सकता है, इस लिये यदि टोकरीका ढकना धीरेसे खोल दिया जायतो यदि बीन बजतीभी रहे तो नाग चुपचाप टोकरीमें गुड़ली मारे पड़ा रहेगा। इसलिये दर्शकोंपर यह विश्वास जमानेके लिये कि साँप बीन सुनता और नाचता है, भाँति-भाँतिकी झूठी प्रारम्भिक क्रियायें की जाती हैं। ढकना पहले थोड़ाही खोला जाता है; तब उसे बाहरसे हिला और ठोंककर, मंत्रोच्चारण करके, टोकरीमें मुंहसे फूकते हैं। इन सब बातोंसे साँपको क्रोध आता है, क्योंकि उसकी सुखमय नींदमें बाधा पड़ती है। तब झटपट ढकना हटा दिया जाता है। टोकरीमें दिनका प्रकाश लगनेसे तथा टोकरीको खटखटाने आदिसे पहलेसे ही डरा और बिगड़ा साँप और भी भड़क जाता है और वह झट उठकर बचनेके लिये तैयार होजाता है। प्रकाश सँपेरों की तुमड़ीसे लाभके कार्यमें बहुत सहायक हैं क्योंकि सभी साँप दिनमें भली भांति नहीं देख सकते हैं। वे या तो रातमें ही जागने वाले होते हैं, या अंधेरा अधिक पसन्द करते हैं। इसका फल यह होता है कि दिनके प्रकाशमें इनकी आँखें चकाचौंधसे प्रायः बन्द रहती हैं, जिससे उनको चोट करनेके लिये दूरी या स्थानका ठीक अन्दाज़ नहीं लगता। ऐसी अवस्थामें वे अटकलसे चोट करते हैं, जो बहुधा खाली ही जाती है, अथवा मृत्युदायक नहीं होती। संभव है, कुछ लोग मनमें यह विचार करें कि यदि बीनको साँप नहीं सुन सकता तो इस बाजेके रखनेकी आवश्यकता ही क्या है। बीनके दो उपयोग हैं। बीन बजानेके साथ ही उसे हिलाते रहनेसे साँप भी साथ-साथ हिलता है और कुछ देरमें जब उसका क्रोध थोड़ा शांत होजाता है तब दर्शकों को प्रतीत होता है मानो संगीतकी मधुर हिलोरोंके साथ ही सर्प भी रीझ कर हिलोरें ले रहा है। सांपकी आँखें जो प्रारम्भसे ही चौकन्नी होकर बीन की प्रत्येक चाल देखा करती हैं, अब बीन को रोक देनेसे उसीपर स्थिर हो जाती हैं। सँपेरा इस मौक़ेको हाथसे जाने नहीं देता है। बीनको स्थिर रखकर वह सावधानी से अपने मुंहको साँपके पास ले जाकर उसके सिरको अपनी जिह्वासे छू देता है मानो वह साँपको चूम रहा है। इससे साँप तुरंत सतर्क होकर चोट करता है। लेकिन उसके पहिले ही सँपेरा हट गया रहता है। बीन बजाते समय जब उंगलियाँ नलीके नीचेके छिद्रों पर रहती हैं और तीव्र स्वर निकलता रहता है उस समय बीनको सर्पके मुंहकी उंचाईपर रखा जाता है, जिससे, यदि सांप चोट भी करे तो वार खाली जाय, उंगलियाँ घायल होनेसे बच जांय। जब उंगलियाँ ऊपरके छिद्रों पर रहती हैं जैसा मंद स्वरोंके लिये आवश्यक है, तब बीन कुछ नीचे रक्खा जा सकता है। जब सँपेरा नागको पकड़ना चाहता है तब वह मंद स्वरमें बीन बजाता है। इससे उसकी उंगलियाँ ऊपर रहती हैं और बीनका नीचेका हिस्सा खुला रहता है। सँपेरा इसी निचले भागको सर्पके मुखके नीचे लाता है। फल यह होता है कि सर्प बीनके इस नीचेके हिस्सेको ही देखनेमें लगा रहता है और उसे पकड़नेके लिये जो हाथ बढ़ाया जाता है उसपर उसका ध्यान जाता ही नहीं। यदि वह चोट करनेका प्रयत्न करता भी है तो बीनहीको उसके मुखकी ओर कर दिया जाता है। दर्शक गण तो सँपेरेके हाथोंको ही देखनेमें व्यस्त रहते हैं, इससे वे बीनके इस प्रयोगको नहीं समझ पाते। जबतक इधर नागका ध्यान बीनमें केंद्रित रहता है, सँपेरेका दाहिना हाथ धीरे-धीरे बीनके नीचेसे अथवा पीछेसे ही बढ़ता है और सर्पको उसके फनसे ३ इंच नीचे कसकर पकड़ लेता है। नाग तब भूमिपरसे उठा लिया जाता है। उसका खड़ा फन सँपेरेके हाथके ऊपर फैला रहता है। ऐसी अवस्थामें सर्प सँपेरेके हाथोंपर चोट नहीं कर सकता है। इस खेलमें अपना हाथ साँपतक बिना उसका ध्यान आकर्षित किये ही पहुंचा देनेमें सबसे अधिक तारीफ़ है। यदि सर्प हाथको देख लेगा तब तो निश्चय ही वह उसपर वार

करेगा। साँपके ध्यान बटानेहीमें सब कौशल है। यही इस खेलका गुरुमंत्र है।

सर्पोंका भोजन

प्राय: सर्प पिटारीमें बन्द रक्खे जानेसे अपना खाना छोड़ कर उपवास करने लगते हैं और मर भी जाते हैं। परंतु कुछ सर्प आसानीसे चूहे चुहियाँ आदि खा लेते हैं। ऐसे सर्पोंका मूल्य अधिक होता है, क्योंकि ये अधिक काल तक जीवित रह सकते हैं। कोई साँप खाना छोड़ही देता है तब उसे बलपूर्वक भोजन दिया जाता है। इसके लिए साँपको पकड़ लिया जाता है और उसके नीचेका जबड़ा सँड़सीसे बलपूर्वक फैलाकर खोला जाता है। तब एक लम्बी नली वाली कीप उसके गले तक डाली जाती है और एक-दो छटाँक दूध उसमें उड़ेल दिया जाता है। प्रति सप्ताह मांसका एक टुकड़ा भी शीशेकी नली द्वारा पेटमें पहुँचाया जाता है। खिलाते समय सर्पको कीपमें या मांसके टुकड़ेमें काटनेका अवसर देना चाहिये जिससे भोजनके साथही उसका कुछ विष भी गलेके नीचे उतर जाय और भोजनमें मिल जाय अन्यथा यदि सब विप दुह कर फेंक दिया जाय और तब भोजन बलपूर्वक पेटमें पहुँचाया जाय तो भोजनके साथ विपके न मिले रहनेसे भोजन उसे हज़म न होगा; इससे साँप बदहज़मीके कारण मर जा सकता है। सँपेरे इस बातको भली भांति जानते हैं और विप निकाल लेनेके बाद ही भोजन नहीं देते। यह विप लारकी भाँति पाचन क्रियाके लिये आवश्यक है। प्रकृतिमें सर्प जब किसी चुहियाको काटता है तब उसी समय निगल नहीं जाता बल्कि उसे छोड़ देता है। चूहा बिलमें भले ही भाग जाता है पर शीघ्र ही उसका दम विषसे घुटने लगता है और वह शीघ्र बिलसे बाहर निकल आता है, जहाँ सर्प उसकी प्रतीक्षामें बैठा रहता है। इतने समयमें सर्पका विप चूहेके सारे शरीरमें फैल जाता है और जब चूहेका सारा शरीर शांत पड़ जाता है, सर्प उसे निगलने लगता है। पेटमें पहुँचकर सर्पका विष पाचन क्रियामें सहायता देता है। जिन साँपोंमें विप नहीं होता वे अपने भोजनको अपनी लारसे भली भांति भिगो लेते हैं।

नेवले और साँपकी लड़ाई

यह मुझे दृश्य देखनेका अवसर एक बार मिला था। कोठरीमें एक फणधर नाग छोड़ दिया गया और वह भागनेके प्रयत्नमें इधर उधर दौड़ने लगा। नेवला बड़ा निडर बनकर सर्पके पीछेसे उसके पास पहुँच गया और धीरेसे अपने नाकसे उसे छू दिया। सर्प थोड़ा घूमा, पर फिर भागने लगा। नेवलाने फिर उसका पीछा किया। उसने निश्चय कर लिया था कि फन काढ़ कर चोट करनेके लिये नागको वह बाध्य करेगा। कभी-कभी इसके लिये नेवला सर्पकी पूंछमें दांत भी काट लेता था कि सर्प क्रोधित हो जाय। नेवला खूब जानता था कि जिस समय सर्प अपना सर भूमि पर रक्खे है उस समय मुँहके पास जानेमें बुद्धिमानी नहीं है। इस प्रकार तंग आकर साँपने फुँफकार मारी और उसने चोट करनेके लिये सर उठा लिया। इधर नेवला दांत निकाले, बालोंको खड़ा किये दृष्टिको सर्पपर गड़ाये सांपके चोट करनेकी सीमाके बाहर निडर खड़ा रहा और मुंहसे रह-रह कर शब्द करता रहा कि जिससे सर्प कुपित हो कर वार करनेके लिये फन पटके। यह व्यापार एक दो मिनट तक चलता रहा। जब सर्प खूब क्रोधमें आगया तब नेवला सांपके चोट करनेकी सीमाके भीतर घुस गया और अपने मुंहको फाड़ कर अपने पैने छोटे-छोटे दांत दिखलाने लगा। सर्पने एक क्षणमें अपनी सब शक्तियाँ संग्रह करके जोरसे वार किया। क्रोधमें अंधा हो कर सर्पने नेवले पर चोट तो अवश्य की पर नेवला उसी क्षण एक ओर उछलकर बच गया और ज्योंही सर्पका फन भूमिपर आया, उसी क्षण झपटकर नेवलेने अपने तीखे दांतोंसे सर्पकी आँखोंके पीछे फणमें भरपूर काट लिया। इस काटनेसे सर्पकी वह मांसपेसी जो विपकी थैलीको दबाकर शत्रुके शरीरमें विप डालती है बेकार हो गई।

यदि नेवलेका यह वार खाली जाय और सर्पका नीचेका जबड़ा पहले वारके बाद लटक न पड़े, बल्कि मुँह अब भी बन्द ही रहे, तो नेवला दूसरी बार फनकी दूसरी ओर उसी दाँव-पेंचसे काट खाता है और इस प्रकार सर्पकी मुँह बंद करनेकी शक्तिको नष्ट कर देता है। इस प्रकार चोट खाया हुआ और अंग-भंग सर्प, जिसे अब अपने मुँहको बन्द करनेकी शक्ति नहीं रह जाती, पुन: अपने फनको नेवलेपर दुबारा चोट करनेके लिये निराश होकर ही

उठायेगा। परन्तु इसके बाद तो नेवला अपने शत्रुके पीछे बुरी तरह पड़ जाता है।

नागने अपने टूटे मुँहसे पुनः चोट की, पर नेवला फिर पीछे उछलकर बच गया और ज्योंही सर्पका फन भूमिके पास आया नेवलेने दूसरी चोट की, परन्तु इस बार आखोंके आगे। उसके विषैले दाँतोंके साथ ही ऊपरका जबड़ा भी टूट गया। दूसरी ओरका दाँत भी उसी प्रकार बेकाम कर दिया गया। इस प्रकार सर्पके विषैले दाँत तथा विष-ग्रंथि बेकार हो गये। नेवला अब निश्चिन्त हो गया। सर्प अब उसके हाथोंमें था क्योंकि हताश सर्प अब घबड़ाया हुआ बिना देखे ही इधर-उधर चोट करने लगा था। इस लड़ाईका अंत अब आगया। नेवलेने उछलकर सर्पकी गर्दनको बलपूर्वक दाँतोंसे पकड़ लिया। जब तक सर्पका सब हिलना-डुलना शांत न होगया उसे पकड़े रहा।

नेवला सर्पसे अधिक शक्तिशाली समझा जाता है। इसका एकमात्र कारण नेवलेकी फ़ुरती ही है। सर्प तो बहुत धीरे-धीरे पैंतरा बदलता है और खड़े हो जानेपर निश्चित स्थानपर ही चोट करता है। इसलिये नेवले जैसे फ़ुरतीले छोटे शत्रुपर उसका कुछ भी वश नहीं चलता और नेवलेके विजय प्राप्त करनेमें कुछ भी शंका नहीं रहती। जो सर्प विषैले नहीं होते हैं उनके फनको तो नेवला सीधे ही कूद कर पकड़ लेता है और अपने मुँहसे उसका गला घोंटकर उसे मार डालता है। नेवलेका यह समझ जाना कि सर्प विषैला है अथवा नहीं बड़े आश्चर्यकी बात है। इसका भेद शायद यही है कि नेवला अपने शत्रुके ऊपर कभी भी तबतक आक्रमण नहीं करता जबतक एक बार वह उसे चोट करते देख न ले। एक बार चोट करते ही नेवला समझ जाता है कि शत्रुको वह किस प्रकार वशमें ला सकेगा। यदि अपनेसे भी अधिक वेगशाली सर्प उसका सामना करे तो वह उसके पास कदापि भी न फटकेगा।

विषधर और विषहीन सर्प

यह बात सभी जानते हैं कि यदि किसी बीमारीकी अनेकों औषधियां हैं और उस बीमारीसे मृत्यु-संख्या बहुत कम है तब संभवतः उस बीमारीको दूर करनेकी सच्ची औषधि एक भी नहीं है। मनुष्योंको विषधर और विषहीन दोनों ही प्रकारके सर्प काटते हैं। विषहीन साँपों द्वारा काटे जानेवाले मनुष्योंकी ही संख्या बहुत अधिक होती है। ऐसे साँपोंके काटनेसे मृत्यु नहीं होती। हाँ, डरसे, या घावके पक जानेसे, यदि कभी मृत्यु हो जाय तो बात दूसरी है। विषधर सर्पोंके काटनेपर भी मृत्युका होना आवश्यक नहीं है। अनेक जातिके सर्प विषैले अवश्य होते हैं, लेकिन जब वे काटते हैं तब अकसर उतना अधिक विष शरीरमें नहीं डाल पाते कि जवान मनुष्यकी मृत्यु हो जाय। कुछ साँपोंके पास तो उतना विष कभी भी नहीं रहता और वे सर्प जो विषैले भी होते हैं और विष भी बहुत डाल सकते हैं अकसर भरपूर मात्रामें विष नहीं डाल सकते, क्योंकि हो सकता है कि काटते समय उनको पूरा विष उतारनेका अवसर न मिले, अथवा उचित प्रकारसे दाँत गड़ाने या फन उठानेका ही मौक़ा न मिले। इसलिये हम जानते हैं कि भारतवर्षमें सर्प काटे मनुष्योंमेंसे केवल ६ से १० ही प्रतिशतकी मृत्यु होती है और शेष ९०-९५ प्रतिशत जीवित रह जाते हैं, चाहे उन्हें किसी प्रकारकी दवा दी जाय या नहीं। सँपेरोंके तंत्र-मंत्र और जड़ी-बूटी, तथा अन्य औषधियों के गुणमें विश्वास उत्पन्न करनेमें यही ९० प्रतिशत साँप काटे मनुष्य सहायता देते हैं, क्योंकि इनकी मृत्यु तो होगी ही नहीं, चाहे कोई औषधि उनसे मिले या न मिले। अधिकांश मनुष्य, जो इस विषयपर कुछ नहीं जानते हैं, यह विश्वास करते हैं कि काटनेवाले सभी साँप विषधर होते हैं और उचित औषधि न देनेसे मृत्यु अवश्य ही हो जायगी। सँपेरा जो औषधि देता है वह संखिया, नीम, जड़ी, जहर-मोहरा कुछ भी हो सकती है. या केवल मंत्रहीसे काम चलाये। जब साँपका काटा व्यक्ति मरता नहीं, बल्कि जीवित रहता है, तो अवश्य ही उसके जीवित रहनेका एकमात्र कारण उसकी औषधि या मंत्र है ऐसी धारणा होना स्वाभाविक है। लोग समझते हैं कि सचमुच उसकी औषधि या मंत्र विषैले साँपोंके विषसे बचनेका सच्चा उपाय है। तब सँपेरोंकी औषधियोंपर क्यों न विश्वास किया जाय ? पर थोड़ा भी सोचनेसे हम समझ जायँगे कि लोगोंकी यह धारणा है कि सभी काटनेवाले सर्प

विषधर होते हैं पर यह सर्वथा निर्मूल है और इस नींव पर खड़ा किया गया सिद्धान्त सच्चा नहीं हो सकता। ऐसे लोग तो अवश्य ही जीवित रहेंगे। उनके लिये एक चिटुकी राख और सँपेरोंकी औषधि, बच्चोंका बड़बड़ाना और सँपेरोंका प्रबल मंत्र सभी बराबर हैं।

सँपेरोंकी औषधियाँ

सँपेरे अधिकतर तीन वस्तुयें साँपके काटनेके उपचारमें प्रयोग करते हैं:—

(१) ज़हर मोहरा।

(२) औषधियाँ या ज़ड़ी बूटी, जैसे संखिया, अफीम, नीम आदि।

(३) मंत्रों द्वारा झाड़ फूँक।

ज़हर मोहरे के लिए भाँति भाँतिकी वस्तुओंका प्रयोग होता है, जिनमें जली हुई हड्डी ही मुख्य है। ज़हरमोहरेके नामपर व्यापार करके बहुतसे लोग अच्छा धन पैदा करते हैं। कहीं कहीं पत्थरोंका प्रयोग होता है। लोगोंका विश्वास है कि मरख़ोर (पहाड़ी बकरा) चरते समय कभी-कभी भूलसे घासमें छिपा साँप भी खा जाता है और तब इसकी लार सर्पके विषसे मिल जाती है जिसमें विष मर जाता है और वह पत्थर बन जाता है। इसको मरख़ोर अपने मुँहसे तुरंत बाहर उगल देता है और यही ज़हरमोहरा है। मरख़ोर शब्दका अर्थ ही साँप खानेवाला है। इस विचित्र पत्थरमें भांति-भांतिके रोगोंको दूर करनेकी शक्ति होनेका विश्वास प्रचलित है। कभी-कभी जानवरोंके पित्तकी थैलियोंमें पत्थर बन जाता है, जैसा मनुष्योंको भी कभी-कभी होजाता है। जब ऐसे जानवर मारे जाते हैं और ये पथरियाँ निकलती हैं, तब सँपेरे इन्हें बहुत मूल्यवान वस्तु मानते हैं और उससे ज़हरमोहराका काम लेते हैं। लोग कहते हैं कि वह पत्थर सर्पके फनमें मिला था। कभी-कभी कुछ ख़ुशबूदार गोंद आदिकी गोलीको भी, जैसे धूपकी गोलीको, वे इसी आशयसे काममें लाते हैं। कहींपर यदि छोटा-सा घाव होजाय और वहाँसे ज़रा-ज़रा रक्त निकलने लगे तो वहाँ यह पत्थर लगा दिया जाता है और तब यह रक्तको सोखने लगता है। रक्तके लसदार होनेके कारण यह पत्थर थोड़ी देरमें वहीं चपक जाता है, कुछ देर बाद जब रक्त सूख जाता है तब पत्थर अपनेही बोझसे वहाँसे छूटकर गिर पड़ता है। संपेरोंका कहना है कि यह पत्थर शरीरमें चिपककर विषको खींचकर सोख लेता है। जब सारा विष शरीरसे खींच लेता है तब आपही शरीर छोड़कर गिर पड़ता है। जो संपेरे विष-भरी ग्रंथियों सहित दांतवाले सर्पोंको पकड़ते हैं वे स्वयं इन ज़हरमोहरोंपर कुछभी विश्वास नहीं करते। इसीसे वे ऐसे सांपोंसे अपनेको कटाकर ज़हरमोहरेके प्रयोगसे अपनेको चंगा करना नहीं दिखलाते हैं। यह कौशल उन्हीं सांपोंसे दिखलाते हैं जिनका सब विष पहलेही वे दूह लिये रहते हैं। तब ज़हरमोहरेकी नक़ली करामात दिखलाकर वे अपने दर्शकोंको अचम्भेमें डाल देते हैं और साथही विषहीन दांतोंके लगनेसे जो थोड़ा रक्त निकलने लगता है उसे भी सोखकर बन्द कर देते हैं। साँप-काटनेकी दवाके रूपमें बेंची जानेवाली जड़ी-बूटियां तथा औषधियां अगणित हैं। इन औषधियोंको बनानेमें कई प्रकारकी वस्तुयें जैसे अफ़ीम, धतूरा, संखिया आदि मिलाते हैं। इन औषधियोंके नुसख़ेको वे कभी बतलाते नहीं हैं उसे बहुत सावधानीसे छिपाये रहते हैं। वे अकसर यही कहते हैं कि मुझे हिमालय पहाड़के एक योगीसे अथवा नेवलेसे यह औषधि मिली है। अथवा वे इनके बनानेमें बड़ी-बड़ी कठिनाइयां दिखलाते हैं कि अमुक स्थानपर अमुक पर्वमें, रातको जब चंद्रमा अमुक कलामें रहे, तभी यदि औषधि बनाई जाय तो लाभदायक सिद्ध हो सकेगी। ये सब कठिनाइयां इस कारण डाली जाती हैं कि किसी मनुष्यको यदि सांप काटे तब वह समय पड़नेपर इन औषधियोंको न पा सकेगा और लाचार हो लोगोंको संपेरोंके पास जाना पड़े। तबतक यदि मनुष्य मरनेवाला होता तो वह मरही गया होता, परन्तु यदि वह इतनी देर तक जीवित रह सका तो अवश्यही या तो सर्प विषैला न था, या विषकी मात्रा पर्याप्त न थी। इससे अवश्यही वह मनुष्य जीवित रहेगा, चाहे औषधि दी जाय, चाहे नहीं। वास्तवमें ऐसेही रोगी संपेरोंके लिये उपयुक्त हैं और वे इन्हें सचमुच अपनी प्रतिभाशाली जड़ियोंद्वारा मृत्युके मुँहसे बचाही

देते हैं ? संपेरा केवल अपनी औषधिको ही चंगा करनेके लिये शायद काफ़ी नहीं समझता है। इसीमें साथही साथ मंत्रोंका भी वह प्रयोग करता है। इसके लिये मंत्र, तंत्र, जंत्रकी शरण लेता है। मंत्रतो किसी गुरुसे कानोंमें धीरेसे दिया जाता है। यदि अन्य व्यक्ति इस मंत्रको सुन पायेगा तब मंत्र-शक्ति लुप्त हो जायेगी। मंत्रके साथ अपने विचारोंको किसी वस्तुपर एकाग्र भी करना पड़ता है। इसलिये कई प्रकारकी रेखाएँ या तंत्र जैसे वृत्त या त्रिकोण आदि, भूमिपर बनाये जाते हैं। वहाँकी हवाभी धूप-बत्ती, कपूर, आदि जलाकर शुद्ध की जाती है।

इस प्रकार संपेरे सीधे मनुष्योंपर कौशल और कपटसे अपनी धाक जमाकर अपनी जीविका निर्वाह करते हैं। साथही दूसरोंका मनोरंजन भी होता है। गाँवोंमें अबभी इनका बहुत रोब है।*

*यदि काफ़ी पाठक लिखेंगे तो 'विज्ञान'की आगामी संख्यामें विषधर और विषहीन साँपोंकी अचूक पहचान दी जायगी। —सं०

वैद्युत् तरंगोंका चमत्कार

क्या अब डाक्टरोंकी आवश्यकता न रहेगी ?

बिजलीपर मनुष्यका प्रभुत्व पाना बीसवीं सदीके अचंभोंमें गिना जा सकता है। परंतु, वर्तमानसे संतुष्ट होकर, विज्ञान सदा बिजली उत्पन्न करने और उसे काममें लानेकी नई रीतियां खोज रहा है। रेडियोके लिये अधिक सुविधाजनक तरंगोंकी झलक रह-रह कर दिखलाई पड़ जाती है। किसी न किसी दिन ये तरंगें हमारे वशमें आ ही जायँगी। 'भेदभरी रश्मियां' नामसे प्रसिद्ध रश्मियोंके लिये भी एक उपयोगी काम खोज निकाला गया है और साधकोंको विश्वास होगया है कि 'मारक रश्मियों' का उत्पन्न करना असंभव नहीं है। इन रश्मियों से दुष्ट शत्रुओंको सहजहीमें मारा जा सकेगा। 'अति-तीव्र' तरंगोंका अध्ययन (पापुलर मकैनिक्सके एक लेखकके अनुसार) इस उद्देश्यसे किया जा रहा है कि पता चले कि रोगोंकी चिकित्सामें उनका कहाँतक उपयोग किया जा सकता है।

डाक्टर लीडि फॉरस्ट वे ही जिन्होंने बेतारके तारकी ग्राहक-बत्तियोंका आविष्कार किया था—कहते हैं कि निकट भविष्यमें प्रत्येक घरमें दो एंद्रजालिक स्वास्थप्रद कोठरियोंके बन सकनेकी संभावना प्रतीत होती है, ऐसी कोठरियां जिनमें दस-पंद्रह मिनट रोज़ रह लेनेसे 'का करि बैद बसावे गाँव' वाली कहावत चरितार्थ हो जायगी। इन स्वास्थ्यप्रद कोठरियोंके प्रभावसे डाक्टरोंकी प्रायः आवश्यकता ही न रहेगी।

वे कहते हैं "ऐसी कोठरीमें दिवालोंमें छिपे तारोंसे अति-तीव्र वैद्युत तरंगें निकलेंगी। इनका प्रभाव इस कोठरीमें बैठे मनुष्यपर स्वास्थप्रद, शक्तिवर्द्धक और सुखकर होगा। मध्य जाड़ेमें मंसूरी और नैनीतालमें भी लोग दरवाज़े और खिड़कियां खोलकर बैठ सकेंगे और सो भी केवल धोती-कुरता पहनकर, क्योंकि इन अति-तीव्र वैद्युत तरंगोंसे मनुष्यको आनंददायी गर्मी मिला करेगी। इन तरंगोंके प्रभावसे कोठरीमें भी पौधे उग और फूल सकेंगे। अंधेरा होनेके बाद मनुष्य निआनके समान किसी गैससे भरी जलती हुई बत्ती उठाकर जहां चाहे तहां ले जा सकेगा; तारकी आवश्यकता ही न रहेगी। ऐसी बत्तीको मनुष्य सुविधानुसार मेज़ पर या ताक़ पर रख सकेगा और बत्ती बराबर जलती और अपने सुंदर प्रकाशसे घरकी शोभा बढ़ाती रहेगी।"

बिना तारकी रोशनी

ऐसी बत्तीका जलाना बेतारके शक्ति वितरित करनेका एक अत्यत साधारण उदाहरण होगा। इस प्रकार साधारण बिजलीकी शक्ति वितरित करनेमें सफल होनेका स्वप्न आविष्कारक वर्षोंसे देखते आ रहे हैं और वे बार-बार निराश होचुके हैं। परंतु अति-तीव्र तरंगोंद्वारा शक्तिका वितरित होना आज संभव होगया है; अब केवल

यही प्रश्न है कि इस रीतिसे पर्याप्त मात्रामें और किफ़ायत से बिजली पहुँचाई जा सकती है या नहीं। केवल वर्तमान ज्ञानसे इसमें सफल होना बहुत संदिग्ध जान पड़ता है।

आजकल बिना तारके ही वैद्युत शक्ति भेजनेमें सबसे अधिक कठिनाई यह है कि हमारे क़ाबूमें यह बात नहीं रहती कि केवल एक निश्चित स्थानमें बिजली भेजी जाय। फिर, खर्च भी बेहद पड़ता है. डाक्टर डी फ़ॉरेस्टकी यह राय है। विज्ञानको आज ऐसी रीति मालूम है जिससे एक केंद्रस्थ इंजनघरसे इतनी वैद्युत शक्ति प्रचारित की जाय कि उससे एक सारे गाँवमें बिजलीकी रोशनी होसके परंतु इसमें आपत्ति यह होगी कि इसके लिये अधिक भयानक मात्रामें शक्ति उत्पन्न करनी होगी, जिसमेंसे नाम मात्र ही काममें लायी जा सकेगी और शेष नष्ट जायगी। यदि परदे खड़े करके शक्तिको ऊपर आकाशमें चले जानेसे रोका भी जा सके तो भी खर्च बेहद पड़ेगा।

'इसी प्रकार हम इतनी शक्ति भी भेज सकते हैं कि उस-से हवाई जहाज़ उड़ा करे। हम यह भी कर सकते हैं कि शक्ति को समानांतर किरणोंके रूपमें भेजें; परंतु तब कारीगरको बराबर किरणोंकी दिशा बदलती रहनी पड़ेगी, और जब हवाई जहाज़ क्षितिजके उसपार चला जायगा तब तो वहांतक किसी प्रकार भी शक्ति नहीं भेजी जा सकेगी। फिर, रास्तेमें जितने धातु पड़ेंगे वे शक्तिको न्यूनाधिक मात्रामें सोख लेंगे। यदि आप कभी बेतारके बिजलीघरके सामने चले जायँगे तो देखेंगे कि आपकी घड़ी और जेबमें पड़े रुपये-पैसे बेतरह गरम होगये हैं।'

दूरसे ही शत्रु जलाये जा सकेंगे

अतितीव्र बिजली से अब ऐसी भट्टियाँ बन रही हैं जिनकी सहायतासे वायु-शून्य बरतनमें रासायनिक जाँचोंके लिये धातु पिघलाये जा सकेंगे। इस प्रकारकी बिजलीसे निजी बेतारके तार और दूर दर्शन-यंत्र रखने में सुविधा होगी। अति-तीव्र वैद्युत-यंत्र ऐसे भी बनाये गये हैं जिनसे बिजलीके साधारण डायनामो नष्ट किये जा सकते हैं। बेतार-के-तारके जन्मदाता मार-कोनीका अनुमान है कि वह ऐसा यंत्र भी बना सकेगा जो इंजनोंका चलना बंद कर सके। इससे हवाई-जहाज़ों की इंजनें भी बंद कर दी जा सकेंगी—अवश्य ही युद्धोंमें अति तीव्र विद्युत अत्यंत महत्वपूर्ण होगी।

अति तीव्र वैद्युत क्षेत्रमें खोज करनेवाले बड़ी साव-धानीसे और थोड़ी-थोड़ी शक्तियोंसे काम करते हैं क्योंकि उनको यह आशा है कि अंतमें ऐसी रश्मियोंका पता चलेगा जिनका कंपन-समय ठीक वही होगा जो मनुष्य-शरीरके अणुओंका है। इन रश्मियोंके शरीरपर पड़नेसे शरीर नष्ट हो जायगा और प्राणीकी मृत्यु हो जायगी।

केवल लहर-लंबाईका फेर है

विद्युतकी जानी हुई जातियां, जैसे अलटरनेटिंग करेंट आदि, विद्युत-चुंबकीय शक्तिके भिन्न-भिन्न रूप हैं। गर्मी-की किरणें, प्रकाशकी किरणें कॉस्मिक-रश्मियाँ, रेडियोकी तरंगें, टेलीफोनों में प्रयुक्त बिजली, ये सब वास्तवमें एक ही वस्तु है, भेद उनमें केवल यही है कि कुछ की लहरें लंबी, कुछकी छोटी होती हैं। दूसरे शब्दोंमें, कहा जासकता है कि प्रकाश तीव्रतम विद्युत है; या यह कहा जा सकता है कि मोटर-गाड़ीकी बैटरीकी बिजली, दियासलाईका प्रकाश और अँगेठीकी आँच सभी एक ही प्रकारकी शक्ति हैं, केवल उनकी लहरें एक नापकी नहीं हैं। साधारण अलटरनेटिंग करेंटकी लहर-लंबाई सबसे बड़ी होती है। बेतारके तारमें प्रयुक्त होनेवाली लहरें उनसे कुछ छोटी होती हैं, अर्थात् वे कुछ तीव्र होती हैं, इसके बाद उपर्युक्त रश्मियोंकी, अर्थात् गर्मीकी किरणोंकी, पारी आती है; इसके बाद प्रकाशकी, और अंतमें कॉसमिक रश्मियोंकी डाइरेक्ट करेंटको अनंत लहर-लंबाईका अलटर-नेटिंग करेंट माना जा सकता है।

शक्तिकी लहरोंकी लंबाईको बदल देनेहीसे उसके गुण और उपयोगितामें अंतर पड़ जाता है। उदाहरणार्थ, अति-मंद लहरें जैसे प्रति सेकंड साठ कंपनसंख्या वाली, तारों द्वारा भेजी जा सकती हैं और शक्ति नाम ही मात्र तारके बाहर बिखरेंगी परंतु यदि लहर लंबाई घटाकर कंपन संख्या बढ़ा दी जाय तो शक्तिको तारों तक ही संकुचित रखना कठिन हो जाता है और बहुतसी शक्ति इधर-उधर बिखर जाती है। उस बिजलीमें जो घरकी बत्तियाँ जलाने-

के काममें आती है और उसमें जो वेतारके तारमें प्रयुक्त होती है यही मुख्य अंतर है।

वैज्ञानिकोंने विद्युत-चुंबकीय शक्तिका अध्ययन डायरेक्ट करेंट और अलटरनेटिंग करेंटसे आरंभ किया। इन प्रकारकी बिजलियोंसे हमें गरमी, प्रकाश और शक्ति मिली और दूरस्थ स्थानोंसे बात-चीत करनेका उपाय मिला। एक ही तार द्वारा एक ही साथ भिन्न-भिन्न लंबाइयोंकी कई लहरें भेजी जा सकती हैं। जिनके कारण एक ही तारसे कई एक टेलीफ़ोन साथ ही काम कर सकते हैं। इनसे कुछ छोटी लहर-लंबाईकी, अर्थात् कुछ अधिक तीव्र बिजलीसे बेतार-कातार भेजा जाता है। उससे तीव्र बिजलीसे दूरदर्शन संभव हुआ है और ऐसी बिजलीका प्रयोग रोगोंकी दवाके लिये भी किया जाता है।

कैलिफ़ोर्नियाके एक प्रोफ़ेसर उन रश्मियोंके अविष्कार-में लगे हैं जो लहर-लंबाईके ख़्यालसे बेतार-के-तारवाली लहरों और गरमीकी किरणोंके बीचमें होती है। कुछ ही वर्ष हुए २० गज़की लहर-लंबाई वाली लहरें बहुत छोटी गिनी जाती थीं, परंतु उक्त प्रोफ़ेसरने अब दो गज़से ले दो बित्ते तककी लहरें उत्पन्न करनेकी रीति निकाल ली है। इन लहरोंसे क्या काम लिया जाय इसी खोजमें वे इन दिनों जुटे हैं।

अँधेरेमें 'देखना'

ऐसा समझा जाता है कि इन्हीं रश्मियोंमें कहीं वे रश्मियाँ भी हैं जिनसे अँधेरेमें और गहरे कुहरेमें सेना विभागके लोग दूरस्थ और अदृश्य जहाज़ोंकी स्थितिका पता लगा लेंगे। इस प्रकारके अधिकांश यंत्रोंका सिद्धांत यही होता है कि ये रश्मियाँ अंधकार या कुहराको चीरती हुई लक्ष्य तक पहुँच जाती हैं और वहाँ से परावर्तित होकर भेजने-वालेके पास लौट आती हैं। इसलिये शीघ्र ही लोग इस बातकी खोजमें भी लगेंगे कि क्या कोई मसाला ऐसा नहीं है जिससे रंग देनेपर जहाज़ अतितीव्र रश्मियोंको सोख ले और इस प्रकार दुश्मनको उनका पता न चले।

प्रकाशकी लहर-लंबाई इतनी छोटी होती है कि उसे इंचके दस हज़ारवें भागोंमें नापना पड़ता है, इसलिये उनमें और दो बित्तेवाली अतितीव्र लहरोंमें बहुत अंतर है। तो भी उनमें कई एक गुण प्रकाशकी किरणोंकी तरह हैं। उदाहरणार्थ, अतितीव्र लहरोंके उत्पादकके पीछे पर-वलायाकार दर्पण लगा कर इन लहरोंको एक दिशामें दूरतक भेजा जा सकता है ठीक उसी प्रकार जैसे मोटर-गाड़ियोंकी रोशनी।

अतितीव्र लहरोंके बूतेपर हवाई जहाज़के एक दम अँधेरेमें भी ज़मीनपर उतर सकनेका प्रश्न हल किया जा रहा है। पानीका जहाज़ आज भी इनके भरोसे अँधेरेमें छिपे बंदरगाह तक निर्भयता से पहुँच सकता है। संभव है कि निकट भ वष्यमें ऐसा यंत्र बाज़ारमें मिलने लगे जिससे मोटर-में चलते हुये लोग अपनी बोली निकटतम टेलीफ़ोन-घर-तक भेज सकें और वहाँ से उनकी बोली साधारण टेलीफ़ोनसे उनके घर या दफ़्तरतक पहुँचाई जा सके। वैज्ञानिकों ने ऐसा प्रयोग कर भी दिखलाया है।

रोगोंकी चिकित्सा

अति-तीव्र लहरोंसे शरीर गरम हो आता है और रक्त वेगसे दौड़ने लगता है। चिकित्सामें सेंकनेके गुणको सभी जानते हैं। अब पाश्चात्य डाक्टरोंने अतितीव्र लहरोंको इस कामके लिये नाथा है। उनको पता चला है कि इन 'ज्वर-उत्पादक' यंत्रोंसे शरीरके भीतरी भागोंको भी सेंक सकते हैं। केवल इतना ही नहीं। इन बिजलीकी लहरोंसे कुछ ऐसा भी फ़ायदा होता है जो केवल गरमीसे नहीं होता। अभीतक इन ज्वर उत्पादक यंत्रों से सर्दी-जुकाम, गठिया, अंदरूनी सूजन आदिमें लाभ हुआ है। भीतरी भागोंमें उत्पन्न होनेसे वहाँ खूनका दौरा बढ़ जाता है जिससे रक्त-धारा वहाँ के दूषित पदार्थको शीघ्र बहा ले जाती है।

वैज्ञानिक संसारके ताज़े समाचार

नन्हा-सा हवाई जहाज़ बहुत तेज़ जाता है

३०० मील प्रति घंटेके वेगसे उड़नेवाला, एक नन्हा-सा हवाई जहाज़ अभी हालमें बना है। इसके दोनों पंख मिलकर कुल १२ फ़ुट लंबे हैं। जहाज़ स्वयं केवल साढ़े उन्नीस फ़ुट लंबा है। इसमें ४० गेलन पेट्रोल भरा जा सकता है और इतने पेट्रोलमें यह २५० मीलतक जा सकता है। इतना छोटा होनेपरभी इसमें बेतार-के-तारकी खबरें सुननेका यंत्र लगा है।

अनानास पकानेकी नई रीति

अनानासको यदि आप ऐसिटिलीन गैस सुँघा दें—वही ऐसिटिलीन जो बाइसिकिलवाले गैस लैंपोंमें जलाई जाती है और कारबाइडपर पानी छिड़कनेसे निकलती है-तो अनानास चौगुना शीघ्र फूलने और फलने लगेगा। हवाई द्वीपके एक ज़मींदारने, जो अनानासोंकी ही खेती करता है, इस रीतिका पेटेंट कराया है। पेटेंटसे पता चलता है कि फूल उगनेके पहले अनानासको ऐसिटिलीन गैस दिया जाता है। इसके लिये चाहे अनानासको विशेप बक्ससे ढँककर उस बक्समें ऐसिटिलीन पंप किया जाय, चाहे पौधेपर ऐसिटिलीन गैस सोखे हुये पानीका फ़ुहारा छोड़ा जाय। करीब पांच बार पंद्रह-पंद्रह घंटे तक इस प्रकार गैस देनेसे अनानास जल्द फूलता, फलता और पकता है।

हिरन भी उड़ने लगे

सुकुमार जानवरोंको जंगलसे चिड़ियाखाना तक पहुँचानेमें अब हवाई जहाज़ काममें लाये जाते हैं। अभी अमरीकाके एक जंगलमें विशेप प्रकारके २३ हिरनके बच्चे पकड़े गये थे। तुरंत हवाई जहाज़में चढ़ाकर उनको भिन्न-भिन्न शहरोंके चिड़ियाखानोंमें पहुँचा दिया गया। उनमेंसे दो बच्चे एक दूसरे हवाई जहाज़पर जरमनी पहुँचाये गये।

सूर्य-किरणोंसे इंजन चलेगा

डाक्टर सी० जी० अबट, मंत्री, स्मिथसोनियन इंस्टिट्यूट वर्षोंसे सूर्यकी शक्ति नाथनेके चक्करमें पड़े हैं। कुछ-कुछ सफलता उनको बराबर मिलती रही है, परंतु कभी भी वे ऐसा यंत्र नहीं बना सके जो काफ़ी छोटा, किफ़ायती, और सरल हो। उनके नवीनतम प्रयोगोंसे आशा की जाती है कि अब ऐसी मशीनें बनने और बिकने लगेंगी जिनसे सूर्य-किरणोंसे इंजन चलेंगे। अल्युमिनियम-के तीन परवलयाकार लंबे दर्पणोंमें किरणें काँचकी नली पर एकत्रितकी जाती हैं। प्रत्येक नली दोहरी होती है। डाक्टर अबटके यंत्रमें बाहरी नली सवा इंच व्यासकी थी, भीतरी एक इंचसे कुछ कम। इन दोनों नलियोंके बीचकी हवा निकाल दी जाती है, जिससे भीतरकी नली की गरमी बाहर नहीं निकलने पाती, ठीक उसी प्रकार जैसे थरमस बोतलमेंसे। भीतरी नलीमें कालिख छोड़कर काला किया गया एक तरल पदार्थ भरा रहता है। सूर्य-की किरणोंको यह पदार्थ सोख लेता है और इसका ताप-क्रम ६६० डिगरी होजाता है। पाइप द्वारा यह पदार्थ एक बायलरमें पहुँचता है जहाँ अपनी गरमीके कारण यह पानीको खौला देता है। इस प्रकार बने वाष्पसे स्टीम इंजन चल सकता है। डाक्टर अबटने अपने छोटे यंत्रसे आध घोड़ेकी ताक़तकी मशीन चलाली है।

मोटरसे भी दीर्घजीवी बैटरी

जिनके पास मोटर गाड़ियां हैं वे जानते हैं कि प्रत्येक तीसरे-चौथे वर्ष बैटरी बदलनी पड़ती है। अमरीका की एक कंपनीने ऐसी बैटरीका पेटेंट कराया है जो बीसों वर्ष चलेगी। इसके दीर्घ-जीवनका रहस्य काँचके घूयेकी एक चटाईमें है। साधारण बैटरियोंमें प्लेटपर चढ़ा मसाला धीरे-धीरे झर जाता है, परंतु कांचके अत्यंत सूक्ष्म तारोंकी बनी चटाईसे सुरक्षित रहनेके कारण इस नवीन बैटरीका मसाला झरने नहीं पाता। साधारण बैटरियोंमें नीचे काफी जगह छोड़ दी जाती है जिसमें झरा हुआ मसाला पड़ा रहे और कोई नुकसान न करे। नवीन बैटरीमें नीचे जगह छोड़नेकी आवश्यकताही नहीं रहती। इसलिये इसके प्लेट बड़े बन सकते हैं। वे लगभग २२

प्रतिशत बड़े होते हैं। इसलिये इन बैटरियोंमें अधिक शक्ति भी होती है।

धुयेंसे चोर पकड़ा जायगा

चोर अकसर चपरासियोंके हाथसे रुपया छीनकर भाग जाते हैं, विशेषकर पहली तारीख़को जब चपरासी बंकके दफ़्तरके सब बाबुओंकी तनख़्वाहें एक साथही लाता है। इस छिछोरीसे रक्षाके लिये एक आविष्कारकने एक ऐसा बैग बनाया है जिसके छीनतेही भीतरसे गाढ़ा पीला धुआं निकलने लगता है। इस धुयेंके कारण चोर भीड़में छिप नहीं सकेगा। बैगके भीतर फ़ौलादी तारकी जाली रहती है जिससे बैग काटकर चोर रुपया नहीं निकाल सकेगा।

जेबी बेतार-का-तार

इंगलैंडमें पुलिसके कानिस्टिवलोंको अब एक नन्हा-सा बेतारका-तारवाला यंत्र भी मिलता है। इससे वे सदर दफ़्तरसे दिये गये हुक्मको बराबर सुन सकते हैं। सेट इतना छोटा होता है कि पूरा यंत्र कानिस्टिबिलके कोटके पाकेटमें आजाता है।

चोरोंकी बात-चीतका पक्का सबूत

अभीतक चोरोंकी बात-चीतको गुप्त रीतिसे सुरक्षित कर लेनेके लिये 'डिक्टाफ़ोन'का प्रयोग किया जाता था। परंतु इस यंत्रमें ख़राबी यह थी कि थोड़ेहीसमयकी बात-चीत इसमें भरी जा सकती थी। अब एक इंजिनियरने बोलती सिनेमा मशीन (टाकी) में ऐसा परिवर्तन कर दिया है कि उसमें एक सप्ताहकी रात-दिनकी बात-चीत भरी जा सकती है। यदि यह मशीन छिपाकर किसी कोठरी में रखदी जायगी तो केवल यही नहीं पता लगेगा कि क्या-क्या बातें हुईं, परंतु इसका भी पता लगेगा कि कब क्या बातें हुईं। एक सप्ताहके लिये ३००० फ़ुट फ़िल्मकी आवश्यकता पड़ती है और चूँकि फ़िल्मपर चित्र नहीं रहता, केवल बोलही रहती है, इसलिये फ़िल्ममें शब्द-लेखनकी ६६ पंक्तियाँ आ जाती हैं। मशीनमें फ़िल्म बराबर चला करती है, और यह देखकर कि कौनसी बात चीत फ़िल्ममें किस स्थानपर है इसका पता चल जाता है कि किस समय वह बात हुई थी।

आयोडीनसे फलोंकी रक्षा

नारंगी, टमाटर, सेब, अंगूर आदि फलोंको अधिक दिन तक रखनेके लिये इंगलैंडमें अब उनको आयोडीन पड़े काग़ज़में लपेट दिया जाता है। प्रयोगसे पता चला है कि काग़ज़में पड़े आयोडीनके कारण फलोंपर भुकड़ी नहीं लगने पाती और इस प्रकार फल पहलेकी अपेक्षा अब बहुत कम सड़ते हैं। काग़ज़में इतना कम आयोडीन रहता है कि फलोंका न तो स्वाद बदलता है और न उनके पकनेमें कोई रुकावट होती है।

गो० प्र०

सिरका

[लेखिका—कुमारी श्री सुशीला आग़ा, बी० ए०]

[प्रयागकी फ़्रूट ग्रोइंग एसोसियेशनकी ओरसे जिन व्याख्यानोंका प्रबन्ध हुआ था उनसे लेखिकाने लाभ उठाया और वहाँ बताई गई बातोंके आधारपर यह लेख लिखा गया है।]

हमारे देशमें प्रायः बहुतसे लोग सिरकेको इस विनापर नहीं खाते कि उसमें कृमि पड़ जाते हैं, और जो लोग खातेभी हैं वह अधिकतर विदेशसे आया हुआ सिरका प्रयोगमें लाते हैं। यही कारण है कि ऊख, फल इत्यादिका देशमें बाहुल्य होते हुए भी लोग उन्हें सिरकेमें परिवर्तित करने का उचित तरीक़ा नहीं जानते। यदि लोग ठीक ढंगसे सिरका तैयार करना आरम्भ करदें तो इससे उनका बहुत लाभ हो सकता है। वह अपने देशकी आवश्यकता ही नहीं बल्कि और देशोंकी आवश्यकता भी बहुत अंशमें पूर्णकर सकते हैं।

जो सिरका घरों अथवा गाँवोंमें तैयार किया जाता है

उसे तैयार करनेकी विधि बड़ी बेतुकी है। ऊपर तक भरे हुए रसके घड़ोंको मुँहपर कपड़ा बांधकर रख दिया जाता है और चार महीने बाद उस रसको छान लेते हैं। बस सिरका तैयार होजाता है। इस प्रकार तैयार किये सिरकेमें कृमि पड़ जाते हैं जो 'वाइल्ड-यीस्ट' कहलाते हैं। इस प्रकारके तैयार किये सिरकेमें बहुतसी हानियाँ हैं— पहली बाततो यह है कि जब तक रस फफदकर सिरकेके रूपमें तैयार होता है, उसमेंसे कुछ तो घड़ा सोख जाता है और कुछ फफदनेके समय उबाल आनेसे गिर जाता है। (यदि घड़े पौन भरे जायें तो रस न गिरे।) अन्तमें बनानेवालेके हाथ केवल जितना रस रक्खा गया था उसका आधा सिरका पड़ता है।

दूसरी विशेषता इस प्रकार तैयार किये हुये सिरकेमें यह होती है कि वह असली ढंगसे तैयार किये हुये सिरकेसे कहीं कम तेज़ होता है।

विनिगर एक फ्रेंच शब्द है जिसके अर्थ हैं 'खट्टी शराब'। यह फफदनेपर एक ऐसी स्थितिपर आता है कि यदि हम उसे छानकर रख लें तो वह शराब होजाय क्योंकि शराब भी फल इत्यादिके अर्कको फफदा करके बनाई जाती है।

सिरका बनानेके लिये बरतन

सिरका तैयार करनेके लिए प्रत्येक प्रकारका बरतन ठीक नहीं बैठता। इस कामके लिये सबसे उपयुक्त काठका चौखटा है अथवा बरतन गोल पीपा सा रहना चाहिए, और उसका ढक्कनभी काठका ही हो। ढक्कनमें पतले-पतले छेद होने चाहिये जिससे कि रसको बराबर ताज़ी हवा मिलती रहे।

अर्क़ निकालनेकी विधि

किसी भी फल या तरकारीसे जिसमें ९०°/० शक्करका हिस्सा हो सिरका तैयार किया जासकता है।

जिस चीजसे सिरका बनाना हो उसे भली प्रकार कुचल लेना चाहिये (यदि फल कड़ा हो तो उसे पानीमें उबाल लेनेके बाद कुचलना चाहिये। फल या तरकारीको कुचलनेके बाद उसका रस निकाल कर छान लिया जावे। इस छने हुये अर्कको पीपोंमें भरदें परन्तु इस बातका ध्यान रहे कि चौथाई भाग ख़ाली रहे क्योंकि रस फफदनेसे उफनकर ऊपर आजाता है। अब प्रति ३६ गैलन रसमें यीस्टकी एक टिकिया थोड़ेसे अर्कमें घोलकर बाकी अर्कमें मिला देनी चाहिये। यीस्ट बाजारमें टिकियोंकी सूरतमें मिल सकता है। पर अधिक अच्छी फफदन 'द्रव-यीस्ट' (लिक्विड-यीस्ट) से होती है। इसे यीस्ट-घोल (कलचर यीस्ट) भी कहते हैं। यह शराब बनानेवालोंके यहां मिलती है।

अच्छी फफदके लिये ७५° से ९०° की गरमी होना ज़रूरी है, और इसके लिये दूसरी आवश्यकता हवा है क्योंकि हवा लगनेसे फफदन जल्दी होती है।

अर्क़को कभी-कभी अच्छी तरह लकड़ीसे हिला देना चाहिए। 'लाहन' को ख़ूब अच्छी तरह मिलाते और हवा देनेसे यीस्ट भी जल्दी काम करता है और अच्छी तरह सारे धानमें मिल जाता है। हवासे कर्बन द्विओषिद निकलता रहता है और ओषजन आता रहता है और इस प्रकार यीस्ट लाहनको शीघ्रतासे तैयार करती है।

फफदनेका सिद्धान्त

फफदनेकी प्रक्रिया ख़मीरों द्वारा होती है। ये दो प्रकारके होते हैं पहला मद्य ख़मीर है जिससे यीस्टकी सहायतासे चीनी मद्यमें परिवर्तित की जाती है और दूसरा सिरकाम्ल-ख़मीर कहलाता है।

मद्य ख़मीरकी प्रक्रिया दो भागोंमें होती है। पहली तीनसे छः रोज़के भीतर पूर्ण हो जाती है और दूसरी तीन सप्ताहमें पूरी होती है। इसके बाद अर्क़को छान लेना चाहिए और जितना अर्क़ है उसका एक चौथाई असली सिरका मिला देना चाहिए। मद्य-ख़मीर प्रक्रियाके बाद जब अर्क़को छानकर और 'असली सिरका' मिलाकर तैयार कर लिया जाता है तो उसे फिर उन्हीं पीपोंमें भर देना चाहिए, परन्तु इस बार पौन न भरके केवल आधा भरना चाहिए। ढक्कन लगाकर और उसपर पतलासा कपड़ा या जाली डालकर चार महीने तक पड़ा रहने देना चाहिए। इस अरसेमें सिरकाम्ल-ख़मीरकी प्रक्रिया पूरी हो जाती है और सिरका पूर्णतया तैयार हो जाता है। अब इस सिरकाको छानकर १४०°फ तक पास्च्यूरीकृत करके बोतलोंमें रख लिया जाय। इस प्रकारका तैयार किया हुआ सिरका बहुत तेज होता है और उसमें वाइल्ड यीस्ट नहीं पड़ते। अच्छे सिरकेमें कमसे कम ४ प्रति शत सिरकाम्ल होना आवश्यक ।
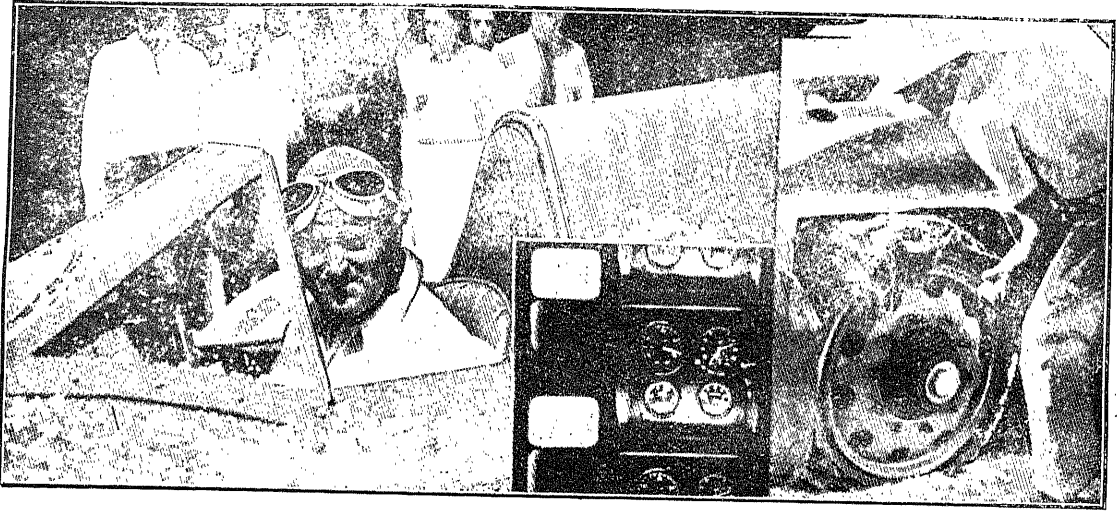
सर मैलकम कैंप्बेल
संसारका सबसे तेज मोटर चलानेवाला

मापक यंत्रोंका
सिनेमा चित्र

वह टायर जो दौड़के
बाद फट गया

सर मैलकम कैंप्बेलका कहना है कि

तेज़ीकी कोई हद नहीं है

[मूललेखक—सर मैलकम कैंप्बेल]

सवा साल हुए अमरीकामें बानविलके नमकके मैदान-पर मैंने अपनी मोटर ब्लूबर्ड दौड़ाई थी उस समय मैंने एक नए मीलको ३०१ मील प्रति घंटेसे भी अधिक वेगसे तय किया था। इसके पहले मनुष्यका वेग कभी भी भूमि पर ३०० मील प्रति घंटेतक नहीं पहुँच सका था।

ब्लूबर्डमें पैंतीस इंच व्यासके और ७ इंच मोटे टायर आगे लगे हैं और पीछे इससे जरा बड़े और मोटे टायर प्रत्येक ओर दो-दो लगे हैं। इनमें हवा खूब कस कर भरी जाती है, करीब सवासौ पौंड प्रति वर्ग इंचका दबाव उनमें रहता है। ब्रेक केवल पहियोंपर ही नहीं लगता, मोटरकी दुम उठ जाती हैं और तब हवाकी रुकावट के कारण भी मोटरका वेग शीघ्र कम हो जाता है।

रैडियेटरके सामने आजानेके लिए एक ढक्कन भी रहता है, जिसे जब मैं चाहता हूँ घुण्डी खींचकर खड़ा कर देता हूँ तो हवा रैडियेटरके भीतर न जाकर बाहर-ही-बाहर निकल जाती है। इस प्रकार हवाकी रुकावट कम हो जाती है और गाड़ीकी तेजी १५ मील प्रति घंटा बढ़ जाती है, परंतु २० सेकंडसे अधिक देर तक यह ढक्कन बंद नहीं रक्खा जा सकता क्योंकि ढक्कन बंद करतेही रैडियेटरका पानी खौलने लगता है।

मोटरमें प्रसिद्ध रोल्स-रॉयस इंजन लगा है जिसमें १२ शिलिंडर है और ढाई हज़ार घोड़ेकी शक्ति उत्पन्न होती है। जितना हवा और पेट्रोल इञ्जन स्वयं खींचता है उतनेही से संतोष नहीं किया जाता। इञ्जनमें पंप द्वारा हवा और पेट्रोल ठूँसा जाता है यहाँ तक कि सिलिंडरोंमें १७ पौंड प्रति वर्ग इंचका दबाव इस कारणसे हो जाता है। इंजनमें प्रत्येक मिनट दो गैलनसे अधिक पेट्रोल लगता है।

मेरे बैठनेके लिए जगह ठीक बीचमें नहीं बन सकी क्योंकि बीचमें इंजनसे पिछले पहिए तक जानेवाली संचालक धुरी आ पड़ती है। इसलिए मेरी सीट कुछ दाहिनी ओर है। मोटरमें हवाई जहाजोंकी तरह पूँछ भी है वह मेरी सीटके ठीक पीछे है।

परंतु जब मेरी गाड़ी १०० मील प्रति घंटेके वेगसे चलने लगती है तब मैं दूसरे गियरमें बदलता हूँ। प्रत्येक ड्राइवर जानता है कि साधारण गाड़ियोंमें ५ मील प्रति घंटेके वेग होते ही गियर बदल दिया जाता है, और जब गाड़ीका वेग लगभग २०० मील प्रति घंटा हो जाता है तब मैं अंतिम गियरमें आजाता हूँ। सिद्धांतानुसार मेरी गाड़ी ३३० मील प्रतिघंटे तक जा सकती है।

सबसे बड़ी कठिनाई हम लोगोंको टायरोंके कारण पड़ी है। हवासे बहुत रुकावट न पैदा हो, इस ख़्यालसे मैंने छोटे पहियोंका इस्तेमाल किया परंतु इन पहियोंपर आवश्यकतासे कहीं अधिक बोझ पड़ रहा था। इसमें शक नहीं कि इसी कारण अगले पहियोंमेंसे एक फट गया। ख़ैरियत यह हुई कि मैं नपे हुए मीलको पार कर चुका था। प्रत्येक मिनटमें पहिए लगभग ३००० चक्कर लगाते हैं। इस भयानक वेगसे रगड़ खाने और बार-बार लचनेके कारण उनमें बड़ी गरमी पैदा होती है। जब मैं पूरे वेगसे जा रहा था तब मैंने एक विचित्र बात देखी जो पहिले कभी नहीं हुई थी। अत्यंत वेगसे नाचनेके कारण टायरका बाहरी भाग बाहरकी ओर मानों छटका जा रहा था और टायर गोल रहनेके बदले नुकीला हो गया था। अवश्य ही नीचे पहुँचनेपर टायरका प्रत्येक भाग चिपटा हो जाता था और ऊपर पहुँचते पहुँचते नुकीला। इसके कारण और भी अधिक गरमी पैदा हो रही थी।

उस नमकके मैदानमें इस वेगसे गाड़ी चलानेपर कुछ विचित्र भाव उत्पन्न हो रहे थे। चारों ओर श्वेत और अत्यंत चमकीला अपार नमकका समुद्र दिखलाई पड़ रहा था। पच्छिमकी ओर दूरपर ऊँचे पहाड़ थे। पूरबकी ओर जहाँतक निगाह जाती थी, तहाँतक सफ़ेद मैदान ही मैदान दिखलाई पड़ता था। सामने, उत्तरकी ओर बीस-पचीस मीलपर १००० फ़ुट ऊँचे दो-चार विचित्र आकारके टीले दिखलाई पड़ते थे जो जब तक झील नहीं सूखी थी, टापू रहे होंगे।

ऐसा जान पड़ता था कि मैं क्षितिजपर क्षण भरमें पहुँच जाऊँगा और तब—जैसा पुराने नाविक समझा करते थे पृथ्वीके छोरसे लुढ़ककर अनंत शून्यमें जा गिरूँगा वहाँ भूमि क्या थी, निरा नमकका फ़र्श था, जो ऐसा कड़ा था जैसे पत्थर। ऊपर दरेसी कर दी गई थी। इस प्रकार सड़क इतनी चिकनी बनी थी जितनी मैंने कहीं और नहीं देखी।

इस बातका पक्का लेखा रखनेके लिये कि किस क्षण क्या वेग था, इंजन किस वेगसे घूम रहा था तेलके दाब आदि क्या थे, गाड़ीकी दाहिनी ओर इन यंत्रोंका एक समूह और था। ये एक बक्समें बिल्कुल बंद थे और इनपर बिजलीकी रोशनी सिनेमा-कैमेराके पीछेसे पड़ रही थी। सिनेमाका कैमेरा बराबर चलता रहता था, जिससे सब यंत्रोंका चित्र फ़िल्मपर बराबर उतरता जाता था। मुझे इससे बड़ी खुशी हुई कि इस यंत्रके चित्र पूर्णतया दोषरहित उतरे और जो-जो बातें मैं जानना चाहता था सबका पता चल गया।

जितनी तेज़ीतक मैं पहुँच सका हूँ, उससे अधिक तेज़ीतक कोई न कोई भविष्यमें अवश्यही पहुँचेगा। हज़ारों बार मुझसे पूछा गया है कि तेज़ीकी क्या हद है। मैं तो कोई हद नहीं देखता। जैसे-जैसे समय बीतेगा तैसे-तैसे टायर और इंजन संबंधी नये-नये आविष्कार होते जायँगे और मोटरोंकी तेज़ी, मज़बूती और विश्वास-नीयता बढ़ती जायगी।

सर मैलकम कैंम्बेल

बीचमें सिनेमा कैमेरेसे लिया गया यंत्रोंका चित्र है। दाहिनी ओर वह टायर दिखलाया गया है जो दौड़के बाद ही फट गया था।

पीतलके बर्तनोंको कैसे साफ़ करें ?

पीतलके बर्तनोंकी यदि चमक मिट गई हो तो निम्न मिश्रणसे मलकर साफ़ करें। मिट्टीका तैल ४ तोला, अलकोहल २ तोला, नौसादर २ तोला, चूना २ तोला।

भिन्न-भिन्न प्रकारके तैल

[ले० डा० सत्यप्रकाश, डी० एस-सी०]

आजकल ही नहीं, अति प्राचीन कालसे सभी देशोंमें तैलोंका व्यवहार किया जाता रहा है।

तैलोंका प्रयोग अधिकतर चार कामोंके लिये किया जाता है, (१) खानेके लिये, (२) शरीरमें मलनेके लिये, (३) जलानेके लिये, (४) वस्तुओंकी रक्षाके लिये। इनके अतिरिक्त, औषधिके रूपमें भी तैलोंका व्यवहार किया जाता है। वैज्ञानिक भाषामें गाय या भैंसके दूधसे प्राप्त घीको भी हम तैल ही कहेंगे। वनस्पतियोंसे निकाले गये तैल हमारे यहाँ मुख्यत: ये हैं:—सरसोंका, तिलका, अंडीका, नीमका, नारियलका, मूंगफलीका, बादामका, महुए और बिनौलेका तैल। इनमेंसे नीम और अंडीके तैलोंको छोड़कर शेष सभी तैल खानेके काममें आते हैं।

खानेमें तैलका व्यवहार

संयुक्त प्रांत, पंजाब और विहारमें अमीर घरोंमें घीका अधिक उपयोग खानेके लिये किया जाता है। ग़रीब घरोंमें ससरोंका तैल काममें लाते हैं। वड़े, कौंचड़ी या पकौड़ी सभी घरोंमें तैलमें बनाई जाती हैं, करेलेके समान तरकारियाँ और सरसोंके समान कुछ भूंजियां भी भले घरोंमें तैलमें बना ली जाती हैं। इस प्रान्तमें मुसलमानों, या मांसाहारी घरोंमें तैलका सामान्यतया व्यवहार किया जाता है। बंगालमें अच्छे भले सभी घरोंमें घीकी अपेक्षा कड़वे तैलका ही अधिक व्यवहार करते हैं। दक्षिणमें मीठा तैल अर्थात् तिलका तैल और नारियलका तैल काममें अधिक आता है।

जलानेके योग्य तैल

मिट्टीका तैल जलानेकी चलन हमारे देशमें न थी, क्योंकि मिट्टीका तैल इस देशमें बहुत ही कम होता है। हाँ, ब्रह्म-देश तो मिट्टीके तैलकी जगत्-प्रसिद्ध खान है। जब बिजलीके बल्ब या गैसके हंडे न थे, चिराग़ों या मशालोंसे काम लिया जाता था और इनमें सरसोंका तैल अंडीका तैल और नीमका तैल व्यवहारमें लाते थे। शहरोंमें लालटेनोंकी सुविधाके कारण मिट्टीका तैल जलाया जाता है, पर गाँवोंमें अब भी बहुत कुछ वनस्पतिक तैलोंका व्यवहार होता है। लेखकने अपने बचपनमें पढ़ने लिखनेके काममें अंडी, सरसों और नीमके तैलोंका व्यवहार किया है पर अब बिजलीके प्रकाशसे अभ्यस्त हो जानेके कारण उक्त तैलोंका प्रकाश बहुत मन्दा जान पड़ता है। सरसों और नीमका तैल जलाना बड़ा लाभकर बताया जाता है, इसके वायुमंडलमें पड़नेसे स्वभावत: काजल लगानेका लाभ मिल जाता है। बहुतसे सुनार अति बारीक़ काम करते समय इन्हीं तैलोंके दियेका उपयोग आजतक प्रयाग ऐसे नगरोंमें भी करते आ रहे हैं।

शरीरमें तैल लगाना

अंग-मर्दनकी प्रथा जितनी भारतवर्षमें है, उतनी और देशोंमें नहीं। विलायतमें बच्चोंके अधिकतर जैतूनका तैल शरीरमें मला जाता है, पर हमारे देशमें कड़वा तैल या नारियलका तैल लगाना अधिक अच्छा समझा जाता है। कारण यह कि ये तैल यहाँ बहुत सुलभ हैं। कुश्ती करने और नहानेसे पूर्व कड़वा तैल लगाना, भी शरीरके लिये बड़ा हितकर माना जाता है। तैल लगानेसे शरीरकी त्वचा सुरक्षित रहती है, और कमसे कम जाड़ेमें तो यह सूखने या फटनेसे बची रहती है। तैल लगानेके स्थानमें सरसोंका उबटन भी इसी विचारसे उपयोगी माना जाता है।

आजकाल तो शिरमें लगानेके लिये अनेक प्रकारके सुगन्धित तैल बाज़ारमें पाये जाते हैं। चालमोगराका तैल गंजेपनेको कुछ दूर करता है। यह कोढ़के लिये भी उपयोगी माना जाता है। शिरमें तैल इमलशनके (पायसके) रूपमें भी व्यवहृत होते हैं। इनमें अधिकतर पानी होता है, और कुछ अंश घुले हुए चूनेका। नमी स्थायी रखनेके लिये ग्लैसरीन भी थोड़ी सी डाल दी जाती है। शिरपर लगा हुआ पानी तो सूखकर उड़ जाता है, पर ग्लैसरीन वायुमेंसे नमी सोखकर बालोंको नम और मुलायम रखती है।

तैलोंसे रक्षा

तैलोंका व्यवहार अचारोंमें भी किया जाता है, पर अधिकतर सरसोंके तैलका ही। मालूम नहीं, अन्य कुछ तैलोंका व्यवहार क्यों नहीं किया जाता। नारियल या मूंगफलीका तैल कदाचित् जल्दी जम जाता है इस लिये उपयोगी न हो। मीठे तैल (तिलके) में अवश्य किसी-किसी घरमें अचार डाले जाते हैं। जिनके यहाँ भोजनमें बिनौले या महुएके तैलका व्यवहार किया जाता है, उन्हें इसके संबंधमें कुछ प्रयोग करने चाहिये। तैलोंकी विद्यमानता सेअचार सड़नेसे बचे रहते हैं। प्राचीन समयमें शव भी तैलमें डुबो कर रखे जाते थे।

पेंटके योग्य तैल

जबसे व्यापार आधुनिक पद्धतिपर बढ़ने लगा है तैलोंका महत्व कुछ अधिक होगया है, कमसे कम दो कामोंमें अवश्य। एक तो साबुनके कारखानेमें, और दूसरा पेण्टों (रंग-वार्निश) के व्यवसायमें। विदेशी साबुनोंमें पशुओंकी चर्बीका अधिक उपयोग किया जाता है। संभवतः सभी साबुन पशुओंकी चर्बीसे बनाये जाते हैं, अतः अहिंसक प्रवृत्तिवाले भारतीयोंको इनके सम्बन्धमें समुचित सावधानी रखनी चाहिये। भारतमें वनस्पतिक तैलोंका व्यवहार साबुन बनानेमें अधिक होने लगा है, जैसे नारियल, अलसी, तिल, महुए या मूंगफलीके तैलका बिनौलेका तैल भी इस काममें लाया जा सकता है। पर हमारे यहां भी पशुओंकी चर्बी बहुधा सस्तीके कारण मिला दी जाती है। कपड़े धोनेके जो साबुन बाज़ारमें आते हैं, विशेषतः बंगालके बने या बंगाली कारख़ानोंके, उनमें पशुओंकी चर्बी बेधड़क मिला दी जाती है।

पेण्टोंके कामका तो अलसीका तैल है। इस काममें ऐसे तैल व्यवहारमें लाये जाते हैं, जो धूप और वायुके प्रभावसे शीघ्र सूख सकें। अलसीका तैल वायुका ओषजन ग्रहण करके आसानीसे ठोस पदार्थमें परिणत हो जाता है, और इसी लिये इसका व्यवहार बहुत किया जाता है।

नाम-मात्रके तैल

तैल शब्द दो प्रकारके पदार्थोंके लिये और व्यवहारमें आता है जो रासायनिक-दृष्टिसे वस्तुतः तैल नहीं हैं। एक तो मिट्टीका तैल, पेट्रोल, या केरोसीन तैल। यह खानसे निकला हुआ द्रव है जो मुख्यतः उद-कर्बनोंका मिश्रण है (इसमें कर्बन और उदजन होते हैं, और ओषजन नहीं)। यह केवल इसी लिये तैल कहलाता है क्योंकि यह द्रव है और अन्य तैलोंके समान जलानेके काम आता है। दूसरे पदार्थ जो भूलसे तैल कहेजाते हैं, वे हैंन्ध- जोसुग के काममें इत्रोंके समान व्यवहृत होते हैं. जैसे केवड़ेका तैल, अजवाइनका तैल, नारंगीका तैल, नीबूका तैल आदि। इन पदार्थोंको भी तैल इसलिये कहा है, कि ये द्रव हैं और कुछमें तैलोंके समान थोड़ासा गाढ़ापन भी होता है। अन्य तैलोंमें और इनमें बड़ा भारी भेद तो यह है कि असली तैल उड़नशील नहीं हैं, पर ये तैल बहुत ही शीघ्र उड़ जाने वाले हैं।

तैलोंका वर्गी करण

रसायनज्ञ लोग कुछ विशेष पदार्थोंको ही तैल कहते हैं। यह आवश्यक नहीं है कि सभी तैल द्रव हों। नारियल-का तैल जाड़ेमें जम जाता है। नीमका तैल भी जम जाता है, पर ठोस हो जानेपरभी ये सब पदार्थ तैल ही कहलाते हैं तैलोंके छोटे-छोटे चार विभाग किये जा सकते हैं। (१) ठोस वनस्पतिक तैल (२) द्रव वनस्पतिक तैल, (३) ठोस प्राणि-तैल (४) द्रव प्राणि तैल। नामसे ही इनके भाव स्पष्ट हैं। वस्तुतः तैलोंके दोही मुख्य विभाग हैं, एक तो वे तैल जो बनस्पतियोंसे प्राप्त होते हैं और दूसरे वे जो पशुओंसे। पशुओंमें जलचर और थलचर दोनों ही सम्मिलित हैं। पशुओंसे प्राप्त तैल भी दो प्रकारके हैं। एक तो वे जो दूधमेंसे निकाले जाते हैं, और जिन्हें साधारण भाषामें घी कहते हैं, और दूसरे वे जो पशुओंके अंगोंकी चर्बीमेंसे निकाले जाते हैं। घीकी प्राप्ति अहिंसा-त्मक साधनों द्वारा की जाती है पर अन्य चर्बियोंकी प्राप्ति पशुओंको मार कर ही की जाती है। यदि पशु स्वतः मरा हो तो उसके अंगकी चर्बी प्राप्त करनेमें किसी-को कोई आक्षेप न होगा। पर अधिकांशतः बरबस मारे गये पशुओंसे ही चर्बी निकाली जाती है और इन दोनों प्रकारकी चर्बियोंकी पहचान करना कठिन है, अतः भारतवर्षमें केवल घीके रूपमें ही चर्बीका व्यवहार किया जाता है। विदेशोंमें चर्बियोंका खानेके काममें भी वैसे ही

व्यवहार किया जाता है जैसे यहाँ तैल या घीका यद्यपि उन देशोंमें घी या तैलमें पूरी-कचौड़ी या मिठाईके समान तलनेकी कोई अधिक प्रथा नहीं है। उनके यहाँ स्वादके लिये अंडा ही बड़ी प्रिय वस्तु मानी जाती है।

तैलोंका रासायनिक रूप

हम अभी ऊपर यह कह आये हैं कि सभी द्रव पदार्थ तैल नहीं कहलाते हैं। मिट्टीका तैल या इत्र रासायनिक दृष्टिसे तैल नहीं हैं। असली तैल वह है जो दाहक सोडाके साथ प्रभावित होनेपर दो पदार्थ दे। एक तो साबुन, और दूसरे ग्लैसरीन। बस, तैलोंकी परिभाषाके लिये इतना ही समुचित है। साबुन जितने हैं, सब चर्बीमें स्थित अम्लके सोडा-लवण हैं हम कह सकते हैं कि तैल चर्बिकाम्ल और ग्लैसरीन के संयोगका नाम है। साबुनोंको नमक-या गन्धकके तेज़ाबसे प्रभावित करके उनके चर्बिकाम्ल पृथक् किये जा सकते हैं। ये सब अम्ल द्रव नहीं होते हैं। बहुतसे तो ठोस हैं, और इनमें खट्टापन भी नाम मात्रको ही होता है। पानीमें ये घुलते भी कम ही हैं। साबुनके जितने कारख़ाने हैं, वहाँ तैलको सोडाके संसर्गमें लाया जाता है, और साबुन पृथक् कर लेनेपर जो घोल बच रहता है उसमें ग्लैसरीन रहती है। इस घोलमेंसे ग्लैसरीन शुद्ध रूपमें पृथक् करनेकी विधि कुछ क्लिष्ट है और उसे निकालनेके लिये शून्य-दबावमें उबालनेवाले यंत्रोंकी आवश्यकता होती है जिनका हमारे देशमें अभाव है। इसीलिये यहाँ अधिकांश साबुनके कारख़ानोंमें ग्लैसरीन बरबाद हो जाती है और उसको पृथक् करलेनेसे जो लाभ होसकता वह नहीं हो पाता।

वनस्पतियोंसे तैल निकालनेकी विधि

वनस्पतिक तैल अधिकतर बीजोंमेंसे निकला करता है; सरसों और तिलका तैल अन्नके दानोंमेंसे; अंडीका तैल अंडीके बीजोंसे, नीमका तैल निमोरियोंसे, बिनौलेका बिनौलेके दानोंसे, मूंगफलीका फलीके अन्दरके बीजसे और नारियलका तैल नारियलके फलसे। कच्चे बीजों या फलोंमें तैल बहुत कम होता है, पर जैसे-जैसे ये सूखते जाते हैं, और पानीकी मात्रा कम होती जाती है, तैलकी मात्रा अधिक होती जाती है।

इन पदार्थोंसे तैल निकालनेके लिये हमारे देशमें कोल्हूका व्यवहार अति प्राचीन कालसे होता आरहा है। नारियलके छोटे-छोटे टुकड़े कर लिये जाते हैं, मूँगफलीके बीजोंके भी यथावश्यक आधे-चौथाई टुकड़े किये जासकते हैं। तिलया सरसों तो योंही कोल्हूमें पेरे जाते हैं। कोल्हूको चलानेके लिये बैलोंका बहुधा उपयोग करते हैं, जिनकी आँखोंपर पट्टी बाँध दी जाती है, और ये दिनभर एकही स्थानपर चक्कर लगाया करते हैं। इस विधिमें दबावके कारण तैल निचुड़ पड़ता है और बूँद-बूँद टपक कर घड़ों तैल इकट्ठा होजाता है। तैल निकल जानेपर जो अंश शेष रह जाता है उसे खली कहते हैं। भारतीय विधिसे पेरनेपर खलीमें तैलकी बहुत सी मात्रा बच रहती है और बहुधा यह अंश एक चौथाईसे लेकर एक तिहाई तक होता है। इस खलीका उपयोग पशुओंको खिलानेमें अधिकतर किया जाता है। नीमकी खलीका उपयोग खेतोंमें भी करते हैं। खलीको पानीमें कुछ दिन घोलकर सड़ने दिया जाता है और फिर पौधोंके थांवलोंमें डाल देते हैं। ऐसा करनेसे वृक्ष दीमक आदिके हानिकारक प्रभावसे बचा रहता है। खलियोंका उपयोग खादमें भी बुरा नहीं है।

विदेशोंमें यह प्रयत्न सदा किया जाता है कि खलीमेंसे सभी तैल निकाल लिया जाय। वहां, वनस्पतिक पदार्थके जिसमेंसे तैल निकालना हो, छोटे-छोटे टुकड़े कर लिये जाते हैं, और फिर इसे कैनवसके थैलोंमें भर लिया जाता है, इसके बाद इनके ऊपर मशीनसे हाइड्रोलिक दबाव डालते हैं। पहली बार दबाव साधारण ठंडे तापक्रमपर डाला जाता है। ऐसा करनेसे अति स्वच्छ तैल मिलता है। दूसरी बार दबी हुई लुगदीको (खलीको) गरम करते हैं और फिर दबावमें रखते हैं। गरम तापक्रमपर दबाव डालनेसे बहुत अधिक तैल निकल आता है, यद्यपि यह पहलेकी अपेक्षा कहीं कम स्वच्छ होता है। इन ठंडी और गरम दो प्रक्रियाओंके बाद भी जो तैल बच रहा, और यदि वह मूल्यवान हुआ तो, उसे बैञ्ज़ाइन, नफथा आदि घोलकोंके संसर्गमें बन्द बर्तनोंमें रखते हैं। इन घोलकोंमें खलीका तैल-रूप निष्कर्ष खिंच आता है, और फिर घोलकोंको उड़ाकर तैल प्राप्त

कर लेते हैं। पर इस अन्तिम प्रक्रियामें ख़र्च अधिक बैठता है, और आग लग जानेका भी भय रहता है, अतः साधारण तैलोंके लिये इसका अधिक व्यवहार नहीं किया जाता है। पर इस विधिसे तैल पूराही निकल आता है। पूरा तैल निकाल लेनेसे एक और हानि होती है। वह यह कि अब बची हुई खली पशुओंको खिलाने योग्य नहीं रह जाती, और बिना कुछ मिलाये हुये यह बेकाम ही रह जाती है।

हमारे देशमें तैल बिना गरम कियेही निकालनेकी प्रथा है। यदि कोई विधि तापक्रम बढ़ानेकी भी हो तो कोल्हुओंकी सहायतासे भी अधिक तैल निकाला जा सकता है। कोल्हू हमारे घरेलू कारख़ानोंमें उतनी ही महत्वकी चीज़ हैं जितना कि चरखा, या चक्की। इससे ग़रीबोंका बड़ा काम निकलता है। पर खेदकी बात है, कि कुछ बड़े-बड़े कारख़ानोंके खुल जानेके कारण जहाँ मशीनोंसे काम लिया जाता है, हमारा यह घरेलू व्यवसाय भी नष्ट होरहा है। एक ओर तो तैलकी मांग दिन व दिन कम होती जारही है, क्योंकि जलानेके लिये तैलका व्यवहार अब बहुत कम होरहा है, और दूसरे मशीनों द्वारा निकाले जानेसे तैल बहुत मात्रामें शीघ्र तैयार कर लिया जाता है। साबुनके व्यवसायके लिये अवश्य कुछ तैलोंकी मांग बढ़ रही है, पर कोल्हू द्वारा पेरा गया तैल इतना सस्ता नहीं पड़ता है, कि विलायती सस्ते साबुनोंकी बराबरी इन तैलोंसे बने हुये साबुन कर सकें।

तैलोंको स्वच्छ करना

तैलोंमें कई प्रकारकी अशुद्धियां विद्यमान रहती हैं। कुछ तैलोंमें, जैसे बिनौलेके तैल, या कभी-कभी सरसोंके तैल में भी, थोड़ासा मज्जिक-अम्ल मुक्त अवस्थामें रहता है। ताँबे या पीतलके बर्तन इस अम्लताके कारण शीघ्र हरे या नीले पड़ जाते हैं। अम्लके होनेकी यह आसान पहचान है। इन अम्लोंको दूर करनेके लिये थोड़ा सा दाहक सोडाका घोल मिलाकर अच्छी प्रकार टारना चाहिये। ऐसा करनेसे सोडाके साथ अम्लका साबुन बन जायगा। तैलमेंसे पृथक् होते समय यह तैलकी कुछ और अशुद्धियोंको भी सोख लेगा। इस साबुनको निथार कर पृथक् कर लेना चाहिये। ऐसा करनेसे पूर्वकी अपेक्षा अब अधिक स्वच्छ हलके रंगका तैल मिल जायगा।

तैलकी दूसरी अशुद्धि रंग है। सभी यह चाहते हैं कि तैल पानीकी तरह जितना साफ़ हो, उतना अच्छा है। तैलकी सफ़ाई ऐसे रासायनिक द्रव्यसे होनी चाहिये, जो तैलको खाने योग्य बनाये रक्खे। रंग उड़ानेवाले हानिकारक पदार्थोंका उपयोग कभी न करना चाहिये। तैलका स्वाद भी इन द्रव्योंसे विकृत न होना चाहिये। निम्न विधियाँ इस काममें लाई जा सकती हैं, (१) फ़ुलर-की मिट्टी, या सोडा-सिलीकेट तैलमें डालना चाहिये। ये पदार्थ तैलके रंगका शोषण कर लेते हैं। जब ये पदार्थ तलैटीमें बैठ जायं तो ऊपरसे स्वच्छ तैलको निथार लेना चाहिये। (२) जहां इस विधिसे काम न चले वहाँ खटिक हरिद (चूनेका हरिद, कैलशम् क्लोराइड) और नमकके तेज़ाबके मिश्रणका उपयोग करना चाहिये। यह पदार्थ चूनेको नमकके तेज़ाबमें घोलकर बनाया जा सकता है। इसके साथ प्रक्रिया करके तैलको पानीके साथ भली प्रकार धोना चाहिये। (३) फ़ुलरकी मिट्टीके स्थानमें बारीक़ पिसा हुआ लकड़ी या हड्डीका कोयला भी लाल रंगको सोखनेके लिये काममें लाया जाता है। कभी-कभी तैलके रंगको निखारनेके लिये पर्ण-हरिन् या क्लोरोफिल (पत्तोंका हरा रंग) भी काममें लाया जाता है।

तैलोंकी तीसरी अशुद्धि बुरी गन्ध है। गन्ध दूर करने-का बहुधा प्रयत्न किया जाता है। विदेशोंमें यह प्रक्रिया अति-तप्त भापके प्रभावसे क्षीण दबावपर की जाती है, और इसके लिये यंत्रभी बनाये गये हैं। इस विधिको हम थोड़ीसी मात्रामें इस प्रकार भी कर सकते हैं कि पानी और तैलके, मिश्रणको गरम करके उबालें। ऐसा करनेसे पानीकी भाप बनेगी और यह उड़ते समय अपने साथ तैलकी दुर्गंधको भी उड़ा ले जायगी।

पशुओंसे प्राप्त तैल

पशुओंसे प्राप्त तैलोंमें घी या मक्खन सबसे अधिक प्रसिद्ध पदार्थ है और इसको निकालनेकी विधि भी सब जानते हैं। हमारे देशमें कच्चे दूधसे मक्खन निकालनेकी

प्रथा नहीं है, पर अब आधुनिक पद्धतिकी डेयरियोंमें इसकी भी चलन हो चली है। अधिकतर दूधका दही बनाते हैं, और फिर पानी मिलाकर इसका मट्ठा बनाते हैं, और फिर मथानी या रईसे मथकर मक्खन अलगकर लिया जाता है। मक्खनको आँचपर ता करके घी पृथक् कर लेते हैं।

जबसे इस देशका विदेशोंसे सम्पर्क हुआ है तबसे अनेक प्रकार के अन्य प्राणि तैलोंका आगमन इस देशमें होने लगा है, पर यह अब भी अधिक नहीं हैं। कभी कभी घीमेंभी इनकी मिलावट सुनी जाती है, पर ऐसा कम होता है। इनका व्यवहार अधिकतर साबुन बनानेमें किया जाता है. और कुछ दवाओंमें भी। इनके तैयार करनेकी प्रक्रिया बड़ी भयानक है और सार्वजनिक जानकारीके लिये सूक्ष्मतः यहाँ दी जावेगी।

पहलेतो खुले बर्तनमें ही पशुकी चर्बीको पानीके साथ खूब उबालते थे। ऐसा करनेसे तैल अलग होजाता था, पर अब बन्द देग़चोंमें चर्बीको शुष्क भापके साथ गरम किया जाता है। किसी-किसी विधिमें पानीके साथ अधिक दबावमें गरम करके चर्बीसे तैल निकाला जाता है। ऐसा करनेके उपरान्त तैल और पानी छान लिया जाता है और छानकर ठोस पदार्थ अलग कर दिये जाते हैं। छना हुआ द्रव थोड़ी देर रख. छोड़ा जाता है, और ऐसा करनेसे तैल ऊपर उतराने लगता है और पानी नीचेकी तहमें रह जाता है। तैलकी तहको फिर संभालकर अलग कर लेते हैं। इस विधिसे अच्छा स्वच्छ तैल प्राप्त हो जाता है। यदि इसे खाने योग्य बनाना हो तो फुलर-मिट्टी या हड्डीके कोयलेसे साफ़ कर लेते हैं।

पशु-तैलोंके दो विभाग हैं। जलीय पशुके तैल और थलीय पशुके तैल।

जलीय पशुओंमें मछलियाँ प्रधान हैं। इनके तैल उस श्रेणीके होते हैं जिस श्रेणीके पेंटोंमें व्यवहृत जल्दी सूखनेवाले अलसी आदिके तैल।

मछलीका तैल—मछलीके भिन्न-भिन्न अंगोंमे तैल निकाला जाता है। सबसे पहले मछलियाँ पकाई जाती हैं। मकानकी दूसरी मंज़िलपर लकड़ी या सीमेंटकी खुली हुई टंकियां बनाई जाती हैं। इन टंकियोंकी पेंदीमें छेद होते हैं जिनमें भापकी नलिकायें लगी होती हैं। लगातार कई टंकियां पास-पास होती हैं, और हर एकमें २० हज़ार तक मछलियां भर दी जाती हैं। एक-एक बारमें सब टंकियोंमें ३ लाख मछलियां तक काम लाते हैं। कारख़ानोंमें इतनी मछलियोंके ढोनेके लिये टंकियोंके बगल-बगल ट्राम-गाड़ियोंकी व्यवस्था रहती है। इनके ढेरोंमें कुछ पानी डाल दिया जाता है और फिर नल खोलकर गरम भापकी बौछारें उसपर छोड़ी जाती हैं। २० मिनटके लगभग समयमें ही ये मछलियां पक जाती हैं। मछलियोंका पकाना इसलिए आवश्यक है कि इस प्रक्रियाँ में शरीरके तैल-कोष्ठ छिन्न-भिन्न हो जाते हैं, और अब तैल निचोड़नेमें आसानी पड़ती है।

जब मछलियाँ पक गईं तो मछलियोंकी लुगदी झन्नीदार फावड़ोंसे दबानेवाली मशीनोंमें डाली जाती है। फावड़े झन्नीदार इसलिये होते हैं कि लुगदीका पानी छेदोंमें से चूकर नीचे निकल जाय। दबाव वाली मशीनोंसे तैल निचोड़ लिया जाता है और लुगदी फेंक दी जाती है। पकाने और तैल निकालनेकी जिस विधिका वर्णन यहाँ किया गया है, वह पुरानी विधि है। नयी विधिके कारख़ानोंमें पकाना और तैल निकालना एक ही प्रक्रियामें हो जाता है। लोहेके ४० फुट लंबे और २ फुट व्यासके बेलनोंसे काम लिया जाता है। पेंचदार यंत्रसे मछलियाँ लाई जाती हैं, और यहाँ बेलनके पास ही भापकी नलियोंसे भाप निकलती रहती है। भाप मे पककर और बेलनसे दबकर तैल शीघ्र निकल आता है।

अन्य पशुओंका तैल—भेड़ या घोड़ेके पैरसे तैल निकाला जाता है। पैरके टुकड़ोंको पानीके साथ उबालते हैं, और ऐसा करनेसे तैल पृथक् हो जाता है और इसे साफ़कर लिया जाता है। मुर्गीके अण्डोंकी ज़र्दीसे भी तैल निकाला जाता है। पशुओंके अन्य अंगोंकी चर्बीसे भी तैल निकालते हैं।

हीरेसे भी अधिक मूल्यवान धातुयें

जिसके पास हीरा है वह अपनेको बड़ा धनी समझता है। तांबा, चाँदी और सोना ये तीनों धातु हीरेके सामने कुछ भी नहीं। कोहनूर हीरा तो संसार भरमें प्रसिद्ध था। जो चीज़ जितनी ही कम पायी जाती है उसका मूल्य उतना ही अधिक होता है। जबसे बिजलीका प्रचार हुआ है, दुनिया बदल गई है। अब तो अनेक मूल्यवान् दुष्प्राप्य धातुयें प्राप्त होने लगी हैं, रसायनज्ञोंको जितनी धातुओंका आज पता है, उतनी पहले कोई नहीं जानता था। इन्होंने नमकमें धातु निकाल ली, चूनेमेंसे धातु निकाली, राखमेंसे धातु निकाली और मिट्टीमेंसे तो न जाने कितनी धातुयें निकल आईं। नई-नई अमूल्य धातुओंके आविष्कारसे चीज़ें भी नई-नई बनने लगीं। अल्यूमीनियमके बर्तनोंका आजकल घर-घर प्रचार है, और इस धातुका एक अच्छा वर्तन दो-चार आनेमें आजकल मिल सकता है। एक समय जब इसका आविष्कार हुआ ही था, यह १०० या २०० रुपये सेर तकके भावसे बिकता था, इससे पहले तो और भी अधिक तेज़, सोनासे भी अधिक इसका मूल्य था।

बहुतसी धातुयें जो बहुत कम मात्रामें पायी जाती हैं 'दुष्प्राप्य' कहलाती हैं रसायनज्ञ पन्द्रह बीस धातुओंको बहुत ही दुष्प्राप्य मानते हैं। उनमें से कुछ तो अब भी दुष्प्राप्य हैं और कुछ को दुष्प्राप्य नाम इसलिये दे दिया गया है कि जिस समय इनका आविष्कार हुआ, ये बहुत थोड़ी मात्रामें बड़ी कठिनतासे निकाली गई थीं। इनके नाम भी विचित्र हैं जैसे लीनम् (लैन्थेनम्) पलाशलीनम् (प्रेसोडीमियम्), एरबम् आदि।

जिस समय इन धातुओंका आविष्कार हुआ था, उस समय तो इनका मूल्य हमारे बहुमूल्य रत्नोंसे भी अधिक था। सन् १९२५ में श्रीमान् नोडक और कुमारी टेकेने, जो आजकल नोडक महोदयकी पत्नी हैं, और श्रीमती नोडक कहलाती हैं, दो तत्त्वोंकी खोजकी, मैसूरम् और रैनम्। ये तत्त्व बहुत ही कम मात्रामें पाये गये। मैसूरम् तो अब भी अधिक मात्रामें नहीं मिलता है, पर रैनम्के सम्बन्धमें बहुत प्रयोग किये जा चुके हैं और इसकी समुचित मात्रा तैयार की गई है। यह मांगनीजसे मिलती-जुलती धातु है। इस साल पूर्व एक ग्राम रैनम्का दाम दस हज़ार डालर था। दस हिसाबसे एक तोलेका दाम हुआ साढ़े तीन लाख रुपया। भला इतना दाम तो किसी हीरेका भी न होगा। आजकल तो इसका दाम बहुत कुछ गिर गया है फिर भी यह १००० रुपये तोला मिलता है। इसके आगे २५-३० रुपया तोला मिलनेवाला सोना तो कोई चीज़ नहीं है।

रैनम् धातुका इतना दाम क्यों है। बात यह है कि इसका एक भाग १,०००,००० ०००, ००० भाग मिट्टीमें से निकाला जाता है।

एक समय था, जब वुल्फ्राम धातु जो आजकल बिजलीके बल्बोंमें काममें आती है और प्रति दिन सैकड़ों मन खपती है, सोनेसे अधिक तेज़ थी। धातु स्वयं तो इतनी तेज़ नहीं है पर इसके तार या पत्र बनाना और दूसरी धातुओंके साथ संयुक्त करके इससे धातु संकर तैयार करना तो और भी अधिक कठिन है। कुछ धातु इतने कोमल और विचित्र होते हैं कि इनसे तो धातुओंका काम ही नहीं लिया जासकता। आजकलकी धातुओंमें सबसे भारी पिनाकम (यूरेनियम्) है। चूर्णके रूपमें हवामें रखा हुआ यह बहुत शीघ्र भभक उठता है, अतः इसकी टिकिया भी बनाना बड़ा दुस्तर कार्य है और तार खींचना तो और भी कठिन।

आजकल रसायनज्ञ रश्मि-शक्तिक और वैद्युत् विधियोंसे बहुतसी धातुएँ तैयार कर रहे हैं, पर हज़ारों रुपया व्यय करके घोर परिश्रमके उपरान्त, वे केवल इतनी ही सूक्ष्म मात्रामें तैयार की जा सकती हैं कि सूक्ष्म दर्शक यंत्रोंमें केवल उनके कुछ रेखा-चित्र ही मिल पाते हैं। बहुतोंका तो जीवन काल भी कुछ क्षणका ही है।

—पोपुलर मेकेनिक्सके आधारपर।

सूई कैसे बनती है ?

अच्छी बनी सूईकी नोक कैसी तेज़ होती है और किस सफाईसे इस की मोटाई धीरे-धीरे घटाकर नोक निकाली

नोक बनानेवाली मशीन

जाती है ! इसके छेदकी जांच कीजिए। छेदके दोनों पार्श्व कितने पतले होते हैं। छेदका भीतरी भाग भी कितना चिकना बना रहता है जिसमें तागा कट न जाय; और इसी ख्यालसे छेदकी दीवारोंकी कोर मार दी जाती है। फिर सूइयों पर पालिशभी कैसा अच्छा किया रहता है। सब बातोंपर विचार करते हुए स्वीकार करना पड़ता है कि सूई वस्तुतः आश्चर्यजनक वस्तु है। तो भी यह इतनी सस्ती मिलती है—पैसेमें पचीस !

सूइयोंके बनानेमें बाइस भिन्न-भिन्न क्रियाओंकी आवश्यकता पड़ती है। ऐसा श्री ए० विलियम्स अपनी पुस्तक 'हाउ इट इज़ मेड' में लिखते हैं। विलायतमें इन क्रियायोंमें से अधिकांशको स्त्रियां ही करती हैं, क्योंकि उनकी फुर्तीली अँगुलियाँ मर्दोंकी मोटी और मजबूत अंगुलियोंसे इन बारीक़ कामोंके लिए अधिक उपयुक्त होती हैं। मर्दोंको वे काम दिए जाते हैं जिनमें बलकी आवश्यकता रहती है।
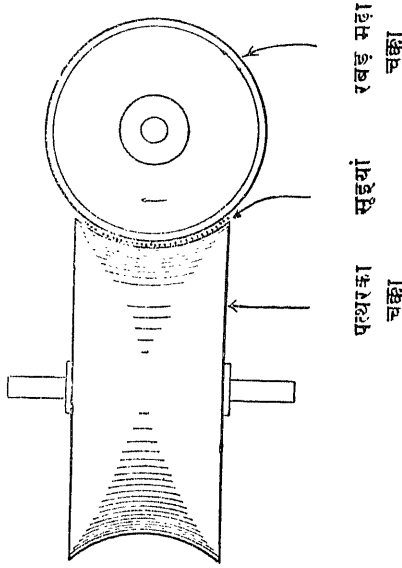
सीधा करना

सूइयाँ पक्के लोहेके तारसे बनती हैं। लोहोंके कारखानोंमें ऐसा तार विशेष रूपसे सूइयोंके लिए बनाया जाता है। यद्यपि इङ्गलैंडमें सूईके कारखाने वोरसेस्टरके जिलेमें हैं तो भी तार सब शेफील्ड ही में बनते हैं, जहाँ पक्के लोहेके कारखाने हैं। तार बनानेवाले ही इसके उचित नापके टुकड़े काटकर सूईके कारखानेमें भेजते हैं। प्रत्येक टुकड़ा इतना लम्बा होता है कि उसमेंसे दो सुइयाँ बन सकें। पहली बात जो सूईके कारखानेवालोंको करनी पड़ती है यह है कि इन तारोंको बिल्कुल सीधा कर दिया जाय। इसके लिए तारोंके बंडल बनाकर उनपर लोहेके छल्ले दोनों सिरेपर चढ़ा दिए जाते हैं। तब इन बंडलोंको भट्ठीमें छोड़कर लाल किया जाता है। खूब लाल करनेकी आवश्यकता नहीं है। केवल मंद लाल रंग आजाना काफी है। अब इन बंडलोंको एक एक करके लोहेकी मेज़पर रक्खा जाता है और लोहेकी पटरीसे बेला जाता है। आगे-पीछे इस प्रकार दबावमें पड़कर लुड़कनेसे तार बिल्कुल सीधे हो जाते हैं। सीधे होनेके पहले वे वृत्त-खंडाकार होते हैं क्योंकि वे तारोंकी गोल लच्छीसे काटे जाते हैं।

नोक बनाना

इसके बाद इन तारोंमें नोक बनाई जाती है। इसके लिए तारोंको दो नाचते हुए चक्कोंके बीच छोड़ा जाता है जिनमें एक एमरी या कुरन पत्थरका होता है दूसरेपर रबड़ चढ़ा रहता है। पत्थरवाले चक्केका किनारा नतोदर होता है। चित्रके अध्ययनसे बात साफ समझमें आजायगी। रबड़के बेलनके घूमनेसे एक ओर वे तार गिरा करते हैं जिनमें नोक बन चुकी हैं, दूसरी ओर नवीन तार आते रहते हैं। नवीन तारकी अटूट धारा इन दोनों चक्कोंके बीच एक बक्ससे गिरा करती है जिसकी पेंदीमें तारोंके गिरनेके

लिए लम्बा पतला छेद कटा रहता है। यह बक्स बराबर हिला करता है जिससे तार बराबर गिरता रहे[1]।

ऊपरी चक्केपर रबड़के चढ़े रहनेके कारण ये तार आगे नहीं खिसकने पाते। रबड़में ही चिपके रहते हैं। पत्थरके चक्केके घूमनेके कारण उनका सिरा घिसने लगता है। साथही रबड़ वाले चक्केके घूमनेसे तार स्वयं घूमा करते हैं इसलिए तारोंके सिरे चारों ओरसे बराबर घिस जाते हैं और उनपर अच्छी नोक बन जाती है। प्रत्येक क्षण इस प्रकार करीब सौ तारोंके सिर घिसते रहते हैं और जो चिनगारी इनसे निकलती है वह अत्यंत चमकीली फुलझड़ीके समान दिखलाई पड़ती है यद्यपि इसमें हाथ छोड़नेसे हाथ जलेगा नहीं। घिसनेसे उत्पन्न हुआ सब गर्द एक बड़े नलमें बिजलीका पंखा चलाकर चूस लिया जाता है। उपर्युक्त मशीनके आविष्कारके पहले नाचते हुए पत्थरके चक्कोंपर सुइयोंको हाथसे दबाकर नोंकें बनाई जाती थीं। उस जमानेमें नोक बनानेवाले शीघ्र मरा करते थे, क्योंकि लाख उपाय करनेपर भी पत्थर और लोहेका चूर्ण इतना उड़ा करता था कि और नाकपर बाँधे गये कपड़ेकी तहोंमें घुसकर सांसके साथ अंदर इतनी मात्रामें चला जाता था कि कार्यकर्त्ताको अक्सर इससे क्षय रोग हो जाया करता था।

एक ओर नोक बन जानेपर तारकी दूसरी ओर भी इसी प्रकार नोंक बनाई जाती हैं।

मांजना

जहाँ-जहाँ नोक बनाते समय तार घिसा गया था वहाँ तो वह चमकने लगता है। परंतु अन्य स्थानोंमें तार काला रहता है, क्योंकि सीधा करनेके लिए इसे तपाया गया था। अब यह आवश्यक है कि तार मांज दिया जाय, नहीं तो छेद आदि करनेमें कठिनाई पड़ती है। इसके लिये तारोंको तीन चक्कोंके बीच छोड़ दिया जाता है। इनमेंसे दो चक्के तारको तीसरे चक्केपर दबाये रहते हैं। तीसरा चक्का पहले दोनों चक्कोंसे अधिक तेज़ नाचता है और उसके ऊपर एमरीपाउडर चढ़ा रहता है। इसलिये तार सब जगह मँज जाता है।

ठप्पा मारना

मँजे हुए तार अब दूसरी 'फुदकी' में जाकर गिरते हैं। उसमेंसे एक-एक करके वे खाँचदार पहियेके सिरेपर गिरते हैं। यह चक्का घसीटकर तारोंको एक ठप्पेके ऊपर ले जाता है। ज्योंही तार ठप्पेपर पहुँचता है त्योंही ऊपरसे एक ठप्पा जोरसे चोट मारता है, जिससे तारके बीचका भाग चिपटा हो जाता है और दोनों ओर दो-दो अंडाकार गड्ढे भी बन जाते हैं। यहाँसे तार आपसे आप छिटककर एक बरतनमें जा गिरता है। गड्ढोंके बनानेका अभिप्राय यह है कि सुइयोंमें छेद बनानेमें आसानी पड़े। यदि गड्ढे न रहें तो छेद करनेवाली सुंभी ठीक जगहपर पड़ेगी या नहीं इसमें संदेह हो जाता है। फिर, गड्ढोंके न रहनेसे सुंभी एक ही वारमें छेद भी न कर सकेगी। बाज़ सूइयोंमें छेदके पास कुछ दूर तक खाँच भी बना रहता है। यह भी ठप्पा मारते समय ही बन जाता है।

कभी-कभी ठप्पा मारनेका काम हाथसे किया जाता है। इस काममें कारीगर इतने होशियार हो जाते हैं कि आश्चर्य होता है। वे इतनी फुरतीसे तारोंपर ठप्पा मारते हैं। एक हाथमें दूसरेमें सूई लेते हैं और बग़लके बरतनमें इतना धीरेसे उसे गिरा देते हैं कि देखनेमें यही जान पड़ता है कि एक ही सूईपर वे बार-बार ठप्पा मार रहे हैं। इस काममें सिद्धहस्त कारीगर एक दिनमें सत्ताइस या अट्ठाइस हजार तारोंपर ठप्पा मार सकते हैं। यह मशीनके हिसाबसे अधिक कम नहीं है।

छेद करना

सूई बनानेकी क्रियाओंमें सबसे मनोरंजक क्रिया छेद करने की है। इस कामको औरतें करती हैं। यां तो आपसे आप सब काम करनेवाली मशीनोंमें, या पेंचसे चालू दबानेकी मशीनमें। मशीनपर जब ठप्पा मारा हुआ तार गिरता है तो वह दो अंत-रहित पेंचोंपर गिरता है जो घूमते रहते हैं। ये पेंच तारको पकड़कर बारी-बारीसे दो नन्ही सुंभियोंके नीचे ले जाते हैं। इन सुंभियोंकी नोक ठीक उसी

[1] **ऐसे बक्सको अँग्रेजीमें 'हापर' कहते हैं। हम इसे 'फुदकी' अर्थात् फुदकने वाला कह सकते हैं। 'हापर'का अर्थ है 'फुदकनेवाला' यह नाम इसलिए पड़ा है। तभी तो तार पेंदेके छेदसे निकलता रहता है।**

आकारकी होती है जिस आकारका गढ्ढा ठप्पेसे तारपर बन गया था। सुंभी जब नीचे गिरती है गढ्ढेका भीतरी भाग कटकर नीचे गिर जाता है। इस क्रियामें सबसे मारकेकी बात यह है कि पेंच किस सचाईसे तारोंको सुंभियोंके नीचे ले जाता है। ज़रा सा भी अंतर रह जाय तो छेद सच्चा न बन सकेगा और सूई नष्ट हो जायगी। ठप्पे और सुंभियाँ इतनी नन्हीं होती हैं कि उनके बनानेवाले कारीगरोंको वर्षों उस हुनरको सीखना पड़ता है।

बाज़ तरहकी सूइयोंमें हाथसे छेद किया जाता है। यद्यपि हाथका काम मशीनके बराबर तेज़ नहीं होता तो भी सिद्धहस्त कारीगर एक दिनमें बीस-पचीस हज़ार तारोंमें छेद कर डालता है।

चिकना करना

इन दोहरी सूइयोंमें दो तार पहना दिये जाते हैं। कई सौ दोहरी सूइयाँ एकही जोड़ी तारपर इस प्रकार नथ जाती हैं जिससे वे दोमुँही कंघीकी तरह दिखलाई पड़ती हैं। अब एक कारीगर इन सूइयोंके सिरोंको कमानीके नीचे दबाकर ठप्पा मारनेसे बढ़े धातुको रेतकर निकाल देता है। सूइयोंके चिकने कर लेनेके बाद उनको उल्टा-सीधा मोड़-मोड़ कर कारीगर उन्हें बीचसे तोड़ डालता है और इस प्रकार जुड़ी हुई सूइयोंको अलग कर देता है। अवश्य ही सूइयाँ अब भी अपने-अपने तारपर नथी रहती हैं। तोड़नेपर छेदवाला सिरा खुरदरा रहता है। इस लिये कारीगर सूइयोंको फिर कमानीके नीचे दबाकर उनके सिरोंको रेतीसे रेत कर चिकना कर देता है। अब सूइयाँ बन तो गईं, परंतु अब भी कई एक क्रियाएं बाक़ी हैं।

एक तो छेदोंका भीतरी किनारा अब भी खुरदरा है। फिर, सूई अभी इतनी नरम है कि आसानीसे मुड़ जायगी और खूब चमकदार और चिकनी भी नहीं है।

छेदोंको भीतरसे चिकना करनेके लिये सूइयोंके छेदमें खुरदरा तार पहनाया जाता है और एक मेज़से निकले हुयेके छोटे-छोटे स्तंभोंपर इस तारको तान दिया जाता है। लोहेके अब मेज़ इंजनसे चालू होकर इधर-उधर झूमने लगता है। सूइयाँ भी तारपर इधर-उधर झूमती हैं। फलतः उनका छेद खूब चिकना हो जाता है।

कड़ा करना

इसके बाद सुईयोंको बंद ढोलोंमें रखकर और भट्ठीमें छोड़कर लाल किया जाता है। इन ढोलोंमेंसे हवा निकाल ली जाती है जिसमें सूइयोंके जल जानेके कारण उनपर काला तह न जम जाय। जब सूइयां खूब लाल हो जाती हैं तब उन्हें तेलमें उँडेल दिया जाता है। इस प्रकार बुझाये जानेसे सूइयां बहुत कड़ी हो जाती हैं; ज़रा सा ज़ोर लगानेसे वे टूट जायंगी। इसलिये उनका पानी थोड़ा सा उतार दिया जाता है (अर्थात् उनको ज़रा सा नरम कर दिया जाता है)। इसके लिये पहले सूइयोंको सज्जी (सोडा) के घोलमें उबाला जाता है जिससे उनपर लगा हुआ सब तेल कट जाता है। फिर उनको लोहेके ढोलोंमें उँड़ेल दिया जाता है। इन ढोलोंके नीचे लकड़ीके कोयलेकी अँगीठियाँ रखदी जाती हैं और ढोलोंको बराबर हाथसे घुमाया जाता है। जब सूइयोंका रंग हलका नीला हो जाता है तब ढोलसे सूइयाँ छिछले बरतनोंमें गिरा दी जाती हैं जिसमें वे ठंढी हो जायँ। इस प्रकार सूइयाँ कुछ लचीली हो जाती हैं और उनमें काफ़ी कड़ाई भी रह जाती है।

सफ़ाई करना और छाँटना

अब सूइयोंको लंबी-लंबी थैलियोंमें साबुन और एमरी पत्थरके बारीक चूरके साथ भर दिया जाता है। इन थैलियोंको मेज़पर रखकर उसको इंजन-द्वारा संचालित लकड़ीके पटरोंसे लगातार बारह घंटे तक बेला जाता है।

बीच-बीचमें ऊपर पानी भी छिड़क दिया जाता है। तीन या चार बार मसाला बदल-बदलकर उनको इस प्रकार साफ़ किया जाता है। इसके बाद सूइयोंको खूब अच्छी तरह धोया जाता है। उपरोक्त क्रियासे वे खूब सफ़ेद और चमकीली हो जाती हैं परंतु वे पूर्णतया चिकनी नहीं होतीं। इसलिये वे अब फिर थैलियोंमें भरी जातीं हैं पर उनके साथ अब एमरीके बदले पालिश करनेका चूर्ण भरा जाता है। बेलन करनेकी क्रिया एक बार फिर की जाती है, जिससे वे ख़ूब चिकनी और चमकीली हो जाती हैं। उनको फिर धोया और सुखाया जाता है। सूइयाँ

अब प्रायः तैयार हो गईं। प्रत्येक सुईके बननेमें नौ दिन लगता है।

इसके बाद सूइयाँ छाँटी जाती हैं। इस कामको औरतें करती हैं। सूइयोंको बखेरकर उनकी जाँचकी जाती है और जिस प्रकार औरतें यहाँ चावल बिनती हैं उसी प्रकार सूईके कारख़ानोंमें सूई बिनी जाती हैं। जो सूई ज़रा भी टेढ़ी, खुरदरी, टूटी या अन्य प्रकारसे दूषित रहती हैं वह फेंक दी जाती हैं।

सरियाना और गिनना

अब सूइयाँ सरियाई जाती हैं अर्थात् सभोंकी नोक एक दिशामें की जाती है। इसके लिये कारीगरिन अपने दाहिने हाथकी तर्जनी अँगुलीमें लत्ता लपेट लेती है। पहले वह सब सूइयोंको एक पंक्तिमें रख लेती है। तब बायें हाथकी हथेलीसे उनको दबाकर लत्ता-लपेटी अँगुलीसे उनके सिरोंको दबाती है। परिणाम यह होता कि वे सूइयाँ जिनकी नोकें उधर रहती हैं लत्तेमें चुभ जाती हैं और अँगुली हटानेसे खिंच आती हैं। इस प्रकार क्रमानुसार सूइयाँ दो समूहोंमें बँट जाती हैं और प्रत्येकमें सूइयोंकी नोक एक ही दिशामें रहती है।

यह भी आवश्यक है कि जो सूइयाँ कुछ छोटी हो गई हों वे छाँटकर अलग रख दी जायँ, जिसमें प्रत्येक बंडलमें केवल एक ही नापकी सूइयाँ रहें। यह काम या तो हाथसे या मशीनसे किया जाता है। यदि इसे हाथसे करना होता है तो सूइयोंको काठके एक पटरेपर एक पंक्तिमें रक्खा जाता है, जिसमें सूइयोंकी औसत लंबाईसे ज़रा-सा सँकरा छेद कटा रहता है। छोटी सूइयाँ गिर जाती हैं। बड़ी सूइयाँ ऊपर उठी रह जाती हैं और इसलिये अलग की जा सकती हैं।

परंतु यदि इस कामको मशीनसे करना हुआ तो एक 'फुदकी'से सूइयोंको एक चक्केपर गिराया जाता है जिसके सिरपर खाँच बना रहता है। ये चक्के सूइयोंको घसीटकर छेद कटे पलड़ोंपर गिराते हैं। सूइयाँ एक पलड़ेसे दूसरेमें गिरती रहती हैं। ये पलड़े झूमा करते हैं और इनमें क्रमानुसार अधिकाधिक छोटा छेद कटा रहता है। सबसे बड़ी सूइयाँ पहले ही पलड़ेमें रह जाती हैं; उनसे कुछ छोटी दूसरेमें; इत्यादि। पलड़ेमेंसे सूइयोंको बग़लके बरतनोंमें झोंक दिया जाता है।

एक दूसरी मशीन भी लगी रहती है जो सूइयोंको गिना करती है। प्रत्येक सूईके गिरनेपर इसका एक विशेष पहिया एक दाँतीके बराबर चलता है। इस पहियेमें दूसरे दाँतीदार पहिये और अंतमें एक घड़ीकी सूई लगी रहती है। इस घड़ीसे पता चला करता है कि कितनी सूइयाँ बनीं, इस प्रकार एक मिनटमें दो हज़ार सूइयाँ गिनी जा सकती हैं।

नोक तेज़ करना और पुड़िया बाँधना

छाँटी हुई सूइयोंकी नोकोंको अब और तेज़ किया जाता है और उनके मत्थोंको और चिकना किया जाता है। इसके लिये सिरोंको सिल्लीपर घिसा जाता है और इसी प्रकार नोक भी तेज़ की जाती है। छेदोंको भी और चिकना किया जाता है। इसके लिये उनको ऐसे चक्केपर दबाया जाता है जो बड़ी तेज़ीसे नचाता रहता है और जिसपर नन्ही-नन्ही अनेक कीलें जड़ी रहती हैं फिर सब सूइयोंको चमड़ा-मढ़े बेलनोंसे पालिश किया जाता है।

अब सूइयोंकी दस-बारह या पचीस-पचीसकी पुड़ियाँ बना दी जाती हैं और पुड़ियोंको बक्सोंमें बंद किया जाता है।

सबसे छोटी सूइयाँ क़रीब बालके बराबर पतली होती हैं और केवल आधी इंच लंबी होती हैं। ये एक छटाँकमें क़रीब पाँच हज़ार चढ़ती हैं। साधारण सिलाईकी छोटी-बड़ी सूइयोंके अतिरिक्त डाक्टरोंके कामकी टेढ़ी सूइयाँ, गद्दा सीनेकी लंबी सूइयाँ, दो-मुहीं सूइयाँ, नावके पाल सीनेकी तिकोनी सूइयाँ, बोरे सीनेके सूजे, तथा बारुदके बोरे सीनेके लिये जरमन सिलवरके सूजे भी इन्हीं कारख़ानोंमें बनते हैं।

सूइयोंके निर्माणके लिए योजना

[लाला श्री रामजी अग्रवाल, मंत्री असोसियेशन फारदी डेवलपमेंट ऑफ स्वदेशी इंडस्ट्रीज, दिल्ली द्वारा संग्रहीत एवं श्री ओंकारनाथ शर्मा द्वारा लिखित]

मनुष्य जातिके नित्यके व्यवहारकी अत्यंत आवश्यक वस्तुओंमेंसे सूई एक मुख्य वस्तु है। इसके निर्माणके लिये भारतवर्षमें अभीतक कोई कारखाना नहीं खुला है।

इस कार्यके लिये एक अच्छा कारखाना खोलनेका अनुमान-पत्र यहाँ दिया जाता है। जिन्हें इस सम्बन्धमें अधिक जाननेकी इच्छा हो वे संग्रहकर्त्तासे उपरोक्त पतेपर पत्र व्यवहार करें।

१—यंत्र आदि	२०००० रु०
२—धुरे पट्टे और यंत्रोंकी बुनियाद-का खर्च	५००० रु०
३—मोटर आदि यंत्रोंको चलानेके लिये	२५०० रु०
४—तेलकी छोटी भट्टियां सूईयोंको सख्त करने और आबदारी लगानेके लिये और भट्टीकी गरमी नापनेके तापमापक यंत्र आदि।	२४०० रु०
५—किराया और चुंगी इत्यादि	१५०० रु०
कुल योग	३१४०० रु०

इसके अतिरिक्त काफी मात्रामें चाकू कैंचियाँ, तराजू और नपने, खराद आदि अन्य प्रकारके औजार खरीदने पड़ेंगे। इसमें लगभग २५०० रु० का व्यय होगा। सूइयां बनानेके लिये कच्चा माल तारके रूपमें होगा जो शेफील्ड आदि स्थानोंसे प्राप्त हो सकता है। आरम्भमें कामको चालू करनेके लिये और भारतीयोंको काम सिखानेके लिये एक अच्छे फ़ोरमैनकी आवश्यकता होगी जिसका प्रबंध यंत्र विक्रेताओंके मारफत हो सकता है। कारखानेके चलानेके लिये लगभग ३० आदमी और ३० लड़के काफी होंगे। कार्य-कर्ताओंका कुलव्यय २१०० रु० मासिक होगा।

इस कारखानेसे २४०००० सूइयोंकी पुड़ियायें प्रति सप्ताह तयार होसकेंगी। यदि एक पैसा प्रति पुड़िया भी बेचा जावे तो एक सप्ताहकी आमदनी ३७५० रुपये अथवा एक मासकी १५००० रुपये होगी।

चित्र-परिचय

सरवे करना

प्रत्येक सभ्य जातिमें शासकको इसकी विशेष आवश्यकता पड़ती है कि भूमिका मान-चित्र (नक़शा) बनाया जाय। बिना मान चित्रके न तो सीधी सड़कें बन सकती हैं। न रेल, न नहर। सच पूछा जाय तो सभ्य समाजका काम ही रुक जायगा। भारत सरकारने भी सारे भारतवर्षका नकशा बनवाया है। इस कामको आरंभ हुये पचास वर्ष हो गये और काम अभी-अभी समाप्त हुआ है। पर सच पूछा जाय तो यह काम समाप्त नहीं हुआ है, क्योंकि आरंभमें जिन प्रदेशोंका नकशा बनाया गया था उनका नवीन नकशा बनाना अब फिर आवश्यक हो गया है। पहलेकी अपेक्षा अब इतने अधिक सच्चे नकशे बन सकते हैं कि पुराने नकशोंकी जाँच एकबार फिर करनी पड़ेगी। सरकारने एक विभाग ही खोल रक्खा है जिसका काम यही है कि नवीन प्रदेशोंका नकशा बनाया जाय, जहांके नकशे पहले ठीक न बने हों उनके नकशे फिरसे बनाये जायँ, जिन नकशोंमें ब्योरे पहली बार काफी नहीं भरे गये थे, वे धीरे-धीरे सब भर दिये जाँय। आधुनिक समयमें जो परिवर्तन कुछ भूमिमें हो उसका भी समावेश नकशोंमें कर दिया जाय, इत्यादि। [शेषांश पृष्ठ ११८ पर देखिये]
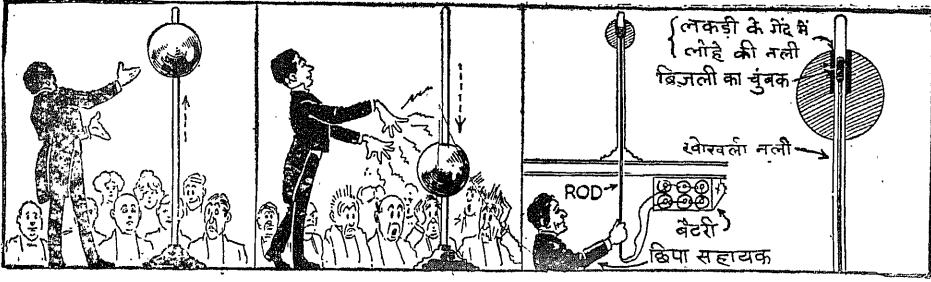
'मेस्मेरिज़्म !'

जादू

महिलाओ और सज्जनो ! इसे देखिये ! यह पीतलका डंडा है । इसकी पूरी जाँच कर लीजिये । कितना चिकना है । कहीं कटा-टूटा नहीं है । और यह इसका पावा है । इसकी भी जाँच कर लीजिये । पायेमें मैं इस पीतलके छड़को पहनाकर खड़ा कर देता हूँ ।

अच्छा, अब इसे देखिये यह काठका गोला है (ऊपर उछालता है) यह ठोस है । (उछालते उछालते एक बार गोलेको ज़मीनपर गिर जाने देता है जिससे सब उसकी आवाज़ सुन लें कि गोला ठोस है) । इसके बीचोबीच एक छेद है । इसकी जाँच आप कर लें ।

आइये महाशय ! आप मेरी सहायता करेंगे न ? क्या कहा ? आपको मंचपर आनेमें डर लगता है । वाह, खूब कही । क्या मैं काटू हूँ ? आइये-आइये ! क्या कहा ? मंचमें आनेमें लाज लगती है ? वाह, लाजकी क्या बात । अच्छा जनाब, वे नहीं आते तो आपही आइये । (दर्शकोंमेंसे कोई न कोई मंचपर आता है) आप हमारी सहायताके लिये आये हैं । धन्यवाद । ज़रा इस गेंदको छड़में पहना तो दीजिये । (दर्शक ऐसा करता है ।) ठीक ! पर बीचहीमें गेंदको रोकिये । क्या कहा ? ओह ! छेद बहुत ढीला है ? बीचमें गेंद नहीं रुक सकता ? ख़ैर ! जाने दीजिये, इसे नीचेही बैठ जाने दीजिये । —

आपने मेसमेरिज़्मका नाम सुना है ? हाँ ? तो इस गेंदपर अपनी मेसमेरिज़्म तो ज़रा दिखलाइये । क्या ? आपने मेसमेरिज़्म नहीं सीखी है ? और सीखी भी होती तो वह मनुष्योंपर चलती, काठ पर नहीं ?

ख़ैर, आप जो चाहे सो कहें, पर आपकी धारणा ग़लत है । काठपर भी मेसमेरिज़्म ज़रूर चलती है । देखिये !

(गेंदकी ओर हाथ फैलाकर) उठ-उठ-उठ-उठ-उठ-उठ-उठ....... । (गेंद आपसे आप उठता है और सब चकित होते हैं।।) रुक ! (गेंद रुकता है ।) चल ! (गेंद चलता है ।) उठ ! नीचे जा ! गिर ! (गेंद प्रत्येक आज्ञाका पालन करता है, जिसपर दर्शक सब करतलध्वनि करते हैं ।)

रहस्य

साथके चित्रसे तुरंत पता चल जायगा कि यह खेल कैसे होता है । काठके गोलेके भीतर लोहेकी एक नली लगी रहती है । मंचके नीचे एक सहायक छिपा रहता है । मंचकी चौकीमें एक छेद कटा रहता है । जादूगर जान बूझकर पीतलके डंडेको उसी छेदके ऊपर खड़ा करता है । सहायक डंडेके भीतर एक बलवान विद्युत-चुंबक घुसेड़ देता है । और इस चुंबकके आकर्षणके सहारे गेंदको ऊपर-नीचे चलाता है । अंतमें बिजलीके काट देनेपर आकर्षण शक्ति जाती रहती है और गेंद धड़ामसे गिर पड़ता है ।

———

बच्चोंकी झूमनेवाली सवारी
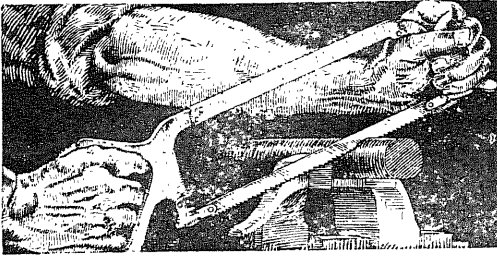
जिन बच्चोंके पिता या भाई यह छोटीसी सुंदर सवारी बना देंगे उनको खूब आनंद आयेगा। इसका बनाना अत्यंत सरल है और इसमें कोई विशेष कल-पुरजे भी नहीं लगते; केवल दो कमानियोंकी ज़रूरत पड़ेगी जो किसीभी बाइसिकिल मरम्मतकी दूकानसे मिल जायगी। एक बड़ी कमानी चाहिए जो खींचनेसे बढ़े और दूसरी छोटी सी कड़ी कमानी जो दबानेसे जरासा दबे। पहलेके लिए साइकिल स्टैंडकी पुरानी कमानी और दूसरेके लिए सीटकी पुरानी कमानीसे काम चल जायगा। चित्र १ में इस सवारीका बगलका दृश्य दिखलाया गया है और इससे इसके भिन्न-भिन्न अंगोंका भी स्पष्ट पता चल जायगा।

मुख्य अङ्ग

थोड़ेमें, कहा जा सकता है कि इस सवारीकी पेंदीमें एक पटरा रहता है जिसमेंछेद काटकर दो खड़े स्तंभोंकी चूलें बैठाई रहती हैं। इन स्तम्भोंके बीच दो इंच स्थान रहता है जिसमें दो लकड़ियाँ रहती हैं जो स्वयं झूमनेवाली पटरीके नीचे जड़ी होती हैं दोनो स्तंभों और इन दोनों लकड़ियोंमें छेद रहता है, जिनमेंसे एक बाल्टू छोड़ दिया जाता है। यह बाल्टू धुरी-का काम देता है और इसीके बल ऊपरकी पटरी झूमती है बाल्टूके सिरेपर ढिबरीभी कस दी जाती है जिसमें बाल्टू निकल न पड़े।

कमानी

सामनेकी ओर एक लंबी खिंचनेवाली कमानी रहती है जिसकी लंबाई काटकर ठीक इतनी करदी जाती है कि जब कमानी खिंची न रहे तो झूमनेवाली पटरी पेंदीके
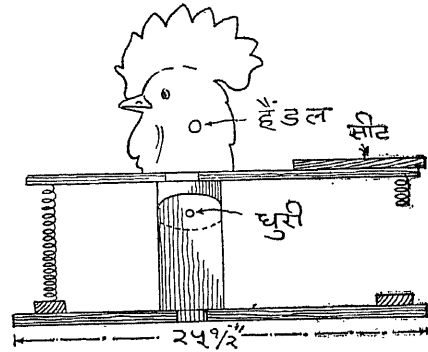
चित्र १—बगलका दृश्य। इससे स्पष्ट पता चलता है कि सवारी कैसे बनती है।

समानांतर रहे। झूमनेवाली पटरीके ऊपर पीछेकी ओर बाइसिकिलकी सीटके आकारकी एक सीट लकड़ीकी जड़ दी जाती है। यदि इसे गद्देदार बना दिया जाय तो और भी अच्छा है। सीटके सामने धुरीके ठीक ऊपर झूमनेवाली पटरीमें छेद काटकर चूल द्वारा मुरगेका सिर जड़ दिया जाता है। इस सिरमें एक डंडा पहना दिया जाता है। जिसमें बच्चे उसे अच्छी तरह पकड़े रहें और जब पटरी झूमे तो वे गिरें नहीं।
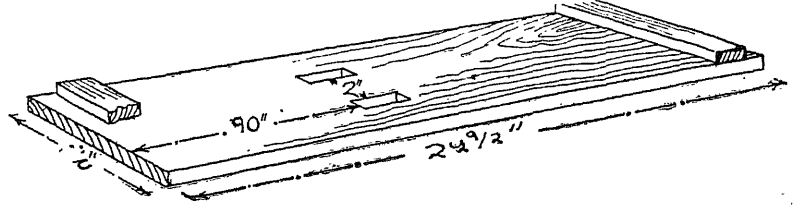
चित्र २—पेंदे की पटरी।
इसमें स्तंभोंके लिये दो छेद किये जाते हैं।

पेंदी

पेंदीको ३/४ इंच मोटी लकड़ीका होना चाहिए। यदि सब काम शीशमकी लकड़ीका बन सके तो अच्छा है। पटरी २५१/२ इंच लंबी और ८ इंच चौड़ी हो। इसके एक सिरेसे १० इंच हटकर दो छेद काटना चाहिए जिसमेंसे प्रत्येक ३/४ इंच चौड़ा और दो इंच लम्बा हो। इन छेदोंके बीच दो इंच जगह रहे जैसा चित्र २ में दिखलाया गया है। मजबूतीके ख्यालसे दोनों सिरों पर ८ इंच लंबी, २ इंच चौड़ी, ३/४ इंच मोटी दो पटरियाँ जड़ दी जाती हैं। (चित्रमें एक पटरी समूची नहीं दिखलाई गई है जिसमें नाप लिखनेमें आसानी पड़े।)

पटरियोंके सब कोरोंको रंदेसे मार देना चाहिए और सब लकड़ीको रंदा करनेके बाद रंगमारसे भी रगड़कर चिकना कर देना चाहिए।

चित्र ३—स्तंभ।
ये पेंदेकी पटरीपर खड़े किये जाते हैं।

चित्र ४—सीट

चित्र ३ में वे स्तंभ दिखलाए गये हैं जिनकी चूलें पेंदेकी पटरीके छेदोंमें बैठती हैं। इनको भी ३/४ इंच मोटी लकड़ीसे काटना चाहिए। इस ख्यालसे कि धुरीके लिए बनाए गए छेद ठीक एक सीधमें पड़ें दोनों लकड़ियोंको बाँकमें साथ बांधकर एक साथ ही दोनोंमें छेद करना उचित होगा। छेद तिरछा न होने पाए।
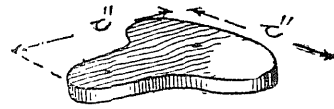
चूलको सच्चा बैठना चाहिए। स्तंभ ठीक लम्ब रूप और समानांतर खड़े रहें। इसके बाद स्तंभोंको निकालकर चूल और छेदमें सरेस लगाकर चूलोंको ठोंक देना चाहिए और पीछेकी ओरसे उनमें फन्नी ठोंक देनी चाहिए जिसमें स्तंभोंके निकल आनेका कोई डर न रहे। छुरीकी शकल की एक ओर मोटी, एक ओर पतली लकड़ीको फन्नी कहते हैं।

झूमनेवाली पटरी

झूमनेवाली ऊपरकी पटरी २४ इंच लम्बी ५ इंच चौड़ी रहे। मोटाई १/२ इंच या ५/८ इंच हो। रंदा और रंगमार कर लेनेके बाद इसमें एक सिरेसे ९ इंच हटकर २ इंच लम्बा ५/८ इंच चौड़ा छेद मुरगेके सिरके लिए काटना चाहिये। [चित्र ५में वे लकड़ियाँ दिखलाई गई हैं जो इस पटरीके नीचे गड़ी जाती हैं। इनको चित्र-में दिखलाये गये आकारका काट कर चिकना कर लेनेमे बाद लंबे पेंचोंसे झूमनेवाली पटरीके नीचे जड़ना चाहिये। इनकी स्थिति ऐसी हो कि वे पेंदीपर खड़े किये गये

स्तंभोंके बीचमें ठीक-ठीक आ जायँ। ऊपरी पटरीमें पेंचोंके माथाके धँस जानेके लिये लकड़ी कुछ काट देनी चाहिये। पेंचके लिये सब लकड़ियोंमें उचित नापका छेदकर लेना चाहिये जिसमें न तो लकड़ी फटे और न पेंच ढीले पड़ें।

सीट आदि

चित्र ४में सीट दिखलाई गई है। इसे भी ½ इंच या ⅝ इंच मोटी लकड़ीसे काटना चाहिये। लकड़ी रेतनेकी रेतीसे रेतकर ऊपरी कोरको गोल कर देना चाहिये और तब रंगमारसे रगड़कर सीटको खूब चिकनी कर देना चाहिये। इसके बाद इसे झूमनेवाली पटरीपर जड़ देना चाहिये।

चित्र ६ में हैंडल और मुरगेका सिर दिखलाया गया है। चित्र ६से इस सिरको लकड़ीपर उतारनेमें बड़ी सहायता मिलेगी। लकड़ी या एक एक इंचका वर्ग बनाना चाहिये। इन वर्गोंमें चित्र ७के अनुसार रूप-रेखा खींचना सरल होगा। मोटे फ्रेट-सासे इसे काटना चाहिये। शिखाके कोने नुकीले ने रहें। उनको कुछ गोल काटना चाहिये और रंगमारसे भी रगड़कर उनकी नोक मार देनी चाहिये।

चित्र ७में दिखलाये गये स्थानमें छेद करके ६½ इंच लंबा डंडा पहना देना चाहिये। चित्र ६में मुरगेका सिर हैंडल सहित दिखलाया गया है।

अंगोंको इकट्ठा करना

अब झूमनेवाली पटरीके नीचे जड़ी लकड़ियोंको पेंदेकी पटरीपर जड़े स्तंभोंके बीच रखकर चारों लकड़ियोंमें ½ इंच मोटा बाल्टू पहना देना चाहिये। यह बाल्टू चित्र ५में दिखलाया गया है। इसे क़रीब ४½ इंच लंबा होना चाहिये।

ढिबरी कसनेके पहले एक वाशर पहना देना उचित होगा। ढिबरी इतनी न कसी जाय कि झूमनेवाली पटरी आसानीसे घूम न सके।

कमानीके लगानेके लिये झूमनेवाली पटरीके नीचे और पेंदीवाली पटरीके ऊपर पेंचवाली आँखें कस देनी चाहिये। कमानीके सिरोंको इन्हींमें पहना देना या बाँध देना चाहिये।

छोटी कमानी केवल झूमनेवाली पटरीमें बँधी रहती है। इसका एक सिरा स्वच्छंद लटकता रहता है।

यदि कमानियोंको जड़नेमें कोई तरद्दुद हो तो किसी लोहारकी सहायता लेनी चाहिये। वह कमानियोंके सिरोंको उचित रीति से मोड़ देगा।

रंग

बिना रंगके इस खिलौनेमें मज़ा नहीं आयेगा। खिलौनेको चटक रंगोंमें रंगना चाहिये, चाहे तेलका रंग हो, चाहे एनामेल। पेंदीको हरा; स्तंभों और मुरगेकी शिखाको लाल; और मुरगेके सिर और ऊपरी पटरीको पीला रंगना अच्छा होगा। कमानियोंको काला रंग देना चाहिये। धुरीपर ज़रा-सा तेल ये वेसालीन लगा देनेसे लकड़ी चूं चूं न करेगी और ढीली चलेगी।
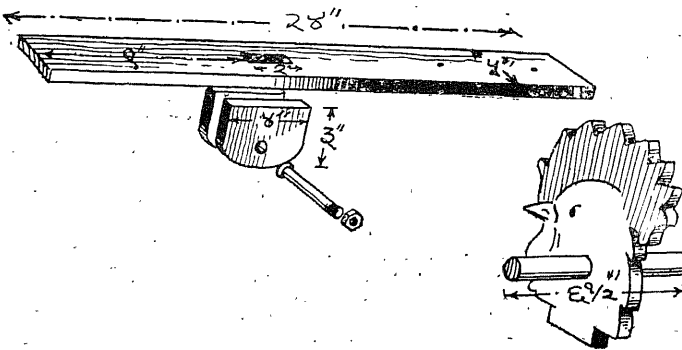
चित्र ५—झूमनेवाली पटरी। चित्र ६—हैंडल।
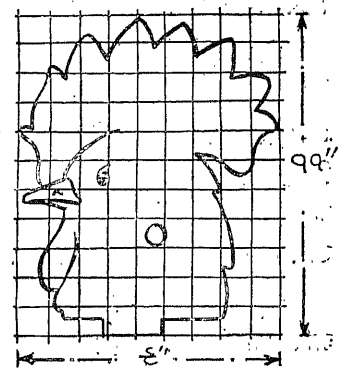
चित्र ७—मुरगे का सर।

एक प्लेटपर आठ फ़ोटो

आज कल किफ़ायतका जमाना है। ग्राहकोंको आकर्षित करनेके लिए कई एक व्यवसायी फ़ोटोग्राफ़र अब १) में आठ भिन्न-भिन्न फ़ोटो बेचते हैं जो लगभग २ इंच × ३इंच नापके होते हैं।

ये फ़ोटो या तो सिनेमा फ़िल्मपर या एकही प्लेट (या कट फ़िल्म) पर लिये जाते हैं और एनलार्ज (प्रवर्द्धित) करके ब्रोमाइड काग़ज़ पर छापे जाते हैं। सिनेमा कैमेरा अलगसे मोल लेनेमें अधिक खर्च पड़ेगा। फिर यदि काफ़ी ग्राहक प्रति दिन न आयेंगे तो फ़िल्मके छोटे-छोटे टुकड़ोंको डेवलप करनेमें कठिनाई पड़ेगी। इस लिये साधारण व्यवसाइयोंके लिये एकही प्लेटपर आठ फ़ोटो लेनेकी रीति सुगम होगी।

प्लेटकी नाप

क्वार्टर-प्लेटपर ८ फ़ोटो उतारना काफ़ी होगा। प्रत्येक फ़ोटो लगभग १½" × १" का होगा। इस प्लेट को होल-प्लेट (८½" × ६½") नापके कागज़पर एन-लार्ज करनेसे प्रत्येक फ़ोटो ३" × २" का होजायगा।

चित्र १—
एक क्वार्टर प्लेटपर ८ फ़ोटो

जब आठ फ़ोटो एकही प्लेटपर उतरेंगे, साथही डेवेलप किये जायँगे और साथही एनलार्ज किये जायँगे, तब प्रत्यक्ष है कि आठोंका प्रकाश-दर्शन (एक्सपोज़र) बिल्कुल एकही होना चाहिये, नहीं तो गाढ़ा-फीका होजानेके कारण कुछ चित्र नष्ट हो जायँगे।

चूँकि आठों फ़ोटो केवल १) में बिकते हैं, इसलिये यह भी स्पष्ट है कि इनके तैयार करनेमें समय अधिक न लगना चाहिये।

जो लोग इसका व्यवसाय करते हैं वे यह नियम अवश्य लगा देते हैं कि आठो फ़ोटो एकही व्यक्तिके होने चाहिये और आठोहीमें केवल सर और कंधोंका फ़ोटो रहेगा। यदि कोई चाहे कि एक फ़ोटोमें पैरोंतकका चित्र आ जाय तो उसे अलग पैसा देना पड़ेगा। कारण यह है कि ऐसा नियम न रहनेसे समय बहुत लगेगा।

बिजलीकी रोशनी

यदि मान लिया जाय कि उपरोक्त नियमका पालन

चित्र २—प्रकाश, कैमरा और बैठने वालेकी स्थितियाँ

किया जायगा तो देखना चाहिये कि ये फ़ोटोग्राफ़ कैसे बनते हैं। साधारणतः इन फ़ोटोग्राफ़ोंका प्रकाश-दर्शन विजलीकी रोशनीसे दिया जाता है। कारण यह है कि विजलीकी रोशनी सदा एक तेज़ीकी रहती है और दिन रात उससे काम कर सकते हैं। इसलिये प्रकाश-दर्शन देते समय इसका ख़्याल नहीं करना पड़ता कि सुबह है या दो-पहर और इसलिये प्रकाश-दर्शन कितना दिया जाय।

दूसरा लाभ यह है कि बिजलीकी रोशनी रहनेसे रातको आये हुये ग्राहकोंका भी फ़ोटो खींचा जा सकता है।

बिजलीकी तेज़ी इतनी रहनी चाहिये कि प्रकाश-दर्शन केवल एक सेकंडका लगे। यदि सौ-सौ वाटके पाँच-छः बल्ब बैठने वालेसे तीन या चार फ़ुटपर रहें तो काफ़ी होगा। चूँकि सब बत्तियाँ प्रत्येक चित्रके लिये केवल १ ही सेकंड तक जलेंगी, इस लिये बिजलीका ख़र्च नाममात्रही होगा।

बिजलीकी बत्तियाँ एक चौखटेमें लगाई जायँ। बीचका भाग लग-भग $1\frac{1}{2}$ फ़ुट × $1\frac{1}{2}$ फ़ुट का रहे। बिजली-की बत्तियाँ चारो ओर बराबरसे न बँटी रहें। ऊपर वाले एक कोनेपर प्रकाश तेज़ रहे जिसमें परछाहीं एक निश्चित दिशामें पड़े। खुली बत्तियोंके रहनेसे सभोंकी परछाहीं पड़ेगी और फ़ोटो अच्छा न लगेगा। इसलिये बत्तियोंके आगे बारीक मलमलकी चादर तान देनी चाहिये। इससे रोशनी कम तो अवश्य हो जायगी, परंतु फैल कर पड़नेके कारण साये बहुत गहरे न पड़ेंगे। चादर ताननेकी सुविधाके लिये चौखटेमें इस प्रकार लकड़ी जड़ देनी चाहिये कि बत्तियाँ बिना ढक्कनके बक्सके भीतर पड़ें। ढक्कनके बदले मलमल तान देनेसे काम अब चल जायगा। चौखटा बैठनेवालेकी ओर सफेद एनामेलसे रँगा रहे और कैमरेकी ओर काले चमक-रहित रंगसे।
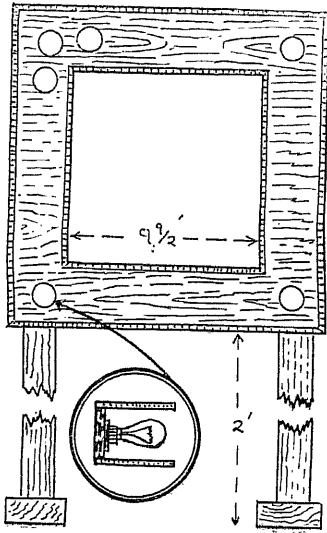
चित्र ३—
बिजली बत्तीके लिये टट्टी

इसका प्रबंध कर देना चाहिये कि बैठनेवाला अपनी कुरसीको हटा न सके। कैमरा भी सदा एकही स्थानमें पड़ा रहे तो अच्छा है। बिजलीकी रोशनीको तो अवश्य ही एक ही स्थानमें रहने देना चाहिये। इस प्रकार बिजलीसे विषय (बैठने वाले) की दूरी स्थिर रहेगी और प्रकाश-दर्शन घटेगा बढ़ेगा नहीं। फिर, चूँकि विषयसे कैमेरेकी दूरी सदा एकही रहेगी, इसलिये फ़ोकस एक बार ठीक कर लेनेसे सदा ठीकही रहेगा।

बिजलीके अभावमें

यदि बिजली न हो तो भी कोई हरज नहीं है। यही है कि उचित प्रकाश दर्शनपर प्रत्येक बार ध्यान रखना पड़ेगा। विशेष कर इसपर ध्यान रखना पड़ेगा कि एक प्लेटपर लिये गये आठो फ़ोटोंका प्रकाश-दर्शन ठीक एकही हो। यदि आठोंका प्रकाशदर्शन थोड़ा कम या थोड़ा ज्यादा हो जायगा तो कोई विशेष हानि न होगी, परंतु एक दो फ़ोटो लेनेके बाद बादल आ जानेसे या अन्य किसी कारणसे यदि रोशनी कम हो गई और इस प्रकार प्लेटको प्रकाश-दर्शन कम मिल गया तो सब फ़ोटो एक साथ ठीक न छापे जा सकेंगे।

दिनके प्रकाशसे फ़ोटो लेनेमें भी सुविधा इसीमें रहेगी कि बैठने वालेके लिये कुरसी एक स्थायी जगहमें जड़ दी जाय और कैमेरा भी एक स्थायी जगहपर सदा पड़ा रहे, जिसमें बार-बार फ़ोकस करनेका झंझट न रहे।

डेवेलप आदि करना

डेवेलप करने और एनलार्ज करनेमें कोई विशेष बात नहीं है; केवल इस बातपर ध्यान रखना चाहिये कि रिटचिंग करनेकी गुंजाइश इन सस्ते फ़ोटोग्राफ़ोंमें नहीं रहती। इस कारण सब काम इतनी सफ़ाईसे करना चाहिये कि फ़ोटोग्राफ़में सूई-छिद्र तथा अन्य प्रकारके दोष न आ-जाने पायें।

हैंड-कैमरासे आठ फ़ोटो

अब केवल एक बात बतलानी बाक़ी है; वह यह कि एक ही प्लेटपर ८ फ़ोटो कैसे आते हैं।

इसके लिये कैमरेमें विशेष पीठ लगती है। कुछ कंपनियाँ ऐसी हैं जो इस प्रकारकी पीठ बनी-बनाई बेचती हैं या आपके कैमरेके लिये बना देंगी, परंतु नीचे लिखी रीतिसे कोई भी कारीगर ऐसी पीठ आसानीसे बना सकता है।
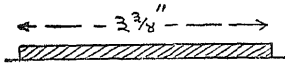
चित्र ४—प्लेटघर, एक सिरेकी ओरसे देखनेपर

पहली बात यह है कि कैमरा बेंड़ी स्थितिमें रख कर फ़ोटोग्राफ़ लिये जायँगे। मैं हाथके कैमरोंकी बात कर रहा हूँ। यदि स्टैंड कैमरा हो जिसमें चौकोर पीठ अलगसे फ़िट होती हो तो बात दूसरी है।

मान लीजिये प्लेटघर टीन (या लोहेकी चादर) का बना है और करीब ३ ७/८" × ५ १/२" नापका है*। जिस खाँचमें यह प्लेटघर पहनाया जाता है उसकी जाँच करके समझ लेना चाहिये कि प्लेटघर कैमरेमें कैसे बैठता है।

आप देखेंगे कि प्लेटघरकी चौड़ाई जो ३ ७/८" है। उसमेंसे ३ ३/८" चौड़ा बीचका भाग लगभग १/८" मोटा है और अगल-बगल १/१६" चौड़ी धज्जी बढ़ी है जो कैमरेकी पीठमें कटी खाँचमें बैठती है।

चित्र ५—कैमरेकी पीठकी खाँच।

अब ठीक प्लेटघरके मोटे भागके बराबर, अर्थात् ३ ३/८" × ५ १/२" नाप की १/८ या ३/१६ इंच मोटी लकड़ी लेनी चाहिये और इसके बीचमें १" × १ १/२" का छेद काट देना चाहिये, जैसा चित्र ६ में दिखलाया गया है।
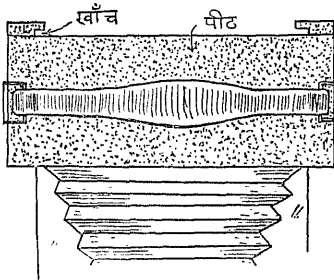
* यहाँ मेरे ९ × १२ सेंटीमीटरवाले कैमरेके प्लेटघरकी नाप है।

इस प्रकार बने चौखटेपर टीन या पीतलकी इतनी मोटी चादर जड़नी चाहिये जो यह कैमरेकी पीठवाली खाँचमें जा सके। अवश्य ही इसके लिये टीनका दोनों
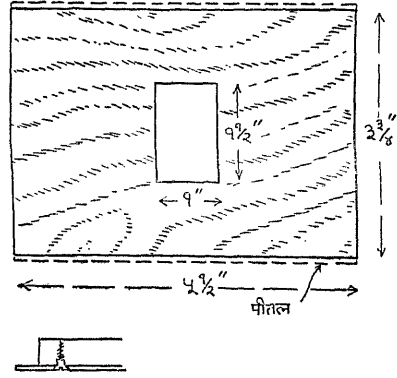
चित्र ६ (ऊपर)—प्लेटघरके स्थानमें लगनेवाला चौखटा, टीन जड़नेके पहले। चित्र ७ (नीचे)—चित्र ६के चौखटेपर टीन जड़नेकी रीति।

ओर १/१६" बढ़ा रहना आवश्यक है (चित्र ७)। जिन पेचोंसे यह टीन जड़ी जाय वे उभरे न रहें, नहीं तो वे कैमरेकी पीठमें फँसेंगे।

इस प्रकार बने चौखटेको १० १/२" × ५ १/२" नापकी करीब १/४" मोटी लकड़ी या प्लाइवुडपर जड़ना चाहिये।
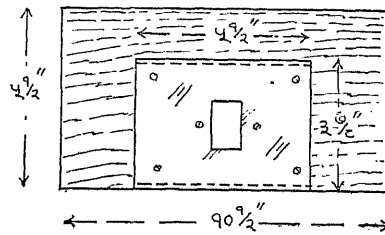
चित्र ८—प्लेटघरमें लगने वाले चौखटेको १० १/२" × ५ १/२"की लकड़ी पर जड़ा जाता है।

स्थितिका पता चित्र ८ से चल जायगा। इसमें भी चौखटेके छेदके सामने १" × १ १/२"का छेद काट देना चाहिये।

१० १/२" × ५ १/२" वाली लकड़ीकी दूसरी तरफ़ काला मखमल सरेससे चिपका देना चाहिये।

इस मखमलपर प्लेटघर खिसकेगा। इसके लिये प्लेटघरको इस प्रकार रखना चाहिये कि प्लेटघरका लम्बा
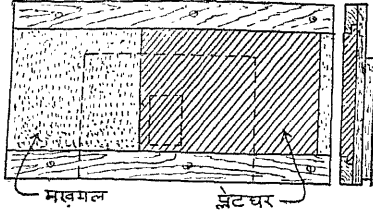
चित्र ६ और १०—
चित्र ६ की लकड़ीका दूसरा पृष्ठ। इधर प्लेटघर लगनेके लिये खांचे बनाये जाते हैं।

किनारा लकड़ीके लम्बे किनारेके समानांतर रहे और १" × १½" वाला छेद प्लेटके एक कोनेमें पड़े (चित्र ६)। प्लेटके खिसकनेके लिये ठीक उस तरहकी खाँचवाली लकड़ियां प्लेटघरके दोनों तरफ जड़ देनी चाहिये जैसी खाँच कैमरेकी पीठमें बनी हो। चित्र १० से यह बात स्पष्ट हो जायगी।

आप देखेंगे कि इस प्रकार बनी पीठ कैमरेकी खाँचमें पहनाई जा सकती है। फिर इस पीठमें बनी खाँचमें प्लेटघर पहनाया जा सकता है। यदि प्लेटघरमें प्लेट भरा हो तो प्लेट घरको पीठमें चित्र ६ की स्थितिमें लगाकर प्लेटघरके ढक्कनको खींच लेनेके बाद,
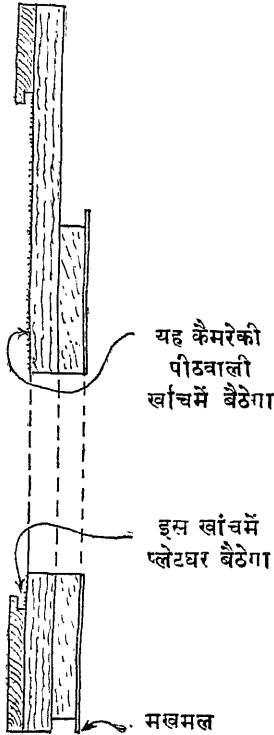
चित्र ११—
चित्र १०में दिखलाई गई पीठका बगलका दृश्य।

प्लेटके एक कोनेमें चित्र खींचा जा सकता है। यदि अब प्लेटघर बांई ओर १$\frac{1}{16}$" खिसका दिया जाय तो प्लेटके एक नवीन स्थानपर, पहले खींचे गये फ़ोटोकी बगलमें, फ़ोटो खिंच जायगा। इसी प्रकार १$\frac{1}{16}$" और खिसका कर तीसरा और अंतमें १$\frac{1}{16}$" और खिसकाकर चौथा चित्र भी खींचा जा सकता है।

यदि अब प्लेटघरमें ढक्कन लगा कर प्लेटघरको निकाल लिया जाय और इसको दाहिनी ओरके बदले बांई ओरसे लगाया जाय तो प्लेटके कोरे बचे आधे भागमें चार फ़ोटो और खींचे जा सकते हैं। इस प्रकार एक ही प्लेटपर आठ फोटो खिंचजायँगे और प्लेटघरके ढक्कनको केवल एकबार बीचमें लगाना पड़ेगा। इसलिये आठो प्रकाश-दर्शनमें केवल एक या दो मिनट, या बहुत हुआ तो ५ मिनट समय लगेगा।

प्लेटघर और बगलकी पटरीपर चिह्न लगा लेना चाहिये जिससे प्लेटघर खिसकाते समय अलग पटरीसे नापना न पड़े।

स्टैंड कैमेरा

यदि स्टैंडकैमेरासे एक प्लेटपर आठ फ़ोटो कोई लेना चाहे तो और भी आसानी पड़ेगी। पहले कैमेराकी असली पीठके बराबर एक दूसरी पीठ बना लेनी चाहिये। इसके बीचमें १" × १½"का छेद रहना चाहिये। इस दूसरी पीठपर मखमल चिपकाकर शेष कार्य ऊपरकी तरह करना चाहिये, परंतु यदि पीठ १०½"से छोटी होतो पीठपर १०½" × ५½" की ¼" मोटी लकड़ी जड़कर शेष कार्य ऊपरकी तरह करना चाहिये। —गो० प्र०

नोट—आशा है कि इस लेखको अच्छी तरह पढ़नेपर आठ फ़ोटो लेनेवाला कैमेरा बनानेमें कोई कठिनाई नहीं पड़ेगी; परन्तु यदि पड़े तो आप -) का टिकट और नीचेका कूपन मंत्री, विज्ञान परिषद् बेली रोड, इलाहाबादके पास भेजकर इस लेखके लेखकका उत्तर मँगा सकते हैं।

इस कूपनके साथ -) का टिकट भेजकर आप उपरोक्त कैमेरा संबंधी किसी भी प्रश्नका उत्तर मँगा सकते हैं।
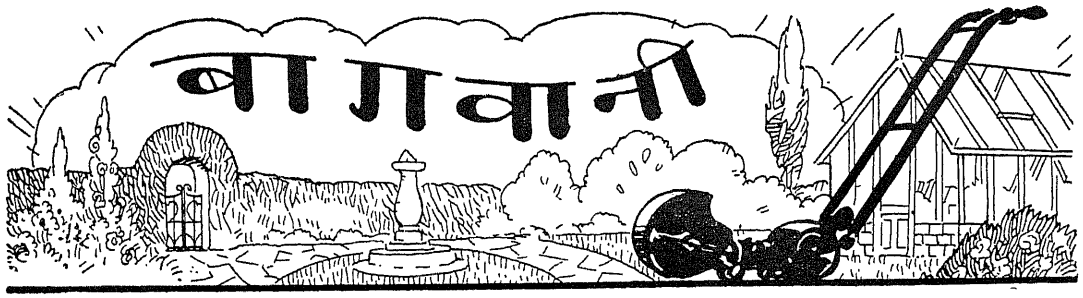
गमले

बाग़वानीमें गमलोंका काम अकसर पड़ता है। एक तो वे मकान और बाग़ सजानेके काममें आते हैं। गमलेमें लगे पौधे इच्छानुसार जहाँ चाहे वहाँ रक्खे जा सकते हैं और इसलिये उनसे सजावटमें बड़ी सहायता मिलती है। इसके अतिरिक्त गमलोंकी सहायतासे सदा फूलते हुये पौधे उपस्थित किये जा सकते हैं, क्योंकि जब तक पौधे तैयार होते रहें तब तक वे अन्यत्र रक्खे जा सकते हैं और फूलना आरंभ करने पर वे सामने लाये जा सकते हैं। फिर गमलेमें लगे पेड़ घरके भीतर बरामदोंमें, छतों पर, सभी जगह रक्खे जा सकते हैं।

दूसरे, गमलोंमें ऐसे सुकुमार पौधे भी उगाये जा सकते हैं जिन्हें कभी धूप चाहिये, कभी छाँह; जिन्हें गरमीके दिनोंमें दिन-रात सायेमें रखना पड़ता है, जाड़ेमें ही धूपमें वे निकाले जा सकते हैं यदि ऐसे पौधे ज़मीनमें रहें तो वे सूखकर मर जायँगे।

तीसरे, गमलोंके प्रयोगसे बेचनेके लिये पौधे तैयार किये जा सकते हैं। ज़मीनमें बोनेसे पौधोंकी जड़ें दूर तक फैल जाती हैं और यदि वे दूसरी जगह लगानेके लिये खोदे जायँ तो बहुत सावधानी करनेपर भी जड़ोंका कुछ अंश टूट ही जाता है जिससे पौधे अकसर मर जाते हैं; परंतु यदि पौधे गमलोंमें लगे रहें तो उनको पीछे इच्छानुसार जगह पर ज़मीनमें लगानेमें ज़रा भी कठिनाई नहीं होगी।

भारतवर्षमें अभी ऐसी दूकानोंका अभाव है जहाँसे पौधे सस्तेमें खरीदे जा सकें। यहाँ कहीं भी ऐसा देखनेमें नहीं आता कि कोई सालमें पांच बार छः बार पौधे ख़रीद कर अपने बाग़में लगाये। परंतु यूरोपमें पौधोंका रोज़गार ख़ूब चलता है। वहाँ ऐसे बहुतसे लोग हैं जो बाज़ारसे मोल लेकर पौधे रोपेंगे। ये पौधे इस दशामें मोल लिये जाते हैं कि रोपनेके एक सप्ताहके भीतरही वे फूलने लगते हैं। जब उनके फूलनेका समय बीत चलता है तब उन्हें उखाड़कर दूसरे पौधे उसी स्थानमें तुरंत लगा दिये जाते हैं और वे भी चूँकि वे तैयार रहते हैं, शीघ्र फूलने लगते हैं। इस प्रकार बाग़ सदाही हरा-भरा और फूलोंसे लदा रहता है।

भारतवर्षमें भी यदि कोई सुरुचिपूर्ण मिहनती हो, और बाग़वानीका उसे अच्छा ज्ञान हो, तो वह इस रोज़गारको फ़ायदेमें कर सकता है। यूरोपमें भी यह रोज़गार पहले नहीं था और रोज़गारियोंने ही कैनवसिंग (बात) कर-कर अपने पौधे बेचना आरंभ किया। अब तो वहाँ यह प्रथा चल निकली है। यहाँ भी आरंभ में कठिनाई पड़ेगी, परंतु यदि लोगोंको उस दामसे सस्तेमें पौधे बेचें जायँ जो दाम उन्हें स्वयं अपने बाग़में अपने मालियोंसे उत्पन्न कराने में पड़ता है और लोगोंका ध्यान इस ओर आकर्षित किया जाय तो कोई कारण नहीं है कि यह रोज़गार बड़े शहरोंके आस-पास चल न निकले।

गमलोंकी जाति

गमले दो तरहके होते हैं। गहरे, जो प्रायः सर्वत्र देखनेमें आते हैं, और छिछले, जो बीज बोनेके काममें आते हैं। यहाँ दिये गये चित्रमें ये छिछले गमले चौकोर दिखलाये गये हैं, परंतु वे गोलभी बनते हैं, और गोल ही छिछले गमले अधिक बनते हैं। इच्छानुसार वे छोटे, बड़े और मझोले नापोंके कुम्हारोंसे बनवा लिये जा सकते हैं। बड़ा
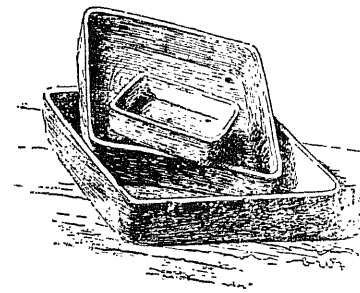
चि० १—बीज बोनेके गमले। ये छिछले होते हैं, और चौकोर या गोल दोनों मेलके बनने हैं।

गमला व्यासमें लग-भग १८ इंच और गहराईमें ४ इंच या ३½ इंच रहे। इनकी पेंदियोंमें एक-एक छेद भी रहे।

गहरे गमले यहाँ साधारणतः दो ही नापके बनते हैं, छोटे और बड़े परंतु यदि बेचनेके लिये बहुतसे पौधे तैयार करना हो तो कई नापके गमलोंके रखनेमें ही किफ़ायत होती है। बात यह है कि यदि बड़े-बड़े गमलों में छोटे-छोटे पौधे लगाये जायँ तो एक तो वे जगह अधिक छेंकते हैं, दूसरे उनके सींचनेमें पानी भी अधिक लगता है। परंतु सबसे बड़ी बात यह है कि जब तक पौधे बड़े होते हैं, तब तक खादका सब घुलनशील पदार्थ वह जाता है। जैसा नीचे बतलाया जायगा, प्रत्येक गमलेकी पेंदीमें जानबूझकर छेद रक्खा जाता है। अब चूँक गमलोंको इतनी सूक्ष्मतासे नहीं सींचा जा सकता कि वे सूखे भी न रह जायँ और कुछ फालतू पानी पेंदीके छेदकी राहसे बहने भी न पाये— व्यवहार में उनमें पानी आवश्यकतासे अधिक भर दिया जाता है और फालतू पानी नीचेके छेदसे वह जाता है—इसलिये धीरे-धीरे खाद का सब आवश्यक अंश बहकर निकल जाता है। इसलिये पौधोंको छोटे गमलोंमें लगाकर उनको आवश्यकतानुसार बड़े गमलोंमें बदलते रहना ही अच्छा है। बड़े गमलोंमें रखते समय अवश्यही नई मिट्टी और खाद जड़ोंके चारो ओर रक्खा जायगा। इसलिये पौधोंको बराबर उचित भोजन मिलता रहेगा।

चित्र २ में ६ गमले दिखलाये गये हैं जिनमें ८ तो साधारण पौधोंके लिये हैं और अंतिम विशेष गहरा छोटा गमला गुलाबोंके कटिंग के लिये है। अमरीकामें इन नापोंके गमले बराबर बाज़ारमें खरीदे जा सकते हैं, परंतु यदि पौधोंका रोज़गार न करना हो तो तीन-चार नापोंके गमले बनवा लेना बहुत काफ़ी होगा।

चित्र २—पौधोंके लिये गमले। यदि बहुत से पौधे बेंचनेके लिये तैयार करना हो तो छोट बड़े सब नापोंके गमलोंके रखनेमें ही किफ़ायत होती है; नहीं तो तीन-चार नापके गमलोंसे काम चल जायगा।

जिस मिट्टीसे गमले बने हों उसे अच्छी होनी चाहिए जिसमें वे शीघ्र नष्ट न हो जाँय (कुछ गमले तो दो वर्ष भी नहीं चलते)। अब सीमेंटके गमले भी आसानी-से बनवाये जा सकते हैं। गमलोंके भीतर सिरके पासका भाग यथासंभव चिकना रहे। नहीं तो गमलोंमें पेड़ रोपते समय हाथोंके छिल जानेका डर रहता है।

सरवे करना

(पृष्ठ १०८ के आगे)

पहले-पहल नकशोंके बनानेमें बड़ी-बड़ी कठिनाइयाँ झेलनी पड़ीं। अधिकांश सरकारी कर्मचारी जो इस विभाग-में नियुक्त हुये थे थोड़ी ही आयुमें मर गये। बहुतसे ऐसे बीमार पड़े कि वे जीवन भरके लिये मरीज़ होगये। बात यह थी कि ऐसे-ऐसे जंगलोंमें उनको महीनों टिककर नकशा बनाना पड़ा जहाँका जल वायु अत्यंत दूषित था। किसीको मलेरिया होगया, किसीको फीलपांव, किसीको अतिसार, किसीको कुछ।

कवरपर एक चित्र पहाड़ी स्थानपर सरवे करनेका दिखलाया गया है (ब्लाक हिंदुस्तानी एकैडेमी की कृपा से प्राप्त)। ऐसी ऊँची ऊँची जगहोंमें भारी भारी यंत्रोंके ले जानेमें बड़ी कठिनाई होती है। इसलिये यथासंभव सरल यंत्रोंका ही उपयोग किया जाता है। चित्रमेंसरलतम यंत्र 'प्लेन टेबुल' दिखलाया गया है। यह तिपाई आरोपित एक साधारण काठका पटरा है। जिस सीधमें कोई दूरस्थ वस्तु दिखलाई पड़ती है उस दिशाको पटरेपर मढ़े काग़ज़पर रेखा खींचकर अंकित कर लिया जाता है। इस प्रकार दो विभिन्न स्थानोंसे दूरस्थ वस्तुओंकी दिशाओंको अंकित कर लेनेपर प्रत्येक की स्थिति और दूरी आदिका पता चल जाता है।

संपादकीय टिप्पणियाँ

चिकित्सासम्बन्धी खोज

हमारा दुर्भाग्य

भारतीय प्राचीन चिकित्सापद्धति आजभी हमारे देशमें बड़ी सफलतासे चल रही है। पच्छाहीं डाक्टरी पद्धतिसे इसका संघर्ष भी इधर लगभग डेढ़सौ वर्षोंसे चल रहा है। ऐसी विकट व्यापारी और राज्याश्रयी स्पर्द्धामें भी आयुर्वेद टिका हुआ है यह एकही बात उसके सच्चे आधारका प्रमाण है। फिर भी जहाँ डाक्टरी पद्धतिमें नित नये अनुसन्धान होते रहते हैं वहां हमारी इस स्वदेशी पद्धतिवाले अबतक वहीं हैं जहाँ हमारे प्राचीन महर्षियोंने छोड़ा है। यह हमारे लिये बड़े अपयशकी बात है। संघर्षके इस युगमें हम जहाँ सत्यान्वेषणमें पिछड़े, वहाँ फिर धक्के खाकर पिछड़ते ही जायँगे और कहींके न होंगे।

युगकी इस मांगपर हमारे देशके चिकित्सकोंने ध्यान न दिया हो, ऐसी बात नहीं है। आयुर्वेद विद्यालयोंकी देशमें कमी नहीं है। थोड़ा-बहुत अनुसन्धान कहलानेयोग्य काम तो व्यक्तिगत रूपसे सभी अच्छी संस्थाओंमें होता रहता है। परन्तु यह काम सुसंगठित रूपसे नहीं होता और थोड़े बहुत व्यक्तिगत कामोंसे विज्ञानकीआवश्यकता कदापि पूरी नहीं होती। इसलिये खोजके कामको ज़ोरोंसे चलानेकी आवश्यकता है।

देशमें जितने आयुर्वेद विद्यालय हैं, सबमें प्रयोगशालाका एक विभाग तो होनाही चाहिये जिसमें आधुनिक रीतिसे औपधियों, पार्थिक धातुओं एवं शारीरिक धातुओंकी रासायनिक परीक्षा सिखायी जाय।

इस तरहकी प्रयोगशालाके साथ ही साथ उच्चकोटिकी अनुसंधानशाला चाहिये जिसमें (१) उन ओपधियोंका रासायनिक विश्लेषण हो जिनकी आधुनिक रीतिसे अबतक परीक्षा नहीं हुई है, (२) सभी ओपधियोंके गुणोंकी परीक्षा हो जो हमारे निघंटुमें हैं, वा नयी हैं, और इस बातका निश्चय किया जाय कि देशकाल आदि अनेक घटकोंके अंतरसे उनके गुणोंमें क्या अंतर पड़ता है, (३) अपने देशकी ओपधियोंका होमियोपैथीकरण करके रोगियों पर परीक्षा की जाय, और (४) प्राचीन और अर्वाचीन यंत्रोंकी खोज की जाय और उन्हें काममें लाया जाय। हमारी जानमें किसी आयुर्वेद विद्यालयमें ऐसी खोजोंका कोई प्रबंध नहीं है और न इस तरहके कामकी ओर किसी अधिकारी विद्वान्का ध्यान ही जाता है। यह हमारा दुर्भाग्य है।

केन्द्रीय आयुर्वेदिक अनुसन्धानसमिति

एक बड़ी मुद्दतके बाद अखिल भारतीय आयुर्वेद सम्मेलनको यह आवश्यकता सूझ गयी और उसने अनुसंधान-कार्यके लिये एक केन्द्रीय समिति बनायी है। उसके उद्देश्य व्यापक हैं और आरंभिक नियमावली भी समीचीन है। आरोग्यदर्पणके संपादक श्री गोपीनाथ जी गुप्त वैद्यने सावरमतीसे उसकी नियमावली हमें भेजी है और इस काममें तनमनधनसे सहायता करनेके लिये उन सब लोगोंसे अपीलकी है जिनका रोगी या उपचारक किसी भांतिका आयुर्वेदसे संबंध है। हमें आपके इस महत्कार्यसे पूरी सहानुभूति है। यदि केवल वैद्यसमुदाय ही इस कामकी ओर ध्यान दे तो बहुत कुछ हो सकता है। पहले तो प्रत्येक वैद्यको इसका सदस्य बन जाना चाहिए। फिर धन संग्रहका सबसे पहले प्रयत्न करनेकी आवश्यकता है।

परंतु इस समितिका सबसे महत्त्वका काम सम्प्रति यह है कि एक बृहत् अनुसंधानशाला ऐसी जगह स्थापित करे जहाँ इसके साधन सहजही सुलभ हों। इस अनुसंधानशालामें अपने जीवनका उद्देश्य एकमात्र खोजको ही बनानेवाले विद्वान् हों, जिन्हें जीविकाकी चिंतासे मुक्तकर दिया जाय। धनसंग्रहमें संलग्न वैद्योंसे खोजके काममें प्रोत्साहन और सहायता भले ही मिले, परंतु सीधे अनुसंधानका काम स्वयं करना उनके लिये कठिन ही होगा। वे अपने अनुभवसे अवश्य ही खोजमें मदद देते रहेंगे।

इस वृहत् केन्द्रीय अनुसन्धानशालाका कार्यतः पोषण देशके आयुर्वेद महाविद्यालय अपनी-अपनी स्वतंत्र अनुसंधान-शालाओं द्वारा करेंगे।

इस वृहत् अनुसंधानशालाको अखिल भारतीय सम्मेलनका केन्द्र कार्यालय बनाना भी उपयुक्त होगा। आयुर्वेदविद्याका सम्मेलन कुछ वाकुपाटव प्रदर्शनके लिये तो है नहीं। उसका उद्देश्य तो चिकित्सापाटव है और आधार है प्राचीन एवं अर्वाचीन खोज। अतः अबतक सम्मेलनका कोई निश्चित स्थान नहीं है, इस अभावकी भी पूर्त्ति हो जायगी।

हम इस समितिके उद्देश्योंके हृदयसे समर्थक हैं, और आशा करते हैं कि देशभी तनमनधनसे समर्थन करेगा।

—रां० गौ०

विषयसूची

मूर्वा

जनवरी १९३७ भाग ४५ { प्रयाग की विज्ञान-परिषद का मुख्य पत्र, जिसमें आयुर्वेद-विज्ञान भी सम्मिलित है } संख्या ४ मूल्य ।)

Approved by the Directors of Public I 'ruction, United Provinces & Central Provinces, for use in Schools and Libraries.

विज्ञान

पूर्ण संख्या
२६२

वार्षिक मूल्य ३)

नोट- बदले के सामयिक पत्रादि, लेख और समालोचनार्थ पुस्तक, यदि वे आयुर्वेद पर न हों, तो 'सम्पादक, विज्ञान, बनारस शहर, के पास भेजे जायँ। अन्यथा वे स्वामी हरिशरणानन्द, पंजाब आयुर्वेदिक फार्मेसी, अकाली मार्केट अमृतसर के पास भेजे जायँ।

प्रबन्ध-सम्बन्धी सब पत्र तथा मनीआर्डर 'मंत्री, विज्ञान-परिषद, इलाहाबाद के पास भेजे जायँ।

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते,

विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५॥

भाग ४४ | प्रयाग । कुंभार्क, संवत् १९९३ वि० । जनवरी, १९३७ | संख्या ४

मंगलाचरण

जय जय महादेव विज्ञान !

तुम शिव, शंकर और रुद्र तुम,
अमित-शक्ति गतिमान !
सतत सुधाकर से तुम शोभित,
करते जग-कल्याण !
किन्तु तुम्हीं करते अवसर पर,
कालकूट का पान !
तुम यद्यपि करते हो जग का,
भला भव्य भगवान् !
उग्र रूप धर किन्तु तुम्हीं फिर,
करते नाश महान् !
जय जय महादेव विज्ञान !

—किशोरीदास वाजपेयी

आपका मस्तिष्क

क्यों किसीको हँसनेका, किसीको रोनेका रोग हो जाता है।
क्यों किसीका हाथ काँपता है, और क्यों किसीका बोल बन्द हो जाता है।

[मूल लेखक—श्री जी० एह० एस्टब्रुक्स, मनोविज्ञान-प्रोफेसर, कॉलगेट विश्वविद्यालय, अमरीका]

चाँदी की खोपड़ी

रे एक मित्र हैं जिनके मस्तिष्कका आधेसे ज्यादा भाग गत यूरोपीय महासमरमें उड़ गया था। उनके मस्तकमें एक बमके टुकड़ेकी चोट लगी थी जिससे उनके मस्तिष्कका बहुत सा भाग नष्ट हो गया था। जब वे अस्पताल भेजे गये तो टूटी खोपड़ीके बदले चांदीका पत्तर लगा दिया गया। वे अन्तमें पूर्णतया चंगे हो गये और सेनापति (करनल) होकर उन्होंने पेन्शन ली। प्रत्यक्ष है कि उपर्युक्त दुर्घटनासे उनको विशेष हानि नहीं हुई। एक दूसरे व्यक्तिके सिरमें एक गोली आज भी पड़ी हुई है, तो भी वह हर बातमें साधारण व्यक्तिही जान पड़ता है। एक डाक्टरने एक मनुष्यके मस्तिष्कके दाहने भागसे नारंगीके बराबर गंड (ट्यूमर) काटकर निकाला है। इस गंडके रहनेसे उस व्यक्तिको कोई ख़ास तकलीफ नहीं थी या उसमें कोई बहुत असाधारण लक्षण नहीं दिखलाई पड़ते थे। एक मेरे दूसरे डाक्टर मित्र बतलाते हैं कि एक व्यक्तिके मस्तिष्कको उपदंश-रोगने ऐसा नष्ट कर दिया था कि उसके मस्तकमें एक ओर नाक तक, दूसरी ओर खोपड़ी तक छुरी खोंस देने पर भी उसको पता नहीं लगता था। यह व्यक्ति उपदंश रोगसे मर गया, परन्तु जब तक वह जीता था केवल उसे सर भारी रहने या कभी-कभी चक्कर आनेकी ही शिकायत रहती थी।

तुरन्त मृत्यु

उपर्युक्त उदाहरणोंसे आश्चर्य होता है कि मस्तिष्कमें कितना भारी-भारी आघात पहुंच सकता है और तिसपर भी दुष्परिणाम कुछ नहीं, या प्रायः कुछ नहीं, होता। एक विशेषज्ञ ने हमारा ध्यान इस ओर आकर्षित किया है कि मानव शरीरमें आघात सहनेकी अद्भुत शक्तिभी है और नाम-मात्र आघातसे कभी-कभी भयंकर दुर्घटना भी हो जाती है। मस्तिष्कके बारेमें भी यह पूर्णतया सत्य है। उस नाड़ी पर ज़रा सा भी दबाव पड़नेसे जो हृदयको मस्तिष्कके क़ाबूमें रखती है, तुरन्त मृत्यु हो सकती है। 'पिटुइटैरी' नामक ग्रंथिमें मटरके बराबर भी गुलठी पड़ जानेसे तुरन्त आदमी अंधा हो जाता है। गत यूरोपीय महासमरमें कई बार सिपाहियों की मृत्यु हो गई थी, यद्यपि उनका एक बालभी बाँका नहीं हुआ था—बस कारण यही था कि उनके आस-पास कहीं बम फटा था, जिसके कारण वहाँ के वायुका दबाव क्षण भरके लिये इतना बढ़ गया कि उनकी मृत्यु हो गई।

तीन विभाग

यदि हम मस्तिष्कके रोगोंको समझना चाहें तो यह आवश्यक है कि हम पहले समझ लें कि नाड़ी-मंडल किस प्रकार अपना काम करता है। मोटे हिसाबसे नाड़ी-मंडल तीन खंडोंमें विभक्त किया जा सकता है—(१) प्रधान मस्तिष्क, (२) मस्तिष्क की जड़के पास स्थित नाड़ी-केंद्र और (३) सुषुम्ना (अर्थात् मस्तिष्कसे रीढ़ तक जाने वाली नाड़ी) तथा इससे बाहर और भीतर जाने वाली नाड़ियाँ। अब मान लीजिये कि उपदंश रोगके कीटाणु नाड़ी-मंडल पर आक्रमण करते हैं। परिणाम-स्वरूप कई बातें हो सकती हैं, क्योंकि ये कीटाणु किसी विशेष अंगपर ही नहीं मुग्ध होते। ये हड्डी, धमनी, त्वचा, या नाड़ी-मंडल सभी पर आक्रमण कर सकते हैं; इतनाही नहीं, नाड़ी-मंडलमें वे जहाँ चाहें तहाँ अपना आक्रमण आरंभ कर सकते हैं। मान लीजिये वे केवल सुषुम्ना पर आक्रमण करते हैं। इसका परिणाम यह होगा कि चलने और हाथसे काम करनेमें एक विचित्रता आ जायगी। यदि साथही कोई दूसरी गड़बड़ी न हुई तो ऐसा व्यक्ति एक विचित्र लदफदाते ढंगसे चलेगा, यद्यपि अन्य बातोंमें वह व्यक्ति पूर्णतया साधारण पाया जायगा।

परन्तु उपदंश रोगके कीटाणु मस्तिष्ककी जड़के पास स्थित नाड़ी-केंद्रोंपर आक्रमण कर सकते हैं। अबकी बार लक्षण अधिक भयानक होंगे और साधारणतः मनके आवेगों

को वशमें न रख सकनेके रूपमें दिखलाई पड़ेंगे। ऐसे व्यक्ति में कोपकी ज्वाला सहजही में भभक सकती है या वह प्रायः अकारण ही, बड़े ज़ोरसे रो और हँस सकता है। परन्तु अन्य बातोंमें ऐसा व्यक्ति पूर्णतया साधारण रह सकता है और उसी विशद रीतिसे तर्क कर सकता है जैसा पहले। केवल जब प्रधान मस्तिष्कपर आक्रमण होता है तभी वह भयानक पागलपन उत्पन्न होता है जिसको मस्तिष्कका लक़वा कहते हैं।

हाथ-पैर का सुन्न हो जाना

इस दशाको हमें ज़रा और ध्यान-पूर्वक देखना चाहिये। मान लीजिये किसीके दाहिने पैरमें लक़वा मार गया है। इसके अनेक कारणहो सकते हैं। उदाहरणार्थ, कोईभी जर्राह पैरसे रीढ़ तक जाने वाली नाड़ीको किसीभी जगहसे काटकर पैर सुन्न कर सकता है। परन्तु यह नाड़ी काफ़ी गहरेमें है और इसलिये साधारण आघातोंमें इसको कोई क्षति नहीं पहुंचती। फिर, ऐसे कीटाणु बहुत कम ही हैं जो सुषुम्ना को छोड़ अन्य स्थानोंमें नाड़ी-मंडलपर आक्रमण करें। तोभी सुषुम्नाके भीतर कई बातें हो सकती हैं। सबसे दर्दनाक बच्चोंका लक़वा है। इस बीमारीके कीटाणु अपने भोजनमें बड़ी छान-बीन करने वाले हैं। वे केवल उन नाड़ियोंके सेलों को खाते हैं जो मांस-पेशियोंसे सम्बद्ध होती हैं। परिणाम यह होता है कि धीरे-धीरे उन नाड़ियोंके न रहनेसे जिससे वे परिचालित होती हैं ये मांस-पेशियाँ नष्ट हो जाती हैं। पाश्चात्य डाक्टरोंको यह आशा है कि ऐसा रक्तरस [सिरम] बन्दरोंकी सुषुम्नासे बनाया जा सकेगा जिससे इस रोगपर विजय मिलेगी, परन्तु अभी यह आशाही मात्र है। फिर, उपर्युक्त लक़वा का कारण यह भी हो सकता है कि सुषुम्ना की ऊपरी झिल्ली सूज गई हो। ऐसी दशामें कीटाणु सुषुम्ना की झिल्लीपर आक्रमण करते हैं जिससे वह सूज जाती है; कभी-कभी तो इतना कि झिल्ली सूजकर नाड़ियोंके सेलोंकी जगह घेर लेती है और उनको नष्टकर डालती है। इससे तरह-तरह का लक़वा हो जाता है। सुषुम्ना के उपदंशसे साधारणतः, जैसा ऊपर बतलाया गया है, हाथ-पैर लचाना असंभव हो जाता है। सुषुम्नामें कभी कभी गंडभी निकल आता है, जिससे कोई एक विशेष अंग सुन्न हो जाता है। फिर, सुषुम्नामें रक्तहीनता की बीमारीभी हो जा सकती है, जिसकाभी परिणाम वही होता है। अवश्य ही रीढ़के टूट जानेसे सुषुम्नाके दबनेपर, या उसपर भारी आघात पड़नेसे एक टाँग सुन्न हो जा सकती है और सरजन भी सुषुम्नाको 'बेहोश' करके कुछ समयके लिये हाथ या पैर सुन्नकर सकता है। ऊपर लक़वा के साधारण कारणोंमें से कुछ ही गिनाये गये हैं।

पैरके सुन्न हो जानेका कारण यह है कि पैर चलानेकी क्रियापर मस्तिष्क का शासन रहता है, और मस्तिष्क तक खबर भेजनेका रास्ता पहले सुषुम्ना तक जाता है और फिर वहाँसे मस्तिष्कका रास्ता कहींसे भी बन्द हो जायगा तो गड़बड़ी होगी। परन्तु ध्यान रखना चाहिये कि मस्तिष्क स्वयं इन बीमारियोंमें स्वस्थ रहता है।

परन्तु जब रोगके कीटाणु सुषुम्नाके बदले मस्तिष्क की जड़तक पहुंच जाते हैं तो बात दूसरी हो जाती है और परिणाम अधिक भयंकर हो जाता है। यहाँ कई महत्वपूर्ण केंद्र रहते हैं। पहले तो वे नाड़ियाँ भी यहीं हैं जो हृदय और फेफड़ोंपर शासन करती हैं। इसीलिये जब मुखपर लक़वा मारता है, जिससे पता चलता है कि कीटाणु हृदय और फेफड़ोंका नाड़ियोंके पास पहुंच गये हैं, तो डाक्टर हताश हो जाते हैं। इसी कारणसे गरदनके टूट जानेसे भी मृत्यु तुरन्त होती है।

फिर, मस्तिष्कसे पैरों तक जाने वाली खबरकी नाड़ियाँ यहींसे होकर सुषुम्ना तक जाती हैं। इसलिये यहाँ कीटाणुओं-के पहुंच जानेपर वह बीमारी हो जाती है जिसमें हाथ-पैर अपने आप झटका खाया करते हैं।

अकारण हँसी

अन्तमें, मस्तिष्क की जड़ और हमारे भावोंमें भी विशेष संबन्ध रहता है, और पागलपन की प्रथम झलक यहीं दिखलाई पड़ती है। उदाहरणतः, यहाँ की एक विशेष नाड़ी [ऑप्टिक थैलमस] पर जब उपदंशके रोग आक्रमण करते हैं, तब अपने भावोंको वशमें रखनेकी शक्ति उस व्यक्तिमें नहीं रह जाती। वह एक घंटा तक बराबर हँसता रह सकता है और सोभी अकारण ही—उस व्यक्ति कोभी हँसनेका कोई कारण नहीं दिखलाई पड़ेगा। वह स्वयं जानता है कि हँसना मूर्खता है। परन्तु वह अपने हँसनेको रोक नहीं सकता। इसी प्रकार उसके अन्य भावभी बेक़ाबू हो जा सकते हैं।

सोनेकी बीमारीमें यह रोग बड़ा भयंकर रूप धारणकर लेता है। यहभी मस्तिष्ककी जड़की बीमारी है। नींद अधिक लगनेके अतिरिक्त उस व्यक्तिमें भीषण चिड़चिड़ाहट भी आ जाती है, जिससे ऐसे व्यक्तिसे बचकर रहनेमें ही बुद्धिमानी है। जब उसपर धुन सवार हो जाती है तब वह ऐसे पाप कर बैठता है जिसे सुनकर रोंगटे खड़े हो जाते हैं।

लक़वा

मस्तिष्ककी जड़के बाद अब मस्तिष्क की बारी आती है। वहाँ रोग लगनेसे अनेक लक्षण उत्पन्न होते हैं और सभी पागलपनमें शरीक नहीं किये जा सकते। उदाहरणतः, कानके कुछ ऊपर मस्तिष्क का वह भाग है जो सारे शरीर की चालोंको क़ाबूमें रखता है। यह भाग काफ़ी बड़ा है, जिससे ऐसा हो सकता है कि रोग केवल इसी भागमें रह जाय और अन्य भाग पूर्णतया स्वस्थ रहें। जब किसीको लक़वा मारता है तो इसका अर्थ यह होता है कि इस भागमें कोई धमनी फट गई है और जो ख़ून निकल पड़ा है उसके दबावसे मस्तिष्कके सेल बेकाम हो गये हैं। इससे प्रत्येक अंग बेक़ाबू हो जाता है, यह सही है, परन्तु यद्यपि मस्तिष्कमें ख़राबी आई है तो भी वह आदमी पागल नहीं कहा जा सकता।

चाय का प्याला नहीं उठा सका

मस्तिष्कके किस भागमें कौन-से कार्य का केंद्र है इसका अध्ययन अत्यन्त रोचक है। उदाहरणतः, मस्तिष्कके पीछे बारीक कामोंके करने का केंद्र है। इसी भागसे लिखना, सितार बजाना, और नक्काशी करना सीखा जाता है। यदि यह भाग नष्ट हो जाय, जैसे गोली लगनेसे, या उपदंश रोगके कीटाणुओंसे, या किसी धमनीके फट जाने पर खून उतर आनेसे, तो वह विचित्र बीमारी हो जायगी जिसको अंग्रेज़ीमें 'अपरेक्सिया' कहते हैं। इससे बारीक़ काम करने की शक्ति जाती रहती है। यदि ऐसे व्यक्तिसे अपना हस्ताक्षर करने को कहा जाय तो पता चलेगा कि लिखने की शक्ति पूर्णतया चली गई है। हाँ, मुट्ठीमें क़लम पकड़ कर हाथ-हाथ भरके अक्षर लिखे जायें तो बात दूसरी है। एक बार मैंने एक ऐसे सिपाही को देखा जिसके मस्तिष्कमें ठीक इसी जगह चोट लगी थी। वह बेचारा चायके प्याले का हैंडल पकड़ने चला तो पकड़ ही न पाया। अंतमें परेशान होकर, उसने दोनों हाथोंसे प्याले को पकड़ लिया, परन्तु इतने ज़ोरोंसे कि प्याला चूर-चूर हो गया—और उसे स्वयं औरों की तरह अपने भद्देपन पर बड़ी हँसी आई।

बोलना और सुनना

बाईं ओर कानसे ज़रा-सा ऊपर बोलने की शक्ति का केंद्र है। इसी केंद्रमें होंठ और जीभ चला कर शब्द उच्चारण करने की शक्ति बसती है। यहाँ चोट लगनेसे आदमी बोलना भूल जाता है। वह खूब जानता है कि उसे क्या बोलना है, पर जब बोलने लगता है तब बोली अंट-संट निकलती है।

इसी प्रकार सुननेके केंद्रमें चोट पहुंचने पर बोली समझने की शक्ति जाती रहती है। यह केंद्र मस्तिष्कके पिछले भागमें है और कानसे नाड़ी सीधे यहाँ जाती है। यहाँ आघात पहुंचने पर बोली सुनाई तो देती है, परंतु कुछ समझमें नहीं आता। कोई हिन्दीमें ऐसे व्यक्तिसे बोले तो वह सोचेगा कि शायद कोई उससे जरमन भाषामें बात कर रहा है। परंतु वह हिन्दी की पुस्तकें अच्छी तरह पढ़ और समझ सकेगा। एक सिपाहीके मस्तिष्कमें ठीक इसी जगह बम का एक टुकड़ा घुस गया था। बेचारा अपनी मातृ-भाषा भी पूर्णतया भूल गया। अच्छा होने पर उसे सब बातें फिरसे सीखनी पड़ीं।

मस्तिष्कके सबसे पीछेके भागमें देखने का केंद्र है। यदि यहाँ कोई गंड निकल आये, या किसी धमनीके फटनेसे खून उतर आये, तो आँखसे देखी बातें ज़रा भी समझमें न आयेंगी। मुंहसे बोली हुई बात ऐसा व्यक्ति अच्छी तरह समझ सकेगा और स्वयं अच्छी तरह बोल भी सकेगा, परंतु बड़े-बड़े अक्षरोंमें लिखा हुआ अपना नाम भी वह पढ़ न सकेगा।

पागलपन

इन सब बातों का अध्ययन बड़ा रोचक है। ऐसे दोष विविध केंद्रों पर आघात पहुंचनेसे उत्पन्न हो सकते हैं। उपदंश रोग भी इस विषयमें बड़ा घातक है। गरदनतोड़ बुख़ारसे भी ऐसी बातें हो सकती हैं। यहाँ तक कि ईंफ़्लुएंज़ासे भी मस्तिष्कमें ख़राबी आ सकती है। डिफ़थीरियासे अंधा या बहरा हो जाने की बात तो सभी जानते हैं। मस्तिष्कमें गंड निकलनेसे, या बुढ़ापेके लक़वे, या जवानीके समय सरमें चोट लगनेसे भी बहुत सी बातें हो

सकती हैं। कुछ ज़हरों और नशीली चीज़से भी मस्तिष्क पर आश्चर्यजनक, परंतु चणिक, प्रभाव पड़ सकता है, उदाहरणतः, अफ़ीमसे, कैसे-कैसे स्वप्न अफ़ीमचियों को दिखालाई पड़ते हैं! फिर, यदि मस्तिष्कके किसी एक भागमें रक्त का पहुंचना बंद हो जाय तो तुरंत गड़बड़ी दिखलाई पड़ती है। बुढ़ापेमें इसी कारणसे सब इंद्रियों की शक्तियाँ घटने लगती हैं। कारण यह है कि मस्तिष्क तक जाने वाली धमनियाँ खटिकम (कैल्सियम) के चारोंसे भर जाती हैं। इसीको कहा जाता है कि धमनियाँ कड़ी हो गईं—और इस प्रकार का मार्ग बंद हो जाता है और स्मरण शक्ति कुछ अंशोंमें विचित्र रीतिसे लुप्त हो जाती है, जैसा कि अक्सर बूढ़े व्यक्तिके बारेमें सुननेमें आता है।

परंतु मारके की बात यह है कि उपर्युक्त रीतिसे एक दो भागोंमें प्रधान मस्तिष्कमें भी गड़बड़ी होने जानेसे आदमी पागल नहीं हो जाता। ऐसा जान पड़ता है कि जब समूचे मस्तिष्कमें गड़बड़ी होती है तभी पागलपन उत्पन्न होता है। उपदंशसे जब तक मस्तिष्कके एक-आध अंग ख़राब हुये रहते हैं तब तक विशेष-विशेष लक्षण ही दिखलाई पड़ते हैं पागलपन तभी उत्पन्न होता है जब यह रोग सारे मस्तिष्क को पकड़ले। इसी प्रकार कहीं छोटे गंडके निकल आनेसे यदि किसी विशेष अंग पर दबाव पड़ेगा तो ऊपर बतलाये गये लक्षणोंमेंसे कोई लक्षण दिखलाई पड़ेगा। कसी-किसी स्थानमें बड़ेसे भी गंडके निकल आने पर कोई विशेष हानि नहीं होती, परंतु यदि गंड ऐसे स्थानमें हो कि सारे मस्तिष्क पर दबाव पड़े, तो ऐसे व्यक्तिको पागलख़ानेमें ही भेजनेमें कुशल है।

ताप और शीत की विचित्र लीला

[लेखक—श्री विश्वम्भरनाथ श्रीवास्तव, एम० एस-सी०]

अधिक ताप या शीत पहुंचानेसे वस्तुओंकी दशामें बहुत परिवर्तन हो जाता है। बहुधा उसका रूप इतना बदल जाता है कि साधारण मनुष्यके लिये यह बताना कि यह वस्तु पूर्व वस्तुसे बनी है बहुत कठिन है। किसी वस्तुकी स्थिति उसके तापक्रम-पर निर्भर है। स्वस्थ मनुष्यका तापक्रम ९८·४ अंश फ़ारेनहाईट है। यदि किसी कारणसे मनुष्यके रक्त का तापक्रम १० अंश भी बढ़ जाय या केवल ३ अंश कम हो जाय तो उसका जीवित रहना असम्भव है। बहुधा तापक्रम सेण्टीग्रेड तापमापकसे नापा जाता है जिसके अनुसार खौलते हुए पानी का तापक्रम १०० अंश और बर्फ़का तापक्रम ० अंश है।

तापक्रमके बहुत अधिक परिवर्तन को मनुष्य आसानीसे नहीं सह सकता। यदि किसी स्थानपर वायुका तापक्रम ८० अंश सेण्टीग्रेडसे अधिक हो या –८० से कम हो तो मनुष्यका उस स्थानपर कुछ कालके लिये भी जीवित रहना कठिन है। परन्तु प्रयोग द्वारा यह देखा गया है कि कुछ सूक्ष्म कीटाणु दो तीन सप्ताह तक द्रवित हीलियम (–२६९° श) में रखे जानेपर भी नहीं मरे। जबतक वे द्रवमें थे वे सुस्त पड़े रहे, परन्तु बाहर निकालनेपर उनमें पहिले के समान तेज़ी और शक्ति आगई; मनुष्य कदापि इस दशामें जीवित नहीं रह सकता।

पृथ्वीपर सबसे अधिक तापक्रम वाले स्थान ट्रीपालीमें अज़ीज़िया (१३६·४ अंश फ़ारेनहाइट) और कैलीफ़ोरनियमें मृत्युकी घाटी (डेथ वैली) (१३४·१° फ०) हैं। पृथ्वी के सबसे ठंढे स्थान जहाँ मनुष्य तापक्रम नाप सका है साईबीरिया (–८७° फ०) और अलास्का (–८२° फ०) हैं।

पृथ्वीके तलपर तापक्रमकी अवधि जो प्रकृतिमें पाई जाती है वह २२३° फ० है। सृष्टि में तापक्रमकी अवधि तो इससे कहीं ज्यादा है। वायु-मंडलमें ज्यों ज्यों हम ऊपर जाते हैं तापक्रम घटता जाता है परन्तु ८ या १० मील ऊपर जाने पर तापक्रम स्थिर हो जाता है। यह तापक्रम ध्रुवों के ऊपर –४०° श और भूमध्य रेखाके ऊपर –८०° श के लगभग होता है। तारों के बीचमें जो ख़ाली जगहें हैं उनका तापक्रम बहुतही कम (लगभग–२७०° श) है। इससे कम तापक्रम सृष्टिमें नहीं पाया जाता, परन्तु जैसा हम अभी देखेंगे मनुष्यने अपनी प्रयोगशालामें इससेभी कम

तापक्रम प्राप्तकर लिया है। सबसे कम तापक्रम जो अनुभव किया जासकता है वह –२७३·२° श है। तापक्रम का इससे कम होना असम्भव है।

सृष्टि में इतना अधिक तापक्रम पाया जाता है कि उसका अनुमान करनाभी कठिन है। सूर्यके तल का तापक्रम ६०००° श है परन्तु उसके अन्दर तापक्रम इससे कहीं ज्यादा होगा। अनुमान किया जाता है कि यह लगभग ४०,०००,०००° श है। तारों का तापक्रम इससे भी अधिक होता है। सबसे गर्म तारेके तलका तापक्रम २३०००° श है। एक नवीन तारेके केन्द्रका, जिसको प्लासकेट का तारा कहते हैं, तापक्रम ५००,०००,०००° श के लगभग होगा। कुछ तारोंके अन्दर पदार्थ का घनत्व पानीके घनत्वका ६०,००० गुना है, अर्थात् वह परराैप्यम (प्लेटीनम) से, जो कि हमारी पृथ्वीपर सबसे घना पदार्थ है, ३००० गुना अधिक भारी है। यह बड़े अचरजकी बात है। इसका कारण यह है कि तारेके अन्दर पदार्थकी दशा हमारे पृथ्वीके पदार्थसे बिलकुल भिन्न है वहाँ अधिक तापक्रम के कारण परमाणु के ऋणाणु (इलेक्ट्रन) भी उसमेंसे बाहर निकल जाते हैं। जिस तरह पदार्थ को गर्म करनेसे वह पहले पिघलता है और तब गैस बनकर उड़ जाता है उसी प्रकार अधिक गर्म करनेपर अणुसे परमाणु बन जाता है और परमाणुसे भी ऋणाणु एक एक करके बाहर निकलते जाते हैं। इस बातका पूरा महत्त्व पहलेपहल भारतवर्षके प्रोफ़ेसर मेघनाद साहाने वैज्ञानिकोंको बतलाया था।

मनुष्यने भी अपने इच्छाके अनुसार तापक्रम उत्पन्न करने का प्रयत्न किया है। इसमें उसको कुछ दर्जे तक सफलता प्राप्त हुई है। अबतो कोई भी गैस पदार्थ द्रवमें परिवर्तित किया जा सकता है। आजकल प्रत्येक बड़े नगरमें द्रवित वायु आसानी से मिल सकती है। एक आने में करीब आध सेर मिल जायगा।

अनेक प्रकार के काम इस्तेमाल होता है। इससे आक्सीजन गैस बनाई जाती है जो कभी कभी अस्पतालमें बीमार मनुष्यके साँस लेनेके लिये इस्तेमाल होती है। द्रवित वायुसे वस्तुओंको ठंडा करनेपर बहुधा उनमें विचित्र प्रकारके परिवर्तन हो जाते हैं। लोहा और रबड़ इस प्रकार ठंडा करने के बाद कांचकी तरह आसानीसे तोड़े जा सकते हैं। सीसा लचीला हो जाता है, इत्यादि। हिमजन या हीलियम गैस ट्रावनकोरमें एक प्रकारके बालूसे प्राप्त होती है। इसकी मात्रा संसारमें बहुत कम है, इसलिये यह एक बहुमूल्य पदार्थ है। हीलियम गैस को द्रवित करनेसे –२६८° श का तापक्रम प्राप्त होता है। संसारमें ऐसी प्रयोगशालायें बहुत कम हैं जिनमें इतना कम तापक्रम उत्पन्न किया जासके। इनमें सबसे उत्तम लाइडन (हालण्ड) में है। द्रवित हीलियम पर दबाव कम करनेसे वह खौलने लगता है। इस प्रकार तापक्रम –२७२·४° श तक पहुंच जाता है। लाइडनके प्रोफ़ेसर डी-हास ने हाल ही में एक नई विधिसे बहुतही कम तापक्रम प्राप्त किया है। वे परम शून्य तापक्रम के जो –२७३·२° श है, ०·००४४ अंश पास तक पहुंच गये अथवा परम शून्य केवल एक डिगरी का लगभग $\frac{1}{5000}$ वाँ भाग ही दूर रह गया। वास्तवमें इतना कम तापक्रम सृष्टिभरमें और कहीं भी नहीं पाया जाता, अर्थात् मनुष्य इस बातमें प्रकृतिसे भी आगे बढ़ गया।

बर्फ़ कई प्रकार की होती है। मामूली बर्फ़ का तापक्रम ०° श० है और इसलिये यह ठंडी मालूम होती है परन्तु यदि बहुतज्यादा दबाव का इस्तेमाल किया जाय तो बड़ी विचित्र बर्फ़ें बनती हैं। अमरीकामें प्रोफ़ेसर ब्रिजमैनने इस तरह लगभग १००० मन प्रति वर्ग इंच दबाव लगाकर एक प्रकार की गर्म बर्फ़ तैयार की है जो इतना गरमकी जा सकती है कि हाथ उसको सह नहीं सकता, परन्तु तबभी वह नहीं पिघलती। इस बर्फ़ को लगभग ३,५०० मन प्रति वर्ग इंच दबाव लगाकर एक दूसरे प्रकार की गर्म बर्फ़ तैयार की जा सकती है जो खौलते हुए पानीसे भी ज्यादा गर्म है। दबाव और ज्यादा बढ़ानेसे इस गर्म बर्फ़ का तापक्रम और ज्यादा बढ़ाया जा सकता है। अतः हम यह बड़े अचरज की बात देखते हैं कि सब बर्फ़ ठंडी नहीं होती, बल्कि कुछ प्रकार की बर्फ़ बहुत गर्म होती हैं। इन दो प्रकार की बर्फ़ों का आविष्कार प्रोफ़ेसर ब्रिजमैनने अपने नये यन्त्र द्वारा किया। इसके द्वारा वे लगभग २०,००० मन प्रति वर्ग इंच का दबाव पैदा कर सकते हैं।

कर्बनद्विओषिद गैसके पीपे बाजारमें मिलते हैं। इनमें यह गैस अधिक दबाव पर भरी रहती है। अग एकायक पीपे का नल खोल दिया जाय तो गैस टोंटीसे बाहर निकल कर सफ़ेद ठोसकी शक्लमें जम जायगी। इसको कर्बनिकाम्ल का बर्फ़ कहते हैं।

ताप उत्पन्न करनेके लिये लकड़ी, कोयला, या और प्रकारका ईंधन जलाया जाता है। मिट्टीका तैल, पेट्रोल या कोयलाके गैसको जलाकर और अधिक तापक्रम प्राप्त किया जा सकता है। इस तरह उचित पदार्थोंको लेनेसे लगभग २०००° श का तापक्रम मिल सकता है। एसीटलीन गैस को ओषजनमें जलानेसे तापक्रम ३५००° श तक पहुंच जाता है, इसलिये अक्सर इसको बड़े बड़े कारखानोंमें लोहेकी चीज़ोंके जोड़ने अथवा अन्य काममें इस्तेमाल करते हैं। परमाणुक उदजन [हाइड्रोजन] की ज्वालाका तापक्रम ३८००° श होता है। इस तापक्रमपर लगभग सभी पदार्थ पिघल जाते हैं। यदि कार्बनके दो छड़ोंको बैटरीके ध्रुवोंसे जोड़ दें और इन छड़ोंको एक दूसरेके बहुत निकट ले जाँय, तो छड़ोंके बीचमें एक चिनगारी दिखलाई देगी। इस तरह लगभग ४०००° श का तापक्रम प्राप्त हो जायगा। इससे अधिक तापक्रम उत्पन्न करना बहुत कठिन है। मामूली चश्मेके शीशे अथवा लेन्सद्वारा भी सूर्य्यकी किरणोंको थोड़ी सी जगहमें इकट्ठा करनेसे काफ़ी ताप उत्पन्न हो सकता है, और रूई इत्यादि जलाई जा सकती है। इस तरह बहुत अधिक शक्तिवाले लेन्सकी सहायतासे लगभग ५५००° श का तापक्रम प्राप्त किया गया है। इससे अधिक तापक्रम मनुष्य काफ़ी समय तक अपने वश रखनेमें अभी तक असमर्थ है, परन्तु केवल एक पलके लिये वह लगभग ३०,०००° श तक पहुंच गया है। ऐसा करने के लिये एक तारके द्वारा इतनी अधिक वैद्युत-धारा भेजी जाती है कि वह तुरन्त जल उठता है और इस जलनेमें इतना तापक्रम उत्पन्न हो जाता है। इससे अधिक तापक्रम उत्पन्न करना मनुष्यकी शक्ति के बाहर है, यद्यपि सृष्टिमें तारोंके केन्द्र पर इसका लाख गुना तापक्रम पाया जाता है, ऊंचा तापक्रम प्राप्त करनेमें मनुष्य प्रकृतिसे अभी बहुत पीछे है।

अतः यह स्पष्ट है कि और अधिक तापक्रम प्राप्त करने के लिये मनुष्यको वैसा ही करना चाहिये जैसा तारोंके अन्दर प्रकृति कर रही है। अभी हमको इस क्रियाका पूरा पूरा ज्ञान नहीं है, परन्तु यह अनुभव किया जाता है कि किसी तरह तारेके अन्दर जड़ पदार्थकी कुछ मात्रा तारे की किरणोंमें परिवर्तित हो जाती है और इस प्रकार ताप उत्पन्न होता है। एक ग्राम जड़ पदार्थमें उतनी शक्ति मौजूद है जितना २५०० टन कोयला जलानेसे उत्पन्न होती है। पदार्थके परमाणुमें यह परिवर्तन होता है। इसी के कारण चारोंओर आकाशसे पृथ्वीपर एक प्रकारकी किरणें (cosmic rays) आती हैं जो इतनी बलवान होती हैं कि उनसे हम किसी तरह बच नहीं सकते, चाहे हम अपनेको मोटे लोहेके बक्समें भी बन्द कर लें। जबतक मनुष्य अपनी इच्छाअनुसार परिमाणमें इस प्रकारके परिवर्तन करनेकी विधि न मालूम करले वह इतना अधिक तापक्रम प्राप्त नहीं कर सकता।

तापक्रम नापनेके लिये भिन्न भिन्न प्रकारके तापमापक इस्तेमाल किये जाते हैं। मामूली कामके लिये पारेका थर्मामीटर प्रयोग किया जाता है, परन्तु वैज्ञानिक कामोंमें बहुधा गैस थर्मामीटर, प्लैटिनम थर्मामीटर और तापविद्युत् युग्मका प्रयोग होता है। ये बहुत कम तापक्रमसे लगभग १२००° तथा १६००° श तक काममें लाये जाते हैं। इससे अधिक तापक्रम नापनेके लिये विकरण-तापमापक प्रयोग किया जाता है। इससे कोईभी तापक्रम चाहे वह कितना ही अधिक क्यों न हो नापा जा सकता है। कारखानोंमें अक्सर अंगीठी या ज्वालाका तापक्रम इसी प्रकार प्रकाशीय-तापमापक से दम भरमें निकाल सकते हैं। यदि वैद्युत्-अंगीठीको वैद्युत्-धारासे गर्म किया जाय तो अंगीठीको केवल आंखसे देखकर उसके तापक्रमका अनुभव उसके रंगसे हम कर सकते हैं। नीचे दिये हुए नक़शेसे मालूम हो जायगा कि किस रंग पर अंगीठी का तापक्रम क्या होगा:—

विकिरण का रंग	तापक्रम
हल्का गुलाबी	७००° श
लाल	९००° श
गाढ़ा लाल	१०००° श
सुर्खी लिये हुए पीला	११००° श
अधिक पीला	१२००° श
सफ़ेद	१४००° श
बहुत सफ़ेद (चौंधी पैदा करने वाला)	१८००° श

सफ़ाई के चमत्कार और शल्यचिकित्सा

[लेखक—श्री रामदास गौड़, एम० ए०]

सर्जरी के प्रकार

शिष्य—कहते हैं कि पुराने ज़मानेमें जो लोग घायल हो जाते थे वह बहुत जल्दी अच्छे होजाते थे। यहां तक कि महाभारतकी लड़ाईमें लोग घायल होकर भी दूसरे ही दिन फिर मैदानमें आ डटते थे। ऐसीही कथाएं यूनानी और रूमी लड़ाइयोंकी भी सुनी जाती थीं। उन लोगोंको ऐसी जड़ी बूटियां मालूम थीं, जिनको लगानेसे बहुत जल्द घाव पूज जाते थे। वाल्मीकीय रामायणमें भी ऐसी बूटियोंकी चर्चा है। क्या अब वह बूटियां नहीं मिलतीं?

गुरु—वह बूटियां तो कहीं चली नहीं गयीं। मेरी समझमें उनमेंसे बहुतेरी हमें मालूम नहीं हैं, और जो मालूम भी हैं उनका ठीक इस्तमाल न करनेसे हम उनसे लाभ नहीं उठा सकते। क्योंकि हम सफाईके पुराने नियमोंको भूलगये हैं। आजभी सफाईके नियमोंका कड़ाईसे पालन करके डाक्टर लोग शल्यचिकित्सा करते हैं और घाव बहुत जल्दी अच्छा कर लेते हैं।

शिष्य—महाराज! कहां अच्छा करलेते हैं देखिये, श्री शान्तिकुमारजीकी अगुलीमें चीरा लगा। वह एक महीने-भर अस्पतालमें रहकर कहीं घर आने लायक हुये!

गुरु—शान्तिकुमारजीका इलाज ऐंटीसेप्टिक सर्जरीकी बिधिसे हुआ और मैं असेप्टिक सर्जरीकी बात कह रहा था।

शिष्य—तो क्या सर्जरी दो प्रकारकी होती हैं?

गुरु—हां, एकतो ऐंटिसेप्टिक और दूसरी असेप्टिक।

शिष्य—दोनोंमें क्या अन्तर है?

गुरु—अन्तरं महदन्तरं। पहले इन शब्दोंके अर्थ समझलो। सर्जरी तो चीरफाड़से इलाज या शल्य-चिकित्सा हुई। सेप्टिक कहते हैं खूनमें सड़ांध या जहर फैलनेको। ऐंटी, सेप्टिक कहते हैं सड़ांध या जहरके विरोधीको और असेप्टिक कहते हैं सड़ांध या जहरके अभाव को।

जिन सूक्ष्म कीड़ोंसे सड़ांध या जहर पैदा हो उनको मार डालने वाली औषधियोंको **ऐंटीसेप्टिक** कहते हैं।

जिन विधियोंसे सड़ांध या जहर पैदा ही न हो उन विधियोंको **असेप्टिक** कहते हैं।

जो शल्यचिकित्सा अधिक प्रचलित है, वह है ऐंटीसेप्टिक या सड़ांध-विरोधी। इस चिकित्सा में घाव को सड़ांध पैदा करने वाले कीड़ों से बचाये रखते हैं। घाव अपने आप अच्छा होने दिया जाता है।

कारबोलिक ऐसिड, लाइसोल, टिंक्चर-अयोडीन, बोरिकऐसिड, एक्रीफ्लेविन आदि औषधियां सड़ांध के कीड़ोंको मारती हैं, इसलिये इनके रहते सड़ांध पैदा नहीं होती। घाव बिगड़ने नहीं पाता, धीरेधीरे अपने आप अच्छा हो जाता है।

शिष्य—यह विधि तो ठीक ही मालूम होती है।

गुरु—परन्तु इससे घाव बहुत देरमें पूजता है

शिष्य—देरका क्या कारण है?

गुरु—देरका कारण समझने के लिये यह समझना जरूरी है कि घाव कैसे पूजता है।

शिष्य—हां, यह अवश्य समझाइये।

गुरु—तो, पहले यह समझो कि

खून क्या है और क्या करता है?

देखो। यह लाल-लाल द्रव रखनेसे थोड़ी ही देरमें जम जाता है। यह द्रव असाधारण है ना? जो लाल-लाल देख पड़ता है उसमें अनेक वस्तुएं हैं। मोटी रीतिसे यों समझो कि नमक शकर आदि कई चीज़ोंके घोलमें लाल और सफेद सूक्ष्म रक्तकण हैं। लाल कणोंकी अधिकतासे ही खून का रंग लाल है। लाल कण सर्वत्र ओषजन पहुंचाते हैं। सफेद कण रक्त मंडलके सिपाही या योद्धा हैं। कहीं घाव हुआ तो रक्त घावकी ओर दौड़ता है। रक्तके साथ ही उसके सूक्ष्म श्वेत कणभी घावपर पहुंचते हैं। घावमें स्थित जहरीले सूक्ष्म कीड़ेसे सफेद योद्धा लड़ते हैं और मारते और मर जाते हैं। मैदानमें इनकी लाशें पड़ी रह जाती हैं। यही मवाद है। मवादमें मांसके टूटे-फूटे सेलभी रहते हैं। यदि दुश्मन जबरदस्त हुए तो मवाद अधिकाधिक बनता जाता है। घाव पूजने नहीं पाता। घावको धोनेमें साधारण जल काममें लावें तो घाव धुलतो भले ही जाय परन्तु पानीमें जो सूक्ष्म कीड़े मौजूद हैं वे नये दुश्मनका काम करते हैं और लड़ाईका काम बढ़ा देते हैं।

शि०—तभी नीमके पानीसे धोते हैं ! नीम कीड़ोंको मारती है।

गु०—हां, साधारण पानीसे तो बेहतर है। नीमकी पत्तियां डालकर उबाल लेनेसे पानीके सूक्ष्म कीड़े मर भी तो जाते हैं, और नीमका रस एक हल्का कृमिनाशक भी है।

शि०—तो डाक्टर लोग क्या कारबोलिक एसिड और टिंकचर आयोडीन आदि ओषधियां बाहरी कीड़ोंसे बचानेके लिये ही काममें लाते हैं ?

गु०—बेशक। यही बात है।

शि०—तब तो घावके पूजनेमें देर न लगनी चाहिये।

गु०—परन्तु देर लगती ही है। उसका कारण है। ये कृमिनाशक ओषधियां जैसे बाहरी कीड़ोंको मारती हैं वैसे ही घावकी मरम्मत करनेवालोंपर भी चोट करती हैं, उनका काम भी रुक जाता है और बहुत देरमें होता है। घावके पूजनेमें इसीलिये देर लगती है। उसके सिवा भीतरी दुश्मनों-का तो ये बाहरी ओषधियां कुछ भी बिगाड़ नहीं सकतीं। रक्तके भीतर जो ज़हर फैला हुआ है, वह घावको अच्छा नहीं होने देता। उसके लिये तो भीतरी ओषधियां चाहिये।

शि०—परन्तु जो घाव बिना-ज़हरवाले हथियारसे पैदा हुआ है, उसके भरनेके लिये तो फिर बाहरी ओषधियोंके बदले बाहरी दुश्मनोंसे बचाना ही ज्यादा अच्छा होगा। क्योंकि दुश्मन यदि घावके पूजनेमें भारी रुकावट डालते हैं तो ओषधियां भी कुछ थोड़ी रुकावट तो डालती ही हैं।

गु०—हां। तुम ठीक समझे। आजकल होशियार शल्यचिकित्सक इसी विधिसे काम लेते हैं। इसे ही

असेप्टिक सर्जरी

कहते हैं। इसमें ओषधिका प्रयोग बिलकुल नहीं करते। ऐंटिसेप्टिक पट्टीमें जाली, रुई, पट्टो सब कुछ ओषधिमें पकायी हुई रहती हैं, परन्तु यहां ओषधिका कोई काम नहीं है। इस विधिका मूलमंत्र है **पूर्ण स्वच्छता, कामिल सफ़ाई**।

शि०—तो, क्या ऐंटिसेप्टिक पट्टीमें पूरी सफाई नहीं बरती जाती ?

गु०—सफाई और गन्दगी तो सापेक्ष बातें हैं। सड़ाँध पैदा करनेवाली गंदगीको हटानेके लिये हम जो जहरीली दवाएं काममें लाते हैं, वह ऐसा ही है जैसे ज्यादा गन्दी चीज़को हटानेके लिये कम गन्दी चीजका इस्तेमाल। पूरी सफाई तो वहां है जहां किसी तरहकी गन्दगी न हो।

शि०—तो क्या, धुली हुई जाली, रुई, पट्टी ही काममें आती है। साधारण सफाई काफी है ?

गु०—नहीं, साधारण सफाई हरगिज काफी नहीं है। सफाई तो पूरी रखी जाती है। केवल धोना पूरी सफाई नहीं है।

शि०—फिर, वह पूरी सफाई कैसे होती है ?

गु०—सुनो। जरासे छू देनेसे हम अपनी अंगुलीसे लाखों सूक्ष्म कीड़े दूसरी चीजोंमें डाल देते हैं। हवामें, पानीमें घरमें, दीवारमें, जमीनपर, कपड़ोंपर, सभी जगह सूक्ष्म कीड़े अनगिनतियों समूहमें मौजूद हैं। इनसे बचकर काम करना पूरी सफाई बरतना है।

शि०—जब ऐसी बात है तब तो पूरी सफाई खयाल ही खयाल है। व्यवहारमें कभी बरती नहीं जा सकती।

गु०—यद्यपि सचमुच पूरी सफाइ आदर्श ही है फिर भी हम बहुत बड़ी हदतक ऐसी सफाई बरत सकते हैं। अच्छे अस्पतालोंमें इसका प्रबन्ध रहता है। पहली बात तो यह है कि कमरा ऐसे मौकेसे रहता है कि अधिकसे अधिक परिमाणमें धूप आती रहती है। कांचके किवाड़ों और चौकठोंसे सारा कमरा जगमगाता रहता है। बाहरके किवाड़े खोले नहीं जाते। अन्दरकी ओर आने-जानेके किवाड़ काममें आते हैं। हवाके लिये इस ढंगकी जालियोंकी झिलमिलें रहती हैं जिनसे अत्यावश्यक वायु धूपसे तपी विशेष रूपसे छनकर आती है। धूप स्वयं कृमि नाशक और शोधक है। चूने की सफेदी ऐन्टीसेप्टिक है, यदि सीमेंटकी दीवार उबाले पानीसे धुली हो तो भी काफी है। मेज, औजार, सामान सभी कुछ उबाले जलसे, भाफसे, पूरे शुद्ध कर लिये जाते हैं। सर्जनके और सहायकके कपड़े स्लीपर आदि सभी कुछ उबाले तपाये, बफारे और बिना छुए हुए सुखाये रहते हैं। जो लोग इस कमरेमें प्रवेश करते हैं। विशेष विधिसे नहाये धोये हुए और शुद्ध कपड़े पहने हुए पासके कमरेमें जाकर उन शुद्ध कपड़ोंको भी उतारकर असेप्टिक कपड़े पहनते हैं। रोगीकीभी सफाई कर दी जाती है। कपड़े बदल दिये जाते हैं। घाव धोनेका पानी असेप्टिक, रुई, पट्टी, लिंट, गाज़ सभी असेप्टिक होते हैं। चीर फाड़के बाद इन्हींसे काम लेते हैं। दवाका इस्तेमाल नहीं करते। इस ड्रेसिंगसे घाव बड़ी जल्दी पूजता है।

एंटीसेप्टिकमें जहाँ आठ दिन लगते हैं, असेप्टिकमें दो दिनोंमें काम हो जाता है। असेप्टिक सर्जरी अधिक स्वाभाविक विधि है। एंटीसेप्टिक सर्जरी अधिक अस्वाभाविक और देर करनेवाली विधि है।

शि०—गुरुजी, तब तो इसी विधिसे सब कहीं शल्य-चिकित्सा होनी चाहिये।

गु०—सब कहीं इसी विधिसे शल्य चिकित्सा होती थी परन्तु देशी जर्राह, शल्य तंत्री, सर्जन, सफाईकी विधियाँ भूल गये। उन्होंने चीर फाड़को मुख्य समझा परन्तु सफाईको ही मुख्य समझना चाहिये और चीरफाड़को गौण।

हमारे देशी जर्राह बहुत नीची श्रेणीके नाई आदि होते थे, जिन्हें सफाईका ख्याल नहीं था। प्राचीन ऊंची श्रेणीके शल्य-चिकित्सक शौचाचारमें प्रवीण होते थे। उनकी विशुद्ध क्रियाओंसे घाव बहुत जल्दी पूजते थे। नाइयोंने इस कामको मुद्दतसे बिगाड़ रखा है। वैद्योंने इस कामको मुद्दतसे छोड़ रखा है। हमारे उत्तम शिक्षा पाये हुए वैद्य चीरफाड़ करने लगें तो हमारी प्राचीन शल्य-विद्या फिरसे जीवित हो जाय।

——:o:——

पिछला सूर्य्यग्रहण

[श्री भगवती प्रसाद श्रीवास्तव्य, एम० एस-सी०]

१९ जून १९३६की बात है, यूनान साइबीरिया और जापानमें स्थान-स्थान पर प्रमुख वैज्ञानिकोंकी टोलियां इकट्ठी हुई हैं। इनके पास तरह तरहके अद्भुत यंत्र दिखाई दे रहे हैं। उनमें केवल दूरबीन ही हमें परिचित जान पड़ती है। अन्य दूसरे यंत्रोंको देखकर हम हैरान हैं।

बार-बार ये लोग आकाशकी ओर देखते हैं उसे स्वच्छ और निर्मल पाकर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हो रही है। फिर भी कुछ लोग इस आशंकासे डर रहे हैं कि कहीं ठीक समयपर बादल न घिर आयें क्योंकि तब तो उनका सारा परिश्रम व्यर्थ जायगा। सूर्य्यग्रहण लगनेमें अभी घण्टोंकी देर है, किन्तु अभीसे यंत्रोंके सञ्चालक बिलकुल 'रेडी' हैं। हफ्तों पहलेसे ये लोग यंत्रोंके प्रयोगका 'रिहर्सल' (पूर्वाभ्यास) करते रहे हैं। छोटीसे छोटी बात पहलेसे ही सोच ली गयी है जिसमें ठीक समयपर किसी तरहकी गड़बड़ी न होने पाये।

ग्रहण आरम्भ हो गया, लोग अपने-अपने स्थानपर मुस्तैद हैं। चन्द्रमा सूर्यको ढके चला जा रहा है, साथही साथ इन ज्योतिषियोंकी व्यग्रता भी बढ़ती जा रही है। सर्व ग्रास होते ही केमरा दूरबीन तथा अन्य सभी यंत्रोंमें खट खट शुरू हो गयी। दो चार मिनटके उपरान्त ग्रहण समाप्त होनेके ठीक पहले एक बार फिर 'रेडी' 'गो'की आवाज सुनाई देती है। बस इन्हीं दो चार मिनटोंके लिये इतना परिश्रम और धन व्यय करके ये लोग यहाँ इकट्ठे हुए थे। स्वभावतः यह प्रश्न उठता है, आखिर पूर्ण-सूर्य्य-ग्रहणको वैज्ञानिक इतना महत्व क्यों देते हैं। उन्हें कुछ राहु और केतुके कोप को शान्त तो करना नहीं है। फिर इतनी परेशानी उठानेका मतलब क्या ?

सभी प्राचीन ग्रन्थोंमें सूर्य्य तथा चन्द्रग्रहणका जिक्र आया है, और इनके बारेमें भांति भांति की किम्बदन्तियाँ भी प्रचलित हैं, लेकिन आज दिन तो सभी जानते हैं कि पृथ्वी और सूर्य्यके बीचमें चन्द्रमाके आजानेसे सूर्य्यग्रहण लगता है। लेकिन ऐसा तो हरेक अमावस्या को होता है, फिर प्रत्येक अमावस्याको सूर्य्य ग्रहण लगना चाहिये। किन्तु ऐसा होता नहीं है क्योंकि जिस धरातलमें पृथ्वी सूर्य्यकी परिक्रमा करती है, वह उस धरातलसे भिन्न है जिसमें चन्द्रमा पृथ्वीके चारों ओर घूमता है। गणितद्वारा हम जानते हैं कि एक वर्षके अन्दर ग्रहणकी संख्या अधिकसे अधिक सात हो सकती है, जिनमें या तो चार सूर्य्यग्रहण और तीन चन्द्रग्रहण, या पांच सूर्य्यग्रहण और दो चन्द्र ग्रहण होंगे। इनकी कमसे कम संख्या दो हो सकती है, और ये दोनोंही सूर्य्य ग्रहण होंगे।

ग्रहणोंकी पुनरावृत्ति भी हर १८ वर्ष ११ दिनके उपरान्त होती है। यह बात प्राचीन कालके ज्योतिषियोंको मालूम थी। पिछले १९ जूनको जो ग्रहण लगा था, ठीक

वैसाही सूर्य्यग्रहण ८ जून १९२८को भी लगा था। सर्व सूर्य्यग्रहण का समय सात मिनटसे अधिक नहीं हो सकता लेकिन प्रायः यह तीन-चार मिनटतक रहता है, और भूमण्डलके कुछ ही प्रदेशोंमें यह सर्वग्रहणके रूपमें दिखाई देता है, शेषके लिये यह आंशिक ग्रहण ही रहता है। भारतको सर्वग्रहण देखनेका अवसर २० जून १९५५ के पहले नहीं मिल सकता और यह ग्रहण भी केवल लंकामें दिखाई दे सकेगा!

आजसे ५० वर्ष पूर्व वियनाके एक प्रसिद्ध ज्योतिषीने अथक परिश्रमद्वारा ईसासे पूर्व १२०७से लेकर सन् २१६१ ई०तकके सभी सूर्य्य और चन्द्र ग्रहणोंकी गणनाकर उनका निर्दिष्ट समय तथा उनके स्थानका ठीक-ठीक पता लगा डाला था। और उसके दिये हुए समयमें एक सेकण्डकी भी गलती नहीं मिलती!

पिछले जून मासका सर्वग्रहण केवल यूनान साइबीरिया और जापानसे देखा जा सकता था, और इस ग्रहणमें सर्वग्रासका समय लगभग २॥ मिनट था। १९३२ ई० के ग्रहणके बाद यही सर्व ग्रहण ऐसा हुआ है, जो भूमण्डलके उन देशोंमें दिखाई दे सका जहांपर वैज्ञानिक आसानीसे उसका निरीक्षण कर सकते थे। अक्सर तो ऐसा होता है कि सर्व सूर्य्यग्रहण कभी टंड्राके बर्फीले प्रान्तोंसे तो कभी अफ्रीकाके घने जंगलोंसे दिखाई देता है। लेकिन यहां उनके वैज्ञानिक अनुसन्धानकी सामग्री जुटाना असम्भव सा हो जाता है। अतएव वैज्ञानिक दृष्टिकोणसे ऐसे सर्व सूर्य्य-ग्रहणसे हम कुछ भी सीख नहीं सकते।

१९ जूनको चन्द्रमाकी काली छायाका छोर ठीक सूर्य्योदयके समय सिसलीसे २५० मील दक्षिण भूमध्य सागरमें पड़ा। तदुपरान्त यह १०० मील चौड़ी छाया बड़े वेगसे एथेन्स, टर्की, काला सागर और साइबीरियाके ओमस्क तोमस्क, ब्रतस्क और उत्तरी जापानसे होती हुई पैसिफिक, महासागरमें पहुंची, और सूर्य्यास्त होते-होते देशान्तर की १८०° की रेखाके पास उस छायाने पृथ्वीको छोड़ दिया। इतना लम्बा रास्ता इस छायाने केवल तीन घण्टेमें तय किया, और इस हिसाबसे इसकी रफ्तार प्रति घण्टा ४००० मील रही।

विज्ञानके लिये आंशिक सूर्य्यग्रहणका कोई महत्व नहीं है, उसे तो सर्व ग्रहणसे ही मतलब है। अतएव वैज्ञानिक छायापथके अन्तर्गत प्रदेशोंमें जाकर सूर्य्यग्रहणका निरीक्षण करता है। यद्यपि प्राचीन कालसे ही लोगोंका ध्यान ग्रहणकी ओर आकर्षित हुआ था, लेनिक सभी लोगोंने उसपर केवल धार्मिक दृष्टि कोणसे ही विचार किया। किन्तु पिछले डेढ़ सौ वर्षोंमें विज्ञानने सूर्य्यग्रहणका वास्तविक महत्व समझा है। और सूर्य्यग्रहणके निरीक्षणसे हमें नयी नयी बातें मालूम हो रही हैं। और इसी लिये वैज्ञानिक सर्व-सूर्य्यग्रहणकी प्रतीक्षा इतनी उत्सुकतासे करता है मानों वह कोई एक बड़ा त्योहार हो।

सूर्य्य ग्रहणको इतना महत्व क्यों दिया जाता है, यह समझनेके लिये हमें सूर्य्यके बारेमें कुछ जानना जरूरी है। सूर्य्य एक जलता हुआ अग्निपिण्ड है, जिसे चारों ओरसे जलती हुई गर्म गैसोंकी एक जैकेट उसी तरह घेरे है जैसे हमारी पृथ्वीको उसका वायुमण्डल। सूर्य्यके अग्नि पिण्डको फोटोस्फियर कहते हैं तथा उसके चारों ओरकी गर्म गैसोंकी तहको क्रोमोस्फियर। फोटोस्फियरसे बराबर अग्निशिखाएं क्रोमोस्फियरको भेद कर निकला करती हैं। इनकी लम्बाई कभी-कभी तो ८०,००० मीलतक पहुंच जाती है। लेकिन न तो हमें ये अग्निशिखाएं दिखाई देती हैं, और न हमें क्रोमोस्फियरका ही कुछ पता चलता है। क्योंकि फोटोस्फियरकी तीव्र ज्योतिके सामने ये बिल्कुल मन्द और प्रकाशहीन पड़ जाते हैं। सूर्य्यग्रहणमें सर्वग्रासके समय जब फोटोस्फियर चन्द्रमाकी आड़में छिप जाता है, तब हमें ये अग्नि शिखाएं दिखाई देती हैं। इस समयका दृश्य बड़ा-ही मनोरम होता है। चन्द्रमाकी काली छायाके चारों ओर एक चमकता हुआ मुकुटसा दिखाई देता है। अतएव क्रोमोस्फियर और इन अग्निशिखाओंके बारेमें जानकारी हासिल करनेका यही एक मात्र अवसर है। ठीक सर्वग्रासके समय सूर्य्य के रश्मि चित्रका (Spectrum) फोटो लेते हैं। और इस फोटोकी तुलना विज्ञानशालाकी अन्य वस्तुओंके रश्मि-चित्रसे करनेपर इस बातका आसानीसे पता चल सकता है कि क्रोमोस्फियरमें कौन सी गैसें वर्तमान हैं। कभी कभी तो इस रीतिसे बिल्कुल नये पदार्थोंका भी पता लग जाता है। उदाहरण स्वरूप हीलियम गैसका पता सबसे पहले सूर्य्य

ग्रहणके फोटोग्राफ़से ही चला था। यह एक बड़े गर्वकी बात है कि प्रयाग विश्वविद्यालयके डा० मेघनाथ साहाने इस क्षेत्रमें अनुसन्धान करके जगत-व्यापी ख्याति प्राप्त की है। आपने अपने अनुसन्धानों द्वारा भौतिक शास्त्रकी अनेक समस्याओंको सुलझाया है।

लेकिन अभी हालमें 'क्रोमोस्फियर'के फोटोग्राफ़में कुछ ऐसी रेखाएं मिली हैं जो पृथ्वीके किसीभी पदार्थकी रश्मिचित्र रेखाओंसे नहीं मिलती। अतएव यह अनुमान किया जाता है कि 'क्रोमोस्फियर'में एक ऐसा भी पदार्थ है, जो पृथ्वीपर नहीं पाया जाता। इस मौलिक पदार्थका नाम 'कोरोनियम' रखा गया है। कुछ लोगोंका ख्याल है कि ये रेखाएं पृथ्वी परके ही किसी पदार्थकी हैं केवल 'क्रोमोस्फियर-की तीव्र ज्वालाके कारण उनमें कुछ अन्तर पड़ गया है।

पिछले बीस वर्षोंमें विज्ञान जगतमें आइन्सटीनने अपने सापेक्षवादद्वारा एक क्रान्ति पैदा कर दी है। इस नये सिद्धान्तने विज्ञानकी दृष्टिमें सूर्य्यग्रहणका महत्व और भी बढ़ा दिया है। आइन्सटीनने सापेक्षवादसे न्यूटनके गणित सम्बन्धी सिद्धान्तोंको सर्वथा गलत साबित कर दिखाया। सापेक्षवाद आकर्षण-शक्तिको कोरी कल्पना मानता है। इसकी दृष्टिमें सौरमंडलमें ग्रह आदि सूर्य्यकी परिक्रमा इसलिये नहीं लगाते कि उन्हें सूर्य्यकी आकर्षण शक्ति खींच रही है वरन् इसलिये कि सूर्य्यके चारों ओरके (space) स्थान में वक्रता आगयी है, अतएव जिस ही वस्तु में गति होगी वह सूर्य्यके निकट आनेपर वक्र मार्गका ही अनुसरण करेगी। इस तरह सापेक्षवादमें आकर्षण-शक्तिके अस्तित्वकी कोई जरूरत नहीं है। न्यूटनके गणित सम्बन्धी सभी नियम इसी आकर्षण-शक्तिपर बने हैं। यह आकर्षण-शक्ति छोटे-छोटे परमाणुओंसे लेकर आकाशके बड़े-बड़े नक्षत्रोंतकमें वर्तमान है। अतएव आइन्सटीनकी इस नयी घोषणासे तत्कालीन गणितज्ञ बड़े अप्रतिभ हुए। वे सहजमें सापेक्षवादका लोहा माननेको तैयार न थे। वे सापेक्षवादके लिये पक्का सबूत चाहते थे।

सापेक्षवादके नियम प्रकाशकी किरणोंपर भी लागू हैं अतएव यदि प्रकाशकी किरण सूर्य्यके समीप होकर गुजरेगी तो इसमें भी वक्रता अवश्य आजाएगी। यदि किसी नक्षत्र-से प्रकाशकी किरणें सूर्य्यके पाससे होकर आयें तो उसमें वक्रता आजानेके कारण वह नक्षत्र हमें अपने स्थानसे हटा हुआ दिखाई देगा। लेकिन सूर्य्यमें इतना अधिक प्रकाश है कि उसके समीपके नक्षत्रोंका देख सकना सम्भव नहीं है। अतएव ऐसे नक्षत्रोंका निरीक्षण उसी समय हो सकता है जब सूर्य्य चन्द्रमाकी आड़में छिप जाता है। ठीक सर्व ग्रासके समय सूर्य्यका फोटोग्राफ़ लेते हैं और उसी प्लेटपर नक्षत्रका फ़ोटो भी अंकित हो जाता है। इस तरह नक्षत्रकी ठीक-ठीक दिशा हम नाप सकते हैं। ज्योतिषके अन्य नियमोंद्वारा हम जानते हैं कि इस नक्षत्रकी वास्तविक दिशा क्या होनी चाहिये और इस तरह हम यह बता सकते हैं कि अपने स्थानसे यह कितना हटा है। इस प्रकार सापेक्षवादके पक्षमें हमें पहला सबूत १९१९ के सूर्य्यग्रहणपर मिला था। ठीक उसी प्रकार-का सर्व-सूर्य्यग्रहण १८ वर्ष बाद १९३७ई०में फिर लगने वाला है। यह पीरू और अटलांटिक महासागरके प्रदेशोंसे दिखाई देगा और आशा की जाती है कि इस ग्रहणसे हम बहुत सी नयी बातें सीख सकेंगे। इस बर्षके जून मासका ग्रहण भी इस दृष्टिसे काफी महत्व रखता है। क्योंकि इस ग्रहणके समय सूर्य्य आकाश मण्डलके उस हिस्सेमें था जहाँ तीव्र ज्योतिवाले नक्षत्र काफ़ी संख्यामें हैं, अतएव ऐसे नक्षत्रोंक फोटोग्राफ़ भी आसानीसे लिया जा सकता है। सूर्य्यग्रहणपर लिये गये हालके कुछ फोटोग्राफ़ सापेक्षवादके सिद्धान्त का समर्थन नहीं करते। अतएव लोगोंके मनमें सापेक्षवादके प्रति एक बार फिर अश्रद्धा सी हो रही है। अब देखना है इस बारके फोटोग्राफ़ सापेक्षवादकी कहाँतक सहायता करते हैं।

बात यहींपर समाप्त नहीं हो जाती। अभी गत वर्ष ही प्रयागके चीफ़ जस्टिस तथा गणितज्ञ सर शाह सुलेमानने सापेक्ष-वादका एक नया सिद्धान्त निकाला है। उसके अनुसार न्यूटनके सिद्धान्त गलत नहीं हैं, वे केवल अपूर्ण हैं। कुछ थोड़ेसे उप-नियमोंकी सहायतासे वे उन सब समस्याओंको हल कर सकते हैं जिनके हल करनेका सापेक्षवादको गर्व है। इस-नये सिद्धान्तके अनुसार भी सूर्य्यके समीप होकर आनेवाली किरणोंमें वक्रता आनी चाहिये किन्तु इस बार पहलेकी अपेक्षा अधिक वक्रता होगी। कुछ ग्रहणोंपर से प्राप्त फोटोग्राफसे वक्रताका मान जो मिला है वह आइन्सटीनके मानसे अधिक तो है पर उतना नहीं जितना सुलेमानके नये सिद्धान्त-के अनुसार होना चाहिए। अब देखना है कि यह १९ जूनका ग्रहण किसके पक्षमें अपना फैसला देता है?

अगले वर्षका सूर्य्यग्रहणभी इस समस्यापर काफ़ी प्रकाश डालेगा, ऐसा लोगोंका विश्वास है। सापेक्षवादके लिये इन दोनों सूर्य्यग्रहणोंका महत्व इतना अधिक इस लिये है कि फिर सैकड़ों वर्षतक हमें सर्वग्रहण ऐसे अवसरपर न मिलेगा जब कि सूर्य्यके समीप तीव्र ज्योतिवाले नक्षत्र इतनी अधिक संख्यामें हों।

रेडियो विभागके लोग भी इस अवसरपर हाथपर हाथ रख कर बैठे नहीं रहते। इनकी भी अपनी कुछ ऐसी गुत्थियां हैं जो सर्वग्रहणके मौकेपर ही सुलझायी जा सकती हैं। पिछले पाँच वर्षोंमें विशेषज्ञोंका ध्यान इस ओर आकर्षित किया गया है कि हमारे वायुमण्डलमें ८० और २०० मीलकी ऊंचाईके बीचमें हवाकी ऐसी तह है जिससे टकराकर पृथ्वीसे भेजी गयी रेडियोकी विद्युत लहरें नीचेकी ओर वापस आ जाती हैं। ठीक उसी प्रकार जैसे दर्पणसे टकराकर प्रकाशकी किरणें। अतः इस तहमें विद्युत्-कण (ions) अवश्य होंगे। लेकिन ये विद्युत-कण आये कहांसे? कुछ लोगोंका अनुमान है कि सूर्य्यकी अल्ट्रावायलेट किरणें जब वायुके अवयवोंपर पड़ती हैं, तो ये विद्युत्कण उन अवयवोंसे उत्पन्न होते हैं। यदि वास्तवमें बात यही है, तो सर्वग्रासके समय जब सूर्य्यकी किरणें वायुमण्डलतक नहीं पहुंच पातीं इन विद्युत कणोंमें अचानक ह्रास होना चाहिये। इस कारण ठीक सर्वग्रासके समय पृथ्वीसे भेजी गयी रेडियोकी विद्युत किरणें उपर्युक्त वायुकी तहसे टकराकर पहलेकी भांति वापस न जासकेंगी। बस इन्हीं सब बातोंकी जाँचके लिये रेडियोके सम्बन्धमें भी लोग भाँति-भाँतिके प्रयोग सूर्य्यग्रहणके समय करते हैं।

हम देखते हैं कि सर्वग्रहणके लिये यात्रा करनेवाली टोलीमें ज्योतिष, गणित, भौतिक विज्ञान और रेडियो सभी विभागोंके विशेषज्ञ शामिल हैं। इसी जूनवाले ग्रहणके लिये सैकड़ों टोलियां यूनानसे लेकर जापानतक जगह-जगह पर डेरा डाले हुए थीं। यूनानमें प्रोफेसर हान सूर्य्यकी अग्नि शिखाओंका फोटोग्राफ़ लेने गये थे। इस फोटोग्राफ़का मुकाबला जापानके होकेडो नगरमें लिये गये फोटोग्राफ़से करनेपर हम जान सकेंगे कि २॥ घण्टेमें इन अग्निशिखाओंका रूप कितना बदला। काकेशियामें मास्को, जेकोस्लोवाकिया और इटलीसे टोलियाँ एकत्र हुई थीं। रूसके ज्योतिषियोंने साइबीरियामें आयी हुई विदेशी टीमोंकी सुविधाका हर तरहसे ध्यान रखा था। संसार-प्रसिद्ध ज्योतिष केन्द्र हारवर्ड विश्वविद्यालयसे भी एक पार्टी आरेनवर्गके समीप आकबुलक शहरमें गयी थी, इस टोलीमें ओहियो विश्वविद्यालयके भी कई एक विद्वान् थे। केम्ब्रिज की रायल सोसायटीसे भी एक पार्टी जापान गयी थी। इनका कैम्प होकैडो नगरमें था। प्रसिद्ध वैज्ञानिक आस्टन (Aston) भी इस टोलीमें था। इसी टोलीमें दक्षिण भारतके कोडिया कैनाल वेधशालाके डायरेक्टर डाक्टर रायड भी शामिल थे। हमारे देशसे आपही एक ऐसे व्यक्ति थे जो इस सिलसिलेमें बाहर गये।

जब हम यह देखते हैं कि ऐसे अवसरोंपर इतना धन पानीकी तरह बहाया जाता है तो स्वभावतः प्रत्यक्षवादी दृष्टिकोणसे हमें यह सब फजूल जान पड़ता है। शायद हम इन आविष्कारोंका मूल्य जनता और समाजके तत्काल हित के रूपमें आंकनेके अभ्यस्त हो गये हैं। किन्तु हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि सभी वैज्ञानिक आविष्कारोंका असर समस्त संसारके जीवनपर पड़ता है—यह दूसरी बात है कि किसीका सम्बन्ध समाजके साथ दूर का हो और किसीका नजदीक का।

भोजन है या विष ?

(डाक्टर उमाशंकर प्रसाद, एम० बी०, बी० एस०)

कुछ ही दिन हुए अमेरिकाके विश्व-प्रसिद्ध मेयो क्लिनिक अस्पतालमें एक मनुष्य एक विचित्र रोगकी चिकित्साके लिये आया। उसका कहना था कि नित्य प्रातःकाल ७ बजे उसे इतनी गाढ़ी नींद आती है कि चाहे वह किसी भी कार्यमें व्यस्त रहे, वह उस समय लुढ़ककर खर्राटे लेने लगता है। उस समय चाहे वह व्यवसाय-सम्बन्धी आवश्यक बातोंपर आफिसकी कुरसीपर बैठा विचार कर रहा हो, या चाहे भीड़में सड़कपर अपनी मोटर ही चला रहा हो, अपनी नींदको वह नहीं रोक सकता।

उक्त अस्पतालके डाक्टर वाल्टरको इस विचित्र रोग ग्रसित मनुष्यको मुक्त करनेमें सफलता पानेके लिए बहुत जांच पड़ताल करनी पड़ी। अंतमें इस रोगके कारणका पता उन्हें मिल ही गया। मुख्य कारण तो बीमारीसे भी अधिक अनोखा था। आप सोचते होंगे कि कोई बहुत ही बड़ा कारण मिला होगा, पर आपको यह जान कर आश्चर्य होगा कि एक मात्र कारण एक प्याला और उसमें पड़ा दूध था, जिसे वह मरीज रोज सबेरे पीता था। डाक्टरकी रायके अनुसार जब मरीजने दूधका सेवन अपने नित्यके कहवाके साथ छोड़ दिया तब वह अपने विचित्र रोगसे मुक्त हो गया।

इसी प्रकारकी हजारों घटनाएँ डाक्टरोंको देखनी पड़ती हैं। इस विचित्र अवस्थाको अंग्रेजीमें 'एलर्जी' कहते हैं। और हम इसे 'अति संक्षोभ्यता' कह सकते हैं। वही वस्तुएँ जो साधारण मनुष्योंके लिये नित्यके प्रयोगकी खाने, सूँघने या शरीरमें लगाने की हैं, और साधारणतः उन्हें कुछ भी हानि नहीं पहुंचाती हैं, ऐसे मनुष्योंके लिये जो उक्त रोगके पंजेमें हैं, साक्षात् काल हैं।

यदि किसी मनुष्यको अंडे खानेसे शरीरपर लाल ददोरे उभड़ आयें, बिल्ली या घोड़ेके समीप जानेसे छींकपर छींक आने लगे, किसी विशेष पुष्पको सूंघनेसे दमेका दौरा होने लगे, तब उसे चाहिये कि वह शीघ्र ही डाक्टरकी राय ले, न कि उसे हंसीमें उड़ा दे।

दमासे पीड़ित कितने ही मरीज कहते हैं कि अरहर की दाल खानेसे दमेका दौरा उभड़ आता है। कुछ मांस खानेवाले व्यक्ति यदि घोंघा खालें तो उन्हें पेचिश होने लगती है। दूसरे लोग घोंघा बड़ी रुचिसे खा और पचा सकते हैं।

लखनऊ मेडिकल कालेजके फेफड़े-रोगके विभागमें एक सज्जन आये। देखनेसे वे पूर्णतया स्वस्थ थे। हम लोगोंने सोचा कि अपने साथ किसी रोगीको लाये हैं पर जब टिकटपर उन्होंने अपना ही नाम लिखाया तब कुछ आश्चर्य हुआ। सबसे अधिक आश्चर्य तो तब हुआ जब उन्होंने अपनी तकलीफ बयान की। उनका कहना था कि जब कभी वे रेलगाड़ीपर जाते हैं और गाड़ी कानपुर स्टेशनसे गुजरती थी, तब उन्हें दमेका दौरा होने लगता है। यदि उन्हें कभी कानपुर उतरना पड़ता है तब तो और आफत हो जाती है और उन्हें शीघ्र ही कानपुर छोड़ देना पड़ता है। उन्होंने अपने अनुभवसे यह सीख लिया था कि कानपुरही उनके दमाका कारण था। इस बातमें उनको इतना विश्वास था कि वह चक्कर लगाकर लंबे मार्गसे अपने स्थानपर जाते थे, और कानपुरसे नहीं गुजरते थे, क्योंकि अपने सर पर दमेका कष्ट नहीं बुलाना चाहते थे। मेडिकल कालेजके प्रोफेसरने समझाया कि उक्त सज्जनके शरीरपर चमड़ेके कणोंका विचित्र प्रभाव पड़ता है। बादमें विशेष जांचसे उन्होंने यही बात सिद्ध भी की। इस विचित्र रोगका कारण उन्होंने इस प्रकार बतलाया कि कानपुरमें चमड़ेका व्यवसाय अधिक होनेके कारण वहांकी हवामें नये-नये चमड़ेके कण भरे पड़े रहते हैं। जब कभी वह रोगी अभाग्यसे कानपुर पहुंचता था, उसे चमड़ेके कणसे दूषित वायुमें सांस लेनी पड़ती थी। तब ये कण फेफड़ेके भीतरतक पहुंचते जाते थे और नाक तथा फेफड़ेकी श्लैष्मिक कलापर हानिकारक प्रभाव डालते थे। फल-स्वरूप उन्हें दमेका दौरा होता था।

ऐसीही रोचक और विचित्र घटना एक लड़कीकी है। उसका प्रेमी जब-जब उसके पास आकर बातचीत करता था तब-तब थोड़ी देरमें लड़कीकी सूरत बिगड़ जाती थी।

बेचारीकी आंखोंकी पलकें ऐसी सूज जाती थीं मानों किसी कीड़ेने काट लिया हो। अंतमें इससे बचनेके लिए दोनों डाक्टरके पास पहुंचे। तब बहुत जांच करनेके बाद डाक्टरको पता चला कि प्रेमी अपने कोटमें जो पुष्प लगाकर आया करता था उसीसे आंखोंमें सूजन हो जाती थी। कारण यह था कि उस पुष्पके परागको उस लड़कीकी आंखें बरदाश्त न कर सकती थीं। उस पुष्पको फेंक देनेसे ही कष्टका निवारण हो गया।

एक डाक्टरी पुस्तकमें इसी प्रकारकी दूसरी घटना दी हुई है। इस मरीज़के असली शहदके खानेसे पेटमें दर्द होने लगता था। यहांभी कारण फूलका पराग ही था, जो मधु मक्खियोंके पैरोंमें मधु एकत्रित करते समय लग जाया करता था और शहदमें भी कुछ अंशमें आ जाता था।

एक नानीकी घटना कम मज़ेदार नहीं है। नानी जब अपने ६ वर्षके नातीको जलपानके बाद दुलारसे चूमती थी, तो बच्चेके सारे शरीर पर बड़े बड़े चकत्ते उभड़ आते थे और बड़ी खुजली होती थी। जांच करनेसे पता लगा कि बच्चेके शरीर पर अंडेका बड़ा असर होता था और उससे चकत्ते उभड़ आते थे। नानी जलपानमें अंडे खाती थी पर रूमालसे मुंह भली भांति न पोंछती, जिससे कुछ अंडेका झूठा मुंह पर लगा रह जाता था। चुम्मा लेते समय बच्च के मुंह पर भी अंडा लगता था और बेचारेको नानीके प्यारकी बड़ी मंहगी कीमत देनी पड़ती थी।

इसी प्रकारके कितनेही उदाहरण दिये जा सकते हैं। दीवाल पर लगने वाले विशेष कागज़, झरबेर, रबड़, चावल खजूर, टमाटर, मांस, गुलाबके फूल, लकड़ीका चूरा, कोहंड़ा, इत्यादि ऐसी कितनीही वस्तुएं हैं जो विशेष व्यक्तियोंमें ऊपर के विचित्र लक्षण पैदा करती हैं।

मेरे एक सम्बन्धी जब कभी कच्चे कोंहड़े की तरकारी खाते हैं तब उनके मसूड़े फूल आते हैं।

ऐसे रोगियोंके रोगके कारणका पता लगाना अक्सर कठिन होता है। डाक्टरको जासूसी करनी पड़ती है। इन दिनों "खरोचनेकी विधि" के प्रयोगसे विशेष वस्तु के ढूंढ़नेमें बड़ी सहायता मिलती है। कुछ मनुष्यतो कईवस्तुओं को नहीं सहन कर सकते हैं।

कुछ दिन हुये एक मनुष्यनें लिफाफा चपकाते समय पासमें पानी न रहनेसे जीभसे चाट कर पत्र बन्द किया। कुछ देरमें ही वह सिर से पैर तक कांपने लगा, सिर पर बड़ा पसीना छूटने लगा, सांस लेनेमें कष्ट होने लगा और अंतमें मूर्छित हो कर गिर पड़ा। १५ मिनट बाद होश हुआ और थोड़ी देरमें चंगा हो गया। दूसरी बार वही व्यक्ति नये जूते का पारसल खोलकर एक पैरमें जूता पहनने लगा। दूसरे पैरमें जूता पहननेकी बारीभी नहीं आई थी कि उसे बेहोशी-का दौरा हुआ। पहला जूता पैरसे निकालते भरमें वह मूर्च्छित हो गया। इन विचित्र दौरोंका कारण क्या था? उसके चिकित्सकने अतिसंक्षोभ्यताकोही इस कष्टका कारण होना स्थिर किया। इस बातको निश्चयपूर्वक जाँच करनेके लिये डाक्टरको "खंरोच विधि" की शरण लेनी पड़ी। मरीज़ के हाथ पर डाक्टरने दो-दो इंच की दूरी पर छोटे-छोटे खंरोच सुइयों से बनाये। यह खरोंच इतना हल्का था कि रक्त न निकल पाया, परन्तु चमड़ा छिल गया। फिर जिन वस्तुओं पर डाक्टरको शंका थी कि उनके व्यौहारसे मरीज़ की ऐसी दशा होती है, और उनको चूर करके और शुद्ध जलमें घोल कर या रगड़ कर एक-एक खंरोच पर एक-एक वस्तु रगड़ दी। फिर खंरोचोंको रुई से ढक कर उनपर पट्टियां बांध दीं। जिससे न उनमें गन्दगी पहुंचे, न एक खरोंच का घोल किसी प्रकार दूसरे खरोंचमें लगे। एक खरोंच पर कोई वस्तु नहीं लगाई जाती है। इस रीति से अनेकों वस्तुओंकी जांच की जाती है, जैसे चमड़ा, ऊन, दाल, टमाटर, अंडा, इत्यादि। केवल ढक दिया जाता है। यदि आधे घंटे तक में पट्टी खोलने पर उस खरोंच के चारों ओर एक इंच तक गुलाबी रंगका चकत्ता चर्म पर नहींउभड़ आता है तो इसका अर्थ यह होता है कि इन वस्तुओंका प्रयोग उसे हानि कारक नहीं है। जिस वस्तु से आध घंटेके भीतर खरोंच के चारों ओर लाल चकत्ता उभड़ आता है उस वस्तुके लिये वह व्यक्ति अतिसंक्षोभ्य है और उस वस्तु के व्यवहार करनेसे पूर्व वर्णित कोई लक्षण दिखलाई देने लगता है।

उपरोक्त मनुष्य की जब डाक्टरने खरोंच विधिसे जांच की तब गोंदको छोड़ अन्य वस्तुओंसे कोई हानि न हुई, पर गोंद को खरोंच पर लगाते ही उसे दमेका दौरा होने लगा और खरोंच के चारों ओर शीघ्र ही बड़ा चकत्ता बन गया। लिफ़ाफ़ा चपकाते समय और जूता पहनते समय उसे दमा का दौरा हुआ था उसका कारण यही था कि लिफ़ाफ़े में और जूतेमें गोंद लगा था।

खरोंच-विधिसे भी अच्छी एक दूसरी विधि अब प्रयुक्त हो रही है। जिस वस्तु पर संदेह होता है उसे व्योहारमें लानेके कुछ पहले और फिर आधे घंटे बाद उस मनुष्य का एक दो बूंद रक्त शरीर से नकाल लिया जाता है और उस पर खुर्दबीन लगा कर श्वेत रक्ताणु गिने जाते हैं। यदि वह विशेष खाद्यपदार्थ ही उसके कष्टका कारण होगा तो आध घंटे बादके रक्तमें श्वेत रक्ताणुओं की संख्या बहुत कम हो जायेगी।

सबसे अनोखी बाततो यह है कि लाभदायक भोज्य पदार्थ ही सब से अधिक बखेड़के कारण हैं। इन वस्तुओंमें सर्व प्रथम नम्बर अंडे का है। यह शरीरमें जा कर क्या करता है, जिससे इस प्रकार का दौरा होता है? इस प्रश्न का उत्तर देना विशेषज्ञ के लिए भी कठिन होगा।

अभीसे शरीरके इस विचित्र परिवर्तनके सम्बन्धमें पूरी जानकारी प्राप्त नहीं की जा सकी है। यही कारण हैकि इसको समझानेके प्रयत्नमें कई सिद्धान्त बने हैं। प्रत्येक सिद्धान्तसे केवल कुछही बातें समझ पड़ती हैं, कोई भी सिद्धान्त अभी तब सब बातें नहीं समझा सकता। एक मतके अवलम्बी दूसरे मतका खण्डन कर लेते हैं। इससे प्रत्यक्ष है कि अभी बहुतसी बातें कल्पना परही निर्म्मित हैं।

अधिकांश वैज्ञानिकों द्वारा अनुमोदित मत यह है कि रक्त-धारामें जब कोई नवीन प्रकारकी प्रोटीन वस्तुयें पहुंचती है तब ऊपर बतलाये गये लक्षण उत्पन्न होते हैं। प्रकृतिने शरीर में इस प्रकारके प्रोटीन वस्तुओंको परास्त करनेके लिये छोटे-छोटे पदार्थ बनाये हैं जिनका पता अभी ठीक-ठीक नहीं लगा है। जिस प्रकार किसी देश पर शत्रुओं का आक्रमण होने पर उस देशकी सेना रक्षाके लिये एकत्रित हो जाती है ठीक उसी प्रकार शरीर की ये वस्तुयें नवीन बाहरी प्रोटीन आदि पर आक्रमण करके उनका नाश करने का प्रयत्न करती हैं। यदि इस प्रकार का बाहरी प्रोटीन इतनी अधिक मात्रामें यकायक शरीरमें प्रवेश कर जाता है कि शरीरकी रक्षक शक्ति उसे नहीं सम्हाल सकती, बल्कि स्वंय विनाश हो जाती है, तब बचे हुये बाहरी प्रोटीन विजयी शत्रुकी भांति शरीरमें जो उत्पात करते हैं वेही सब विशेष लक्षण रूपमें हमें दिखलाई पड़ते हैं। ऐसे मनुष्य का स्वास्थ्य भी उस समय बिगड़ जाता है। कुछ समय बाद शरीरमें पुनः इन वस्तुओंसे लड़ने वाली वस्तुयें पैदा होती हैं, जो धीरे-धीरे इन वाह्य शत्रुओंको निकाल बाहर कर उस मनुष्यको चंगा कर देती हैं।

इस मतको प्रमाणित करनेके लिये नीचे दी गई घटना यथेष्ट है। एक रोगीकी तात्कालिक चिकित्साके लिये दूसरे मनुष्य का रक्त उसके शरीरमें डाला गया, जिससे रोगी का प्राण बच गया। कुछ देर बाद रोगीको बराबर छींक पर छींक आने लगीं। जाँचसे पता लगा कि जिस मनुष्यका रक्त रोगीमें डाला गया था वह मुर्गीके परके समीप जाते ही छींकने लगता था। उस मनुष्यके रक्तको रोगीके शरीरमें डालनेसे कुछ कालके लिये वही लक्षण रोगीके शरीरमें भी आगया। रोगीके तकियेमें मुर्गीका पर भरा हुआ था, जिससे वह खूब गरम और मुलायम रहे। फल-स्वरूप कुछ काल तक रोगी जब कभी परदार तकियेके पास जाता तब वह छींकने लगता।

इसी प्रकार एक स्त्रीको भेड़के पास आते ही दमाका दौरा होता था। अभाग्यसे एक रोगके लिये उसके पेटमें बड़ा नस्तर लगाना पड़ा था। पेटके भीतरके अंगोंको सीनेके लिये ताँतका प्रयोग करना पड़ा। यह भेड़की अँतड़ियोंका बना हुआ था। स्त्रीको दमा और छींकका दौरा शुरू हो गया। जांच करने पर भूल मालूम हुई, पर पेटके भीतरसे टांका फिर आपरेशन करके नहीं निकाला जासका। दस दिन बाद तांत नियमानुसार गलकर गायब हो गयी और साथही स्त्री भी दमें तथा छींकनेसे मुक्त हुई।

कुछ सौन्दर्य-वृद्धिकी वस्तुयें भी ऐसी ही होती हैं। गालों पर लगानेका पाउडर, ओंठ लाल करनेका रंग, बालके तेल, इत्र, साबुन आदि भी कितने मनुष्योंमें ऐसेही विशेष लक्षण उत्पन्न करते हैं। कभी-कभी फैशन प्रिय स्त्रियाँ शामको घबड़ाई हुई डाक्टरके पास आती हैं कि दावत, या सिनेमामें जानेके लिये श्रृंगार करनेके बाद उनकी आंखें और ओठ ऐसे सूज आये या बदनमें इतनी खुजली होने लगी कि बाहर जाना तो दूर रहा, कष्ट सहना भी असम्भव हो गया। पूछनेसे पता लगता है कि उस दिन उन्होने एक नये तेल या पाउडरका प्रयोग किया था। इन वस्तुओंके बनानेमें ऐसी वस्तुयें भी पड़ती हैं जैसे आरिसकी जड़, या चर्बी जिसे कुछ मनुष्य नहीं सह सकते हैं।

एक उच्च पदाधिकारीकी पत्नीको दमाकी बीमारी हो गई। बहुत रुपया खर्च करके वह विदेशोंमें भी घूमी कि शायद कहींकी आबहवा उसके अनुकूल हो और दमा छूटे। पर बेचारी क्या जानती थी कि उसका भोला भाला श्रृंगार दान ही उसके कष्टकी जड़ था। डाक्टर की रायसे ऊक्त महिला

जब अपने पाउडरको बदल कर दूसरा पाउडर प्रयोग करने लगी तब वह चंगी हो गई।

इसी प्रकार दूसरी महिलाको दमासे बचनेके लिये समुद्र तट पर रहनेकी सलाह दी गई। दिन भर तो वह चंगी होकर घूमती थी पर रातको उसको मुलायम और गरम गद्दे और तकियोंमें भी दमासे चैन नहीं पड़ता था। अंतमें उसके बुद्धिमान डाक्टरने राय दी कि तकियेमें भरा पर और ऊनी कम्बल ही सब बखेड़ों की जड़ है। यह बात ठीक निकली, क्योंकि उसके बाद समुद्र-तटकी आवश्यकता रोगी को न पड़ी

एक टाइप करने वाली लड़की ऐनक साज़ की दुकानसे चुनकर नये सुन्दर फ्रेम वाला चश्मा लगाकर निकली। थोड़ी दूर जाने पर उसने देखा कि सड़क पर चलने वाले स्त्री-पुरुष उसकी ओर घूर रहे हैं, मानों उसके मुंहमें कोई विचित्रता है। जब वह मकान पहुँची और अपनी चंचलता शांत करनेको दर्पणके सामने गई तब अपनी गालों को देख कर उसे बड़ा अचम्भा हुआ। दोनों गाल स्याह हो गये थे। इसका कारण फ्रेम था जिसके बनानेमें कोई ऐसी वस्तु प्रयुक्त हुई थी जिससे उपरोक्त लक्षण उत्पन्न हुआ था। उसी प्रकार एक बाँसुरी बजाने वालेने जब एक नई लकड़ीकी बाँसुरी बजायी तो उसके ओठ सूज आये।

इन सभी विचित्र लक्षणोंका कारण एक ही जान पड़ता है। इस रोगमें शरीरके भीतर क्या परिवर्तन होता है इसका पता अभी ठीक-ठीक नहीं लगा है। परंतु वैज्ञानिक इसके पीछे पड़े हैं और इसमें संशय नहीं है कि इसका रहस्य शीघ्रही खुल जायगा।

कौनसी दवा अच्छी है

[लेखक—एक 'डाक्टर ऑफ़ सायंस']

मैं रुपया फेंकता हूँ, चित गिरेगा कि पट ? कौन भला बतला सकता है ?

परन्तु चित-पट गिरनेके बारेमें भी एक-दो बातें निश्चित रूपसे कही जा सकती हैं। उदाहरणार्थ, यह निश्चय है कि यदि हज़ार बार रुपया फेंका जाय तो ऐसा नहीं हो सकता कि प्रत्येक बार चित ही गिरे, या-प्रत्येक बार पटही गिरे। इतनाही नहीं, हम दावेके साथ कह सकते हैं कि हज़ार बारमें लगभग आधी बार रुपया चित गिरेगा और आधी बार पट।

लगभग ! लगभग आधी बार ! आप कहेंगे कि इन शब्दोंकी आड़में तो जो चाहे सो कह लिया जाय !

परन्तु बात यह नहीं है। यह दावेके साथ कहा जा सकता है कि रुपया जितनी बार चित गिरेगा और जितनी बार पट गिरेगा, यदि ये दोनों संख्याएँ ली जाँय और एक को दूसरेसे भाग दिया जाय तो लब्धि प्रायः एकके बराबर निकलेगी; इतनाही नहीं, ज्यों-ज्यों हम अधिकाधिक बार रुपया फेंकेंगे त्यों-त्यों यह लब्धि एकके निकट पहुंचती जायगी।

इसे कहते हैं 'बड़ी संख्याओंका नियम'। यह नियम उसी प्रकार अटल है जैसे कल सवेरे सूर्यका उदय होना, या पानीमें नमक छोड़नेसे उसका घुल जाना, या आँच दिखलाने से मोमका पिघलना, या अन्य कोई इसी प्रकारका प्राकृतिक नियम।

परन्तु ऊपरकी बातोंका दवाओंसे क्या संबंध ?

बड़ा संबंध है। रोग और दवाका संबंधभी कुछ अंशोंमें रुपया फेंकने का-सा है। कोई नहीं कह सकता कि अमुक दवा देने पर रोग तीन दिनमें अच्छा होगा या चार में; हैज़े का रोगी बच जायगा या मर जायगा, इत्यादि। कोईभी एक बारके प्रयोगसे नहीं बतला सकता कि किसी रोगके लिये यह दवा अधिक अच्छी है या वह। इन सब प्रश्नोंका उत्तर केवल 'बड़ी संख्याओंके नियमके' आधार पर दिया जा सकता है, परन्तु अकसर इस नियमकी अवहेलना की जाती है, किसी ने एक बार किसी रोगमें एक दवा दी और उसे आश्चर्यजनक सफलता मिली, बस उसने समझ लिया कि उस रोगमें वही दवा बराबर ठीक होगी। परन्तु ऐसा समझना उचित नहीं है। यह तो वैसाही होगा जैसा यदिमैं कहूँ कि एक बार मैं स्टेशन ट्रेन खुलनेके समयके बाद पहुंचा, तो भी गाड़ीके बहुत लेट रहनेके कारण वह मुझे मिल ही गई। इसलिये भविष्यमें मैं सदा देर करके जाया करूँगा।

अभी इसी विषय पर मुझसे एक डाक्टरसे बात हुई।

उन्होंने इस संबंधमें एक बड़ी मनोरंजक घटना बतलाई। उन्होंने एक ज्वर-पीड़ित व्यक्तिको चार गोली दवा (प्लैसमो-क्वीनीन) देकर चंगा कर दिया। कुछ समय बाद वह व्यक्ति एक ज्वर-पीड़ित पड़ोसीको डाक्टरके पास लाया। अपने पड़ोसीसे उसने डाक्टरकी बड़ी प्रशंसा की थी, कहा था कि चार गोलीमें तुमको वे शर्तिया चंगा कर देंगे। डाक्टरने गोलीके बदले पीनेकी दवा दी। रोगीका ज्वर नहीं छूटा। पहले व्यक्तिने डाक्टरसे कहा कि आप इसेभी वही गोली दें जिससे हम स्वयं चंगे हुये थे। डाक्टरने समझाया कि उसे मलेरिया हुआ था और उसके पड़ोसीको न्यूमोनिया। इस लिये पुरानी दवा देना उचित न होगा। उसने बहुत ज़िद की कि पुरानी ही दवा दी जाय। डाक्टरने कहा कि उस दवासे रोगीको शर्तिया नुक़सान होगा और इसलिये मैं जान-बूझ कर ग़लत दवा नहीं दे सकता। वह व्यक्ति यह कहता हुआ कि डाक्टर अब लालची हो गये हैं, ठीक दवा देतेही नहीं, रोगी अच्छा कहाँसे हो, वहाँसे बड़े क्रोधमें चला गया!

एक बार और अनेक बार

इसलिये इस बातके जानने के लिये कि दो दवाओंमें से कौन-सी अच्छी है, केवल एक-दो बारके प्रयोगसे परिणाम न निकालना चाहिये। बिना पक्षपातके जितनेभी उस रोगसे ग्रस्त रोगी आयें उनका हाल वैद्योंको लिखते रहना चाहिये, फिर देखना चाहिये कि प्रतिशत कितने रोगी अच्छे हुये और उनके अच्छे होनेमें औसतन कितना समय लगा। यदि इसी प्रकार की जाँच दूसरी औषधिके लिये भी की जायगी तो निश्चय रूपसे पता चल सकेगा कि कौन-सी दवा अच्छी है। आयुर्वेदिक पद्धति में अभी ऐसी जाँचोंकी बड़ी कमी है। केवल अनुमानसे अनुभवी वैद्य बतला सकते होंगे कि किसी रोगमें कितने प्रतिशत रोगी अच्छे होते होंगे, परन्तु शायदही किसीके पास ऐसी बही निकले जिसमें रोगियोंका लेखा लिखा हो।

पक्षपात रहित होना आवश्यक है।

जाँचमें पक्षपात रहित होना आवश्यक है। जैसे यदि एक दवा केवल ग़रीबोंको दी जाय और दूसरी केवल अमीरोंको तो संभवतः परिणाम सही न निकलेगा। या यदि एक दवा केवल जाड़ेमें दी जाय और एक केवल गर्मीमें तो भी परिणाम पर भरोसा नहीं किया जा सकता। या यदि एक दवाकी जाँच कलकत्तामें की जाय और दूसरी की बम्बईमें तो धोखा हो सकता है। इसलिये यह परमावश्यक है कि परीक्षक पूर्णतया पक्षपात रहित रहें।

गरीके तेलसे मोटरकारें चलेंगी

बेलजियम की मोटरकारोंमें एक दस टन वाली लारी भी है जो पेट्रोलके बदले गरीके तेलसे चलती है, और एक सवारी-गाड़ी भी है जो लकड़ीके कोयलेसे चलती है। ये गाड़ियाँ हैं तो बड़ी विचित्र, परन्तु संभव है इन्हींसे बेलजियम का एक महत्वपूर्ण राष्ट्रीय उलझन सुलझ जाय। बेलजियम को अपना सब पेट्रोल अन्य देशोंसे मँगाना पड़ता है। इसलिये अब वह इस खोजमें है कि कोई ऐसी चीज़ निकल आये जो पेट्रोलका काम दे सके और वह ऐसी हो जो या तो वहीं पैदा होती हो, या बेलजियमके उपनिवेश बेलजियम कांगोमें। वहाँ का सेनाविभाग नवीन प्रयोगों को बहुत दत्त चित्त होकर देख रहा है। अभी तक पत्थरके कोयले लकड़ीके कोयले, गरीके तेल, रासायनिक पेट्रोल और शराब की जाँच की गई है।

इंगलैंड की बनी हुई एक लारी कांगोमें सफलतापूर्वक चल रही है और उसमें गरीका तेल एक विशेष दाहकमें जलता है। परन्तु अब इंजिनियर लोग इस बात की चेष्टाकर रहे हैं कि इस तेल का प्रयोग प्रायः उसी प्रकार किया जाय जिस प्रकार पेट्रोल का। इंजिनियरों का दावा है कि रूईके बिनौलेसे निकला तेल भी एक दिन पेट्रोलके बदले काममें लाया जा सकेगा। इस लिये बेलजियम की सरकारने एक विशेष कमिशन बैठाई है जो बेलजियममें उत्पन्न होने वाले सभी खनिज तथा वानस्पतिक तेलों को मोटरोंमें प्रयुक्त करने की रीतियों की जाँच कर रही है।
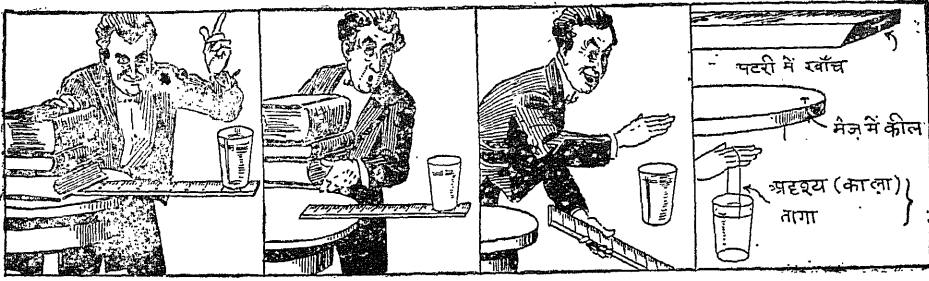
देखनेमें अत्यन्त अवैज्ञानिक रीतिसे पटरी मेज़में चिपक जाती है और गिलास हवामें लटका रह जाता है।

जादू

महिलाओ और सज्जनो,

यह देखिये एक गिलास है। (टन-टन ठोंक कर) कहींसे टूटा-फूटा नहीं है। लीजिये इसकी जाँच कर लीजिये। और यह एक पटरी है। (पट-पट ठोंक कर) कहींसे जोड़ इसमें नहीं है (देखने को देता है, परन्तु यदि बिना इसके दिखलाये ही काम चला लिया जाय तो और भी अच्छा है) और ये देखिये पुस्तकें हैं। इनमें कोई विशेषता नहीं। आइये इनकी जाँच कर लीजिये।

अब मैं आपको एक वैज्ञानिक प्रयोग दिखलाता हूँ। पटरी को मैं मेज़ पर रख कर इसके एक सिरे को पुस्तकोंसे दबाता हूँ। देखिये पटरी गिरती नहीं। क्यों? क्योंकि इसका सिरा पुस्तकोंसे दबा है। पुस्तकें उठाली जायँ तो क्या होगा? क्या कहा? पटरी गिर जायगी? ठीक! देखिये, मैं पुस्तकोंको उठाता हूँ (पुस्तक उठाता है, जिससे पटरी गिर पड़ती है) आपका कहना ठीक था।

अच्छा अब दूसरा प्रयोग देखिये। पटरीके सिरेको मैंने पुस्तकोंसे दबा दिया। इसके दूसरे सिरे पर मैं इस गिलास को रखता हूँ (गिलास रखता है)। अच्छा बतलाइये तो ज़रा कि पुस्तकोंके उठानेसे गिलास फूटेगा कि साबित ही रह जायगा। क्या कहा? फूट भी सकता है और नहीं भी? वाह! यह भी कोई जवाब है! एक बात कहिये! अच्छा मैं खुद बतलाता हूँ। गिलास नहीं फूटेगा। मजाल है जो फूट जाय। यह देखिये। मैं पुस्तकें उठाता हूँ। ('उठाता है।)- अरेऽऽऽ! गिलास तो गिरा ही नहीं!!

यह क्या हुआ! (हाथ गिलासके पास ले जाता है) नहीं यह नीचे नहीं जानेका। यहतो उठ रहा है! (गिलास वस्तुतः उठता है और हवामें टँगा रह जाता है। तबसे जादूगर बायें हाथसे पटरी को भी उठा लेता है। दर्शक जब गिलासका हवामें लटकना अच्छी तरह देख लेते हैं तब उनके हाथमें गिलास जाँचके लिये दे दिया जाता है)

रहस्य

पटरीके एक सिरेमें थोड़ी दूर तक खाँच कटा रहता है और मेज़में एक कील गड़ी रहती है। इसीसे पटरी मेज़ पर चिपक सकती है। अंतमें पटरी उठाते समय कील भी निकाल कर चुपकेसे उसे फेंक दिया जाय तो अच्छा है। गिलासको हवामें लटकानेके लिये बारीक काले तागे का इस्तेमाल किया जाता है। जादूगर सदा काले कपड़े पहनते हैं। पीछे का परदा भी काला रहता है। इसलिये यह काला तागा किसी को दिखलाई नहीं पड़ता। अंतमें गिलास को दूसरोंके हाथमें देते समय इस तागे को चुपकेसे नीचे गिरा दिया जाता है।

वैज्ञानिक संसार के ताज़े समाचार

नींद से दुर्घटना न होगी

मोटर-गाड़ी चलते समय नींद आ जाना भयानक दुर्घटनाओं का एक साधारण कारण है। इससे बचने के लिये एक आविष्कारक ने ऐसी घंटी का निर्माण किया है जो ड्राइवर के ऊँघते ही ज़ोरसे बजने लगती है। यह एक छोटी सी घंटी है जो कि गले में बाँध ली जाती है। इसके ऊपर एक घुंडी निकली रहती है। जब ड्राइवर ऊँघता है और उसका सर लटकता है तो यह घुंडी दब जाती है जिससे चाभी भरी घंटी टनटनाने लगती है।

धातु की बत्ती

वैज्ञानिकों ने अब ऐसा धातु भी बना लिया है जो मिट्टी के तेल के लैंपों और कड़वे तेल के दिआयों में प्रयुक्त हो सकेगा। इसके बनाने के लिये तांबे को पहले चूर्ण कर लिया जाता है और तब उसे मशीन में खूब ज़ोर से दबाया जाता है—प्रत्येक वर्ग इंच पर कई सौ मन का दबाव पड़ता है। फिर धातु को तपाया जाता है। देखने में धातु अब भी तांबा-सरीखा ही लगता है, परंतु तोल में हलका होता है। यदि इस पर एक बूँद पानी रख दिया जाय तो वह तुरंत इसके छिद्रों में घुस जाता है ठीक उसी तरह जैसे सोख़्ता या कपड़े पर रखने से। जब इस धातु की बत्ती बना कर उसका एक सिरा मिट्टी के तेल में डुबाया जाता है तो तेल दूसरे सिरे तक चढ़ जाता है और दियासलाई से जलाया जा सकता है। इस लिये ऐसे धातु की बत्तियाँ बन सकती हैं।

प्रकाशयुक्त तापमापक

सभी फ़ोटोग्राफ़र जानते हैं कि समय और तापक्रम वाली डेवलप करनेकी रीति सर्वोत्तम है। परन्तु अँधेरी कोठरी में तापमापक का पढ़ना, कम प्रकाशके कारण, अकसर कठिन होता है। इस लिये हालमें ऐसे तापमापक (थरमामीटर) भी बनने लगे हैं जिनमें स्वय प्रकाश का प्रबन्ध रहता है। शीशेके भीतर एक छोटा सा लाल बल्ब रहता है जिसका कनेक्शन ड्राइ सेल वाले किसी टार्चसे कर दिया जाता है। बत्तीके जलने पर मंद-मंद प्रकाश तापमापकके पारे पर पड़ता है, जिससे तापक्रम पढ़नेमें बड़ी आसानी होती है।

यदि चोर खोलना चाहे तो ताला बजने लगेगा

हाल में एक बिना चाभी के ताले का आविष्कार हुआ है। कई एक बिजली के बटनों को सही क्रम में दबाने से ताला खुलता है, परंतु यदि कोई किसी भी बटन को ग़लत क्रम में दबा दे तो एक बिजली की घंटी ज़ोर से बजने लगेगी और ७ मिनट तक बजती रहेगी। बटनों के दबाने का वह क्रम जिससे ताला खुलता है इच्छानुसार बदला जा सकता है इसके लिये घर के भीतर लगे स्विचों का संबंध भर बदलना पड़ता है। कुल ५६ विभिन्न क्रम बन सकते हैं। यदि कोई इन सब क्रमों से बटन दबाना चाहे तो उसे ६ घंटे से अधिक समय लगेगा।

भूँकता भोंपू मोटर वालों के लिये सुविधा

साधारणतः मवेशी मोटर की भोंपू की परवाह नहीं करते, चाहे उसे कितनी भी ज़ोर से क्यों न बजाया जाय। एक आविष्कारक ने ऐसा भोंपू बनाया है जिसमें से कुत्ते के भूँकने की आवाज़ निकलती है। पहले तो उसने ऐसा भोंपू मज़ाक के लिये बनाया था, परंतु अंत में यह बड़ा उपयोगी सिद्ध हुआ क्योंकि इसके सुनते ही मवेशी दूर भागते हैं।

पनडुब्बी जहाज़ जो हाइड्रोजन आक्सिजन से चलेगा

अभी तक पनडुब्बी जहाज़ मिट्टी के तेल से और बिजली से चला करते थे, परंतु जरमन सरकार ने ऐसी पनडुब्बियाँ बनवाई हैं जो हाइड्रोजन और आक्सिजन (उदजन और ओसजन) से चलेंगी। इस से एक तो पनडुब्बी बहुत हलकी बन सकेगी; साथ ही इससे जान की जोखिम भी कम रहेगी। पुरानी पनडुब्बियों को पानी के नीचे बैटरी की बिजली से, और पानी के ऊपर मिट्टी के तेल से चलाया जाता था। वहीं डैनमो चला कर बैटरियों में बिजली भी भर ली जाती थी। नवीन पनडुब्बी में बैटरी के न रहने के कारण खड़ी-बेंड़ी किसी भी स्थिति में गोता लगाया जा सकता है। यदि पनडुब्बी कहीं समुद्र-तल में फँस जाय तो उदजन-ओषजन-मिश्रण से जहाज़ की पेंदी उड़ा दी जा सकती है। ओषजन की सहायता से पानी के भीतर अधिक समय तक टिका भी

जा सकता है। पुरानी पनडुब्बी में जब मिट्टी का तेल जलता था तो बहुत दूर से धुँआ देखा जा सकता था और आवाज़ सुनी जा सकती थी, परंतु उदजन और ओषजन के जलने पर पानी बनता है। आवाज़ भी विशेष नहीं होती। इस लिये पनडुब्बियों का पता दुश्मन को आसानी से न लगेगा। नवीन पनडुब्बियाँ बहुत तेज़ और बहुत दूर तक जा सकती हैं।

३०००) का इनाम आप पा सकते हैं

अमरीका के सब कपड़ा धोने वाली कंपनियों ने मिल कर एक हज़ार डालर का एक पारितोषिक उस व्यक्ति को देने का निश्चय किया है जो कपड़े पर से चाय के दाग़ के मिटने का उपाय बतला सके। चाय, क़हवा, नारंगी के रस और अन्य भी कई एक भोजन के पदार्थों से दाग़ कपड़े पर पड़ जाते हैं उनके छुड़ाने की रीति अभी तक ज्ञात नहीं है। पारितोषिक के अतिरिक्त, यदि कोई व्यक्ति किसी वस्तुतः अच्छी रीति का आविष्कार करे और दाग़ छुड़ाने का मसाला स्वयं बनवाये और बेचे तो अवश्य ही वह बात की बात में करोड़पति हो जायगा। चाय आदि में टैनिन नामक रासायनिक पदार्थ रहता है। जब कपड़े पर यह पड़ जाता है तो रेशों में घुस जाता है और वहीं कड़ा हो जाता है। पेट्रोल या बेंज़ीन से जब कपड़ा साफ़ किया जाता है तब ये दाग़ भूरे रंग के हो जाते हैं जो किसी प्रकार भी नहीं मिटाये जा सकते। जनवरी-१९३८ तक प्रतियोगिता खुली रहेगी। पेट्रोल और बेंज़ीन से कपड़ा धोने वाली सभी बड़ी कंपनियों से निर्वाचित एक निर्णायक-समिति बनी है और यह समिति इस बात का निर्णय करेगी कि पारितोषिक के लिये आये रासायनिक पदार्थों में सब से अधिक उपयोगी कौनसा है।

सेलोफ़ेन में लपेटा कोयला

नौकरों का वेतन बहुत अधिक होने के कारण यूरोप और अमरीका के केवल बहुत धनी घरानों में ही नौकर रहते हैं। हज़ार-सवा हज़ार रुपया मासिक पाने वाले व्यक्ति नौकर साधारणतः नहीं रख सकते क्योंकि नौकर तीन सौ रुपये मासिक से कम क्या लेगा। इस लिये महिलाओं की सुविधा के लिये एक कारख़ाने वाले ने पत्थर के कोयले के चार-चार इंच के घनाकार ढोंके बनाना आरंभ किया है और इनको वह सफ़ाई से सेलोफ़ेन में लपेट कर बेंचता है। सेलोफ़ेन पारदर्शक काग़ज़ को कहते हैं, जो यहाँ भी साबुन की डिबियों और इत्र की शीशियों के लपेटने के लिये प्रयुक्त होता है। खेद है कि विदेशी वस्तु होते हुये भी स्वदेशी कारख़ाने इस सेलोफ़ेन का खूब इस्तेमाल करते हैं। मज़ा यह कि इसकी कोई विशेष आवश्यकता भी नहीं है। क्या स्वदेशी काग़ज़ में लपेटा जाय तो इन कारखानों का माल न बिके? स्वदेशी-प्रेमियों को सेलोफ़ेन में लपेटे माल से होशियार रहना चाहिये। आग जलाने के लिये केवल इतना ही काफ़ी है कि दमकल में कुछ रद्दी अखबार और सेलोफ़ेन में लपेटे गये दो चार कोयले के ढोंके झोंक दिये जायं और दियासलाई लगा दी जाय, न तो घर में कोयले की धूल उड़ेगी न महिलाओं का हाथ काला होगा।

सोया से मोटरकारों के अंग

फ़ोर्ड मोटर कंपनी के मालिक श्री हेनरी फ़ोर्ड का कहना है कि वह समय शीघ्र आने वाला है जब मोटरकारों के कई अंग खेत में पैदा किये जायेंगे। इंजन, धुरी और थोड़े से दूसरे अंग तो अवश्य ही इस्पात के बनेंगे, परंतु शेष भाग यहाँ तक कि गाड़ी की छत, दीवालें और दरवाज़े आदि खेत की पैदावार से बनेंगे।

यह प्रश्न सोया नामक दाल से हल हुआ है। सोया तो भारतवर्ष में भी अब बोया जा रहा है। महात्मा गांधी ने भी इस पर बहुत ज़ोर दिया है क्योंकि यह सस्ती चीज़ है और डाक्टरों के मतानुसार बहुत पौष्टिक भी है।

प्रदर्शनी में फ़ोर्ड कंपनी ने सोया से भोंपू का बटन, गियर परिवर्तक-दंड की धुंडी, और गाड़ी हाँकने का चक्का बना कर भेजा था। पाश्चात्य देशों में सोया थोड़े ही दिनों से चला है। एक ओर तो फ़ोर्ड कंपनी के इंजिनियर और रासायनिक लोग सोया के नये-नये गुणों के आविष्कार में लगे हैं, दूसरी ओर कंपनी के कृषि-विशेषज्ञ यह प्रदर्शित कर रहे हैं कि सोया फ़ोर्ड कंपनी के खेतों में आसानी से उगाया जा सकता है।

आज भी सोया से ग्लिसरीन निकाला जा रहा है जो-शॉक-अबसार्बर में पड़ता है, एनामेल बनाया जा रहा है जिससे गाड़ी रंगी जाती है, और रजन के समान पदार्थ निकाला जा रहा है, जिसे गरम कर और साँचे में दबा कर भोंपू के बटन, डिस्ट्रिब्यूटर के ढकने आदि बनते हैं।
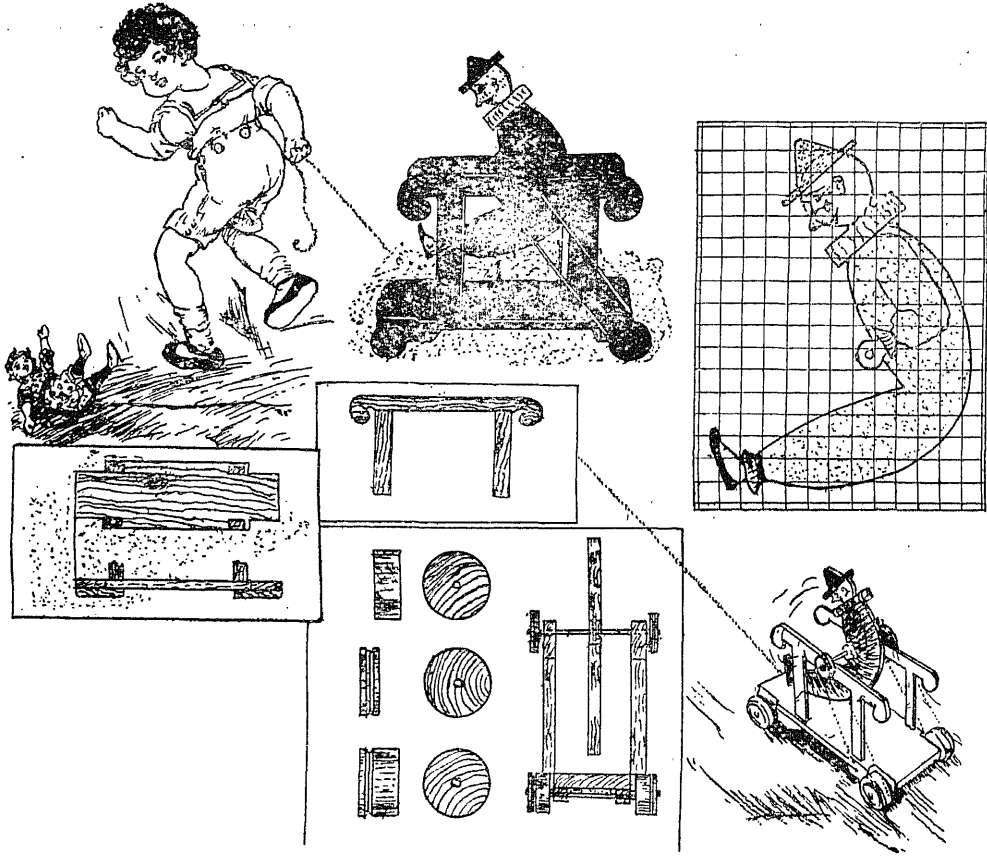
कलाईबाज़

कलाई बाज़ बच्चोंका मन तुरंत मोहित कर लेगा। इसके बनाने की रीति का पता चित्रोंके देखतेही चल जायगा। चार पहियेकी गाड़ीके ऊपर दो चौखटे खड़े किये जाते हैं जिसपर सरकसके कसरतीकी मूर्ति एक धुरीके सहारे लगायी जाती है। पहिये और कसरतीसे संबद्ध गराड़ी पर पट्टा लगा दिया जाता है जिससे गाड़ी खींचने पर जब पहिया घूमता है तब सरकसका कसरतीभी घूमता है और इसलिये क़लाई खाता हुआ जान पड़ता है।

कसरती आध इंच मोटी लकड़ीसे काटा जा सकता है। लकड़ी पर चार्ट्स.ने ८ इंचके बनाये जायँ और यहाँ दिये गये शकलकी नक़ल उस पर उतारली जायँ। कट जाने पर इसको सावधानीसे समतुलित करना चाहिये। समतुलित रहनेही पर कसरती क़लाई खा सकेगा, क्योंकि पहियोंमें इतनी शक्ति नहीं रहती कि एक तरफ भारी रहने पर भी कसरतीको वे घुमा सकें। समतुलनका केंद्र करीब उसी स्थान पर होता है जहाँ चित्रमें यह दिखलाया गया है, परन्तु इस बिन्दुका ठीक-ठीक पता लगानेके लिये छेद करनेके पहलेही वहाँ दोनों ओर से एक-एक आलपीन गाड़ कर समतुलनकी जाँच कर लेनी चाहिये।

पिछले पहिये क़रीब ७" मोटे और १½" व्यासके हों, अगले क़रीब ½ इंच मोटे हों, पिछले पहियोंमें क़रीब $\frac{1}{16}$" गहरा खाँच काट देना चाहिये, पट्टा इसीमें रहेगा। पहियों में धुरीको फँसानेके लिये सरेससे काम चल सकता है, परन्तु यदि धुरीमें चूड़ी पेरदी जाय और प्रत्येक पहियेके लिये दो-दो बाल्टू कस दिये जायँ, एक इस ओर, एक दूसरी ओर, तो काम बहुत मज़बूत बनेगा। पेंदीकी पटरीके नीचे लगी लकड़ीमें धुरीके लिये बनाया गया छेद इतना ढीला अवश्य रहे कि धुरी आसानीसे घूम सके, परन्तु इससे अधिक ढीलाभी न रहे। कसरतीका हाथभी धुरी पर कसा रहता है, इसके लियेभी सरेस या बाल्टूओंका प्रयोग किया जा सकता है। इस पर ध्यान रखना चाहिये कि पट्टे से चलने वाले पहिये ठीक एक दूसरेके सीधमें रहें। रबड़की माला काट कर इन पहियों पर पहना देनी चाहिये।

खिलौनेको ख़ूब चटक एनामेल या तेलके रंगोंमें रँगना चाहिये। लाल टोपी, सफ़ेद मुँह, लाल होंठ और लाल नाककी नोंक, पीला कपड़ा, काला जूता, हरी गाड़ी और काले पहिये उपयुक्त होंगे।

विषधर और विषहीन साँपों की अचूक पहचान

[डाक्टर रामशरण दास, डी० एस० सी]

साँप देखकर पहचान—रोगी देखकर पहचान—चिकित्सा—बचनेके उपाय

सर्प चाहे जैसा भी हो उससे सभी भय खाते हैं। भय खाना स्वाभाविक है, क्योंकि प्रथम तो उसका रूप ही भयानक होता है, दूसरे सर्पके काटनेसे बहुधा मृत्यु भी हो जाती है। भारतवर्षमें सर्पके काटनेसे मृत्युके होनेका ठीक-ठीक अनुमान करना तो कठिन है किन्तु इससे कुछ पता चल सकता है कि सन् १९२१में जाँच करने पर ज्ञात हुआ कि १९३९६ मनुष्य सर्पके काटनेसे मरे थे। यह संख्या इतनी बड़ी है कि इसको जानकर भय और खेद होता है, परन्तु शोक इस बातका है कि इतना होते हुये भी सर्पके विषयमें विशेष ज्ञान अब तक नहीं है। चिकित्साके प्रथम यह आवश्यक है कि इस बातका ज्ञान हो कि रोगीको विषैले अथवा विषहीन सर्पने काटा है। बल्कि इस प्रकार कहना चाहिये कि विषैले और विष रहित सर्पका पहिचानना आवश्यक है।

साँप देखकर पहचान करना

अभाग्यवश साँपोंकी पहचान उनके डील-डौल, या फन, या इसी प्रकार की मोटी बातोंसे नहीं की जासकती। उनके ऊपर जो चिह्न बने होते हैं उनकी सावधानीसे जाँच करनी पड़ती है। कुछ सहायता उनकी पूँछोंसे भी मिलती है। सबसे पहिले उसकी पूँछ को देखना चाहिये और यह पता चलाना चाहिये कि पूँछ गोल या लगभग गोल है, अथवा दाहिने बायें तरफ़से चपटी है। यदि कल्पना की जाय कि पूँछ चाकूसे काटी जाय तो वह पूँछ गोल या लगभग गोल कहलायेगी, जिसकी रूपरेखा काटने पर वृत्ताकार होगी जैसा चित्र१ में दिखाया गया है। यदि दाहिने बायेंसे चपटी होगी तो उसका आकार काटने पर ऐसा ज्ञात होगा जैसा चित्र ४ में दिखाया गया है। चपटी पूँछ वाला साँप ज़रूर विषैला होता है। यदि मानलिया जाय कि पूंछ दाहिने बायें से चपटी नहीं है, किन्तु गोल है तो इसमें विषैले और बिना विषैले दोनों प्रकारके सर्प होंगे।

(क) बिना विष वाले सर्प गोल पूंछ वालोंमेंसे दो प्रकारके होंगे :—

१—वे सर्प जिनमें पेट पर और पीठ पर दोनों ओर छोटे-छोटे खुरखुरे एक समान स्केल* (Scale) होते हैं, जैसा चित्र २ में दिखाया गया है।

२—वे सर्प जिनके पेट पर लम्बे प्लेट † (Plate) की भाँति स्केल होते हैं परन्तु ये प्लेट पेट की पूरी चौड़ाई भरके बराबर नहीं होते। पेट को देखनेसे इन प्लेटोंके दाहिने बायें कुछ छोटे स्केल भी दिखाई देंगे, जैसा चित्र ३ में दिखाया गया है। इन दोनों प्रकारके सर्प बिना बिषके होंगे।

(ख) यदि सर्पके पेट पर प्लेट (plate) इतने बड़े हों कि लगभग पेट भर की चौड़ाईमें फैले हों, और छोटे स्केल (scale) की अधिकसे अधिक एक पंक्ति दाहिने-बायें तरफ़ दिखाई देती हो तो इसमें विषैले और बिना विषैले दोनों प्रकारके सर्प हो सकते हैं। ऐसे सर्पों में धामिन अथवा साधारण पनिया सर्प जो नदियों और तालाबोंमें पाये जाते हैं, जहाँ वे अपना भोजन प्राप्त करनेके लिये जाते हैं सम्मिलित है। फिर अत्यन्त विषैले (viper) वाइपर भी इसीमें सम्मिलित हैं, तथा इसीमें काला विषैला सर्प और (krait) करैत आदि भी सम्मिलित हैं।

इसके प्रथम ही कि विषैले सर्पों की पहिचान और उनका वर्णन किया जाय, यह जान लेना आवश्यक है कि कुछ ऐसे भी सर्प होते हैं कि जिनमें न तो विष की थैली होती है और न विषैले दाँत ही होते हैं किन्तु उनके मुंहके भीतर-थूकमें ही एक प्रकार का विष होता है और जब ऐसे सर्प काटते हैं, तो उस विष का प्रभाव रोगी पर होता है परन्तु वह प्रभाव ऐसा नहीं होता कि रोगी मर जाय।

इस लेखमें केवल भारतके विषैले सर्पों का वर्णन किया जायगा, जो ५ प्रकारके होते हैं।

१—समुद्री सर्प, २—करैत (krait), ३—काला सर्प अथवा नाग (Cobra) और कोरल‡ सर्प (Coral Snake) ४—गड्ढेदार वाइपर (Viper with pit) ५—बिना गड्ढेदार वाइपर (pitless viper) इन सब की पहिचान यह है—

१—समुद्री सर्पमें पूंछ दाहिने बायें तरफ़से चपटी होगी और थूँथन और खोपड़ीके ऊपर बड़े बड़े प्लेट होंगे। इसी बीचमें यह बता देना आवश्यक है कि लोगों का विचार है कि जलमें रहने वाले सर्प बिना विषके होते हैं। परन्तु यह स्मरण रखना चाहिये कि यह बात केवल उन सर्पोंके लिये सत्य है जो नदी अथवा तालाबमें रहते हैं। समुद्रमें रहने वाला प्रत्येक सर्प अत्यन्त विषैला और भयानक होता है। यह भी पता चला है कि पृथ्वी पर रहने वाले काले सर्पसे इसमें अठगुना विष होता है।

२—**करैतमें** पूँछ गोल होगी, और रीढ़के ऊपर बीचों बीच वाली पंक्तिमें स्केल औरोंकी अपेक्षा बड़े होंगे, जैसा कि चित्र नं० १२ में दिखाया गया है। कुछ बिना विषवाले सर्पों में भी रीढ़के ऊपर वाले स्केल बड़े होते हैं। अतः इसके अतिरिक्त अन्य चिन्हों पर भी ध्यान देना आवश्यक है। करैतमें प्रायः नाकवाला स्केल ऊपरके ओंठके पहिले और दूसरे स्केलसे छूता हुआ होगा, किन्तु तीसरेसे बिल्कुल अलग होगा। नाक और आँखके बीचमें केवल दो स्केल होंगे। कनपटीवाला एक स्केल ऊपरके ओंठके पाँचवें और छठवें स्केलसे छूता हुआ होगा। ऊपरके ओठ पर कुल सात स्केल होंगे, जिनमें तीसरा और चौथा आँखसे छूता हुआ होगा। नीचेके ओठ पर चार स्केल होंगे, जिनमें चौथा सबसे बड़ा होगा और अपने पीछेके दो स्केलोंसे छूता हुआ होगा, जैसा चित्र ६ में दिखाया गया है। पाखानेके स्थान पर केवल एक स्केल होगा। पूँछके नीचे प्लेट की भाँति स्केलों की केवल एक पंक्ति होगी। करैत बहुधा बड़े बड़े मिलते हैं और उनकी लम्बाई ७ फुट या उससे भी अधिक हो सकती है। ये संयुक्त प्रांतमें बहुत मिलते हैं और यहाँके लोग इनको चित्तिया चितकौड़िया कहते हैं। करैत कुल १२ प्रकारके अब तक मिले हैं। इनमेंसे ६ प्रकारके करैतके शरीर पर बहुधा सफेद और कभी २ हल्के पीले रंग की बेड़ी धारियाँ या गड़ोर पड़े रहते हैं।

३—नाग और कारल सर्पमें पूँछ गोल होगी और ओठके ऊपर वाला तीसरा स्केल आँख और नाकके स्केलसे छूता हुआ होगा जैसा चित्र ७ में दिखाया गया है। इस चिन्हसे यह सर्प सरलतासे पहिचाना जा सकता है। इसके

---

* स्केल शब्दसे मछलियोंके छिलकेके पतले पतले और निश्चित आकारके टुकड़ोंमें से एक टुकड़े का बोध होता है। † प्लेट=कवच (यहाँ बड़े स्केलसे अभिप्राय है)। ‡ कोरल अँग्रेज़ी शब्द, है अर्थ है मूँगा।

पूँछके नीचे और पाखानेके स्थानके पीछे स्केल की दो पंक्ति होंगी। और पाखानेके स्थान पर केवल एक स्केल होता है। इसके अतिरिक्त काले सर्प का फन चौड़ा होता है, जिससे और भी सरलतासे उसकी पहिचान की जा सकती है। उसके फन के ऊपर कभी इकहरा और कभी दोहरा अँग्रेजी अक्षर वी (v) के आकार का चिन्ह होता है जिसको हिन्दू लोग विष्णुपद कहते हैं। काले सर्पमें विष की थैलीमें (जैसा चित्र ११ में दिखाया गया है) इतना विष होता है कि जिससे १० मनुष्य की मृत्यु हो सकती है। इकहरे चिन्ह वाले काले सर्प को संयुक्तप्रांतमें लोग क्योटिया कहते हैं, और दोहरे चिन्ह वाले को गोखुरा कहते हैं। इल... दमें अधिकतर गोखुरा मिलता है और क्योटिया अ धकतर बंगालमें पाया जाता है। इन्हींमें एक प्रकार का वह है, जो नागों का राजा (king cobra) कहलाता है और जिसकी लम्बाई १२½ फुट तक होती है। यह नागों का राजा जङ्गलमें ही रह और आबादीमें कभी नहीं आता। यह दूसरे सर्पोंको भी खा जाता है और अत्यन्त भयानक तथा विषैला होता है।

कोरल सर्प बहुधा पर्वतों पर मिलता है और कसौली, सी० पी०, मदरास और ब्रह्मामें पाया गया है। कोरल सर्पके पेट पर भाँति भाँति की सुन्दर और रंगीन धारियाँ होती हैं। कभी कभी इन धारियों का रंग मूगोंके रंगका सा होता है। इस सर्प को मार कर स्पिरिट या शराब या और किसी दवा में रखनेसे इन सुन्दर धारियों का रंग उड़ जाता है।

४-गड्ढेदार वाइपर-की पूँछ गोल और आँख और नाकके बीचमें दोनों ओर दाहिने बायें तरफ गड्ढा होगा। (जैसा कि चित्र ८ में दिखाया गया है) रीढ़के ऊपर वाले स्केल औरोंसे बड़े न होंगे। यह पर्वतीय प्रदेशोंमें ही पाया जाता है और बहुधा लम्बा हुआ करता है। इसके काटनेसे सभी रोगी नहीं मरते, बल्कि काटे हुये स्थान पर बहुत ही सूजन और पीड़ा होती है। इनमेंसे एक प्रकार का सर्प चमकीला हरे रंग का होता है और वृक्षों पर रहता है। इसकी लम्बाई ३ फुट की होती है। इन्हींमेंसे एक सर्प अमरीकामें पाया जाता है जिसकी पूँछके सिरे पर छोटी-छोटी घण्टियोंके आकारके स्केल होते हैं। यह एक दूसरेसे पोहे हुये होते हैं और सर्पके चलनेसे इनसे एक विशेष प्रकार का शब्द उत्पन्न होता है। सभी पशु इससे अत्यन्त भयभीत होते हैं परन्तु बहुधा यह मनुष्यों पर आक्रमण नहीं करता।

५—बिना गड्ढेदार वाईपर—इनकी पूँछ गोल, थूंथन और सरके ऊपर स्केल उसी प्रकारके छोटे होंगे जैसाकि चित्र ६ में दिखाया गया है। इनमें पेटके प्लेट पेट भर चौड़े होंगे और पेटको देखनेसे प्लेटके इधर उधर केवल एक पंक्ति छोटे स्केलों की दिखाई देगी। यह सर्प रेगिस्तानोंमें पाये जाते हैं। यह राजपूताना, पंजाब, सिन्ध और बिलोचिस्तानमें बहुत पाये जाते हैं। इनके विषका प्रभाव काले सर्पसे कम होता है तो भी इन सर्पोंके काटने से प्रति वर्ष बहुतसी मृत्यु हो जाती हैं। इन सर्पोंकी लम्बाई २ फुटसे अधिक नहीं होती। भारतवर्षमें इस प्रकारका जो सर्प पाया जाता है उसे दबोइया (Russell's viper) कहते हैं। यह पंजाबमें बहुधा पाया जाता है और काफ़ी विषैला समझा जाता है।

जो सर्प इन पाँचों भेदों में से न होगा उसे समझ लेना चाहिये कि वह बिना विषका है। इनके अतिरिक्त एक सर्प और है, जो कि अभी तक केवल बरमामें मिला है और जिसकी पहिचान देनेकी कोई विशेष आवश्यकता नहीं है।

काटे हुये स्थानको देख कर पहचान करना

बहुधा ऐसा होता है कि सर्प के काटनेके बाद सर्पका पता नहीं चलता है ऐसी दशामें भी रोगी को और काटे हुये स्थान को देख कर यह पता चलाया जा सकता है कि सर्प विषैला था अथवा नहीं। विषैले सर्प के केवल विषैले दाँत होते हैं। अन्य किसी प्रकारके दाँत ऊपरके जबड़े के सामनेके भाग में नहीं होते। और जब सर्प काटता है तब विषैले दाँत या तो खालमें चुभ जाते हैं या खरोंच बना देते हैं। इसलिये यदि सर्प विषैला है तो थोड़ी दूर पर खालमें दो छेद दिखाई देने चाहिये जैसा चित्र १० ब और स में दिखाया गया है। और यदि सर्प विषैला नहीं है तो बहुत से दाँतके चिह्न पास २ मिलने चाहिये जैसा कि चित्र १० में दिखाया गया है। इन चिह्नों का पता साधारण रूप से देखने से सम्भव है न चल सके परन्तु आतशी शीशा (प्रवर्द्धक ताल) से देखने से ये चिह्न स्पष्ट देखे जा सकते हैं। सर्प यदि विषैला भी हो तो भी उसके काटने का प्रभाव तभी हो सकता है, जब कि उसको काटनेका पूरा अवसर मिले और अपने विषका प्रभाव हमारे शरीरमें ठीक ठीक

चित्र १—गोल और लगभग गोल पूँछ ।

चित्र २—विषहीन सर्प का पेट । सब स्केल एक प्रकार के हैं ।
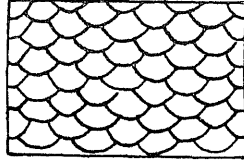
चित्र ३—विषहीन सर्प का पेट बीच का स्केल बड़ा है।
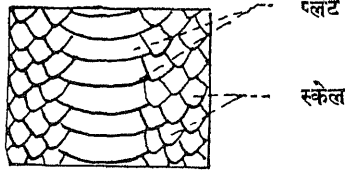
चित्र ४—सर्प का पेट, जब स्केल पेट भर चौड़े होते हैं। ऐसा सर्प विषैला और विषहीन दोनों हो सकता है ।
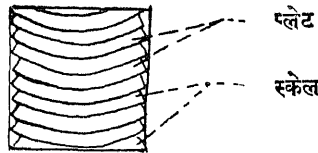
चित्र—५ समुद्री सांप की चपटी पूँछ ।
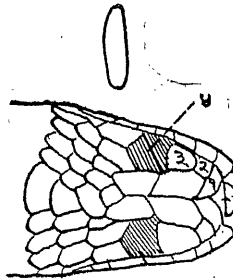
चित्र—६ करैत के ओठ के स्केल १, २, ३, ४ नीचे के ओठ के स्केल जिसमें चौथा सब से बड़ा है ।

रीढ के ऊपर वाले स्केल
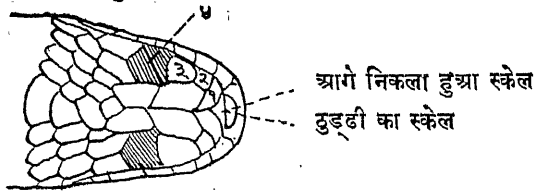
चित्र १२—करैत की पीठ के स्केल, जिसमें रीढ़ के ऊपर के स्केल औरों की अपेक्षा बड़े हैं ।
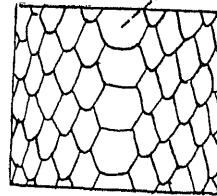
सके। सर्पके काटने से पीड़ा अवश्य होती है, और यदि सर्पका विष शरीरमें आ गया है, तो यह पीड़ा शीघ्र या कुछ देर बाद मालूम होगी। यह पीड़ा बहुतही ज़ोरकी होती है और एक प्रकार की जलन भी होती है। काले सर्प के काटने पर काटा हुआ भाग सुन्न पड़ने लगता है। विषैले सर्प के काटनेसे काटे हुये भाग पर सूजन तुरन्त या कुछ देर बाद अवश्य आ जायगी। यदि सूजन नहीं आई है तो मान लेना चाहिये कि सर्प विषैला नहीं था। विषैले सर्प के काटे हुये घाव पर ख़ून जमने नहीं पावेगा और कई घंटे तक बराबर बहता रहेगा। यदि बिना विषैले सर्प ने काटा है तो घाव पर ख़ून जम जायगा और घाव बन्द सा हो जायगा। विषैले सर्प के काटने से काटा हुआ भाग अथवा उसके चारों ओर कुछ ही मिनटमें हरा या नीला सा हो जायगा, परन्तु बिना विषैले के काटनेसे ऐसा नहीं होगा।

चिकित्सा

सर्प का विष कुछ ही मिनटमें शरीरमें फैलने लगता है इसलिये जो कुछ भी करना हो शीघ्र करना चाहिये। जब सर्प का काटा हुआ रोगी सामने आवे तो तुरन्तही इस बातका निश्चय कर लेना चाहिये कि शरीरमें विष पहुंच गया है या नहीं। यदि सर्प देखने को मिल जाय तो ऊपरके दिये हुये चिह्नोंसे पहिचान लेना चाहिये कि सर्प विषैला था या नहीं। इसी प्रकार काटे हुये स्थानको देख करभी इसका पता चला लेना चाहिये कि शरीरमें विष पहुंच गया है या नहीं। यदि यह पता चल जाय कि सर्प विषैला नहीं था तो रोगीको प्रसन्न और निर्भय बनानेका प्रयत्न करना चाहिये और इस बातका विश्वास दिलाना चाहिये कि उसको किसी प्रकारका कष्ट या हानि न होगी। इसमें किसी प्रकारकी चिकित्सा करनेकी आवश्यकता नहीं है। अधिकसे अधिक घावको स्वच्छ पानीसे धोकर उसके ऊपर साफ़ कपड़ा बाँध देना चाहिये जिससे धूल आदि उसमें न पड़े। यदि यह पता चल जाय कि सर्प विषैला था तो डाक्टर को बुलानेमें शीघ्रता करनी चाहिये। इधर डाक्टर के आने की प्रतिक्षा बिना किये ही काटे हुये स्थानके ऊपर सुतली से कस कर बाँध देना चाहिये और काटे हुये स्थानके पास साफ़ चाक़ूसे इस प्रकार काटना चाहिये जिससे ख़ून भली भाँति बहने लगे। ख़ूनके बहावके साथ विषभी बह जायगा थोड़ी देर बाद घावको साफ़ करके कीटाणुओंके मारनेवाली दवा (परमैंगनेट ओफ पोटैसियम आदि) पानीमें गाढ़ा घोल कर लगाना चाहिये। ऐसा करनेसे यह सम्भव है कि विष का प्रभाव हो, किन्तु सम्भवतः वह व्यक्ति मृत्युसे बच जायगा। पोटासको पानीमें घोल कर घाव पर रगड़ने से लाभ होता है। काटे हुये भाग को १५ या २० मिनटसे अधिक न बाँधना चाहिये नहीं तो ख़ूनके दौरानमें ख़राबी होनेका भय है। सर्पके विषैले होनेका पता चल जाने पर 'ऐन्टी वीनीन' (Antivenene) का इंजेक्शन किसी डाक्टरसे करा देना चाहिये। यदि यह इंजेक्शन ठीक समय पर पहुंच जाय तो काले सर्प और वाईपरके काटे हुये रोगीको अवश्य आरामहो जायगा। ऐन्टीवीनीन विषको अवश्य मार डालती है परन्तु स्वयं बिना विषैली है, इसका प्रभाव बुरा नहीं होता है। करैतके विषका एन्टीवीनीन अभी तक तैय्यार नहीं हो सका; क्योंकि इन सर्पोंका विष अधिक परिमाणमें नहीं मिला है। बम्बईके हाफ़किन इन्स्टिट्यूट (Haffkine Institute) में बहुतसे काले सर्प और रसल वाईपर पाले गये हैं। उनसे शीशेके बरतनके मुँह पर तने रबड़ कटवाया जाता है। ऐसा करनेसे सर्पका विष कुछ बरतनमें गिर पड़ता है। यह विष इकट्ठा कर लिया जाता है और कसौली भेज दिया जाता है, वहाँ यह विष थोड़ी थोड़ी मात्रामें घोड़ोंके शरीरमें पहुंचाया जाता है। जैसे अफ़ीमचियोंको अफ़ीमका विष असर नहीं करता इसी प्रकार इन घोड़ों पर सर्पका विष अपना प्रभाव नहीं डालता। यदि ऐसे घोड़ोंमें विषकी बड़ी मात्राभी सुईके द्वारा पहुंचा दी जाय तो घोड़े के ऊपर कोई बुरा प्रभाव नहीं होगा क्योंकि घोड़ेके ख़ूनमें कुछ ऐसी चीज़ें उत्पन्न हो जाती हैं कि जो सर्पके विषको नष्ट कर डालती है और उसका कोई प्रभाव नहीं देती हैं। ऐसे घोड़े का थोड़ा सा ख़ून लेकर एक नलिकामें छोड़ दिया जाता है जिससे वह जम जाय, जमने पर पानीकी भाँति पीला पीला जो रक्तरस रह जाता है उसीको 'ऐन्टीवीनीन कहते हैं।

यह आवश्यक नहीं है कि विषैले सर्प का काटा हुआ रोगी चिकित्साके अभावमें मर ही जाय। क्यों कि सम्भव है कि इस रोगीके काटने के प्रथम वह सर्प किसी दूसरेको काट चुका हो। ऐसी अवस्थामें सर्प अपना विष इस व्यक्तिमें नहीं डाल सकता। यह भी सम्भव है कि सर्पको काटते समय पूरी पकड़ न मिल पाई हो और वह अपने विषकी पूरी मात्रा रोगी में न पहुंचा
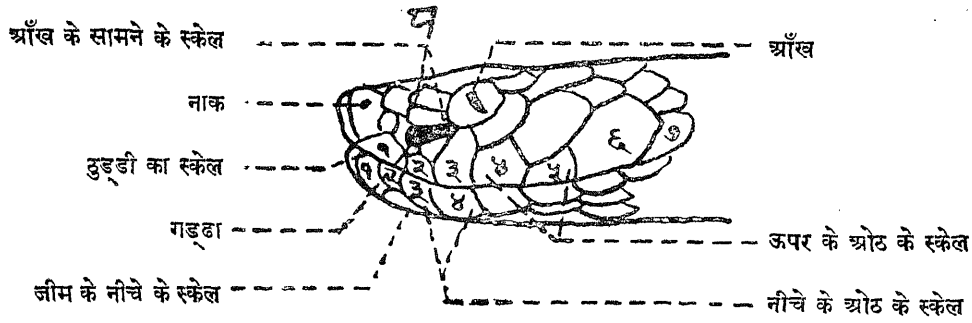
चित्र ७—काले सर्प के सिर का दिखाई पड़ने वाला बायाँ भाग। न—दोनों नाक के बीच का स्केल। प=आँखके आगे का स्केल। १, २, ३, ४, ५, ६, ७=ऊपर के ओठ के स्केल जिसमें से तीसरा नाक के स्केल और आँख से छूता हुआ है।
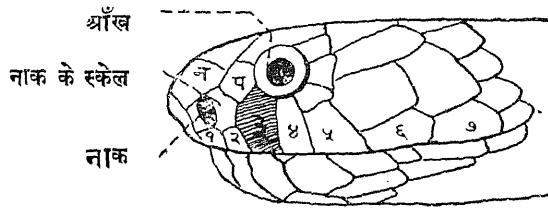
चित्र ८—गड्ढेदार वाईपर के सिर की बाईं ओर का चित्र। [प=आँख के सामने के स्केल। १, २, ३, ४, ५, ६, ७=ऊपर के ओठ के स्केल।
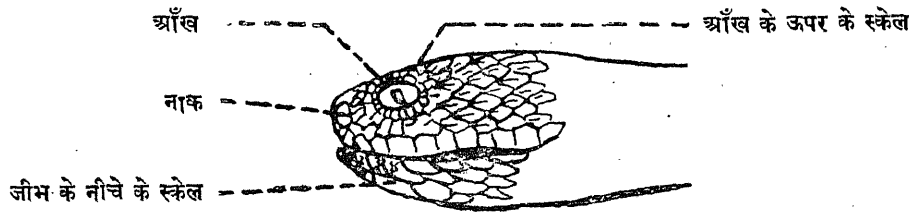
चित्र ९—बिना गड्ढेवाले बाईपर के सिर का बायाँ भाग। न=नथुने का स्केल। १, २, ३, ४=नीचे के ओठ के स्केल।
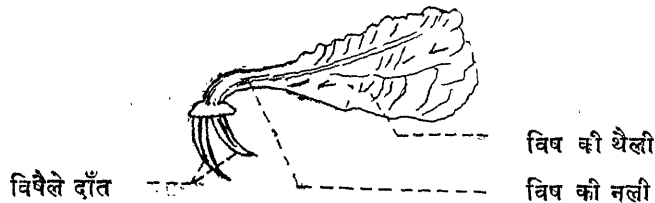
चित्र ११—विष थैली व नली व विषैले दाँत।

पाया हो अथवा सर्प ने कपड़े के ऊपर से काटा हो तो सम्भव है कि विषकी पूरी मात्रा न पहुंच पाई हो। लगभग ६० प्रति सैकड़ा रोगी सर्प के काटे हुये बिना चिकित्सा के अच्छे हो जाते हैं। परन्तु उन सबमें कहा यह जाता है। कि या तो डाक्टर ने अच्छा कर दिया या मन्त्र या किसी जड़ या पत्ती या पेड़ या पत्थरसे रोगी अच्छा हो गया। परन्तु अभी इनमें से किसीपर भी सन्तोषजनक विश्वास नहीं किया जाता। सपेरे जो 'जहरमोहरा' दिखाते फिरते हैं, वह या तो हड्डी का जला हुआ भाग होता है, या एक प्रकारकी खड़िया होती है, या पशुओंके पित्ताशय के पत्थर होते हैं, इन सब में यह गुण होता है कि वे घाव के ऊपर चिपक जाते हैं क्योंकि वे ख़ून को कुछ सोख सकते हैं। परन्तु सर्पके विषपर इनका कुछ प्रभाव नहीं पड़ता।

स्मरण रखने योग्य बातें

हुधा लोग यह प्रश्न करते हैं कि जब विष मिनटों में शरीरमें फैल जता है तो डाक्टरी सहायता इतनी जल्दी कैसे पहुंचाई जा सकती है, परन्तु यह स्मरण रखना चाहिये कि बिष शरीर में ख़ून के द्वारा फैल अवश्य शीघ्र जाता है तो भी मृत्यु बहुत देर बाद होती है। काले सर्प के काटने से मृत्यु ४—८ घण्टे तक में होती है इसलिये यदि 'ऐन्टीवीनीन' का इंजेक्शन काटने के एक दो घण्टे बाद तक मिल जाय तो सम्भव है कि विषका प्रभाव चला जाय और रोगी मृत्युसे बच जाय।

अतः विषैले सर्पके काटे हुए रोगीकी चिकित्सा करते समय इन तीन बातों पर ध्यान देना चाहिये।

(१) विषको कटी हुई जगहपर समाप्तकर देना चाहिये। यह काम घावको बढ़ा कर उसमें पोटैसियम परमैगनोट* रगड़ने से हो सकता है।

(२) विष को शरीरमें फैलने से बचाना चाहिये। यह काम कटे हुये भागके ऊपर रस्सीसे कस कर बांधने से हो सकता है।

(३) शरीरके भीतर फैले हु वि का प्रभाव दूर करना चाहिए। यह म 'ऐन्टीवीनीन' के इंजक्शन से किया जा सकता है।

सर्प से सुरक्षित रहने के उपाय

कुत्ते और बिल्लियोंको सर्पसे बहुत ही घृणा है। कुत्ता यद्यपि अँधेरेमें देख नहीं पाता तो भी सूंघ कर सर्प का पता चला लेता है और उनपर चोट करता है। बिल्ली अँधेरे में देख लेती है। और चूहोंकी खोज में घूमती रहती है। सर्पभी चूहोंकी खोजमें घूमते रहते हैं। इसलिए बिल्ली बहुधा सर्पको मार डालती है। इसके अतिरिक्त प्रायः बिल्लियां बिषैले सर्पोंके ऊपर बारबार आक्रमण करती हैं। और मिमियाती हैं, जिससे हमारा ध्यान सर्प की ओर चला जा सकता है।

मकानके चारों ओर जङ्गल, लम्बी घास, या चींटियोंके बिल या चूना, ईंट, पत्थर, आदि का ढेर नहीं रहने देना चाहिए। सर्प प्रायः खपड़ैल की छत में अथवा कपड़ेकी छतके ऊपर रहा करते हैं। जहां सर्पका भय हो वहां पृथ्वीपर न सोकर चारपाई या तख़्तपर सोना चाहिये बहुधा सर्प नालियोंके मोहरियों द्वारा आते हैं इसलिए उन पर जाली लगवा देनी चाहिये। जङ्गलमें जाते समय लम्बे बूट पहन और पट्टी बाँध कर जाना चाहिये।
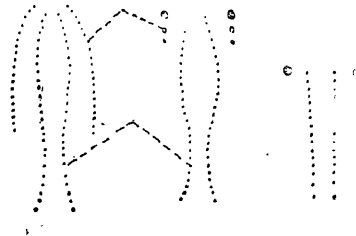
चित्र १०—क=बिना विषैले सर्प के दाँत के चिह्न। ख—काले सर्प के दाँत के चिह्न। ग=वाइपर के दाँत के चिह्न। (ख), (ग) वाले चिह्न में बीच की दो पंक्तियों के अतिरिक्त इधर उधर तीन दाँतों के चिह्न से अधिक न होंगे।

* यह दवा प्रत्येक अँग्रेज़ी दवाख़ाने में बिकती है। बड़ी सस्ती चीज़ है।

मूर्वा, मोखले या चुरनहार

[स्वामी हरिशरणानन्द जी वैद्य]

१--नाम

यह आयुर्वेद की प्रसिद्ध वनस्पतियोंमें से है, किन्तु बहुत समयसे सन्दिग्ध हो रही थी। अभी थोड़ा ही समय हुआ इसका निश्चय किया जा सका है। यह काक पादीयवर्ग Ranunculaceæ N. O. की अथवा अतिविषा वर्गकी वनस्पति है। इसका लेटिन नाम Clematis Gouriana है। गुजरात और महाराष्ट्रमें मोखेल और हिन्दीमें चुरनहार कहते हैं।

२--वर्णन

इसकी लता चलती है, जो प्रायः १०--१५ फुट तक लम्बी वृक्षोंपर चढ़ जाती है। पत्ते इसपर दो आमने सामने एक नोकपर इस तरह तीन होते हैं। नीचेके प्राथमिक पत्र कहीं कहीं पाँच पाँच भी देखे जाते हैं। पत्ते एक जोड़ा या दो जोड़ा हो आमने सामने लगते हैं। और एक पत्ता नोक पर होता है। पत्ते कटे हुए कंगूरेदार या दानेदार होते हैं। पत्ते नरम, हल्के हरे रोमयुक्त होते हैं। इसके पत्तोंकी आकृति काली जीरी या तिल पत्तों जैसी होती है किन्तु इसके पत्ते इनसे बहुत छोटे होते हैं। यह वेल बारहों मास हरी रहती है। इसकी शाखा और तने धारीदार या लकीरदार भूरे मटमैले रंगके होते हैं? जिसकी मोटाई पैरके अंगूठे तक हो जाती है? इस पर फूल सावन भादों और आश्विन कार्त्तिक तक रहते हैं। फूलों का रङ्ग और आकार महुएके फूलके रङ्गसा और बनावट भी वैसी ही या तिलफूल जैसी होती है। अर्थात् फूलों का वर्ण मोतिया पीला होता है। और फूल गुच्छोंमें लगते हैं। एक गुच्छेमें बीस बीस पचास पचास फूल तक होते हैं। समस्त फूलोंका गुच्छा अंगूर के फलकी तरह नीचे मुंह किये लटका होता है। फूलों में से मालती जैसी बड़ी ही मनोमोहक सुगन्ध आती रहती है। यदि कहीं सड़कके पास मूर्वा की बेल फूल रही हो तो उसकी सुगन्धि सड़क परके लोगोंको खूब आती रहती है। इसके फल नोकदार होते हैं और जब फटते हैं तो तिल फलोंकी तरह उनका मुंह बन जाता है। उसमें से बीज झड़ पड़ते हैं। बीज छोटे होते हैं।

३--उत्पत्ति स्थान

पञ्जाबमें तो यह छः हज़ार फुटसे लेकर १२ हज़ार फुट की ऊँचाई की भूमिमें पायी जाती है। पर बम्बईकी ओर ३--४ हज़ार फुटकी ऊँचाई पर भी काफ़ी मिलती है। पञ्जाबमें प्रायः कोहमरी डलहौजी चम्बा स्टेट, मसूरीमें काफ़ी पायी जाती है। बम्बईकी ओर नासिक कोलाबा, पूना, सितारा रत्नागिरी जिलाके जङ्गलोंमें काफ़ी है। कोकँण, बीजापुर हैदराबाद दक्षिण के जङ्गलोंमें भी इसकी काफ़ी बेलें होती हैं। पर हिमालयकी तराइयोंमें जैसे देहरादून कालका हरिद्वार पठान कोट आदिमें इसका पता नहीं चलता। इसकी जड़में छोटासा कन्द भी होता है।

४--उपयोग

वास्तवमें इसके सबसे अधिक उपयोगी अंश पत्र और फूल होते हैं किन्तु इनके संग्रह का चलन नहीं है। इस लता की लकड़ियाँ ही अधिक तरह संग्रह की जाती हैं और वैद्य उन्हीं को काममें लाते हैं। बहुत समय तक तो इसका मिलना ही दुर्लभ था। खोज करने और निकलवाने पर अब काफी आने लगी है परन्तु, अभी तक इसके पत्र और फूलोंके संग्रहका प्रबन्ध नहीं किया गया। इसका कारण? इसका प्रधान कारण है वैद्योंमें रूढिवाद का प्रचार। जो वैद्य अधिक कालसे इसकी लकड़ियाँ प्रयोगमें लाते हैं, यदि उनको पत्ते और फूल भेज दिये जायें तो वह उसे देखकर कह देते हैं "अरे! यह क्या भेज दिया, मूर्वाकी तो लकड़ियाँ आती हैं! उन्हें कितना ही समझाओ, वह कहते हैं "हमें तो लकड़ियाँ चाहियें" बेचनेवाला लाचार वही लकड़ियाँ ही भेजने पर विवश होता है। इसकी लकड़ियोंमें अच्छी जातिका श्वेतसार संचित रहता है, इस लिये इसमें कीड़ा बड़ी जल्दी लगता है शीतकाल समाप्त होते ही इस पर कीड़ा आ लगता है। कितना ही सुरक्षित रखो, पर बच नहीं सकती। पत्तों और फूलों को इतनी जल्दी कीड़ा नहीं खाता।

आयुर्वेदज्ञ इसकी लकड़ी को अनेक योगोंमें डालते हैं, किन्तु इसका स्वतंत्र उपयोग बहुत कम करते हैं। आधुनिक समयमें इसका जो प्रायोगिक अनुभव हुआ है वह इस प्रकार है:—

इसके पत्तों का रस या पत्तों का त्वचा पर लेप करनेसे त्वचामें प्रदाह होकर छाला पड़ जाता है। इसमें दो प्रकारके चारोद पायेगये हैं जिनमेंसे एकका नाम मूर्वीन और दूसरेका नाम मधुरसीन है। इन्हीं चारोंही के प्रभावसे यह विशेष गुण पूर्ण हो रही है किन्तु इन चारोदों की मात्रा इसके पत्र भागमें ही अधिक है। लकड़ी या शाखा भागमें तो स्वेतसार की मात्रा अधिक पायी जाती है। इसके फूलोंमें दो उद्वापी और दो ही अनुद्वापी तैल हैं। यह उद्वापी तेलभी बड़े गुणदायी हैं।

४–गुण

इसके पत्ते को मुंहमें डालें तो स्वाद मधुर लगता है लकड़ी का स्वाद फीका है किन्तु कुछ देर लकड़ी को मुंहमें रखनेसे वह भी मीठी लगने लगती है। पत्तों का स्वाद बादमें कुछ कसैला कड़वा हो जाता है। पुरानी खांसीमें इसके पत्तों का स्वास शहदमें मिलाकर चटाते हैं। और चय ज्वरमें इसके फूलों का शहदमें गुलकन्द बनाकर खिलानेसे चयज कासमें अच्छा लाभ होता। स्वरयंत्रमें पड़े हुए चत तथा स्वाभंगमें लाभ होता है। काली खांसीमें जब बच्चों को खांसते खांसते कठिनतासे कफ निकलता है उस समय इसके कोमल पत्तोंके रसमें शहद मिलाकर चटानेसे लाभ होता है। इसका कन्द कृमिघ्न और विषनाशक बताया गया है इसके पत्तों को या रस को सेवन करने पर उदर की पाचक ग्रन्थियों पर विशेष प्रभाव होता है। वह उत्तेजित होती हैं और उनकी क्रिया बढ़ जाती है। इससे भिन्न त्वचा पर भी इसके रसका विशेष प्रभाव देखा जाता है। रुधिर विकार और त्वचा सम्बन्धी कुष्ट आदि रोगोंमें यह विशेष लाभदायी है। आंतोंमें इसका करोदक प्रभाव होता है इसीसे यह सारक है। इसके सेवनसे मलका वर्ण पीला हो जाता है। ज्वरोंमें तो इसका क्वाथ और चूर्ण अच्छा लाभ-दायी है। सन्निवात रक्तपित्त, कंठ माला आदि व्याधियोंमें इसके योग फलप्रद हैं।

५ मात्रा

इसके पत्रों की मात्रा २–२॥ माशे है, लकड़ी की खूराक ३ माशे तक है।

——:o:——

अन्नका रासायनिक स्वरूप

[श्री० बा। वाकणकर, बी० एस-सी०, दि आयडिअल इन्सटयूट, लंका, काशी]

हमारे जीवनका प्रथम आधार हवा, दूसरा पानी और तीसरा अन्न है। अन्न त्यागसे सौ दिनसे अधिक भी मनुष्य जीवित रह सकता है। इस बातके अनेक उदाहरण इतिहास में मौजूद हैं। बिना जलके काफ़ी देर तक मनुष्य जीवित रह सकता है। परंतु हवा अगर न मिले तो कोई भी जीव पांच मिनट भी ज़िन्दा न रहेगा। प्रस्तुत लेखमें हमें अन्न पर ही विचार करना है।

अन्नमें साधारणतया चिकनाई (फैट्स), कर्बोदेत (कार्बो हायड्रेट्स), स्नायुपोषक प्रत्यामिन (प्रोटीन्स), लवण (साल्टस्) तथा खाद्योज (व्हिटॅमिन्स) होते हैं। अन्नमें ये पदार्थ किस प्रकार रहते हैं जिसको हमें दूध जैसे सहजमें मिलने वाली वस्तुके उदाहरणसे देखना ठीक होगा।

दूध

दूधमें पानी का काफी हिस्सा होता है, यह सब जानतेही हैं। गरम करनेपर बाष्परूपसे यह पानी उड़ जाता है। विशेष रीतसे दूधमें रहने वाला स्निग्ध पदार्थ (अर्थात 'घी') हम स्वतंत्र रूपमें निकाल सकते हैं। जिस दूधकी मलाई निकाली गयी है, उसे जलानेसे जो मावा तैय्यार होता है उसका जल्दी-ही चूरा बन जाता है और यही मावा थोड़ी गरम अवस्थामें स्याहीचूस कागज़पर रखा जाय तो सारा घी कागजमें चुस आता है और इस जल तथा चिकनाई रहित मावेमें केवल दधिन (केसीन) और दुग्धशर्करा (लेक्टोज़) बच जाती है।

गन्नेसे साधारण चीनी या शकर निकालनेमें जो दिक्कत पड़ती है, उससे कई गुना अधिक दूधसे दुग्धशर्करा निकालनेमें

होती है। दुग्धशर्करा स्फटिकरूप और रंगमें सफेद परंतु मिठासमें साधारण चीनीसे कुछ कम होती है। इसका प्रमाण भैंसके दूधसे गोदुग्धमें अधिक और सबसे अधिक मांके दूधमें (मानवीदुग्ध) होता है। मलाई निकाले दूधमें नींबू निचोडनेसे दूध फट कर छाना बनता है। उसे कपड़ेमें डालकर धोते हैं। इसे ही दधिन (casien) कहते हैं। रसगुल्ला आदि बंगाली मिठाई दधिनसे बनती है। दूधका स्निग्ध अर्थात घी निकालने की रीति तो सर्व परिचित है। इसके सिवा कुछ लवण (साल्टस) भी दूधमें होते हैं।

अन्य पदार्थ

दूधके जो घटक अभी ऊपर दिखाये गये हैं वैसे ही अन्य खाद्य पदार्थोंमें भी पाये जाते हैं। घीके वर्गमें तेल और चर्बी को रखा जाता है, क्योंकि इनमें चिकनाई घी की तरह ही विद्यमान है। केवल इतनाही नहीं। मनुष्यके खानपानमें इनका प्रमाण बढ़े तो मेदवृद्धि होती है, यह अनुभव भी इस वर्गीकरण को पुष्टि देता है।

कर्बोदेत (कार्बोहैड्रेट) वर्गमें दुग्धशर्कराके साथ ही साधारण चीनी, मधु (शहद), श्वेतसार या मंड (स्टार्च) आदि वस्तुएं आती हैं। सत, या मण्ड या स्टार्च की प्राप्ति उद्भिद पादार्थोंके बीजोंसे होती है। शकरकंद, आलू, सूरण, चावल, बाजरी, गेंहू आदिमें काफी अंशमें पिष्टसत्व (स्टार्च) रहता है।

कर्बोदेत के प्रकार और गुण

आटेको पानीमें डालतेही सतके दाने नीचे बैठते हैं क्योंकि सत पानीमें नहीं घुलता। सत सर्वदा बे-रबा (amorphous) होता है, उसके दानोंकी आकृति भिन्न भिन्न होती है। सतके वर्गमें ही शर्करा आती है, परंतु वह मीठी और रवेदार (crystalline) होती है। दानेदार चीनी को पीसनेपर तो उसके रवे टूट जाते हैं परंतु चीनीका स्वाभाविक आकार रवादार है।

कर्बोदेत वर्गमें मंड और शर्करा आती है। शर्करामें भी कई प्रकार हैं। गन्नेकी शकर और दुग्धशर्कराका ज़िक्र ऊपर आचुका है, उसी तरह दाख, संत्रा, मुसंबी, खजूर आदि फलोंमें भी शर्करा पायी जाती है। उनमें भौतिक साम्य यह होता है किप्रत्येक रवेदार मीठी और जल-विलेय (watersoluble) होती है। उसी प्रकार खानेपर शरीरके अंतर्गत रासायनिक प्रक्रियासे सब शर्करा द्राक्षशर्करा (ग्लूकोज) में परिणत हो जाती हैं।

काष्ठोज (celulose) भी एक महत्वपूर्ण है, कर्बोदेत है, पेड़ोंका शरीर इसी द्रव्यसे बनता है। पत्ते, फूल, बीज, मूल आदि सब अवयवोंमें काष्ठोज होता है और उसके आधारसे वृक्षावयवोंमें उनका जीवन रस, सत्व, शर्करा आदि बास करता है। रूई, सूखी घास, लकड़ी धान्य, तरकारी आदि का अधिकांश काष्ठोज होता है। काष्ठोज जानवरोंका मुख्य अन्नद्रव्य है।

वृक्षजीवनके कुछ चमत्कार

जीवन चैतन्ययुक्त है और उसी सिद्धान्त का वैज्ञानिक अभ्यासमें हमें क्षणेक्षणे एवं पदे-पदे अनुभव होता है। शर्करा, सत्व और मेदों का वृक्षके अंगोंमें और अवस्थाओंमें कैसे कैसे घटन तथा विघटन होता है, यह बड़ा गूढ़ परन्तु मनोवेधक विषय है।

ज्वार का पेड़ फलनेके पूर्व यदि उसकी डंडी काटकर खाई जाय तो वह मीठी लगती है, परन्तु ज्वार फलते ही डंडीमेंसे मिठास निकल जाती हैं। यह क्यों?

उसका उत्तर यह है कि फलनेके पहिले पेड़के रसमें शर्करा होती है जो पीछेसे ज्वारके दानोंमें जाकर सत्व रूपमें परिणत हो जाती है। पेड़के पत्ते हवासे (CO_2) कर्बन-द्वयोषिद लेते हैं और ज़मीनसे जल शोषते हैं और ओषजन (O_2) बाहरछोड़ देते हैं। बचेहुए कर्बन तथा जलके संयोगसे यह शर्करा बनती है।

अब पेड़का उद्भव होने की प्रथम अवस्था देखिये। सूखा धान्य खानेसे प्रथम उसमें मिठास नहीं होती, जिह्वारस की प्रक्रियासे वह बादमें पैदा होती है। उसी तरह पानीमें भिंगो कर रखे हुए धान्य (चने, आदि) में मिठास पैदा होने लगती है। इस फर्कका कारण यह है कि अंकुर निकलते समय बीजमें ऐसी प्रक्रिया शुरू हो जाती है, जिससे वह अंकुर को (मंडसे परिणत) शर्करा की रसद दे सके। इसकी आवश्यकता तब तक होती है जब तक अंकुरसे पत्ते निकलकर अपने आप कर्बनद्वयोषिद वायु शोषण कर स्वयं शर्करा बना सकें।

तेल भी ऐसीही कुछ प्रक्रियाओंसे सत्वसे तथा शर्कराओंसे बनता है। कर्बन उज्जन और ओषजन यही

तेलोंके अंतिम घटक हैं। कर्बोदेतमें उज्जन और ओषजन का प्रमाण H : O यह होता है परन्तु तेल तथा मेदोंमें इनका यह प्रमाण नहीं होता है उदाहरणार्थ गरीके तेलका घटनसूत्र $क_{६१}उ_{१८}ओ_{६}$ है।

चिकनाईमें गरमी देने की शक्ति

गरीके तेलमें जैसा उज्जन वायुका प्रमाण अधिक है उसी तरह घीमें भी है। घी या तेल जैसी चिकनाई को पूरी तौरसे जलनेसे गरमी और प्रकाशभी मिलता है। कर्बोदेतके पूरे जलने पर प्रत्येक ग्राम (अंदाज़न १माशा) से ४ - २ बड़ी कलारी उष्णता उत्पन्न होती है और मेदके एक ग्रामसे ६ बड़ी कलारी होती है अर्थात कर्बोदेतोंके मुकाबले चिकनाईसे ज्यादा गरमी मिलती है। पूरी तौर पर जलजानेसे हमारा मतलब जल और कर्बनद्वयोषिद का पैदा होना है और यह कार्य मानवीय शरीरमें अखंड हुआ करता है, वैसे ही इससे उष्णता भी पैदा होती रहती है। शरीर की पूर्णशक्ति गरमीके रूपमें तो नहीं प्रकट होती। कुछ होती है हिलना, फिरना, उठना, उठाना आदि कार्य करने में।

प्रत्यामिन

वृक्षोंमें काष्ठौजके आधारपर उनके रेणु बसते हैं, परंतु प्राणियोंके शरीरमें काष्ठौज का स्थान प्रत्यामिनें (proteins) लेती हैं। प्रत्यामिनें सदा बदलती रहती हैं और यह परिवर्तन गरम रक्तवाले प्राणियोंमें विशेष शीघ्रता से होता रहता है। प्रत्यामिनों पर श्वास से लिए हुए प्राणवायुसे विक्रिया होती है। और विक्रिया जनित पदार्थ मूत्ररूपसे बाहर निकल जाते हैं। मूत्र का मुख्य मल मूत्रिया (यूरिया) है जिसका रचनासूत्र $क ओ नो_{२}उ_{४}$ है। शरीर के बाहर आते ही मूत्रिया तथा पानीकी क्रिया से $क ओ_{२}$ तथा $नो उ_{३}$ पैदा होते हैं। पेशावघरोंमें जो बू आती है। वह इस अमोनिया $नोउ_{३}$ वायु की होती है।

$$क ओ नो_{२}उ_{४} + उ_{२} ओ = क ओ_{२} + २नो उ_{३}$$

प्रत्यामिनों से जब यह मल उत्पन्न होते हैं तो एक एव ग्राम से ४ बड़ी कलारी गरमी निकलती है। शरीर के अणुओं में या सेलोंमें कर्बोदेतों का उपयोग नहीं है क्योंकि उसमें प्रत्यामीनों का घटक नोषजन नहीं होता।

हम अन्न ग्रहण करें वा न करें, परन्तु शरीर के सेलों का विघटन का स्वाभाविक काम बन्द नहीं होता इसलिये प्रत्यामिनयुक्त अन्न खाना अत्यन्त आवश्यक है।

कर्बोदेत और चिकनाई या मेदों के भिन्न भिन्न प्रकार हैं, उसीतरह प्रत्यामिनोंके भी कई प्रकार हैं। दूध के (दधिन) और माँस के प्रत्यामिन भिन्न हैं, गाय तथा भैंस के दुध के प्रत्यामिनों में फरक है। चावल, ज्वार, गेहूँ मक्का चना आदि की प्रत्यामिनें भिन्न भिन्न होती हैं। वरन् इन सबमें नोषजन $\frac{1}{6}$ अंश है। और बाकी $\frac{5}{6}$ में कर्बन, उज्जन और ओषजन हैं। कभी कभी गंधक और स्फुर के अंश भी होते हैं। दूध के प्रत्यामिनमें स्फुर और केले के प्रत्यामिनमें गंधक होता है।

अलब्युमिन

दूधमें दधिन नामका प्रत्यामिन अविलेय है, परंतु उसमें एक विलेय प्रत्यामिन भी है, जिसे अलब्युमिन (albumin) कहते हैं। उबालनेसे यह द्रव्य गाढ़ा होता है और अधिक सफ़ेद दीखता है।

अंडे का छिलका निकाल डालने पर उसमें एक पतला द्रव्य और एक पीलेरङ्ग का गोला निकलता है। पतले अंश में जो प्रत्यामिन होती है वह अलब्युमन जाति की होती है। और पीला भाग मेद का बना होता है। पीले भाग में थोड़ी स्फुरयुक्त प्रत्यामिन भी होती है।

रक्तमें लाल कणोंमें जो प्रत्यामिन होती है वह पानी में नहीं घुलती और उसके दधिन जैसे कण भी नहीं होते। उसमें सूक्ष्म गोलियाँ होती हैं जिन्हें ग्लोब्युलिन कहते हैं।

बाजार की ठगी का भंडाफोड़

[स्वामी हरिशरणानन्द जी, वैद्य]

१—मुलहठी का सत्व वा असलुस्सूस

मुलहठा कहाँ से आयी ?

मधुयष्टिका या मुलहठी हमारे देशकी वस्तु नहीं। यह हिरात, बलख, बुखारा, अफगानिस्तान, ईरानकी तरफसे आती है। इसकी सबसे बड़ी मण्डी बम्बई, अमृतसर, मुल्तान, डेरा इस्माईलखान, सक्खर आदि हैं। इन मण्डियोंमें यह माल उक्त देशोंसे ही आता है। इसका उपयोग खाँसी-बुखारकी दवाइयोंमें बहुत अधिक है। यूनानी और अंग्रेज़ी चिकित्सकों ने इसके लाभको देख कर इसकी लकड़ीके चूर्णको पानीमें भिगो कर और उसको छान अग्निपर गाढ़ा करके इसका सत्व निकाला, वह विशेष लाभदायी सिद्ध हुआ। अमेरिका और जर्मनीने उक्त सत्वको वैज्ञानिक विधिसे अधिक गाढ़ा करके उसकी लम्बी लम्बी चमकदार वत्तियां बना कर संसार-में भेजीं। धीरे धीरे इसकी ख़ूब मांग बढ़ी और यह महँगा हो गया। अमृतसर और देहलीके दूकानदारोंने देखा कि यहतो काफी महँगा हो गया है, नकली बना कर क्यों न संसारको ठगा जाय ? उन्होंने नकली बनानेका क्रम ढूँढ़ लिया। आज इसे हजारों रुपये का देहली और अमृतसरके ठग बनाते हैं, पर सरकार इन ठगोंको रोक नहीं सकती।

नकली मुलहठी का सत्व कैसे बनाते हैं ?

शीरा या राब जो खाँड़ बनाते समय बच जाता है, जिसको लोग तम्बाकूमें मिला कर पीते हैं, उसेही मीठी आंच पर पकाते हैं। जब उसकी चाशनी कड़ाकेदार रेवड़ीवाली बन जाती है तो उसे उतार कर सांचोंमें उसकी बत्ती निकाल लेते हैं। उन बत्तियों पर कोपल वार्निश या रोगन ब्रशसे चढ़ा देते हैं। बस बढ़िया चमकदार मुलहठीके सत्वकी बत्ती बन जाती है। इसे तोड़ोतो उसी तरहके कड़ाके से टूटती है। खानेमें मीठी होती है। कुछ ठग शीरेमें मुलहठीका आटा मिलाकर फिर उसे पका कर बत्ती तैयार करते हैं। और उस पर रोगन कर देते हैं। कोई कोई मैदेमें बबूलका गोंद मुलहठीका काढ़ा और देसी स्याहीका फूला मिला कर इसको गाढ़ा करके बत्ती बना लेते हैं। यह सबसे निकृष्ट होता है।

नकली और असली की परीक्षा

असली मुलहठीके सत्वकी बत्ती तोड़ने पर ज़रा लचक खाकर टूटती है और उस तोड़का भीतरी भाग शीशे जैसा चमकदार होता है। जितनी अधिक चमक इसकी होती है किसी नकली चीज़की नहीं होती। असलीका टुकड़ा मुँहमें डालने पर जब दांतसे दबालो तो दब कर टूटता है और चिमड़ापन रखता है, मुँहमें देरमें घुलता है, उसका थूक कुछ पीलाहट लिये हुये होता है। नकलीको दांतसे तोड़ने पर जल्दी टूट जाती है और चूराहो जाता है। इसके थूकका वर्ण भी काला या अन्य रंगका होता है।

२—हरीतकी (हरड़)

हरीतकी में भी ठगी ?

कई व्यक्ति कहेंगे कि हरड़ या हर्रा मामूली चीज़ है। यह नकली नहीं बनी होगी। यह बात नहीं है। पाठकोंको ज्ञात न होगा कि हरड़ यदि २ तोलासे ऊपर वजनकी हो तो वह एक एक नग करके बिकती है और एक नगका मूल्य दो रुपयेसे लेकर सैकड़ों तक पड़ जाता है। वैद्योंको स्मरण रखना चाहिये कि तीन तीन चार चार तोला भारकी हरड़का सौ सौ अस्सी अस्सी रुपयेमें एक एक दाना बिकता है। ऐसी भारी मूल्यवान् हरड़ोंको खरीदनेकी प्रथा मारवाड़ियोंमें है। मारवाड़ी बड़े से बड़े मूल्यकी हरड़की तलाश में रहता है और अपने बच्चोंको इन्हीं मूल्यवान् हरड़ोंकी घूँटी देता है। इसीलिये बम्बई, कलकत्ता और बीकानेर आदिमें इन हरड़ोंकी काफी खपत है। जब एक हरड़ तीन तोलेसे ऊपरहो, चार पांच तोलेकी हो, तो उसके सैकड़ों रुपये मिल जाते हैं। इसी बातको देख कर आरम्भमें जलापा नामक कन्द, जिसे कहीं कहीं जलापा हरड़भी कहते हैं, जो भारमें चार चार पांच पांच तोलेका सहज में मिलजाता है, जिसकी बनावट-रंग-रूपभी हरड़से मिलता है, इसको कई अमृतसरके ठग मारवाड़ियोंके हाथ बेच कर और हरड़ बता कर काफ़ी रुपया ऐंठते रहे। कोई कोई ऐसाभी करतेथे कि इसी हरड़में बारीक सुराख़ या छिद्र बनाकर उस मार्गसे उसके बीजमें सीसाके छोटे छोटे बारीक

छर्रे भर कर उसे वजनी बना लेते थे और उसके अच्छे रुपये प्राप्त कर लेते थे, क्योंकि इन हरड़ोंका मूल्य, अगर वे दो तोले वजनकी हों तो २), २॥), ३) तक होता है। यदि वह २। तोलेकी हो जाय तो उसका मूल्य ५) हो जाता है। यदि २॥ तोले की हो जाय तो ६), ७) तक बिक जाती है। यदि ३ तोले हो जाय तो २०), २५) रुपये को बिकती है। इससे ऊपर की बहुत मूल्यवान हो जाती है। इन्हीं बातोंको देखकर इसका भार बढ़ाया गया। यह ठगी तो अमृतसर देहलीके ठगों द्वारा होती थी। बम्बईके ठग इनको भी मात कर गये। उन्होंने बिलकुल कृत्रिम विधिसे हरड़ की रचना कर डाली उनके हरड़-निर्माण की विधि यों है :— बड़ी हरण की आकृतिके लोहेके सांचे बनवाये। उसमें हरीतकी-सत्व और हरीतकीके बारीक चूर्ण को मिलाकर सांचोंमें भरदिया और उनको इतना प्रेस किया कि जमकर वह हरड़के रूपमें आगयी। पश्चात् इन्हें निकालकर हरड़ का रंग लेकर रंग दिया। इस तरह इन्होंने ५ तोलेसे लेकर १० तोले तक की हरड़ तय्यार की और बम्बईके मारवाड़ियों को खूब लूटा।

नकली और असली हरड़की पहचान

असली हरड़ की बनावट बहुत ही साधारण होती है। इसमें हरड़की नोककी ओर कोई छिद्र का चिन्ह न होना चाहिये। पानीमें भिगो देने पर उस परसे कोई रंग न उतरना चाहिये, न रगड़ने पर भुर भुराना चाहिये। जिस हरड़में छेद हों, जिसका रंग पानीमें उतरता हो, जो साधारण चोटसे भुरकुस हो जाय वह नकली है। जलापा हरड़ और असली हरड़में यह अन्तर है कि जितनी मोटी और सीधी धारियां असली हरड़ पर होती हैं, उतनी मोटी और सीधी धारियाँ जलापा पर नहीं होतीं। जलापाकी सिकुड़नसे जो धारियां बनती हैं वह पतली पतली होती हैं। असली हरड़में गुठली निकलती है, जलापामें गुठली नहीं होती। इसकी परीक्षा तोड़कर कर सकते हैं। जलापा चूर्णको खानेपर कुछ देरमें ही वह गले में जाकर लगता है और जलन करता रहता है। हरड़ चूर्ण खाने पर गलेमें लगता नहीं, न इससे जलन ही होती है।

३—मोती असली और नकली

परखने वाले कम हैं।

जन मोतियों का औषधमें उपयोग होता है वह प्रायः अनविध बहुत छोटे-छोटे होते हैं। बहुतसे व्यक्तियों की धारणा है कि मोती गोल और आबदारही लेना चाहिये। यह धारणा किसी विचारकी भित्तिपर अवलम्बित नहीं। मोतीके सम्बन्धमें वैद्योंको बहुत ही कम ज्ञान है। उन्हें यह पता नहीं कि मोतीकी रासायनिक रचनामें कौन कौनसे तत्व हैं, तथा वह निर्म्मित कैसे होता है और उस पर आब कैसे आती है। हम संक्षेपमें इसकी चर्चा करेंगे। किम्बदन्ति है कि मुक्तासीप समुद्रमें तैरा करते हैं और जब उनके पेटमें स्वातीकी बूंद पड़ती है तब मोती बनते हैं। किन्तु अनुसन्धानसे इसकी सत्यताका कोई पता नहीं चलता, प्रत्युत ज्ञात होता है कि समुद्रमें कई जातिके सीपकीट होते हैं। उनमें से एक मुक्ता जनक कीट (cestoid worms) सुक्ति होते हैं। इस कीटमें यह गुण है कि वह मुक्ताकी रचना करते हैं। इसकी तीन जातियां पायी जाती हैं। इन्हीं तीनों जातिके कीटोंसे उत्पन्न मुक्ता विविध रंगोंके होते हैं।

मोती है क्या?

सृष्टिमें जिस तरह कछुआ अपने कठोर अंगकी रचना कर जीवन यापन करता है, ठीक इसी तरह मौक्तिक कीटभी अपनी सुक्ति रूपी शरीरके परकोटे किलेकी रचना करता है। उस सुक्ति-परकोटेके साथही उसी तत्वका कीट जिसका सीप एक भाग होता है उस सुक्तिकी रचनाके समय उस सुक्तिके गर्भमें आ जाता है। वास्तवमें मोतीकी रचना मोती-कीटके सन्तान प्रजननके समय होती है। अनुसन्धानसे ज्ञात हुआ है कि मौक्तिक कीटके गर्भसे जब सन्तान बाहर आती हैं वह किसी विपरीत स्थितिमें पड़ कर जब सुक्ति भागसे बाहर नहीं होती, सुक्ति परकोटेमें ही फँसकर मर जाती है, तो उक्त मृत देहही पर उसी तत्वका परकोटा चढ़ जाता है जिसका सीपबना हुआ होता है। न्यू इंसैक्लोपीडियामें मोतीकी रचना इस विधिसे दी हुई है। सीप-प्राणीके पेटके भीतर कोई विजातीय कण आ गया जो किसी प्रकार बाहर नहीं निकाला जा सकता तो उसके चारों ओर सीपके ही पदार्थ का वेष्टन बनने लगता है। यह वेष्टन बराबर बनता रहता है। जितनाही अधिक काल लगता है उतनाही बड़ा मोती बनता है। मोती और सीपकी रासायनिक बनावटमें जरा भी अन्तर नहीं है। जब मुक्ताकीटकी मृत सन्तति उसके परकोटे में ही रहजाती है तो उस पर जो सीपतद्वत् पदार्थकी तह चढ़ जाती है वह मुक्ता कीटकी शारीरिकगतिके कारण रगड़ खाती रहती है, इसी रगड़के कारण उस पर आभा आती

रहती है या जिलाचढ़ती रहती है। यह जिला उसके आंगिक संघर्षसे इसके शारीरिक तरलसे गाढ़ी होकर झिल्लीका रूप धारण करती रहती है और उस मोती पर धीरे धीरे चढ़ती रहती है। इसीके कारण मोती पर आभा आती है। जो मोती नये या कुछ समयके बने होते हैं उनपर उक्त आभा नहीं होती। वह देखनेमें सफेद या कुछ मैले पत्थरके दाने जैसे लगते हैं। इनके बननेमें स्वाति बूंद या ऐसा कोई अन्य कारण नहीं जान पड़ता। भारतकी पश्चमीय खाड़ी (फारस बसरा), सीलोन, अस्ट्रेलिया, सुलू समुद्र, मध्य अमेरिकाकी खाड़ी, और प्रशान्त महासागरके कुछ तट पर ही मोती उत्पन्न करनेवाली सीप पायी जाती है।

मोती की रचना।

मोती जब सीप के भीतर बनने लगता है, तो यह आवश्यक नहीं कि वह गोल ही बने, प्रत्युत स्थान और समाई के अनुसार उसकी टेढ़ी-मेढ़ी, लम्बी-चौड़ी, गोल, अनेक प्रकार की आकृति बन जाती है। किन्तु गोल मोती आभूषणों में सुन्दर लगते और सजते हैं। इसलिए इसकी अधिक कदर है। जो मोती बेडौल होते हैं वह औषधमें काम आ सकते हैं। उनकी बेडौलता को देखकर उनका तिरस्कार नहीं करना चाहिये। क्योंकि, वह अच्छे से अच्छे गोल आभापूर्ण मोतियोंसे गुणोंमें हीन नहीं होते। उनके सेवन में उतना ही गुण है जितना गोलमें।

असली और नकली की पहचान।

नकली मोती कौंच, चाइनाक्ले चीनी मिट्टी और खटिक कर्बनेत से बनाया गया है। जापान ने खटिक कर्बनेत से मोती के दाने बनाकर उसपर उदहरिकाम्ल (हैड्रोक्लोरिक एसिड) की ऐसी सुन्दर जिला चढ़ायी है कि उसने असली मोतियों की आभा को भी मात कर दिया है। इन्हीं मोतियों ने तो मोती की कीमत बहुत गिरा दी है। काँच और चाइनाक्ले के मोती इस जापानी मोती की तुलना नहीं कर पाये हैं। चाइनाक्ले से तैय्यार किये गये मोती और काँच से बने मोती बहुत छोटे छोटे सरसों केसे या इससे भी छोटे दाने के बने होते हैं जिनपर जिला भी अच्छी की रहती है। पर उन्हें समझदार आदमी देखकर पहचान सकता है। नकली और असली मोती की सबसे सरल पहचान तो दांत से तोड़कर हो जाती है। असली मोती दांत से जितना नरम टूटता है इतना नरम कोई भी नहीं टूटता। जापानी मोती भी दांत से टूट तो जाते हैं, पर टूटने में असली मोती की अपेक्षा अधिक बल लगता है। चाइनाक्ले और कांच के मोती तो दाँत से भी नहीं टूटते।

असली मोती को गन्धकाम्लमें (सल्फ्यूरिक एसिडमें) डाल देने पर घुलने लगता है। चीनी मिट्टी और काँच के मोती पर उक्त अम्ल का कोई प्रभाव नहीं होता। नकली जापानी मोती भी उक्त अम्ल में घुलते हैं, या उनकी क्रिया मन्द होती है। दूसरे, असली मोती गन्धकाम्लमें घुल जाता है और उसकी आभावाली झिल्ली मन्दहो जाती है। पर नकली मोती घुलती जाती है पर उस परसे कोई ऐसी झिल्ली नहीं उतरती जैसे असली मोती परसे उतरती है। इस तरह असली और नकली की आसानी से परीक्षा हो जाती है।

वैद्यों, पाठकों और विज्ञानके ग्राहकोंके मतलबकी बातें

बहुत समयसे वैद्यों और पाठकों की यह शिकायत रही है कि विज्ञान और आयुर्वेदविज्ञान वैद्यों और साधारण पाठकोंकी रुचिका कम ध्यान करता है। कई वैद्य और पाठक अनेक वैज्ञानिक और चिकित्सासम्बन्धी बातोंसे अनभिज्ञ होते हैं। ऐसे समय यदि कोई प्रश्न पूछा जाता है तो उसका उत्तर न तो विज्ञान सम्पादक की ओर से आता है न आयुर्वेद विज्ञान सम्पादक की ओरसे। इसलिये जितना लाभ इस पत्रसे होना चाहिये उतना वैद्यों और पाठकों को नहीं होता। इसी शिकायत को सन्मुख रखकर वैद्यों व ग्राहकगणों की सुविधाके लिये विज्ञानमें कई आवश्यक स्तंभ बढ़ाये गये हैं।

आयुर्वेद विज्ञान। इसमें आयुर्वेद सम्बन्धी औषधियों की रासायनिक क्रिया और उनका शरीर पर प्रभाव तथा उनका वैज्ञानिक विश्लेषण आदि उपयोगी बातें रहती हैं। और

अनेक नव्य अनुसन्धान दिये जाया करते हैं। जैसे इस बार मूर्वाका सचित्र वर्णन दिया गया है।

सुलभ चिकित्सा। इसमें गरीबोंके लिये सुलभ तथा अनुभूत वैद्योंके योग दिये जायँगे तथा अनेक लाभदायी बातें बतायी जायँगी।

औद्योगिक और व्यावसायिक रहस्य तथा घरेलू कारीगरी और धंधों का वर्णन दिया जाता है।

प्रश्नोत्तर। इस स्तंभमें वैद्यों और पाठकोंके उन प्रश्नोंके उत्तर दिये जाते हैं जिनका सम्बन्ध विज्ञानसे या आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धतिसे होगा। प्रायः उन्हीं प्रश्नोंके उत्तर दिये जायँगे जिनका विज्ञानसंसारसे या चिकित्सा संसारसे सम्बन्ध होगा। व्यक्तिगत या रोगीके लिये रोग सम्बन्धी परामर्श केवल चिकित्सकों और विज्ञानके ग्राहकों को ही दिये जायँगे। जो विज्ञानके ग्राहक न हों उन्हें रोग सम्बन्धी परामर्शके लिये २) प्रश्नपत्रके साथ भेजना चाहिये। साधारण तथा वैसे ही प्रश्न प्रकाशित किये जायँगे जैसा इस अंकमें आसनों के सम्बन्ध में दिया गया है।

लोग समयका मूल्य नहीं समझते। वह समझते हैं जिस तरह हम खाली बैठे रहते हैं इसी प्रकार मुख्य या विशेष सम्पादक खाली बैठे रहते होंगे। बैठे बैठे अनेक प्रश्न व्यक्तिगत लाभके लिये पूछा करते हैं।

फिर मजा यह है कि उत्तरके लिये टिकट तक नहीं भेजते। जब उन्हें उत्तर नहीं मिलता तो रुष्ट हो जाते हैं। यह व्यावसायिक नीतिके विरुद्ध बात है, इसे उन्हें सदा ध्यानमें रखना चाहिये। रा० गौ०

आयुर्विज्ञान प्रश्नोत्तरमाला

प्रश्न—प्रायः आसव और अरिष्ट कुछ दिनों रख छोड़े जाने पर खट्टे हो जाते हैं, इसका क्या कारण है? क्या इसको रोका जा सकता है? सरल विधि बतलाइये। कृपया यह भी बतलाइये कि क्या आसवके खट्टे हो जाने पर उसके गुणोंमें अन्तर पड़ता है या नहीं? (एक ग्राहक)।

उत्तर—आसव और अरिष्टोंमें ५ प्रतिशतसे लेकर २० प्रतिशततक मद्यसार (अलकहल) की मात्रा होती है। यदि हवामें खुला छोड़ रक्खा जायतो धीरे धीरे यह मद्यसार सिरकाम्लमें परिणत होने लगता है। बात यह है कि वायुमें सिरका बनानेवाले छोटे छोटे जीवाणु (bacterium aceti) होते हैं।' ये वायुके ओषजनकी विद्यमानतामें मद्यसारका सिरकाम्ल बना देते हैं। जब आसव और अरिष्ट हवाके संसर्ग में आते हैं, तो ये जीवाणु इनमें प्रविष्ट हो जाते हैं और धीरे धीरे खट्टापन बढ़ने लगता है। इन जीवाणुओंकी वृद्धिके लिये नौषजनय पदार्थ, स्फुरेत आदि आवश्यक हैं, अतः यदि आसवों को भली प्रकार परिस्रुत किया गया हो, तो उनके घोलों के खट्टे होनेकी संभावना बहुत कम रहती है।

यदि आसवारिष्ट इस प्रकारके हों कि उनमें जलकी मात्रा बहुतही कम हो तबभी वे खट्टे नहीं होने पाते। पर १५ प्रतिशतसे अधिक मद्यसारवाले अरिष्टोंके ऊपर कानून बाधक है।

खट्टेपनसे बचानेकी एक और विधि है, वह यह कि जिस बर्तनमें आसवारिष्ट रक्खा हो उसमें से हवा बिलकुल निकाल दी जाय, या ऐसी गैस भरदी जाय जिसमें हवा या ओषजन न हो जैसे केवल शुद्ध नोषजन या कर्बनद्विओषिद गैस।

आसवारिष्टों को सुरक्षित रखना—

आसवारिष्ट जब तैयार हो जाय अर्थात् उनकी किण्वक्रिया या सन्धान बन्द हो जाय तब उसको अच्छी तरह निर्वात बर्तनोंमें छानलें और उन्हीं निर्वात बर्तनोंमें ऐसा बन्द करें कि ऊपरसे उसमें हवा का प्रवेश न होने पावे। बर्त्तनों को निर्वात करने का सबसे उत्तम और सरल निम्न विधि है। छोटे मुंहके बर्त्तन या शीशियों को एक कढ़ाईमें या ऐसे बर्त्तनमें रख दें जिसमें बोतलोंके आधे भाग तक पानी भरा जा सके। उस कढ़ाई को चूल्हे पर चढ़ाकर उसमें पानी इतना भरें कि बर्त्तन या बोतल पानीके कारण तो उठें ना, वह यथा स्थान बना रहे। अब उस कढ़ाईके नीचे अग्नि जलाकर जल को क्वथनांकतक गरम करें। जब जल

काफी उष्ण हो जाता है तो उस उष्णताके प्रभावसे बोतलकी हवा भी उससे बाहर निकल जाती है। अब इस निर्वात बर्त्तनमें आप आसवारिष्ट भर कर अच्छी मजबूत कार्क की ऐसी डाट लगावें कि उसमें हवा प्रवेश न कर सके। काग बिनाछेदों वाले साफ सुथरे लेने चाहिये, नहीं तो उनके सूक्ष्म छिद्रों द्वारा हवाके प्रवेश कर जाने का भय है। पात्र या बोतल भी रासायनिक विधि से ऐसी शुद्ध होनी चाहिये जिसमें सिरका या अम्लत्वपूर्ण पदार्थ का कोई लेश लगा न रहे। बोतलोंमें भरते समय इस बात का ध्यान सदा रहना चाहिये कि बोतलका कुछ भाग अवश्य खाली रहे, बिलकुल गले तक बोतल न भरी जाय। अपितु यह भय होता है कि जरा भी बोतलके आसवारिष्टमें किण्व-क्रिया होती हो तो उसके भीतर कर्बनद्विओषिद बन सकता है, जो अधिक दबाव देकर कई बार बोतल को तोड़ देता है या काग निर्बल लगा हो तो उसे अपने चापसे बाहर निकाल फेंकता है। इसविधिसे रक्खे हुये आसवारिष्ट जब तक बोतल या बर्त्तन न खोला जाय खराब नहीं होते। जब बोतल खोल दी जाय तो उसे दस पन्द्रह दिनमें ही व्यवहारमें ले आना चाहिये। छोटी-छोटी बोतलें निर्वात बनाकर भर लेना चाहिये। इस प्रक्रिया से आसवारिष्टों का न तो वर्ण बदलता है न वह खट्टे या स्वादरहित होते हैं। ऐसे आसवों को २०–२० वर्ष तक रख छोड़ें तो भी उसका गुण यथावत् बना रहेगा।

खट्टे आसवके गुणान्तर

क्या आसवोंके खट्टे होने पर उनके गुणोंमें अन्तर पड़ता है? इस दूसरे महत्वपूर्ण प्रश्न का उत्तर यह है—

सबसे प्रथम देखने व बिचारने वाली बात यह है कि आसवका जब सिरकाम्लमें परिवर्तन होता है तो आसवमेंसे किस चीजसे सिरका बन जाता है और कौन सा अंश यथावत् रह जाता है? प्रयोगों द्वारा मालूम हो गया है कि आसव का मद्यसार-भाग, जिसके कारण आसवमें मादकता आती है, उसके अणुओंमें ही परिवर्त्तन आता है। किस प्रकार परिवर्त्तन आता है हम इसका विस्तृत उल्लेख यह करेंगे।

आसवमें जब चीनी या गुड़ डाला जाता है तो इस मीठे घोलमें उसी समय यदि किण्व या सुराबीज डाल दें तो उसमें तभीसे सन्धान या किण्व क्रिया प्रारम्भ हो जाती है। यदि किण्व डालें तो कुछ दिन में स्वयम् ही किण्व उसमें उत्पन्न हो जाते हैं। किण्वों के प्रभाव से जल की उपस्थितिमें गुड़ या चीनी दो प्रकार की शर्कराओंमें (द्राक्षशर्करा और फलशर्करा) परिणत हो जाती है। इन शर्कराओं को किण्व अपने प्रभाव से प्रभावित कर मद्यसार और कर्बनद्विओषिद में परिवर्त्तित करते हैं। जब तक १४-२० प्रतिशत तक मद्यसार नहीं बन जाता तब तक यह शर्कराकणों का परिवर्त्तन जारी रहता है। ऐसी स्थिति में उस वानस्पतिक अंश पर जो आसव में विद्यमान हैं कोई प्रभाव नहीं होता। शर्कराकणों का ही मद्यसार में परिवर्त्तन होता रहने से आसव की मधुरता नष्ट होती रहती है और उसमें मद्य का स्वाद बढ़ता जाता है। जब इस प्रकार का बना आसव खुली हवा में पड़ा रहे तो उक्त आसवके मद्य पर हवा का प्रभाव होता है। उससे उसमें ओषदीकरण होता है। इससे आसव का मद्य सिरकाम्ल में परिणत हो जाता है। जब तक वायु से ओषजन मिलता रहेगा तब तक सिरकाम्ल में बनता रहता है।

यदि हवा का प्रवेश बन्द कर दिया जाय तो जितना मद्यसार सिरकाम्ल में परिणत हो चुका है उतना ही रह जाता है; बाकी उसमें मद्यसार विद्यमान रहता है। अर्थात् आसव में मद्यसार और सिरकाम्ल दोनों का समिश्रण बना रहता है। ऐसे आसवों को अर्ध चुक्रित कहते हैं। ऐसे आसवोंमें दोनों का स्वाद आता है और गन्ध भी इसीलिए तो—"प्रकृत्या मद्य मुम्लोष्ण" कहा है। ऐसे ही आसव स्वाद में साधारण खट्टे और चरपरे लगते हैं प्रायः समस्त वैद्यों के बने आसवारिष्ट इसी रूप के मिलते हैं। जो आसव अधिक खट्टे हो जाते हैं उनका समस्त मद्य भाग सिरकाम्ल में परिणत हुआ होता है। आसवों के सिरकाम्ल में परिणत होनेसे मद्यसार भागमें ही कुछ कमी हो जाती है पर उसके औषध भागमें कोई परिवर्त्तन नहीं आया, वह जैसा का तैसा ही रहता है। इसीलिए खट्टे आसव भी लाभ करते हैं। कोई गुणोंमें अन्तर आता है तो वह एक मात्र मद्यसार और सिरकाम्ल के गुणों का आता है। वह निम्न है :—मद्यसार कटु चरपरे स्वाद वाला है। जब जिह्वा इसके स्वाद के आधीन हो जाती है तो बराबर इसकी चाह बनी रहती है। इसकी गन्ध भी अच्छी और एक विशेष होती है। पीने पर यह पेट में लगती

है और जलन प्रतीत होती है। इसकी विद्यमानता के कारण ही सरूर या नशा आता है। यह छेदी, भेदी, व्यावापी विकासी, आदि समस्त विष गुणों से युक्त है। अरुचि, वमन, हिक्का, श्वास, कास, क्षय, निर्बलता, शान्ति प्रकोप, प्रतिश्याप, आनाह, निवन्ध, अतिसार आदि में हितकर है, नींदप्रद है, पीड़ाहर, स्नायु मण्डल का अल्हाद-कर है, उत्तेजित करती है और शरीर की प्रत्येक क्रिया को बढ़ा देती है। विशेष कर अपने में औषधि गुणों को सुरक्षित रखती है। अब, सिरकाके गुणदेखिये—सिरकाम्ल मद्यरहित खट्टा होता है। इसकी अम्लता में विशेष तेजी होती है जो जिह्वापर प्रतीत होती है। इसकी गन्ध भी अम्लतापूर्ण होती है। यह रुचिबर्द्धक, उदरशूल नाशक है। अध्मान, वमन, शूल अतिसार आदि में हितकर है, प्लीहा वृद्धि, यकृत वृद्धि तथा अन्य उदर के शोथ को दूर करता है, स्वरभङ्ग, क्षय, ज्वर, कास, प्रतिश्याप व श्लेष्म रोगों में अहितकर है। यह भी अपने में औषध गुणों को सुरक्षित रखता है।

उक्त गुणों को देखते हुये तथा नित्य के निजी अनुभव के आधार पर हम कह सकते हैं कि आसवारिष्टों के अर्धचुक्र या पूर्णचुक्र बन जाने पर औषध के अपने गुणों में तो कोई अन्तर नहीं पड़ता। जो अन्तर आता है वह मद्यसार और सिरकाम्ल की विद्यमानता से इनके गुणों में अन्तर आता है; यथा ऐसा द्राक्षासव जो अपनी असली स्थिति में है अर्थात् उसमें अम्लता नहीं आई है, और मद्य सार उसमें विद्यमान है क्षय के रोगी को कास श्वाश के रोगी को बराबर दिया जा सकता है, इससे उसे लाभ होगा। किन्तु दूसरा द्राक्षासव जो सिरकाम्ल में परिणत हो गया है, उपर्युत रोगियों को देने पर सिरकाम्ल के कारण उनको लाभ नहीं करेगा, प्रत्युत्त हानि पहुंचावेगा। किन्तु उदर विकार, अरुचि, अजीर्ण, आदि में देना हो तो दोनों ही एक जैसा लाभ करेंगे। इसका तात्पर्य यह निकला कि जब आसव में मद्यसार हो तो मद्यसार के गुण रहते हैं। जब सिरकाम्ल हो तो सिरकाम्ल के गुण रहते हैं। औषध के गुण यदि कुछ बढ़ सकते या दब सकते हैं तो इन दोनों के भिन्न भिन्न गुणों-दुर्गुणोंके संयोग से बढ, घट सकते हैं। हम कनकासव श्वास रोग पर देते हैं। किन्तु कनकासव खट्टा हो तो उससे लाभ नहीं होता, प्रत्युत हानि होती है। इसी प्रकार अन्यों के सम्बन्ध में समझें।

—ह०

व्याधि-संकरता

[स्वमी हरीशरणानन्द वैद्य]

इस समय प्रत्येक बड़े नगरमें क्षय रोग और मन्थर ज्वरका विशेष प्रकोप देखा जाता है। इन दोनों व्याधियोंके कारण यद्यपि भिन्न हैं, तथापि बहुधा एकके लक्षणोंमें दूसरेके लक्षण ऐसे मिले रहते हैं कि उनका सहजमें पता नहीं लगता और जब रोगी असाध्य हो जाता है तब अन्य रोगकी सम्भावना दीखने लगती है। यह अभिन्नता प्रायः आन्त्रिक क्षयमें देखी जाती है।

इधर दो चार मासके भीतर कुछ रोगी ऐसे देखे गये जिनमें उक्त व्याधियों की संकरता थी, किन्तु आरम्भसे लेकर कई मास तक इसका पता नहीं लगा। जब रोग असाध्य हो गया तब ज्ञान हुआ कि इसमें तो रोगों की संकरता है।

एक रोगी को आरम्भमें पेटकी नाभीके आस-पास कुछ दर्द रहा करता था। उस दर्दका कारण वास्तवमें क्षय था, पर कई मास डाक्टरों की चिकित्सा कराने पर भी वह यह न बता सके कि यह क्षयज है। उस समय रोगी को ज्वर नहीं होता था, केवल हर समय मीठा मीठा दर्द बना रहता था। मेरी चिकित्सामें जब रोगी आया तो मैं भी उसका वास्तविक निदान न कर सका। मुझे क्षय ग्रन्थी होनेको कोई अन्यचिह्न दिखाई न दियेथे। उदर रोगी को प्रायः मैं साधारण रेचन और लघु लंघन देता ही रहता हूँ। इस उपचारमें ही उसे-ज्वर होगया और ज्वरके साथ मन्थर ज्वरके चिन्हों का दुर्भाव हुआ। मन्थरकी चिकित्सा का आयोजन किया। एक सप्ताहमें ही रोग का रूप स्पष्ट हो गया। किन्तु इस रोग की अवधि भी समाप्त होगयी। फिर भी मन्थरके चिह्न रोगीमें

दीखते ही रहे। ज्वर न गया। प्रभात को १०० और सायंकाल को १०२–१०३ तक अवश्य हो जाता। पेटमें दर्द भी बराबर बना रहता। ऐसी स्थितिमें रोगी को अधिक लंघन दिये गये, इसलिये वह बहुत निर्बल हो गया। जब १॥ मास ज्वर को व्यतीत हो गये और ज्वर मुक्त होनेमें न आया, न पेट का दर्द गया, तो ध्यान आया कहीं क्षयज ग्रन्थियां न हों। हमारे पास इसको देखने और जांचने का कोई सामान तो था नहीं, डाक्टरों की सहायता ली गई। विशेषज्ञोंके पास परीक्षाके लिये उस रोगी का मल और रक्त भिजवाया। रक्त परीक्षकने तो मन्थरके कीटाणुओं की उपस्थिति सिद्ध की, मल परीक्षकने क्षयके कीटाणुओं की। ऐसी स्थितिमें क्षयकी सम्भावना दृढ़ हो गई। तीन बार भिन्न भिन्न विशेषज्ञोंसे इसकी परीक्षा कराई थी। लसिका की भी परीक्षा हुई। परिणाम वही निकलता रहा। १५ दिन परीक्षामें व्यतीत हो गये। यद्यपि चिकित्सा होती रही, पर रोगमें कोई कमी न आई। रोगी प्रति दिन निर्बल होता चला गया। यों तो एक-रोग ही भयंकर होता है। पर जब दो एकत्र हो जायं तो कहना ही क्या। रोगी प्रतिदिन क्षीण होता चला गया, मन्थर तो साध्य था, पर दूसरा साध्य न था। दोनों रोगों की चिकित्सा और पथ्य एक दूसरेके प्रतिकूल थे। मन्थरमें जो औषध दिया जाता है, क्षय ग्रन्थीमें उससे कोई लाभ नहीं। न क्षय ग्रन्थी की चिकित्सा मन्थरमें लाभ करती है। मन्थरमें लंघनसे विशेष स्थिति सुधर जाती है, पर क्षयज ग्रन्थीमें लंघनसे विशेष स्थिति बिगड़ जाती है। पक्षमें लंघन का निषेध निषेध है, प्रत्युत विरुद्ध-बात है। इससे रोगी की स्थिति दिन पर दिन खराब होती ही चली गई। डाक्टरोंने भी जोर लगाया, पर दोनों रोगोंके लक्षण अन्ततक रहे और रोगी इसी दशामें संसारसे चला गया।

इस तरहके मेरे चकित्सालयमें ५-६ केस आ चुके हैं जिनमें मन्थर और क्षय ग्रन्थी दोनोंकी संकरता होती है, पर आरम्भ में पता लगाना कठिन होता है। उसके सम्बन्धमें मुझे जो अनुभव हुआ वैद्योंके समक्ष रखता हूं। आशा है वह उससे लाभ उठावेंगे।

पेट दर्द

पेटमें दर्द कई कारणोंसे हो जाता है। अन्य कारणोंसे दर्द हो तो वह रेचन और शूलहर ओषधसे जाता रहता है। पर क्षयग्रन्थी दर्द नहीं जाता। कम हो जाता है पर बना अवश्य रहता है। यह दर्द प्रायः नाभिके आसपासही अधिक होता है। रेचक औषध से इस पर विशेष प्रभाव नहीं पड़ता, किन्तु खाली पेटहो और हाथकी अंगुलियोंसे पेटको दबाया जाय तो दर्द कुछ कुछ संकुचित सीमाओंमें अधिक और आसपास कम देखा जाता है। आरम्भमें ग्रन्थियोंका पता नहीं लगता, परन्तु उक्त दर्दका क्रमपूर्वक अधिक समय तक बना रहना क्षयज ग्रन्थियोंकी सम्भावना को प्रकट करता है। कई व्यक्तियोंको पेटमें दौरेका दर्द उठता है, कईयोंको इस दौरेके दर्दके समय पेटमें कोई ग्रन्थी फिरती प्रतीत होती है। हाथके स्पर्शसे भी देखी जाती हैं। इस दर्द से और इसग्रन्थीसे उक्त क्षयज ग्रन्थीका कोई सम्बन्ध नहीं होता। यह गुल्म या ग्रन्थी या तो खाद्य द्रव्यके अवशेष के संचयसे बनी होती है या स्वयम् अन्त्रके भीतरी प्ररोहों के बढ़ने या अन्त्र मांसमें शोथ आदि कई कारणोंसे हो जाती है। यदि फोड़ा न हो तो दर्द प्रायः दौरा होकर बन्दहो जाता है। क्षयज ग्रन्थीक नहीं होता और एक बात स्मरण रखनी चाहिये। क्षयज ग्रन्थी आंतों के आन्तरिक भागमें नहीं होती, प्रत्युत बाहरके भागमें, जहाँ लसीका ग्रन्थियां लसीका वाहिनियोंके मध्य होती हैं। अर्थात् अन्त्रकी यह ऊपरी सतह होती है। इसीलिये इस पर रेचक औषधका कोई अच्छा प्रभाव नहीं होता। हाँ, कई बार बुरा अवश्य होता है। अन्य पेटके शूल कुछ समयके बाद शान्त हो जाते हैं, पर क्षयज दर्द शान्त नहीं होता। मीठा मीठा बनाही रहता है। यदि पेटमें ग्रन्थियोंको हाथसे देखा जा सकता हो तो इसकी एक नहीं कई कई ग्रन्थियां देखी जाती हैं। इन-ग्रन्थियोंको कई चिकित्सक पेटकी कण्ठमाला नाम देते हैं।

ज्वर

क्षय जन्य आन्त्रिक ग्रन्थियोंके उत्पन्न होने पर आरम्भ में बहुतोंको ज्वर नहीं होता। साल साल छः छः महीने तक ज्वर या शारीरिक तापवृद्धिका कोई प्रमाण नहीं मिलता रोगीकी पाचनशक्तिभी आरम्भमें प्रायः नहीं बिगड़ती पर शरीर निर्बल अवश्य होता जाता है। जब ज्वर होने लग जाय और पेटमें थोड़ा थोड़ा दर्द रहे तो क्षयज ग्रन्थि की सम्भावना दृढ़ हो जाती है। ज्वरभी इसमें वेगवान् नहीं होता। अर्थात् उत्तापकी मात्रा स्थिरसे १-२ अंशही बढी रहती है। अनेक रोगियोंमें तो उत्ताप प्रभातको तो प्रायः स्थिर रूपमें ही

आजाता है, फिर धीरे धीरे मध्याह्नके बाद बढ़ता है। ऐसी स्थिति हो तो क्षयज ग्रन्थियोंके होने में कोई भ्रम नहीं रहता।

आरम्भमें यदि इसे मालूम कर लिया जाय तो कण्ठ-मालाकी चिकित्सा से रोग मिटभी जाता है। पर जब रोग बलवान् हो जाय तो इससे फिर कुछ नहीं बनता। बड़े बड़े नगरोंमें अन्त्रक्षयसे जितने अधिक रोगी मरते हैं उतने राज यक्ष्मासे नहीं मरते। राजयक्ष्माका रूपतो विशेष रूपवाली खांसी, ज्वर तथा अन्य चिह्नोंसे जल्दीही दिखाई दे जाता है, पर पेटकी क्षय ग्रन्थियका पता महीनों, कभी कभी वर्षों में, जाकर लगता है, क्योंकि इसमें खांसी, प्रलेपक ज्वर आदि चिह्नोंका होना आवश्यक नहीं।

व्याधिसंकरता कैसे होती है ?

प्रायः जब एक रोगसे रोगी अधिक काल तक घिरा रहे तो ऐसी स्थितिमें उसकी शारीरिक रोग-क्षमता घट जाती है। वह निर्बल हो जाता है। रोगोंके कारणों को दमन करने में उसका शरीर असमर्थ हो जाता है।

जब कुछ समयसे क्षयजन्य रोगका प्रभाव शरीर पर हो रहा हो और शरीर रक्षक इस एकका सान्मुख्य लेनेमें लगे हों ऐसी स्थितिमें अन्य किसी रोगका कीटाणु शरीरमें आ घुसे, तो उससे सान्मुख्य लेना कठिन हो जाता है। शहरोंमें मन्थर कीटाणुओं का तो उतनाही प्राबल्य है जितना क्षयका। रोगी की शारीरिक क्षमता को निर्बल पाकर मन्थरके कीटाणु उसे जल्दी ही दबोच लेते हैं। इसीलिये उस पहिली रोगकी स्थितिमें ही एकाएक यह नयी बला फूट पड़ती है। पहिला रोग अभी चिकित्सकके लिये संदिग्ध रूपमें ही रहता है। इस नये रोग को देखकर चिकित्सकके विचार एक दम बदल जाते हैं। वह पहिले को इसका पूर्व रूप समझ लेता है। कई धूर्त्त चिकित्सक तो यहां तक कह डालते हैं कि मेरी औषधने रोगका रूप स्पष्ट कर दिया। वर्षोंका छिपा हुआ रोग बाहर निकाल दिया। इस तरह प्रेम उत्पन्न करके परिवारवालोंके भी विचार अपने अनुकूल बना लेते हैं। जब एक बार ध्यान दूसरे रोगकी ओर चला जाता है, और जब तक इस नये रोग का प्राबल्य दीखता है तब तक दूसरे की ओर किसीका ध्यान ही नहीं जाता। किन्तु जब यह नया रोग अवधि समाप्त करके कभी दूर नहीं होता तब फिर ध्यान बँटता है। अबफिर बहुत कुछ पहिले रोगकी ओर ध्यान जाता है। तो, भी लाभ कुछ नहीं होता। रोगी उसी दशामें पड़ा पड़ा संसार को छोड़ देता है। इसीलिये ऐसे अवसरों पर प्रथम ही से सावधान रहना चाहिये।

पंजाब आयुर्वैदिक फार्मेसी द्वारा संस्थापित और संचलित
श्री लाला लाजपत राय दातव्य औषधालय की द्विवार्षिक रिपोर्ट

पञ्जाब-केसरी स्वर्गीय लाला जीके स्मारकमें उक्त दातव्य औषधालय १ अक्टूबर १९३४ को बड़े समारोहके साथ आरम्भ किया गया था। जिस समय इसका आरम्भ किया गया था उस समय ५४७॥=)। धर्म फण्ड का फार्मेसीमें जमा था। उस समय स्वामी हरिशरणानन्द जी वैद्य स्वयम् रोगियों को देखते थे, और जो पञ्जाब आयुर्वैदिक फार्मेसी द्वारा औषध निर्म्मित होतीं उन्हीं का इस औषधालयमें उपयोग होता था। इसमें १ अक्टूबर १९३४ से लेकर १ अक्टूबर १९३५ तक नये रोगियोंके प्रवेश की संख्या १६२९ रही। इन रोगियोंमेंसे अनेक पुराने कष्टसाध्य, और असाध्य रोगी थे जिन्होंने तीन तीन चार चार मास निरन्तर औषध सेवन किया। ऐसे प्रति दिन आने वाले रोगियोंकी संख्या ८४३१ थी। इन रोगियों की तो क्रम पूर्वक चिकित्सा की गई, जिनका ब्योरेवार चिकित्सा क्रमसे रजिस्टरमें अंकित हुआ। इससे भिन्न बिना नामांकनके २६९५ क्षुद्र रोगोंके रोगी आये। इस तरह ११,१२६ रोगियों को बिना मूल्यके औषध बितरण हुआ और अनेक जीर्णसे जीर्ण रोगियोंने लाभ उठाया। इसके पश्चात् अक्टूबर १९३५ से लेकर १९३६ तक १०२९ नये रोगियों का प्रवेश हुआ। इनमेंसे नित्य आने वालों की वार्षिक संख्या १०,७९८ रही, जिनमेंसे अनेक रोगियोंने कई कई मास चिकित्सा करा कर काफी मूल्यवान् औषध सेवन कर उन कठिन रोगोंसे मुक्त हुए। इस वर्ष भी ३५२२ क्षुद्र रोगोंके रोगी आये। इस वर्ष कुल १५,३४९ रोगियों को औषध वितरण हुआ। इस वर्ष जब कार्य अधिक बढ़ गया तो चिकित्सा शास्त्रमें निपुण पं० योगेन्द्रपाल जी शास्त्रीका सहयोग प्राप्त किया गया। आप अगस्त १९३६ से इस स्थानपर कार्यकर रहे हैं और आपके हाथसे भी रोगियोंका भारी लाभ हो रहा है। (आय-व्यय आगामी पृ० के नीचे देखिये)
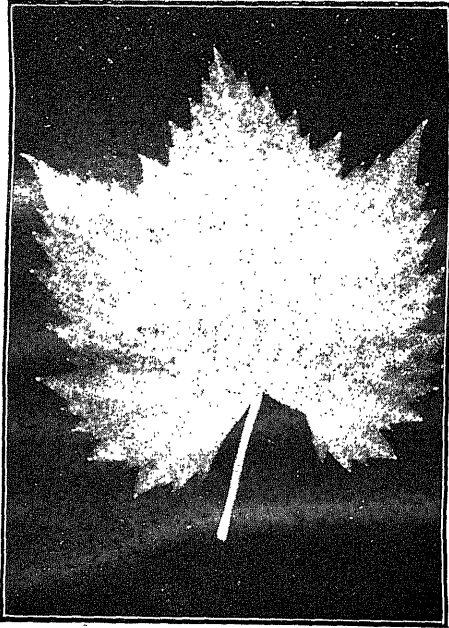
निरे नौसिखियों के लिये

बिना कैमेरे के भी कभी-कभी फ़ोटो उत्तर सकता है। एक छापने का चौखटा, एक गड्डी सेल्फ़-टोनिंग पी० ओ० पी, और १६ छटाँक 'हाइपो' खरीदिये। चौखटे के शीशे पर पत्ती, लेस, या ऐसी कोई चीज़ रखकर, उस पर सेल्फ़-टोनिंग कागज़ का एक टुकड़ा रखकर, पीठ बन्द करके, कागज़ को १ मिनट तक धूप दिखलाइये। आप देखेंगे कि इस प्रकार कागज़ पर पत्ती का चित्र उतर आयेगा। कागज़ को स्थायी (पक्का) करनेके लिये १ छटाँक हाइपो को १ बोतल पानीमें घोलकर, और उसमें से कुछ घोल लेकर, उसमें कागज़ को ५ मिनट तक रखना चाहिये। यदि चित्र फीका (या गाढ़ा) उतरे तो दूसरी छाप बनानी चाहिये, और अब की बार कागज़ को अधिक (या कम) समय तक धूप दिखाना चाहिये। बगलमें इस प्रकार खींचा गया अंगूर की पत्ती का फ़ोटो दिखाया गया है।

श्री लाला लाजपतराय दातव्य औषधालय का आयव्यय

आय

५४७॥।=)। शुरू में ही धर्म्मार्थ जमा।

१६३॥।) पहले वर्ष की धर्म्मार्थ आय।

२६९॥-)॥ दूसरे वर्ष की धर्म्मार्थ आय।

१४४॥।=)॥ फारमेसी से प्राप्त (उसकी आय में से)।

११५६=)। दो वर्षों की आय।

व्यय

३१५॥।) आरम्भ में फर्निचर, स्टेशनरी, रजिस्टर औषधादि पर व्यय।

३६०॥)। पहले वर्ष भरमें औषधपर व्यय।

४७९॥=) दूसरे वर्ष भरमें औषधपर व्यय।

११५६=)। दो वर्षों का व्यय

दूसरे अर्थात् पिछले वर्षमें फार्मेसी को १४४॥।=)॥ अपनी आयमेंसे व्यय करने पड़े हैं क्योंकि धर्म्मार्थ आय पर्याप्त नहीं हुई। इसमें वैद्यजी का अथवा अन्य उपवैद्य और नौकरों का वेतन जोड़ा नहीं गया केवल औषधका मूल्य ही लगाया गया है।

(ह०) दिलीपचन्द्र स्नातक, आयुर्वेदालंकार
मैनेजर, दि पंजाब आयुर्वेदिक फार्मेसी, अमृतसर।

गुलदाउदी

गुलाब के बाद लोक-प्रियता में गुलदाउदी का ही नं..र है। नवंबर और दिसंबर के महीनों में यह फूल हमारे बागों को कितना सुंदर बना देता है। गुलदाउदी की कई एक जातियाँ हैं---कोई फूल एक हरे, कोई गुच्छेदार, कोई छोटे, कोई बड़े, कोई भीतर की ओर मुड़ी पंखुरियों

चित्र १—झब्बरी गुलदाउदी

चित्र २—भीतर झुकी हुई पँखुड़ियों वाली गुलदाउदी

वाले, कोई झब्बे के समान लटकती हुई पंखुरियों वाले, फिर कोई पीले, कोई सफ़ेद, कोई बैगनी, कोई लाल, कई रङ्ग के फूल भी होते हैं। कुछ गमलों में रोपे जाते हैं, कुछ केवल ज़मीन में ही। परंतु प्रायः सभी जातियाँ आसानी से उगाई जा सकती हैं, क्योंकि गुलदाउदी भारत-वर्ष की ही निवासी है, विदेश से लाकर यहां नहीं लगाई गई है।
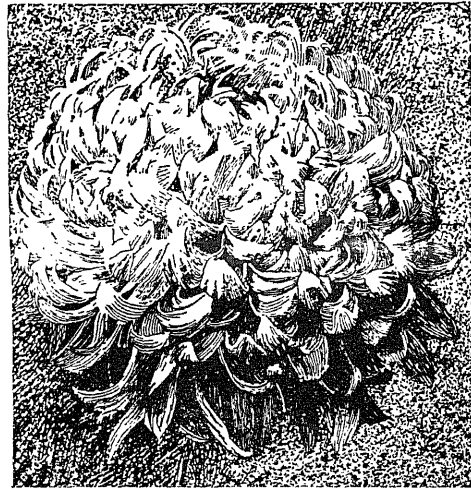
गुलदाउदी के बारे में सौ से ऊपर पुस्तकें अँग्रेज़ी भाषा में मिल सकती हैं। पत्र-पत्रिकाओं में छपे उक्त भाषा के लेखों की गिनती करना तो प्रायः असम्भव ही होगा। परन्तु हिन्दी में इस सुंदर फूल के सम्बन्ध में सहज में उत्तम साहित्य नहीं मिल सकता। इसलिये 'विज्ञान' के पाठकों की जानकारी के लिये इस मास इसी फूल पर जानने-योग्य आवश्यक बातें लिखी जाती हैं, विशेपकर इसलिए भी कि जनवरी में नये पौधों के लगाने के लिए कार्य आरंभ किया जाता है।

उगाना

फ़रमिंगर ने अपनी पुस्तक 'मैनुअल आफ़ गार्डनिंग फ़ार इंडिया' में लिखा है—लगभग जनवरी के आरंभ में, या ज्योंही फूल मुरझाने लगें और देखने में अच्छे न लगें, त्योंही फूलवाली डालियों को जड़ के पास से काट डालना चाहिये। पौधे को अब गमले में से निकाल लेना चाहिये (यदि यह गमले में हो), या यदि पौधे ज़मीन में हों तो उनको जड़ सहित खोद कर निकाल लेना चाहिये। जड़से कुल मिट्टी झाड़ डालनी चाहिये और तब इसके टुकड़े टुकड़े चीर डालना चाहिये, जिसमें प्रत्येक शाख और उसकी जड़ अलग हो जाय। कहीं सायेदार जगहमें मिट्टी गोड़ कर तैयार करनी चाहिये और उसमें पुराना खाद मिला देना चाहिये। यदि मिट्टी करैली (चिकनी) हो, अर्थात् ऐसी हो जो गीली हो जानेके बाद सूखने पर खूब कड़ी हो जाय, तो उसमें कुछ बालू मिला देना भी उचित होगा। अब चीरे हुये पौधोंको कटिंग की भाँति इस ज़मीनमें रोप देना चाहिये। पांतियाँ एक-एक फ़ुट पर रहें और प्रत्येक पांती में पौधे एक-एक फ़ुट पर रहें। इनको रोज़ सींचना चाहिये। ये शीघ्र ही जड़ पकड़ लेंगे और ज़ोरसे बढ़ने लगेंगे। तब उन्हें ज़मीनसे उखाड़ लेना चाहिये और शाखाओं को चीर-चीर कर फिर उन्हें अलग कर डालना चाहिये। इनको अलग-अलग मझोले नापके गमलोंमें रोपना चाहिये। बरसात भर इनको मूसलाधार पानीसे बचाना चाहिये। अक्टूबरमें इनको खूब खादवाली मिट्टीसे भरे बड़े गमलों में लगा देना चाहिये।

'यदि पौधे ज़मीनमें ही पड़े रह जायँ तो कुछ पौधे अवश्य धूप और पानी सब सह कर बच जाते हैं, परन्तु उनको उपरोक्त रीतिसे गमलोंमें उठा लेनाही अधिक उचित है।

मिट्टी और खाद

प्रत्येक विशेवज्ञ मिट्टी और खादके बारेमें अपनीही सम्मति को ठीक मानता है, परन्तु चूँकि कई भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में अच्छे फूल उगते हैं, इसलिये परिणाम यही निकलता है कि मिट्टी और खाद चाहे, जो भी हो अच्छे फूल अवश्य तैयार होंगे, बशर्ते खाद ज़मीनमें काफ़ीहो। बाज़ लोग तो ज़मीनमें खाद मिलानेके अतिरिक्त पौधोंके बढ़ जाने पर ऊपरसे इंच, डेढ़ इंच, खाद छोड़ देते हैं, जिसमें सींचने पर इस खादका घुलनशील पदार्थ पौधोंको बराबर मिलता रहे।

चीनके लोग जैसे सुंदर गुलदाउदी पैदा करते हैं वैसे शायद और कहींके लोग नहीं कर सकते। ज़मीनमें लगे उनके एक-एक पौधेमें हज़ार-हज़ार तक फूल लगते हैं और इनको वे रेशमके तागे से छोटी-छोटी खूँटियोंमें बाँधते चलते हैं और जब सब फूल तैयार हो जाते हैं तब फूलही फूल नज़र आते हैं। वे बराबर विष्ठा को पानीमें घोल कर पौधों को दिया करते हैं। यहाँ भी बड़ेसे नाँदमें गोबर, या बकरी, भेंड़ आदि की मेंगनी पानी मिलाकर सड़ने को रख दी जा सकती है। घरमें कबूतर मुर्गी आदि हों तो उनकी भी विष्ठा इसीमें छोड़ देनी चाहिये। जब यह खूब सड़ जाय तो इसमें पानी मिलाकर पौधों को देना चाहिये। स्मरण रहे कि यह तरल घोल पौधों को खूब फीका करके देना चाहिये। थोड़ा-थोड़ा और अकसर तरल खाद देना अच्छा है। यदि तेज़ खाद छोड़ा जायगा तो पौधे जल जायँगे। जब पत्तियाँ बहुत गहरे रंग की और बहुत चुरमुरी हो जाँय तो समझना चाहिये कि उनको अधिक खाद देना हानिकारक होगा। गुलदाउदी की बाज़ जातियाँ ऐसी भी होती हैं कि बहुत खाद पाने पर उनमें फूल लगते ही नहीं, केवल पत्तियाँ खूब बढ़ती हैं। इसका भी ख़्याल रखना चाहिये। साधारणतयः हदके भीतर तक जितना ही अधिक खाद दिया जायगा उतने ही बड़े फूल लगेंगे। सितंबरसे जनवरी तक तरल खाद देना उचित होगा।

पौधों को धूपमें ही रहना चाहिये। बिना धूपके अच्छे फूल तैयार न होंगे।

कितने फूल ?

जब पौधे क़रीब एक बित्ते (बालिश्त) के हो जायँ तो उनकी बगलमें एक सीधी लकड़ी गाड़ देनी चाहिये और पौधे को इसीमें पटुएसे फुलफुले बाँध देना चाहिये।

गुलदाउदी दो विभिन्न अभिप्रायोंसे उगायी जाती है, एक तो बहुतसे छोटे-छोटे फूलोंके लिये, दूसरे केवल एक या दो बड़े फूलोंके लिये। यदि बहुतसे फूलों की आवश्यकता हो तो जितनी कलियाँ निकलती हैं सब को रहने देना

चाहिये। इस अभिप्रायसे लगाये गये पौधे अधिकतर ज़मीनमें उगाये जाते हैं। यदि बड़े-बड़े फूलों की आवश्यकता हो

चित्र ३—शिरकी कली, अभी कोई शाख नहीं तोड़ी गई है।

तो एक दो कलियों को छोड़ शेष कलियाँ मसल दी जाती हैं।

यदि केवल एक फूल रखना हो तो शिर पर लगी कली रक्खी जाती है और शेष कलियाँ मसल कर नष्ट कर दी जाती हैं (चित्र ३ और ४)। यदि फूलों को रखना हो तो शिरवाली कली मसल दी जाती है। पीछे बगलमें जब कलियाँ निकलती हैं तब उनमेंसे अच्छी (मजबूत और सुडौल) दो कलियों को छोड़ शेष को मसल दिया जाता है और उन शाखाओं को भी तोड़ दिया जाता है जिनमें अन्य कलियाँ निकल सकती हैं (चित्र ५ और ६)। इस प्रकार अन्य सब

चित्र ४—शिर की कली; अन्य कलियाँ और वे शाख जिनमें कलियाँ निकल सकती हैं तोड़ दी गई हैं।

कलियों का ज़ोर एक या दो कलियोंमें आ जाता है और फूल खूब बड़े लगते हैं।

आरंभसे इस पर भी ध्यान रक्खा जाता है कि पौधेमें एक ही तना रहे। जड़के पाससे यदि दूसरे तने निकलने लगें तो उनको तुरंत तोड़ दिया जाता है। वे जितने ही जल्द निकाले जायँगे और बेकार कलियाँ और शाखाएँ जितनी ही जल्द तोड़ दी जायँगी, उतना ही ज़ोर अभीष्ट फूलके बननेके लिये संचित रहेगा।

चित्र ५—बग़ल की कली, अन्य कलियोंके तोड़नेके पहले

चित्र ६—बग़ल की कली अन्य सब कलियोंके तोड़ देनेके बाद।
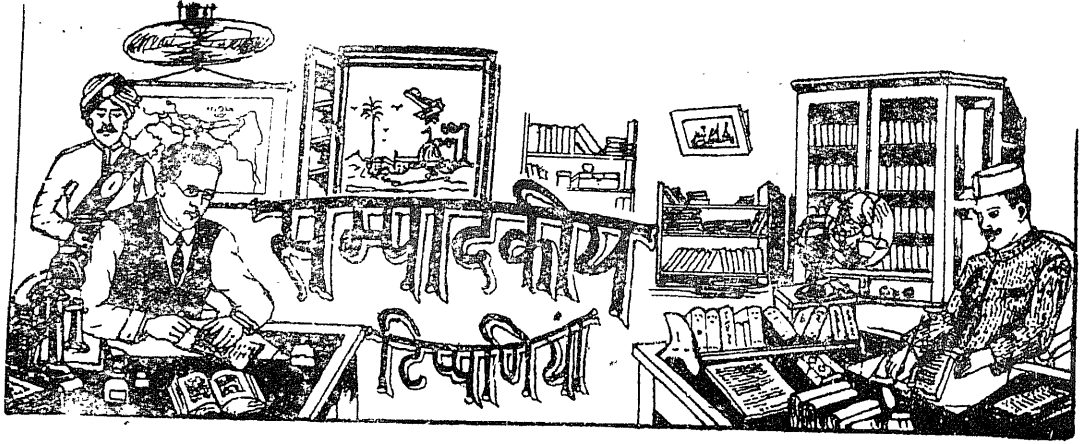
१. आयुर्वेद सम्मेलन ध्यान दे

इस युगमें हर एक बात पर गम्भीरतासे, धैर्यसे, शक्तिसे विचार करना चाहिये और दूसरों की त्रुटियों की अपेक्षा अपनी त्रुटियोंपर अधिक ध्यान देना चाहिये।

यह कहावत ठीक है कि दीया तले सदा अंधेराही रहता है। मनुष्य अपनी त्रुटियों को स्वयंम् नहीं देख सकता, सदा दसरों की त्रुटियाँ ही उसे दिखाई देती हैं। पर दूसरा जब हमारी त्रुटिको देखकर बतावे तो हमें उसके कथन की अवहेलना नहीं करनी चाहिये। अपने को सर्वज्ञ मान लेना और दुर्गुण को गुण, त्रुटिको पूर्णता समझ उस पर विश्वास-करना अपनी आत्मा को धोखा देना है।

इस समय अखिल भारतवर्षीय आयुर्वेद-सम्मेलन हो रहा है। अनेक विद्वान विचारार्थ यहाँ एकत्र होंगे। इस अवसर-पर हम कुछ विचारणीय बातें रखते हैं। वैद्योंको सामूहिक रूपसे इन पर विचार करना चाहिये। ह०

२-अंगोपांगो की गिनती में भेद क्यों!

हमारे यहाँ शल्यशास्त्र था। पूर्व पुरुषों ने शरीर की रचना को शल्य विधि से जाना। इस समय भी शल्य क्रिया है, किन्तु हमारे हाथ में नहीं। दोनों ने शल्य क्रिया द्वारा शरीर के अंगों को देखा। जो मानवी शरीर आज से दस हज़ार वर्ष पूर्व था, जो अंग उपांग उस समय विद्यमान थे, वही आज हैं। फिर पूर्वकाल के शल्य विज्ञानियों की दी हुई अंग उपांगों की गणना नहीं मिलती। अनेक अंग उपांग का जिनका उन्होंने निर्देश किया है। इस समय पता नहीं चलता। अनेक नये अंग उपांग जाने गये हैं। हम इसका मोटा सा उदाहरण देते हैं।

पसली की अस्थियों के सम्बन्ध में चरक जी कहते हैं कि :—

"पार्श्वयो श्चतुर्विंशति श्चतुर्विंशतिः।" पसलियाँ २४-२४ होती हैं। भाव प्रकाशकार कहता है, नहीं,

"पार्श्वयोः षट् त्रिंशत् षट् त्रिंशत्" पसलियाँ ३६-३६ होती हैं। आधुनिक शल्यशास्त्र विशारद कहते हैं कि पसलियाँ १२-१२ होती हैं। किसी के १३-१३ भी होती हैं। और लीजिये सुश्रुत जी कहते हैं—

"एकैकस्यां तुयादांगुल्यांत्रीणित्रीणि तानि पञ्च दश"।

पैर की एक एक अँगुली में तीन तीन पोरवास्थि, इस तरह पाँच अँगुली में १५ होती हैं। आजकल अँगुलियों में १५ नहीं १४ पोरवास्थि मिलती हैं। हाथों पैरों की अस्थि संख्या हमारे यहाँ ६० गिनायी गयी हैं, पर ५६ मिलती हैं। अँगूठों की एक एक अस्थि कम है? किसी भी व्यक्ति में नहीं देखी जाती। पर हमारे यहां ६० ही मानते हैं। ऐसा किस आधार पर?

चरक जी चार गुल्फ बताते हैं। सुश्रुत जी दो। आधुनिक शल्यचिकित्सक टांग की अस्थियों के नीचे के उभार को भिन्न नहीं बताते, न वह भिन्न हैं। इस लिए गुल्फ कोई भिन्न अस्थि नहीं, ऐसा उनका कहना है।

मोटी बात यह है कि चरक ३६० अस्थियां मानते हैं। सुश्रत जी ३००। इस समयके चिकित्सक कुल २०६। कहाँ २०६ और कहाँ ३०० और कहाँ ३६०। दो चार दस बीस नहीं पचासों सैकड़ों का अन्तर है। सुश्रुतजी शरीरमें २१० सन्धियोंका निर्देश करते हैं। इस समयकी गणनासे २९९ सचेष्ट सन्धियां पायी जाती

हैं। यह कहांसे बढ़ गयीं? सुश्रुतजी ५०० मांस पेशियां बतातें हैं। आधुनिक समयमें ५१९ मांस पेशियां पायी जाती हैं। यह १९ नयी पेशियोंका कब विकास हुआ?

हमारे शास्त्रोंमें सात त्वचायें मानी गई हैं। आधुनिक समयमें चर्म और उपचर्म दो ही त्वचायें देखी जाती हैं। पांच और कौनसी हैं? इसका पता न तो इस समयके वैद्यों को लगा है, न अन्य चिकित्सकों को। पर वैद्य इसे मानते हैं।

१—क्या यह भिन्न दृष्ट-विन्दुओंसे देखनेका फल है?

२—क्या वह लाख दो लाख बरस पहलेकी किसी भिन्न मानवयोनिका वर्णन है?

३—क्या यह शास्त्रकारों की प्रत्यक्ष भूल है, और उन्होंने प्रत्यक्ष परिशीलन करके नहीं लिखा है? ह०

३—प्राचीन और नवीन परिभाषा में भेद

धमनी, शिरा नाड़ी आदि किस किसको कहना चाहिये, आजतक वैद्योंने निर्णय नहीं किया। इस समय शुद्ध रक्तवाहिनी को धमनी कहते हैं। हमारे यहां "धमन्यौ रस वाहिन्यौ धमन्ते पवनं तनौ" रस वाहिनीको धमनी कहा है। जो समान शरीरमें पवनको फूंके या धकेलै। पवनको धकेलने वाली, रसको बहानेवाली, कौनसी नालियां हैं। आधुनिक शल्य शास्त्रियों को पता नहीं, न वैद्य ही बताते हैं। शिरा नाड़ी आदि परभी बड़ा विवाद है। पर इनका यह निर्णय नहीं करते। हमारे यहां इन्द्रियज्ञान और शारीरिक अवबोधमें मन और आत्मा को कारण माना जाता है। आधुनिक चिकित्सक कहते हैं कि मस्तिष्कसे सुषुम्ना-मध्य में आयी हुई बोध-नाड़ियोंके कारण इन्द्रियज्ञान और शारीरिक संज्ञायें होती हैं। इन दोनों विचारोंमें भारी अन्तर है। अभिनव शरीर शास्त्रियों और वैद्य महोदयोंको मिलकर परस्पर विचार विनिमय और आधुनिक प्रयोगों द्वारा निश्चय करना चाहिये कि कौनसा विचार ठीक है।

४—ग्रंथियों की गुत्थी

ग्रन्थियोंकी गुत्थी हमारे यहां शरीरमें यकृत, वृक्क, प्लीहा, वृषण आदि कुछही ग्रन्थियोंका उल्लेख है। इस समय बीसों छोटी बड़ी ग्रन्थियोंको शरीरमें छिपाया जाता है यह पूर्वकालमें नहीं थीं, अथवा हमारे ऋषियोंको इनका पता न था, अथवा इनका बताया जाना उन्होंने उचित न समझा? कई ग्रन्थियांतो वैज्ञानिकोंको हालमें मालूम हुई हैं और संभव है आगे कुछ और मालूम हों। इन शंकाओं का समाधान होना चाहिये और यदि यह त्रुटियां हों तो इन्हें दूर करना चाहिये।

५—निदानमें अन्तर

जो शरीर विज्ञान में है वही निदान में भी पाया जाता है। आधुनिक पाश्चात्य एलोपैथिक चिकित्सक अनेक रोगों का कारण जीवाणु-कीटाणु बताते हैं, हमारे यहां त्रिदोष का कोप। वह तो अपनी बात का प्रत्यक्ष प्रमाणिक उत्तर देते हैं, हम उनके समक्ष त्रिदोष सिद्ध नहीं कर सकते। रोगियों को देखनेके लिये वैद्य जाता है और उधर डाक्टर आ जाता है। दोनोंके विचारोंमें ज़मीन आसमान का अन्तर होता है रोगी अब वैद्यों की बातपर कम विश्वास करते हैं। निदान सम्बन्धी डाक्टरी सहायता को वह अधिक महत्व देते हैं। इसमें मुख्य कारण है हमारी त्रुटि। हम रोगी का क्रियात्मक रीतिसे संतोष नहीं कर सकते। हमारा जो एक ही उत्तर होता है वह यह कि यदि हम रोग को ठीक समझते हैं तो हमारी चिकित्सासे लाभ होना ही चाहिये। इसे हम क्रियात्मक उत्तर कहते हैं। चिकित्सा द्वारा रोग को हटा देना और बात है। चिकित्सासे पहले रोग की ठीक पहचान और बात है। किसी भी वस्तुके सम्बन्धमें मानवी ज्ञान पूर्ण नहीं होता, पर वैद्य अपने प्राचीन निदान को त्रुटिरहित और पूर्ण मानते हैं। हालां कि नित्य नये रोगों का प्रादुर्भाव भी देखते हैं। क्या वैद्य प्लेग, काला आजार, बेरी बेरी, पीला ज्वर, झुन झुनिया, गर्दनतोड़ बुखार आदि के नाम लक्षण और रूप का स्पष्ट उल्लेख निदान में पाते हैं, यदि हों तो उनको बतावें। जो यह कहा करते हैं कि यह अमुक रोगोंके अन्तर्गत है, जनपन ध्वंसक व्याधियोंमेंसे एक है। इस कथन का महत्व क्या? इस प्रकारके उत्तर जब अपना ही संतोष नहीं कर सकते तब औरोंका किस तरह करेंगे?

हमें अपनी चिकित्सा पर बड़ा गर्व है, पर हम इन नव्य रोगों की चिकित्सामें उसी तरह असफल रहे हैं जिस तरह डाक्टर। यदि हमारे जाने हुए किसी रोगके अन्तर्गत ही यह नव्य रोग होते और हमारी चिकित्सा इनपर सफल होती तब हम अपने कथन की सार्थकताका दावा कर सकते थे। पर हमतो बिना समझे ही समझने का दावा रखते हैं।

६-हमारी क्रियात्मक असावधानी और अव्यवस्था

अभी हालकी एक घटना है। लाहौर में बहुत धन लगाकर किसीने एक आयुर्वेदिक दातव्य औषधालय

खोला है, जिसमें रोगियों को रख कर चिकित्सा की व्यवस्था की गयी है। उसका प्रबन्ध एक अच्छे चुने हुए विज्ञापक वैद्यके हाथमें है। दो आंगल भाषाभाषी कलकत्ता आयुर्वैदिक कालेज तथा अन्य योग्य स्थानके पठित चिकित्सक भी चिकित्साके लिये नियुक्त हैं। वहां कोई ४० के लगभग रोगियों को रखने और सुचारू रूपसे चिकित्सा कराने का प्रबन्ध है। ऊपरी प्रबन्ध और सफाई प्रशंसनीय थी। जब मुझे रोगियोंके कमरोंमें लेजाया गया और उनके रोग सम्बन्धी व्यवस्थापत्र दिखाये गये, उस समय ज्वरके रोगियोंसे कुछ प्रश्न करने की मैंने अनुमति मांगी, जो वैद्य जीने कृपापूर्वक दी, तथा साथमें वह स्वयं भी रोग समझानेमें मेरी सहायता करते रहे। रोग कई देखे, कोई विषम ज्वर का कोई मन्थर ज्वर का, कोई कोई क्षयग्रन्थीजन्य ज्वर का, कोई फुफ़्फ़ुस यकृत विकार जनित ज्वर का, काई भिन्न भिन्न कारणोंसे उत्पन्न ज्वरोंके। व्यवस्थापत्र पर तो होना चाहिये था रोग का स्पष्ट विवरण तथा ज्वरोंमें किसी विशेष चिन्हों का निर्देश और तदुपरान्त उसके साथ औषध-व्यवस्था। परन्तु वहां था केवल ज्वर। किसी कारणसे हो, उसके निर्देश की उन्होंने कोई आवश्यकता नहीं समझी। केवल ज्वर लिखा और औषध की व्यवस्था बना दी। कास लिखा और कासहर कोई औषध की व्यवस्था कर दी। जब उनसे पूछा गया कि कासके तो अनेक कारण इस समय मालूम होते हैं—कास कोई स्वतन्त्र रोग नहीं—यह किन कारणोंसे है? स्वरयन्त्रमें विकार है, कि वायुप्रणालीमें, या कि तालुकंटकसे है, या फुप्फुसके किसी रोगसे, वा यकृत विकारसे, इसका कोई निर्देश नहीं किया। उत्तर मिला व्यवस्थापत्रमें नहीं करते, रजिस्टरमें खुलासा लिखा जाता है। घूम फिर कर वैद्यजी के बैठनेके स्थान पर आये और वहां रजिस्टर देखने का सौभाग्य मिला तो वहां भी वही बात पाई। इसके उत्तरमें वैद्यजीने कहा कि हमारे यहां जब शास्त्रमें ही सब संक्षेपमें है तो यहां अधिक विवरण देने की क्या आवश्यकता, रोग का पता तो हमें रहता है। मैंने कहा तो व्यवस्थापत्र ही क्यों बनाया जब रोग का आप को पता रहता ही है। इस बात को सुनकर आप चुप हो गये। अच्छे प्रबन्धके लिये जहां लाखों रुपया मिला हो, फिर आयुर्वेदकी एक नहीं कई कई डिग्रियां जिनके पीछे लगी हों, और उसका संचालन भी एक ऐसा वैद्य करता हो जो आधुनिक विज्ञानको समझनेका तथा उसके द्वारा आयुर्वैदिक सिद्धान्तों की व्याख्या करनेका दम भरता हो, उनके निरीक्षण में—विशेष कर जब आधुनिक युगकी प्रत्येक बातकी नकल करनेमें प्रवीण हो—इस व्यवस्थामें उक्त अंशमें नकलकी कापीको देख कर अत्यन्त खेद हुआ। वास्तवमें यह उनका दोष नहीं। हमारी अपूर्ण पद्धतिका ही दोष है कि हम आधुनिक विधि-विधान संयुक्त किसी बातकी समझनेकी चेष्टा नहीं करते।

इस समय जब प्रत्येक बातमें संसार उन्नति करता चला जा रहा है, हम आज हजार वर्ष पूर्वकी उन्नति को ही पकड़े बैठे हैं यद्यपि इस समयकी बढ़ती हुई आवश्यकताओंकी उनसे पूर्ति नहीं होती। इसे देखते हुये भी हमारी आंखें नहीं खुलतीं? हम वही पुराना राग अलापते और दस हजार वर्ष की पुरानी पद्धतिको इस युगमें चलानेकी चेष्टा करते हैं, क्या सफलता कभी सम्भव है?

आवश्यकतातो इस बातकी है कि हम अपनेको तथा अपनी चिकित्साको इस योग्य बनावैं कि प्रतिस्पर्द्धियोंके सामने एकतो डट सकें, दूसरे अपनेको ऐसा उपयुक्त बना सकें कि सर्व प्रियहों। हर एक व्यक्तिको अपनी ओर आकर्षित-कर सकें, जभी हम चिकित्सा में उन्नति कर सकते हैं; अन्य विधिसे नहीं। —ह०

विषय-सूची—

फ़रवरी, १९३७ मूल्य ।)

भाग ४४ प्रयाग की विज्ञान-परिषद् का मुख-पत्र, जिसमें आयुर्वेद-विज्ञान भी सम्मिलित है संख्या ५

Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces & Central Provinces, for use in Schools and Libraries.

विज्ञान

पूर्ण संख्या
२६३

वार्षिक मूल्य ३)

नोट—बदले के सामयिक पत्रादि, लेख और समालोचनार्थ पुस्तकें, यदि वे आयुर्वेद पर न हों, तो 'संपादक, विज्ञान, बनारस शहर' के पास भेजे जायँ। अन्यथा वे स्वामी हरिशरणानंद, पंजाब आयुर्वेदिक फ़ारमेसी, अकाली मार्केट, अमृतसर के पास भेजे जायँ।

प्रबंध-संबंधी सब पत्र तथा मनीआर्डर 'मंत्री, विज्ञान-परिषद, इलाहाबाद' के पास भेजे जायँ।

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते,

विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ३।५॥

भाग ४४ } प्रयाग । कुंभार्क, संवत् १९९३ वि० । फरवरी, १९३७ { संख्या ५

मङ्गलाचरण

सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति शान्त उपासीत । अथ खलु क्रतुमयः पुरुषः पुरुषो यथा क्रतुरस्मिँल्लोके पुरुषो भवति तथेतः प्रेत्य भवति सक्रतुं कुर्वीत । [छान्दो० ३।१४।१]

यह सब निश्चय ब्रह्म है, इसीसे सब उपजते इसीमें चेष्टा करते, इसीमें लीन होते हैं, इसकी शान्त होकर उपासना करे, क्योंकि पुरुष निश्चयका पुतला है। जैसा पुरुष इस लोकमें निश्चय करता है वैसा ही मरनेपर होता है। इसलिये शान्त हो अचल निश्चय करे।

काश्मीरकी संशोधित राज्यवंशावली

[देवसहाय त्रिवेद, बी० ए०, साधोलाल रिसर्चस्कालर, काशी]

श्लाघ्यः स एव गुणवान् रागद्वेषबहिष्कृतः ।
भूतार्थकथने यस्य स्थेयस्येव सरस्वती ॥

कल्हण १।७

काश्मीरकी वंशावली सारे संसारके इतिहास-कारोंके लिये अत्यन्त महत्वकी है। डाक्टर ट्रायर और स्टाइन ऐसे बहुतेरे प्रगाढ़ विद्वानोंने इसके ऐतिहासिक महत्वको बढ़ानेके लिये अपना हाथ बढ़ाया। उनलोगोंके निरत-परिश्रम तथा पाण्डित्यके होनेपर भी डाक्टर स्टाइन साहबको निराश होना पड़ा। डाक्टर महोदय कहते हैं।[1] "हमलोग एक ऐसे लेखकसे वंशावलीके सम्बन्धमें वैज्ञानिक न्याय्यकी अपेक्षा नहीं कर सकते जो अपने गणनाका आधार युधिष्ठिर सदृश पौराणिक राजाका राज्याभिषेक तिथि मानता है।" किन्तु इतिहासकार लोग जरासा भी अधीर नहीं हुए और प्रत्येक ऐतिहासिक व्यक्ति इसको ध्यानसे पढ़ता तथा मनन करता है और यथायोग्यता नयी बातोंको ढूंढ़ निकालता है। इस लेखमें लेखक नीरक्षीर विवेक विद्वानोंके संमुख काश्मीरकी एक परिशोधित वंशावली पक्षपात विवेचनाके लिए उपस्थित करता है।

कल्हणके अनुसार कलिके ६५३ वर्ष बीत जाने पर कौरव और पाण्डव इस पृथ्वीपर सुशोभित हुए[2]। कल्हण और सभी अन्य भारतीय विद्वानोंको यह मान्य है कि कलि संवत् ३१०१ वर्ष ईसा पूर्व आरम्भ हुआ। अतः कल्हणके कहनेके अनुसार महाभारतका युद्ध (३१०१-६५३) = २४४८ वर्ष ईसा पूर्व होना चाहिये। किन्तु अनेक पुष्ट प्रमाणोंके कारण[3] कल्हण का यह वचन ग्राह्य नहीं हो सकता। कल्हणको विवश होकर स्वयं कहना पड़ता है कि[4] 'महाभारतका युद्ध द्वापरके अन्तमें हुआ इसलिये कितने लोग उनके इस समयको झूठ मानते हैं। तथा पुनः राजतरंगिणीमें लिखा है।

* "...I am not sufficiently familiar with the subject to be able to pass opinions on his views, but I can say that he has studied widely and intelligently and argues strongly. If he succeeds in establishing his views, he will revolutionise Indian chronology..."

—Bhagavan Das,
M. A., D. Litt., M. L. A.

१ राजतरंगिणी डाक्टर स्टाइन सम्पादित भूमिका पृ० ३१।

२ शतेषु षट्सु सार्द्धेषु त्र्यधिकेषु च भूतले ।
कलेर्गतेसु वर्षाणामभवन् कुरुपाण्डवाः ॥ राजतरंगिणी १।५१

३ (क) दी डेट आफ दी महाभारतवार ३१३७ ईसा पूर्व०, ट्रिब्यून, लाहौर, १४ जनवरी १९३६।
(ख) महाभारत युद्धकाल (संस्कृतम्) अयोध्या, २१ जुलाई ३६,
(ग) महाभारत युद्धकी तिथि ३०८० वर्ष विक्रम पूर्व, आर्यमहिला, काशी, अगस्त, १९३६।
(घ) आजसे पांच हजार वर्ष पहले महाभारत की लड़ाई। विज्ञान प्रयाग अगस्त १९३६

४ भारतं द्वापरान्तेऽभूद्वार्तयेति विमोहिताः ।
केचिदेतां मृषा तेषां कालसंख्यां प्रचक्रिरे ॥ रा० त० १।४९

आसन् मघासु मुनयः शासति पृथिवीं युधिष्ठिरे नृपतौ।
षड्द्विकपञ्चद्वियुतः शककालस्तस्य राज्यस्य॥
(रा० त० १।५९)

(जिस समय राजा युधिष्ठिर पृथिवीपर शासन करते थे उस समय सप्तर्षिगण मघा[५] नक्षत्र पर थे और शककालमें २५२६ जोड़ने से उसका राजसमय होता है।) अतः यदि हमलोग २५२६ में ७८ जोड़ते हैं तो २६०४ शकपूर्व अथवा २५२६ वर्ष ईसा पूर्व उसका राज्यकाल होता है। कल्हणकी इन तीनों उक्तियोंका उसीके वचनपर समन्वय करना असंभव है। अतः यह मानना पड़ेगा कि कल्हणकी यह उक्ति "कौरव और पाण्डव कलिके ६५३ वर्ष बाद हुये" नितान्त भ्रमपूर्ण है तथा निराधार भी है।

कल्हणके इस वचनने कि 'शककालमें २५२६ वर्ष जोड़ने पर युधिष्ठिरका राज्यकाल होता है' अनेक धुरन्धर विद्वानोंको चक्करमें डाल दिया है। तथा इस वाक्यने विद्वानोंको मनगढ़न्त कल्पना करनेका भी अवसर दिया है। किन्तु कोई भी अभी किसी नियत आधार पर नहीं पहुँचा। कितने विद्वान शककालसे शालिवाहनीय शकका अर्थ लेते हैं तथा दूसरे, जैसे रावबहादुर चिन्तामणि विनायक वैद्य महोदय, शककालसे बुद्धनिर्वाण शककाल समझते हैं। वैद्य महोदयका यह विचार ग्राह्य नहीं हो सकता क्योंकि भगवान् गौतमबुद्धका समय स्वयं ही बहुत वादविवाद[६] पूर्ण है और शकसंवत्से उसका कहीं भी उल्लेख नहीं हुआ है। अपि तु वैद्य महोदय यह भी सुलझाते हैं कि 'षड्द्विक् पञ्चद्वियुतः' का अर्थ २५६६ होना चाहिये क्योंकि षड्द्विक्से अर्थ ६६ का होगा किन्तु व्याकरणके नियमों[७] से बद्ध होनेके कारण यह भी नहीं माना जा सकता। तथा कल्हणने स्वयं इसको २५२६ ही के अर्थ में प्रयुक्त किया है।

कल्हणकी लिखी उपर्युक्त आर्याको उनसे पहिले वाराह[८] मिहिरने तथा गर्गाचार्यने भी उद्धत किया है और वास्तवमें कल्हणने अपने पूर्वजोंको अक्षरशः उद्धत किया है। यौरोपीय विद्वानोंके अनुसार[९] गर्गाचार्य ईसा पूर्व पहली शताब्दीमें हुए। ढाका युनिवरसिटी के प्रोफेसर अक्षयकुमार मजूमदारके अनुसार[१०] पांच बराहमिहिर हुए। यथा (क) बृहत्संहिताके लेखक ५७ वर्ष ई० पू० (ख) संशोधित बृहत्संहिताके लेखक ८० ई० सन् (ग) आधुनिक बृहत्संहिताके लेखक २८५ ई० सन् (घ) पञ्चसिद्धान्तिकाके लेखक ईसाकी छठी शताब्दी (ङ) विश्वकोषके लेखक १६०० ई० सन।

---

५ कल्हणकी यह उक्ति अन्य आधारोंसे भी सिद्ध होती है। यथा

त्वदीया द्विजा कालेऽधुना चाश्रिता मघाम्। श्रीमद्भागवत

तेन वै ऋषयो युक्तास्तिष्ठन्त्यब्दशतं नृणाम्।

यावद्देवर्ष सप्त मघासु विचरन्ति हि। तदा प्रवृत्तस्तु कलिः।

६ दी डेट आफ लार्ड बुद्ध १८८५ ई० पू०, डेली हेरालड, लाहौर, २७ जनवरी, १९३६।

" " महाबोधी सोसाइटी जरनल।

७ चार्थे द्वन्द्वः। पाणिनि २।२।२९

स्वार्थे कन्

८ बृहत्संहिता १३।३

९ फ्रेजरकी बृटिश इण्डिया, लन्दन, १९०८ पृ० ७।

१० हिन्दू पिरियड ३००० ई० पू०से १००० ई० सन् तक।

अतः गर्गाचार्यके समयमें तथा वराहमिहिरके समय में, जो भारतीय परम्पराके अनुसार विक्रमादित्यके नवरत्नोंमें अत्यन्त प्रसिद्ध थे, प्रख्यात शालिवाहनके शकका आरम्भ ही नहीं हो सकता था। अपितु कालिदास जो विक्रमादित्यके राजकालमें कविसम्राट् थे और जिन्होंने अपने ज्योतिर्विदाभरणकी रचना ३०६८ कलि-सम्वत्[11] या ३३ वर्ष ईसापूर्व की, अपने ग्रन्थ में अयनांश निकालनेका नियम लिखा है। कालिदासके अनुसार[12] शक संवतसे ४४५ घटाकर ६० से भाग देनेपर अयनांश ज्ञात होता है। किन्तु ग्रहलाघव[13] के अनुसार अयनांश निकालनेके लिये ४४४ घटाकर ६० से भाग देना चाहिये। अतः यह सिद्ध होता है कि कालिदासकी गणना पूर्वकी है और ग्रहलाघवकारने उसपर उन्नति की है। कालिदास प्रथम शताब्दी[14] में विद्यमान थे। पण्डितोंमें यह भी परम्परा है कि एक वार वराहमिहिरने कालिदासका भरी हुई सभा में उपहास[15] किया कि कालिदास तो केवल स्त्रियोंहीके हावभावका वर्णन करना जानते हैं, उनमें कुछ भी वैज्ञानिक पाण्डित्य नहीं है। इसपर कालिदासने रातोंरात इस ज्योतिर्विदाभरण पुस्तककी रचना कर डाली। निःसन्देह इस ज्योतिर्विदाभरण पुस्तकमें कामशास्त्रका भी पूर्ण वर्णन है। यह पुस्तक किसी रसिकजनहीके हाथ से लिखी जा सकती है। अतः कल्हणद्वारा प्रयुक्त शकसंवत्का आरम्भ वर्तमान शालिवाहन शकसम्वत् से भिन्न होना चाहिये।

अपि तु कल्हणके अनुसार भी लौकिक संवत्का आरम्भ कलिके[16] २५ वर्ष बीत जानेपर ३०७६ वर्ष ईसा पूर्व (३१०१ – २५) हुआ और यह सर्व प्रकारसे प्रमाणित है कि कौरव और पाण्डव कलिके पहले हुए। यदि हमलोग २५२६ में ७८ या बुद्धनिर्वाण संवत् जोड़ते हैं तो भी किसी प्रकार हमलोग २४ लौकिक संवत् नहीं पाते। यथा (२५२६ + ७८ + १०७०) = $\frac{३६७४}{१००}$ = ७४ लौकिक सम्बत् या (२५६६ + ७८ + १०७०) = $\frac{३७१४}{१००}$ = १४ लौकिक संवत् या (२५२६ + ५४३ + ७८ + १०७०) $\frac{४१५७}{१००}$ = ५७ लौकिक संवत् या (२५२६ + ५४३ + ७८ + १०७०) = $\frac{४२१७}{१००}$ = १७ लौकिक संवत्में १०० का भाग देकर केवल शेष लिखते हैं यथा हमलोग १९९३ के बदले ९३ लिखते हैं। अतः किसी भी दशामें २४ लौकिक संवत्का प्राप्त होना असम्भव है। तथा साथही कल्हणकी उक्तिका समन्वय होना भी युक्त है।

शकसंवत्का आरम्भ ५५० वर्ष ईसा पूर्व होना चाहिये। फारसके इतिहासके अनुसार शकोंका प्रथम आक्रमण भारतपर सायरसके नेतृत्वमें ५५० वर्ष ईसा पूर्व हुआ था। सायरसकी मृत्यु ५२८ ई०[17] पू० हुई।

---

११ वर्षे सिन्धुरदर्शनाम्बरगुणे याते कलेः सम्मिते
मासे माधव संज्ञितेऽत्र विहितो ग्रन्थक्रियोपक्रमः ॥ ज्योतिर्विदाभरण २२।२१

१२ शाकः शराम्भोधि युगती हतं मानं खतर्कैरयनांशकाः स्मृता। ज्यो० वि० १।१८

१३ वेदाब्ध्यब्धयून: खरसाहतः शकोऽयनांशः। ग्रहलाघव २।२३

१४ दी डेट आफ कालिदास, पं० क्षेशचन्द्र चट्टोपाध्याय रचित, प्रयाग, १९२६।

१५ इस समाचारके लिये मैं अपने पूज्य भ्राता दैवज्ञ श्री पं० जगन्नाथजी पाठक, भदैनी, काशीका कृतज्ञ हूं।

१६ कलेर्गतैः सायकनेत्रवर्षैः (२५) सप्तर्षिवर्यास्त्रिदिवं प्रयाताः।
लोके हि संवत्सरपत्रिकायां सप्तर्षिमानं कथयन्ति सन्तः ॥ रा० त०

१७ इन्साइक्लोपिडिया ब्रिटैनिका, सायरस (Cyrus)

हिरोडोटसके अनुसार उसकी माताके पिताको स्वप्न हुआ था कि उसकी लड़कीका पुत्र एशियाका राजा होगा। उसने मिडियाके अन्तिम राजा Astyages (५८५-५५० वर्ष ईसा पूर्व तक) पर ५५० ई० पू०में चढ़ाई की और उसे युद्धभूमिमें हरा दिया। यद्यपि उसने उसकी राजधानीको अधिकारमें कर लिया तथा उसको सिंहासनसे भी उतार दिया, उसने अपने बन्दीके साथ दयाका बर्ताव किया. उसने इसी ५५० ई० पू० में अपना संवत् आरम्भ किया। एच० जी वेल्स साहब कहते हैं[१८]। पारसियों और मिडियोंका आन्तरिक युद्ध अन्ततः फ़ारसके सायरस द्वारा ५५० वर्ष ई० पू० अस्टगसके राज्यको हड़प जाने से समाप्त होगया। उस वर्ष सायरस एक ऐसे साम्राज्य पर शासन करता था जिसकी सीमा लिडियासे फारस और कदाचित् हिन्दुस्तानतक फैला हुआ था। तथा इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटानिकामें हमलोग पढ़ते हैं[१९] कि ५३८ ई० पू०के आरम्भसे सायरस अपने वर्षोंकी गणना 'बैबीलोनका राजा और देशोंका सम्राट' कह कर करता है। उसकी मृत्यु ५२८ ई० पू० हुई क्योंकि अडारसे बैबिलोनका शिलालेख सायरसके दशवें वर्षका मिला है अर्थात् फरवरी ५२८। क्योंकि बैबिलोन में सायरसका प्रथम वर्ष ५३८ ई० पू० के वसन्तमें आरम्भ हुआ, । सभी विद्वान् एकमत हैं कि फारसके इतिहासमें ५५० ई० पू० एक महान् घटनाका काल है। ५३८ ई० पू०का कोई भी महत्व ज्ञात नहीं होता। अतः शक संवत्का आरम्भ ईसासे ५५० ही वर्ष पूर्व होना चाहिये। इस शक संवत्का प्रयोग ईरान या फारसके किसी पुस्तकमें हुआ है या नहीं इस बातका मैं बहुत खोज करनेपर भी पता नहीं लगा सका। आशा है अरबी, फारसी, और जरथुष्ट्र शास्त्रके विद्वान् लोग इस बातके पता लगानेका ध्यान रक्खेंगे। तथा कृपा कर मुझे सूचित करेंगे। किन्तु शक संवत्का सायरस से सम्बन्ध[२०] निश्चित है।

सायरसका जन्म फारसके सासिया (शकद्वीप) नामक सूबेमें हुआ था अतः संवत्का नाम शककाल पड़ा। बादमें उसने भारतमें आक्रमण किया और अपने संवत्का प्रचार किया। इस सम्वत्का प्रचार विशेषतर उत्तर ही भारतमें हुआ। भारतीय ज्योतिर्विदोंने सरलताके लिये तथा फारस और अरबके ज्योतिर्विदोंसे घनिष्ट सम्बन्ध रखनेके लिये इसका प्रयोग किया।

यदि हमलोग २५२६ में ५५० जोड़ते हैं तो ३०७६ होता है। ठीक इसी ३०७६ ई० पू० लौकिक संवत्की नींव सप्तर्षिगणनाके लिये तथा युधिष्ठिरके नामस्मरणके लिये डाली गयी थी। युधिष्ठिरने कृष्णकी मृत्युका समाचार

18 "The internal struggle of the Medes and the Persians ended at last in the accession of Cyrus, the Persian, to the throne of Cyaxares in 550 B. C. In that year Cyrus was ruling over an empire that reached from the boundaries of Lydia to Persia andp erhaps to India" An Outline of World History by H. G. Wells, 1932 P. 302

19 "From the beginning of 538, Cyrus dates his years as' king of Babylon and of countries (i. e. of the world). His death occurred in 524 B. C. as we have a Babylonian tablet from the Adars of the tenth year of Cyrus i. e. February 528, for in Babylon the first year of Cyrus began in the spring of 538 B. C." Encyclopedia Britannica.

२० नेलसन इन्साइक्लोपीडिया भा० २ पृ० ३३४ और भाग ७ पृ० ४७६ और देखिये। सायरस दी ग्रेट एण्ड दी इण्डियन शक इरा। प्रोफेसर गुलशनराय लिखित, पञ्जाब युनिवरसिटी हिस्टोरिकल सोसायटी, भा० १ और २। १९३२ ई०।

सुनकर शीघ्रही राज त्याग दिया तथा घूमतेघूमते ३०७६ई० पू० में परमपदको प्राप्त हुए। यदि हमलोग ५५० से ४२७ घटावें तो सरलतया ही हमलोग ज्ञात कर सकते हैं कि वराहमिहिरका जन्म १२३ ई० पू० हुआ और ख्यात वराहमिहिर विक्रमादित्यका समकालीन तथा एक नवरत्न था। अतः शककालका आरम्भ ५५० ई० पू० ही मानना समीचीन होगा।

हसन [21] जिसने काश्मीरका इतिहास फारसीमें लिखा है, कहता है जैनुलाब्दीनने, जिसने १४२३ से १४७४ ई० तक काश्मीरमें राज्य किया, मुल्ला अहमद द्वारा जो उसका राजकवि था, राजतरंगिणीका अनुवाद फारसीमें करवाया था। यह अनुवाद कल्हण, क्षेमेन्द्र, वच्छूलाकर, पद्ममिहरके राजतरंगिणीपर और पण्डित रत्नाकरके रत्नाकरपुराणपर जो बहुत ही प्रामाणिक था, निर्धारित था। रत्नाकरपुराण और मुल्ला-अहमदके अनुवादका कहीं भी पता नहीं चलता। किन्तु हसन कहता है कि उसने ३५ नष्ट राजाओंका वर्णन मुल्लाहसनके अनुवादसे लिया है। कहा जाता है कि हसनने इस अनुवादकी एक प्रतिलिपि काश्मीरके रहनेवाले एक व्यक्तिसे रावलपिण्डीमें ली थी किन्तु एक नावमें काश्मीर जाते समय नाव डूब गयी। हसन बचाया गया। किन्तु पुस्तक गायब हो गयी। अतः इसके बाद उसने पुस्तक अवश्य ही स्मरणसे लिखा होगा।

काश्मीरके राजाओंका महाभारतमें कहीं पर जिक्र भी नहीं है। यद्यपि गोनन्द [22] का वर्णन जो कल्हणके अनुसार काश्मीरका प्रथम राजा है, स्कन्दकी सेनामें आया है। किन्तु कल्हण गोनन्दको कौरव और पाण्डवोंका समकालीन बनानेपर तुला हुआ है। वह कहता है [23] 'कलिमें कौरव और पाण्डवोंके समकालीन हुए गोनन्दके बाद ५२ राजागण स्मरण नहीं आते हैं।' कल्हण कहता [24] है, गोनन्द प्रथम बलरामके साथ मथुरामें लड़ा और उन्हींके हाथ मृत्युको प्राप्त हुआ। अतः दामोदर प्रथम कृष्णद्वारा काश्मीरकी गद्दीपर बैठाया गया। दामोदरके गोलोकवास करनेपर काश्मीर में बड़ा विप्लव हुआ और श्रीकृष्णजीको हस्तक्षेप कर उसकी रानी यशोवतीको गद्दीपर बिठलाना पड़ा और सभी लोगोंको खबरदार कर दिया कि काश्मीर प्रधानतः गौरी (स्त्रियोंका) राज्य है, इसमें हस्तक्षेप नहीं होना चाहिये। इस यशोवतीके बाद उसका पुत्र गोनन्द द्वितीय गद्दीपर बैठा किन्तु उस समय वह बहुत ही बालक था इसलिये कौरव और पाण्डवोंमें से किसीने भी उसकी सहायता महाभारत युद्धके लिये नहीं ली [25]।

हसनने गोनन्द प्रथमका गद्दीपर बैठना कलिके २० वर्ष पहले माना है किन्तु यह बात प्रामाणिक नहीं मानी जा सकती। राजतरंगिणीके अनुसार गोनन्द द्वितीय ही महाभारत युद्धका समकालीन था। अतः गोनन्द द्वितीय ही को महाभारत युद्ध (३१३७ ई० पू०)का समकालीन मानकर काश्मीरकी वंशावली बनानी चाहिये। हसनके अनुसार गोनन्द द्वितीयने ४० वर्ष ही राज्य किया किन्तु गोनन्द बालकपनहीमें गद्दीपर बैठा था अतः मैंने उसका राज्यकाल ७५ वर्ष माना है। हसन कहता है कि परीक्षितके द्वितीय पुत्र हार्णदेवने गोनन्द द्वितीय को मरवा डाला। हार्णदेव अपने बड़े भाई जनमेजय से गद्दीके लिये लड़ा था और हारकर जंगलमें भाग गया वहां एक साधुके आशीर्वादसे काश्मीरके राजा

२१ हिस्ट्री आफ काश्मीर पं० आनन्द कौल रचित, जरनल एसियाटिक सोसायटी बंगाल, १९१० पृ० १९५।

२२ प्रियकश्चैव नन्दश्च गोनन्दश्च प्रतापवान्। महाभारत शल्यपर्व ४०। ६५

२३ तत्र कौरव कौन्तेय सम कालभवान्कलौ।
आगोनन्दात्स्मरन्तिस्म न द्वापञ्चाशतं नृपान्॥ रा० त० १। ४४

२४ सहायकार्थमाहूतो जरासन्धेन बन्धुना।
स संरुरोध कंसारेर्मथुरां पृथुभिर्बलैः॥ रा० त० १। ५९

२५ इति काश्मीरको राजा वर्तमानः स शैशवे। सहायकाय समरे न निन्ये कुरुपाण्डवैः॥ रा० त० १। ८२

की सेनामें भरती होकर अपनी योग्यतासे धीरे-धीरे वह प्रधान मन्त्री बन गया और अन्तमें गोनन्द द्वितीय को मरवाकर स्वयं गद्दीपर बैठ गया। किन्तु हसनकी यह बात प्रामाणिक नहीं मानी जा सकती क्योंकि इसका कोई प्रमाण नहीं है कि हार्णदेव परीक्षितका पुत्र था। श्रीमद्भागवतके अनुसार परीक्षितको इरावदीसे चार पुत्र उत्पन्न हुए। शतपथ ब्राह्मण[२६]के अनुसार परीक्षितके चारपुत्र जनमेजय, भीमसेन, उग्रसेन, और श्रुतसेन हुए. कदाचित् पं० आनन्द कौलजी परीक्षितके पुत्रोंका नाम ज्ञात करना भूल गये। अतः उन्होंने भूल से हार्णदेवसे आरम्भ हुए वंशको पाण्डववंश कहा है।

वंशावली

सं०	नाम	भुक्तराजवर्ष सं०	ई.पू.से	ई.पू.तक
१	गोनन्द द्वितीय	७५	३१३७	३०६२
२	हार्णदेव	३०	३०६२	३०३२
३	रामदेव	६९	३०३२	२९६३
४	व्यासदेव	५६	२९६३	२९०७
५	द्रुण	५८	२९०७	२८४९
६	सिंहदेव	५४	२८४९	२७९२
७	गोपालदेव	१३-३मा.	२७९५	२७८१
८	विजयदेव	२५	२७८२	२७५७
९	सुखदेव	४४	२७५७	२७१३
१०	रामनन्द	५७	२७१३	२६५६
११	सन्धिमान्	६५	२६५६	२५९१
१२	महार्णदेव	५५	२५९१	२५३६
१३	कामन्ददेव			
१४	चन्द्रदेव	५२	२५३६	२४८४
१५	आनन्द	२८	२४८४	२४५६
१६	द्रुपददेव	५१	२४५६	२४०५
१७	हर्णामदेव	३९	२४०५	२३६६
१८	सुल्कन्ददेव	२८	२३६६	२३३८
१९	सिनादित्य (सेनादित्य)	१७	२३३८	२३२१
२०	मङ्गलादित्य	३९	२३२१	२२८२
२१	क्षेमेन्द्र	६६	२२८२	२२१६
२२	भीमसेन	६१-७मा.	२२१६	२१५४
२३	इन्द्रसेन	४६	२१५४	२१०८
२४	सुन्दरसेन[२७]	४१	२१०८	२०६७
२५	लव	६०	२०६७	२००७
२६	कुश	७	२००७	२०००
२७	खगेन्द्र	३०	२०००	१९७०
२८	सुरेन्द्र	४३	१९७०	१९२७
२९	गोधर	३७	१९२७	१८९०
३०	सुवर्ण	३५	१८९०	१८५५
३१	जनक	३२	१८५५	१८२३
३२	शुचिनार	४०	१८२३	१७८३
३३	गालवेन्द्र	४५	१७८३	१७३८
३४	बलदेव	४३	१७३८	१६९५
३५	नलसेन	२५	१६९५	१६७०
३६	गोकर्ण	३६	१६७०	१६३४
३७	प्रह्लाद	११	१६३४	१६३२
३८	बम्ब्रूभ्रुर	८	१६२३	१६१५
३९	प्रतापशील	३६	१६१५	१५७९
४०	संग्रामचन्द्र	१-४मा.	१५७९	१५७८

२६ अबध्नादश्वं सारगं जनमेजय इति। २। एतेऽएव पूर्वेऽहनि।

ज्योतिरतिरात्रस्तेन भीमसेनमेतेऽएव पूर्वेऽहनि गौरतिरात्रस्तेनोग्रसेनमेतेऽएव पूर्वेऽहनिऽआयुतिरात्रस्तेन श्रुतसेन-मित्येते पारिक्षितियास्तदेद्गाथयाभिगीतं पारिक्षिता यजमाना अश्वमेधैः परोऽवरमजहुः कर्मपापकं पुण्याः पुण्येन कर्मणा। ३। शतपथब्राह्मण १३। ५। ४ वेबरसम्पादित १८४९

२७ सुन्दरसेनके बाद २ महीने तक काश्मीरमें कोई भी राजा नहीं था। काश्मीरकी जनताने लवको, जो मालवाके शासकका सम्बन्धी और काश्मीरका जागीरदार था राजपदके लिये चुना। २ से २४ संख्यातकके २३ राजा ३५ नष्ट हुये राजाओंमेंसे हैं। कल्हणके अनुसार ये ३५ नष्ट राजे गोनन्द द्वितीय और लवके मध्यमें हैं। किन्तु हसनके अनुसार जिसने रत्नाकरके प्रमाणपर लिखा है, ऐसा नहीं है। सुन्दरसेनके बाद लव इत्यादि ७ राजाओंने राज्य किया उसके बाद शेष १२ राजाओंने काश्मीरपर राज्य किया।

४१ लडिकचन्द्र	३१	१५७८	१५४७	५१ अभिमन्यु[३३]	३०	१२८६	१२५६
४२ वीरसचन्द्र	४५	१५४७	१५०२	५२ गोनन्दतृतीय[३४]	३५	१२५६	१२२१
४३ ववीचन (विभीषण)	१७	१५०२	१४८५	(या गोनर्द)			
४४ भगवन्त[२८]	१४	१४८५	१४७१				
४५ अशोक[२९]	३६[३०]	१४७१	१४३५	५३ विभीषण[३५]	५३–६मा.	१२२१	११६८
४६ जलौक	२२	१४३५	१४१३	५४ इन्द्रजित्[३६]	३५–६मा.	११६८	११३२
४७ दामोदर[३१]	१५	१४१३	१३९८	५५ रावण	३०	११३२	११०२
४८ कुष्क	२८	१३९८	१३७०	५६ विभीषण[३७]	३५–६मा.	११०२	१०६४
४९ जुष्क	३४	१३७०	१३३६	५७ किन्नर[३८]	४०–९मा.	१०६४	१०२४
५० कनिष्क[३२]	५०	१३३६	१२८६	५८ सिद्ध[३९]	६०	१०२४	९६४

२८ ३३ से ४४ संख्या तकके १२ राजा ३५ नष्ट राजाओंमें हैं। अतः २३ + १२ = ३५ नष्ट राजाओंके राज्य काल का पता लग जाता है। कल्हणके अनुसार नष्ट राजाओंका राज्यकाल १२६६ वर्ष है यथा वर्षाणां द्वादशशती षष्टिः षड्भिश्च संयुता। किन्तु कल्हणके अनुसार इन ३५ राजाओंका राज्यकाल १३०७ वर्ष है। २ से ४४ संख्या तक राजाओंका वर्षकाल पण्डित आनन्दकौलके लेखसे लिया है जैसा कि उन्होंने हसनके काश्मीरके फारसी इतिहासके आधारपर लिखा है।

२९ अशोकसे अभिमन्युतकके राजाओंकी वर्ष संख्या दी एन्सियन्ट हिस्ट्री आफ इण्डिया आर्यसोमायजूलु सोमायजूलु रचित विजगापट्टम् १९३५ से ली गयी है।

३० मगधकी वंशावलीसे अशोकका ३६ ही वर्ष राज्य करना ज्ञात होता है। मैंने मगधकी वंशावली तैयार की है वह शीघ्र प्रकाशित होगी।

३१ दामोदर दूसरे वंशका था। यथा—
अशोककुलोत्पन्नो यद्वान्याभिजनोद्भवः। भूमिंदामोदरो नाम जुगोपजगतीपतिः। रा० त० १। १५३

३२ हुष्क जुष्क कनिष्काख्यास्त्रयस्तत्रपार्थिवाः। रा० त० १। १६८

३३ बभूवाभिमन्युः शतमन्युरिवापरः रा० त० १। १७४

३४ राजा तृतीय गोनर्दः प्राप्तराज्यस्तदनन्तरे। रा० त० १। १८५
नृपतिः काश्यपीं वर्षान् पञ्चविंशतिमन्वशात्। रा० त० १। १९१

३५ वर्षषष्टिं षण्मासैः षड्भिर्वर्षैर्विवर्जितां।
विभिषणाभिधोऽरक्षत् क्षितिं गोनर्दनन्दनः॥ रा० त० १।१९२

३६ इन्द्रजिद्रावणावास्तां पितापुत्रौ नृपौ क्रमात्।
पञ्चत्रिंशत्सहार्द्धञ्च वर्षा त्रिंशद्यायोर्ययुः॥ रा० त० १। १९३

३७ पञ्चत्रिंशदब्दानां क्ष्मां बुभोज महाभुजः।
रावणक्षौणिभृत्सूनुः सार्द्धमन्यो विभीषणः॥ रा० त० १। १९६

३८ किन्नरापरनामाथ किन्नरैर्गीतविक्रमः।
विभीषणस्य पुत्रोऽभून्नरनामा नराधिपः॥ रा० त० १। १९७
चत्वारिंशतमब्दान् स मासैश्चोनां त्रिभिः समाम्॥ रा० त० १। २७४

३९ राजा सिद्धाभिधः सोऽथ रा० त० १। २७७
षष्टिमब्दान् प्रशास्योर्वीम्। रा० त० १। २८३

५९ उत्पलाक्ष[४०]	३०–६मा.	९६४	९३३	६७ नर[४७]	६०	५८१	५२१
६० हिरण्याक्ष[४१]	३७–७मा.	९३३	८९६	६८ अक्ष	६०	५२१	४६१
६१ हिरण्यकुल[४२]	६०	८९६	८३६	६९ गोपादित्यः[४८]	६०–०–६दि	४६१	४०१
६२ मुकुल	६०	८३६	७७६	७० गोकर्ण[४९]	५७-११-०	४०१	३४३
६३ मिहिरकुल[४३]	७०	७७६	७०६	७१ नरेन्द्रादित्य[५०]	३६-३-१०	३४३	३०७
६४ बक[४४]	६३-०-१३दि	७०६	६६३	७२ अन्ध युधिष्ठिर[५१]	३४	३०७	२७३
६५ क्षितिनन्दन[४५]	३०–	६६३	६३३				
६६ वसुनन्द[४६]	५२–२–०	६३३	५८१	कुल २८६३-१०-२९, ३१३७ ई. पूर्वसे २७३ ई. पूर्वतक			

प्रथम तरङ्ग समाप्त ।

---

४० उत्पलाक्ष इति ख्यातिं पेशलाक्षतया गतः ।
तत्सूनुस्त्रिंशतं सार्द्धान् वर्षाणामन्वशान्महीम् ॥ रा० त० १।२८८

४१ तस्य सूनुर्हिरण्याक्षः स्वनामाङ्कं पुरं व्यधात् ।
क्ष्मां सप्तत्रिंशतं वर्षान् सप्तमासांश्च भुक्तवान् ॥ रा० १।२८९

४२ हिरणकुल इत्यस्य हिरण्याक्षस्य चात्मजः ।
षष्टिं षष्टिं च मुकुलस्तत्सूनुरभवत् समाः ॥ १।२९०

४३ तस्यात्मजोऽभून्मिहिरकुलः कालोपमः नृपः । रा० त० १।२९१
स वर्ष सप्ततिं भुक्त्वा भुवं भूलोकभैरवः । रा० त० १।३१४

४४ स वकेशं वकः श्वभ्रे बकवत्पापगां तथा ।
कृत्वापुरं परार्ध्यश्रीर्लवणो साभिधं व्यधात् ॥ रा० त० १ । ३३४
तत्र त्रिषष्टिवर्षाणां स त्रयोदशवासरान् । रा० त० १ । ३३५

४५ देव्या कुलतरोः कन्दः क्षितिनन्दोऽवशेषितः ।
ततस्तस्य सुतस्त्रिंशद्वत्सरानन्वशान्महीम् ॥ रा० त० १ । ३४१

४६ द्वापञ्चाशतमब्दान् क्ष्मां द्वौ च मासौ तदात्मजः ।
अपासीद् वसुनन्दाख्यः प्रख्यातस्मरशास्त्रकृत् ॥ रा० त० १ । ३४२

४७ नरः षष्टिं तस्य सूनुस्तावतोऽक्षश्च तत्सुतः । रा० त० १ । ३४३

४८ जुगोप गोपादित्योऽथ क्ष्मां सद्वीपां तदात्मजः । रा० त० १ । ३५४
स षड्दिनां वर्षषष्टिं पालयित्वा स मेदिनीम् । रा० त० १ । ३५०

४९ गोकर्णस्तत्सुतः क्षौणीं गोकर्णेश्वरकृद्ददे ।
अष्टपञ्चाशतं वर्षांस्त्रिंशत्यह्नां विवर्जितान् ॥ रा० त० १ । ३५१

५० सूनुर्नरेन्द्रादित्योऽस्य खिङ्खिलान्यभिधोऽभवत् । रा० त० १ । ३५२
भूत्वा षट्त्रिंशतं वर्षान् शतं चाह्नां विभुर्भुवः ॥ रा० त० १ । ३५४

५१ देखिये राजतरङ्गिणीसंग्रह सं० १८८०
अन्धो युधिष्ठिरस्तस्य पुत्रो गोत्रभिदः समः (व ३४)

द्वितीय तरंग

१ प्रतापादित्य[५२]	३२	२७३	२४१
२ जलौक	३२	२४१	२०९
३ तुञ्जीन[५३]	३६	२०९	१७३
४ विजय[५४]	८	१७३	१६५
५ जयेन्द्र[५५]	३७	१६५	१२९
६ संधिमान[५६]	४७	१२९	८१

कुल १९२ वर्ष २७३ई पू से ८१ई पू तक

तृतीय तरङ्ग

१ मेघवाहन[५७]	३४	८१	४७
२ प्रवरसेन प्रथम[५८]	३०	४७	१७
३ तोरमाण या हिरण्य[५९]	३०-२मा.	१७ई. पू से	१३ई सन् तक
४ विक्रमादित्य[६०]	३६	१३ई. सन	४९ई सन् तक
५ मातृगुप्त[६१]	४-९मा.	४९	५४
६ प्रवरसेन द्वितीय[६२]	६०	५४	११४
७ युधिष्ठिर द्वितीय[६३]	३९	११४	१५३
८ नरेन्द्रादित्य[६४]	१३	१५३	१६६

५२ भुक्त्वा द्वात्रिंशतं वर्षान् भुवं तस्मिन्दिवं गते ।
जलौकस्तत्सुतो भमेर्भूषणं समपद्यत ॥ रा० त० २ । ९
पितुरेव समं कालं वृद्धिहेतोः स दिद्युते । रा० त० २ । १०

५३ वर्षैः षट्त्रिंशता शान्ते पत्यौ विरहजो ज्वरः । रा० त० २ । ५७

५४ ततोऽन्यकुलजो राजा विजयोऽष्टावभूत् समाः । रा० त० २ । ६४

५५ जयेन्द्रस्तत्सुतोऽपुत्रः साम्राज्यावसानदृक् (व० ३७) राजतरङ्गिणीसंग्रह

५६ तन्मन्त्री सन्धिमानाख्यैराजोऽभूद्धृतजीवितः (व० ४७)

५७ श्री मेघवाहनोऽमात्यैर्गन्धारदेशजः कृतः । स्वामी राज्यस्य सर्वत्र प्राणिहिंसाबहिष्कृतः (२३४)

५८ ततः प्रवरसेनोऽभूत् पार्थिवो दिग्जयी कलौ (व० ३०)

५९ तत्सूनुश्च हिरण्योऽभून् पालयन् भूमिमण्डलं ।
अपुत्रोऽगात् क्षयं सोऽथ मितपुण्यतया कलौ (व ३० । मा २) राजतरंगिणी संग्रह ।

६० विक्रमादित्यके विषयमें मेरा लेख देखिये । विक्रमादित्य एण्ड हिज एरा, डेलीहेरालड, लाहौर, २२ एप्रिल १९३६ विक्रमादित्य अनेकों हुये हैं इसके विषयमें मेरा लेख विक्रमादित्य शीर्षक, सरस्वती, प्रयाग, फरवरी १९३३ देखिये । हस्तिनापुरकी वंशावलीसे जिसको मैंने तैयारकी है ज्ञात होता है कि विक्रमादित्य की मृत्यु ५४ ई० सन्में हुई । तोरमाणके अपुत्र मरजानेके कारण काश्मीरमें विप्लव हुआ इसे विक्रमादित्यने शान्त किया तथा काश्मीर पर अपना अधिकार भी जमा लिया । इसके बाद उसने मातृगुप्तको राजसिंहासन पर बैठाया । यथा
दत्तराज्यस्तेन शकारिणा । विक्रमादित्यके जीते जी किसीकी भी हिम्मत न पड़ी कि उसके नियुक्त राजसिंहासनारुढ़ मातृगुप्तके अधिकारमें बाधा डाले । किन्तु विक्रमादित्यके कालग्रस्त होते ही प्रवरसेन द्वितीयने आक्रमण किया । मातृगुप्तने भयके कारण तथा अपने संरक्षक स्वामी विक्रमादित्यकी मृत्युसे निराश होकर संन्यास धारण कर लिया । मातृगुप्त और कालिदासके एक होनेके लिये देखो । जरनल बाम्बे ब्राञ्च राय एसियाटिक सोसायटी १८६१, डा० भाऊदाजीका लेख । (मातृ = काली) और (गुप्त = दास) ।

६१ मातृगुप्तोऽभवत् (व ४ मास ९)

६२ दिगन्तं तद्भयाद्याते मातृगुप्तेऽथभूपतौ
राज्यं चकार काश्मीरमण्डले प्रवरस्ततः । (व ६०) राजतरंगिणी संग्रह

६३ सूनुस्तस्य महाराजो द्वितीयोऽथयुधिष्ठिरः (व० ३९)

६४ द्यां त्रयोदशभिर्वर्षैरारुरोह महाभुजः । रा० त० ३।३८७

९ रणादित्य[६५]	३३७	१६६	५०३
१० विक्रमादित्य[६६]	४२	५०३	५४५
११ बालादित्य[६७]	३७	५४५	५८१
	६६२—११ ८१ई.पू.से५८२ई सन्तक		
चतुर्थ तरङ्ग			
१ दुर्लभवर्द्धन[६८]	३६	५८२	६१८
२ दुर्लभक[६९]	५०	६१८	६६८
३ चन्द्रापीड[७०]	८—८	६६८	६७७
४ तारापीड[७१]	४—०—२४	६७७	६८१
५ ललितादित्य द्वितीय[७२] या मुक्तापीड	२६-७-११	६८१	७०८
६ कुवलयापीड[७३]	१—०—१५	७०८	७०९
७ वज्रादित्य[७४] द्वितीय	७—०—०	७०९	७१६
८ पृथिव्यापीड[७५]	४—१—७	७१६	७२०
९ संग्रामापीड[७६]	१४—०—०	७२०	७३४
१० जयापीड[७७]	३१	७३४	७६५
११ जज्जः[७८]	३	७६५	७६८
१२ ललितापीड[७९]	१२	७६८	७८०

६५ रणादित्यका राजकाल ३०० वर्ष लिखा है। किन्तु गोल संख्यामें सर्वदा सन्देहास्पद होती हैं यह ३०० वर्ष राज्य करना योगबलके कारण लिखा है। किन्तु इतिहास पण्डित इसे स्वीकार करनेके लिये प्रस्तुत नहीं है। दुर्लभवर्द्धनका काल निश्चित है क्योंकि वह हर्षवर्द्धनका समकालीन था। इस बातको ध्यानमें रखकर वंशावली तैयार की है। गोल संख्या घटाने या बढ़ानेमें विद्वानोंको कोई आपत्ति नहीं है। अतः मैंने उसका राज्यकाल ३३७ वर्ष माना है। बहुतेरोने इस मध्यमें गणराज्यका संभव माना है।

६६ तत्पुत्रो विक्रमादित्यो (व ४२)

६७ बालादित्यस्तदङ्गजः (व ३७)

६८ अन्यवंशोद्भवो देशं राजा दुर्लभवर्द्धनः। (व ३६) रा० त० सं०

६९ वर्षान् पञ्चाशतं भुक्त्वा भुवं दुर्लभभूपतिः। रा० त० ४।४४

७० चन्द्रापीडाभिधस्तस्य सूनुः कृतनृपोपमः।
यो दृष्टप्रायदोराज्ञो भूमिपालशिखामणिः (व ८ मा ८) रा० त० सं०

७१ तारापीडोऽभवत्तस्य सोदरो दुर्मतिस्ततः (व ४ दि २४) रा० त० सं०

७२ द्वितीयो ललितादित्यो भ्रातास्य पृथिवीपतिः।
यज्ञाज्ञानां शतं यातं त्रिदिवं पुण्यकर्मभिः। (व २६ मा ७ दि ११) रा० त० सं०

७३ राजा कुवलयापीडः पुत्रोऽस्य भाग्यवान् कलौ।
जीवन्मुक्तिपदं मातः श्रीपर्वतवनादिषु। (व १ दि १५) रा० त० सं०

७४ वज्रादित्यो द्वितीयोऽपि पुत्रो राज्यपदे स्थितः।
सप्ताब्दान् वसुधां भुक्त्वा जगाम त्रिदिवं ततः। रा० त० सं०

७५ पृथिव्यापीडसंग्रामपीडावास्तां महीभुजौ (व० ४ मा १ दि ७) रा० त० सं०

७६ इस चतुर्थ तरंगके १७ राजाओंका वर्षकाल वर्ष २६० मा ५ दि २० है किन्तु जोड़नेसे २४६ वर्ष मास २० ही दिन आते है। अतः मैने १४ वर्ष संग्रामपीड़के राज्यकालके लिये माना है क्योंकि इससे वंशावली ठीक बैठती है।

७७ जयापीडोऽथ भूपालः समुद्रत्रयपालकः (व ३१) रा० त० सं०

७८ काश्मीरमण्ले जजस्तत्श्यालो भूपतिस्त्विह (व ३)

७९ ललीतापीडसंग्रामापीडावन्यौ च पार्थिवौ (व १२)

१३ संग्रामापीड[८०]	७	७८०	७८७
१४ चिप्पटजयापीड[८१]	१२	७८७	७९९
१५ अजीतापीड[८२]	२६	७९९	८२५
१६ अनङ्गापीड[८३]	३	८२५	८२८
१७ उत्पलापीड[८४]	१५	८२८	८४६

पञ्चम तरङ्ग

१ अवन्तिवर्मा[८५]	२७	८४३	८७०
२ शंकरवर्मा[८६]	१८	८७०	८८८
३ गोपालवर्मा[८७]	२	८८८	८९०
४ संकट[८८]	०—०—२०	८९०	८९०
५ सुगन्धा[८९]	२	८९०	८९२
६ निर्जितवर्मा[९०]	८	८९२	९००
७ पाथ[९१]	१५	९००	९१५
८ चक्रवर्मा[९२]	१४	९१५	९२९
९ शंकरवर्द्धन[९३]	२	९२९	९३१
१० शूरवर्मा[९४]	१	९३१	९३२
११ उन्मत्तावन्ति[९५]	२	९३२	९३४

कुल ९१-०-२० ८४३ई से ९३४ई सन् तक

षष्ठतरङ्ग

१ यशस्करदेव[९६]	९	९३४	९४३
२ वर्णाट[९७]	०—०—६	९४३	९४३
३ संग्रामदेव[९८]	०—६—०	९४३	९४४

८० समाप्तिं सप्तभिर्वर्षैः साम्राज्यस्य समासदत् । रा० त० ४।४७९

८१ भुक्तक्षितौ द्वादशाब्दांस्तस्मिन् व्यापादिते तथा । रा० त० ४।४९१

८२ भ्रातुः पुत्रोऽजितापीडो जयापीडसुतात्मजः (व २६) रा० त० सं०

८३ अनंगपीडनामाथ सङ्ग्रामपीडजस्ततः (३) „

८४ श्रीमदुत्पलपीडश्च राजा काश्मीर मण्डले (व १५) „

८५ इस तरंगकी तथा अगले तरंगकी वंशावली भीमगुप्तका राज्यकाल निश्चित मानकर तैयार किया गया है । अवन्तिवर्मा साम्राज्यं प्राप्य पातितकण्टकः (व २७)

८६ काश्मीरमण्डलं रम्यं, भुक्तं शङ्करवर्मणा (व १८) रा० त० सं०

८७ गोपालवर्मा पृथिवीं पालयन् (व २) ।

८८ सङ्कटस्तथा (दि २०) रा० त० सं०

८९ राज्ञी सुगन्धा काश्मीरसाम्राज्यपदमाश्रिता (व ७) रा० त० सं०

९० पङ्गुर्निर्जितवर्माथ (व ८) ।

९१ तत्पुत्रः पाथ एव च (व १५) रा० त० सं०

९२ चक्रवर्मा ततो भूपः (व १४) ।

९३ चक्रवर्माके बाद शङ्करवर्द्धन बलात् गद्दीपर बैठा किन्तु पुनः चक्रवर्मा गद्दीपर आ गया उसका उक्तवर्ष एक ही स्थानपर दिया गया है । रा० त० सं० के अन्तमें राजओंकी संख्या ११ तथा भुक्त वर्ष ८३ मा ४ दिया है । किन्तु दिये हुये भुक्तकालोंके गगनासे ९९ वर्ष—२० दिन आता है । वंशावली ठीक करनेके लिये मैंने शङ्करवर्द्धनका २ वर्ष माना है

९४ शूरवर्मा ततः परं (व १)

९५ उन्मत्तावन्तिनामाथ पाथसूनुर्दुराशयः (व २)

९६ श्रीयशस्करदेवस्य राज्यमासीत् कलौयुगे (व ९) रा० त० सं०

९७ वर्णाऽस्य ततो राज्यं स्वप्नतुल्यमभूद्युगे (दि ६) „

९८ ततो वक्रांघ्रिसंग्रामदेवस्यासीच्छ्रियः पदं (मा ६) „

४ पर्वगुप्त[९९]	१–४–०	९४४	९४५
५ क्षेमगुप्त[१००]	८–६–०	९४५	९५३
६ अभिमन्युगुप्त[१०१]	१३-१०-०	९५३	९६७
७ नन्दगुप्त[१०२]	१–१–०	९६७	९६८
८ त्रिभुवनगुप्त[१०३]	४–०–०	९६८	९७२
९ भीमगुप्त[१०४]	५–०–०	९७२	९७७
१० दिद्दा[१०५]	२३–०–०	९७७	१०००
	कुल ६६–३–६	९३४	१०००

सप्तमतरङ्ग

१ संग्रामदेव[१०६]	२४	१०००	१०२४
२ हरिराज[१०७]	५२	१०२४	१०७६
३ अनन्तदेव	०–४–७	१०७६	१०७६
४ कलितपौरुष[१०८]	८–१–०	१०७६	१०८४ई. सन् तक
५ उत्कर्ष[१०९] ६ हर्ष	०–०–२३	१०८४	१०८४
	कुल ९४–६–०	१०००	१०८४

अष्टमतरङ्ग

१ उच्चल[११०]	१०–४–२	१०८४	१०९४
२ शङ्खराज[१११]	मध्याह्न	१०९४	१०९४
३ सल्ल[११२]	०–१ २७	१०९४	१०९४
४ सुस्सल[११३]	१६–०–०	१०९४	१११०
५ भिक्षाचर[११४]	०–६–०	१११०	१११०
६ सुस्सल[११५]	पुनः सिंहासनारूढ़	१११०	११२६
	कुल २६–११–२९		

९९ ततः श्रीपर्वगुप्तस्य (व १ मा ४)

१०० क्षेमगुप्तस्य च प्रभोः (व ८ मा ६)

१०१ राज्ञोऽभिमन्युगुप्तस्य राज्यं शुभकरं तदा (व १३ मा १०) रा० त० सं०

१०२ ततः श्रीनन्दगुप्तस्य काश्मीरान्शासतः सतः (व १ मा १)

१०३ गुप्त त्रिभुवनाख्यस्य (व ४) रा त० सं०

१०४ भीमगुप्तस्य चाथ वा (व ५) रा० त० सं० । भीमगुप्तके कालके विषयोंमें वसुमुनिगगनोदधिसमकाले (४०७८) याते कलेस्तथा लोके । द्वापञ्चाशेवर्षे रचितेयं भीमगुप्तनृपे ॥ देवीशतक टीकाकी पुष्पिका, जरनल रायल एसियाटिक सोसाइटी १९११ । ४०७८–३१०१ = ९७७ ई० सन तथा ९७७ – २५ = $\frac{९५२}{१००}$ = ५२लौकिकाब्द ।

१०५ राज्यसंपच्छुभाचाराद्दिद्दायास्तदनन्तरं (व २३) । रा० त० स० पुस्तकमें कालयोग ६४ वर्ष २३ दिन है ।

१०६ राज्ये संग्रामदेवोऽथ भ्रातृजोऽन्ते नृपः कृतः । (२४)
राज्ञ्या तथा बुद्धिबलात् कश्मीरेषु कलौ पुरा । रा० त० सं०

१०७ हरिराजानन्तदेवावास्तां तस्यात्मजौ ततः (व ५२) (मा ४ दि ७) रा० त० सं०

१०८ राजा भूमेः सुखानन्दकरः कलितपौरुषः (व ८ मा १) रा० त० सं०

१०९ उत्कर्षहर्षनामानौ तत्सुतौ पार्थिवौ ततः (दि २३) रा० त० सं० इस तरङ्गके ६ राजाओंका काल ८९ वर्ष ३ दिन लिखा है किन्तु युक्तकाल संख्या गगनसे ८४ वर्ष ६ मास ही आता है ।

११० मल्लाभिधानादुद्भतः पृथिवीमुच्चलोऽभजत् (व १० मास ४ दि ७) रा० त० सं०

१११ शङ्खराजान्यनामाभूत् रड्डाख्यः क्षणिको नृपः । मध्याह्न तावत् ।

११२ गर्गेन निहते तस्मिन् सल्लो द्वै मातुरोऽभवत् (मा १ दि २७)

११३ सुस्सलाख्योऽग्रहीद्राज्यं मालिनश्चलसोदरः (व १६)

११४ षण्मासान् हर्षदेवस्य नप्ता भिक्षाचराभिधः (मा ६)

११५ पुनर्निर्व्वास्य तं प्राप्तराज्ये सुस्सलभूभुजि । इस तरङ्गके पांच राजाओंका काल ४७ वर्ष दिया है । किन्तु गणनासे २६ वर्ष ११ मास २९ हीं दिन आते हैं । कदाचित् सुस्सलने पुनः सिंहासनारूढ़ होनेके बाद शान्तिपूर्वक

७ जयसिंह[११६] २२ ११२६ ११४८

कुल ४८ वर्ष १०८४ ई० से ११४८ ई० तक

महामात्य चण्यकके पुत्र कल्हणकी राजतरंगिणी ११४८ ई० सनमें या १०७० शाकेमें समाप्त हुई, जैसा कि निम्नलिखित श्लोकसे प्रकट है।

लौकिकाब्दे चतुर्विंशे शककालस्य साम्प्रतम्।
सप्तत्यधिकं यातं सहस्रं परिवत्सराः॥

रा० १—५२

आशा है पाठकगण पढ़कर अपनी सम्मति तथा समालोचनासे कृतार्थ करेंगे।

सरस्वतीभवन, काशी
६—९—३६

देवसहाय त्रिवेद बी० ए०
साधोलाल रिसर्चस्कालर

अस्थि विज्ञानका आचार्य मीरू खलीफ़ा
भारतमें पल्लेदारी कर रहा है !!!

["प्रभाकर"]

परीक्षाके कुल १९ दिन थे। विद्यार्थी और अध्यापक पढ़ने और पढ़ानेमें अपनी पूरी शक्ति लगारहे थे। रात दिन बन गयी थी। परीक्षा-परिणामको बढ़िया बनानेकी धुन थी और प्रथम श्रेणीका भूत सिरपर सवार था। प्रिय आत्मारामके प्रथम श्रेणीमें पास होनेकी पूरी उम्मीद थी, पर इसी समय फुटबालकी दुर्घटनासे बायें हाथकी दो हड्डियां टूट गयीं, वह तो तड़फाही, पर मेरी आंखोंमें भी अँधेरा छागया।

मीरू खलीफ़ाको बुलाकर मैंने कहा—' इम्तहानके कुल १९ दिन हैं, इसलिये आप यह हाथ ९ दिनमें अच्छा कर दें। उन्होंने स्वीकार कर लिया। नवें दिन पट्टी खुली, हाथ जुड़ गया था बिलकुल ठीक, पर खलीफ़ाने हिदायत की कि हड्डी अभी कमज़ोर है, जरा भी झटका लग गया तो खराब हो जायगी। वाकई हड्डी झटका खागयी और हाथ तिरछा पड़ गया, उसमें मीठा मीठा दर्द भी रहने लगा।

परीक्षाके लिये जब मैं बाहर गया, तो वहां मैंने अपने डिवीजनके एक सर्वश्रेष्ठ डाक्टरको वह हाथ दिखाया। १५-२० मिनट गौरसे देखनेपर बोले—"पंडितजी! हड्डी तिरछी जुड़ गयी है। किसने बाँधा था यह हाथ?" "मीरू खलीफा ने!"

"आपके यहां हस्पीटलके आजकल ये ही इंचार्ज हैं क्या? असिस्टेन्ट सर्जनोंका यह हाल है!" डाक्टर साहबने कहा।

"नहीं डाक्टर साहब! ये डाक्टर नहीं हैं।"

"तो फिर एक डाक्टरके रहते आपने किसी वैद्यसे हाथ क्यों बंधवा दिया।"

"डाक्टरसाहब! वह वैद्य या हकीम भी नहीं है।"

' तो फिर क्या है वह!" डाक्टरसाहबने बेचैनीसे पूछा।

मैंने सकुचाते हुए कहा—' वह तो एक पल्लेदार है

राज्य किया। कल्हणके अनुसार ११४८ ई० में जयसिंहको राज्य करते हुए २२ वर्ष बीत चुके थे, किन्तु जोन राज नृपावलिसे ज्ञात होता है कि जयसिंहने २२ ही वर्ष राज्य किया। अतः यह सर्वथा निश्चित है कि जयसिंह ११२६ हीमें सिंहासनारूढ़ हुए। इस कारण सुस्सलका पुनः कदाचित् १६ वर्ष राज्य करना मानना पड़ेगा।

११६ ततः श्रीजयसिंहोऽभूद्द्वितीयं भूमिभूषणम्।
सुस्सलस्यात्मजः सर्व्वलोकानन्दकरः सुधीः। व २२ रा० त० संग्रह

इस लेखमें टिप्पनीका अंश राजतरङ्गिणी कलकत्ता बैप्टिस्ट मिशन प्रेस १७५७ शकाब्दसे लिया गया है।

डाक्टरसाहब, पर वह इस काममें बहुत होशियार माना जाता है।"

"डाक्टर साहब झुंझला उटे—"माफ़ कीजिये पण्डितजी! आप पढ़े लिखे मूर्ख निकले !"

मुझे बुरा तो लगा, पर बात सच थी, इसलिये पी गया।

मैंने कहा— 'डाक्टर साहब ! जो हो गया सो तो हो ही गया, पर यह तो बताइये कि इस हाथका क्या होगा ?"

बोले—' हाथ अब सीधा तो हो हीं नहीं सकता। "हाँ, दर्द जाता रहेगा, आपने इस लड़केकी जिन्दगी खराब करदी !"

देवबन्द लौटकर मैंने खलीफाजीको बुलाया और जो कुछ कहा गया कहा। बड़ी शान्तिके शाथ वे बोले— 'गालियां तो आपने बहुत दे लीं, अब यह तो बताइये कि आखिर हुआ क्या ?"

मैंने डाक्टर साहबकी पूरी बातचीत उन्हें सुनायी। बोले—'पण्डितजी ! इन डाक्टरोंको हड्डीका क्या पता कि किसे कहते हैं। ये तो पूरे उल्लू होते हैं। कुनैनकी बात जानते हैं।"

मैंने उत्सुकतासे पूछा—तो क्या यह हाथ ठीक हो जायेगा ?

'पण्डितजी ! अगर यह हाथ अच्छा न हुआ तो आज से पट्टी बांधना छोड़ दूंगा ! वैसे हाथमें सब कुछ खुदाके हैं, मेरी तो मेहनत ही है।"

मैंने मनोवैज्ञानिक अध्ययनकी भावनासे उसके चेहरेको ओर देखा। एक अपूर्व आत्मविश्वास वहां बिखर रहा था। जयद्रथके बधकी प्रतिज्ञा करते समयके अर्जुनके चेहरेकी मुझे याद हो आयी !

तीन दिन एक पुल्टिस बांधनेके बाद खलीफाने फिर हाथ बांधा और २० दिन बाद जब खोला तो वह बिलकुल ठीक था। यहांतक कि आत्माराम पानी खींच सकता था और पंजा लड़ा सकता था।

मैंने डाक्टर साहबको इसकी सूचना दी और उनके लिखनेपर उक्त विद्यार्थीको उनके पास भेजा। एक घंटेतक उस हड्डीको देखनेके बाद बोले—हाथ तो वाकई बिलकुल ठीक हो गया है, पर कैसे होगया यह समझमें नहीं आता !"

डाक्टरसाहबका चेहरा उस समय देखने लायक था।

एक उदाहरण बस और !

हिन्दुस्तानके एक पुलिस सुपरिन्टेन्डेण्टका लड़का इंगलैण्डसे चला, पर जहाज़पर चढ़ते समय गिरजानेसे उसका हाथ टूट गया। जहाजमें और यहां बहुतसे डाक्टरोंका इलाज हुआ, पर दर्द न गया। एक रईसने उन्हें मीरू खलीफाका परिचय दिया। साहबके कहनेपर वे उन्हें ले गये। पुराने ढंगका सिरपर साफ़ा, लम्बा और मैला कुरता, कन्धेपर अंगोछा और साधारण जूता ! खलीफाका यह रूप देखकर साहब भड़क उठा। बोला—' मैं अपने प्यारे लड़के के हाथको ऐसे ऐसे अनाड़ियोंकी प्रयोगशाला (लेबोरेटरी) बनानेको तैयार नहीं हूं।

साहबके हाव-भावसे अंगरेज़ीका एक भी अक्षर न जाननेवाले मीरू ख़लीफ़ाने समझ लिया कि साहब मुझे हाथ दिखाते घबरा रहा है। अपनी देहाती भाषामें आप बोले-'अरे साहब ! तू जरा मुझे अपणा लौण्डा दिखा तो"

"नहीं-नहीं, टुम हमारा लरकाका हाठ खराब कड् डेगा। टुम डाक्टर नहीं हय् !"

' अरे फिर तू तो पुलसका साहब है। हाथ ख़राब हो जायगा तो तू मुझे फांसी दिवा दिये।"

बहुत अनुरोध पर उनका इलाज शुरू हुआ और १७ दिनमें लड़का टेनिस खेलने लगा।

मीरू ख़लीफाकी जन्मभूमि देवबन्द (सहारनपुर) है और उनकी उम्र इससमय करीब ५० साल है। वे साधारण स्थितिके आदमी हैं, अनाज तौलना, बाग़ोंकी फसल ख़रीद-बेचना आदि मेहनतके काम उनकी जीविकाके साधन हैं। उनका स्वभाव बड़ा दयालु है और वे सदा प्रसन्न रहते हैं। वे किसी भी काममें लगेहों, ख़बर मिलते ही तुरन्त देखने चले जाते हैं, हालांकि ऐसा करनेसे कभी कभी उनका काफ़ी नुक़सान हो जाता है। मुझे पता है कि कई बार उन्होंने भोजनपरसे उठकर, रोते बच्चोंके हाथ बांधे हैं। उनका घर पूरा धन्वन्तरी भवन है और वे पीयूषपाणि हैं। लोग उनके घर रोते आते हैं और हँसते लौट जाते हैं।

लोभसे वे लाखों कोस दूर हैं। न उनमें डाक्टरोंकी शान है और न वैद्योंका बड़प्पन। न उनकी फ़ीस है और

न कम्पाउण्डर । जो कोई राज़ीसे भेंट करदे, ले लेते हैं, सामर्थ्य न हो या होते हुए भी न दे, तबभी कोई बात नहीं । अमीरका काम बादमें करते हैं और ग़रीब का पहले।

अपनी विद्याको वे अपने खुदाकी देन समझते हैं और किसी की बीमारीमें सेवाका अवसर पाकर वे बहुत खुश होते हैं—उन्हें बड़ा सन्तोष मिलता है । हिन्दू-मुसलमान उन्हें नहीं दीखता, वे मनुष्य हैं और मनुष्यता के नाते ही वे रोगियों की सेवा करते हैं ।

एक दिन उनसे मैंने कहा—"लाइये" आपका दवाखाना खुलवा दूं । बस फिर आप फ़ीस लेकर तांगेमें जाया कीजियेगा । आमदनी भी होगी और शानभी । बोले— 'पर फिर इतने बीमारों को आराम नहीं हुआ करेगा ।"

"क्यों ?" मैंने आश्चर्य से पूछा ।

बात यह है पंडितजी ! मैं तो हड्डीको ऊपरसे बांध देता हूँ । भीतर से तो उसे खुदा ही अच्छा करता है, पर जब मुझे लोभ हो जायेगा, फिर खुदा मेरी मदद क्यों करेगा ?"

बात यह थी कि ख़लीफ़ा ने एक बिल्कुल टूटा पैर अच्छा किया । डाक्डर लोग इसे काट डालनेके फ़तवे दे रहे थे पर अन्तमें उसने ख़लीफ़ाको ६) रु० दिये । पैर कटाकर भी वह डाक्टरोंको २००) दे सकता था, पर ख़लीफ़ाके लिये उसने ६) ही काफ़ी समझे । मुझे इसपर बहुत गुस्सा आया, पर ख़लीफ़ाजी इसपर भी सन्तुष्ट थे।

अभिमान तो उन्हें छू नहीं गया और अपनी इस कला को यशोपार्जनका साधन बनानेके हथकण्डोंसे भी वे परिचित नहीं वे तो एक सीधे सादे ईश्वर-विश्वासी मुसलमान हैं । सेवा उनका स्वभाव है व्यसन है धर्म है ।

अबतक न जाने कितने रोगियोंको वे आराम पहुंचा चुके हैं, कितने जीवनोंकी रक्षा कर चुके हैं पर अपने मुंह से इस सम्बन्धमें कभी कुछ कहते हमने नहीं सुना । उन्हें देखकर मेरा तो यह उद्धत मस्तक खुदही झुक जाता है ।

संक्षेपमें उनके पास यूनिफार्म नहीं है, पर वे सबसे बड़े स्वयंसेवक हैं । किसी सम्मेलनमें उन्हें उपाधि या स्वर्ण पदक नहीं मिले, पर गरीबोंके दिल उनकी प्रशंसासे भरे पड़े हैं और उनका जीवन बड़ी बड़ी डिग्रियोंके प्रभाव में गरीबोंको दुत्कारनेवाले इन हजारों डाक्टरोंके जीवनसे अधिक पवित्र और उपयोगी है । वे भारतीय मानवताकी गुदड़ीके लाल हैं ।

दूधसे अच्छा दही

[प्रो० श्रीअवधनारायणलाल, एम. एस-सी., बी. टी.]

सभ्यता और कृत्रिमताके इस युगने मानव शरीरको कुछ ऐसी व्याधियोंमें जकड़ दिया है जिन्होंने जीवनको रोगों का मन्दिर बना दिया है । आजकल ९० प्रतिशत लोग उदरकी खराबियोंका शिकार बने हुए हैं । ऐसी विषम परिस्थितिमें किसी ऐसे तत्वको अहार में शामिल करनेकी नितान्त आवश्यकता प्रतीत होती है, जो उन्हें यत्किन्चित परिमाणमें इससे छुटकारा दिला सके । बहुत गम्भीर गवेषणाके बाद दुनियामें दहीही एक ऐसा पदार्थ दृष्टिगोचर होता है जिसे प्रयोग कर लोग स्वस्थ रह सकते हैं । आसाम प्रान्तीय एक बड़े जिमींदारकी स्त्री गत १५ वर्षोंसे केवल कुछ दही खाकरही रहती हैं । फिर भी उनका स्वास्थ्य अच्छा है और उनके बच्चोंका भी । बलगेरिया निवासियोंने दहीका व्यवहार कर दीर्घजीवी बननेमें दुनियाका रेकार्डही तोड़ दिया है । इधर कुछ दिनोंसे फ्रांसीसी वैज्ञानिक दहीका पथ्यरूपमें व्यवहार कर विलक्षण लाभ प्राप्त कर रहे हैं । डाक्टर मैकनीकाफने कतिपय परीक्षणोंके पश्चात् इसे इस दुनियाका अमृत बतलाया है । आधुनिक विज्ञानके आलोकमें दहीने संसारमें हलचल पैदा करदी है । अब जरा अपने पुराने सर्जन सुश्रुतका भी अनुभव देखिये । आप लिखते हैं—'दही सामान्यतः मधुर और खट्टा होता है । कषाय इसका अनुरस—गौण रस है । यह स्निग्ध और गौण होता है । पीनस, विषमज्वर, अतीसार, अरुचि, मूत्रकृच्छ और कृशताको दूर करता है । यह वीर्यको बढ़ानेवाला, बलकारक और मंगल द्रव्य है ।

दूधमें कई प्रकारके कीटाणु पाये जाते हैं। कुछ दूधकी स्निग्धताको पृथक् करते हैं और कुछ दूधकी शक्करको खटाईमें बदलते हैं। अम्लता उत्पन्न करनेवाले जीवाणु भी कई प्रकारके होते हैं। कुछ सिरका, कुछ लेक्टिक एसिड, कुछ एसिटिक एसिड और कुछ हाइड्रोक्लोरिक एसिड पैदा करते हैं। बस दूधकी शकरपर कीटाणु आक्रमण करके किंचित अम्लता उत्पन्न कर देते हैं। और वह जम जाता है।

दूधसे दही अच्छा है। दूध कीटाणुसे बहुत शीघ्र आक्रमित हो जाता है। दहीमें हाइड्रोक्लोरिक और लैक्टिक एसिड आदिके कारण कीटाणुओंके आक्रमणका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। बल्कि पानी आदिके साथ मिलकर जो कीटाणु दहीमें पहुंचते हैं वे स्वतः इसके अम्लमें नष्ट हो जाते हैं। यही कारण है कि हिन्दू धर्म शास्त्रोंमें दूध पीकर यात्रा करनेका निषेध है और दही खाकर चलना शुभ बतलाया गया है। आमाशयिक अथवा आन्त्ररोगग्रस्त व्यक्तियोंके पेटमें पहुंचकर दूधका पाचन भली प्रकार नहीं हो पाता, क्योंकि भोजनको पचानेके लिये जिस मात्रामें हाइड्रोक्लोरिक एसिडकी आवश्यकता होती है वह उनके अन्दर नहीं पायी जाती। अस्तु वह पेटमें गुडगुड किया करता है। दहीमें मधुरता और अम्लत्व दोनों ही होते हैं अस्तु वह बड़ी सरलतासे बच जाता है। इस सम्बन्धमें यह बात स्मरणीय है कि अम्लत्व का न्यूनाधिक्य दोनों ही पाचनक्रियाके लिये अनुपयोगी हैं। दूसरे अम्लतत्व शुक्र कीटाणुओंको नष्ट करता है। दही खट्टा और मधुर दोनों ही गुणयुक्त होता है। अस्तु वह कीटाणुको हानि पहुंचानेके स्थानपर पुष्ट करता है। आध सेर दूध यदि शरीरमें भलीभांति पचकर रस आदिमें परिवर्तित हो जाय तो पौन औंस गोश्त बनता है, किन्तु उसका यथाविधि पचना इतना सरल नहीं जितना कि दहीका। दूधमें दहीसे दूने उपयोगी तत्व पाये जाते हैं—यह डाक्टर मैकनीकाफकी लम्बी गवेषणाका परिणाम है। दूध यदि विशुद्ध न हुआ हो तो आंतोंमें कीटाणुओंकी सृष्टि करता है और दही करता है उनका विध्वंस। विशुद्ध दूध प्राप्त करना और उसका यथाविधि सेवन करना कम-से-कम आज साधारण स्थितिके लोगोंके लिए असंभव नहीं तो कठिन अवश्य है।

इसके विपरीत दही सरलतासे मिल सकता है। अशुद्ध दूध क्षय जैसी घातक व्याधियोंको उत्पन्न कर देता है, किन्तु दहीसे ऐसा कोई भय नहीं। ऐसी अवस्थामें भारतीयके लिये दहीका सेवनही उपयोगी है।

आयुर्वेदके अनुसार दहीके चार भेद होते हैं—मंद, स्वादु, स्वाद्वम्ल। इनमें स्वादु दहीका ही व्यवहार करना चाहिये। यह दूधमें तीन उबाल आजानेके पश्चात् भली भांति जमे सुस्वादु और मधुर दहीको ही स्वादु दही कहते हैं। भली प्रकार न जमा हुआ बहुत खट्टा दही हानिकारक है।

दही और दीर्घ जीवन—डाक्टरोंके मतानुसार शरीर पोषणके लिये तीन प्रकारके आहारकी अवश्यकता है। शरीरको बनाने और मरम्मत करनेवाला, तापक्रमको उत्पन्न कर स्थिर रखनेवाला, शरीरमें खनिज द्रव्यके रूपमें रासायनिक परिवर्तन करनेवाला। यह तीनोंही तत्व दहीके अन्दर प्रचुर परिमाणमें पाये जाते हैं।

दही शारीरिक स्वास्थ्यकी ही रक्षा नहीं करता, प्रत्युत कितनी व्याधियोंमें औषधि बनकर उनका नाश भी करता है। आधुनिक पाश्चात्य डाक्टरोंने और वैज्ञानिकोंने अपने परीक्षणों द्वारा विद्वत्तापूर्वक यह सिद्ध कर दिया है कि बड़ी आंतके व्याधिग्रस्त होते ही मनुष्यका स्वास्थ्य बिगड़ने और जीवनके दिन कम होने लगते हैं। जिन जानवरोंमें यह आंत नहीं होती वे दीर्घजीवी होते हैं। जैसे घड़ियाल, मगर, कछुवा और कुछ पक्षी। प्रोफेसर मैकनीकाफभी कहते हैं कि बड़ी आंत में व्यतिक्रम और अपचसे विषाक्त कीटाणु उत्पन्न हो जाते हैं। वे दस्त, अपच, अजीर्ण, कलेजेमें जलन, जर्दी, आलस्य आदि बीमारियोंको पैदा कर बुढ़ापाको जल्दी आमंत्रित कर लेते हैं। इसकी एकमात्र औषधि दही है। इसमें कीटाणुओंका आक्रमण होनेकी कोई संभावना नहीं। यदि पैदा हो भी गये हों तो दहीका अम्ल तत्व स्वयं उनका सत्यानाश कर डालता है। आंतोंके अक्षुण्ण रहनेपर स्वास्थ्य अच्छा रहेगा ही। सुन्दर स्वास्थ्य दीर्घजीवनकी पहिली शर्त है।

दहीका औषधि रूपमें व्यवहार—(१) रक्तकी कमी और शरीरिक दौर्बल्यसे पीडित व्यक्तियोंके लिये दही अमृत है। (२) दही आन्त्रशोथ, प्रवाहिक, संग्रहणी स्नायविक दौर्बल्यमें दही रामबाण। भयानक ज्वरमें भी दहीका व्यवहार शारीरिक विषको बहुत जल्दी बाहर कर देता है। (३) दहीको शरीरपर मलकर स्नान करनेसे त्वचाकीकोमलता और उसकी रंगतमें काफी परिवर्तन हो जाता है। (४) दांतों को

बीमारियोंमें भी दहीका सेवन अत्युत्तम है। (४) भोजनके अन्तमें नियमपूर्वक इसका प्रयोग करनेसे उदर विकारोंका शमन होता है।

प्रयोग—दहीकी लस्सी शुद्ध मधु डालकर दिनमें दो बार पीनेसे स्वास्थ्य एवं सौन्दर्यमें आश्चर्यजनक वृद्धि होती है। शक्करके साथ मिलाकर दहीका सेवन करनेसे तृषा, रक्तपित्त और दाह दूर होता है। गुड़ मिलाकर दहीका प्रयोग करना वातनाशक और ग्राही है। रोगियोंको रातमें दही खाना वर्जित है, क्योंकि यह कफ पैदा करता है। भैंस आदि अन्य पशुओंकी अपेक्षा गायका दही उत्तम है।

वर्तमान कालमें जब कि शुद्ध दूध भारतमें दुष्प्राप्य है, जनसाधारणको दहीका सेवन करना चाहिये। दही वास्तव में दुनियामें एक अमूल्य पदार्थ है। यही कारण है कि हिन्दू धर्म ग्रन्थोंमें स्थान-स्थानपर दहीका जिक्र आता है। दहीके बिना बड़ेसे बड़ा यज्ञ भी सम्पूर्ण नहीं हो सकता। पाश्चात्य प्रशंसाप्राप्त इस द्रव्यका सेवन प्रत्येक मनुष्यको स्वास्थ्य, सौन्दर्य और जीवनका प्रदान करनेवाला होता है।

(आयुर्वेद संसार)

चींटियां

[श्री उमाशंकर]

"आदमी जबतक हाथीके पैरके नीचे न आये तबतक उसे नहीं मालूम हो सकता कि चींटियां उसके पैरके नीचे क्योंकर मरती हैं!"

कितनीही काली चींटियां हम रोज़ देखते हैं। बदन और कपड़ोंपर फिरा करती हैं। ज़मीनपर इधर-उधर घूमा करती हैं। लेकिन हममेंसे कितने हैं जो इस बात पर ध्यान देते हैं कि यह क्यों इस तरह फिर रही हैं? यह "नौकर" चींटियां हैं जो खानेकी खोजमें हैं।

चींटियां भी (शहदकी मक्खियोंकी तरह) 'दलों' में रहती हैं। इनमें कुछ चींटियां ज्यादा बड़ी, और मज़बूत होती हैं। अगर कहीं कोई आदमी उनके सूराखके पाससे पैर रखकर निकले और उनका किसी तरहका भी नुक़सान हो जाय तो वह इतना कसकर खालसे लिपट जाती हैं कि उनके टुकड़े-टुकड़े कर डालिये पर वह अपने आप कभी नहीं छोड़ेंगी। इतने ज़ोरसे काटती हैं (हम बड़े चींटों में यह बात आसानीसे देख सकते हैं) कि ख़ून निकल आता है। यह "सिपाही" चींटियां हैं—इनका काम घरकी रखवारी करना है। यह घरके दरवाज़ेपर हमेशा रहती हैं। ज़रूरत पड़नेपर बाहर निकलती हैं।

दूसरी तरहकी "नौकर" चींटियां क़दमें छोटी होती हैं और अकसर अनाजका दाना लिये फिरती दिखाई देती हैं। इनका यह काम बहुत ग़ौर करनेपर लोगोंकी समझमें आया है। आखिर यह घूमघामकर अपने अड्डे पर पहुंच जाती हैं। ख़ैर, घरोंकी चींटियोंमें तो हम यह सब बातें अच्छी तरह नहीं समझ सकते। जो चींटियां बाग़ोंमें या जंगलोंमें दरख़्तोंके नीचे घर बनाकर रहती हैं उनके सब काम अच्छी तरह समझे जा सकते हैं, और यह मालूम किया गया है कि इनमें रास्ता पहिचाननेकी ताक़त बहुत है। यहां इस बातका ख़याल रखना चाहिये कि कालीचींटियां कई तरहकी होती हैं। बाग़ोंमें तो "नौकर" चींटियां हमेशा एक "सरदार" के पीछे-पीछे चलती हैं—अगर वह हटा लिया जाय तो सब इधर-उधर रास्ता भूलकर भटकने लगती हैं। कुछ तरहकी नौकर चींटियोंमें सूंघनेकी ताक़त इस वक्त मदद करती है और अगर वह घरसे ज्यादा दूर न हों तो आसानीसे लौट जाती हैं। यह सब आसानी से देखा जा सकता है।

सबसे दिलचस्प बात इनके मिलकर काम करनेमें है, अगर कोई बड़ा कीड़ा मरा हुआ एक नौकरने पाया तो वह लौट आयगा और तब झुंडके-झुंड निकलेंगे, और थोड़ी देरमें मेहनतसे उस कीड़ेको (अगर बड़ा हुआ तो शायद "सिपाही"की ज़रूरत पड़ेगीजो आकर टुकड़े-टुकड़े कर डालेगा) खींच ले जायंगी।

चींटियां अपना पेट और तरहसे भी भरती हैं। दरख़्तों पर छोटे कीड़े 'खटमल'की तरह होते हैं। नरम शाख़ोंपर वह अपना मुंह गड़ाकर रस पीते हैं। पीछे उनके "नौकर"

चींटियां लगी हैं जो अपने आगेके दोनों पतले (antennae) हाथोंको उसकी पीठपर धीरे-धीरे थपथपाती हैं। इससे उसके एक छोटेसे सूराख़से (जो खटमलकी दुमके ठीक नीचे होता है) उसका पिया हुआ रस निकल पड़ता है, और फ़ौरन् चींटियां जो इसीकी ताकमें हैं, अपना मुंह लगा देती हैं और पी लेती हैं। पेट फूल आता है। जब यह घर लौटती हैं तो अपना पिया हुआ दूसरोंके मुँहमें उगल देती हैं जो घरके बाहर खाना लेने नहीं जातीं। यह तीसरे तरहकी चींटियां हैं—इनका काम सिर्फ़ नस्ल बढ़ाना है। नर छोटे क़दके और मादाएँ ज्यादा मज़बूत होती हैं।

अपने आगेके हाथोंसे ही वह सब आपसमें समझबूझ सकती हैं।

यही नहीं—एक और तरहकी चींटी है जो सिर्फ़ 'मवेशी' ही नहीं रखती हैं, बल्कि उनके लिये ख़ास घर बनाती हैं। इनसे सब काम करनेवाली एक सी होती हैं। दिशायें ख़ूब पहिचानती हैं। जिन कीड़ोंसे इनको खानेको रस मिलता है उन्हें बड़ी सेवासे रखती हैं। इनकी गायें भैंसे हैं। (जंगलों में छोटे दरख़्तोंपर ये कीड़े रहते हैं।) उन्हीं दरख़्तोंपर ये चींटियां घर बनाती हैं। घर बनानेकी विधि इस प्रकार है।

अठारह उन्नीस "नौकर" चींटियां काममें लगती हैं। सब जानती हैं कि क्या करना है। कोई छःसात बोझा ढोने के काममें लगती हैं। कोई तो मिट्टीका टुकड़ा, कोई पयाल, कोई घास,—यह सब जमा कर लेती हैं। तब बहुत क़ायदे से इनकी दीवार बनती है हर एक सावधानीसे चक्कर लगाकर देख लेगी कि कहां उसका बोझ सबसे अच्छी तरह खपेगा। फिर दो एक इन्जीनियर अच्छी तरह देखते हैं और जहां कमी बेशी होती है वैसा ठीक-ठाक करते हैं। अन्दर कुछ अपने काममें लगी हैं और कभी-कभी सूराखोंसे मुंह निकालकर बाहर बिलोंमें बातचीत या सलाह कर लेती हैं।

सबसे ज्यादा ज़रूरी चौथी क़िस्म है। दो तीन देखनेमें आयेंगी, कि उनके मुंहमें 'लार्वे' (इनके बहुत छोटे अधूरे बच्चे) दबे हुए हैं। यह चींटियां बहुत होशियारीसे धीरे-धीरे बनते हुए घरके चारों तरफ़ घूमती हैं और ग़ौर करने पर मालूम होगा कि यह चींटियां उस 'रेशम'के तारको जो 'लार्वा' उगलता है, ख़ूब सावधानीसे दीवारोंके बाहर लगा कर एक घना जाल बुन रही हैं—यह उनका जीता जागता चर्खा है। जब एक लार्वाके रेशमका ख़ज़ाना ख़त्म हो जाता है तब दूसरा आता है। इनको किसी तरहका नुकसान नहीं पहुंचता। और हर एक चींटीभी इस ज़रूरी कामको नहीं कर सकती। सब लोगोंको इस कामको देखने की कोशिश करनी चाहिये।

तैयार होनेपर यह घर एक छोटी सी थैलीकी तरह पीछेके गिर्द बना हुआ मालूम होता है। एक मामूली घर चार इंच लम्बा और एक इंच चौड़ा होगा। आने-जानेके लिये सूराख़ रहते हैं।

ये घर लम्बे भी होते हैं, सुरंगकी तरह। जगह मुनासिब होनी चाहिये।

घर तमाम गर्मीभर तो तैयार होता है और जून या जुलाईमें जाकर पूरा होता है।

अब इतनी मेहनतका फल? जो कीड़े या 'मवेशी' अन्दर हैं उनकी बड़ी रखवालीकी जाती है। कभी अकेले नहीं छोड़े जाते। बड़े तो छोटे सूराख़ोंमेंसे निकल नहीं सकते, और यह भी पूरे पालतू हैं। जब ज़रूरत पड़ती है और इनकी पीठ सहलायी जाती है तब यह रस निकाल देते हैं (क्योंकि शाख़ तो घरके अंदर ही है)। एक जातकी चींटियां दूसरेके गल्लेको रख सकती हैं और यह जानवर उन्हें अपना मालिक मानेंगे।

अब यह किस तरह घरके अंदर आ जाते हैं? अधिकतर जब चींटियां इन्हें रस चूसते देखती हैं तो उसी दरम्यानमें चारों तरफ घर बना लेती हैं कभी-कभी बाहरसे हांक लाती हैं। अगर कहीं घर टूट जाय तो ज़रा देरमें सब चींटियां इकट्ठा होकर बहला फुसला कर, कभी ज़बरदस्तीसे, कीड़ोंको हांककर अंदर कर देती हैं और घर पूरा बना देती हैं यही तो उनकी जिंदगीका भरोसा है। मजाल है कि कोई ग़ैर चीज अन्दर पहुंच जाय। फौरन् सब मिलकर उसे बाहर निकालकर कल लेंगी—नहीं तो जान तक लड़नेमें खो देंगीं।

कितनी अच्छी नसीहत मिलती है। दोनोंको एक दूसरेसे फ़ायदा है। कीड़ोंको कोई तकलीफ नहीं होगी। पानी,धूपसे बचे रहते हैं, और चींटियां जो फ़ायदा उठाती हैं वह साफ़ ही है।
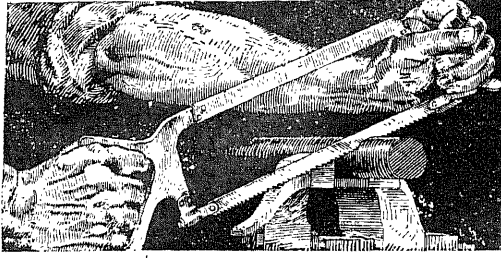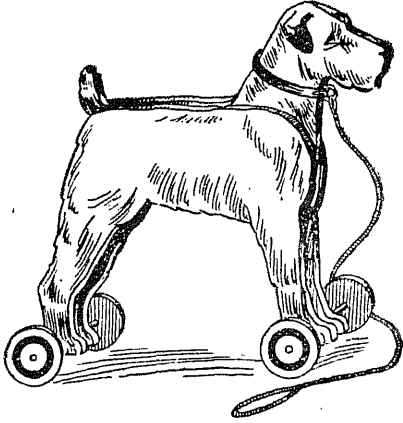
पहियेवाले खिलौने

इन दिनों जापानी खिलौनोंसे बाज़ार भरा पड़ा है। स्वदेशी खिलौने उनका मुक़ाबला नहीं कर सकते, क्योंकि स्वदेशी न तो उतने सस्ते होते हैं और न उतने फैशनवाले। यहां ऐसे खिलौने बनानेकी रीति दी जाती है जिसे छोटे बच्चे बहुत पसंद करेंगे। यदि कोई अपने बच्चोंके लिये ऐसे खिलौने बनाये तो पैसेकी बचत भी होगी और इनके बनाने और रंगनेमें बड़ा आनन्द भी आयेगा। इनका बनाना वस्तुतः बड़ा सरल है।

यदि कोई ऐसे खिलौनोंको बेंचनेके लिये बनाये तो अवश्यही वह कुछ नफ़ा उठा सकेगा। यद्यपि जापानी खिलौनोंसे ये मुकालबा न कर सकेंगे, तो भी ऐसे खिलौने लोग खुशीसे खरीदेंगे, क्योंकि ये सेलुलायडके खिलौनोंसे बहुत मज़बूत होंगे।

बनानेका ढङ्ग

जैसा चित्र १से स्पष्ट है, यह खिलौना तीन लकड़ियोंके जोड़नेसे बनता है। बीचवाली लकड़ीमें सर और पूंछ रहती है और बगलवाली लड़कीमें टाँगें, सरेस या कीलसे तीनों टुकड़े जोड़े जाते हैं। लकड़ीपर कुत्तेकी शकल उतारनेके लिये सबसे सुविधा-जनक रीति यह होगी कि उसपर पहले एक-एक इंचके चारखाने खींच लिये जायँ। फिर चित्र २की सहायतासे कुत्तेकी शकल लकड़ीपर खींच ली जाय। इस प्रकार ८$\frac{१}{४}$ इंच ऊँचा, ९ इंच लंबा कुत्ता बनेगा। यदि इससे छोटा या बड़ा खिलौना बनाना हो तो चारख़ानेके वर्गोंको उसी हिसाबसे छोटा-बड़ा बनाना चाहिये।

क़रीब $\frac{३}{४}$ इंच मोटी लकड़ीसे ये टुकड़े काटे जायँ। $\frac{१}{४}$ इंच मोटी लकड़ीसे भी काम चल सकता है। यदि वे खिलौने सी० पी० टीक सस्ते सागवानके बनाये जायँतो अच्छा होगा। वे शीशमके भी बनाये जा सकते हैं।
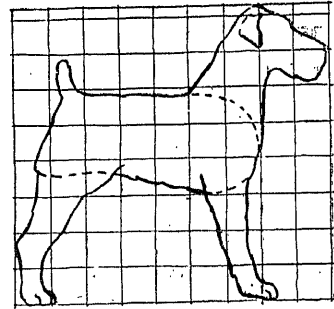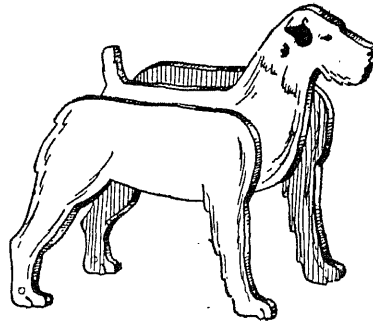
चित्र १—तीन लकड़ियोंकेजोड़नेसे खिलौनाबनता है।

चित्र २—इस चित्रसे कुत्तेकी शकल आवश्यकतानुसार बड़ी या छोटी सुगमतासे बनायी जा सकती है।

पहिये

यदि खरादनेका ढंग मालूम हो तो पहिये शीशम या अन्य किसी लकड़ीसे खराद लिये जा सकते हैं। परन्तु यदि खरादनेमें कोई कठिनाई पड़े तो बाजारसे कैरम खेलनेकी ४ गोटी मोल लेनी चाहिये और प्रत्येकके ठीक बीचमें बारीक छेद कर देना चाहिये। पैरोंमें उचित स्थानपर छेद करके उनमें छातेकी तीलीका, या मोटे तारका, टुकड़ा डालना चाहिये। ये टुकड़े करीब ४ इंच लंबे हों। प्रत्येक टुकड़ेका सिरा यदि रेतकर गोलके बदले चौकोर और कुछ-कुछ गावदुम कर लिया जाय और उसपर पहिया ठोंक देनेके बाद यदि सिरा पीटकर कुछ चिपटा कर दिया जाय तो पहियोंके निकलनेका कोई डर नहीं रहेगा। दोनों पैरोंके बीच धुरीपर सरेस लगाकर कई तह कागज़ लपेट देना चाहिये जिसमें पैर ठीक बीचमें पड़े रहें।

अन्य खिलौने

ऊपरके ढंगसे कई प्रकारके खिलौने बन सकते हैं, हाथी, घोड़े, शेर गैंडे, जिराफ़, आदि। उपयुक्त चित्र पुस्तकोंमें से नक़ल कर लिये जा सकते हैं। लम्बे खिलौनोंके लिये धुरीको अधिक लम्बा रखना पड़ेगा, जिसमें खिलौना आसानीसे उलट न सके।

रँगना

खिलौनोंको चटक रंगोंमें रंगना चाहिये। तेलके रंगसे रंगना अच्छा होगा, क्योंकि बच्चे अकसर खिलौनोंको मुंहमें डाल लेते हैं। यदि गोंद और पानीमें घोंटे गये रंगोंसे खिलौने रंगे जायँगे तो चाटनेसे उनका रंग छूट जायगा और बच्चोंको भी हानि पहुंच सकती है।

सस्ते खिलौने

यदि बेंचनेके लिये सस्ते खिलौने बनाने हों तो जिग-सॉ मशीनसे चार-चार लकड़ी साथ काटनी चाहिये। फिर सागवानके बदले चीड़ या सस्ते प्लाइवुडका प्रयोग किया जा सकता है। और खिलौने केवल ४ इंच ऊँचे बनाये जा सकते हैं। इस लेखके चित्र हाबीज, वीकलीसे लिये गये हैं)।

धूप-घड़ी

[डा० गोरखप्रसाद, डी० एस-सी०]

"कितने बजे हैं?"

यह प्रश्न अक्सर पूछा जाता है, परन्तु तार-घर और रेलवे स्टेशनोंसे दूरपर स्थित गावों और बागोंमें इस प्रश्नका शुद्ध उत्तर देना सरल नहीं है।

ऐसे स्थानोंपर समयका प्रायः शुद्ध ज्ञान धूप-घड़ीसे किया जा सकता है। अवश्य ही, इससे समयका सूक्ष्म ज्ञान नहीं हो सकता, तोभी विधिवत् बनी धूप-घड़ीके समय और शुद्ध समयमें दो-चार मिनटोंसे अधिकका अंतर नहीं पड़ेगा।

परन्तु धूप-घड़ी लगानेका उद्देश्य केवल समयका ज्ञान ही नहीं है। इससे बागकी शोभा बढ़ती है। सफ़ाईसे बने पत्थरकी धूप-घड़ी बड़ी ही सुन्दर जान पड़ती है। यदि किफायतका ख्याल हो तो धूप-घड़ी सीमेण्टकी बनायी जा सकती है। सीमेण्टका प्रचार अब तो छोटे-से-छोटे शहरोंमें भी होगया है और सभी जगह कारीगर मिल सकते हैं जो धूप-घड़ी बना

दें। यदि किसीको शौक हो तो वह स्वयं अपने हाथसे बना सकता है। अब तरह तरहके रंगीन सीमेन्ट भी बिकते हैं। यदि रंगोंका चुनाव सुरुचिपूर्ण हो तो धूप-घड़ी और भी सुन्दर लगेगी।

यदि पत्थर या सीमेन्टका प्रबन्ध न हो सके तो धूप-घड़ी ईंटें, चूने या लकड़ीसे भी बन सकती है और अच्छी ही लगेगी।

पाया

चाहे किसीभी पदार्थका पाया बने—पत्थर, सीमेन्ट, या ईंट—नींव अच्छी देनी चाहिये, जिसमें बरसातमें पानीके कारण धरतीके नरम हो जानेपर भी यह पूर्णतया स्थिर रहे। तीन फुट गहरी नींव काफी होगी। मिट्टी कड़ी हो तो दो फुटसे भी काम चल सकता है। नींवकी लंबाई-चौड़ाई भी करीब दो फुट रहे।

धूप-घडी कहीं खुले स्थानमें स्थापित की जाय जहाँ इसपर प्रायः दिनभर धूप पड़े।

पायेके ऊपर लगभग १० फुट लम्बा, १। फुट चौड़ा चौका बनाना आवश्यक है। इसकी ऊपरी सतह एकदम चौरस और पट रहे। (अर्थात् सतह कहीं गहरी, कहीं उभरी हुई न रहे, या कहींसे मुड़ी न रहे। फिर यह जरासी भी तिरछी न रहे।) इसके लिये सतहकी जांच स्पिरिट-लेवेल* से करनी चाहिये या यदि कारीगरके पास यन्त्र न हो तो गुनिया और साहुलसे जांच करनी चाहिये।

चौकेके किनारे यथा संभव ठीक उत्तर-दक्षिण और पूरब-पश्चिम दिशामें रहें।

पाये इच्छानुसार भिन्न-भिन्न आकारके बनाये जा सकते हैं। चित्रोंमें दो-चार नमूने दिखलाये गये हैं। जो पसन्द हो वैसा पाया बनाना चाहिये।

शंकु आदि

चौकेके ऊपर शंकु और चिन्हांकित पत्र स्थापित किये जायेंगे, इनको पीतल का बनाना उचित होगा।

पहले शंकु बनाना चाहिये, परन्तु शंकुका आकार भिन्न-भिन्न स्थानोंके लिये भिन्न-भिन्न होगा। बात यह है कि शंकु का कोण ठीक-ठीक स्थानके अक्षांश (लेटीट्यूट) के बराबर होना चाहिये। ग्वालियर अक्षांश २६¼ डिगरी है, मदरास का लगभग १३ डिगरी और श्रीनगर (काश्मीर) का लगभग
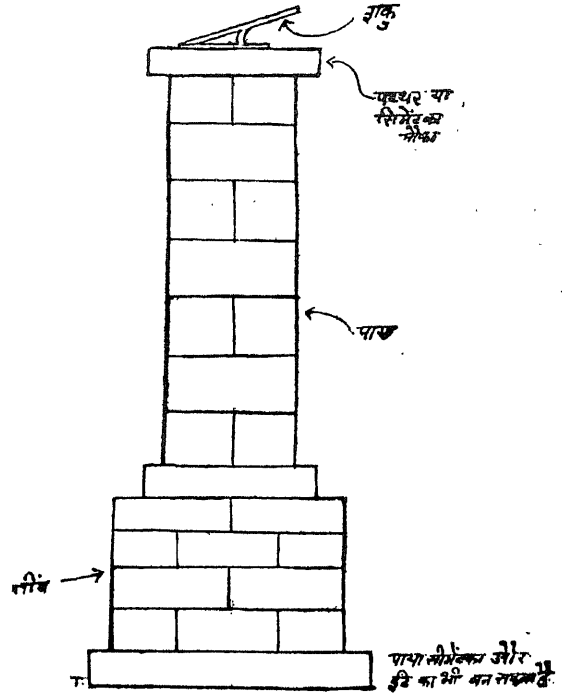
३६ डिगरी। इसलिये इन स्थानोंमें क्रमानुसार शंकुका कोण क्रमशः २६¼, १३, और ३६ डिगरी होना चाहिये। चित्रोंमें ग्वालियरके लिये उपयुक्त शंकुका आकार दिखलाया गया है।

पीतलकी मोटी चादरसे शंकुको काटना चाहिये। ⅛" मोटी चादर अच्छी होगी, यद्यपि इससे पतली चादरसे भी काम चल सकता है। चूल सच्चा कटे। आरीसे काटकर और पीछे सावधानीसे रेतकर शंकु तैयार करना ठीक होगा।

---

* इलाहबादकी तरफ कारीगर लोग इस यन्त्रको 'पारा बटाम' कहते हैं।

जिस पत्रपर घंटोंकी रेखायें खींची जाती हैं और जिस

शंकु

तरहपर शंकु बैठाया जाता है, उसे भी पीतलका बनाना चाहिये। यह पीतल केवल ⅛ इन्च भी मोटा हो तो काम चल जायगा; परन्तु यदि और मोटी चादर लगायी जा सके तो अच्छा ही है।

इसके लिये चादर से फुट १ × १ फुटका चौकोर टुकड़ा काट लेना चाहिये। चारों कोनोंके पास, किनारों से करीब एक-एक इञ्च हटकर, बरमीसे छेद कर देना चाहिये। इसीमें पेंच कसकर धूप-घड़ी पाये पर स्थापित की जायगी।
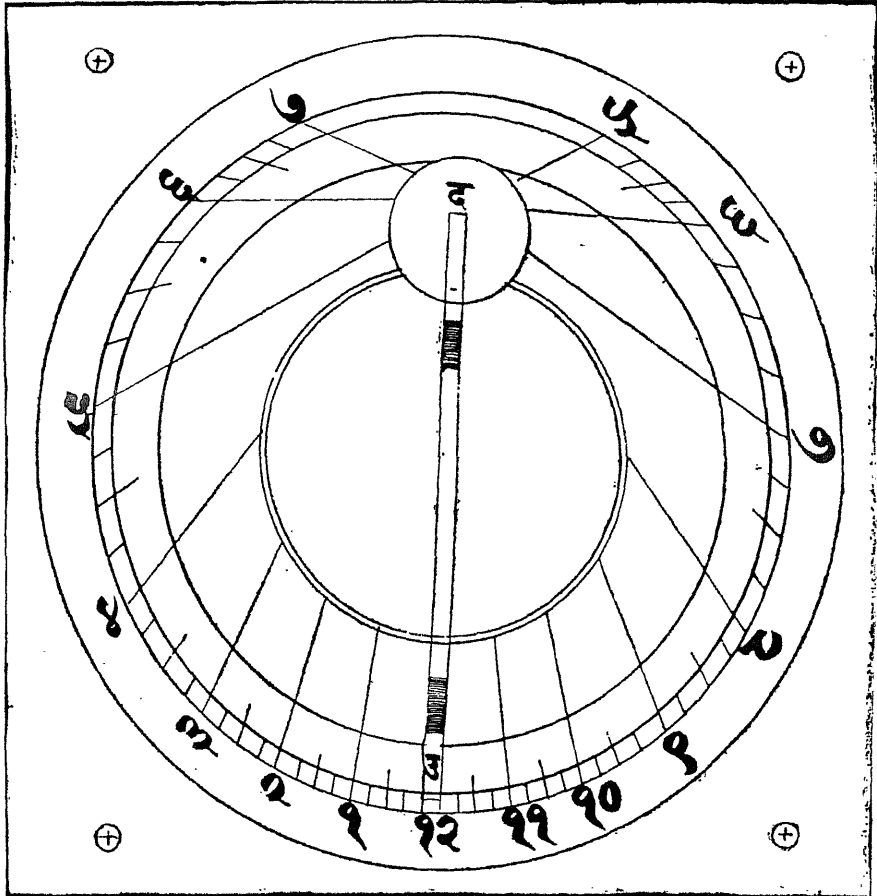
इस चौकोर पत्रके ठीक बीचमें दो समानान्तर रेखाएँ खींचनी चाहिये जिनके बीचकी दूरी शंकुकी मोटाईके ठीक बराबर रहे। शंकुकी चौड़ाई ⅛ इन्च मानकर चित्र पैमानेके अनुसार खींचा गया है। इसीकी प्रवर्द्धित प्रति-लिपि पीतलपर उतार लेनी चाहिये। यह चित्र ग्वालियरके लिये खींचा गया है, परन्तु उसी अक्षांशमें स्थित अन्य शहरों और देशोंके लिये भी ठीक होगा जैसे जोधपुर, अजमेर, कानपुर, इलाहाबाद, बनारस, पटना, शीलांग इत्यादि। यदि स्थान ग्वालियरके अक्षांशसे बहुत उत्तर या बहुत दक्षिण होगा तो यह चित्र काम न देगा। तब गणित ज्योतिषकी पुस्तकोंमें समझाये गये सिद्धान्तोंके अनुसार रेखाएं खींचनी चाहिये।

इस चिन्हान्वित पत्रके तैयार हो जानेपर इसमें शंकुकी चूलोंके लिये दो छेद काट देना चाहिये। फिर चूलोंको पहनाकर इसपर शंकुको ठीक लंबस्थितिमें खड़ा करना

चाहिये और गरम पीतलसे शंकुको चिन्हान्वित पत्र पर

जोड़वा लेना चाहिये। शंकुकी नोक (जिधर २६। अंशका कोण है) 'द' अक्षरकी ओर रहे।

अब केवल एक काम शेष रहा है। वह यह कि धूप-घड़ीको पायेपर जड़ दिया जाय। इसके लिये एक साधारण घड़ी चाहिये जो रेलवे समयसे ठीक मिलती हो। धूप-घड़ीको
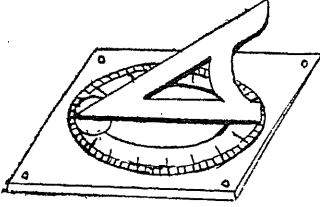
पायेपर इस प्रकार रखना चाहिये कि, शंकु उत्तर-दक्षिण दिशामें रहे। अक्षर 'उ' उत्तर की ओर और 'द' दक्षिणकी ओर रहे। फिर धूप-घड़ीको आवश्यकता अनुसार इस प्रकार घुमाना चाहिये कि शंकुकी परछाईंसे ज्ञात समय और घड़ीके समयमें ठीक उतना ही अन्तर हो जितना 'काल-समीकरण' और 'स्थानीय समय' के कारण होना चाहिये। यह बात नीचे समझायी जायगी।

धूप-घड़ीकी स्थिति ठीक हो जानेपर चारों छेदोंमें से
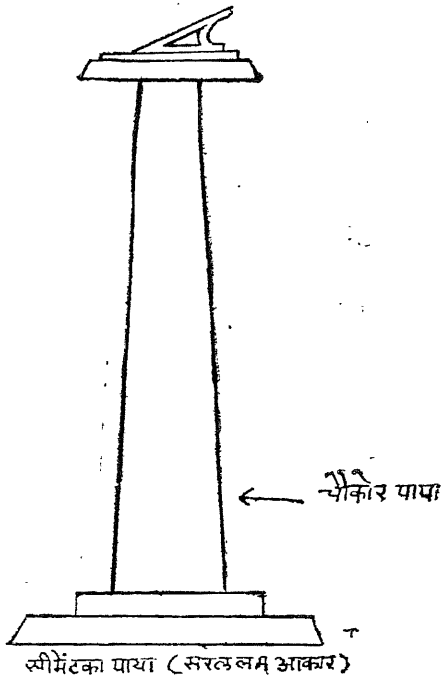
सीमेंटका पाया (सरलतम आकार)

पेन्सिलकी नोक छोड़कर पत्थरपर निशान लगा देना चाहिये। इन स्थानोंपर पत्थरमें टांकीसे छेद करके उसमें लकड़ीकी गुल्ली ठोंक देनी चाहिये। और धूप-घड़ीको फिर उचित स्थितिमें रखकर और इसके और साधारण घड़ीके समयोंकी एक बार फिर तुलना करके, पीतलके पेंचोंसे धूप-घड़ीको स्थायी रूपसे जड़ देना चाहिये।

यदि पायेका चौका सीमेन्टका ढाला जाय तो ऐसा भी किया जा सकता है कि चार गुल्लियां उसमें चारों कोनों पर, अनुमानतः उन स्थानोंपर जहां धूप-घड़ीके छेद पड़ेंगे, पहले से लगा दी जायँ, परन्तु यदि ऐसा किया जाय तो गुल्लियां कम-से-कम १ इन्च व्यासकी हों, जिसमें स्थितिमें थोड़ी-बहुत त्रुटि रहने पर भी पीछे कोई कठिनाई न पड़े और गुल्ली एक ओर मोटी और एक ओर पतली हो, जिसमें इसके निकल आनेका कोई भय न रहे।

धूप-घड़ी और रेलके समयोंमें अन्तर

सच्ची धूप-घड़ीके समय और रेलके समयमें दो कारणोंसे अंतर पड़ता है। एक तो इस लिये कि धूप-घड़ीसे 'स्थानीय समय' निकलता है जो रेलके समयसे भिन्न हो सकता है।

गुल्ली लगानेकी रीति
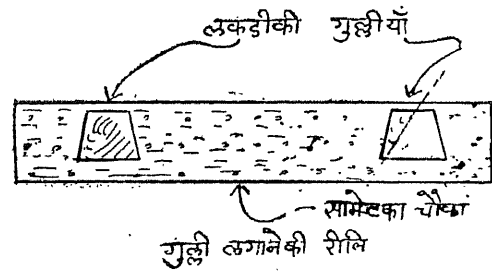
यह स्थानके देशान्तरपर निर्भर है, अर्थात् यह इस बातपर निर्भर है कि स्थान मद्राससे कितना पूरब पश्चिम है। ग्वालियर में धूप-घड़ीके समयमें हमेशा १७ मिनिट जोड़नेसे रेलवे समय (इन्डियन स्टेंडर्ड टाइम) मिलेगा।

दूसरा अंतर इसलिये पड़ता है कि सूरज उत्तरायण-दक्षिणायन होता है और आसमानमें वेगसे चलता है। इस कारणसे जो अंतर पड़ता है वह भिन्न-भिन्न तिथियोंमें भिन्न-भिन्न होता है। नीचेकी सारिणीमें यह अंतर कुछ तिथियोंके लिये दिखलाया गया है। अन्य तिथियोंके लिये उचित अंतरका अनुमान दी हुई तिथियोंके अंतरोंसे लगाया जा सकता है। जब संख्याके सामने + चिन्ह रहे तो उतना समय धूप-

घड़ीके समयमें जोड़ देना चाहिये। जब—चिन्ह रहे तो उतना समय घटा देना चाहिये।

'काल-समीकरण' सारिणी

धूप-घड़ीमें इसे जोड़नेसे शुद्ध स्थानीय समय मिलेगा—

जनवरी	१	+ ३ मि.			
जनवरी	१५	+ ६ ,,			
फरवरी	१	+ १३ मि.	अगस्त	१	+ ६
फ़रवरी	१५	+ १४ ,,	अगस्त	१५	+ ४
मार्च	१	+ १३ ,,	अगस्त	३१	०
मार्च	१५	+ १० ,,	सितंबर	१५	—५
अप्रेल	१	+ ५ ,,	अक्टूबर	१	—११
अप्रेल	१५	० ,,	अक्टूबर	१५	—१५
मई	१	—३ ,,	नवंबर	१	—१७
मई	३५	—४ ,,	नवंबर	१५	—१४
जून	१	—२ ,,	दिसंबर	१	—११
जून	१४	० ,,	दिसंबर	१५	—४
जुलाई	१	+३ ,,	दिसंबर	२४	०
			जनवरी	१	+३

उदाहरण १—यदि किसी साल १ फरवरीको किसी क्षण ग्वालियरकी धूप-घडीमें २ बजकर १५ मिनट हुआ तो वस्तुतः उस समय रेलसे मिली हुई साधारण घड़ियोंमें २ बजकर १५ + १७ + १४ मिनट अर्थात २ बजकर ४३ मिनिट होगा।

उदाहरण २—यदि किसी साल ५ अक्टूबरको किसी क्षण ग्वालियरकी धूप-घड़ीमें ३ बजकर २५ मिनट हुआ हो तो रेलसे मिली साधारण घड़ियोंमें उस क्षण ३ बजकर २५ + १७—१२ मिनट अर्थात ३ बजकर ३० मिनट हुआ होगा।

जयाजी प्रतापसे

वैज्ञानिक संसारके ताज़े समाचार

बर्रें भी काम करेंगे

मूर्स्टन (अमरीका) में ३० हज़ार बर्रें पाले गये हैं। जब खेतोंपर पत्ती और नाज खानेवाले कीड़े हमला करेंगे तो ये बर्रें खूब भूखी हालतमें छोड़ दिये जायँगे। वैज्ञानिक आशा करते हैं कि वे शीघ्रही कीड़ोंको खा जायँगे और इस प्रकार फ़सल बच जायगी।

बिजलीसे हजामत बनाइये

आविष्कारकने हजामत बनानेके लिये बिजलीका अस्तुरा बनाया है। इसमें साधारण सेफ्टी रेज़रके ही ब्लेड (फल) लगते हैं, परन्तु इसमें एक नन्हा-सा मोटर लगा है, जिससे अस्तुरेकी धार आगे-पीछे बड़ी शीघ्रतासे थर्राया करती है। इस छुरेको दाढ़ीपर हल्के हाथसे फेरनेपर बाल जड़से साफ़ हो जाते हैं। आविष्कारकका दावा है कि इस अस्तुरेसे समय भी कम लगता है और पैसाभी बचता है, क्योंकि एक ही ब्लेड बहुत दिनतक चलता है, यहाँतक कि जो ब्लेड साधारण सेफ्टी-रेज़रके लिये काफ़ी तेज़ नहीं समझे जाते और इसलिये फेंक दिये जाते हैं वे इस मशीनमें बखूबी काम देंगे।

कैमेरेकी २० फ़ुट ऊँची तिपाई

समाचारपत्रोंके लिये फ़ोटो खींचनेवाले फ़ोटोग्राफ़रोंको भीड़के कारण अकसर अपने काममें बड़ी कठिनाई पड़ती है। एक फ़ोटोग्राफ़र अपने बन्द मोटरकारकी छतपर १५ फ़ुट लम्बी सीढ़ी खड़ी करके और उसपर चढ़कर फ़ोटो लेता है सीढ़ी तीन टुकड़ोंमें बनी है, जो क्षण भरमें एक दूसरेमें जोड़ दिये जा सकते हैं। सीढ़ीको खड़ी रखनेके लिये इसके सिरेमें चार तार लगे हैं जो मोटरकी आगे और पीछेवाली बम्परों में बाँधकर पेंचद्वारा तान दी जाती हैं।

नन्हा-सा मोटरकार

एक फ्रेंच मोटरकारमें केवल दो अश्वबलका इञ्जन लगा है। मोटरमें केवल तीन पहिये हैं। एक गैलन पेट्रोलमें यह गाड़ी ८० मील जाती है। इसमें केवल एक व्यक्ति बैठ सकता है। यह मोटरकार एकतीस मील प्रति घंटेके वेगतक तेज़ ले जायी जा सकती है।

गमलोंमें पौधे रोपना

एक पाठकने दिसंबरके विज्ञानमें छपे लेखके संबंधमें यह पूछा है कि 'यदि बेचनेके लिये पौधे गमले में रोपे जायं तो गमलोंके खर्चके अतिरिक्त समय इतना लग जायगा कि इस रोज़गारमें कुछ नफ़ा न होगा। इस कठिनाई पर भी क्या आपने कभी ध्यान दिया है ?

परन्तु असली बात यह है कि यदि काम क्रमानुसार किया जाय तो समय बहुत नहीं लगेगा। अमरीकाके एक व्यक्तिने एक दिन दस घंटेमें साढ़े ग्यारह हज़ार गमलोंमें वरबेनाके कटिंग रोपे*। केवल दो लड़के उसकी मदद कर रहे थे जिनका काम सिर्फ़ भरे गमलोंका उठाना और नये गमले तथा कटिंग लाना था। मिट्टी पहलेही से रख ली गयी थी। उक्त कारीगरके लिये १० घंटेमें दस हज़ार गमलोंमें कटिंग रोप लेना साधारणसी बात है। मामूली कारीगर भी एक घंटेमें ७५०० गमले भर सकते हैं। इतना जल्द काम करने परभी प्रत्येक गमलेमें कटिंग अच्छी तरह रोपा जाता है।

पौधोंको गमलोंमें लगानेकी रीति

कटिंगोंको गमलोंमें लगानेकी क्रिया है तो बहुत सरल, परन्तु इस कामको अच्छी तरह करना चाहिये, जिसमें पौधोंकी वृद्धिमें कोई रुकावट न पड़ जाय। असावधानीसे रोपनेके कारण बहुतसे पौधे मर जाते हैं। बेहन और कटिंगको पहले २ इंचके गमलोंमें लगाया जाता है। यह आवश्यक है कि उस समय पौधोंकी जड़ एक नियत आकारके हों। बहुत बड़ी और बहुत छोटी जड़वाले पौधोंके मर जानेका विशेष डर रहता है। जड़ जब ½ इंचकी हो तभी पौधोंको गमलोंमें लगानेके लिये अच्छा समय है। बड़ी दूकानोंमें पौधे अग्र लिखित रीतिसे गमलोंमें लगाये जाते हैं। पहलेमें खाद मिलाकर मिट्टी तैयार कर ली जाती है। कारीगर खाली गमलोंको बायीं ओर और भरे हुए गमलोंको रखनेके लिये एक पटरा दाहिनी ओर रख लेता है। एक साथही बायें हाथसे वह खाली गमला उठाता
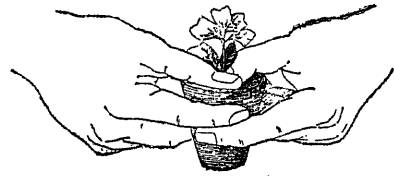
चित्र १—कटिंग या बेहनको २ इंचके गमलेमें लगाने की रीति।

है और दाहनेसे एक मुट्ठी मिट्टी। गमलेको सामने रखकर जबसे वह उसमें दाहने हाथसे मिट्टी डालता है तबसे बायें से पौधा उठाता है। दाहने हाथमें वह कुछ मिट्टी बचा लेता दाहने हाथकी अँगुलीसे गमलेकी मिट्टीमें गढ्डा बना देता है। इसमें वह पौधा रखता है और साथही दाहने हाथमें बची हुई मिट्टी भी गमलेमें छोड़ देता है। अब वह गमलेको चित्र १ की रीतिसे पकड़कर मिट्टीको दबा देता है। फिर हाथोंकी स्थिति बदलकर वह मिट्टीको एक बार फिर दबाता है। इस प्रकार मिट्टी सब जगहसे दब जाती है। अब वह गमलेको पटरेपर रख देता है। वह अब फिर दाहने हाथसे

---

* देखिये बेली-स्टैंडर्ड साइक्लोपीडिया आफ़ हार्टिकलचर पृ० २७७१। वर्तमान लेखके चित्र इसी पुस्तकसे लिये गये हैं

मिट्टी और बायेंसे खाली गमला उठाता है। इस प्रकार नियमानुसार काम करनेसे आश्चर्यजनक फुरतीसे काम होता है।
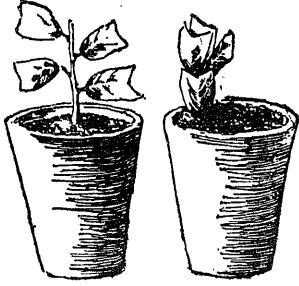
चित्र २—पौधा ठीक बीचमें रहे। दाहने ओरके गमलेमें पौधा गलत लगा है।

यह आवश्यक है कि पौधा गमलेके बीचमें लगे। मिट्टी में जड़के साथ-साथ तना भी न धँस जाय और न पौधा इतना ऊपर लगाया जाय कि मिट्टीमें पूरी जड़ न दबे।
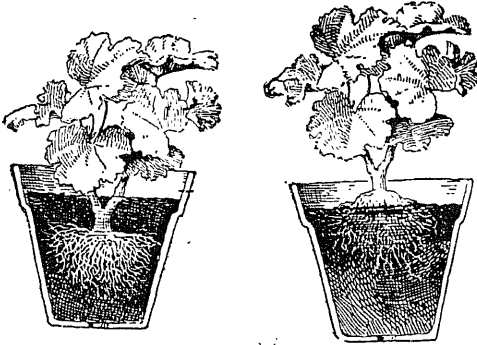
चित्र ३—पौधा बहुत गहरा लगा है। चित्र ४—पौधा बहुत ऊँचा लगा है।

फिर गमला मिट्टीसे भर न जाय—पानीके लिये थोड़ी जगह अवश्य छूटी रहे। इन्हीं बातोंपर बड़े गमलोंमें पौधे लगाते समय भी ध्यान रखना चाहिये (चित्र २,३,४,५,६)।

गमले जहाँ रक्खे जायँ वहाँ वे चौरस रक्खे जायँ जिसमें उनमें पानी भरा जा सके। पौधोंको गमलोंमें लगानेके बादही उनको पानी ज़रूर देना चाहिये और दो या तीन दिन तक उनको धूपसे बचाना चाहिये। (यदि पौधा ऐसा हो जो बराबर छायाही पसंद करे तो बात दूसरी है, नहीं तो दो तीन
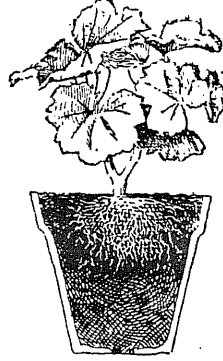
चित्र ५—गमलेमें मिट्टी बहुत भरी गई है।
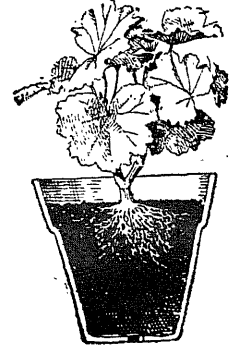
चित्र ६—इस गमलेमें पौधा ठीक लगा है।

दिन बाद उनको कुछ समयतक धूप अवश्य मिलना चाहिये)।

यदि गमले बहुतसे हों तो धूपसे बचानेके लिये उन पर मोटी चादर तान देनी चाहिये, और सात-आठ दिनतक पौधोंको दो पहरकी धूपसे बचाना चाहिये। धूपकी मात्रा धीरे-धीरे बढ़ानी चाहिये। ध्यान रखना चाहिये कि गमले सूख न जायें। इसके लिये उनको दो इंच बालूमें गाड़ रखना अच्छा होगा जिसमें वे जल्द सूख न जायें। फिर, गमलोंमें पौधोंको लगानेके कुछ समय पहले गमलोंको पानीसे अच्छी तरह तर कर देना चाहिये और उनको इस प्रकार रख देना चाहिये कि उनका पानी निथर जाय, और उनकी ऊपरी सितहपर फ़ालतू पानी न लगा रहे।

गमलेमें जो मिट्टी भरी जाती है वह गीली न रहे, परन्तु वह एक दम सूखी भी न रहे। ठीक दशाकी पहचान यह है कि हाथमें लेकर ज़ोरसे दबाने पर बँधे।

जमीनमें लगे पौधे

अकसर ज़मीनमें उगाये पौधोंको गमलोंमें लगानेकी आवश्यकता पड़ जाती है। ऐसे पौधे पाँच इंचसे कम व्यासके गमलोंमें नहीं लगाये जा सकते। फिर, केवल अँगूठेसे दबानेसे मिट्टी काफ़ी न दब सकेगी। इस कामके

लिये एक लकड़ी चाहिये जो करीब १ इंच व्यासकी हो और जो बसूलेसे गढ़कर एक ओर केवल ⅛ इंचकी कर दी गयी हो। मोटाई धीरे-धीरे, क़रीब ४ इंचकी दूरीसे कम की जाय। लकड़ी इस प्रकार खुरपीकी शकलकी हो जायगी। पौधा रोप देनेके बाद और मिट्टीके सधारण रीतिसे दवा लेनेके बाद इस लकड़ी को गमलेकी सितहको छूते हुए घुसा-घुसा कर मिट्टीको ठूँसना चाहिये। इस प्रकार जो जगह खालीहो उसमें और मिट्टी भरनी और दबानी चाहिये।

पौधेके बीचमें रहने, जड़ न उलटने आदिके बारेमें जो पहले लिखा गया है उसपर अबभी ध्यान रखना चाहिये।
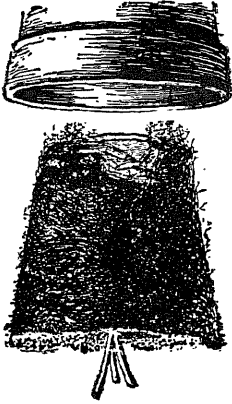
चित्र ६—जड़ोंकी जाँच गमलेको उलटकर और पौधेको निकालकर की जा सकती है।

जब सब मिट्टी नन्हे-नन्हे जड़ोंसे बंध जाय, जैसा इस चित्रमें दिखलाया गया है, तो गमला बदल देना चाहिये।

गमले बदलना

गमला बदलनेकी क्रिया भी उसी प्रकारकी है जाती है जैसे पहली बार गमला भरते समय। जब पौधेकी जड़ इतनी बढ़ जाय कि गमलेकी सब मिट्टी नन्हे-नन्हे जड़ोंसे बंध जाय और गमलेसे निकालनेपर इसकी सूरत चित्र ६की-सी लगेतो पौधेको बड़े गमलेमें लगाना चाहिये। अनुभव हो जाने के बाद पौधेके देखनेसे ही पता चल जाता है कि गमला बदलनेकी आवश्यकता है या नहीं, परन्तु आरंभमें गमला उलटकर और ज़रा सा ठोंककर मिट्टी सहित पौधेको बाहर निकालकर देख लेना ही अच्छा है, यदि गमला बदलनेमें देर हो जायगी तो पौधेका बढ़ना रुक जायगा और पौधेको बड़ी हानि पहुंचेगी।

गमलेको उलटकर ठोंकते समय एक हाथ नीचे लगाये रखना चाहिये, जिसमें पौधा पृथ्वीपर गिरकर नष्ट न हो जाय। यदि गमला बड़ा हो तो अंगुलियोंको फैलाकर,

चित्र ८—बड़े गमलेमें पौधेके रोपनेकी रीति

पौधेकी एक बगल तर्जनी, एक बगल बिचली अंगुली लगा कर और दूसरे हाथसे औंधे गमलेकी पेंदी पकड़कर दीवाल से गमलेको ठुकराना चाहिये।

पौधेको एक गमलेसे दूसरेमें बदलते समय ऊपरी किनारेकी मिट्टी जितनी दूरतक आसानीसे निकल सके

चित्र ९—गमला बदलते समय मिट्टीका ऊपरी किनारा झाड़ देना चाहिये। इससे थोड़ी नयी मिट्टी ऊपर भी रखनेके लिये स्थान मिल जाता है। इस जगह जड़ें नहीं रहतीं।

निकाल देनी चाहिये (चित्र ९)। यहाँ जड़ नहीं रहता। अभिप्राय यह है कि पुरानी मिट्टी जहाँतक हो सके निकल जाय। उसके बदले खादयुक्त नयी मिट्टी आ जाय।

नये गमलेमें इतनी मिट्टी भरकर कि पौधा उचित ऊँचाईपर आ जाय, पौधेको नये गमलेके बीचमें रखना चाहिये और चारो ओर नयी मिट्टी भरकर खूब दबा देना चाहिये। यदि पहलेकी तरह नियमानुसार काम किया जाय तो एक आदमी दो लड़कोंकी सहायतासे दस घंटेमें चार-पाँच हज़ार पौधे २ इंचके गमलेसे ३ इंचके गमलेमें लगा सकता है। बाजारमें बेंचनेके लिये हज़ारों पौधोंकी बात यह है। निजी बागोंमें पौधे पहले ३ इंचके गमलेमें लगाये जा सकते हैं। फिर वे ४ इंचके गमलोंमें बदल दिये जा सकते हैं।

पानीकी निकासी

४ इंचसे बड़े सब गमलोंमें पानीकी निकासीका पूरा प्रबंध करना चाहिये। कड़ी लकड़ीवाले पौधोंके लिये तो ४ इंचवाले गमलोंमें भी पानीके निकासीका प्रबंध चाहिये। गमलोंकी पेंदियोंमें छेद तो रहताही है परन्तु, प्रबंध करना पड़ता है कि मिट्टीसे वे बंद न हो जायँ। इसके लिये गमलेमें पहले बड़े-बड़े ठीकरे रक्खे जाते हैं जिनमें दो चार ऐसे टेढ़े-मेढ़े अवश्य हों कि पेंदीमें वे चिपककर न बैठें। ठीक छेद के ऊपर एक बड़ा टुकड़ा रखना चाहिये, शेष टुकड़े छोटे रहें। लकड़ीका कोयला भी इस कामके लिये बहुत अच्छा है। पाँच या छः इंच व्यासके गमलोंमें नीचे एक या सवा इंच तक कोयला या ठीकरा भरना चाहिये, बड़े गमलोंमें २ इंचतक। कुछ लोग ठीकरोंके ऊपर थोड़ीसी नारियलकी जटा रख देते हैं। यहभी अच्छा है।

गमलोंको पत्थरके टुकड़े, कंकड़ आदि पर या दो ईंटोंपर रखना ठीक है, जिसमें पानीके बह जानेमें रुकावट न हो। चिकनी मिट्टीके ऊपर गमलोंको नहीं रखना चाहिये, क्योंकि तब गमलों का छेद बंद हो जायगा और पेड़ोंके सड़ जानेका डर रहेगा।

फुटकर बातें

जब गमलेकी मिट्टी गीलीहो तब पौधेको बड़े गमलोंमें लगानेकी चेष्टा न करनी चाहिये। मिट्टी इतनी सूखी हो कि अँगुलियोंसे दबातेही वह चूर हो जाय। यदि पुराने गमलोंमें पौधे लगाने हों तो उनको अच्छी तरहसे साफ़ कर लेना चाहिये। बरसातमें खाली गमलोंको मकानमें या दालानमें रखना चाहिये। पानी पड़नेसे वे खराब होने लगते हैं। गमलोंको कभी-कभी अपने स्थानसे हटाते रहना चाहिये, नहीं तो कुछ पौधोंकी जड़ें गमलेके छेदसे बाहर निकलकर ज़मीनमें दूरतक चली जाती हैं और बहुत दिनोंके बाद गमलाके उठानेपर यह जड़ टूट जाती है और पौधेको भारी हानि पहुंचती है।

यदि पौधे बहुत छोटे गमलोंमें लगाये जायँ (जैसे पहले २ इंचके, फिर ३ इंचके, फिर ४ इंचके, इत्यादि, तब तो ज्योंही पौधे इतने बड़े हो जायँ कि गमला बदलनेकी आवश्यकता पड़े त्योंही उनको नये गमलोंमें लगाना चाहिये। परन्तु जब थोड़े बहुतही गमले रक्खे जाते है और वे इतने छोटे नहीं रहते कि उनको बार-बार बदलना पड़े, तब गमले बदलने का कार्य ऋतुके अनुसार किया जा सकता है। साधारणतः उन पौधोंका गमला नवंबरमें बदला जाता है जो जाड़ेमें बढ़ते और फूलते हैं, ये पौधे अधिकांश विलायत या अन्य ठंढे देशसे भारतवर्ष लाये गये हैं। उन पौधोंका गमला फ़रवरी या जुलाईमें बदला जाता है, जो गरमीमें या बर-सातमें बढ़ते और फूलते हैं।

अकसर जो पौधे बाहरसे बिना गमलेके मँगाये जाते हैं, उनकी जड़े कड़ी मिट्टीमें बंधी रहती हैं। ऐसे पौधोंको गमलों में लगानेके पहले पानीमें कुछ समयतक रख छोड़ना अच्छा है जिससे कुछ मिट्टी बह जाय और शेष मिट्टी नरमहो जाय। यदि मिट्टी बहुत कड़ी मेलकी हो तो सब मिट्टीको बह जाने देना चाहिये। ऐसे पौधोंको गमलोंमें रोपनेके और सींचनेके बाद केवल धूपसे ही नहीं, तेज़ रोशनीसे भी एक दो दिन बचाना चाहिये, क्योंकि वह मिट्टीमें जड़के स्थापित होनेमें समय लगता है, तबतक तेज़ धूप या रोशनीसे वे मुरझा और मर जायंगे।

गमलोंमें भरनेके लिये बागकी साधारण खादवाली मिट्टी भाग, १ भाग सड़ी पत्तीका खाद, १ भाग गोबरका खाद और यदि मिट्टी चिकनी मिट्टीहो तो थोड़ासा बालू मिला कर प्रयोग करना उचित होगा।

छोटे पौधोंको खूब बारीक छेदवाले हज़ारोंसे सींचना चाहिये। पौधे बड़ेहों या छोटे, पत्तियांभी धुल जाया करें तो अच्छा है। प्रत्येक गमलेमें इतना पानी देना चाहिये कि सब मिट्टीको तर करके पानी पेंदीतक पहुंच जाय।

हमारे कवरका चित्र

इस मासके कवरपर उस बेधशालाका चित्र छपा है जहाँपर संसारका सबसे बड़ा दूरदर्शक है। बेधशालाके बारजेपर खड़े व्यक्तिसे इस बेधशालाके आकार का कुछ अनुमान किया जा सकता है। प्रत्यक्ष है कि धूप-शीत-वर्षासे बचनेके लिये दूरदर्शकके ऊपर किसी प्रकारका छाजन रखना आवश्यक है, परन्तु यदि छत बंद रहेगीतो फिर और तारे ग्रह कैसे देखे जा सकेंगे? इसीलिये बेधशालाओं पर अर्ध-कंदुकाकार छत रहती है। इसमें एक ओर आवश्यकतानुसार चौड़ा और शिरोबिंदुसे जड़तक लंबा झरोखा कटा रहता है। इसीद्वारा तारे आदि देखे जा सकते हैं, परन्तु यदि छत स्थायी रूपसे जड़ी हो तो आकाशका केवल एक निश्चित भाग ही देखा जा सकेगा। इसलिये छत जड़ी नहीं रहती, वह घुमायी जा सकती है। इस प्रकार आकाशका कोई भाग इच्छानुसार देखा जा सकता है।

इस बेधशालाका नाम है माउंट विलसन बेधशाला, यह एक ऊँचे पर्वत-शिखरपर बनी है।

साधारणतः यहाँतक बादल नहीं पहुंच सकते है। इस लिये यहाँ ग्रहों आदिके निरीक्षणमें वर्षमें इने-गिने दिनोंमें ही बदलीके कारण बाधा पड़ती है। इस बेधशालाके भीतर सौ इंच व्यासका दूरदर्शक है। उसकी लम्बाई ४२ फ़ुट है। दूरदर्शक इस प्रकार आरोपित किया गया है कि इसे घुमाफिरा कर किसी भी दिशामें लाया जा सकता है। इस दूरदर्शकके केवल चल भागकी तौल २७०० मन है। दर्पणही अकेला सौ मनसे अधिक तौलका है। दूरदर्शक, अर्धकंदुकाकार छत और ज्योतिषीकी चौकी इत्यादिको घुमाने-फिरानेके लिये कई बिजलीकी मोटरें हैं, जिनमें कुल मिला कर ५० अश्वबल लगता है। छत १०० फ़ुट व्यासकी है। इस दूरदर्शकके निर्माणमें, मय आरोपण, मकान इत्यादिके ५,४०,००० डालर (लगभग १६ लाख रुपया) खर्च हुआ था।

जिस जमानेमें यह बना था उस समय १०० इंचसे बड़े शीशे ढाले नहीं जा सकते थे, परन्तु अब विद्युत-भट्टों में बड़ी उन्नति हुई है। अभी कुछही समय हुआ २०० इंच व्यासका एक शीशा ढाला गया था। इससे एक नवीन दूरदर्शक २०० इंच व्यासका बनेगा। सभी जानते हैं कि गरम शीशाको पानीमें छोड़ देनेसे शीशा तड़क जाता है। मोटे दलके शीशेको इसलिये बड़ीही सावधानीसे ठंढा करना पड़ता है, क्योंकि पानीको कौन कहे यदि उसे साधारण रीतिसे भी ठंढा होने दिया जाय तो वह अवश्यही टूट जायगा। इसलिये २०० इंच व्यासवाले शीशेको अत्यंत धीरे-धीरे ठंढा होने दिया गया था वस्तुतः उसके ठंढे होनेमें १ वर्षसे ऊपर लगा ठंढा होनेके बाद कारखानेसे इस शीशेको शालातक स्पेशल ट्रेनसे पहुंचाया गया। नवीन वेधशालाकी स्थिति माउंट विलसनसे थोड़ीही दूर पर है। वहाँ इस शीशेको नतोदर बनाने और पालिश करनेकी व्यवस्थाहो रही है। इसके तैयार होनेमें कम-से-कम तीन वर्ष लगेंगे। तब तकतो १०० इंचवाला दूरदर्शकही संसारका सबसे बड़ा दूरदर्शक रहेगा। जिस बेधशालामें यह १०० इंचवाला दूरदर्शक है उसीका चित्र इस मासके कवरपर छपाहै।

[हिन्दुस्तानी ऐकेडेमीकी कृपासे चित्र डाक्टर गोरख-प्रसाद कृत 'सौर परिवार'से लिया जा सका है]।

शल्यशास्त्रका चमत्कार

शिकागोका डाक्टर शिवंडने एक चूहेका पैर काटकर दूसरे चूहेमें लगा दिया है और तारीफ़ यह है कि टाँग इस सफ़ाई से लगायी गयी है कि इसका नवीन मालिक इसकी अँगुलियों को भी इच्छानुसार हिला सकता है। पुराने चूहेकी टाँग एकाएक नहीं काट दी गयी थी। कुछ दिनोंतक टाँगको अंशतः पहले चूहेसे भी संबद्ध रक्खा गया था। जब टाँगकी कुछ नसें दूसरे चूहेकी नसोंमें जुट गयीं, तो पहले चूहेको अलग कर दिया गया।

रि-टचिंग

कुछ लोग रि-टचिंगको बहुत कठिन समझते हैं और अधिकांश लोग यही समझते हैं कि बिना रि-टचिंगके अच्छे फ़ोटो बनही नहीं सकते।

ये दोनों बातें गलत हैं। रि-टचिंग आसान है और बिना रि-टचिंगके भी बहुत अच्छे फ़ोटो उतरते हैं। सच पूछा जाय तो साधारणतः रि-टचिंगकी आवश्यकता पड़नी ही नहीं चाहिये। विशेषकर यदि पैनक्रोमैटिक प्लेट या फ़िल्म पर फ़ोटो उतारा जाय और लेंज़पर उचित रंगके प्रकाश-छननेका प्रयोग किया जाय तो रि-टचिंगकी आवश्यकता बहुत कम रह जाती है। तो भी थोड़ा-बहुत रि-टचिंग जाननेसे समय-कुसमयपर बहुत काम निकल सकता है। इसलिये रि-टचिंग सभी व्यवसायी फ़ोटोग्राफ़रोंको अवश्य जानना चाहिये। फ़ोटोग्राफ़ी-प्रेमीभी यदि रि-टचिंग सीख लें तो अच्छा है।

नेगेटिवपर पेंसिल और चाक़ूसे काम करनेको रि-टचिंग कहते हैं। पेंसिलसे नेगेटिव स्थान-स्थानपर अधिक गाढ़ा किया जा सकता है और चाक़ूसे खुरचकर यह हलका किया जा सकता है। परन्तु साधारण नेगेटिवपर पेंसिल न चलेगा। इसलिये पहले नेगेटिव पर 'रि-टचिंग मीडियम' लगाया जाता है। रि-टचिंग मीडियम रजनको तारपीनमें घोलकर बनाया जाता है और बना-बनाया फ़ोटोग्राफ़रोंकी दूकानोंपर बिकता है। अंगुलीपर कपड़ा तानकर और कपड़ेपर एक बूंद रि-टचिंग मीडियम लेकर नेगेटिवके उस भागपर रगड़ना चाहिये जहाँ पेंसिलसे रि-टचिंग करना हो। मीडियम बहुत पतला लगे। इसके पूर्णतया सूख जानेके बाद ही रि-टचिंग आरंभ करना चाहिये।

परन्तु रि-टचिंग मीडियम लगानेके पहले ही चाक़ूका काम समाप्त कर लेना चाहिये। वह छुरी अच्छी होती है जो निबके रूपमें मिलती है और साधारण अंग्रेजी क़लमों में निबके स्थानपर लगायी जा सकती है। (चित्र १)* । एक ही बार नेगेटिवको बहुत सा खुरच डालनेके बदले फुलफुले हाथ, धीरे-धीरे खुरचना अच्छा है। यदि चाक़ूको जोरसे दबाया जायगा तो खुरच जानेके बदले जेलेटिनकी झिल्ली कट जायगी।

चित्र १—नेगेटिवको चाक़ूसे खुरचकर उसे हल्का किया जा सकता है।

पेंसिलके काममें भी उसे बहुत फुलफुले हाथ चलाना चाहिये। पेंसिलको बहुत बारीक बनाना चाहिये और खूब लम्बी नोक निकालनी चाहिये। एक 'एच' और एक 'एच-बी' पेंसिल रखनेसे हलका-गाढ़ा काम इच्छानुसार आसानीसे बनाया जा सकता है, परन्तु स्मरण रखना चाहिये कि रि-टचिंगमें शीघ्रता न करें। बार-बार पेंसिल चलाकर घनत्व ठीक हैं, न कि एकही बार जोरसे पेंसिल दबा कर। ऐसा करनेसे

* दोनों चित्र डाक्टर गोरखप्रसादकी 'फ़ोटोग्राफ़ी'से लिये गये हैं।

जिलेटिनकी झिल्ली कट जायगी, पेंसिल से बहुत बारीक लकीरें एक दूसरेसे प्रायः सटी हुई खींचनी चाहिये। फिर इन लकीरोंको काटती हुई अन्य रेखाएं खींचनी चाहिये। इस प्रकार उसी स्थानपर कई बार रेखाओंके खींच देनेसे वहाँका कालापन बढ़ जायगा।

पहले रद्दी नेगेटिवोंपर चाकू और पेंसिल चलाना सीखना चाहिये। इनके प्रयोगमें अभ्यस्तहो जानेपर ही रि-टचिंग आरंभ करना चाहिये।

रि-टचिंग करनेवालेको साधारण चित्रकारीका थोड़ा-बहुत ज्ञान अवश्य होना चाहिये।

रि-टचिंग करनेके लिये नेगेटिवको इस प्रकार रखना चाहिये जिसमें इसकी पीठद्वारा प्रकाश आये (चित्र २)। इस कामके लिये 'रि-टचिंग डेस्क' मोल लिया या बनाया जा सकता है। हाथके नीचे रूमाल रख लेना चाहिये, जिसमें पसीनेसे नेगेटिव खराब न हो।

रि-टचिंगका काम बहुत बारीक होता है। इसलिये अकसर यह काम स्त्रियोंके सिपुर्द किया जाता है। उनकी सुकुमार अंगुलियाँ मरदोंकी अपेक्षा इस कामके लिये अधिक उपयुक्त होती हैं।
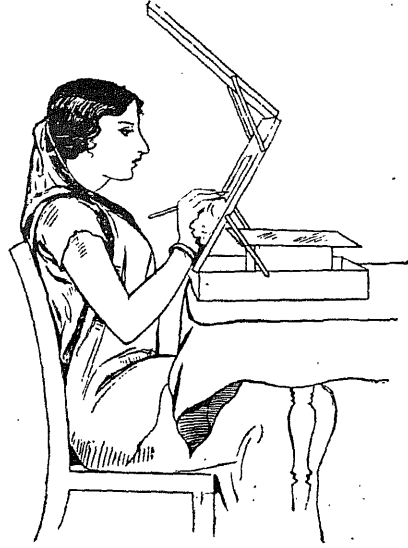
चित्र २—नेगेटिवपर पेंसिलसे रेखाएँ खींचकर उसे गाढ़ा किया जा सकता है।

ताज़े समाचार

तेज़ रेलगाड़ी

डेनवर और शिकागो शहरोंके बीच चलनेवाली एक तेज़ रेलगाड़ी ऐसे इस्पातकी बनी है जिसमें कभी मुर्चा लग नहीं सकता। चाँदीकी तरह चमकती हुई इस गाड़ीने केवल सवा बारह घंटेमें १०१७ मीलका रास्ता तय किया। बीचमें एक जगह इसका वेग ११६ मील प्रति घंटा होगया था। इस गाड़ीके भीतर ऐश्वर्यके सब सामान हैं। एक दूसरेसे बात करनेके लिये टेलिफ़ोन और गाना सुननेके लिये बेतार-के-तारका यंत्रभी लगा है। इसमें ३००० अश्वबलका इंजन है और केवल बारहही गाड़ियाँ जोती जाती हैं।

तारद्वारा हस्तलिपि भेजी जायगी

शिकागो और न्यू-यार्क शहरोंमें अब ऐसा यंत्र लगा है कि एकसे दूसरेतक तार भेजनेमें खट-खुट-खट-खुट संकेत भेजनेके बदले असली लिखावटकी सच्ची प्रतिलिपि भेजी जायगी। हस्तलिखित या छपे पत्रको एक स्थानके यंत्रमें छोड़नेसे उसकी प्रतिलिपि दूसरे स्थानमें उतर आयेगी। इसका सिद्धांत तो वैज्ञानिक वर्षोंसे जानते थे, परन्तु अब इसका नियमित रूपसे बराबर प्रयोग किया जायगा। इस प्रकार किसी भी लिपि या भाषामें लिखा पत्र कुछ ही क्षणोंमें एक शहरसे दूसरेतक पहुंच जायगा।

दैत्याकार आम

गत दो वर्षोंमें अमरीकाके वैज्ञानिकोंने दोसौसे ऊपर पेटंट केवल फलोंका कराया है। इन नवीन फलोंमेंसे एक 'नीबू-नारंगी' है। यह देखनेमें बड़े नीबूके समान है, और इसका रंगभी नीबूकी ही तरह है, परन्तु खानेमें यह नारंगी की तरह है। एक व्यक्तिने आमोंकी एक नवीन जाति पैदाकी है। ये आम लम्बाईमें १ फुटसे कुछ बड़े होते हैं। और इनका घेरा क़रीब डेढ़ फ़ुट होता है। इसके अतिरिक्त यह तीन महीने तक बराबर फलता रहता है और दूर-दूरतक यह पारसल द्वारा भेजा भी जा सकता है, क्योंकि यह शीघ्र नहीं घुलता।

रसायन-विज्ञानका नोबेलपारितोषिक, प्रो० डिबाइ

सन् १९३६का नोबेलपारितोषिक इस बार प्रोफ़ेसर पी० डिबाइको मिला है। इस आनन्दमयी घटनासे उनके समस्त प्रशंसकों और मित्रोंको बहुत सन्तोष होगा। प्रो० डिबाइने विज्ञानकी वृद्धिमें अनेक दिशाओंमें सहायता दी है। त्रिविध वैज्ञानिक विषयोंपर उनके अनुसन्धान इतने हुए हैं कि वे व्यापकसे हो रहे हैं। परन्तु सबमें उनके व्यक्तित्वकी छाप पड़ी हुई है। उनके व्यक्तित्वमें दो गुणोंका अद्भुत समावेश हुआ है। जगत्की वास्तविकताओंका जिस तरहसे उनमें सूक्ष्म ज्ञान है, उसी तरह उनमें गणितके बारीक विश्लेषणकी भी असाधारण योग्यता है। फलतः जहां वे बड़ी साहसयुक्त कल्पनाएं बांध सकते हैं, वहांवे जिन सूत्रोंके निष्कर्षपर आते हैं उनकी दृढ़ता और तर्कसंगतिकी पूरी रक्षा भी कर सकते हैं। आरंभमें तो उनकी शिक्षा, ऐंस्टैनकी तरह, (इंजिनियर) शिल्पविशारदकी हुई किन्तु उसीके बाद सामरफेल्डके चरणोंमें बैठकर उन्होंने भौतिक सिद्धान्तों का बड़ा गम्भीर अनुशीलन किया। यह शिक्षा और अनुशीलन निष्फल नहीं हो सकता था। वायव्योंमें द्विध्रुवी गतियों, विशिष्ट तापों और प्रबल विद्युत् विश्लेष्योंकी धारणापर आपके बड़े महत्वके काम हुए हैं। विशेषतः "चूर्ण-पद्धति" से एक्स किरणोंके विश्लेषणमें, अणुओंद्वारा एक्स किरणोंके बिखेरनेकी क्रिया, और एक्स किरणोंके वर्त्तनपर तापक्रमके प्रभावपर आपकी खोज तो प्रसिद्ध है। कहा जाता है कि अध्यापनभी आपका बहुत रोचक होता है। अभी छः बरस हुए आपको रायलसोसायटीने रम्फोर्डपदक दिया था और तीन बरस हुए आप उसके विदेशी सदस्य वरे जा चुके हैं। इस नये सार्वदेशिक सम्मानके लिये आप वैज्ञानिक जगत्की बधाईके पात्र हैं।

रा० गौ०

भौतिक विज्ञानका नोबेलपारितोषिक, प्रो० हेस और प्रो० हेंडरसन

भौतिक विज्ञानका नोबेलपारितोषिक इस बार इंसब्रुक (आस्ट्रिया)के प्रो० हेस और पासाडेना (कालिफोर्निया)के प्रो० अंडरसन इन दोनों सज्जनोंमें बँट गया। संवत् १९३७ में प्रोफेसर डेसने चार मीलकी ऊंचाईपर मनुष्य और यंत्र-युक्त गुबारा चढ़ाकर यह निश्चय कर लिया कि बन्द (ionisation chamber) यापनागारमें समुद्रतल पर जितना यापन होता है उससे अधिक यापन चार मीलकी ऊँचाईपर होता है, और इससे अधिक ऊँचाईपर तो यापन का वेग बड़ी तेज़ीसे बढ़ता है। इससे उन्होंने यह सिद्ध किया कि विश्वमें इस तरहकी भी किरणें हैं जो अव्याहत गतिसे सर्वत्र प्रवेश करती हैं और जो बाहरसे हमारे वायु-मंडलमें घुस आती हैं। उनके घुसनेसे वायुके परमाणुओंका ऋण और धन यवनोंमें विभाग हो जाता है, जिसे यापन (ionisation) कहते हैं। उन्होंने यहभी सिद्ध किया कि यह यापन क्रिया न तो रातमें घटती है और न सूर्य्यग्रहणकी दशामें घटती है, अतः सूर्य्यसे ये किरणें प्रत्यक्षतः नहीं

आती हैं। कम-से-कम जहांतक इन किरणोंकी गति ऋजु-अथवा लगभग ऋजुरेखामें होती हैं, इस निष्कर्षमें तो सन्देह नहीं हो सकता। हेसके इन प्रयोगोंसे ही यह मत चला कि इन कस्मिकांशुओं वा विश्वांशुओंका स्रोत हमारे विश्वके बाहर ही है। तबसे प्रो० हेसने वायुमंडलकी बिजलीके सम्बन्धमें खोज तो की ही है, साथही उन्होंने भी अच्छी तरह पता लगाया है कि इन किरणोंकी सान्द्रताका समयके साथ क्या सम्बन्ध है। इसके लिये बरसों ठीक-ठीक नाप लेते रहनेकी जरूरत है, क्योंकि अन्तर अत्यन्त सूक्ष्म और विषम है। यह मानकर कि ये किरणें हमारे क्षीरसमुद्रवाले विश्वके बाहर कहींसे आती हैं कामटनने समय और सान्द्रताका जो हिसाब लगाया और हेस और स्टैन-मोररके मापनसे लगभग इसका समर्थन हो गया। प्रो० हेसने कस्मिकांशुओं या परा-विश्व-किरणोंपर इधर पचीस बरसोंसे बराबर काम किया है। उनकी इस विज्ञानसेवाका यह उचित ही पुरस्कार है।

डाक्टर सी० डी० अंडरसनने धनाणुका जो पता लगाया है उसका सम्बन्ध भी विश्व-किरणोंके ही विकिरणसे है। एक प्रबल चुम्बकीय क्षेत्रमें एक (cloud-chamber) घनागारके द्वारा जब वे इन किरणोंके गुणोंका पता लगा रहे थे, अंडर-सनने कई फोटो चित्रोंमें कुछ ऐसे कणोंके निशान पाये जिनकी मात्रा और यापना तो उतनी ही थी जितनी कि साधारण विद्युत्कणोंकी थी, परन्तु चुम्बकीय क्षेत्रमें जिनका वक्रीभवन विपरीत दिशामें होता था जिससे पता चलता था कि इन कणोंमें धनात्मक आवेश है। यह अत्यन्त महत्वका निरी-क्षण सन् १९३२में डाक्टर अंडरसनने "सायंस" नामक पत्रमें छपवाया और लिखाकि जान पड़ता है कि ये (electrons) विद्युत्कणोंके बराबरके ही "धनाणु" हैं। इस तरह सूक्ष्म विद्युत-घटकोंमें एक नया सूक्ष्म घटक मालूम हो गया। इसके बादके अनुसन्धानोंसे पता लगता है कि लगभग आधेके कस्मिकांशुकण धनाणु हैं। साथही यह भी मालूम हुआ है कि जब बहुत ऊँची शक्तिकी गामा किरणोंका स्थूल पदार्थमें शोषण होता है तब धनाणु और ऋणाणु प्रायः जोड़े कण बनते हैं। ये धनाणु अल्पजीवी होते हैं, क्योंकि ये तुरन्तही ऋणाणुओंसे मिलकर अधिक विकिरण उत्पन्न करते हैं। डिशक्की विद्युत्कणोंके सम्बन्धमें यह धारणा है कि ये ऋणाणु और धनाणुसे बने हैं। धनाणुओंका पताजो अंडर-सनने लगाया है उससे डिशककी धारणा पुष्ट हो जाती है।

डा० अंडरसनने कस्मिकांशुओंके विकिरणपर भी बहुतसे अनुसन्धान किये हैं। उन्होंने यह पता लगाया है कि पदार्थमें प्रवेश करनेपर कस्मिकांशुओंकी शक्तिका ह्रास होता है। उन्होंने उनकी रश्मिच्छत्रको शक्तिका अनुशीलन किया है। उन्होंने हालमें यह सिद्ध किया है कि जिन विद्युत्कणोंमें कमसेकम ३ × १०८ विद्युत्कण-वोल्टोंका सामर्थ्य है उनकी विकिरण शक्तिका तो अनुमान और गणनाके अनुसार ही भारी ह्रास होता है। अभी पिछले वर्ष सन् १९३५में ही वे अपना यंत्र साढ़ेचार हज़ार गजकी ऊँचाईपर पाइककी चोटीपर ले गये थे और वहां कस्मिकांशुओंके अनेक छाया-चित्र लिये जिनमेंसे कई अनूठे किरणवर्षाचित्र हैं। "सायंस" में धनाणु संबंधी उनका निबंध उनके वैज्ञानिक जीवनका चौथा ही लेख था। डा० अंडरसन अभी इकतीस बरसके युवा हैं। इतनी भारी और पहली श्रेणीकी खोज करनेवालोंमें ये पहले वैज्ञानिक हैं। और इतनी थोड़ी अवस्थामें जगन्मान्य नोबलपारितोषिक पहले-पहल इन्हींको मिला है। अंतः ये संसारके सबसे अधिक प्रतिभाशाली वैज्ञानिक हैं।

सामूहिक योगक्षेमकी भारतीय नीति

पिछले सौ बरसोंके भीतर जिस वेगसे विज्ञानने विकास किया है उसी वेगसे सम्पत्तिकी उपज और उसकी खपतके स्वार्थमय साधनोंने भी विकास किया है। मनुष्यकी अर्थ लोलुपताने उसे प्रेरित किया कि बिक्रीवाले माल अधिकसे अधिक उपजावे और ससारमें जहां-कहीं होसके उसे खपावे। इसमें लोभियोंकी आपसमें घोर चढ़ाऊपरी हुई। अधिकसे अधिक माल बनने लगे और तरह-तरहसे फंसाकर मानव जातिमें उन्हें खपाया जाने लगा, परन्तु खपनेकी भी हद है। माल तैयार करनेकी कोई हद नहीं। अन्तमें वह अनिवार्य दशा आ गयी कि संसारमें माल बहुत है, खपत नहीं है।

भारतमें विशेषकर और दूसरे सभ्य देशोंमें साधारण रीतिसे समाजका संगठन इससे पहले ऐसा था कि समाजकी जरूरतों भरही माल तैयार होता था और उसकी खपत भी हो जाती थी। चढ़ाऊपरी किसी हदतक थी, परन्तु वह पूंजी-पतियोंकी चढ़ा ऊपरी न थी। वह कारीगरोंकी थी, जिससे कि माल अधिक-से-अधिक चोखा तैयार होता था। हमारे देशमें वर्णाश्रम-धर्म्म समाजकी आर्थिक नीतिका बीमा था।

लोग अपने-अपने रोजगारको छोड़कर दूसरोंके रोजगारपर चढ़ाई नहीं करते थे। उतनाही माल तैयार होता था जितने की मांग थी। आदमस्मिथका अर्थविज्ञान और हमारा अर्थवेद प्रायः एकसा था। हमारे समाजका श्रमविभाग अद्भुत था, संगठन अनोखा परन्तु पूरा वैज्ञानिकथा, सब अपने-अपने कर्त्तव्योंका पालन करते थे। पंचायतोंका अखंड राज था। इससे हमारी अर्थनीति और समाजनीति परस्पर दृढ़ सूत्रोंमें सम्बद्ध थी।

पिछले सौ बरसोंकी पाश्चात्य सभ्यता, पाश्चात्य शिक्षा, पाश्चात्य अर्थविद्या और समाजनीतिकी निष्ठुर चढ़ाईसे हमारा संगठन तहस-नहस हो गया। आज पच्छाहीं पूंजीवादकी भयंकर चढ़ाऊपरी अपना विकराल मुँह बाये हमारे सामने खड़ी है। उसके पीछे अर्थ-लोलुपोंकी ऐसी सेना है जिसने पवित्र ज्ञान-विज्ञानका दुरुप-योग करके उसकी सारी शक्ति अपनी मुट्ठीमें कर रखी है। हमारे अनेक भोले-भाले भाई समझते होंगे कि विज्ञानकी शिक्षा पाकर हमभी कुछ कर सकेंगे, और उन अर्थलोलुपोंका सामना करनेमें समर्थ होंगे। वे यह नहीं देखते कि इस सेनाके हर सैनिकके एक हाथमें दुनियवी ऐश-आरामकी सामग्री है और दूसरे हाथमें व्यवसाय-नीतिका जाल है। जो ऐश-आरामकी सामग्रीपर लुभाकर उसकी ओर लपकता है, व्यवसाय नीतिके जालमें फँस जाता है। आज हम इस सेनाका मुकाबला कैसे करें? **हमजो जालसे बचना चाहें तो हमें ऐश-आरामकी समाग्रीका परित्याग करना चाहिये।**

हमारे सामूहिक योगक्षेमके लिये यही अच्छी नीति है। ग्रहण करनेमें, अनावश्यक वस्तुओंको खरीदनेमें, हम उस जालमें फँसते हैं। हमारे लिये अनावश्यक वस्तुओंसे दूर रहनेमें ही भलाई है। इस सूत्रको अपने हर काममें बरतकर देखिये कि आपका व्यक्तिगत कितना लाभ होता है। व्यक्तियोंके लाभमें ही समूहका लाभ छिपा है।

अगर हमारी आंखोंमें अणुवीक्षणकी शक्ति होती

एक लड़केने खुर्दबीनसे कई सूक्ष्म वस्तुओंका तमाशा देखनेके बाद मुझसे पूछा था कि "परमेश्वरने हमारी आंखोंको यह ताकत क्यों न दी"? सवाल बड़ा बेढब था। सचमुच इसमें देनेवाले परमेश्वरका क्या बिगड़ता था? दे देता तो हम बारीकसे बारीक चीज देख लेते और इस दुनियाके न जाने कितने भेद खुल जाते। पर शायद परमेश्वरने देखा कि आदमीको इतनी बारीक देखनेवाली निगाह नहीं चाहिये। या शायद हमारी जरूरतोंने आपही इतनी कम निगाह पैदा कर रखी है। हमारी इन्द्रियोंका विकासतो हमारी जरूरतोंके अनुसार हुआ है। इस बातको तो हमारे पुराण भी मानते हैं। ब्रह्माजी ने अकचकाकर चारों ओर जो निहारना चाहा तो उनके चार मुँह और आठ आँखें हो गयीं। दसों दिशामें देखते तो शायद ढाई गुने अधिक हो जाते।

पर थोड़ी देरके लिये मानलें कि प्रकृतिने किसीको अणुवीक्षण यंत्रकी सी आंखें दी हैं। अणुवीक्षण यंत्रमें तो उन्नतोदर ताल लगा रहता है। इसी तरह उसकी आंखका ताल भी उन्नतोदर होगा और शायद कई ताल उसी तरहके लगे होंगे जैसे कि यंत्रमें होते हैं। शायद आंखमें भी वैसा ही प्रबन्ध होगा। मानलो, कि यह सब कुछ है और उसकी आंख अधिकसे अधिक सूक्ष्म देखनेवाले यंत्रसे भी ज्यादा ताकतकी है, और वह अणुओंतक देख सकती है। अब वह इस मासिकपत्रके पन्नेको कैसा देखेगा? शायद उसे यह पन्ना दीखेगा ही नहीं। वह शायद जिस भागपर निगाह डालेगा वह अणुओंका एक विचित्र समूह मालूम होगा। इसपर छपे किसी एक अक्षरको वह देखेगा तो उसे कागजके अणुओंपर कोयलेके अणु इस तरह बिखरे दीखेंगे कि सामूहिक दृष्टिसे बहुत बड़े विस्तृत पैमानेपर वह किसी अक्षरका चित्र देखेगा जो लम्बे चौड़े मैदानमें फैला हुआ होगा। वह अपनी निगाह इसी तरह कई मीलकी लंबाईमें दौड़ाकर कहीं एक शब्दको आदिसे अन्ततक देख सकेगा। गरज कि वह ऐसी अणुवीक्षक आंखके होते पढ़ न सकेगा। यह तो पढ़नेकी बात हुई। यही दशा सभी कामोंमें होगी। वह राह न देख सकेगा। भोजनकी वस्तुओंको न देख सकेगा। आदमी, जानवर, घर, द्वार, किसी चीजको वह न देख सकेगा। अन्धोंमें और उसमें कोई अन्तर न होगा।

इसीलिये हमारी आंख जैसी है, हमारी जरूरतके लिये वैसीही ठीक है। बारीक चीजको, या बहुत दूरकी चीजों को देखनेके लिये हमें आंख नहीं चाहिये, बल्कि उपयुक्त यंत्र चाहिये। रा० गौड़०।

पुण्यश्लोक रायबहादुर लाला सीताराम साहबका साकेतवास

२० जनवरी १८५८—१ जनवरी १९३७ ई०

रायबहादुर लाला सीताराम साहबका विज्ञान परिषत्से और विज्ञानसे बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध था। परिषत् के आप पहले जन्मदाता प्रधान मंत्री थे, और "विज्ञान" के पहले सम्पादक थे, इन पंक्तियोंके लेखकने विज्ञानके जन्मकालमें उनके चरणोंमें बैठकर अनेक बातें सीखी थीं। हिन्दी साहित्यका संसार ऐसा व्यावसायिक हो गया कि इस हिमाचल सरीखे सहित्यसेवीकी महत्ताको भी समझ न सका।

लाला सीतारामकी प्रतिभा उनकी छात्रावस्थामें ही चमकी। जब हममेंसे अनेक बूढ़ोंका जन्म भी नहीं हुआ था, जब प्रयाग विश्वविद्यालयका स्वप्न भी किसीने न देखा था, उन्हीं दिनों सन् १८७९ ई० में ठीक इक्कीस वर्षकी अवस्थामें कलकत्ता विश्वविद्यालयके ग्रेजुएटोंमें आप प्रथम श्रेणीमें प्रथम हुए। १००) की मासिक छात्रवृत्ति मिली कि कलकत्तेमें पढ़ें। परन्तु पिताने जाने न दिया, फिर भी आपकी इसी प्रतिभाके नाते कलकत्ता विश्वविद्यालय अब तक आपका सम्मान करता रहा। आपने अवध-अखबारमें उसी समयसे तीन बरस तक बराबर वैज्ञानिक लेख दिये। उर्दूके साहित्यकारोंमें आपका दर्जा ऊँचा था। आपने उर्दू साहित्यको अनेक ग्रन्थोंसे अलंकृत किया। अध्यापकके पदपर पहले-पहल सन् १८७९ में ही बनारस-कालिजमें नियुक्त होकर आये तो बाबू हरिश्चन्द्रसे मैत्री हुई और हिन्दी साहित्यकी ओर आकृष्ट हुए। तभीसे आपने इसके भंडारको भरना आरंभ किया। एक ओरसे कालिदास और दूसरी ओरसे शेक्सपिअरकी रचनाओंके पद्यानुवाद कर डाले।

सन् १८८३ ई० में पहले-पहल मेघदूत और चाणक्य शतक लिखा। दूसरे ही साल कुमारसंभवके सात सर्गोंके पद्यानुवाद छपवाये। इसी साल शेक्सपियरके कॅमिडी आफ़ एररसका उर्दू अनुवाद "भूल भुलैयां" छपवाया। सन् १८८१ में रघुवंशके सात सर्गोंके पद्यानुवाद छपवाये और पचतंत्रके पांचवें तन्त्रका भी गद्यानुवाद निकला। सन् १८८६में रघुवंशके आरंभके सात सर्ग निकाले। अगले वर्ष नागानन्दका गद्यपद्यात्मक अनुवाद निकला। अगले तीन वर्षतक कई नाटकोंसे उर्दू साहित्यको अलकृत किया। सन् १८९२में सावित्री तथा पूरा रघुवंश छपा। अगले वर्ष ऋतुसंहारका पद्यानुवाद निकला। सन् १८९७में तीन नाटक महावीर चरित, उत्तर रामचरित और मालती माधवके हिन्दी रूप छपे। मालविकाग्निमित्र और मृच्छकटिक सन् १८९८—९९में निकले। फिर किरातार्जुनीय और हितोपदेशके अनुवाद निकले। संस्कृत साहित्यके इन ग्रन्थोंके अनुवाद अबतक हिन्दीमें तो हुए ही न थे और कम-से-कम किसी एक विद्वानने इकट्ठे तो इतना काम आजतक नहीं किया। साथ-ही-साथ उर्दूका भंडार भी भरा और खूब भरा। आपने केवल वाङ्मयमें ही अपनी विशेषता रखी हो, यह बात भी नहीं है। धार्मिक साहित्यमें भी आपका खासा हिस्सा था। आपने बाल्यावस्थामें बाबा रघुनाथदाससे पढ़ा था और सीतारामोपासक अनन्य भक्त थे। श्रीराम-चरितमानस तो आपको प्राणोंसे अधिक प्रिय था। उसके अपूर्व मर्म्मज्ञ थे। राजापुरके अयोध्याकांडकी शुद्ध प्रति-लिपि आपने बड़े व्यय और विशेष श्रमसे छपवायी। अन्तमें अयोध्याका इतिहास और अयोध्यादर्शन सम्बन्धी ग्रन्थ छपवायें। यह इतिहास लिखना आपका ही काम था। आपने भारतवर्षका इतिहास भी लिखा। कहानियां और उपाख्यान और रीडरें आदि पाठ्यग्रंथोंकी तो गिनती ही नहीं। कुछ ही बरस हुए, कलकत्ता विश्वविद्यालयने आपसे छः जिल्दोंमें हिन्दी साहित्यके ऐतिहासिक संग्रह छपवाये, जो वस्तुतः अनमोल चीज है। कोई यह न समझे कि वह कोरे साहित्यिक थे। जिन दिनों संसारमें विज्ञानका आरंभिक काल था और भारतमें उसके लिये अंग्रेजी भाषा ही एकमात्र साधन समझी जाती थी, उस समय आपने ज्योतिष और विज्ञानकी अनेक पुस्तकें हिन्दी और उर्दू में लिखीं। विज्ञान-परिषत्ने आपही जैसे अग्रणी लेखकोंसे मंत्र ग्रहण किया। आप हमारे सच्चे मार्गदर्शक थे। अध्यापकीसे आपने इंस्पेक्टरी की, फिर डिप्टी-कलक्टर हुए और डिप्टी-कलक्टरीसे सन् १९११में पेंशन लेकर प्रयागमें रहने लगे। रायबहादुर डा० ज्ञानेन्द्रनाथ चक्रवर्ती, महामहोपाध्याय डा० गंगानाथ झा आदि जैसे बूढ़े और प्रसिद्ध विद्वानोंको उनके शिष्य होनेका गौरव प्राप्त था। वह नौ-दस भाषाओंके प्रकांड पंडित थे और भारत और भारतके बाहरकी कुल मिलाकर कोई पन्द्रह विद्वत् संस्थाओंसे उनका बराबर सम्बन्ध रहा। हम आज उनको अपनी श्रद्धांजलि अर्पण करते हैं और उनके विशाल परिवारके साथ अपनेको भी सम्मिलित करके ऐसे महान् पुरुषसे सम्बन्ध जोड़कर अपनेको गौरवान्वित समझते हैं। इतनी बड़ी उम्र बिरलेही किसीको मिलती है। हम उनके बड़े परिवारके वियोग-वेदनाके साथ अपनेको सम्मिलित करते हैं। अन्त समयतक उनकी शक्तियां बनी थीं। जहाँ परिवारका प्रबन्ध उनका दिमाग करता था, वहाँ गंभीर अनुसन्धान पूर्ण लेख भी उसी दिमागसे आजभी निकलते थे। फिर भी पिछले बरसों उनके ज्येष्ठ पुत्र श्री गिरिजाकिशोरजीके वियोगके कारण उनको जीवनमें कोई रस न रह गया। वह अन्यमनस्कसे रहते थे। शायद ऐसा न होता तो वे और कुछ दिनों जीते।

—व्यथित हृदय, रामदास गौड़

सिर्फ़ मैटर, वारस्नी प्रेसमें मुद्रित किया
तथा मंत्री विज्ञानपरिषद् प्रयागके लिये वृन्दावनविहारीसिंहने विज्ञान-कार्यालय काशीसे प्रकाशित किया।

जीवन का रहस्य

[प्रोफ़ेसर कर्मनारायण बाहल, डी० एस-सी०]*

विज्ञान परिषद्में अभी तक यह प्रथा चली आई है कि सभापति वार्षिक अधिवेशनमें केवल कार्य-संचालन करता था और व्याख्यान कोई अन्य व्यक्ति देता था, किन्तु मंत्री महोदयने इस वर्ष यह ठान ली है कि यह परम्परा तोड़ दें और सभापति केवल मंच की शोभा मात्र ही न बढ़ावें, प्रत्युत् रणक्षेत्रमें उतर आवें और विज्ञानके दार्शनिक युद्धमें भाग लें। मैंने विवशतः अपनी भूपणात्मिक और सुखमयी परिस्थितिको त्याग कर मंत्री जीकी आज्ञा शिरोधार्य की है और आज के व्याख्यानके लिए "जीवनका रहस्य" नामक विषय चुना है।

मानव सभ्यताके विकाशके प्राचीनतम युगसे ही मनुष्य जीवनके रहस्यके उद्घाटनका प्रयत्न करता चला आया है। जब निचकेताने अपने गुरुसे पूछा था कि मरनेके पश्चात् मनुष्यकी क्या अवस्था होती है, तो वह इसी रहस्यकी चर्चा कर रहा था। यूनानी दार्शनिकोंने भी इस प्रश्नपर अनेक सिद्धान्तोंकी रचना की थी, किन्तु वे सिद्धान्त वैज्ञानिक नहीं कहे जा सकते। वे निरे आध्यात्मिक हैं। वैज्ञानिक तो निरीक्षण, परीक्षण और निगमन (observation, experiment and induction) की विधिसे, अथवा वैज्ञानिक पद्धतिसे ही अपने सिद्धान्त निश्चय करता है।

जीवन की व्याख्या

क्या यह सम्भव है कि हम जीवन की व्याख्या किन्हीं अविच्छिन्न और समान रूपसे वर्तनेवाले प्राकृतिक कारणों द्वारा कर सकें? अभी तक यह सम्भव नहीं हुआ है, किन्तु जीवन-शास्त्रका यही ध्येय है।

यद्यपि जीवनकी परिभाषा देना कष्ट-साध्य है, तथापि जीवनका वर्णन करना सुगम है। जीवन-शास्त्र का प्रारम्भिक ज्ञान ही यह बतलाता है कि प्रत्येक जीव खाता है, पाचन करता है, बढ़ता है, संतानोत्पत्ति करता है। किन्तु वह क्या वस्तु है जो जीवोंको ये शक्तियां अथवा क्रियाएं प्रदान करती हैं, और जो निर्जीव पदार्थमें विद्यमान् नहीं है। आरम्भिक मनुष्यका मत था कि कोई "आत्मा" अथवा "जीवन-शक्ति" बाहर से आकर शरीरमें प्रवेश कर जाती है। और मरने पर निकल जाती है। यह विचार ऐसा ही है जैसा कि उस जंगलीका जो समझता है कि ग्रामोफोनमें कोई प्रेत बोलता है। पाश्चर के परिश्रमका फलस्वरूप यह परिणाम निकला है कि रोगकी प्रेतात्मायें जीवाणु-रूपात्मक हैं। इसी प्रकार जेनर (Jenner) ने भी चेचककी प्रेतात्माओंको वशमें कर चमत्कार कर दिखाया। सारांश यह कि विज्ञान इन प्रेतात्माओंको शरीरमें अधिकाधिक दूर भगाता चला जा रहा है।

प्रस्तुत प्रश्नके समझनेके लिए सजीव द्रव्यके कुछ गुणोंपर सविस्तार विचार करना परमावश्यक है। सभी जीवोंमें एक तो प्रोटीन पाये जाते हैं। यह प्रोटीन निर्जीव प्रकृतिमें पाये जानेवालों यौगिकोंकी अपेक्षा बड़े जटिल हैं। ऐसे जटिल पदार्थ जीवोंमें अथवा तदुत्पादित पदार्थोंमें ही पाये जाते हैं। किंतु यह स्मरण रहे कि भेद केवल जटिलत्वकी मात्रा का है न कि जातिका। क्योंकि उनमेंसे मुख्य पदार्थ प्रयोगशालाओंमें कृत्रिम विधिसे बन चुके हैं। जब तक वोहलर (Wohler) महोदयने यूरिया (urea) कृत्रिम रीतिसे प्रयोगशालामें नहीं बनाया था तब तक यह धारणा थी कि पशु और पौधोंमें

*परिषद् के वार्षिकोत्सव के अवसर पर दिया गया व्याख्यान।

पाये जानेवाले ऐंद्रिक (organic) पदार्थ अनैंद्रिक (inorganic) पदार्थों से सर्वथा भिन्न हैं। ज्यों-ज्यों रसायनशास्त्रकी उन्नति हुई यह भिन्नता भी विलीन हो गयी।

सजीव द्रव्य के जितने भौतिक अथवा रासायनिक गुण हैं उनमें से प्रमुख गुण है निरंतर परिवर्तनशीलता-की सामर्थ्य। इसीको मेटाबॉलिज़्म (metabolisim) कहते हैं। यही समस्त जीवन-प्रक्रियाओंका मूल कारण है। जीव निरंतर खाद्य पदार्थ तथा ओषजन ग्रहण करता और निरंतर कर्बन द्विओषिद (carbon dioxide) तथा अन्य मलोंका उत्सर्ग करता रहता है। खाद्यपदार्थोंका ओषदीकरण तथा विघट्टन होता रहता है। इस प्रकार जो सामर्थ्य कि खाद्य पदार्थके अंदर अंतर्हित है उसका उपयोग जीव अपने अनेक गतियोंके लिए करता है। जिस प्रकार इंजनकी सामर्थ्य ईंधन द्वारा प्राप्त होती है उसी प्रकार जीवोंकी सामर्थ्य खाद्य पदार्थोंसे प्राप्त होती है। इन सब प्रक्रियाओं में पदार्थ अथवा सामर्थ्यकी न तो सृष्टि होती है और न नाश। उनकी केवल कायापलट होती है।

जो कुछ द्रव्य खाद्य पदार्थों और ओषजनके रूपमें जीव ग्रहण करता है, वह अंतमें मलके रूपमें निकल जाता है, केवल थोड़ा-सा भाग वृद्धि और क्षतिपूर्तिके लिए रह जाता है। जो स्थितिशील-सामर्थ्य (potential energy) जीवको प्राप्त होती है वह उष्णता उत्पन्न करने और कार्य-संपादनमें खर्च हो जाती है। स्मरण रहे कि न तो नवीन पदार्थ अथवा सामर्थ्यकी सृष्टि होती है न विनाश। इनका केवल रूपान्तर हुआ करता है। मेटाबॉलिज़्म अथवा जीवन-क्रियाके यही मुख्य अंग हैं, जिनके बिना जीवन असंभव है। सामर्थ्य तथा पदार्थ-की शाश्वतिके सिद्धान्त जिस प्रकार निर्जीव पदार्थोंमें लागू हैं उसी प्रकार सजीव द्रव्यके सम्बन्धमें भी चरितार्थ हैं। यह प्राणिशास्त्रका एक मौलिक सिद्धान्त है।

इंजन से तुलना

परन्तु इंजनकी अपेक्षा जीवित पिंड अधिक जटिल वस्तु है। खाद्य पदार्थ इन पिण्डोंमेंसे उसी प्रकार नहीं निकल जाते जिस प्रकार ईंधन इंजनमेंसे, प्रत्युत वह इस जीते-जागते इंजनके कलपुर्ज़ोंकी मरम्मत भी करते रहते हैं। यदि ऐसा न होता तो निरन्तर होनेवाली छीजनसे वह शीघ्र नष्ट हो जाता। वस्तुतः जीवित पिण्डों-में क्षति और निर्माण दोनों कार्य निरन्तर साथ-साथ होते रहते हैं। जीवित द्रव्यमें दो प्रकारके यौगिक (compound) प्रस्तुत रहते हैं—एक वह जिनके द्वारा अधिकाधिक पदार्थ उत्पन्न होते हैं, दूसरे वह जो मलमें परिणत होते हैं। भौतिक तथा रासायनिक परिवर्तनशील दो प्रकारके पदार्थोंकी धाराओंका नामही जीवित द्रव्य है।

जीवन क्रिया (metabolism) के अनेक अवयवों-के घटित होनेमें ऐंज़ाइम्स और फ़रमेंट्स (enzymes और ferments) अथवा किण्व पदार्थोंसे बड़ी सहायता मिलती है। इन्हींके कारण रासायनिक प्रक्रिया शीघ्रता तथा सुगमतासे होती है। जिस प्रकार प्लाटिनम-कणिका (चूर्ण) से उज्जन पर्योषिद ($H_2 O_2$) की असीम मात्राका विघटन हो जाता है, और उससे उज्जन तथा ओषजन उत्पन्न हो जाती है, उसी प्रकार किण्वकी थोड़ी-सी मात्रासे कर्बोज (carbohydrates), वसा (fat) अथवा प्रोटीन (protien) की अनन्त मात्रा टूट जाती है। ऐंजाइम्सका कर्तव्य यही नहीं है कि पदार्थों-का विघटन करें वरन् सरल पदार्थोंसे जटिल पदार्थों-का निर्माण करना भी उनके लिए संभव है।

जीवन-कार्यके संबंधमें अभी तक विचार उसी प्रकार किया गया है जिस प्रकार साधारण भौतिक तथा रासायनिक प्रक्रियाओंपर किया जाता है। अब तक किसी जीवन-शक्तिका सहारा हमको नहीं लेना पड़ा है।

रसायन-भौतिक दृष्टिसे जीवन वह क्रिया है जिसमें जटिल और श्रमोत्पादित पदार्थ भाग लेते रहते हैं, उनका निर्माण और विच्छेद निरन्तर होता रहता है। किसी एक रासायनिक पदार्थको जीवित द्रव्य नहीं कह सकते, परंतु जीवित-द्रव्य अनेक पदार्थोंका सम्मिश्रण है, जिनमेंसे कुछ अत्यंत जटिल हैं, और कुछ बहुत सरल हैं, और जिनमें जीवनके सब लक्षण पाये जाते हैं।

क्षोभशीलता

जीवन-क्रियाके अतिरिक्त एक और महत्वपूर्ण लक्षण जीवित द्रव्यमें पाया जाता है। वह लक्षण है क्षोभ-शीलता (irritabilty)। इस गुणके कारण ही बाहरी और भीतरी उत्तेजनाओं (stimuli) के घटित होनेपर वे संवेदना (response) प्रकट करते हैं। जीवित पदार्थ अस्थायी समता (unstable equilibrium) की अवस्थामें रहता है और उत्तेजनासे उसमें विक्षोभ पैदा हो जाता है जिसके कारण उसकी बनावट इस प्रकार परिवर्तित हो जाती है कि सामर्थ्य प्रकट होती है। तनिकसी उत्तेजना भी एक भारी परिवर्तन पैदा कर सकती है, जैसे कि एक बटनके दबानेसे घंटी बज उठती है, अथवा इंजन चल पड़ता है, अथवा सुरंगमें विस्फोटन हो जाता है। छोटी-मोटी उत्तेजनाओंसे जो संवेदना होती है, उसको जीवनका एक विशेष गुण अभी तक मानते थे, किन्तु अब इच्छा और स्वभाव (will और instinct) के प्रादुर्भावकी व्याख्या रसायन-भौतिक नियमोंके अनुसार की जाती है। पतंगोंका ज्योतिपर प्राणों का वार देना—जिसका वर्णन उर्दूके कवियोंकी सनातन गाथा है—अब बुनसन-रास्को (Bunsen-Roscoe Law) के प्रकाश-रासायिनिक नियमके अनुसार सहज ही समझमें आ जाता है। इन पतंगोंकी आँखोंमें ऐसे पदार्थ हैं जिनपर प्रकाशका प्रभाव पड़ता है और उसके द्वारा उनमें रासायनिक परिवर्तन हो जाता है। जो पदार्थ इस प्रकार पैदा होते हैं, उनका प्रभाव स्नायु-मण्डल (nervous system) द्वारा पेशियोंपर पड़ता है। जब पतंग ज्योतिके पास हो कर निकलता है तो उसकी एक आँख दूसरेकी अपेक्षा अधिक आलोकित होती है, अतएव स्वतः उसे अपने शरीरको इस प्रकार साधना पड़ता है कि उत्तेजनाका साम्य हो जाय। अर्थात् वह इस प्रकार घूम पड़ता है कि दोनों आँखोंपर समान प्रकाश पड़े। मुड़कर वह शीघ्रतासे उसी तरफ उड़ता रहता है; अतएव ज्योतिमें प्राणोंकी आहुति दे बैठता है।

उपर्युक्त बातोंको ध्यानमें रखते हुए यह कहना उचित होगा कि "इच्छाशक्ति अथवा स्वभाव" मांसपेशियोंका एक कार्य है जो प्रकाशके प्रभावमें नियोजित होता है। अतएव दार्शनिक शब्द 'इच्छा' के स्थानपर 'प्रकाश-रासायनिक प्रक्रिया' का प्रयोग न्यायसंगत है।

माता का प्रेम

हम खाते, पीते और सन्तानोत्पादन इसलिए नहीं करते कि कोई समझौता हो गया है, प्रत्युत् हम इन कामोंको विवश हो कर यंत्रवत् करते हैं। माता अपने बच्चोंको प्यार और उनकी परिवरिश इस लिए नहीं करती कि यह धर्म्मशास्त्र में लिखा है, वरन् इस लिए करती है कि यह भी उसी प्रकार उसको परम्परागत रूपसे प्राप्त हुआ है जैसे कि उसकी स्त्री शरीर।

जीवनका एक और मुख्य लक्षण सन्तानोत्पादन है। निर्माणकी दृष्टिसे यह वह कार्य है जिसमें माता-पिताके शरीरोंका एक भाग-विशेष अलग होकर एक नया जीवित पिण्ड बन जाता है। एक दृष्टिसे यह एक नये जीवन का आरम्भ है। जीवनका आरम्भ कैसे हुआ? इस प्रश्नका उत्तर देना तो वर्तमानमें हमारी शक्तिके बाहर है, तथापि एक दूसरी सरल समस्या हम सुलझा सके हैं। शुक्राणु (sperm) के द्वारा अण्डा एक नये व्यक्तिके रूपमें कैसे परिवर्तित हो जाता है—यह हमको मालूम हो गया है।

अंडेसे बच्चेका निकलना भौतिक और रासायनिक क्रिया है

लेब (Loeb) ने समुद्रार्भक (see-urchin) के अण्डेपर नवनीताम्ल (butyric acid) की क्रिया करके हैपरटोनिक समुद्रजल (hypertonic sea-water) का प्रयोग किया। इस कार्यका वही प्रभाव पड़ा जो शुक्राणुका होता है। उन्होंने इन अण्डोंसे इल्ली पैदा कराके प्रयोग छोड़ दिया, किन्तु शियरर (Shearer) और तदनन्तर डिलेज (Delage) ने ऐसी इल्लियोंको सन्तानोत्पादनकी अवस्था तक जीवित रक्खा।

इसी प्रकार मेंढकके अण्डोंको एक सुईद्वारा, जिसके सिरेपर रुधिर लगा था, भेदन करनेसे बच्चे पैदा हो गये। अतएव यह कहना न्याय-संगत होगा कि शुक्राणुद्वारा अण्डोंकी वृद्धि और विकासका कार्य्य भी भौतिक और रासायनिक क्रिया है।

हमारी शक्तिके बाहर है

मैंने संक्षेपमें जीवनके तीन पहलुओंपर विचार किया है, जिनका सबंध जीवन-क्रिया, क्षोभ-शीलता और उत्पादन से है। मैंने यह बतलानेकी चेष्टा की है कि इन महत्व-पूर्ण प्राकृतिक घटनाओंकी व्याख्या आधुनिक युगमें भौतिक और रासायनिक नियमोंके अनुसारकी जाती है। किन्तु हमारे जीवनसंबंधी ज्ञानके बीच-बीचमें बड़े-बड़े शून्य-स्थान भी हैं—जिनका पूरा कर देना भविष्यके हाथ में है।

माताके दुलारसे आन्दोलित पालनेसे लेकर श्मशान-की धधकती हुई चितातक हमारा जीवन इच्छाओं और आशाओंसे, प्रयत्नों, द्वन्दों और सफलताओंसे प्रत्युत दुख-मय भग्नाशाओं और विफल मनोरथों से भरा हुआ है। क्या इनकी समस्या भी भौतिक तथा रासानिक नियमों से हल हो सकती है?

वर्तमानमें तो इन रहस्योंकी व्याख्या करना हमारी शक्तिके बाहर है; किन्तु जब कभी किसी रहस्यका परदा उठ जाता है तब हमें आश्चर्य होता है कि परदेकी ओटमें छिपे हुए मर्म को हम पहले से ही क्यों न जान सके थे।

यद्यपि यह कोई नहीं कह सकता कि जीवन-रहस्य-की गुत्थी पूर्णतया सुलझ गई है, तथापि गत ३० वर्ष की महत्वपूर्ण सफल गवेषणाओंसे हमको भविष्यरूप कोशकी असीम सम्पत्तिका कुछ अनुमान लग गया है। यह निश्चय है कि जीव एक यंत्र है, किंतु उसकी विशेषता यह है कि वह आत्मउत्तेजक, आत्मक्षति-पूरक, आत्म-नियामक और आत्मसंरक्षक है। उसकी इस विशेषताकी व्याख्या करना भी परमावश्यक है।

जो कुछ काम अब तक हो चुका है उससे यह स्पष्ट है कि निर्जीव द्रव्योंसे जीवित पदार्थकी उत्पत्ति हो चुकी है और यह आशा की जाती है कि किसी-न-किसी दिन जीवनके आरम्भ का प्रश्न भी हल हो जायगा।

—:o:*:o:—

K. P. Press, Allahabad.

मार्च, १९३७

मूल्य ।)

भाग ४४, संख्या ३

प्रयाग की विज्ञान-परिषद् का मुख-पत्र, जिसमें आयुर्वेद-विज्ञान भी सम्मिलित है

Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces & Central Provinces, for use in Schools and Libraries.

विज्ञान

पूर्ण संख्या
२६४

वार्षिक मूल्य ३)

नोट—बदले के सामयिक पत्रादि, लेख और समालोचनार्थ पुस्तकें, यदि वे आयुर्वेद पर न हों, तो 'संपादक, विज्ञान, बनारस शहर' के पास भेजे जायँ। अन्यथा वे स्वामी हरिशरणानंद, पंजाब आयुर्वेदिक फ़ारमेसी, अकाली मार्केट, अमृतसर के पास भेजे जायँ।

प्रबंध-संबंधी सब पत्र तथा मनीआर्डर 'मंत्री, विज्ञान-परिषद, इलाहाबाद' के पास भेजे जायँ।

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते,
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ३।५॥

भाग ४४ | प्रयाग । मीनार्क, संवत् १९९३ विक्रमी । मार्च, सन् १९३७ ई० | संख्या ६

मंगलाचरण

[श्रीश्यामनारायण पाण्डेय शास्त्री साहित्यरत्न]

पहले सृजनके एक, पीछे तीन, मूर्ति प्रणाम है।
तू विष्णु है, तू शम्भु है, तू विधि, अनन्त प्रणाम है ॥१॥

जलमें अजन्मा! तव करोंसे बीज बिखराया गया।
इससे चराचर-सृजन-कर्त्ता तू सदा गाया गया ॥२॥

हैं भाग तनके स्त्री पुरुष, फल सकल तेरी दृष्टि के।
वे ही बने माता पिता, उत्पत्तिवाली सृष्टिके ॥३॥

तेरी निशा जो दिवस सोने जागने के हैं बने।
वे प्राणियोंके प्रलय हैं उत्पत्ति क्रमसे हैं बने ॥४॥

तू विश्व-योनि, अयोनि है तू विश्व पालक, काल है।
तू विश्व आदि अनादि है तेरा न कोई पाल है ॥५॥

तू जानता निजको तथा निज सृष्टि है करता स्वयम्।
तू शक्तिशाली है अतः है आपको हरता स्वयम् ॥६॥

चरक और सुश्रुतका काल

[श्रीदेवसहाय त्रिवेद, बी. ए., साधोलाल रिसर्चस्कालर, सरस्वती-भवन, काशी]

ऋषिप्रणीते प्रीतिश्चेन्मुक्त्वा चरक सुश्रुतौ।
भेडाद्याः१ किं न पठ्यन्ते तस्माद्ग्राह्यं सुभाषितम्॥
(वाग्भट्ट)

श्रीवाग्भट्टके उपर्युक्त श्लोकसे ज्ञात होता है कि उनके समयमें भी चरक और सुश्रुत ऋषिप्रणीत ग्रन्थ माने जाते थे और भेड़ादि अनेक पुस्तक प्रचलित होनेपर भी पठनीय नहीं थे। किन्तु शोकके साथ कहना पड़ता है कि जो प्राचीनतम आयुर्वेद ग्रन्थ भारतमें प्रचलित हैं उनको पाश्चात्य विद्वान् १६ वीं शताब्दी ईसाबादतक खींच लाते हैं (Hass) किन्तु सभी नीरक्षीर-विवेक पण्डित जानते हैं कि इन पक्षपातपूर्ण पाश्चात्य विद्वानोंकी उक्तियां कितनी विश्वसनीय हैं। आप लिखते हैं कि सुश्रुत शब्द अरबी भाषाके सुक़रात (Socrates) शब्दसे बना है। और यह किसी ग्रीकभाषाके पुस्तकके आधारपर लिखा गया है। हम भारतीयोंको सर्वदा निस्पक्ष होकर अपनी संस्कृतियोंका अध्ययन तथा मनन करना चाहिये तथा जो बात भारतीय परम्पराके प्रतिकूल है वह किसी दशामें भी नहीं मानना चाहिये।

चरक

वर्तमान चरक और सुश्रुत दोनों प्राचीन आधारके सारांश हैं। वर्तमान चरक संहिता प्राचीन चरक संहिता के आधारपर दृढ़बलके द्वारा लिखी गयी थी। और चरक संहिता स्वयं चरकके द्वारा आत्रेय पुनर्वसुके शिष्य अग्निवेश की लिखी प्राचीन पुस्तकके आधार पर लिखी गयी थी। चरक और सुश्रुत दोनों दृढ़बल, नागार्जुन, और वाग्भट्टके समयतक प्रक्षिप्त होते आये हैं। तथापि संपूर्ण वर्तमान चरक टीकाकार चक्रपाणिदत्तसे बहुत प्राचीन है।

चरकका अनुवाद पहले पहलवीमें (पैशाची भाषामें) हुआ था। फिर उससे अलीकेपुत्र अब्दुल्लाहने उसका अरबी अनुवाद किया था।

चरक और सुश्रुतका अनुवाद अरबी और फारसीमें ८०० खीष्टाब्द१ तक हो चुका था। चरक उपदेशक, दार्शनिक और कनिष्कका राजवैद्य था। स्वर्गीय श्रीसिलवन लेवीने भी चीनी त्रिपिटकोंसे चरकवैद्यका नाम ढूंढ निकाला था। उनके अनुसार चरक कनिष्कके धर्माधिष्ठोता थे। अतः शीघ्र ही उन्होंने चरकके पुस्तकमें भी ग्रीसका प्रभाव दिखाने के लिये चरकको कनिष्कका समकालीन प्रथम शताब्दी खीष्टपूर्व माना। किन्तु कनिष्कका काल अत्यन्त विवादपूर्ण है। उसने खीष्टपूर्व १२८६ से १२३६ खीष्टपूर्वतक राज्य किया२। अपि तु पतञ्जलिने भी चरकपर टीका लिखी है। यथा "आप्तो नाम अनुभवेन वस्तुतत्त्वस्य कार्त्स्न्येन निश्चयवान्, रागादिवशादपि नान्यथावादी यः स इति चरके पतञ्जलिः"। नागेशभट्टके लघुमंजूषामें उद्धृत। अपि तु।

पातञ्जलमहाभाष्यचरकप्रतिसंस्कृतैः।
मनोवाक्कायदोषाणां हन्त्रेऽहिपतये नमः॥

चरककी चक्रपाणिदत्त कृत आयुर्वेद दीपिका टीकामें।

तथा योगेन चित्तस्य पदेन वाचां मलंशरीरस्य तु वैद्यकेन।
योऽपाकरोत्तंप्रवरं मुनीनां पतञ्जलिंप्राञ्जलिरानतोऽस्मि॥

यदि चरकके टीकाकार महाभाष्यकार पतञ्जलि हैं जो पुष्यमित्रके समकालीन माने जाते हैं तो पतञ्जलि १२ शताब्दी विक्रमपूर्व हुए३। अतः चरकको इनसे बहुत पूर्व होना चाहिये। पाणिनिने भी अपनी अष्टाध्यायीमें चरकका जिक्र किया है। यथा कठचरकाल्लुक् (पा० ४।३।१०७) और चरकका अर्थ चरकानुयायी हुआ।

चरक एक वैदिक देवताका भी नाम है। श्रीभावमिश्रके भावप्रकाशमें४ चरक-प्रादुर्भाव निम्न प्रकार है। मत्स्याव-

१ माडर्न रिव्यू जून १९३६ पृ० ६८१।

२ "काश्मीरकी राजवंशावली" पर अपने गतांकके लेखमें त्रिवेदीजी यह सिद्ध कर चुके हैं।

३ मेरा लेख दी डेट आफ योगदर्शन, योगप्रचारक, योगांकपरिशिष्ट, काशी १९९३। मेरा लेख मगधकी नई वंशावली, काशी-विद्यापीठ पत्रिका, काशी, पौष १९९३।

४ भावप्रकाश पूर्वखण्ड ५७—६५।

तारसे जब विष्णु भगवान्ने वेदोंका उद्धार किया तब शेषने वहींपर उनसे साङ्गवेद और अथर्वान्तर्गत आयुर्वेद प्राप्त किया। एक बार वह (जासूस) चरके समान पृथिवी देखने आये। वहांपर बहुतेरे मनुष्योंको रोगग्रस्त, व्याधिपीडित और व्यग्र होकर मरते हुए देखा। उनको देखकर अत्यन्त दयासे युक्त होकर उन्होंने (अनन्तने) रोग-शान्तिका कारण सोचा। खूब सोचकर वह वहीं पर वेदवेदाङ्गज्ञाता प्रसिद्ध विशुद्ध मुनिके पुत्र हुए। चरके समान आये और इसलिये किसीने न जाना अतः वह चरक नामसे संसारमें ख्यात हुए। वह चरकाचार्य आकाशमें देवाचार्यके समान सुशोभित हुए। वे शेषनागके (सहस्र-बदनके) अंश थे जिन्होंने रोगोंका नाश किया। आत्रेय मुनिके अग्निवेशादि बहुत मुनि शिष्य हुए और सबोंने अपना अपना तन्त्र बनाया। उनके तन्त्रोंका सुचारु रूपसे संस्करण करके विद्वान् चरकने अपने नामसे चरकसंहिता नामक ग्रन्थ बनाया।

चरकके समय[1] कमसे कम अग्निवेश, भेल,[2] जातुकर्ण पाराशर, हारीत[3] और क्षारपाणिके ग्रन्थ विद्यमान थे जिनके ग्रन्थोंका चरकने पूर्णरूपेण संशोधन किया।

सुश्रुतके समान चरक वैज्ञानिक पद्धतिपर नहीं लिखा गया है। इसमें केवल वैदिक देवता और मन्त्रोंका वर्णन है। पौराणिक कथाओंका नामोनिशान भी नहीं है। चरकमें वेदानुसार मनुष्य शरीरास्थियोंकी संख्या[4] ३६० ही है और बचपनकी हद ३० वर्षतक है। अतः चरक बहुत प्राचीन होनेका दावा कर सकता है। इसके सरल गद्योंमें ब्राह्मण ग्रन्थोंकी रीतिका आभास मिलता है। अतः यह पुस्तक अवश्य ही बहुत प्राचीन है। इसके प्राचीन रूपकी रचना २००० खीष्टपूर्व तथा वर्तमान रूपकी रचना बौद्ध-कालसे पूर्वकी है। सम्भवतः यह १५०० खीष्टपूर्व रचा गया होगा।

वर्तमान सुश्रुत संहिता धन्वन्तरिके शिष्य सुश्रुतकी बृहत् सुश्रुत संहिताका नागार्जुनद्वारा संशोधित संस्करण है। चरक और सुश्रुतके व्यावहारिक शब्दोंमें बहुत कम अन्तर है। कुछ अंश चरकसे अक्षरशः मिलते हैं। भावप्रकाशके परम्परानुसार भी चरक संहिता सुश्रुत संहितासे प्राचीन है। अतः चरक निःसन्देह सुश्रुतसे प्राचीनतर है[5]। संभवतः यह नागार्जुन वही है जिसने कि पतञ्जलि महाभाष्य टीकाकी रचना की (भोजवृत्ति और चक्रपाणि देखिये) जो सिद्ध नागार्जुनके नामसे प्रसिद्ध है तथा जिसने लौहशास्त्र तथा माध्यमिकसूत्रवृत्तिकी रचना की[6]। वर्तमान सुश्रुत अवश्य ही टीकाकार डल्वण तथा रुग्विनिश्चयके लेखक माधवसे पुराना है। सुश्रुतकी प्राचीनतम टीका चक्रपाणिदत्तकी (१०६० खीष्टाब्द) भानुमति है। डल्वण अपने प्राचीन सुश्रुत टीकाकार जेज्जट, गयादास, भास्कर, और माधवका, जिनका समय यथेष्ट प्रमाणोंके अभावसे नियत नहीं किया जा सकता, उल्लेख करते हैं। हमारे प्राचीन टीकाकार भी पाश्चात्यविद्वानोंके अनुसार किसी भी पाठको समालोचनाकी कसौटीपर कसकर ग्रहण करते थे। यथाः—अनार्षोऽयं योगः जेज्जटाचार्येण नोक्तत्वात्। तस्मान्नपठनीयम्। (चिकित्सा ७।३ डल्वणटीका) नागार्जुनने सुश्रुतमें उत्तरतन्त्र जोड़ा था। तथा अन्य स्थानोंमें भी उसने हेरफेर किया था। यथा—यत्र यत्र प्रयोगे नियोगस्तत्र तत्रैव प्रतिसंस्कर्तृसूत्रं ज्ञातव्यमिति प्रतिसंस्कर्तापीह नागार्जुन एव। डल्वण टीका।

यदि यह नागार्जुन कनिष्कका समकालीन था तो

१ वर्नेलस् तंजोर काटलगमें एक भेलसंहिताका वर्णन है यद्यपि यह चिथड़ेकी हालतमें है।

२ चरक सूत्रस्थान १।२

३ वाग्भट्टने हारीत और भेलके ग्रन्थोंका जिक्र किया है। एक हारीत संहिता प्रकाशित भी हुई है यद्यपि उसका प्राचीनत्व प्रश्नास्पद है।

४ चरक शरीर ७।५

५ श्रीप्रफुल्लचन्द्रराय रचित हिन्दू केमिस्ट्री भाग १ भूमिका, १९०३ कलकत्ता।

६ वही। भाग २ पृ० १३०, १९०९ कलकत्ता।

नागार्जुनका समय १२८० खीष्टपूर्व तथा महावग्ग इत्यादि ग्रन्थोंमें भी कुमारभृत्य वैद्योंका जिक्र होनेसे सुश्रुतका समय २५०० खीष्टपूर्व भगवान् बुद्धसे३ पहले होना चाहिये।

किन्तु भावप्रकाशमें यह वर्णन मिलता है कि इन्द्रने मनुष्योंको अत्यन्त पीड़ित देखकर धन्वन्तरी नामक ब्राह्मण को समस्तायुर्वेदकी शिक्षा देकर मृत्युलोकमें भेजा। वह पृथ्वीपर आकर काशीमें दिवोदास नामसे प्रसिद्ध राजा हुए। विश्वामित्र इत्यादिने ज्ञानबलसे जान लिया कि काशी में यह काशीराज धन्वन्तरि हैं। उनमेंसे विश्वामित्र ने अपने पुत्र सुश्रुतसे कहा। हे पुत्र शिवप्रिय वाराणसीको जाओ। वहांपर दिवोदास नामक क्षत्रिय काशीका राजा है। वह साक्षात् धन्वन्तरि आयुर्वेदके जाननेवालोंमें श्रेष्ठ है। तुम संसारकी भलाईके लिये आयुर्वेद पढ़ो। पिताके वचनको शिरोधार्य कर सुश्रुत काशी गये। उनके साथ और भी मुनियोंके पुत्र पढ़नेके लिये गये। उन विनीतोंने श्रेष्ठ ब्राह्मण मुनियोंसे प्रशंसित भगवान् धन्वन्तरि दिवोदासको वान प्रस्थाश्रममें देखा। उन्हें देखकर यशोधन दिवोदासने उनका स्वागत किया। कुशल पूछनेके बाद आनेका कारण पूछा। उन सबोंने सुश्रुतके द्वारा उत्तर दिया। हे भगवान्! व्याधि से पीड़ित मनुष्योंको चिल्लाते हुए और मरते हुए देखकर हमलोगोंके हृदयमें अत्यन्त पीड़ा होती है। हमलोग रोगोंकी शान्तिका उपाय जानने आये हैं। आप यत्नपूर्वक हमलोगोंको आयुर्वेद पढ़ावें। उनका बचन अंगीकार करके राजाने उनको शिक्षा दी। पठनोपरान्त वे मुनि प्रसन्न होकर राजाको जयाशीर्वाद देकर अपने अपने घर गये। उसमें सुश्रुतने अपना सुश्रुत नामक तन्त्र पहले बनाया। उनके मित्रोंने भी अलग अलग अपना तन्त्र बनाया। सुश्रुतके बनाये तन्त्रको बहुतोंने सुना अतः यह पृथिवीपर सुश्रुत नामसे प्रसिद्ध हुआ"१। गरुड़ पुराण तथा महाभारतके अनुसार भी सुश्रुत विश्वामित्र के सुपुत्र थे। काशीराज दिवोदासका वर्णन ऋग्वेदमें भी है। अतः सुश्रुतका समय भी बहुत पहले होना चाहिये।

अतः यह सिद्ध होता है कि चरक और सुश्रुत दोनों आर्ष ग्रन्थ हैं, और पाश्चात्य विद्वानोंने हमारी प्राचीनता भ्रष्ट करनेके लिये ही इन पुस्तकोंकी रचना सिकन्दरके२ आक्रमणके बाद माना है। इसलिये उनका वचन ग्राह्य नहीं हो सकता। जिस प्रकार चरक ओषधिके लिये सबसे प्रमाणिक है उसी प्रकार सुश्रुत कायचिकित्साके लिये (Surgery) अत्यन्त प्रमाणिक है। क्या यह आशा की जा सकती है कि गवर्नमेन्ट भी इन आर्ष ग्रन्थोंको आदरकी दृष्टिसे देखकर अल्पमूल्य देशी ओषधियोंसे दरिद्र भारतका उपकार४ करेगी? समालोचनाओंका उत्तर सहर्ष दिया जायगा।

[टि० पूज्यपाद पिताजी स्वर्गीय पं० साधुशरण तिवारी के संसर्गसे इस लेखकको भी बचपनमें आयुर्वेदका कुछ अभ्यास हो गया था।
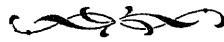
१ भावप्रकाश पूर्वखण्ड १।७६—८९।

२ देखिये मेरा लेख—डिड एलेक्जेन्डर इनवेड इण्डिया इन दी टाइम आफ दी मौर्याज्। हिन्दुस्तान टाइम्स, दिल्ली, २९ जून १९३६।

३ मेरा लेख दी डेट आफ गौतमबुद्ध १८८५ खीष्टपूर्व, डेलीहेराल्ड, लाहौर २७ जनवरी १९३६।

४ मेजर बकले इन्स्पेक्टर जेनरलने काशी मारवाड़ी अस्पताल निरीक्षणके समय कुछ भ्रमपूर्ण विचार प्रकट किये थे, यह उसीको संकेत करता है।

सच्ची सफाई और अभ्यास

“पाखानेसे आकर आप मिट्टीसे क्यों हाथ मलते हैं, मिट्टीसे अनेक बार हाथ धोना पड़ता है, परन्तु साबुनसे हाथ मला कीजिये तो अधिक सफाई हो और जल्द भी हो।” शिष्यने गुरुजीसे कहा।

गु०—तो तुम्हारे खयालमें साबुन गन्दगी नहीं है?

शि०—मैं तो न तो मिट्टीको गन्दगी समझता हूँ, न तो साबुनको।

गु०—तब गन्दगी क्या है?

शि०—आपने ही तो बतलाया है कि जहां जिस चीजकी जरूरत न हो वहां वह चीज गन्दगी है। साबुन और मिट्टीकी हाथ धोनेमें जरूरत है, इसलिये यह चीजें गन्दगी नहीं हैं।

गु०—ठीक कहा। अच्छा, तो यह बतलाओ कि एक बार साबुनसे धोनेपर हाथमें चिकनाई और गन्ध दोनों पाते हो या नहीं?

शि०—जी हां, पाता हूँ। मगर वह चिकनाई और गन्ध किस चीजकी है? वह तो साबुनकी ही है।

गु०—ठीक। तो क्या हाथमें साबुनकी गन्ध और चिकनाईकी जरूरत है?

शि०—जी नहीं। हाथमें इनकी जरूरत तो नहीं है। मैं समझ गया। साबुन भी हाथमें लगा रहना न चाहिये।

गु०—तुम ठीक समझे। साबुन लगाकर धोनेके बाद भी हाथको शुद्ध जलसे इतना धोओ कि न तो चिकनाई रह जाये न गन्ध।

शि०—(साबुनसे हाथ धोकर फिर कई बार मलमल कर हाथ धोता है तभी गन्ध और चिकनाई दूर होती है।) (गुरुजीसे) महाराज, हाथ तो तभी साफ होता है जब अनेक बार धोते हैं।

गु०—साबुनसे हाथ साफ होनेका सिद्धान्त क्या है, जानते हो?

शि०—जी नहीं। कृपाकर समझाइये।

गु०—हमारी त्वचापर सर्वत्र, और हाथमें भी, शरीर की चिकनाईके सूक्ष्म अंश रोम-कूपोंसे निकलकर फैले रहते हैं। उन्हींके साथ शरीरके भीतरका पसीनेसे आया हुआ, सूक्ष्म मल ऊपरी त्वचामें लग जाता है। जैसे प्रधान मार्गोंसे मलमूत्रादि शरीरके बाहर निकाले जाते हैं, वैसे ही रोम कूपोंसे भी। मलमूत्रको शरीरसे दूर करना हमारा कर्त्तव्य है। अब त्वचाके मैल और पसीनेको, मल-मूत्रको, भी दूर करनेके लिये हम धोते हैं, या नहाते हैं। सादे पानीसे मल-मलकर नहाने और तौलियासे खूब रगड़-रगड़कर पोंछनेसे बहुत कुछ सफाई हो जाती है, परन्तु पूरी सफाई नहीं हो पाती। इसीलिये पुराने विचारके लोग अकसर सारे शरीर में नदी किनारेकी बालू या मिट्टी सारे अंगमें पहले मल लेते हैं, तब खूब अच्छी तरह मलमलकर नहाया करते हैं। बाहोंको तौलियासे रगड़-रगड़कर पोंछनेसे त्वचाकी इतनी सफाई हो जाती है, जितनी केवल पानीसे नहीं होती। बहुतसे लोग पहले तेलकी मालिश करते हैं, तब नहाते हैं, फिर बदनको अंगौछेसे रगड़-रगड़कर पोंछते हैं। इस विधिसे त्वचा पहले तेलके एक अंशको सोख लेती है, इस तरह शरीरको व्यायाम और भोजन दोनों ही मिलता है। पीछे पोंछनेसे अधिक तैल बहुतसे मलको लेकर पुंछ जाता है और शरीरपर कुछ न कुछ अपनी चिकनाई छोड़ देता है। रूखी त्वचावालेको इस चिकनाईकी जरूरत होती है। साबुन इसका उल्टा है। वह त्वचाकी चिकनाईको अपनेमें घुला लेता है और पानीमें घुलकर धुल जाता है। परन्तु आदमी साबुन जितना लगाया करता है वह जरूरतसे ज्यादा हुआ करता है, इसलिये मैल तो धुल जाता है मगर कुछ-न-कुछ साबुन बदनमें लगा रह जाता है। इसकी पहचान यह है कि सुगंधित साबुन लगानेसे नहानेके बाद भी उसकी खुशबू शरीरमें बनी रहती है। और साबुन बाहरी चीज है, शरीरमें उसके लगे रहनेकी आवश्यकता नहीं है।

शि०—और मिट्टी? क्या मिट्टी भी इसी तरह कुछ न कुछ लगी न रह जाती होगी?

गुरु०—साबुनमें चिकनाई चिपकनेवाली चीज है, इसलिये वह तो बहुत बार पानीसे धोनेपर ही छूटती है। उसमें बेघुलेकण नहीं होते जो रगड़नेसे मैलके कणोंको त्वचासे अलग करें। साबुन तो चिकनाईको घुलाकर ही मैल धोता है।

पानीमें न घुलनेवाले कण ही प्रायः मिट्टीमें होते हैं। ये कण बारम्बारकी रगड़के द्वारा मैलके कणोंको छुड़ाते हैं और पानीसे तुरन्त बह जाते हैं। इसीलिये मिट्टीसे रगड़कर पानीसे धोनेमें ज्यादा सफाई होती है और जल्दी होती है। साबुनसे रगड़कर तबतक पानीसे धोना उचित है जबतक साबुनकी चिकनाई और बू मिट न जाय। इसमें समय अधिक लगता है और मिट्टीकी अपेक्षा साबुन महंगी चीज है।

शि०—परन्तु साबुनमें खुशबू है, मिट्टीमें कहां है?

गु०—जिसके बदनसे स्वाभाविक बदबू आती हो जो नहाने धोनेसे भी दूर न हो उसे तो खुशबूदार साबुन जरूर ही इस्तेमाल करना चाहिये और बदबू मारनेके लिये साबुनकी बासको एकदम दूर न करना चाहिये। परन्तु यह इस बीमारीका इलाज नहीं है, केवल ऐबको छिपाना है। ठीक रीतिसे इलाज करके इसे दूर करना अधिक उत्तम है। परन्तु जिसके शरीरमें यह रोग न हो उसे तो साबुन लगानेके फैशनसे परहेज करना चाहिये और अधिक सस्ती और लाभकारी और सर्वत्र सुलभ चीज मिट्टीको ही काममें लाना चाहिये।

शि०—परन्तु मिट्टीमें तो बहुतसी गन्दगियां भी रहती हैं, क्या इनसे नुकसान नहीं है?

गु०—जरूर नुकसान है। सफाईके लिये शुद्ध मिट्टीका इस्तेमाल बहुत जरूरी है। यह शुद्ध मिट्टी कहां मिल सकती है? आंवेंकी चूल्हेकी या भट्टेकी पक्की मिट्टी शुद्ध होती है। ऊंची जगहपरकी जहां बराबर धूप पड़ती हो, या उस गहराईके नीचेकी मिट्टी जो ऊंची सतहपर हो, या पिंडोर मिट्टीकी बनी हुई टिकिया शुद्ध मिट्टी है। इनके सिवा भी दीवारकी या और शुद्ध जगहोंकी मिट्टी जांचकर ली जाय तो कोई हानि नहीं है।

शि०—आपकी इस शिक्षासे एक बात खूब याद आयी। जब मेरा उपनयन संस्कार हुआ था, उस समय आचार्य्यजीने शौचाचारके सम्बन्धमें जो उपदेश दिये थे, उनकी कीमत आज आपकी शिक्षासे मालूम हुई?

गु०—वह क्या था?

शि०—उन्होंने कहा था, मलत्याग करनेके बाद मलद्वारको आंवलेके बराबर चिकनी मिट्टी लेकर बायें हाथसे पांच बार लगाकर धोना, फिर बांये हाथको मिट्टीमें रगड़ रगड़कर अकेला ही दसबार धोना, फिर दोनों हाथोंको परस्पर मिट्टीसे रगड़कर सात बार धोना, इस प्रकार पूरी शुद्धि होती है।

गु०—यह तो बिलकुल ठीक बात है। तुम ऐसा करते हो या नहीं।

शि०—गुरुजी इस प्रकार बाईस बारकी धुलाईमें बड़ा समय लगता है।

गु०—परन्तु पूरी सफाई होती है, जो समय लगता है उसकी पूरी कीमत मिलती है, बवासीर आदि अनेक रोगोंसे रक्षा रहती है। यह विधि बहुत अच्छी है। अवश्य करणीय है।

शि०—परन्तु, आंवलेभर चिकनी साफ कोमल मिट्टी न लेकर ज्यादा मिट्टीलें और केवल दो तीन बार रगड़कर धोलें तो क्या काम न चलेगा?

गु०—ज्यादा मिट्टी लेनेसे क्या फायदा? असलमें जितनी मिट्टी सबसे ऊपरी तह बनाती है जिससे रगड़ लगता है वही तो सफाईके काम आती है, बाकी ऊपरी और अधिक मिट्टी तो बेकार है। इसलिये ज्यादा मिट्टीलेनेसे कोई फायदा नहीं। एक तहसे रगड़कर फिर उसे धो डालो। फिर दूसरी तहसे रगड़कर धो डालो। इसी तरह पांच तहोंसे रगड़ पड़कर पांच बार धुलाई हुई। अगर मिट्टी ज्यादा ली और दो ही बार धोया तो धुलाई तो दो ही बार हुई।

सभी तरहकी सफाईमें यह ध्यान रखो कि सफाई बार बार करनेकी चीज है। जितनी बार करो उतनी ही बार अधिक सफाई होती है। कपड़ेको धोकर निचोड़ो, फिर धोओ फिर निचोड़ो. इसी प्रकार कई बार धोने निचोड़नेसे अच्छी सफाई होती है। ज्यादा पानी बहानेसे सफाई नहीं होती। कोई बरतन धोना हो तो मांजकर धो डालो फिर, कई बार खंगालनेसे ही ठीक सफाई होगी। मलिन मन भी इसी प्रकार एक ही बारके दिनरातके उपदेशमें उतना शुद्ध नहीं होता जितना कि थोड़ी थोड़ी देर नित्यके निरन्तर बहुकालिक उपदेश वा सद्‌वचनसे होता है। अच्छे मन्त्रोंका अर्थ समझकर नित्य देरतक जप करनेमें भी यही बात है।

शि०—यह तो अभ्यासकी बात हुई । गुरुजी, बारबार ठीक उच्चारण करनेके उद्योगसे उच्चारण साफ हो जाता है । बारबार रटनेसे वाक्य मनपर बैठ जाता है । यह भी कुछ वैसी ही बात है ।

गु०—हां, तुमने ठीक समझा । अभ्यासका प्रभाव भी इसी एक सिद्धान्तपर अवलम्बित है । वस्तुकी उतनी ही मात्रा एक बार लेनी चाहिये जितनेका प्रभाव पड़े । बहुत अधिक मात्रा लेना उसको बेकार फेंकना है । थोड़ी मात्रामें जल बहुत बार लेकर खंगालनेसे अधिक सफाई होती है । थोड़ेसे शब्द अनेक बार जपनेसे स्मृतिके ऊपर शीघ्र अंकित होजाते हैं । थोड़ीसी बात बारबार कहते रहनेसे उसके भाव हृदयमें बैठ जाते हैं । बस यही समझो कि बड़ी मात्रा नहीं, बल्कि बारबारकी क्रिया अधिक प्रभावोत्पादक होती है ।

रा० गौ०

कीटाणुओंका हौआ

जबसे वैज्ञानिकोंने यह पता लगाया कि कीटाणुओंसे रोग फैलते हैं, तबसे रोगोंसे कहीं ज्यादा पढ़ेलिखे लोगोंके बीचमें कीटाणुओंका डर फैल गया है । इस बेकार डरसे भलाई रत्ती भर नहीं है, और बुराई भरी है, क्योंकि इससे दिल और दिमाग डरपोक होजाता है, रोगरूपी बैरीका सामना नहीं कर सकता ।

इस दुनियामें आदमी चारों ओरसे अपने दोस्तों और दुश्मनोंसे घिरा रहता है । अपनी भलाई चाहनेवालोंसे मेलसे रहना और बुराई करने वालोंसे अपना बचाव करना और जरूरत पड़े तो बहादुरीके साथ उनका सामना करना और उनसे अपने बलबूतेपर निडर रहना, यही हमारा धर्म है ।

वैज्ञानिकको भारी भय

एक बार, कोई पैंतीस बरस हुए हमने प्रयागमें बायस्कोपका एक तमाशा देखा था । तब तो बोलते चित्रपटका (टाकीका) जन्म नहीं हुआ था । उस तमाशेका नाम था Horrors of a Scientist (एक वैज्ञानिकके आतंक) ।

एक वैज्ञानिक अपनी प्रयोगशालामें बड़ी देरसे काम कर रहा है । किसी बड़ी खोजमें लगा हुआ है कि अपना काम छोड़कर हट नहीं सकता । उसकी खोज भी कीटाणुओंके सम्बन्धमें है । बहुत देरतक काम करते करते थक गया । भूख और प्यास भी सताने लगीं । घन्टी बजाई । नौकरको नाश्ता लानेके लिये उसने आज्ञा दी । नाश्ता आया । वहीं एक मेज साफ करके चीजें चुन दी गयीं । वह नाश्ता करने बैठा । रोटीका टुकड़ा तोड़ते ही कीटाणुओंका ख्याल आ गया । वह झट उठा और रोटीका एक बारीक सा टुकड़ा अणुवीक्षण यन्त्रके कांचखंडपर लगाकर लगा देखने । उफ़ ! गजब हो गया । उसने करोड़ों कीड़े रेंगते देखे । भांति-भांतिके कीटाणु थे । उसने रोटी उठाकर फेंक दी । मक्खन देखा । उसका भी वही हाल । गरज कि उसके खाने लायक कीड़ोंसे साफ़ एक भी चीज न थी । उसने पानी उबालकर ठंडा किया और उसे ही पीकर सन्तोष किया ।

यह तो तमाशा था । इससे सीखनेकी बात यह है कि हम केवल परहेज करके कीटाणुओंसे बच नहीं सकते । वे तो सभी जगह हैं । ईश्वरके सर्व-व्यापी होनेमें सन्देह हो सकता है, पर कीटाणुओंकी व्यापकतामें तो वैज्ञानिकोंको सन्देह नहीं हो सकता । ऐसी दशामें मामूली सफाईसे ही हम अपनी रक्षा नहीं कर सकते । हमारे बचावका सबसे अच्छा उपाय इसीमें है कि हम अपने शरीरको और अपने रहन-सहनको ऐसा बना लें कि कीटाणुओंको हम सहजमें हजम करते रहें । सच्ची बात तो यह है कि हमलोग सभी, जितने मनुष्य या प्राणी हैं सभी, बहुतसे कीटाणुओंको हजम करनेकी ताकत रखते हैं और निरन्तर पचाते भी रहते हैं । किसीका पाचन जबरदस्त है, किसीका कम है । हम जानते हैं कि कड़ीसे कड़ी वबाई बीमारियोंमें, हैजेमें, प्लेगमें, लोग रोगीकी सेवामें दिन-दिन रात-रात लगे रहे, अपने बचावका कोई उपाय न किया, फिर भी वे बराबर स्वस्थ बने रहे । बात क्या थी ? क्या टीकाणुओंकी उनपर

चढ़ाई नहीं हुई ? हुई जरूर । पर उनमें पचानेकी ताकत जबरदस्त थी । वह हजम कर ले गये । कीटाणु उनका कुछ भी बिगाड़ न सके ।

एक रईसका खब्त । खांसीका आतंक

एक रईस हैं जिन्हें मैं अच्छी तरह जानता हूँ । अपनी कोठीके भीतर खांसीवालेको घुसने नहीं देते । किसीको खांसी आती हो तो उससे मिलनेसे इनकार । किसी नौकरको खांसी आने लगी और उसे फौरन छुट्टी दी । खांसीके रहते वह हातेमें रहने नहीं पाता । लड़कोंके मास्टरको खांसी आयी और उनका आना बन्द हुआ । और परिवारमें किसी को खांसी आने लगी तो ? उसे एक अलग मकानमें हातेके भीतर ही उसकी सेवा करनेवालेके साथ रखेंगे । औरोंसे तबतक न मिलने देंगे जबतक खांसी दूर न होजाय या कोई बड़ा डाक्टर यह न कह दे कि इस खांसीमें कोई जोखिम नहीं है । बायस्कोपवाला तो कल्पित तमाशा था, परन्तु यह तो जीता-जागता सच्चा हाल है । खांसी है भयानक लक्षण, परन्तु उसका भूत तो उसके असल रूपसे भी ज्यादा तंग करता है । होशियार आदमी अपनेको ऐसा मजबूत रखता है कि वह कीटाणुओंको हरा देता है और खाकर पचा जाता है ।

बड़े-बड़े वैज्ञानिकोंकी धारणा

पास्चुर, मेचनीकाफ़, रैट, बुलक आदिकी खोजोंका ही फल साधारणतः यह है कि मनुष्यके शरीरमें रोगाणुओंका प्रवेश बाहरसे होता है । शरीरके श्वेताणु लड़ते और उन्हें पचाते हैं, उन्हें नष्ट करनेको प्रतिविष बनाते हैं । इसके विपरीत प्रोफेसर बीशम्प आदि कहते हैं कि रोग बाहरसे नहीं आते, बल्कि हम ही प्रकृतिके विपरीत रहन-सहनसे उन्हें पैदा करते हैं । डाक्टर पावेलतो श्वेताणुओंको रक्तके रक्षक नहीं किन्तु भक्षक मानते हैं । वैज्ञानिकोंमें ही परस्पर इतना मतभेद है कि यह बात समझमें नहीं आती कि इस एक पक्षको ही लेकर सारी पढ़ी लिखी दुनियांमें ऐसा आतंक क्यों फैल गया है । युरोपके प्रसिद्ध वीना विश्वविद्यालयके प्रोफेसर और बड़े प्रसिद्ध चिकित्सक एवं खोजी डाक्टर पेटनकोफरका मत है कि जीवाणु स्वयं रोग पैदा नहीं कर सकते । उन्होंने कई बार सतर्क इस विषयपर व्याख्यान दिये और लेख लिखे, यद्यपि युरोपका चिकित्सक समुदाय सदा उनके विरुद्ध रहा । एक दिन उन्होंने अपने विद्यालयमें लोगोंको अपने सप्रयोग व्याख्यानमें चकरा दिया । वह हैजेके रोमाणुओंपर बोल रहे थे । एक बीकरमें हैजेके असंख्य रोमाणुओंसे भरा घोल रखा था । छात्रोंके देखते देखते वह उसे उठाकर पी गये । परीक्षा बड़ी भयानक थी । मगर थोड़ी सी मतलीको छोड़ और कुछ न हुआ ।

इसी तरह अमेरिकाके विसकन्सन स्टेटके एक डाक्टर रोडरमंडका उदाहरण है । उन्होंने अपने डाक्टर बन्धुओंके सामने यह सिद्ध करनेके लिये कि भली चंगी देहमें चेचक की छूतका कोई असर नहीं होता, अपने सारे शरीरमें विस्फोटकोंका मवाद मल लिया । वहांके आईनके अनुसार वे पकड़कर क्वारंटाइनमें बन्द कर दिये गये । परन्तु इससे पहले बहुतोंसे छुआछूतहो चुका था । परन्तु न उन्हें चेचक निकली और न किसी छुए हुए मनुष्यको । और यह तो सभी जानते हैं कि चेचक पैदा करनेके लिये सुईसे खरोंचकर विष रगड़े जानेपर भी कभी-कभी कोई असर नहीं होता तो भले चंगे शरीरको केवल छू देनेसे क्या असर हो सकता है ? छू जानेसे उन्हीं शरीरोंमें असर होता है जो चेचकके विषसे लदे हैं जिनकी दशा उस अति-संपृक्त घोल या अति-हिमीकृत जलकी सी है जिसको जमानेके लिये बाहरका एक कण भी बहुत काफी है । जो शरीर मलों और विषोंसे बेतरह लदा है उसकी (Equilibrium) समतोल दशाको बिगाड़नेके लिये एक रत्तीभर बाहरी उत्तेजना बहुत है ।

अपनी देहको हम किला कैसे बनायें ?

हमारे शरीरमें पांच बातोंकी मजबूत दीवारें खड़ी हों तो बाहरकी चढ़ाईका कुछ भी असर नहीं हो सकता । पहली दीवार है मजबूत प्राण-शक्ति जो युक्ताहार बिहारसे पुष्ट होती रहती है । दूसरी दीवार है खून और मांसका शुद्ध रहना तीसरी दीवार है अपने शरीरके भीतरके मलों और विषों को ठीक ढंगसे बाहर निकालते और साफ करते रहना । चौथी दीवार है अपने चारों ओरकी बाहरी बदनकी कपड़े-लत्तोंकी पूरी और बराबर और निरन्तर सफाई । पांचवीं दीवार है, सारी चौकसीपर निगाह रखते हुए भी मनका बिल्कुल निडर रहना । इन पांचों दीवारोंको भेदकर कोई दुश्मन हमारी देह गढ़ीके भीतर घुसनेकी हिम्मत नहीं कर सकता और करे भी तो दीवारोंसे टकराकर अपनेको नष्ट किये बिना नहीं रह सकता ।

अपने शिष्योंसे मैंने क्या सीखा

विमान-विद्याके रहस्य

[ऐसन जारडैनफ, प्रसिद्ध पाइलट और शिक्षक]

दो सौ विद्यार्थियोंने मुझे उड़ना सिखलाया है। उनकी ग़लतियां वे विपत्तियाँ जिनमें वे फंसे थे, और उनकी भूलोंसे उत्पन्न संकटसे केवल उनको ही शिक्षा नहीं मिली है, मुझे भी मिली है। दस वर्षसे मैं जो शिक्षार्थ बने वायुयानों में अपने पीछे निरे कच्चे उड़ाकोंको बैठाकर और उनके हाथों में बागडोर सौंपकर उड़ा करता हूं, उसे मैं अपने ही शिक्षाका अंतिम पाठ समझता हूँ।

२०० विद्यार्थियोंको मैंने आजतक उड़ना सिखलाया है और मेरा अंतिम विद्यार्थी एक १९ वर्षकी लड़की थी। दो चार दिन हुए केवल २ घन्टे २७ मिनटतक मेरे साथ उड़नेके बाद अकेले उड़कर शीघ्र उड़ना सीखनेमें सबको उसने मात कर दिया। समाचार पत्रोंकी रिपोर्टोंसे पता चलता है कि इसके पहले सेना विभागके एक कप्तानने न्यून-तम समयमें उड़ना सीखा था, परन्तु उसने ३ घन्टे २० मिनटतक उस्तादके साथ उड़कर उड़ना सीखा था।

इतने कम समयमें उड़ना सिखलानेका भेद एक विचित्र शिष्यकी संगतसे मैंने जाना था। उसकी आयु ५० वर्षकी थी और समाचार-लेखन उसका व्यवसाय था। उसने बड़े-बड़े उड़ाकोंको उड़ते देखा था। उसने उड़ान-विद्याकी पुस्तकोंका पूरा अध्ययन किया था। पाइलट क्या-क्या करता है सब जानता और समझता था। कुरसीपर बैठकर और एक डंडेको नियंत्रण-दंड* मानकर, घण्टों उड़नेकी विभिन्न क्रियाओंका उसने अभ्यास किया था। उसे पूरा विश्वास था कि यदि हवाई-जहाजपर वह चढ़ने पाये तो अवश्य ही वह उसे उड़ा ले जा सकेगा।

मैंने भी कहा "बहुत ठीक, अगर हो हिम्मत तो आ जाओ। मेरे हवाई-जहाजको तुम उड़ा ले जाओ।"

मुंह खोले भौचक होकर वह खड़ा रह गया, परन्तु उसने हिम्मत न हारी। हमलोगोंने सरपर कंटोप बांधे और पीठ पर पैराशूट, सामनेवाले आसनपर मैं बैठा और पीछे वाले वह। मिस्त्रीने प्रापेलर घुमाया और मोटर जन्नाटे के साथ चालू हो गया। मैं आज ऐसे जहाजमें सैर करने जा रहा था जिसका चलानेवाला जन्मभर कभी हवाई जहाजमें बैठा भी नहीं था।

हाँ, यह तो अवश्य ही ठीक था कि उस जहाजमें दोहरे नियंत्रण-यन्त्र लगे थे। यदि वह किसी उलझनमें फंस जाता तो नियंत्रण-भार मैं अपने हाथ में ले लेता और गुत्थी सुलझा देता।

श्रीगणेश ही उसका अशुद्ध हुआ। पहले इञ्जनको धीरे-धीरे चलाना चाहिये था जिसमें इञ्जन धीरे-धीरे गरम हो, परन्तु उसने इञ्जन इतनी जोरसे चलाया कि हवाईजहाज अपने दरबेमें से एक दम उछल पड़ा। खैर, जब उड़नेकी नौबत आयी तब सीधे उड़नेके बदले जहाज चक्कर काटता हुआ उड़ा। यदि मैं पतवार तुरंत सीधा न कर देता तो हम सब अवश्य तुरंत धमाकेसे गिर पड़ते।

फिर, ऊपर उठनेके लिये जब उसने नियंत्रण-दंडको अपनी ओर खींचा तो उसे आवश्यकतासे कहीं अधिक खींच लिया और हम बाणकी तरह ऊपर उछल पड़े। सौ ही फुट ऊपर उड़नेपर, जहाजकी नाक इतनी ऊपर उठ गई थी कि जहाजके पूंछके बल गिरनेका डर था। मैंने तुरन्त दंडको आगे ढकेल दिया, जान बची।

आगे चले। कभी एक पंख नीचे हो जाता। कभी दूसरा। जहाज क्या था मानों मतवाला चिमगादड़। फिर उतरनेकी बारी आयी। यदि मेरे हाथमें भी नियन्त्रण-दंडन होता तो मेरे—रोंगटे कौन कहे—सरके बाल खड़े हो जाते। नीचे उतरना क्या था मानों सीढ़ियोंपर कूदना था। जब नीचे चलानेके लिये डंडेको वह आगे ढकेलता तो जहाज जोरसे नीचे मुंह चलता। डंडा खींचकर उतराई मन्द करनेसे

* वह डंडा जिसकोअपनी ओर खींचनेसे हवाई-जहाज ऊपर उठता है और अपनेस दूर ढकेलनेसे जहाज नीचे उतरता है।

जहाज फिर बेंडे चलने लगे। मैंने देखा कि उसका किया यह न होगा कि जहाज़ एक सीधमें धीरेसे उतरे। मैंने समझ लिया कि या तो ५० फुट ऊपर ही जहाज़ रुककर धमाकसे गिरेगा और उसकी टांगें टूट जायंगी, या जहाज़ नाकके बल जोरसे जाकर ज़मीनसे टकरायगा और समूचा सत्यानाश हो जायगा! इसलिये मैंने संचालन अपने हाथमें लिया और जहाजको नीचे उतारा।

जहाजसे नीचे उतरे तो वह समाचार-लेखक खिसियाना-सा मुस्कराया।

"ज़मीन ही पर सिद्धान्त ठीक है" उसने कहा 'हवा में अनुभवकी आवश्यकता है"। उसने ठीक कहा। यदि कहीं वह जहाज़में अकेले ही गया होता तो कमसे-कम पहले ही उड़ानमें वह तीन बार जहाज़को चूर कर डालता। केवल हृदयमें इसके ही अंकित हो जानेसे कि किस समयमें क्या करना चाहिये काम नहीं चलता। अभ्याससे ही उड़ाकेके कब्जेमें सब यन्त्र आते हैं—उसे पता चलता है कि डंडे, या पतवार या मोटरको कितना चलाएं कितना न चलाएं। इसीलिये जब मैंने उस १९ वर्षकी लड़कीको २ घन्टे २७ में सिखलाया तो सब बातें एक साथ ही नहीं सिखला दीं। कई दिनोंमें थोड़ा-थोड़ा सिखलाकर २ घन्टे २७ मिनट उड़नेका समय पूरा किया। शेष समयमें वह ज़मीन ही पर अभ्यास किया करती थी।

बिना भूल किये कोई भी उड़ना नहीं सीख सकता। शिक्षकका काम है कि वह देखा करे कि भूल इतनी बड़ी नहीं हो रही है कि जहाज़ गिर पड़ेगा।

कई सालकी बात है, एक विद्यार्थीके साथ मैं नीले रंग के फौजी जहाज़में उड़ा। दो मील दूरपर एक खुले मैदानमें हम उतरे। फिर वहां जहाजको दौड़ाकर ऊपर उठे तो मैंने जहाजका नियंत्रण उस विद्यार्थीके हाथमें सौंप दिया। उसने पेट्रोल भरपूर खोल दिया, इञ्जन गरज उठा और हम उड़ चले। अर्थात्, मैंने समझा कि जहाज उड़ चला।

हातेकी चहारदीवारी ज्योंही हमने पारकी, औ अभी जमीनसे १५ ही फुट ऊंचे उठ पाये थे कि विद्यार्थीने एक दूसरे फौजी जहाजको ठीक सामनेसे आते देखा। दूसरा जहाज हमसे १ मील दूर रहा होगा। परन्तु सूर्य हमारे पीछे था। धूप कड़ी थी। वायु पूर्णतया स्वच्छ था। ऐसी दशामें वस्तुएं वास्तविक दूरीकी अपेक्षा निकट जान पड़ती हैं। उस विद्यार्थीने समझा कि अब इस जहाजसे जरूर भिडंतहो जायगी। उसके होश उड़ गये और उसने मोटर बन्द कर दी।

ठीक सामने डेढ़ सौ फुटसे भी कम दूरीपर, रेलका बांध, तारके खम्भे और एक पोखरी थी। हम इतनी ऊंचाई पर न थे कि तारके खम्भोंको पारकर सकते और जगह भी इतनी नहीं थी कि बगलकी ओर फिसलकर जहाजको मैं रोक सकता। लपककर मैंने डंडेको जोरसे अपनी ओर खींचा। सड़से जहाजकी नाक ऊपर होगयी। जहाज २० फुटकी ऊंचाईपर पहुंचकर रुक गया और फिर धमाकेसे जमीनपर इतनी जोरसे गिरा कि मालूम हुआ मानों हमारी कुरसी टूट जायगी और हम धूलमें लोट जायंगे, परन्तु जहाज टूटा नहीं। हम पोखरीके बारह फुट इस ओर ही रुके।

सैकड़ों बार विद्यार्थियोंकी भूलोंके कारण गिरनेसे मुझे इसका अच्छा अन्दाज मिल गया है कि हम कितनी ऊंचाई से सही-सलामत गिर सकते हैं। साधारणतः उतरते समय नौसिखोंको पृथ्वीसे डर लगता है। इसलिये वे पहले दो चार बार बहुत ऊपरही जहाजको सीधा कर डालते हैं। परिणाम यह होता है कि जहाज तब अपने भारसे पृथ्वीपर धम्मसे गिर पड़ता है। साधारणतः लोग एक ही दो फुटकी ऊंचाईसे गिरते हैं परन्तु मुझे स्मरण है कि एक विद्यार्थी ३० फुटसे गिरा था। उसके जहाजके पहिये सफाचटहो गये थे।

कितनी ऊंचाईसे गिरनेपर भी जहाज़को हानि नहीं पहुंचती, यह केवल एक बात है जिसे मैंने अपने शिष्योंसे सीखा है। हजारों बार नौसिखियोंके जहाज फिरकीकी तरह नाचने लगते हैं, या बीच हवामें बन्द हो जाते हैं या बगल की ओर फिसलने लगते हैं या मोड़ते समय फिसल पड़ते हैं। इन सभोंसे मैंने सीखा है कि जहाज ठीक कितना उलट-पुलट हो जाने तक भी वशमें किया जा सकता है।

मेरी एक शिष्या अच्छी ऋतुमें तो बड़ी सफाईसे उड़ती थी, परन्तु ज्योंही हवा जोरसे बहने लगती वह बदहवासहो जाती। इस मर्जकी दवा करनेके लिये मैं उसे एक बार खूब जोरकी आंधीमें ऊपर उड़ा ले गया। ८०० फुट ऊपर जाने पर भी हवाके झकोरोंमें जहाज़ इतना झटके खा रहा था जैसे

बरसाती नदीमें तिनका। मैंने जब उसके हाथमें नियंत्रणका भार सौंप दिया तो उसने डंडा हिलाकर अपने दोनों हाथों को ऊपर उठा लिया। यह इशारा था कि मैं अपने हाथमें नियन्त्रण ले लूं। मैंने सोच लिया कि बस अब यही मौका है। यदि वह इस समय वायुसे डर जायगी तो वह कभी भी उसे जीत न सकेगी।

बस मैंने भी डंडा हिला दिया और अपने हाथोंको ऊपर उठा दिया। सर फेरकर मैंने उसकी ओर दृष्टि की और मुस्करा दिया। परन्तु उसने दृढ़ निश्चयके साथ अपना हाथ ऊपर ही रक्खा। मैंने भी ठान लिया कि मैं नहीं जहाजको चलाऊंगा। जहाज खूब उछल-कूद रहा था, किसी का शासन तो उसपर था ही नहीं। मैं अच्छी तरह जानता था कि कितनी देरतक जहाजके उछलने-कूदनेमें कोई वास्तविक जोखिम नहीं है और इसलिये अड़ा रहा। मिनटों बीत चले जो पहाड़के समान जान पड़ते थे। इधर जहाज आंधी के झकोरोंमें भयानक रीतिसे झटके खा रहा था। अंतमें, उसने हारकर डंडेको हाथमें लिया। पूरा चक्कर लगाने के बाद वह उतरी। उस तिथिसे आंधियोंके प्रति उसका भय जाता रहा।

पहली बार जब वे दूरतक उड़नेकी अनुमति पाते हैं तो अधिकांश विद्यार्थियोंकी इच्छा होती है कि वे अपने मकानके ऊपरसे उड़ें और अपने घरवालोंको तमाशा दिखावें। अकसर वे कहीं पास के ही खेतमें उतरना चाहते हैं। इस लिये अकसर मुझे खेत या खलियानमें जहाज उतारना पड़ा है। इस प्रकार छोटे स्थानोंमें जहाज उतारनेका मुझे अभ्यास हो गया है यदि मैं शिक्षक न होता तो कदाचित यह अवसर न मिलता। यथासंभव मैं जुते हुए खेतमें, या ऐसे खेतमें जहांकी फसल अभी हालमें ही काटी गयी है उतारता हूँ। जिस खेतमें झाड़-झंखाड़ रहता है उसमें उतरनेमें भय रहता है, क्योंकि पता नहीं रहता कि झाड़में क्या छिपा हो।

ऐसे खेतमें, पांच छै वर्ष हुए एक लोमहर्षण घटना हो गयी। मेरे साथ एक प्रसिद्ध अभिनेता बैठा था। पृथ्वीसे जब हम केवल १०० फुट ऊंचे थे, तब मोटर खांसने लगा और अन्तमें पटाखसे बोलकर बन्द हो गया। पीछे मुड़कर जहाजके उतरनेके मैदानतक जाना असंभव था। इसलिये पासके ही मैदानमें उतरना पड़ा। यह मैदान बंगला बनानेकेलिये छोड़ दिया गया था इस समय इसमें झाड़-झंखाड़ खूब उग आया था। देखनेमें स्थान समथल जान पड़ता था, परन्तु झाड़के नीचे क्या है इसका पता न था। मैं इस अन्दाजसे उतरा कि पौधोंको छूता हुआ उड़ता रहा। फिर डंडेको खींचकर जहाजको रोक दिया और इस प्रकार जान बूझकर झंखाड़पर धमाकेसे गिरा। तो भी जहाज धीरे-धीरे लुड़कते हुए करीब २० फुट आगे बढ़ गया और तब दो फुट व्यासके एक ढोंकेसे जा लड़ा। बड़ी कुशल हुई कि पत्थर वहां था, क्योंकि उसके दो फुट ही आगे सात फुट गहरा और इतना ही चौड़ा गड्ढा था कि जहाज यदि दो फुट और लुढ़क पाता तो उसमें गिरकर चूर हो जाता। बात यह थी कि एक मकानके लिये वहां खुदाई हुई थी। मकान में तहखाना भी बनने वाला था। इसीसे इतना बड़ा गड्ढा खोदा गया था। परन्तु फिर मकान वहां बना नहीं। नींव केलिये पत्थरके ढोंके जो लाये गये थे, उन्हींमेंसे एकसे हमारा जहाज टकरा गया था।

इस प्रकार कई बार बाल-बाल बच जानेके कारण मैं अब या तो ऐसे खेतमें उतरता हूँ जिसमें साफ जमीन दिखलाई पड़े, या यदि मुझे झाड़ोंमें उतरना ही पड़ता है तो हवामें ही जहाज रोककर सीधे गिरता हूँ।

शिष्योंको सिखानेसे मुझे एक और बातका भी अच्छा अभ्यास हो गया है और वह यह कि मैं दूरियोंका सच्चा अनुमान कर सकता हूं, अच्छे उड़ाके पेड़ और चहारदीवारियोंसे बचकर उतरते हैं, परंतु नौसिखिये कई बार निश्चित स्थान पार कर जाते हैं और सीधे किसी पेड़ या चहारदीवारी की ओर उनका जहाज़ बे-काबू होकर चला जाता है। तब शिक्षककी कला देखनेमें आती है। भिड़ंतसे बचाना उसका ही काम है। सैकड़ों बार ऐसे संकटमें पड़नेसे अब मैं अच्छी तरहसे जान गया हूं कि कितनी दूरतक मैं जहाज़को नौसिखियोंके हाथमें छोड़ सकता हूं और तो भी जहाजको भिड़नेसे बचा सकता हूं।

एक विद्यार्थीने मुझे इस प्रकारकी रोमांचकारी और बालकी-खाल खींचनेके समान सूक्ष्म उतराइयोंका जितना अभ्यास कराया उसका दशमांश भी किसी दूसरेने नहीं कराया। उसका नाम दूसरे विद्यार्थियोंने 'भालू' रक्खा था

और यह नाम ऐसे रोमांचकारी उतराईके कारण पड़ा जैसी मैंने पहले कभी किसी भी नौसिखेको करते नहीं देखा था, पहिले ही बार जब वह अकेला उड़ा तब यह बात हुई। उत्तर दिशासे जब वह उतरनेके मैदानकी ओर आया तब उसका जहाज़ बहुत नीचा था। दुर्भाग्यवश उधर लंबे-लंबे कई वृक्ष थे। उसका वह लाल रंगका हवाई जहाज़ क्षण भरके लिये उन वृक्षोंके वोझल हो गया. आग बुझानेवाले और मरहम-पट्टी करने वाले अपनी-अपनी मोटरपर कूद पड़े। समझ गये कि वह नौसिखा बुरी तरहसे घायल होगा।

इतनेमें वह लाल हवाई जहाज़ पेड़ोंके पीछेसे निकल पड़ा। दो पेड़ोंके ठीक बीचसे होकर उनकी टहनियोंको काटता हुआ, साफ बचकर चला आ रहा था। टहनियां और पत्तियां पहिये और तारोंमें खूब लिपटी थीं। एक पंखमें एक आठ फुट लंबा दो-मुँहा शाख फँस गया था और हवामें कड़कड़ा रहा था। इसप्रकार टहनियों और पत्तोंसे मढ़ा हुआ हवाई जहाज़ चिड़ियेके बदले भालू सा लग रहा था तभी सब उस उड़ाकेको 'भालू' कहने लगे।

यद्यपि पीछे वह उड़नेमें पक्का हो गया, तो भी उसके सिखानेमें मुझे जितना समय लगा उतना किसीको सिखानेमें नहीं लगा। पेड़ोंका सा मूँड़ लेनेके बाद उसे दूसरा ही रोग लग गया। अब वह इतना ऊंचा आता कि वह मैदानके केन्द्रसे बहुत आगे जाकर ज़मीन छू पाता और चहारदीवारी से टकराते-टकराते बचता। उसे दूरियोंका अनुमान सच्चा सिखानेके लिये, जिसमें वह भी जान जाय कि वह क्या ग़लती कर रहा था, मैं उसे अंतिम क्षणतक छोड़ देता और तब जहाज़ का सांचालन स्वयं लेकर उसे टकरानेसे बचा देता। इसके लिये मैं या तो फिसलकर जहाजको किनारे लगाता, या पतवारको जल्दी-जल्दी दाहने-बायें मार कर जहाजकी पूँछको दाहने-बायें चलाता, जिससे जहाजका वेग कमहो जाता।

प्रथम दुर्घटनाके बाद मुझे पूरे एक सप्ताह तक 'भालू-राम' के साथ मेहनत करनी पड़ी, तब कहीं उसे मैदानके बीचमें उतरनेमें मैं पेड़ोंके पाससे गुजरा और जान जाते-जाते बच गयी। एक बार सामनेकी चहारदीवारीसे बिलकुल सटकर जहाज रुका। जहाज थोड़ा और बढ़ जाता तो प्रोपेलर टूट जाता। इस विद्यार्थीको सिखानेके बाद मुझे ऐसा जान पड़ा कि अब मैं चटाईपर जहाज उतार सकता हूं, जहाज न एक बालिश्त आगे उतरेगा न पीछे!

थोड़े ही दिनोंमें मुझे इसकी आवश्यकता भी पड़ गयी। मैं एक पुराने विद्यार्थीके साथ उड़ रहा था। इतनेमें इञ्जन की पानीवाली नली टूट गयी। रडियेटरसे सब पानी निकल पड़ा। इञ्जन गरम होगया और तब बन्द होगया। हमलोग उस समय ८०० फुट ऊँचे पर थे।

मैंने डंडेको जोरसे हिलाया और बायें हाथसे अपने कंटोप पर थप्पड़ मारा यह इशारा था कि विद्यार्थी अपना डंडा छोड़ दे। उतरनेके लिये केवक एक ही स्थान दिखलाई पड़ रहा था। यह भी बहुत छोटा था। केवल २०० फुट लम्बा रहा होगा। एक ओर मकान था, दूसरी ओर पेड़ थे। एक ओर पोखरी थी, दूसरी ओर दल-दलकी तरह जमीन दिखलाई पड़ती थी। परन्तु केवल इतनी ही कठिनाइयां नहीं थीं। यह २०० फुटका मैदान भी समथल नहीं था, बीचमें कुछ ऊंचा था। यदि इस ऊंचाईपर जहाजको मैं उतारता तो जहाज लुड़कते-लुड़कते जरूर या तो पोखरी में या दलदलमें चला जाता।

मैंने जहाजको इस मैदानके ठीक एक कोनेपर उतारा। लुढकता हुआ जहाज मैदानके बीचवाले टीलेपर चढ़ गया। ठीक बीचमें जाकर रुका।

मैंने मन-ही-मन 'भालू राम'को धन्यवाद दिया। उसकी ही बदौलत मेरा अभ्यास इतना बढ़ा-चढ़ा था कि मैं अपने जहाजको उस दिन जहां चाहता था वहीं उतार सका। नहीं तो न जाने उस दिन मेरी क्या गति होती।

(अनुवादक—डा० गोरखप्रसाद)

जीव-रासायनिक चिकित्सा

[रामदास गौड़, काशी]

१-इलाजोंके प्रकार

आयुर्वेदके अनुसार इलाज या चिकित्साके छः प्रकार हैं।

(१) हेतु-विपरीत वह प्रकार है जिसमें रोगके कारण को समझकर उसके विपरीत उपचार किया जाय। जैसे, यदि कोष्ठबद्धताके कारण शिरोवेदनाहो तो जुल्लाब या दस्तावर दवा दी जाय।

(२) व्याधिविपरीत वह प्रकार है जिसमें रोगके ही विपरीत इलाज किया जाय, जैसे त्वचामें व्यापक ज्वरके शमनके लिये स्नान आदि किसी विधिसे सीधे ठंढक पहुंचायी जाय।

(३) हेतु-व्याधिविपरीत वह प्रकार है जिसमें रोगके कारण और रोग दोनोंके विपरीत इलाज किया जाय, जैसे गरमीसे पैदा हुए ज्वरके शमनके लिये ठंडी ओषधियोंका प्रयोग।

(४) हेतु-सम वह प्रकार है जिसमें रोगके कारणको समझकर उसके समानही इलाज किया जाय जैसे गरमीसे उपजी व्याधिका इलाज गरमी ही पहुंचाकर की जाय गरम ही दवा दी जाय अथवा ऐसी दवासे ही उसका शमन किया जाय जिससे उसी तरहकी व्याधि निरुज शरीरमें उत्पन्नहो जाय। जैसे, होमियोपैथी।

(५) व्याधिसम वह प्रकार है जिसमें रोगके लक्षणोंके समान हो ओषधि दी जाय, जैसे, दस्त आते हों तो दस्तावर और ज्वर हो तो गरम दवा दी जाय। यह भी होमियोपैथी ही का एक रूप है।

(६) हेतु व्याधिसम वह प्रकार है जिसमें रोगके रूप और कारण दोनोंके समान इलाज किया जाय। यह भी होमियोपैथीका एक रूप है।

इन छहों प्रकारके इलाजमें संसारके सभी इलाजोंका समावेशहो जाता है।

आयुर्वेदमें इन छहों प्रकारके वर्णनके होते हुए भी व्यवहारमें अधिकांश विपरीत चिकित्साका ही अनुसरण किया जाता है। अल्लोपैथीकी पद्धति तो एकमात्र विपरीत चिकित्साकी है। होमियोपैथीमें तीनों प्रकारकी समचिकित्साका समावेश है।

नैसर्गिक वा प्राकृतोपचार पद्धतिमें रोगके दो हेतु माने जाते हैं। एक तो मल, विष आदि विजातीय द्रव्योंका शरीरके भीतर इकट्ठाहो जाना (भाव) दूसरे शरीरके मूल घटकों वा अवयवीय द्रव्योंका घट जाना। (अभाव)।

प्राकृतोपचारमें इसीलिये मल विषादि विजातीय द्रव्योंको किसी न किसी उपायसे निकाल बाहर करना और सजातीय घटक वा अवयवीय द्रव्योंकी कमीको पूरा करना, यही उद्देश्य रहता है।

आहारसे इलाज, पानीसे इलाज, गरमीसे इलाज, रंगसे इलाज, मिट्टीसे इलाज, शब्दसे, दृष्टिसे, संकल्पसे, हवासे इलाज करके नैसर्गिकोपचारी मलों और विषोंको दूर करते हैं और इस तरहकी चिकित्साकी प्रतिक्रियासे अथवा शोड्स्लरकी जीवरासायनिक लवण चिकित्सासे शरीरके अवयवोंको अपनी कमीको पूरा करनेमें सक्षम कर देते हैं। इसप्रकार प्राकृतोपचारी चिकित्सक विजातीय द्रव्योंका भाव और सजातीय द्रव्योंका अभाव, दोनोंको शमन कराता है। दोनों ही व्याधिके हेतु हैं, इन हेतुओंके विपरीत ही दोनों प्रकारके इलाज होते हैं। इसीलिये दोनों प्रकारके ये उपचार हेतु-विपरीत अर्थात् पहले प्रकारमें गिने जाने चाहिये।

२-भस्मान्त ꣳम् शरीरम्

जब शरीरको जलाते हैं तब अन्तमें राख रह जाती है। जलनेमें वह सभी पदार्थ उड़जाते हैं जो चिताकी आंचमें उड़नशील होते हैं। कोयला पानी, जो शरीरके अधिकांश भाग हैं, वायव्य रूपमें उड़ ही जाते हैं। राखमें वह सभी वस्तुएं रह जाती हैं जो उतनी आंचपर भी पिघल नहीं सकतीं। ये सब कर्बन-रहित और जल रहित खनिज क्षार होते हैं। मानव शरीरको यदि १०० मानें तो उसमें ७० भाग जल, २० भाग कर्बनी पदार्थ औ १० भागमात्र क्षार हैं जिन्हें जीवनक्षार कह सकते हैं।

शरीरमें केवल दशमांश होनेपर भी ये क्षार सारे शरीर

में फैले हुए हैं। रक्तमें, मांसमें, दांतोंमें सब कहीं ये क्षार कहीं कम कहीं अधिक मात्रामें मौजूद हैं। जर्म्मनके डाक्टर शूसलरके समयमें इन क्षारोंकी संख्या बारह थी। इन बारहोंमेंसे ग्यारह तो शरीरस्थ अम्लोंसे संयुक्त होकर लवणके रूपमें पाये जाते हैं और एक शुद्ध रेतके रूपमें। तबसे अब तक यह भी पता चला है कि मानवशरीरमें इन बारहों लवणोंमें समाविष्ट मूल पदार्थोंके सिवा संखिया, नैल, ब्रम, सीसा, तांबा, अलुमिनम् मंगलम् आदि भी हैं। इनकी कमीसे भी रोग उत्पन्न होना संभव है। इधर डाक्टर गोल्टज़ने जीवरासायनिक ओषधियोंमें इनका भी समावेश कर दिया है, परन्तु अभी इनका प्रचार नहीं हुआ है और साधारणतया ये बारहों लवण काफी समझे जाते हैं।

इन लवणोंका वितरण शरीरके सेलोंमें अत्यन्त सूक्ष्म परिमाणमें होता है। सेल स्वयं इतने सूक्ष्म हैं कि बिना अणुवीक्षणयंत्रके देख नहीं जा सकते। इनकी रचनामें भी प्रत्येकमें उसका दशमांश भी ये लवण हुए तो इनकी सूक्ष्मता सेलोंसे भी अधिक ठहरी। इसीलिये ये लवण सूक्ष्म रूपमें ही दिये जाते हैं कि सेलोंमें उनका शोषण सहजमें ही होजाय।

यह सूक्ष्मरूप कैसे बनता है? होमियोपैथीकी तरह स्पिरिटमें इसका घोल नहीं बनाते। निश्चित सूक्ष्ममात्रा लेकर नव भाग दुग्धशर्करामें इसे निश्चित कालतक खरल करते हैं। इस खरलकी हुई ओषधिकी फिर वही निश्चित सूक्ष्म मात्रा लेकर नव भाग दुग्धशर्करामें फिर निश्चित काल तक खरल करते हैं। पहला दशामांश नम्बर एक, शतांश नम्बर २, सहस्रांश नम्बर ३, अयुतांश नम्बर ४, लक्षांश नम्बर ५, दशलक्षांश नम्बर ६, कोट्यंश नम्बर ७, इसी क्रमसे एक हजार और लाख नम्बरतककी सूक्ष्मतातक ओषधि बना सकते हैं। आयुर्वेदकी विधिमें खरलद्वारा जैसे भावना देते हैं ठीक उसी तरहसे खरल करनेमें जितनी ही मेहनत की जाती है और सूक्ष्मता लायी जाती है, ओषधि उतनीही बलवती बनती जाती है। यह ओषधियां रोगीकी अवस्था, उसकी ग्रहणक्षमता आदिपर विचार करके उचित मात्रामें दी जाती हैं।

३—रोगी कौन हैं?

शरीरमें असुखके लक्षण बने रहनेसे ही हम कहते हैं कि हम रोगी हैं, परन्तु वह तो बाहरी लक्षण हैं। असलमें शरीरके भीतर क्या होता है जिससे हमारी देहमें असुखके लक्षण बने रहते हैं, यह जानना बहुत कठिन है। संसारके विद्वानोंने जाननेके लिये इस रहस्य की बहुत खोज की है। सबके सिद्धान्त अलग-अलग हैं। अपने-अपने सिद्धान्तकी सच्चाई सिद्ध करनेको सभी उत्सुक रहते हैं, और प्रत्येक पक्षवाला अपनेको ठीक मार्गपर ही समझता है। अतः हम यहां सबके सिद्धान्तोंकी तुलना न करके, अत्यन्त आधुनिक जीवरासायनिक सिद्धान्तको बहुत स्थूल रूपमें दिखाना चाहते हैं।

यह विज्ञान-सिद्ध तथ्य है कि हमारा सम्पूर्ण स्थूल शरीर अत्यन्त सूक्ष्म कणोंका समूह है जिन्हें सेल कहते हैं। ये बहुत अच्छे अणुवीक्षक यंत्रसे ही देखे जा सकते हैं। इन सेलोंकी असंख्य जातियां हैं। इनमेंसे प्रत्येक सजीव व्यक्ति है। प्रत्येक सेलका अपना निश्चित जीवन है। जन्म व्याधि, जरा, मरण प्रत्येकके साथ लगा हुआ है। प्रत्येकके कर्त्तव्य हैं। सूक्ष्म भावसे, उनकी सूक्ष्मताके अनुरूप ही उनमें भी शिक्षा, रक्षा, व्यवसाय और सेवा चारों वर्णोंका विभाग-सा है, और वे भी जीवनके विकट संग्राममें सदा भिड़ी रहती हैं। उनमें भी भली और बुरी सेलें हैं। वे भी शरीररूपी ब्रह्माण्डके अनुकूल या प्रतिकूल काम करती हैं। अनुकूलता पुण्य है। प्रतिकूलता पाप है। पापी सेलोंकी दुष्टतासे शरीर ब्रह्माण्डका नाशक कैंसर (बदगोश्त) नामका रोग हो जाता है। इस पाप पुण्यके फलस्वरूप ये सेलें बीमार भी होती हैं। कमजोर और अशक्य भी हो जाती हैं। फिर अपना कामकाज नहीं कर सकतीं।

इनका कामकाज क्या है? यह भी समझने लायक बात है। हमारी तरह इन्हें भी भोजन चाहिये और वह भोजन भी सबके लिये एक ही नहीं है। प्रत्येक जातिके सेलोंका अपना अपना आहार अलग अलग है। हर एकका प्रकार अलग, मात्रा-परिमाण अलग और ग्रहण करनेकी विधि अलग है। शरीरके भीतर जो कुछ हम खाते-पीते और सांससे भीतर ले जाते हैं, सभी कुछ रसोइये-सेलोंकी क्रियासे रसके रूपमें बदलकर रक्तकी भोज्यधाराके द्वारा शरीरभरमें प्रत्येक सेलके पास पहुँचता है। ये सेलें अपनी अपनी आवश्यकताके अनुसार आहार खींच लेती हैं और

मलोंको छोड़ देती हैं। बाहरसे आनेवाली वस्तुओंमें बहुत सी बाहरी विजातीय आसुरी सेलें भी आ जाती हैं जिन्हें शरीरके भीतर रहनेवाली दैवी सेलोंसे विरोध होता है, जो उनका भोजन खा जाती हैं, जो उनसे युद्ध करती हैं। इस तरह शरीरके भीतर निरन्तर किसी न किसी देशमें देवासुर-संग्राम छिड़ा रहता है। इस लड़ाईमें दोनों पक्षके वीर मारे जाते हैं, दोनोंकी लाशें और दोनों ओरसे बने हुए विष और प्रतिविष चारों ओर फैल जाते हैं। जिस देशमें यह संग्राम होता है वह अंग **नवीन रोग** से पीड़ित हो जाता है। इस संग्राममें देवताओंकी विजय हुई तो शरीर ब्रह्मांड बना रह गया और हार हुई तो शरीर ब्रह्मांड नष्ट हुआ।

हम यहां युद्धका विस्तार नहीं दिखाना चाहते। विज्ञ-पाठक उसके जय-पराजय, और विविध अवान्तर दशाओं, अन्तर्दशाओं अ र परिणामोंका अनुमान कर सकते हैं।

इस लड़ाईसे विजय पानेपर भी सेलोंकी शक्ति घट जाती है, और कुछ कालतक पौष्टिक आहार सेवनसे शक्ति लौटती है। उन्हें उत्तेजक ओषधिकी भी जरूरत पड़ती है। कभी कभी शक्ति लौटती ही नहीं। कभी कोई विशेष व्याधि सतातीहै। कभी बुढ़ापा आकर सेलोंको निर्बल कर देती है।

परन्तु इन सब बातोंसे कहीं अधिक महत्वकी बात है नित्य-नित्यका सेलोंका आहार। जैसे मनुष्यको नित्य पौष्टिक सुपाच्य आहार मिलता रहे तो वह निरन्तर पुष्ट स्वस्थ और सुखी बना रहेगा और अपने वैरियोंसे भिड़नेकी और अपनी और अपने भाइयोंकी रक्षा करनेकी क्षमता बनी रहेगी। यही हाल सेलोंका भी है। जो अन्न हम शरीरके भीतर भोजनके द्वारा ले जाते हैं उनमें सभी पोषक तत्त्व मौजूद रहते हैं परन्तु बीमार सेलोंमें उनके शोषणकी क्षमता कम होती है या नहीं होती। फल यह होता है कि आहारका वह अंश किसी न किसी द्वारसे शरीरसे बाहर हो जाता है। जैसे पेशाबकी राहसे शकर, अलबुमेन, फासफेट आदि इसी लिये निकल जाते हैं कि इनका शोषण शरीरके भीतर नहीं हो पाता। परन्तु जब यह सेलें ठीक ओषधि पा जाती हैं, तब इनमें शोषणकी क्षमता आ जाती है, तब यह चीजें लगती हैं। उस कमय पेशाबसे शकर अल्बुमेन फास्फेट आदि शरीरके घटक नहीं जाते। तब आहारके ये आवश्यक अवयव शरीरमें जाकर आत्मसात् होजाते है। यह बात परीक्षा करके देखी गयी है कि विशेष लवणोंके, सूक्ष्मरूपमें ओषधिकी तरहसे दिये जानेपर विशेष प्रकारके रोग नष्ट हो गये हैं। इस तरहकी परीक्षाओंसे यह स्पष्ट होगया कि लवणोंका यह सूक्ष्म रूप बीमार सेलोंके लिये बड़ी ही उपयोगी दवा है। इनकी मात्राकी सूक्ष्मता बीमार सेलोंकी सूक्ष्मताके अनुरूप ही है। रोगीकी ग्रहण-क्षमताके अनुरूप ही ओषधिके प्रकार और मात्राका निश्चय सभी पद्धतिवाले करते हैं। अलोपैथी, आयुर्वेदीय और हकीमी पद्धतियोंमें भी बच्चोंकी औषधिकी खूराक बड़ोंकी अपेक्षा बहुत थोड़ी होती है। परन्तु जहां रोगी हैं दुर्निरीक्ष्य सूक्ष्म सेलें, वहां उनके लिये औषध भी दुर्निरीक्ष्य सूक्ष्मतम ओषधिकण ही होने चाहियें। जीवरासायनिक विधिमें खरलद्वारा भावनाओंका तात्पर्य्य ही यही है।

४-वे बारहों ओषधियां कौन हैं ?

उन बारहों ओषधियोंके नाम देकर हम यहीं इस लेख को समाप्त करेंगे, क्योंकि चिकित्साका विस्तार करनेकी इस छोटेसे लेखमें गुंजाइश नहीं है।

१—खटिक स्फुरेत (कल्केरिया फासफोरिकम्)
२—खटिक प्लविद (कल्केरिया फ्लुओरिकम्)
३—खटिक गन्धित (कल्केरिया सलफ्यूरिकम्)
४—पांसुज स्फुरेत (काली फासफोरिकम्)
५—पांसुज हरिद (काली म्युरिएटिकम्)
६—पांसुज गन्धेत (काली सलफ्यूरिकम्)
७—सैंधकम् स्फुरेत (नेट्रम् फासफोरिकम्)
८—सैंधकम् हरिद (नेट्रम् म्युरिएटिकम्)
९—सैंधकम् गन्धेत (नेट्रम् सल्फ्यूरिकम्)
१०—लौह स्फुरेत (फेरम फासफोरिकम्)
११—मगनीसियम् स्फुरेत (मगनीसियम् फासफोरिकम्)
१२—सिकता (सिलिका वा सैलीशियम्)

खटमलोंसे बचनेका सहज उपाय

(श्री पं० किशोरीदासजी वाजपेयी शास्त्री, काव्यतीर्थ)

सोते हुए लोगोंका खून चूसनेवाले जीव प्रायः सर्वत्र मिलते हैं, परन्तु ठंढी जगहें उन्हें अधिक पसन्द हैं, जैसे शिमला, मंसूरी नैनीताल आदि। मेरा आशय खटमलोंसे है। जो लोग शिमला आदिमें कभी रहे हैं वे जानते हैं कि इन्हें ठंढी जगह कैसी पसन्द है। वैसे ये जीव सर्वत्र मिलते हैं, और अन्धेरे-उजेले मौका पाते ही धीरे-धीरे खून चूसने लगते हैं, तंग कर डालते हैं!

मैं वैष्णव हूँ, और वैष्णव लोगोंकी अहिंसा जैन भाइयों से कम नहीं होती! मैं खटमलोंसे तंग भी था और इन्हें मारना भी नहीं चाहता। प्राणदण्ड की अपेक्षा निर्वासन दण्ड मैं अधिक पसन्द करता हूँ, चाहे वहां फिर मृत्यु हो, चाहे जो हो। अपनी खाटोंको बहती हुई नालीके उसपार झड़वा देता था और गिरे हुए खटमलोंके मारनेकी सख्त मनाही कर रखी थी। परन्तु नित्य यह क्रिया करनेपर भी वे घटते न थे, बढ़ते ही जाते थे। लोग गरम खौलता हुआ पानी खाटोंपर डालते हैं, जिससे खटमल मर जायं। परन्तु इस क्रियाके करनेवाले भी बराबर अपनी असफलता का रोना रोया करते हैं तब यह 'गुनाह बेलज्जत' कौन करे?

एक बार एक सज्जनने कहा कि फिनाइल पानीमें मिला कर खाटके पायोंके छिद्रोंमें डाला जाय और खाटपर भी छिड़का जाय, तो खटमल सब निकल-निकलकर भाग जायंगे। मुझे यह बात पसन्द आयी। पानीमें मिलाकर ज्योंही फिनाइल डाला, त्योंही सैकड़ों खटमल निकल-निकल कर बाहर आने लगे और जरा सा खाट अटकने-पटकनेसे जमीन पर विछ गये। खाटें खटमल-रहितहो गयीं। दो तीन दिन खूब नींद आयी लेकिय बादमें पहलेसे भी ज्यादा होगये। फिर फिनाइलका प्रयोग किया और फिर वही बात! बात यह है कि गरम पानी या फिनाइलसे एक बारतो खटमल दूर होजाते हैं, परन्तु खाटें पानीसे भीग जाती हैं अतएव फिर चौगुनेहो जाते हैं। ये ठंढी जगहमें उत्पन्न होते हैं।

मेरे मनमें जब यह आया कि पानीके कारण खटमल बढ़ते हैं, तो मैंने मिट्टीके तेलकी सोची। मिट्टीका तेल लेकर तयार हुआ। खाटें नालीके उस पार डलवायीं तेल खाटकी प्रत्येक सन्धिमें डाला और पाटियों पर भी। देखते देखते हजारों खटमल बिलबिलाकर निकल पड़े। झाड़नेसे सब व्याकुल होकर जमीनपर पड़े। खाटें अपने घरमें रखवा लीं। रातको खूब नींद आयी और खटमल फिर पैदा भी नहीं हुए।

अब मैं और मेरे घरके लोग सुखकी नींद सोते हैं, खाटों में खटमलोंका नाम नहीं है। परन्तु सब खाटें नित्य बाहर निकालकर धूपमें डाली जाती हैं।

जिन लोगोंको ये जीव सताते हों, वे यदि उपयुक्त क्रिया करें, तो इनसे पिण्ड छूट सकता है। परन्तु शुरू-शुरू में आठ-आठ दिनके अन्तरसे दो-तीन बार तैल-प्रयोग करना चाहिए और खाटें, रोज न होसके तो, दूसरे, चौथे अवश्य धूपमें डलवाते रहना चाहिये। पानीसे खाटें न भीगने पावें। बस, फिर खटमल कभी न होंगे। शर्तिया दवा है, आजमूदा। यदि कभी हो भी जायं, तो वही तैल-प्रयोग कर दीजिए।

हाँ, इस प्रयोगसे एक बात जरूर हो जाती है—खाटें 'चर्र-मर्र' बड़े जोरसे करने लगती हैं और करती ही रहती हैं बैठते, करवट बदलते! यह बात जिन्हें बर्दाश्त हो वे ही इस प्रयोगको करें। यदि कोई वैज्ञानिक विद्वान् कोई ऐसी तदबीर बतानेकी कृपा करें जिससे यह आवाज न हो, तो बहुत अच्छा हो परन्तु मुझे तो यह आवाज कुछ खलती नहीं है। सुखकी नींद सोता तो हूँ।

लाखका रोजगार

हाल में ही देशी लाखकी पैदावार और खपतके संबंधमें जो तखमीना लगाया गया है उससे पता चलता है कि भारत अब भी अपनी लाखकी पैदावारका पूरा पूरा फायदा नहीं उठाता। सन् १९३५में ब्रिटिश भारतमें लाखकी कुल पैदावार ११,२७,००० मन थी यद्यपि अभी इससे बहुत ज्यादा पैदा हो सकती है और इसमेंसे १,५८,४६,३५५ रुपये कीमतकी दूसरे देशोंको भेजी गयी। भारतमें सिर्फ २४,००० मनकी ही खपत हो सकी अर्थात् कुल पैदावारकी २ फी सदी और सम्पूर्ण निर्यातके ३ प्रतिशतके लगभग बराबर। इन अंकोंसे पता चलता है कि जब लाखका आयात करनेवाले देश इसका अच्छा उपयोग कर रहे हैं भारतमें इसके औद्योगिक विकासका क्षेत्र सुनसान पड़ा है।

भारतमें लाखका सबसे अधिक और व्यापक उपयोग फर्नीचरपर पालिश करनेमें होता है। उत्तरी भारतके, यदि सब नहीं तो अधिकांश बढ़ई, एक साथ थोड़ी मिकदारमें चपड़ा खरीद लेते हैं और उसे मिथिलेटेड सिपरिटमें घोल कर लकड़ीके सामानपर पालिश करते हैं। लेकिन लाखका सिर्फ इतना ही उपयोग करनेसे कुल पैदावारका बहुत थोड़ा हिस्सा खर्च हो सकता है। इसका एक और तरहसे उपयोग करते हैं और वह इस तरह कि रंगी हुई लाखकी बत्तियोंसे काठके खिलौनों, कलमों वगैरहपर पालिश करते हैं। यद्यपि इस तरहसे रंग चढ़ानेका काम बढ़ रहा है फिर भी खपतकी गति बहुत धीमी है। एक तीसरे तरीकेसे भी, यानी चूड़ियां बनानेमें लाखका उपयोग होता है, घटिया किस्मकी लाख सोने चांदीकी पोली चीजोंके अन्दर भरनेके काम आती है। अन्तिम दो प्रकारसे लाखकी जो खपत होती थी वह अब धीरे-धीरे घट रही है। और शायद यह कहना गलत न होगा कि भारतमें जितनी लाख पैदा होती है उसका एक प्रतिशत भी इन सब प्रकारके उपयोगोंमें खर्च नहीं होता।

जहांतक चपड़े [लाख]से सम्बन्ध है भारतमें इसकी खपत सिर्फ ग्रामोफोनके रेकार्ड बनानेमें ही होती है। इस कामके लिये अभी इसके जोड़की दूसरी चीज नहीं मिल सकी। चपड़ेकी तरहकी दूसरी चीजें हैं जरूर लेकिन जो बात इससे बने हुए रेकार्डोंमें पायी जाती है वह दूसरी ऐसी ही चीजोंसे बने रेकार्डोंमें नहीं। इस समय लाखके समस्त उत्पादनका ४० से ५० प्रतिशत भाग ग्रामोफोनका रेकार्ड बनानेमें खप जाता है। यद्यपि भय है कि रेडियो ग्रामोफोनका प्रबल प्रतिद्वन्द्वी बन बैठेगा, किन्तु सम्भव है कि इस बढ़ती हुई प्रतिद्वन्द्विताके परिणामस्वरूप भविष्यमें बहुत दिनोंके लिये सिर्फ अलग-अलग बाजार निकल आवें। उदाहरणके लिये पूर्वमें अब भी ग्रामोफोनके लिये विशाल क्षेत्र खुला पड़ा है।

लाखसे और भी कई प्रकारकी चीजें बनने लगी हैं। उदाहरणके लिये, टोनब्रिज, केण्टमें लाखसे बिजलीके हैण्डल, हाथसे चलानेके पहिये, बेतारके तारको नियन्त्रित रखनेवाली घुण्डियां, चौखटे वगैरह बनने लगे हैं। इसके अलावा चपड़े का उपयोग वैज्ञानिक प्रणालीसे बनी हुई राखमें मिलाकर या अकेले ही किया जाता है।

आजसे १५ साल पहले बिजलीका इन्सुलेटर बनानेमें सिर्फ चपड़ा ही काम देता था, लेकिन कई चीजोंसे मिलकर बनी हुई रालके निकल आनेसे इसका उपयोग कम पड़ गया है। फिर भी सस्ता पड़नेके कारण इसके लिये और भी कई क्षेत्र खुल गये हैं। बिजलीके उद्योगधन्धेमें लाखकी खपतकी काफी गुञ्जाइश है।

बटन बनानेमें अब चपड़ेसे काम नहीं लिया जाता, किन्तु ऐसे उद्योगधन्धे बहुत हैं जिनमें चपड़ेकी खपत होती है। इन उद्योगधन्धोंमें हैट बनानेका व्यवसाय उल्लेखनीय है जिसमें लाखसे टोपीको कड़ा बनानेका काम लिया जाता है। इस प्रकार साधारणतः चपड़ेके बारेमें यही कहा जा सकता है कि यद्यपि नकली राल भी बन चुकी है फिर भी भारतसे इसका निर्यात कम नहीं हुआ। यदि चपड़ेमें गर्मी रोकनेकी शक्ति बढ़ायी जा सके तो अब भी नकली राल इसकी जगह छीन नहीं सकती। नामकुमका इण्डियन लैक रिसर्च इंस्टिटयूट और लण्डन तथा न्यूयार्ककी ऐसी ही अन्य संस्थाएं यह सुधार करनेका प्रयत्न कर रही हैं। ऐसा

हो जानेपर बढ़िया किस्मका चपड़ा तैयार हो सकेगा।

चपड़ा एक प्रकारसे सिर्फ भारतमें ही बनता है और जब इसकी उपयोगिता इतनी व्यापक है तो यहांवालोंको चाहिये कि वे अधिकसे अधिक परिमाणमें इसको तैयार करें। भारतके लिये आवश्यक है कि देश और विदेशमें इसकी खपत बढ़ानेके लिये उपयुक्त बाजार ढूंढ़ ले।

"जलना" और "बलना" एक ही बात नहीं है

शिष्य—भगवन्! यह क्या बात है कि तिल सरसों आदिके तेलोंमें जलती लौ लगायें तो भी नहीं जलते, पर मिट्टीका तेल भकसे जल उठता है।

गु०—वत्स! तुम्हारे प्रश्नका आशय मैं समझ गया, परन्तु तुमने "जलने" शब्दका ठीक प्रयोग नहीं किया। इस प्रश्नमें तुम्हें कहना चाहिये था कि "तिल सरसों आदिके तेलोंमें 'बलती" लौ लगायें तो भी नहीं "बलते" पर मिट्टीका तेल भकसे "बल" उठता है।

शि०—गुरुजी! क्या 'जलना" और "बलना" एक ही बात नहीं है?

गु०—कदापि नहीं। हमारे पेटमें आहार धीरे-धीरे जल जाता है, बलता नहीं। लोहेपर मोरचा लगता है लोहा जल जाता है, बलता नहीं। पौधेपर पाला पड़ता है, पौधा जल जाता है, बलता नहीं। तेजाब या खारसे हमारा हाथ जल जाता है, बलता नहीं। कोयला जलानेसे जलता है, जलते जलते जल जाता है, बलता नहीं। बहुत गरम दूधसे या चायसे मुंह जल जाता है, बलता नहीं। जलती हुई चाय, या जलता हुआ दूध कहते हैं, पर बलती हुई चाय या बलता हुआ दूध नहीं कहते। यह संभव है कि लकड़ी धुआं दे और सुलगते सुलगते जलकर राख हो जाय, पर बले बिलकुल नहीं। दीपशिखामें तेल जल रहा है बत्ती जल रही है, परन्तु इनके जलनेसे शिखा 'बल" रही है। हम कह सकते हैं कि तेल बल रहा है, बत्ती बल रही है। परन्तु ज्यों ही दीपशिखा या लौ बुझ जाती है, त्योंही जलना नहीं बन्द होता। जबतक बत्तीमें गुल रहता है और धुआं देती है, तबतक वह जल रही है, यद्यपि बल नहीं रही है। आग जलती है, परन्तु उसे धौंकते हैं तो बल उठती है। बलती हुई आगको धौंकते हैं, तो बहुधा बुझ भी जाती है, मगर ज्यादा तेज जलती है, और बहुत तेज जलती हुई आग भी बलती नहीं रहती।

शि०—भगवन्! अब मैं "जलने" और "बलने" का अन्तर समझ गया। जब शिखा या लौ देकर कोई चीज जले तभी उसका बलना कहलायेगा। जलना अधिक व्यापक दशा है, और "बलना" उसीकी अन्तर्दशा है, जलनेकी एक बिशेष दशा या रूप है।

गु०—अब तुम ठीक समझे। अब यह बतलाओ कि कोई चीज बलती क्यों है?

शि०—ज्यादा आंच पहुंचनेसे ही बलती है।

गु०—क्या इतनी ही बात है? अच्छा देखो लोहेको कितनी ही ज्यादा आंच दें, लोहा तो नहीं बलने लगता!

शि०—नहीं, भगवन्! लोहा या कोई और धातु साधारणतया तो नहीं बलने लगता, पर ओषजनमें तो लौ देकर उसका जलना आपने ही दिखलाया है।

गु०—और मगनीसियमका तार तो साधारण वायुमें बल उठता है। परन्तु साधारण वायुके अभावमें बिजलीके बल्बोंके भीतर जो बारीक तार है, वह चमकता रहता है, परन्तु बलता नहीं।

शि०—गुरुजी, वह तार तो सालों जलता है, और कितना बारीक होता है, पर जल नहीं जाता। ज्योंका त्यों बना रहता है। यह क्या बात है?

गु०—"जलने" और "जल जाने" में भी अन्तर है। कोयला जलता रहता है, और जलते जलते जल जाता है। परन्तु बल्बके तार निरन्तर जलते रहने पर भी कभी जल नहीं जाते। हमारे पेटके अन्दर खाना धीरे-धीरे जल जाता है। परन्तु जब उसके जल जानेमें कमी होती है, तब

कहते हैं कि अग्नि मन्द हो गयी है, या मन्दाग्नि रोग हो गया है। क्या दोनों प्रकारोंके जलनेमें अन्तर नहीं है ?

शि०—अन्तर है, और बहुत बड़ा अन्तर है। परन्तु कारण समझमें नहीं आया।

गु०—उसे भी समझो। अच्छा, ओषजनके बरतनमें सुलगती लकड़ी क्यों बल उठती है, जानते हो ?

शि०—साधारण हवामें लकड़ीका कर्बन और उज्जन हवाके ओषजनसे जब जल्दी जल्दी मिलने लगते हैं तब लकड़ी सुलगने लगती है। लकड़ीमें कर्बन और उज्जनके यौगिक ही तो भरे हैं। जब सुलगती लकड़ीको चारों ओर विशुद्ध ओषजनका आवरण मिलता है, तो मिलनेका वेग अत्यन्त बढ़ जाता है, आंचकी तेजीसे लकड़ीके कर्बोज्ज यौगिक वेगसे निकलने लगते हैं और उनके अणु जलजानेके पहले तेज चमकने लगते हैं। इसी वायव्यके चमकते, दमकते, जलते, भागते अणुओंकी राशिको "शिखा" कहते हैं।

गु०—तुम बहुत ठीक समझे हो। इसी शिखामें लकड़ीके जलजानेकी क्रिया समाप्त होती है। जहां समाप्त होती है, वहीं शिखाका अन्त होता है। शिखामेंसे बिना जले हुए कोयलेके कण भी निकलते हैं जो धुआं या काजलके रूपमें अवसर पाकर जम भी जाते हैं। यह जलना असलमें विविध वस्तुओंका मिलना है, जिसे रासायनिक क्रिया कहते हैं।

शि०—और लकड़ीके कण टूटकर अलग भी तो होते हैं, केवल मिलना तो नहीं हुआ ?

गु०—ठीक कहा। पहले लकड़ीके कणोंका "वियोग" होता है और फिर उन कणोंसे ओषजनके कणोंका "संयोग" भी होता है। इस प्रकार "संयोग" "वियोग" दोनों प्रकारकी रासायनिक क्रिया होती है। थोड़ेसे शब्दोंमें हम इस प्रकारके जलनेको **"रासायनिक परिवर्तन"** या **रासायनिक विकार** कह सकते हैं।

शि०—तो क्या **रासायनिक विकार**के सिवा जलनेका और भी प्रकार हैं ?

गु०—क्यों नहीं। असलमें "जलना" तो रूढ़ि है सभी तरहकी उन घटनाओंके लिये जिनमें या तो किसी वस्तुको देखनेमें आंचकी कमीबेशीसे ह्रास या क्षय होजाय, या देखनेमें उसमें आंचके कारण विशेष प्रकारकी चमक आजाय। रासायनिक विकारमें तो आंचकी कमी बेशीसे ह्रास या क्षय ही देखते हैं। जिसमें ह्रास नहीं है, केवल चमक है उसमें **रासायनिक विकार** है ही नहीं। जैसे, लोहा लाल करनेमें लोहेमें रासायनिक विकार नहीं होता, क्षय या ह्रास नहीं होता, तो भी वह जलता कहलाता है, उसी तरह बल्बका तार भी आंचसे लाल हो जाता है और चमकता है परन्तु उसमें क्षय या ह्रास नहीं होता। यह भौतिक विकार है, रासायनिक नहीं।

शि०—अच्छा ! तो अब मेरी समझमें आया कि जलना तो आंचके अधिक होनेसे क्षय या ह्रासको अथवा उसके साथ ही या बिना ही, चमकके आनेको कहते हैं जिसमें बलना भी शामिल हो सकता है। और, बलना उस जलनेको कहते हैं जिसमें रासायनिक विकारका प्रदर्शन शिखाके रूपमें हो।

गु०—बहुत ठीक। तुमने दोनोंका अन्तर यथार्थ रीतिसे समझ लिया है। परन्तु शिखाके रूपमें बलनेकी प्रधान शर्त्त क्या है, जानते हो ?

शि०—नहीं, कृपाकर बतलाइये।

गु०—अब यहीं तुम्हारे पहले प्रश्नका उत्तर आता है। शिखाके रूपमें तभी बलना होता है जब जलनेवाली चीज वायव्यके रूपमें हो। तेल दो तरहके होते हैं। एक उड़नेवाले और दूसरे न-उड़नेवाले। सरसों तिल आदि तेलहनोंके तेल उड़नेवाले नहीं होते, अर्थात् इनके तलपर इन्हींके भाफका आवरण नहीं होता। इसीलिये दियासलाई लगाओ तो ये तेल लौ नहीं पकड़ते। बल नहीं उठते। इसके विपरीत मिट्टीका तेल उड़नशील होता है। इसके तलपर इसकी भाफका आवरण छाया रहता है। इसीलिये लौ लगते ही भकसे बल उठता है। पेट्रोल तो भयानक रीतिसे उड़नशील मिट्टीका तेल है।

शि०—बलनेवाले द्रवोंमें किसीकी शिखामें प्रकाश होता है और किसीकी शिखामें प्रकाश नहीं होता। इसका क्या कारण है ?

गु०—यह बात द्रवोंकी ही नहीं है। बलनेवाले वायव्योंकी भी यही दशा है। बलनेका रहस्य यह है कि पहले आंचके कारण अधिक वाष्प निकलता है। यह जब बल उठता है या बाल दिया जाता है, तो आंचकी तेजीसे किसी किसीके अधिकांश अणु टूट-टूटकर डालटनके परमाणुओंमें परिणत हो

जाते हैं। अगर इनमें करबनके भी परमाणु हुए तो वे आंचमें तेज चमकते हुए ऊपरको तेजीसे उठते हैं। इन्हींके समूहके कारण प्रकाश फैलता है, परन्तु ज्योंही ये वायु या ओषजनके आवरणमें आते हैं त्योंही ओषजनसे मिलकर इनका ओषिद बन जाता है, और चमकना खतम हो जाता है। ओषजन काफी न मिला, तो ये चमकते कण आंचसे निकलकर बुझ जाते हैं और हवामें धुएं या काजलके रूपमें मिल जाते हैं। शुद्ध उज्जन वायु जलती है तो उसमें न चमक है न कालिख, क्योंकि वहां कर्बन कहां।

शि०—कर्बन चतुरुज्जिद्में तो कर्बन है परन्तु उसके बालनेसे तो रोशनी नहीं होती।

गु०—उसमें उज्जनकी अपेक्षा एक तो कर्बन कम है, दूसरे वह टूटनेके पहले ही बल जाता है, अर्थात् उसके कर्बनके परमाणु बल उठनेके बाद ओषजनसे मिलते समय टूटते हैं। उनके चमककर उठने और भागनेकी नौबत ही नहीं आती।

शि०—एक बात और पूछना चाहता हूं। "जलना" शब्द संस्कृतके "ज्वल्" धातुसे बना है जिसका अर्थ बलना है और ज्वाला शिखाको ही कहते हैं, परन्तु हिन्दीमें "जलना"को आपने अर्थके नाते अधिक व्यापक बतलाया है।

गु०—ठीक है। हिन्दीमें "जलना" शब्दकी शक्ति बढ़ गयी है। हमने इसीलिये इसके अर्थकी व्यापकताको रूढ़ि कहा।

शि०—आम बोलचालमें तो जलने-बलनेमें कोई अन्तर नहीं समझा जाता।

गु०—जरूर समझा जाता है। सावधान बोलनेवाले इस अन्तरका पूरा ख्याल रखते हैं।

सूतकी बहुत आसान कताई

वस्त्रपूर्णा तकली

देशकी वर्तमान परिस्थितिके विचारसे आज वस्त्र-स्वावलम्बन जितना आवश्यक है, उतना ही आसान भी। कोई गरीब हो या अमीर, सुगमता-पूर्वक एक चरखे और तकलीकी व्यवस्था तो कर ही सकता है। साथ ही नियमित रूपसे सिर्फ आध-घण्टा सूत कातकर ही प्रत्येक व्यक्ति अपनी आवश्यकता को भी सहजमें पूर्ण कर सकता है। इतना ही नहीं, तकलीका व्यवहार तो और भी अधिक सुलभ और सर्वसाध्य है। वस्त्र-स्वावलम्बनकी दृष्टिसे कते हुए सूतका यदि अधिक बलवान और साफ होना आवश्यक है, तब तो तकलीका महत्व चर्खेसे और भी अधिक सिद्ध होता है, क्योंकि यह एक मानी हुई बात है कि तकलीका सूत चर्खेकी अपेक्षा अधिक साफ, एक-सा और मजबूत होता है। फिर कताईमें भी यदि विधिपूर्वक काता जाय तो तकलीसे भी चर्खेके बराबर ही सूत निकल सकता है।

हमारे देशमें हरएक आदमीको औसतन १४ गज कपड़े की आवश्यकता होती है। इतना कपड़ा रोज आध-घण्टा तकली कातनेसे बन सकता है ऐसी आज स्थिति है। शुरू-शुरूमें एक काल ऐसा था, जब कि आध घण्टेमें ५० तार कात लेना कुतूहलका विषय था। अब तो तकली इससे चौगुना भी कात सकती है। दुगुना तो मामूली गतिसे कातती हैं। ऊपर जो १४ गजका हिसाब किया गया है, वह इसी मामूली गतिके अनुसार है। "जहाँ मैं जाता हूं वहीं तू मेरा साथी है।" यह जो साधु तुकारामजीने ईश्वरके लिये कहा है, वही तकलीके विषयमें भी सच है। तकलीका ऐसा मनोहर और स्नेहभरा स्वरूप है। है तो वस्तु छोटी-सी पर उसकी महिमा विशाल है।

यह सच है कि चर्खेकी अपेक्षा तकली-कताईकी पद्धति कुछेक विशेषताएँ लिये हुए है और जबतक विधि और व्यवस्थाके साथ इसका उपयोग न किया जाय, कातनेवाले की गति नहीं बढ़ सकती।

———

तकली कैसे कातें ? आसन

तकलीको हथेलीसे पिंडरीपर या जांघपर बल देनेके लिए खास तरहसे बैठना जरूरी है। बैठनेके इस ढङ्गका नाम 'आसन' है।

१. लेखासन (चित्र नं० १) २. अर्धपद्मासन (चित्र नं० २) ३. सुखासन (चित्र नं० ३) पिंडरी या टांग पर बट देनेके लिये लेखासन और जांघपर बट देकर कातनेके लिये अर्धपद्मासन या सुखासन आवश्यक है।

लेखासन–(१) तकली जोरसे घुमायी जा सकती है। (२) तार अधिक लम्बा कत सकता है। (३) कातनेके बाद तार तकलीपर लपेटनेमें अधिक सुविधा होती है। सारांश, तकलीकी गति बढ़ानेके लिये यह आसन सर्वोत्तम है। परन्तु इस आसनपर बहुत देरतक बैठनेमें कष्ट होता है। अबतक इस आसनपर आध घण्टेमें अधिक-से-अधिक गति ११॥। नम्बरके २२३ तार (१ तार = ४ फुट) और १८ नम्बरके २०७ तारतक आयी है।

अर्धपद्मासन और सुखासन–(१) इनमें लेखासनके मुकाबलेमें तकली अधिक जोरसे नहीं घुमायी जा सकती। (२) तार कुछ कम लम्बा कतता है (३) कातनेपर उसे लपेटते समय तकली जाँघसे बहुत दूर हटानी पड़ती है या पूनीवाला हाथ बहुत ऊपरको उठाना पड़ता है। (४) परन्तु इन आसनोंपर आरामसे बहुत देरतक बैठ सकते हैं।

सूचना—कातते समय चाहे जिस आसनपर क्यों न बैठें तथापि जिस अंगपर तकली वटी जाती है, उसके बालों को कैंचीसे इतना काटलें कि जिससे उनमें सूत या तकली ऊलझने न पावे। एक बार रोएं काटनेपर यदि प्रतिदिन कातना जारी रहे तो फिर उस भागपर रोएं नहीं उगने पाते। रोएं छुरेसे निकालना उचित नहीं है क्योंकि उस्तरेसे निकालनेसे वह भाग एकदम चिकना हो जावेगा और तकली की रगड़से उसमें जलन पैदा होनेका डर रहेगा।

साधन

१ तकली, २ पूनी, ३ राख, ४ कागज, ५ अटेरन।

तकली—(१) सीधी हो । यदि टेढ़ी होगी तो पूरा वेग नह मिलेगा । तकली डोलेगी और तार भी टूटेगा ।

(२) तकली-साधारण वजनदार होनेसे गति अधिक मिल सकती है ।

(३) तकलीके सिरेपरका खांचा कुछ तिरछा और गहरा हो जिससे तकलीपर लपेटा हुआ सूत कातते समय खुलकर खिसक न जावे । परन्तु खांचा ऐसा भी न हो कि लपेटते समय उसमेंसे सूत छुड़ानेमें कठिनाई हो ।

(४) लम्बाई लगभग ६॥ से ७॥ इञ्च हो ।

(५) डंडी छातेकी सींकोंकी अपेक्षा अधिक मोटी न हो । वरना चक्कर कम होंगे ।

(६) बहुत चिकनी न हो नहीं तो जोरसे नहीं घुमाई जा सकेगी ।

(७) बहुत खुरदरी भी न हो नहीं तो उसके घर्षणसे त्वचामें जलन होने लगेगी ।

(८) तकलीकी चकती निचले सिरेसे आध इञ्च ऊपर को हो; वरना जमीनसे टकरायेगी ।

(९) नीचेका छोर नुकीला हो जिससे कातते समय तकली डोलेगी नहीं और जगहसे खिसकेगी नहीं । जमीन को कम-से-कम स्पर्श होनेके कारण गतिमें रुकावट नहीं पैदा होगी ।

(१०) उपलब्ध नमूनोंमेंसे बार्डोलीकी तकली आदर्श मानी जाती है । इसका मूल्य डेढ आना है ।

(११) तकलियां कम-से-कम तीन रखनी चाहिये । क्योंकि एक ही तकली होनेसे उसके भर जानेपर सूत बार-बार उतारना होगा और लगातार एक या आध घण्टा कातने से जो गति मिलती है वह न मिलेगी ।

पूनीः—पूनी बनानेके लिए लम्बे रेशेवाले (उ०—व्हेरम, सूरती, कम्बोड़िया, हिरौणी देवकपासे आदि) कपास का उपयोग करनेसे सूत महीन, समान और ज्यादह कतेगा । पूनीमें कचरा न हो यदि औटनेके पेश्तर कपासमें से कचरा हाथसे सावधानीसे बीन लिया जाय तो पूनीमें कचरा नहीं रहेगा । औटनेके बाद रुईमेंसे कचरा निकलना मुश्किल हो जाता है । कचरा होनेसे तार बार-बार टूटेगा और गति कम आवेगी ।

(२) धुनाई अच्छी हो । धुनाई कम होनेसे सूत असमान आवेगा और तार खींचनेकी गति कम हो जावेगी । अतिरिक्त धुनाई होगी तो रुईमें कनी पड़ जावेगी और सूत बहुत ही बुरा कतेगा और तार खींचनेमें इस बातकी सावधानी रखनी पड़ेगी कि वह पूनीसे छूट न जाय । फलतः गति कम होगी ।

(३) लम्बाई ७ से ९ इंचतक हो । लम्बाई कम होने पर बार-बार पूनियां बदलनेमें समय नष्ट होगा । और अधिक होगी तो पूनी एक ओर लटक जाया करेगी और कातते समय सूतसे उलझनेका डर भी रहेगा ।

(४) पूनी आसानीसे चिमटीकी पकड़में रह सके इतनी मोटी हो । बारीक होनेसे बार-बार बदलनेमें वक्त बरबाद होगा और अधिक मोटी होनेसे काबूमें न रह सकेगी तथा जोरसे दबानी पड़ेगी, जिससे अंगुलियोंको कष्ट होगा ।

(५) सामान्यतः एक तोलेमें १२ से १५ तक पूनियां बनानी चाहिये । महीन कातनेके लिये पतली और मोटा कातनेके लिये मोटी पूनियां बरती जाती हैं ।

(६) एक तोलेकी ठीक १६ पूनियां बनानेसे सूतका नम्बर कातते-कातते निकाला जा सकता है । एक पूनीमें जितने तार कत सकें, उतना ही उस सूतका नम्बर समझना चाहिये ।

(७) पूनी बहुत कड़ी भी न हो और न बहुत नरम । जिस सलाई पर पूनी बनाना हो वह पेंसिलके बराबर मोटी हो । क्योंकि उसपर दबाकर पूनी बनानेसे वह दबावके कारण कड़ी और बीचमें पोली अधिक रहनेके कारण मुलायम बन जावेगी ।

(८) पूनीको हवा न लगने पावे इस तरह हिफाजत से कागजमें लपेटकर रखना चाहिये ।

(९) पूनियोंको कागजमें आड़ी-टेढ़ी नहीं लपेटना चाहिये । क्योंकि ऐसा करनेसे उनकी गूथ बन जायगी ।

(१०) थोड़ी आर्द्र नम) जगहमें रखनी चाहिये । खासकर गर्मियोंमें ।

अटेरनः—अटेरनकी लम्बाई ठीक चार फूट लम्बाईका एक तार लपेटा जाने लायक होनी चाहिये । आम तौरपर ११॥ इञ्च लम्बाई ३ इञ्च चौड़ाई और ⅛ मोटाई हो ।

(२) दोनों छोर चिकने और गोलाई लिये हों, जिससे सूत उतारते समय तार टूटे नहीं और उतारनेमें सुविधा हो।

राख—(१) पसीना या दूसरे किसी कारणसे अंगुलियां चिकनीहो जानेपर तकली चिमटीकी पकड़से छूट जानेका डर रहता है। उसी प्रकार तकलीकी रगड़से जिस अंगपर वह बटी जाती है वह सुर्ख होकर जलन होनेकी सम्भावना होती है। इसलिये चिमटीवाली अंगुलियोंमें और तकली जिसपर बटी जाती है उस अंगपर, राख लगायी जाती है। इससे तकलीपर पकड़ पक्की रहती है और अंगमें जलन नहीं होती।

(२) राख बहुत सफ़ेद और साफ हो। अन्यथा काली राख होनेसे सूत काला हो जायगा।

(३) छानी हुई हो, कंकर या डली कतई न हो ताकि राख कम लगाना पड़े और तकली अच्छी तरह घूमे।

(४) रांगोली या खड़ूका भी उपयोग किया जा सकता है, पर कोयले या बबूलकी राख जितनी उपयोगी साबित हुई है उतनी दूसरी कोई वस्तु नहीं।

कागज अथवा पृष्ठ (पुट्टा)—कम-से-कम शिकन वाला और साफ हो क्योंकि जहां, कागज या पृष्ठ समतल न होगा तो उसपर तकली स्थिर नहीं हो सकेगी।

(१) जमीन पर समान बिछाया हुआ हो।

(२) कागज काफी मोटा और तह किया हुआ हो, जिससे तकलीकी नोक कागजमें घुसने न पावे।

सूचना—मोटे पुट्ठे या लकड़ीकी पतली पटरीसे भी काम निकल सकता है। परन्तु उसपर तकलीकी नोक धीरे धीरे भुथरी (बोथी) हो जाती है और घूमते समय आवाज भी करती है इसलिये ये चीजें कम बर्ती जाती हैं, और इसीलिये नंगे फर्श पर भी नहीं काता जाता।

पूर्व तैयारी

पहले जिस आसनसे कातना हो उसपर स्थिर बैठना चाहिये। तकली दाहिने हाथमें पकड़नी चाहिए (चित्र नं० १) पूनी बांयें हाथमें रखनी चाहिये (चित्र नं० २)। राखकी डिब्बी दाहिनी ओर ऐसी जगह हो कि जहांसे राख बार-बार आसानीसे ली जा सके (चित्र नं० १) पूनियां बांयीं ओर घुटनेके पास या बांयीं जांघपर कागजमें रखना चाहिये (चित्र नं० २)। कागज दाहिनी तरफ जांघसे सटाकर ऐसी जगह हो कि जहां तकली स्वाभाविक रूपसे घूमती हो (चित्र नं० ३)। शुरूमें पतला तार कातनेके लिये तकली का ऊपरी छोर पूनीमें अटकाकर हलके-हलके तकलीको दाहिने हाथकी चिमटीसे बट देते रहें और बायें हाथसे पूनीको ऊपर खींचते रहें। इस प्रकार पहला तार निकालनेपर उसे चक्रीके पास लपेटकर फिर बाकायदा कातना शुरू करना चाहिये।

बट देना

बट देनेकी दो रीतियां हैं। (१) चिमटीसे बट देना। (२) हथेलीसे बट देना !

(१) **चिमटीसे बट देना**—अंगूठे और उसके पासवाली अंगुलीमें तकली पकड़कर अंगुलीको अंगूठेपर जोरसे घिसते हुए अपनी ओर खिंचनेसे तकलीको गति मिलती है। अंगुलियोंकी शक्ति कम होनेके सबब और उनकी लम्बाई अपर्याप्त होनेके सबब अधिक जोरकी गति नहीं दी जा सकती। इसलिये इस तरीकेसे कातनेकी गति अधिक नहीं बढ़ सकती।

(२) **हथेलीसे बट देना**—चित्र नं० १ के अनुसार हथेली और अंगूठेके बीच तकली पकड़कर पिंडरी या जांघपर रगड़ते हुए हथेली जोरसे कमरकी ओर खींचनेसे तकलीको गति मिलती है। गति बढ़ानेके लिये यही उत्तम पद्धति है।

कताई

(१) कातते समय आरम्भमें तार तकलीकी सीधमें ऊपरको निकालना चाहिये (चित्र नं० २) और बांया हाथ पूरी तरह ऊपरको उठ जानेपर उसे बांयीं ओर झुकाना चाहिये (चित्र नं० ३) और फिर तार लपेटना चाहिये।

(२) लपेटते समय नया तार कातनेके लिये तकलीसे ऊपर १ फुटसे १॥ फुटतक लम्बा तार खुला रख लेना चाहिये। अगर यह तार बहुत छोटा रखा जावे, तो नया तार शुरू करते समय छोटेसे तारको अतिरिक्त बट मिलनेसे वह टूटनेका डर रहेगा और बहुत ही लम्बा रखा जावे तो लपेटनेकी क्रिया बार-बार करनी होगी, जिसमें समय व्यर्थ जायगा।

(३) एक बार गति देनेके बाद कुछ देर तक तकली अपने आप घूमती रहती है। जब तकली अपने आप घूमती रहे, उस समय तकलीसे ६ से ९ इञ्च ऊपर सूतको चित्र नं० ४ के अनुसार दाहिने हाथकी चिमटीसे हलके-हलके घुमाते हुए पूनीसे तार खीचते जाना चाहिये। चिमटी इतनी ढीली हो कि बलको नीचेसे ऊपर जानेमें कठिनाई न हो। तकलीकी गति कम होते ही दाहिने हाथकी चिमटीको सूत परसे तुरत हटाकर तकलीको पुनः गति देना चाहिये, और फिर पूर्ववत् चिमटीसे सूत संभालना चाहिये।

(४) पूरा तार निकलनेके पूर्व ही दाहिना हाथ तकलीपर आजाना चाहिये ताकि तार पूरा होते ही लपेटना शुरू होजाय और दरमियानका समय बरबाद न हो।

(५) पूनीसे सूत निकालनेमें अक्सर दाहिने हाथकी चिमटीसे तार खींचकर कातनेका रिवाज है। परन्तु इस तरीकेमें चिमटीसे जितनी बार तार खींचा जाता है, उतनी ही जगह सूत असमान हो जाता है। इसलिये चरखेपर जिस तरह बांये हाथसे सूत काता जाता है उसी तरह तकलीपर भी कतना चाहिये। चरखेमें तकुआ स्थिर होता है और इसमें तकली बार-बार ऊपरको उठती है, इसलिये दाहिने हाथकी चिमटीका काम तकलीको नीचे स्थिर रखने भरका है।
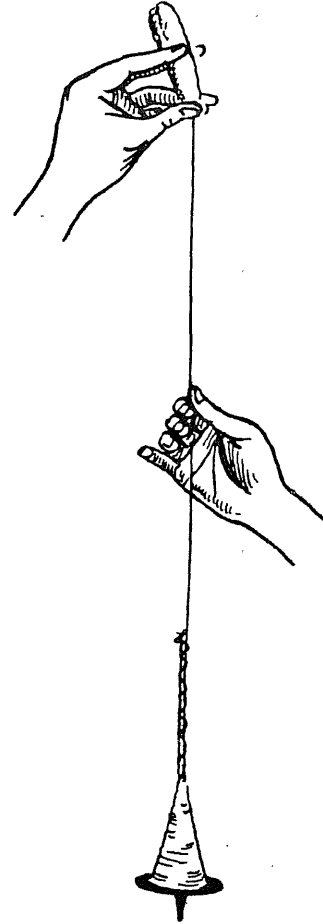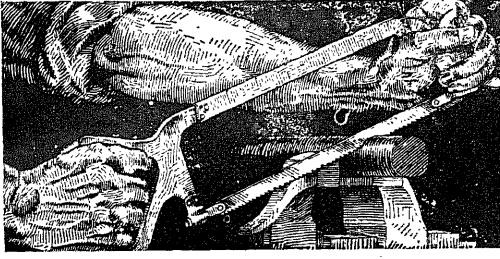
(सूतकी बहुत आसान कताई)

(६) घूमते समय तकली जमीनपर टिकी हुई होनी चाहिये । जिससे सूतपर नाहक बोझ न पड़े और बल देते समय यदि तकली कंपने लगी हो तो उसका कंप कम हो जाय और वह अधिक वेगसे घूमने लगे ।

(७) पूनीवाले हाथको इस तरह ऊपर बढ़ाते जाना चाहिये कि जिससे सूत तन्तुओंको समानतापूर्वक लेता रहे । बल अधिक आजानेपर जल्दी-जल्दी और कम होने पर पूनीको धीरे-धीरे खींचना चाहिये ।

(८) कातनेसे पहले यदि सूतमें बल आवश्यकतासे अधिक प्रतीत हो तो तकलीको गति देनेके पूर्व तार थोड़ा खींचकर बादमें गति देना चाहिये । तकलीको वेग देनेके बाद जरूरतसे अधिक बल दिया हो तो चिमटीसे सूतको उलटा बल देकर तार खींचना चाहिये ।

(९) दूसरी पूनी लेनेके लिये तकली जमीनपर रखने की जरूरत नहीं है । तकलीवाले हाथमें तकली रखकर पूनी उठा लेना चाहिये ।

(१०) कातनेकी रफ्तार बढ़ानेके लिये आमतौरसे जल्दी कातनेका प्रयत्न किया जाता है, जिससे सूत बार-बार टूटता है और गति बढ़ने नहीं पाती । गति बढ़ानेके लिये पहले सूत बगैर टूटे कातनेकी आदत डालनी चाहिये और फिर धीरे-धीरे वेग बढ़ाते जाना चाहिये ।

तारका टूटना

सूत बार-बार टूटनेसे कातनेवालेकी एकाग्रता भंग हो जाती है और मन ऊबने लगता तथा सूत भी कम कतता है, इसलिये इतनी चौकसाई रखनी चाहिये कि सूत यथा-सम्भव टूटने न पावे । सूत टूटनेके कारण मालूम होनेपर ही उसके न टूटनेके उपाय किये जा सकते हैं ।

(१) तकलीके घूमनेका वेग कम होने पर उसे योग्य समय पर फिर गति न मिलनेसे वह उलटी घूमने लगती है. इससे सूतका बल निकलने लगता है और वह टूट जाता है । अक्सर यह गलती नव-सिखियोंसे होती है ।

(२) पूनीमें कचरा होनेसे या धुनाईमें दोष होनेसे सूत टूटता है ।

(३) तकलीको जिस मात्रामें बल मिलता है उसकी अपेक्षा अधिक तेजीसे तार खींचनेसे सूत कच्चा निकलकर टूटता है ।

(४) या उसकी अपेक्षा धीमी गतिसे तार खींचनेसे अतिरिक्त बल खाकर सूत टूटता है ।

(५) कभी-कभी तकलीको घुमानेमें उसे आड़ी-टेढ़ी गति मिलनेसे सूत टूटता है ।

(६) एक तार लपेटनेपर वह फिर शुरू करते समय ओछा रखनेसे दुबारा गति देते वक्त छोटेसे तारपर अत्यधिक बल आजानेसे वह टूट जाता है ।

सूतका जोड़ना

(१) सूतका टूटा हुआ सिरा अधिक ऐंठा हुआ न हो तो उसे केवल पूनीपर रखकर तकलीको घुमानेसे वह जुड़ जाता है । अधिक बल खाया हुआ हो तो उसे उलटा बल देकर सिरेसे आध इंच तोड़ लेना चाहिये और बादमें पूनी पर रखना चाहिये ।

(२) बीचमेंसे ही तार टूट जावे और ऊपर नीचेवाले दोनों छोर कम बलवाले हों तो उन्हें चिमटीसे एक दूसरे पर दबाकर तकली घुमानेसे वे जुड़ जाते हैं । और यदि अधिक बलवाले हों तो उनके बलको उक्त प्रकारसे उलटा बल देकर दोनों सिरोंके अग्रभाग तोड़कर फिर उन्हें एक दूसरेपर रखकर जोड़ना चाहिये ।

(३) सारांश, जिन छोरोंको जोड़ना है उनके तन्तु एक दूसरेमें मिल जायं, तभी वे जुड़ सकते हैं। कम बल वाले सूतके सिरेपर तन्तु स्वभावसे ही होते हैं परन्तु अधिक बलवाले छोरोंपर वे नहीं होते इसलिये उलटा बल देकर अग्रभाग तोड़कर तन्तु खोल लिये जाते हैं।

(४) जोड़ते समय सूतके दोनों छोरोंको तबतक हाथसे दबाते रहना चाहिये, जबतक वे ऐंठकर पक्के जुड़ न जांय। अगर जुड़नेके पहले हाथ हटालिया जायगा या पूनीसे तार निकालना शुरू किया जायगा तो वह जोड़ खुल जावेगा।

(५) टूटे हुए सूतके दोनो सिरोंके पावइञ्च लम्बे अग्रभाग चिमटीमें लेकर (एक सिरा पीछे और एक कुछ आगे) उन्हें एकत्र बल देना चाहिये और बादमें एक रूप बने हुए उस दोहरे धागेको एक ओर झुकाकर रस्सीकी तरह सूतकी एक बाजूमें जोड़ देना चाहिये। इस पद्धतिका नाम सांध करना या मोरी देना है। यह जानकारसे सीख लेनी चाहिये।

(६) सूत उतारते हुए बीचहीमें टूटे तो सांध करना चाहिये। सांध न करनेसे नली (कांडी) भरते समय और कच्चा सांधनेसे पाँजन करते (मांड लगाते) समय बहुत तकलीफ होती है।

(७) कातते समय सूत टूटे तो उसे जोड़ना चाहिये और कातना पूरा होनेके बाद उतारने आदिमें टूटे तो उसे साँधना चाहिये।

(८) टूटे हुए तारोंको फेंकना नहीं चाहिये उन्हें पूनी पर रखकर जोड़ लेना चाहिये।

लपेटना

(१) चित्र नं० ३ में बतलायी हुई विधिसे पूरा तार कातनेके पश्चात् तकलीपर सूत लपेटनेके लिये बायां हाथ बांयीं ओर झुकाकर दहिने हाथमें तकलीका सिरा पकड़ कर उसके सिरेपर लिपटे हुए सूतके घेरे उसे उलटी घुमाकर निकाल लेना चाहिये। ये घेरे निकलनेपर तकली दहिने हाथकी चिमटीसे (तर्जनीपर अंगूठेको दबाते) सीधे घुमा कर सूत लपेटना चाहिये।

(२) लपेटते समय तकली तारकी उलटी तरफ थोड़ी झुकाकर लपेटना चाहिये। ऐसा करनेसे सूत चकतीतक गाजरकी शकलका लपेटा जावेगा। अन्यथा सूत डंडीके ऊपर-ऊपर लिपटा जानेसे तकली जल्दी ही भर जावेगी और उसे गति देनेके लिये भी बाकी जगह खाली नहीं रह सकेगी।

(३) सूत पक्का लपेटना चाहिये यदि पोला रह जायगा तो हवाके दबावसे तकलीके चक्कर कम होंगे।

(४) लपेटते समय यदि तकलीके घूमनेके प्रमाणमें पूनीवाला हाथ नीचे नहीं आवेगा तो तकली खिसक कर इधर-उधर गिर जायगी और अपेक्षाकृत हाथ अधिक शीघ्रतासे नीचे आवेगा तो सूतमें गुड़ियां (मुरियां) पड़ जावेंगी और सूत ढीला लिपटेगा। अतः तकलीके वेगके प्रमाणमें ही बांया हाथ नीचे आना चाहिये।

(५) बीच-बीचमें तकलीपर लपेटे हुए सूतको हाथसे नीचेकी ओर दबाते रहना चाहिये ताकि सूत कुछ पोला लिपटा हुआ होगा तो कड़ा हो जायगा और तकली जल्दी घूमेगी।

(६) लपेटते समय यदि सूतमें गुड़ियां (मुर्री) पड़ी होंगी तो तकली घुमाते वक्त उनकी आवाज निकलेगी और गतिमें रुकावट पैदा होगी, इसलिये जहांतक होसके तारमें गुड़ियां (मुर्री) न पड़ने दी जायं। यदि पड़ ही जायं, तो उन्हें फौरन सुलझानेका प्रयत्न किया जाय और जो उस समय न सुलझे तो उन्हें दूसरे तारके नीचे दबा दिया जाय ताकि कातनेमें रुकावट न हो। कातनेके बाद सूत उतारते समय इन्हें अवश्य निकाल लेना चाहिये।

उतारना आंटी बनाना और रखना

(१) साधारणतया जब सूतके बोझसे तकलीका वेग कम होता हुआ दिखाई दे या बल देनेके लिये डण्डीपर बाकी जगह न रहे, ऐसी हालतमें उस तकलीपर अधिक सूत न कातकर उसे उतारना चाहिये।

(२) सूत कातनेके बाद वह उलझ न जाय और कई दिनोंतक अच्छी दशामें रह सके, इसलिये उसे लपेटेपर या चरखेके फालकेपर उतारना चाहिये। अटेरनपर एक या दो आंटी और फालकेपर एक गुण्डी (लच्छी) उतारना चाहिये।

(३) उतारते समय सूतमें गुड़ी न रहने पावे, इसकी सावधानी रखनी चाहिये।

(४) फालकेपर सूत उतारते समय हरेक पूरी या आधी आंटी को धागेसे बांधना चाहिये। इससे एक गुन्डी में कितने तार हैं इसका हिसाब रहेगा। और इसमें बड़ा लाभ तो यह है कि नली भरते समय जब तार गुम हो जाता है तो बीचमें जहांसे आंटी बंधी होती है, वहींसे तार मिल सकता है, अन्यथा बड़ी कठिनाई होती है। सूत उतारते हुए गिनते जाकर तार पूरे होते ही बांधते रहनेसे यह लाभ है। अगर एक साथ हजार-पांच सौ तार उतार कर पीछे गिन-गिनकर लटी बांधी जांय तो यह लाभ नहीं होगा। जोगवाली आंटीमें तो तार गुम होते ही मिल जाता है।

(५) सूतका बल उसीमें रहकर उसे मजबूत बनानेके लिये उसे लपेटे या फालकेपर ही थोड़ा भिगो लेना चाहिये या उसपर गीला कपड़ा लपेट देना चाहिये और सूखनेतक उसे लपेटेपर ही रहने देना चाहिये।
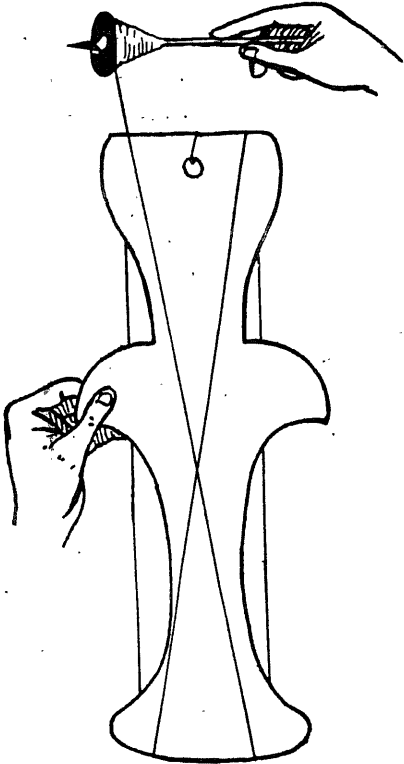
(६) हवा लगनेसे सूतके तन्तु आपसमें चिपके न रह-कर खुल जाते हैं और सूत कमजोर पड़ जाता है। उसको कमजोर होनेसे बचानेके लिये सूत सूखते ही उसे लपेटेसे उतारकर रस्सेके समान बट देकर उसकी लाट बना लेना चाहिये और जहां हवा न लगे ऐसी जगह रखना चाहिये।

(७) लपेटेके दोनों छोरोंपर सूतके दो-दो भाग आकर बीचमें जोग पड़े इस ढंगसे लपेटना चाहिये। (चित्र नं० ५)

(८) हरेक आँटीका पहला धागा और अंतिम धागा दोनों अंटी पूरी होनेपर बांध देने चाहिये।

(९) गुन्डी (लच्छी) को रस्सेकी तरह बटनेपर उसका एक सिरा दूसरेमें अटकाकर साफ, समतला और कड़ी जगहपर बेलना चाहिये। ऐसा करनेसे आंटे सुचारु रूपसे जमकर गुन्डी (लच्छी) सुन्दर दिखाई देगी।

(१०) निम्न सूचनाओंकी चिट्ठी हर एक गुन्डीपर लगा देना चाहिये।

नाम ———————
तार—
तोले—
अंक—
रुई की जाति—
साधन—(तकली या चर्खा)
ता०

सूतका नम्बर निकालनेकी रीति

तार ÷ वजन (आनों में) = नम्बर.

उदाहरणार्थ—१ आंटी लीजिये। उसका वजन आधा तोला है। अब उसका नम्बर क्या होगा? एक आंटी यानी १६० तार। और आधा तोला वजन यानी आठ आने। १६० तारोंको वजनके आठ आनोंसे विभाजित करने पर भजन फल २० आवेगा। यही २० सूतका नम्बर होगा।

कोष्टक—४ फीट = १ तार
१६० तार = १ आंटी
४ आंटी
६४० तार } = १ लच्छी (गुण्डी)

कितने सूतका कितना कपड़ा

सूत नं०	अर्ज-लम्बाई,	सूतका वजन पौंड में	लच्छी
१२ (कुर्त्ते का कपड़ा)	३६ × १०	३।	३९
१४ धोती	४५ × ८	२॥।	३८
१६ ,,	५० × ९	३	४८
२० (साड़ी)	४५ × ८	२	४०
२५ ,,	५० × ९	२	५०
२८ से ३०	५० × ९	२	५६

गति बढ़ानेकी कुछ उपयोगी सूचनायें

१ लम्बे रेशेका कपास (व्हेरम, सूरती आदि)

२ बिना कचरेकी उत्तम धुनी हुई पूनियां।

३ उत्तम तकली।

४ कम-से-कम समयमें बगैर गुड़ी (मुर्री) डाले सूत लपेटना।

५ तकलीको पूरा और लगातार वेग देना।

६ चर्खेकी तरह बगैर तोड़े बांये हाथसे तार खींचते रहना। दाहिने हाथकी चिमटीका उपयोग केवल तकलीको नीचे रक्खे रहनेके लिये करना।

७ शुरूमें तार तकलीकी सीधमें कातना और अन्तमें बांया हाथ बांयी ओर झुकाना।

८ तकलीको जमीनपर टिकाकर सूत कातना।

९ मौन रहना।

आध घन्टेमें तकलीकी गति

आश्रममें जो अधिक-से-अधिक गति आजतक आयी है वह निम्न प्रकार है।

पुरुष वर्ग			स्त्री वर्ग		
उम्र	तार	नम्बर	उम्र	तार	नम्बर
८	७८	१२	८	७७	१२
१६	२०२	१२	१०	१३०	१२
१९	२२३	११॥।	१७	१८७	२०
२१	२०६	१९	१९	१७८	१६
३३	१४९	१३	२८	१३०	१४
६५	१३५	१४			

तकलीके लाभोंपर विचार करनेमें पहली बात यह है कि वह हल्की, सुन्दर, अल्पव्ययमें प्राप्य और हर जगह साथमें रहनेवाली है। बालक और वृद्ध सबके लिये समान रूपसे उपयोगी है। इसी सम्बन्धमें 'तकलीकी आत्म कथा' नामसे 'लीडर' में बड़ा उपयोगी लेख प्रकाशित हुआ था। पाठकोंकी जानकारीके लिये उसका भावानुवाद नीचे दिया जा रहा है। आशा है, पाठकगण तकलीके महत्वको जानकर उसकी उपयोगितासे पर्याप्त लाभ उठा सकेंगे।

तकलीकी आत्मकथा

"मैं सीधी, भोली। मेरे चाल-चलनको कोई भी देखे। दो-तीन पैसेमें मुझे खरीदा जा सकता है। मुझे बनवानेमें भी प्रायः कुछ खर्च नहीं होता। मैं स्वतन्त्र इतनी हूँ कि मुझे कहीं भी लेजाइये सबकी सेवाके लिये हर समय तैयार रह सकती हूँ। मैं अत्यन्त हलकी और साथ ही सुन्दर भी हूँ, इसीसे तो राजा, रानी, लड़के, लड़की सबकी मैं प्यारी हो रही हूँ। मैं सदा पवित्र रहती हूँ, इसीसे तो मुझसे तैयार किया हुआ सूत पण्डितोंकी धार्मिक आवश्यकताएं पूरी करता है। अन्नके अभावमें आधे-पेट भूखे रहनेवाले लाखों भारतीय किसानोंको मैं रोटी दे सकती हूँ।

मैं वस्त्र देकर किसानोंकी लज्जा-निवारण करूंगी, भिकारियोंको जीविका दूंगी, गरीब बहनोंको इज्जतका धन्धा दूंगी। मुझे फिरानेका विचार करनेवाले लोगोंके आलसी मनको काम देकर उनको रोटियां दूंगी। जुलाहा, पिंजारा, लोहार, सुनार, धोबी और रंगरेजीका धन्धा करनेवालोंका मैं पेट भरूंगी। भारतमाताके बिलकुल हृदयका रक्तजो आज शोषण हो रहा है, उसे मैं रोकूंगी। हिन्दुस्थानकी विभिन्न जातियोंको परस्परावलम्बी बनाकर उनमें सच्ची एकता स्थापित करूंगी। दलित बन्धुओंके बने हुए सूतका बाजार सुधारकर मैं उनका उद्धार करूंगी। भारतवर्षके निवासियों को मैं स्वाभिमान और स्वावलम्बन इन दो गुणोंकी शिक्षा देकर उनमें सच्ची शान्ति स्थापित करूंगी। व्यावहारिक जीवनमें मैं सादगीको प्रधानता दूंगी और घमंडी पूंजी-पतियोंको भी मिल-मजदूरोंके साथ नम्रताका बर्ताव करने योग्य सुशील बनाऊंगी। इसपरसे अब आपके ध्यानमें आगया होगा कि मैं शान्तिदेवीकी धात्री और सम्पत्तिका समान विभाग करनेवाली विधात्री हूँ।

विद्यार्थियोंके लिये तो इससे भी कुछ अधिक हूँ। मैं

उनकी कर्मण्यताकी परीक्षिका और उनके स्वभावकी माप-दण्ड हूँ। मेरे समीप किसी मूर्ख बच्चेको भेजिये, मुझसे यह कहनेकी आवश्यकता न होगी कि यह मूर्ख है। वह आपही मेरी पहचानमें आजायगा, क्योंकि उसका कता हुआ सूत अव्यवस्थित, विषम, गुड़ीवाला या अपूर्ण बलका होगा। और किसी गम्भीर बालकके हाथोंमें मुझे दे दीजिये कि मैं तत्काल ही पहचान लूंगी, क्योंकि उसका सूत एक-सा, सुन्दर और समतौल हाथोंसे निकले हुएकी पहचान करा देगा। ऐसे बालकके हाथसे मैं बार-बार नीचे नहीं गिरूंगी।

मैं केवल परीक्षिका ही नहीं हूँ, शिक्षिका भी हूँ। बालकोंके मनोंको काममें लगानेकी आदत मैं ही डालती हूँ, शिक्षिका भी हूँ। नियमित पद्धतिसे सूत कातनेवाला लड़का अच्छा गणितज्ञ हो सकेगा, इसकी गवाही मैं देती हूँ, क्योंकि इन दोनों शास्त्रोंपर एक ही नियम घटित होता है। अधिक क्या, सूत कातना यह एक व्यावहारिक गणित ही है—ऐसा कहनेमें कोई अतिशयोक्ति न होगी। आपके हाथसे कभी कोई गलती होजाय, तो उसका खुलासा मैं तत्काल दिखा दूंगी। जिस प्रकार श्रद्धाहीन पूजाका कोई उपयोग नहीं होता, उसी प्रकार एकाग्र-चित्त किये बिना अध्ययनका भी कोई लाभ नहीं और आज-कलके तरुणोंमें एकाग्रता बिलकुल ही नहीं है। आज-कल उनका मन एकाग्र करनेमें मेरी विशेष ख्याति है, इसीसे मेरी संगति करने वाले लड़कोंका इस दृष्टिसे अपूर्व लाभ करनेकी जिम्मेदारी मैं लेती हूँ।

विश्व क्या है ? शक्तिका महार्णव

१. परमाणुकी परिभाषा

शिष्य—भगवन् ! आप उस दिन कहते थे कि बिजलीकी धारा असलमें ऐसे कणोंकी धारा है जो तथोक्त परमाणुओंसे भी छोटे होते हैं, तो क्या परमाणुके भी खंड खंड होते हैं ?

गुरु—परमाणुका अर्थ क्या है, जानते हो ?

शि०—जी हां, यही न कि वह कण जो सबसे छोटा है ?

गु०—ठीक। परन्तु सबसे छोटा कहनेसे यही न सूचित हुआ कि जितनी छोटाई मालूम है उस सबमें छोटा। परन्तु अगर उससे भी छोटा मालूम हो जाय तो वह "परमाणु" नहीं रहा, बल्कि अब जो सबसे छोटा मालूम हुआ है वही परमाणु है।

शि०—तो बिजलीकी धारा जिन कणोंकी धारा है, वे कण ही अब परमाणु हैं ?

गु०—नहीं, यह भी नहीं कहा जा सकता। इन कणों से भी छोटे, और फिर उनसे भी छोटे कणोंकी कल्पना हमारे देशके ही एक विद्वान्‌ने की है। और कौन कह सकता है कि आगेके विद्वान् और भी आगे न बढ़ जायंगे, और उनसे भी अधिक सूक्ष्मताकी कल्पना न कर सकेंगे ?

शि०—तो क्या असलमें परमाणु कल्पनामात्र है ?

गु०—नहीं मेरा तो अनुमान है कि हम जिस देशकालमें विचार कर रहे हों उसमें जो अत्यन्त छोटा कण है, जिससे अधिक सूक्ष्मताका हम किसी साधनद्वारा अनुभव नहीं कर सकते, वही उस देशकालका "परम-अणु" परमाणु है। अर्थात् "परमाणु"की परिभाषा देशकाल-सापेक्ष है।

शि०—तो, आज हमको इस परिभाषाके अनुसार "विद्युत्कणों"को ही "परमाणु" कहना चाहिये।

गु०—उचित तो यही है।

शि०—परन्तु, अंग्रेजीमें तो डाल्टनके **अटम** या अकाट्य अभीतक बने हुए हैं। अंग्रेजीके वैज्ञानिक साहित्यमें अभी तक विद्युत्कणोंको ऍटम नहीं कहते।

गु०—अंगरेजी वैज्ञानिक साहित्यमें बदलना आसान नहीं है क्योंकि वह अत्यन्त रूढिप्रिय है। देखो, लवा-शियेने ओषजनका नाम ओक्सीजन वा अम्लजन रखा,

क्योंकि उसने समझा कि अम्लोंमें इस वायव्यका एक घटक होना अनिवार्य्य है परन्तु थोड़े ही दिनों पीछे शेलेने ओषजन-हीन अम्ल नमकके तेजाबसे सिद्ध कर दिया कि अम्लजन नाम ठीक नहीं है। तो भी आजतक "ओक्सीजन" नाम बना हुआ है, बल्कि जर्म्मनोंने इस रूढ़िका ही अनुवाद "सौरस्टॉफ़" और बंगालियोंने "अम्लजन" करके अपनी मुहर लगा दी।

हिन्दीमें परिषत्ने "ओषजन" शब्द ताप उत्पादनके अर्थमें रखा है। यद्यपि यह गुण भी केवल सापेक्ष है तथापि हम उसीके आवरणमें रहते हैं, इसलिये हमने उसीका विशेष मान रखा है, और सुभीतेसे ओषजन कहते हैं। यह गुण यद्यपि अम्लतासे अधिक व्यापक है, तथापि उस वायव्यका निरपेक्ष विशेष नहीं हैं। इसलिये "ओषजन" नाम अधिक उपयुक्त है।

यही बात परमाणुके सम्बन्धमें भी कही जा सकती है। कणादने पहले-पहल सबसे छोटे कण या वस्तुखंडका नाम "परमाणु" रखा। सूत्रसे तो यही पता चलता है कि कणादका "परमाणु" काल्पनिक था, वास्तविक नहीं। यदि कणादके अभिप्रायको हमने ठीक समझा है, तो कणाद का परमाणु सभी देशकालोंके लिये "परमाणु" ही है।

पीछेसे कणादके टीकाकारोंने उसकी परिभाषा कर डाली और त्रसरेणुका षष्ठ्यंश बना डाला। यहीं भूल हुई। परन्तु यह भाष्यकी भूल है, सूत्रकी नहीं।

हम तो जब "परमाणु" कहें तो उसके साथ कोई विशेषण लगा देना ही ठीक समझते हैं। जैसे, कणादका परमाणु, डाल्टनका परमाणु, क्रुक्सका परमाणु, इत्यादि।

शि०—कणादका परमाणु और डाल्टनका परमाणु तो समझमें आया, परन्तु क्रुक्सका परमाणु क्या है, यह समझ में नहीं आया।

गु०—सर विलियम क्रुक्सने ही पहले-पहल "ऋणोद किरणें" देखीं और यह अनुमान किया कि धन, द्रव और वायव्य इन तीन अवस्थाओंके अतिरिक्त पदार्थको एक चौथी अवस्था भी है जिसमें डाल्टनके परमाणुओंसे भी छोटे कण होते हैं। इन कणोंको क्रुक्सने "कार्पस्ल" कहा, जो परमाणुका ही एक नामान्तर है। आज यह सभी जानते हैं कि क्रुक्सका कार्पस्ल (विद्युत्कण) ऋणाणुओंके सिवा कोई दूसरी चीज नहीं है। इसलिये वस्तुतः विद्युत्कणोंकी सत्ता पहले-पहल क्रुक्सने जानी। इसीलिये उन्हें क्रुक्सके ही परमाणु कहना चाहिये।

शि०—और दस्तूरके अनुसार जिसकी उद्भावना हो उसीको श्रेय देना उचित है, इसीलिये "क्रुक्सका ही परमाणु" विद्युत्कणोंको कहना चाहिये।

गु०—यह तुमने बहुत ठीक समझा।

शि०—परन्तु, गुरुजी, विद्युत्कण तो अब अनेक प्रकारके निकल आये हैं। तो किस प्रकारको हम क्रुक्सका परमाणु कहें?

गु०—अबतक जितने प्रकारके विद्युत्कण मालूम किये गये हैं, सभी ऋणाणुके प्रकारके हैं और उनकी सूक्ष्मता प्रायः समान कोटिकी है। इसलिये सभी क्रुक्सके परमाणु हैं।

शि०—और यदि "ग्रेविटोन" आदिका अस्तित्व सिद्ध हो गया जैसी कि सर शाहकी कल्पना है, तो "ग्रेविटोन" ही परमाणु हो जायंगे?

गु०—इसमें क्या सन्देह हैं? तब "ग्रेविटोन"को हम "सरशाहके परमाणु" कहेंगे।

शि०—जब सरशाहके परमाणु सिद्ध हो जायंगे, तब "कणादके परमाणुओं" की क्या गति होगी?

गु०—यदि कणादके परमाणु कल्पनाऽत्मक ही हैं तो सरशाहके और सरशाहके बादवालोंके भी परमाणु 'कणाद के परमाणु'के अन्तर्भूत होंगे, क्योंकि कणादवाली परमाणु की कल्पना तो कल्पनाका परमाणु है, वह तो सदैव सबसे छोटा रहेगा। उससे छोटा तो तर्कसे अग्राह्य है।

२. इन परमाणुओंसे विश्व बना है।

शि०—यदि विद्युत्कण ही परमाणु हैं जिनसे कि हमारा विश्व बना है, तो आप केवल विद्युत्की धाराके ही घटक इन्हें क्यों कहते हैं, ये तो सभी वस्तुओंके घटक हैं।

गु० इसमें क्या सन्देह, विद्युत्कण तो डाल्टनके परमाणुके घटक हैं और डाल्टनके परमाणु सभी अणुओंके घटक हैं और अणुओंसे ही घन द्रव वायव्यकी राशि बनी हुई है और घन द्रव वायव्यकी राशि ही यह विश्व है। इस तरह विद्युत्कण ही सूक्ष्मातिसूक्ष्म परमघटक हैं।

शि०—तो बिजलीकी धारामें जो येही घटक बताये जाते हैं इसमें क्या विशेषता है?

गु०—देखो, तालाबमें पानी भरा हुआ है, तो पानीमें कोई ताकत नहीं मालूम होती। यही पानी किसी नाली द्वारा नीचेकी ओर वेगसे बहा दिया जाय, तो उसकी बहती हुई धारा पनचक्कीको चला देती है, जिससे मनों गेहूं पिसा करता है। देखो भाफ तो पानीके ऊपर बन्द बर्त्तनमें बना रहता है उसमें कोई ताकत नहीं मालूम होती। यहीं आंच देनेसे ज्यादा बनता है और भागनेकी कोशिश करता है तो उसके बलसे इञ्जन चलते हैं जो मालसे लदी रेलगाड़ीको हजारों मील बराबर खींचते रहते हैं। तालाबका पानी देखनेमें स्थिर है, पर उसके अणु-अणु बराबर गतिशील है, उनके भीतर परमाणु और परमाणुके भीतर विद्युत्कण गतिशील है। स्थूल दृष्टिसे तालाबका पानी स्थिर ही है और बहता पानी गतिशील है। गतिशीलमें ताकत है कि चक्की चलावे। भाफ बरतनके अन्दर राशिरूप स्थिर है, यद्यपि उसके कणकण गतिशील हैं। परन्तु बनती हुई, वेगसे धकेलती हुई भाफ स्थूल दृष्टिमें गतिशील है, इसलिये उसकी ताकतसे मालगाड़ी चलती है। यह स्थिरता और गतिशीलता सापेक्ष है। उसी तरह बैटरीसे तारमें चलनेवाली बिजलीकी धारा गतिशील है और मशीनमें रहनेवाली बिजली सापेक्ष भावसे स्थिर हैं। हमारे तुम्हारे शरीरमें दुनियांकी सारी वस्तुओंमें विद्युत्कण स्थिर रूपसे हैं। जब उनकी दशामें परिवर्त्तन होता है। तब वे गतिशील हो जाते हैं। लोहेके छड़में सापेक्ष रीतिसे विद्युत्कण स्थिर है, परन्तु जब हम उसे लाल करते हैं, तब वास्तवमें उसमेंसे लाल तापके रूपमें विद्युत्कण निकल रहे हैं। दियासलाईके जलनेमें, खानेके पकनेमें, किसी रासायनिक क्रियाके होनेमें विद्युत्कणोंकी अदृश्य धारा निकलती है। इसीसे शक्ति प्रकट होती है। तालाबमें शक्ति भरी है। पनचक्कीके चलनेमें उसका एक अंश ही प्रकट होता है। भाफमें सर्वत्र शक्ति भरी है। उसका एक जरासा अंश ही मालगाड़ीको चलाता है। "पावर हौस" तो शक्तिका एक ऐसा आगार है जहांसे गतिशील शक्तियां एक क्षेत्रमें बँटती हैं जिनसे कि हज़ारों बड़े, बड़े यंत्र चलते हैं, पंखे चलते हैं, रोशनी होती है, और इस तरहके अनगिनती काम निकलते हैं। "पावरहौस" या बलागारमें जिस विधिसे बल पैदा करते हैं वह घर्षण है और यह घर्षण उन्हीं पदार्थोंमें पैदा किया जाता है जो देखनेमें साधारणतया स्थिर हैं, गतिशील नहीं हैं। यह विधि विज्ञानने खोज निकाली है। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि अब आगे कोई और विधि निकलनेकी नहीं। खोजका मार्ग बराबर खुला हुआ है। जितनी वस्तुएं हमारे दहने बायें आगे पीछे ऊपर नीचे इस दुनियामें है, सभी भारी भारी बलागार हैं। एक-एक छोटीसे-छोटी चीजके भीतर उससे कहीं अधिक शक्ति छिपी हुई है जितनी कि केन्द्रीय बालागारमें घर्षण क्रियासे नित्य पैदा की जाती है। अभी इन शक्तियोंसे काम लेनेकी विधि हमें सीखनी है।

३. परमाणु ही शक्ति हैं।

शि०—क्या 'ताकत"में और "विद्युत्कणों" में कोई अन्तर नहीं है ?

गु०—कोई अन्तर नहीं। विद्युत्कणोंका स्थान बदलना ही ' ताकत" है। और यह स्थान बदलना निरन्तर जारी है।

शि०—तो हमें यह समझना चाहिये कि पदार्थ और शक्ति वास्तवमें एक ही चीज है।

गु०—वास्तवमें ऐसी ही बात है।

शि०—तब तो यह सारा विश्व शक्तिका पारावार है।

गु०—हम शक्तिके अपार अगाध, अपरिमेय, अनन्त, अनादि, परिपूर्ण महार्णवके भीतर अत्यन्त छोटे प्राणी हैं, परन्तु नहीं जानते कि इस शक्तिसे कैसे काम लें। विज्ञान बड़ी कोशिशोंसे यह सिद्ध करता है कि शक्ति अविनाशी है, पदार्थ अविनाशी है, परन्तु वास्तवमें नश्वर कुछ भी नहीं है। जिसे हम नाश समझते हैं, वह स्थान परिवर्त्तनके सिवा कुछ भी नहीं है। सारे विश्वका एक विद्युत्कण न तो कभी घटता है और न कभी बढ़ता है। उसकी संख्या ज्योंकी त्यों बनी रहती है।

४. शक्ति कितनी है ?

शि०—तब तो ब्रह्माजीने विद्युत्कणोंको संख्या गिनकर इस जगत्में रखा हो तो कोई आश्चर्य नहीं।

गु०—संख्या तो ब्रह्माने नहीं एक आचार्यने, प्रोफेसर एडिंग्टनने गिनकर बता दी है। वह इस संख्याको मूल संख्या (Findamental Number) कहते हैं। यह संख्या है $१०^{७९}$ अर्थात् इतने ही ऋणाणु और इतने ही धनाणु हमारे विश्वमें हैं। और विज्ञानके मतसे, और

कणादके मतसे भी, एक ऋणाणु या धनाणुकी उत्पत्ति या विनाश ब्रह्माके अधिकारसे बाहर है। ब्रह्माजीका काम केवल परिवर्त्तन द्वारा सर्ग स्थिति और संहार है। उनका काम परमाणु रचना नहीं है।

शि०—आपने कई बार "हमारा" विश्व कहा है। क्या हमारे विश्वके सिवा कहीं पराये विश्व भी हैं ?

गु०—हैं क्यों नहीं ? हमारे विश्वका केन्द्र शायद हमारा सौर ब्रह्मांड है। इसके आसपास इससे कहीं बड़े बड़े अनन्त ब्रह्मांड हैं। इन असंख्य ब्रह्मांडोंसे ही बना हुआ हमारा विश्व है जिसके एक अंशको हम इहर, आकाश गंगा या दूधका सागर कहते हैं। यह नीहारिका कहलानेवाली सर्पकुंडलीके आकारका एक भाग है। इसी तरहकी असंख्य नीहारिकाएं व्योममंडलमें हैं जिनमेंसे अनेकको हम अच्छे दूरदर्शक यन्त्रसे देख सकते हैं। वह प्रत्येक विश्व ही हैं, जो हमारे विश्वसे भिन्न हैं

शि०—तो ये सभी विश्व शक्तिके आगार हैं ?

गु०—हां, सभी बलागार हैं और इन सबके मालिक और नियन्ताके अचिन्त्य और अननुमेय बलका पता देते हैं।

लता भवन आदिसे बागको मनोहर बनाना

[डाक्टर गोरखप्रसाद, डी० एस्-सी०]

गरमीके दिनोंमें प्रातःकाल, सूर्यकी किरणोंसे सुरक्षित, किसी लताभवननमें घंटे दो-घंटे बिताना कितना सुखद होता है !

स्वयं अपने हाथोंसे, या बढ़ईद्वारा, लताभवन बनाना या बनवा लेना कुछ भी कठिन नहीं है। एक डिजाइन चित्र १ में दिखलाया गया है। यदि इसे साखूकी लकड़ीका बनवाया जाय और तेलके रंगसे प्रत्येक वर्ष रंग दिया जाय तो यह बरसों चलेगा। परंतु यदि किफायतसे काम करना हो तो बांसका ही लताभवन बनवाया जा सकता है। यदि इसे भी तेलके रंगसे रंग दिया जाय तो यह कुछ वर्षोंतक चला जायगा। यदि बांस रंगा न रहेगा तो शायद एक ही वर्षमें सड़ जायगा।
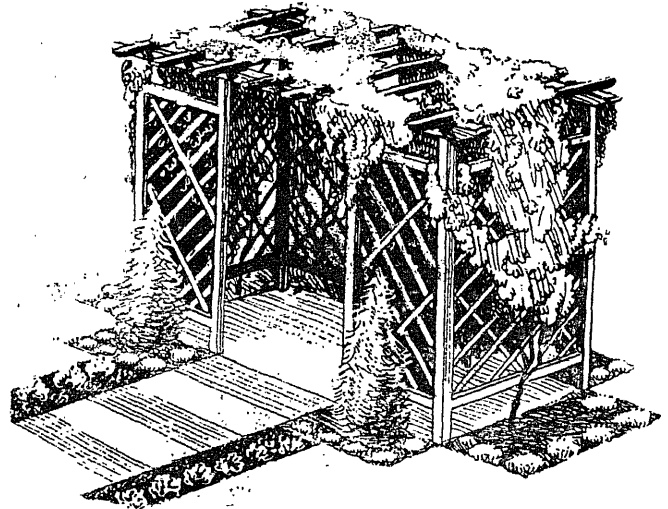
चित्र १—लता भवन

लताभवनके अतिरिक्त बागमें कुछ जगह घेरकर अलग कर देना, जहां घन्टे-दो-घन्टे एकान्तमें बिताये जा सकें, बहुत उत्तम होगा। साधारणतया ऐसे स्थानको घेरनेके लिये मेंहदीकी टट्टी लगायी जाती है। यदि इस टट्टीमें कहीं फाटक बना दिया जाय तो बाग बहुत सुन्दर जान पड़ेगा। यदि फाटक ईंटका बनाया जाय और उसपर सीमेंट या चूने का पलस्तर कर दिया जाय तो बहुत टिकाऊ और सुन्दर फाटक तैयार हो जायगा (चित्र २)। परन्तु बांस और लकड़ीसे भी फाटक बन सकता है। एक डिज़ाइन चित्र ३ में दिखलाया गया है। बांसपर कोई फूलकी लता चढ़ा देने से बहुत ही सुहावना जान पड़ेगा।
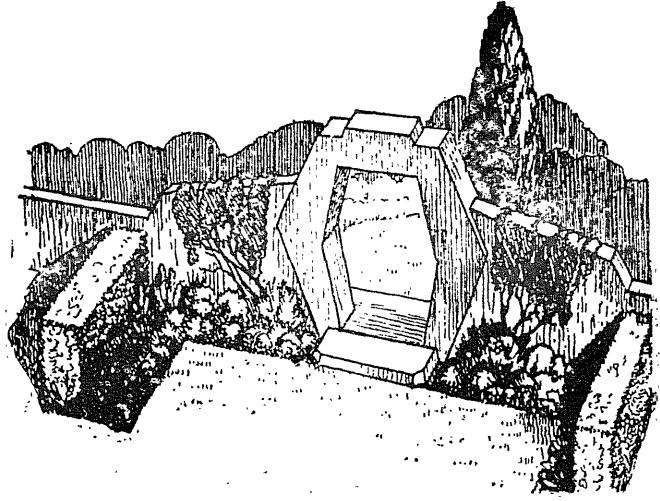
चित्र २—ईंटका फाटक

बागमें चिड़ियोंका चहचहाना भी बड़ा सुन्दर लगता है। परन्तु चिड़ियोंको आकर्षित करनेके लिये कुछ विशेष प्रबन्ध करना चाहिये। एक सरल रीति चित्र ४ में दिखलायी गयी है। यदि चिड़ियोंके लिये बक्स लगा दिये जायें जिनमें वे घोंसले बना सकें तो अच्छा होगा। यदि छिलकेदार लकड़ीका बक्स बनाया जाय तो चिड़ियाँ इन बक्सोंसे भड़केंगी नहीं। छिलकेदार लकड़ी, जिसे 'बगली' बोलते हैं। किसी भी लकड़ीके पटरे बेंचनेवालेसे मोल ली जा सकती है। बक्सका एक स्वरूप चित्र ४ में दिखलाया गया है। इसपर ढालू छत लगी है जिसमें इसके भीतर पानी न
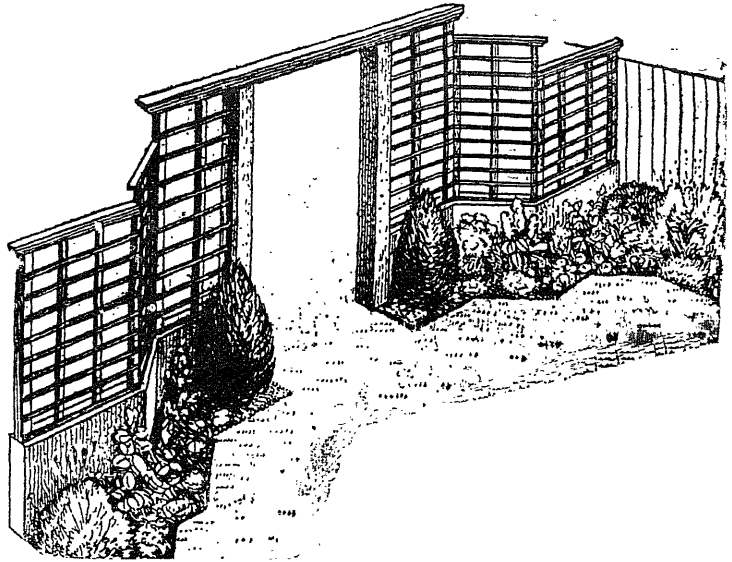
चित्र—३ बांसका फाटक

जा सके। इसमें एक छोटा छेद है जिसके द्वारा चिड़िया बाहर-भीतर आ-जा सकेगी। यदि इस प्रकारके दो-चार बक्स बागमें लगा दिये जायँ तो अवश्य ही उनमें चिड़ियाँ घोंसले लगावेंगी। बक्सका छेद इतना बड़ा न रहे कि उसमें कौए या अन्य बड़े पक्षी घुस सकें। वे ऐसे स्थानमें हों जहाँ बिल्लियां न पहुंच सकें।

चिड़ियोंको पिंजड़ोंमें पालनेके बदले उनको इस प्रकारसे अपने बागमें बसा लेना कहीं अच्छा है।

चित्र ४—चिड़ियोंके लिये कृत्रिम घोंसला

छोर-रहित छाप

[डा० गोरखप्रसाद, डी० एस-सी०]

कुछ नौसिखियोंको आश्चर्य होता है कि छोर-रहित छापें कैसे तैयार की जाती हैं। छोर-रहित छापसे अभिप्राय उस छाप या फोटोसे है जिसमें बीचमें फोटो छपा रहता है और किनारे सफेद रहते हैं, परन्तु फोटो और सफेद किनारे के बीच कोई तीक्ष्ण रेखा नहीं रहती। फोटो धीरे-धीरे सफेद होते हुए सफेद किनारेमें जा मिलता है। यहाँ छपे चित्र में ऐसे फोटोग्राफकी प्रतिलिपि दी गयी है, परन्तु ब्लाकसे छपे रहनेके

कारण सफेद किनारा पूर्णतया स्वच्छ नहीं छप सकता है।

यदि पी-ओ-पी-पर छोर-रहित छाप बनानी हो तो छापनेके चौखटेपर एक दफ्ती जड़ देनी चाहिये। दफ्ती चौखटेकी मोटाईके कारण, नेगेटिवसे कम-से-कम पाव इञ्च उठी रहेगी, परन्तु यदि इसे आध इञ्च उभारकर जड़ा जाय तो और भी अच्छा है। यदि छापनेका चौखटा लोहेका हो और इस लिये दफ्ती नेगेटिवसे प्रायः छूती हुई स्थिति में पड़े तो लकड़ीकी पट्टी लगाकर या अन्य किसी प्रकारसे दफ्तीको नेगेटिवसे आध इंच उठा देना चाहिये।

इस दफ्तीको जड़नेके पहले इसमें उचित आकारका छेद काट लेना चाहिये। जैसे, यहाँ दिये गये उस चित्र के लिये जिसमें बुढ़िया लड़कीको टीका लगा रही है, चौकोर छेद काटा जायगा। यदि किसी मनुष्यका केवल सिर और धड़का चित्र छापना हो तो उसके लिये दूसरे चित्रमें दिखलाये गये आकारका छेद काटा जायगा। छेदके किनारे सीधे न हों। सूर्यसे जिस प्रकार रश्मियां निकलती हुई चित्रोंमें दिखलायी जाती हैं कुछ उसी प्रकारसे छेदको काटना चाहिये। यह बात चित्र १ से स्पष्ट हो जायगी। छेदकी दांतियां जितनी ही लम्बी होंगी, फोटो उतना ही धीरे-धीरे छोर-रहित होगा।

चित्र १ में यह भी दिखलाया गया है कि किस प्रकार छापनेके चौखटे पर लकड़ीकी दो पट्टियोंके जड़ देनेसे दफ्ती को टिकानेमें सुविधा होती है। इन पट्टियोंके रहनेपर भिन्न-भिन्न नापके छेदोंकी दफ्तियां बात-की बातमें बदली जा सकती हैं, परन्तु केवल दफ्तीको कीलसे जरा सा अटका देना भी काफी होगा।
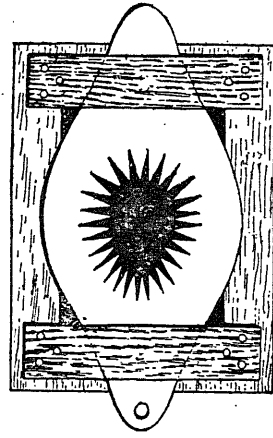
चित्र १—छापनेके चौखटे पर दफ्ती लगानेकी एक रीति

इस प्रकार छेद-कटी दफ्तीको चौखटेके सामने लगाकर सायेमें छापनेसे छोर-रहित फोटो छपेगा। यदि कहीं भूलसे धूपमें फोटो छापा जायगा तो दफ्तीकी परछाहीं स्पष्ट छप जायगी और चित्र नष्ट हो जायगा।

कभी-कभी नेगेटिवके किनारे पर कोई ऐसा स्थान रहता है जहां नेगेटिव बिल्कुल हल्का (स्वच्छ) रहता है। ऐसी दशामें जो कुछ भी धीमा प्रकाश कोनेतक पहुंचता है वह नेगेटिवके उस स्वच्छ भागको पार करके कागजतक पहुंच जाता है और वहां कागज काला हो जाता है। इसलिये यदि इस बातका डर हो तो दफ्ती और नेगेटिवके बीचमें रुई ठूंस देनी चाहिये।

यदि ब्रोमाइड या गैसलाइट-कागजपर छाप बनानी हो तो भी वही प्रबन्ध करना चाहिये, परन्तु तब छेद कटी

दफ्तीके छेदपर मोमी (अर्धपारदर्शक) कागज चिपका देना चाहिये ।

प्रवर्द्धित चित्र (एनलार्जमेंट) छापते समय उचित छेदवाली दफ्तीको ताल और कागजके बीच रखना चाहिये, परन्तु दफ्तीको स्थिर न रखकर उसे कुछ आगे-पीछे हिलाते रहना चाहिये । इस प्रकार छापका छोर धीरे-धीरे मिटेगा। छेदका उचित आकार जाननेके लिये ब्रोमाइड कागज लगाने के पहले ही दफ्तीको ताल और उस तख्तीके बीच रखकर जाँच कर लेनी चाहिये जिसपर ब्रोमाइड कागज लगेगा । दफ्तीको तख्तीसे बहुत दूर नहीं रखना चाहिये ।

विज्ञान-संसार

१-हवाई जहाज भी चिड़ियोंकी तरह अपना पंख समेट सकता है

अमरीकाके एक उड़ाकेने एक ऐसा हवाई जहाज़ बनाया है । जिसके पंख मोड़कर जहाज़के उदरसे सटा दिये जा सकते है । इसप्रकार पंखके मोड़देने पर जहाजको किसी भी बड़े (मोटर-घरमें) गराजमें रक्खा जा सकता है । खुलनेपर पंख एक सिरेसे दूसरे सिरे तक ४० फुट लम्बा है । चोटी से पूँछतक जहाज २० फुट लम्बा है । इसमें १२५ अश्व बलका इञ्जन लगा है । यह जहाज १०,००० फुट ऊँचे जा सकता है और १२० मील प्रति घन्टेके वेगसे दौड़ सकता है । पहियोंके स्थानपर नौकाएँ भी लग सकती हैं, जिससे जहाज पानीपर भी उतर सकता है ।

२-चिमड़ा शीशा जो गोला गिरानेपर भी नहीं टूटता

एक नये तरहका शीशा अभी बना है और उसकी जाँच हो रही है । यह इतना मजबूत और चीमड़ा है कि इसपर जब फौलादका पाव भरका गोला १० फुटसे गिराया गया तब भी यह नहीं टूटा । शीशा देखनेमें साधारण शीशेहीकी तरह स्वच्छ और चिकना है ।

३-युद्धके लिये बने टैंक चहारदीवारी भी लांघ जाँयगे

आस्ट्रियाके नये-से-नये टैंकोंकी जब जांच हो रही थी तब वे चहारदीवारीको भी लांघ गये । यह चहारदीवारी मोटे-मोटे लट्ठोंको जमीनमें गाड़कर बनायी गयी थी । लट्ठे इतने मजबूत थे कि उस दैत्याकार टैंक* की ठोकरसे भी नहीं टूटे, परन्तु टैंकको वे रोक न सके । ठोकर खानेसे लट्ठे कुछ टेढ़े हो गये । बस, उसीपर टैंक बड़े वेगसे चढ़ गया और हवामें उछलकर कई गज आगे जा गिरा, इतनी ऊँचाईसे गिरनेपर भी टैंकको कोई हानि नहीं पहुँची । जमीन छूते ही वह फिर आगे अपने पुराने वेगसे दौड़ता ही गया । एक दूसरे टैंकने लट्ठोंको तितर बितर कर दिया । ऐसी आशा की जाती है कि वास्तविक युद्धमें पहियोंपर आरोपित ये किले, कंटीले तारकी चहार-दीवारी, खाई या फौजको कुछ न समझेंगे । भीतरसे गोलंदाज़ लोग धांय-धांय मशीन-गन भी दागते रहेंगे ।

४-फूल सुखानेके लिये बिजलीका तंदूर

गत वर्ष दो करोड़ फूल बिजलीके तंदूरमें सुखाये गये थे । इस प्रकार सुखानेसे न तो उनका रंग उड़ता है और न उनके रूपमें कोई अन्तर आता है । केवल उनके डंठल नकली होते हैं । लगभग दो वर्ष हुए इस व्यवसायका आरम्भ हुआ । उस समय असली डंठल ही रक्खे जाते थे, परन्तु शीघ्र ही पता चला कि असली डंठल सूखनेपर इतने चुरमुरे हो जाते हैं कि वे शीघ्र टूट जाते हैं । इसलिये अब फूलोंके काटते ही उनमें नकली डंठल तार और रेशमके लगा दिये जाते हैं और फिर फूलोंके गुच्छे बनाकर उनको बिजली के तंदूरमें सूखनेको रख दिया जाता है । पचास-पचास

* एक प्रकारकी भारी लारी (मोटर गाड़ी) जो चारों ओरसे फौलादके चादरोंसे ढकी होती है ।

हजार फूल एक ही बार एक तंदूरमें आ जाते हैं। यहां वे छत्तीस या अड़तालीस घन्टेतक पड़े रहते हैं। इन तंदूरों का तापक्रम १३० से २०० डिगरीतक रहता है। इसप्रकार सुखाये गये कुछ फूल बरसों चलते हैं।

५-भूकंप और आगसे रक्षा

बीमा कंपनियोंने भूकम्प और आगसे मकानोंकी रक्षा करनेके लिये बनाये गये एक यन्त्रको खूब पसन्द किया है, यन्त्र सरल है। एक पतले स्तंभपर एक फौलादका गेंद रक्खा रहता है और हलके कमानीसे दबे रहनेके कारण गिर नहीं सकता। परन्तु यदि मकानमें आग लगे तो रांगेके उस तारके पिघल जानेके कारण जिससे कमानी बंधी रहती है, कमानी उठ जाती है और गेंद गिर पड़ता है,-या यदि भूकंप आये तो भी गेंद लुढ़क पड़ता है क्योंकि कमानी हलकी होती है। गेंदके गिरते ही दो काम होते हैं। एक तो मकान में यदि गैस-पाइप लगे हों तो गैस बन्द हो जाता है। दूसरे, एक बिजलीकी घन्टी बजने लगती है, जिससे लोगों को खतरेकी सूचना मिल जाती है।

६-सूर्यका सिनेमा-चित्र

जो लोग आधुनिक ज्योतिषसे परिचित हैं, जानते हैं कि सूर्यसे लाल ज्वालाएं निकला करती हैं जो लाखों मील की ऊंचाईतक पहुंच जाती हैं। ये ज्वालाएं सर्व सूर्य-ग्रहण के समय देखी जा सकती हैं, परन्तु विशेष यन्त्रोंसे उनका फोटोग्राफ किसी दिन भी खींचा जा सकता है। अमरीकाके दो ज्योतिषियोंने अब ऐसा यन्त्र बनाया है जिससे इनका सिनेमा-चित्र खींचा जा सकता है। कुछ ही दिन पहले करना असंभव समझा जाता था।

अनुभूत योग

[स्वामी हरिशरणानन्दजी]

पंजाब आयुर्वेदिक फार्मेसी की ओरसे एक "लाला लाजपतराय दातव्य औषधालय" आज तीन वर्षसे चल रहा है। इस औषधालयमें शहरके बड़े बड़े साध्य और असाध्य रोगी चिकित्साके लिये आते हैं। जितनी भी उक्त पंजाब आयुर्वेदिक फार्मेसी के लिये ओषधियां निर्म्मित होती हैं प्रायः सभी दातव्य औषधालयमें प्रयुक्त की जाती हैं। इन तीन वर्षोंमें जिन जिन ओषधियोंका प्रयोग किया गया है वह ओषधियां किन किन रोगोंपर लाभदायी हैं विशेष रूपसे किसी औषधके गुणोंका क्या पता लगा, वैद्योंके लाभार्थ प्रकाशित करते रहेंगे।

समीर-पन्नग

यह योग दक्षिणमें अधिक प्रयुक्त होता है। अन्य प्रान्तोंमें इस योगका प्रयोग बहुत कम वैद्य करते हैं। किन्तु यह बड़ा ही फलप्रद योग है।

योग—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध हरताल, शुद्ध संखिया, सब समभाग डालकर तुलसीके रसमें तीन दिन खरल करे। लिखा तो यह है कि इसे सम्पुटमें बन्दकर बालुका यन्त्रमें मन्द अग्निपर पकावे। किन्तु हम ऐसा नहीं करते। हम इसे कूपीमें चढ़ाकर रससिन्दूर सा परिपाचन कर उड़ा लेते हैं। इसकी मात्रा लिखी तो २ रत्ती है पर १ रत्ती ही काफी होती है।

प्रयोग—इसमें संखियाका पारेके साथ योग होता है। संखिया अच्छा रक्तशोधक है। इसलिये हमने इसे फोड़ा, फुन्सी, उपदंश-जनित रक्त विकार और कई प्रकारके कुष्ठरोगों पर व्यवहार किया। अच्छा लाभ करता है। **कुनख**—एक रोगीके नाखून श्याम रंगकी धारियोंसे युक्त हो गये थे और उनकी रचनामें भी विकृति आगयी थी। १७ वर्षसे यह बीमारी उसको थी। इस रोगीके लिये मैंने समीर-पन्नग निश्चित किया। ४ महीनेतक खानेपर उसके नाखूनोंकी विकृति जाती रही। नाखूनका वर्ण ठीक होगया। एक रोगी और आया उसकी उंगलियोंपर नाखूनके मूल भागमें छोटी छोटी फुन्सियां निकल आया करती थीं। सर्दियोंमें उसे स्वतः आराम रहता था। वर्षाकालसे पहिले ही ग्रीष्म ऋतुमें ही अपने-आप एक दो फुन्सी अंगुलीके किसी स्थान पर उत्पन्न होती और बस, उसकी लागसे दादके रूपमें वह फुन्सियां फिर निकलती फूटती रहतीं। यह रोग उसको १४-१५ वर्षसे था। मैंने उसे कहा कि चार मास औषध सेवन करोगे तो बिलकुल चंगे हो जाओगे। वह बराबर समीर-पन्नगको आधी रत्ती शहदमें मिलाकर ५ महीनेतक सेवन करता रहा। इसका परिणाम यह हुआ कि पिछले वर्ष वर्षाकालमें उसे वह रोग नहीं हुआ। अब जब कभी मिलता है, औषधकी प्रशंसा करता है। यह रोगी इन्जेक्षन भी करा चुका था। कलकत्ते भी छः मास इस रोगकी चिकित्साके लिये रहा पर कोई लाभ न हुआ।

स्नायविक तथा मानसिक रोगोंपर—पक्षाघात, लकवापर शास्त्रमें अनेकों योग होंगे पर समीर पन्नग उनमें अद्वितीय योग है। मेरे पास इस समय भी कई एकांगघात, पक्षाघात लकवा, कलापखंज आदिके रोगी हैं। मैं उन्हें सिवाय-समीर पन्नग रसके और कुछ खानेको नहीं देता। मालिशके लिये नारायण तेल। खानेके लिये दोनों समय शहदके साथ एक एक रत्ती समीर-पन्नग रस तथा दूसरे दिन सुख विरेचनीकी दो गोलियां, बस, यही सादे प्रयोगसे पन्द्रह बीस दिनमें ही रोगीको लाभ दिखाई देता है। और कुछ दिनमें रोगी चलने फिरने लगता है।

जिनके हाथ-पैर बैठे-बैठे सुन्न हो जाते या सूने पड़ जाते हैं, या सोते-सोते कोई अंग शून्य हो जाता है या झनझनाता है, उनको भी समीर पन्नगसे लाभ होता है। गृध्रसी-रींगन बाय या गृध्रसी या चलितशूलमें भी लाभ करता है।

भय—एक रोगिणी प्रायः डरा करती थी, इतना डरती थी कि रातको अकेली नहीं रह सकती थी। परिवारवाले इस भयको रोग नहीं समझते थे प्रत्युत स्वाभाविक बात समझते थे। उसी रोगिणीको पक्षाघात हो गया। उसे चिकित्साके लिये मेरे पास लाये। मैंने उसे समीर-पन्नग देना आरंभ किया। पक्षाघातके लाभके साथ-साथ उसका भय भी कम होता चला गया। अब वह पहलेकी अपेक्षा बहुत कम डरती है। अभी उसकी चिकित्सा हो रही है। आशा है इसी योगसे उसका भय भी जाता रहेगा।

शास्त्र कहता है कि इसका उपयोग सन्निपात ज्वरमें नागवल्ली रससे करना चाहिये, तथा श्लेष्मवृद्धिमें भी इसका उपयोग बताया गया है। किन्तु, हमने इन रोगोंमें इसका उपयोग नहीं किया। खांसीमें कुछ लाभ करता है।
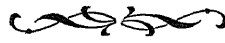
[इस स्तंभमें हम उन पुस्तकोंकी समालोचना देते हैं जो हमारे पास इस उद्देश्यसे आती हैं। जिन पुस्तकोंकी केवल एक ही एक प्रति आती है, उनकी आलोचना देरमें निकले तो पुस्तक भेजनेवालों को घबराना नहीं चाहिये। अपने सुभीतेसे समय निकालकर ही मैं उनकी आलोचना कर सकूंगा। जिन पुस्तकोंकी दो प्रतियां आती हैं, उनकी समालोचना शीघ्रकी जाती है। रा० गौ०]

उपनिषदोंके चौदह रत्न–लेखक–श्री हनुमानप्रसाद पोद्दार, प्रकाशक, गीताप्रेस गोरखपुर, पृष्ठसंख्या ९६, पुस्तकोंकी सूची पृ० १६ मूल्य ।≈)

भारतीयोंने उपनिषदोंकी गणना वेदोंके ही अन्तर्गत की है तथा इनकी प्राचीनता भी सृष्टिके आदिमें लुप्त हो जाती है। उपनिषद् सर्वदासे अमूल्य ज्ञान तथा शिक्षाके भण्डार हैं। लेखकने इन उपनिषदोंके आख्यानोंको भाषा का रूप देकर भारतका महान् उपकार किया है। हिन्दी भाषा के एक बड़े अभावको इसने दूर कर दिया। बालवृद्धवनिता सभीके लिये पठनीय है। इससे सभी यथेष्ट रत्न निकाल सकते हैं जिसके स्पर्शसे सभीकी हृदयाग्निज्वाला शान्त हो जायगी। उपनिषदोंका पठनपाठन आजकल उठ सा गया है। उसे पुनः आरम्भ करनेका यह प्रथम यत्न दिखता है। इसमें भारतीय संस्कृतिके प्रतिनिधिरूप १० रंगीन चित्र तथा सूचीमें भी सादे चित्र हैं। इस खजानेके लिये निर्धारित मूल्य कुछ भी नहीं है। देवसहाय त्रिवेद।

प्रेमदर्शन या भक्तिसूत्र–इसके रचयिता प्रकाशयिता कल्याणके धुरन्धर सम्पादक श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार गोरखपुर हैं। सूत्रग्रंथोंका समझना कितना कठिन है यह सभी जानते हैं, किन्तु पोद्दारजीने इनको समझानेमें तथा गीता, योगवासिष्ठ, नीतिग्रन्थ तथा अन्य मध्यकालीन भक्तिमार्ग प्रदर्शक सम्प्रदायाचार्योंके समान उद्धरणोंको लेनेमें कितना परिश्रम किया है यह पुस्तकको आद्योपान्त पढ़नेसे ही ज्ञात हो सकता है। अन्य धर्मावलम्बी भी इस पुस्तकसे भक्तिका उपदेश विना द्वेषके ले सकते हैं। इसमें विभिन्न पाठ भी फुटनोटमें दिये गये हैं। यह भाषा टीका अन्याचार्योंके टीकासे असंगत नहीं है किन्तु रोचक तथा सरल है। इसमें तीन भक्तिभावपूर्ण रंगीन चित्र हैं। पृ० सं० १७९ मूल्य लागतमात्र ।–)। —दे० त्रिवेद।

स्तोत्ररत्नावली–प्रकाशक गीताप्रेस गोरखपुर मूल्य ॥) पृ० सं० २३०

गीताप्रेसने जो उपकार तथा चेष्टा विश्वात्मकल्याणके लिये किया है वह किसीसे छिपा हुआ नहीं है। यह उसी आत्मकल्याणके निमित्त एक पुष्प है। इसमें सभी स्तोत्रों की संख्या ६३ हैं तथा सभी देवताओंका समावेश है। सभी श्लोकोंका हिन्दी अनुवाद भी नीचे दिया हुआ है जिससे श्लोकोंको समझनेमें सुभीता होता है तथा पाठ करनेमें बाधा भी नहीं होती। इसमें ध्यान करने योग्य ४ चित्र भी दिये गये हैं जो इसकी उपादेयताको और भी बढ़ा देते हैं। प्रत्येक संस्कृत प्रेमी तथा भक्तजनोंको इसे सर्वदा अपने पास रखना चाहिये। —दे० त्रिवेद।

The Story of Mira

ले०—बांकेबिहारी बी० एस-सी०, एल-एल० बी०, प्रकाशक गीताप्रेस गोरखपुर पृ०सं० ९३ मूल्य ॥≈)

यह ग्रंथ भक्तिमार्गका प्रवर्तक होगा। किस प्रकार एक भक्त अपने इष्टदेवके फेरमें संसारको ठुकरा देता है यह मीराबाईके जीवनचरितके पन्ने-पन्नेसे झलकता है। टिप्पणी में मूल संगीतोंको देकर लेखकने पाठकोंका मन केवल अंग्रेजी अनुवाद पढ़नेको ललचाया है। केवल अंगरेजी जानने वाले अनुवादको जो स्वतन्त्र तथा तथ्यपूर्ण है समझकर मूल पढ़नेके लिये अवश्य यत्न करेंगे। इस पुस्तकके पढ़ने से बहुतेरोंका इहलोक और परलोक सुधर जायगा। इसी में पांच सुन्दर चित्र भी हैं। —दे० त्रिवेद।

Mind Its Mysteries and Control–(मन, उसके रहस्य तथा संयम) ले०-स्वामी शिवानन्दजी सरस्वती, प्रकाशक गीताप्रेस गोरखपुर मू० ॥) पृ० सं० १७२

यह पुस्तक बड़े परिश्रमसे एक अनुभूत योगी द्वारा लिखी गयी है। स्वामीजीका संस्कृत तथा अंगरेजीका पाण्डित्य किसीसे छिपा नहीं है। इसका हिन्दी प्रकाशन भी कल्याणमें हो रहा है। यह पुस्तक विशेषकर विदेशियों के लिये तथा संस्कृत या हिन्दीसे अनभिज्ञ भारतीयोंके लिये है। योग हम लोगोंकी राष्ट्रीय सम्पत्ति है। वह समय आ गया कि हमलोग शीघ्र ही अपने प्राचीन गुणों तथा कलाओंको विद्वानोंके लेखन तथा सत्संगसे अपनावें। प्रत्येक बात बड़ी ही सरलतासे समझायी गयी है जिससे पढ़नेमें बाधा नहीं होती। बीच-बीचमें योगदर्शन गीता तथा अन्य पुस्तकोंसे भी सूक्तियां उद्धृतकी गयी हैं। परिशिष्टमें भी कठिन शब्दों को समझानेमें सफलता प्राप्त हुई है। केवल अंग्रेजी जानने वाले पाठकोंके लिये तो यह अनमोल वस्तु है।

—दे० त्रिवेद।

सम्पादकीय टिप्पणियां

विज्ञानका अधिक उपयोगी रूप

सब तरहके पाठकोंकी रुचिके अनुसार विज्ञानमें इस ४४वें भागके आरंभसे जो परिवर्त्तन हमने किये वह अधिकांश पाठकोंको पसन्द आये हैं। इसका सारा श्रेय हमारे सह सम्पादक मित्र डा० गोरखप्रसादजीको है। "बागवानी" "घरेलू कारीगरी" "वैज्ञानिक खोज और आविष्कार" तथा "फोटोग्राफी" ये चार नये स्तंभ उन्हींके बलपर खड़े हुए हैं। कवरपर जो हर मासमें एक विशेष चित्र दिया करते हैं। वह भी उन्हींकी योजना और इण्डियन प्रेसकी कृपाका फल है। इस अंकसे ४४ वां भाग समाप्त होता है। ४५ वें भागके आरम्भसे हम एक और स्तंभ जोड़नेवाले हैं। वह है "मिस्त्रीकी नोटबुक" यह स्तंभ विशेष रूपसे पाठकोंसे सुपरिचित हमारे मित्र पंडित ओंकारनाथ शर्माद्वारा लिखा जा रहा है। अगली संख्यासे यह महीने-महीने दो-दो पृष्ठ निकला करेगा। जो चाहे इसको अलग संग्रह करता जाय। जो लोग केवल इसी स्तंभको लेना चाहें वह अविलम्ब अपना नाम लिखा दें। तो हम इस अंशकी अधिक प्रतियां छपवा लिया करेंगे।

तकलीसे कताई

तकली द्वारा कताईपर सहयोगिनी 'वार्णी" ने अपने नवम्बर १९३६के अंकमें एक बड़ा ही सुन्दर लेख निकाला था। यों तो "वार्णी" के प्राय सभी लेख बड़े उपयोगी होते हैं, तो भी यह लेख हम अपने पाठकोंको भेट करनेके लोभको संवरण न कर सके। इसके ब्लाक हमें बर्धाके महाराष्ट्र चरखासंघकी कृपासे प्राप्त हुए जिसके लिये उक्त संघ के मन्त्रीजीके हम आभारी हैं। रा० गौ०

चित्र-परिचय

स्थानाभावसे इस अंकके कवरके चित्रका परिचय इसी अंकमें नहीं दिया जा सका। अगली संख्यामें इसका परिचय तथा षाण्मासिक विषयसूची आदि भी पाठकोंको हम देंगे।

विषय-सूची

ब्रह्मचारी शङ्करचैतन्यने काशी विश्वनाथ प्रेसमें मुद्रित किया
तथा मंत्री विज्ञानपरिषत् प्रयागके लिये वृन्दावनविहारीसिंहने विज्ञान-कार्यालय काशीसे प्रकाशित किया।

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते,
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ०।३।५॥

प्रयागकी विज्ञान-परिषत्का मुखपत्र जिसमें अमृतसरका आयुर्वेद-विज्ञान भी सम्मिलित है

भाग ४५

मेष-कन्या, संवत् १९९४ विक्रमी

अप्रैल-सितम्बर, सन् १९३७ ईसवी

प्रधान सम्पादक

रामदास गौड़, एम्० ए०,

विशेष सम्पादक

गोरखप्रसाद, डी० एस्-सी०, (गणित और भौतिक-विज्ञान)
स्वामी हरिशरणानन्द वैद्य (आयुर्वेद-विज्ञान)
रामशरणदास, डी० एस्-सी०, (जीवन-विज्ञान)
श्रीचरण वर्मा, एम्० एस्-सी (जन्तु-विज्ञान)
श्रीरंजन, डी० एस्-सी०, (उद्भिज्ज-विज्ञान)
सत्यप्रकाश, डी० एस्-सी० (रसायन-विज्ञान)

प्रकाशक

वार्षिक मूल्य ३)]   **विज्ञान-परिषत्, प्रयाग**   [इस जिल्दका मूल्य १॥)

विषयानुक्रमणिका

कला

जासूसी

जीव विज्ञान

ज्योतिर्विज्ञान

मंगलाचरण

विविध

शिक्षणकला

सम्पादकीय टिप्पणियां

साहित्य विश्लेषण

अप्रैल, १९३७ मूल्य ।)

भाग ४५ प्रयाग की विज्ञान-परिषद का मुख-पत्र, जिसमें आयुर्वेद-विज्ञान भी सम्मिलित है संख्या १

Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces & Central Provinces, for use in Schools and Libraries.

विज्ञान

पूर्ण संख्या
२६५

वार्षिक मूल्य ३)

नोट—बदले के सामयिक पत्रादि, लेख और समालोचनार्थ पुस्तकें, यदि वे आयुर्वेद पर न हों, तो 'संपादक, विज्ञान, बनारस शहर' के पास भेजे जायँ। अन्यथा वे स्वामी हरिशरणानंद, पंजाब आयुर्वेदिक फ़ारमेसी, अकाली मार्केट, अमृतसर के पास भेजे जायँ।

प्रबंध-संबंधी सब पत्र तथा मनीआर्डर 'मंत्री, विज्ञान-परिषद, इलाहाबाद' के पास भेजे जायँ।

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते,

विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५॥

भाग ४५ } प्रयाग । मेषार्क, संवत् १९९४ विक्रमी । अप्रैल, सन् १९३७ ई० } संख्या १

मंगलाचरण

[श्रीश्यामनारायण पाण्डेय शास्त्री साहित्यरत्न]

द्रव, कठिन, इन्द्रियग्राह्य और अग्राह्य लघु, गुरु युक्त है ।
अणिमादि-मय है कार्य कारण और उनसे मुक्त है ॥ ७ ॥

आरम्भ होता तीन स्वरसे तू वही ओंकार है ।
फल कर्म जिनका स्वर्ग मख है तू उन्हींका सार है ॥ ८ ॥

पुरुषार्थ-हित-रत प्रकृति तुझको तत्त्ववेत्ता कह रहे ।
फिर प्रकृति द्रष्टा भी तुझीको ब्रह्मवेत्ता कह रहे ॥ ९ ॥

तू पितृयोंका भी पिता है देव देव हरे, हरे ।
दक्षादिका भी सृष्टिकर्त्ता और परसे भी परे ॥१०॥

तू हव्य होता भोज्य भोक्ता तू सनातन है प्रभो ।
तू वेद्य, ज्ञाता, ध्येय, ध्याता, तू पुरातन है प्रभो ॥११॥

घरके बने असली मोती

[डाक्टर गोरखप्रसाद, डी० एस-सी०]

जिस दिनसे किसी आदिमनिवासीने किसी सीपीको पत्थरसे फोड़कर देखा होगा कि मांसके भीतर एक चमचमाता रत्न छिपा हुआ है, उसी दिनसे मनुष्य मोतियोंके पीछे पड़ गया। आजतक वह उनके पीछे पड़ा हुआ है। वह सदा चेष्टा करता है कि प्राकृतिक मोतियोंकी उपज बढ़ जाय, या वैसे ही मोती कृत्रिम रीतियोंसे बन सकें।

मनुष्यको असली मोती बनानेका भेद अब मिल गया है और उसको अब इसका ज्ञान है कि मोतियोंकी खेती वह कर सके और सीपियों और घोंघोंसे इच्छानुसार मोती बनवा सके। वर्षोंके अथक परिश्रम और असंख्य प्रयोगोंके बाद अमरीकाके एक वैज्ञानिक श्री बोस्टविक महाशयने अब अमरीकाके समुद्री सीपियोंमें दोषरहित मोती पैदा करनेमें सफलता पायी है। इनमें किसीमें हल्का हरा, किसीमें आसमानी और किसीमें गुलाबी आब भी रहता है।

सीपीके गर्भसे मनचाहे मोती

पापुलर मिकैनिक्स नामक मासिक पत्र लिखता है कि इसके पहले श्री बोस्टविकने गोल और अंडाकार मोती झीलों और नदियोंकी सीपियोंमें पैदा किया था। ये सफेद भी होते थे और रंगीन भी और बाज़ बाज़ तो वज़नमें ५ रत्तीके थे। शंखोंमें उन्होंने शंखकी हड्डीसे लगे हुए गोल और लंबे मोती पैदा किये थे जो वज़नमें बीस रत्ती तक थे, परंतु उनका नया आविष्कार ऐसा है कि प्रशांत महासागरके सारे तटपर अब शायद मोतियोंकी खेती होने लगेगी। अमरीका निवासियोंको खुशी है कि अब शायद वे जापानियों को मात कर सकेंगे। जापानी लोग तो वर्षोंसे मोतीकी खेती कर रहे हैं। उनको वे जापानी सीपीमें पैदा करते हैं. पर उनके मोती छोटे, गोल और सफेद ही होते हैं।

यह बड़ी अच्छी बात हुई कि मनुष्यको मोती पैदा करनेका भेद मालूम हो गया, नहीं तो आज मोती मिलना दुर्लभ हो जाता, क्योंकि गत पचास बर्षोंमें प्राकृतिक मोतियोंके पानेका कोई नवीन स्थान नहीं पाया गया है, और पुराने स्थानोंसे मोती यथासंभव सब निकाल लिये गये हैं।

पुराने जमानेके गड़े मोती

जान पड़ता है कि पुराने जमानेसे ही प्रकृति-माताको पर्याप्त मात्रामें मोती पैदा करनेमें कठिनाई पड़ती रही होगी, क्योंकि पुरानी समयकी जातियाँ भी मोतियोंको बड़ी शौकीन थीं। एक पुराने क़ब्रमें १ घड़ा मोती मिला है। शायद उस जमानेमें भी लोग कृत्रिम रीतिसे सीपियोंमें मोती पैदा करते रहे होंगे। मिश्र देशकी कब्रोंमें भी अनेक बहुमूल्य मोती मिले हैं और उस देशके साहित्यमें मोतीकी बड़ी प्रशंसा है।

सीपके बटनोंने रोजगार बढ़ाया

जब पहले-पहल यूरोपियनोंने अमरीकापर विजय पायी तब वे वर्षों तक वहाँके आदिम निवासियोंसे मोती मोल लिया करते थे। उनको यह पता न था कि ये मोती पासके झीलों और नदियोंकी सीपियों ही में मिलते हैं। कुछ लोगोंने खोज भी की तो उनको छोटे ही छोटे मोती मिले और निराश होगये। यह तो जब सीपके बटन बनने लगे तब अमरीकामें मोतियोंका व्यवसाय जोरोंका चला। बटनोंके कई एक कारखाने खुले और उनके लिये सीपी बटोरने वाले झुंड के झुंड नदी और झीलोंके किनारेपर खेमे डाल-डाल जा बसे।

परंतु उन सीपियोंमें मोती अकसर मिलते थे। अधिकांश छोटे, या टेढ़े-मेढ़े होते, परंतु कभी-कभी वे बड़े और उत्कृष्ट आकारके भी होते। एक सालमें करोड़ों रुपयोंका मोती निकलने लगा और बाज मोतियोंके दाम तो प्रति मोती पाँच-पाँच हजार और दस-दस हजार रुपये मिले। कुछ मोतियोंके दाम तो लाख, सवा लाख रुपये तक लग गये। सीपी बटोरनेवालोंके सम्मुख खजाना मिल जानेकी संभावना मृगतृष्णाकी तरह सदा ही नाचा करती थी और एक जमाना आया कि अच्छे-अच्छे रोजगार जोड़ कर सीपी बटोरनेके काममें जा लगे। इसप्रकार अमरिकामें प्राकृतिक मोतियोंका भंडार शीघ्र ही खाली हो चला।

मोती बनानेकी असफल कोशिशें

मनुष्य मोतियोंके पैदा करनेमें प्रकृतिकी सहायता करनेके लिये सैकड़ों और शायद हजारों वर्षसे चेष्टा कर रहा है। अमरीकाके आदिम निवासियोंने, ऐसा जान पड़ता है, चेष्टा की थी और असफल हुए थे। चीनियोंने बड़ी चेष्टा की थी परन्तु उनको भी सफलता नहीं मिली।

यह तो १९१३की बात है जब जापानी वैज्ञानिक मीकीमोतोको हड्डीसे सटे मोतियोंके बनानेमें सफलता मिली। पीछे वह छोटी-छोटी गोल मोतियोंके भी बनानेमें सफल हुआ। वह सीपियोंके मांसके भीतर सितुहियोंके चूरका एक नन्हा-सा गोला घुसेड़ दिया करता था और उसीपर मोती बनने लगते थे। जापानके सरकारने इस व्यवसायकी पूरी सहायता की और शीघ्र ही जापानी मोतियोंका व्यवसाय करोड़ रुपये वार्षिकतक पहुंच गया।

कैसे बनाये जाते हैं?

कुछ तरहकी सीपियोंके शरीरमें जब नन्हे-नन्हे कीड़े घुस जाते हैं तब उनमें मोती बन जाता है। प्रकृतिने उन सीपियोंकी रक्षाका यह प्रबन्ध किया है कि उन कीड़ोंपर मोतीका मसाला जमा होने लगता है और राईके समान नन्हे-नन्हे मोती बन जाते हैं। साधारणतया ये मोती सीपी के शरीरसे निकलकर बाहर हो जाते हैं। और इस प्रकार सीपीकी जान बच जाती है। परन्तु यदि कीड़ा सीपीके शरीरके किसी ऐसे स्थानमें घुस जाय जहांसे मोतीका निकल जाना संभव न हो तो वहां उसपर बराबर मोतीका मसाला चढ़ता जाता है। यह समय पाकर कड़ा हो जाता है। यह अर्ध पारदर्शक होता है और इसमें झलक होती है। यदि यह सीपीकी हड्डीके पास होता है तो मोती बढ़ते-बढ़ते हड्डी पकड़ लेता है। इस प्रकार हड्डीमें लगा हुआ मोती अच्छे दाममें नहीं बिकता क्योंकि उसका आकार गोल नहीं होता। परन्तु यदि असली गांठ सीपीके मांसमें करीब बीचमें पड़े तो मोती प्रतिवर्ष बढ़ता ही जाता है और समय पाकर बहुमूल्य बड़ा-सा गोल मोती होता है। तो भी स्वाभाविक मोतियोंमें बिरले ही मोती सीपीके मांसके ठीक बीचमें होते हैं। जो मोती हड्डीसे छू नहीं भी जाते वे किसी नसके पास पड़नेसे नसके खिंचाव-तनावसे टेढ़े-मेढ़े हो जाते हैं। यही कारण है कि सभी स्वाभाविक मोती बहुमूल्य नहीं होते।

कृत्रिम मोती पैदा करनेवाले हीरको सावधानीसे ऐसे स्थानमें रखते हैं जहां उसपर मोतीका मसाला चारों ओर से बराबर चढ़ सके हड्डीसे छू जानेका भय न रहे, नसोंसे विकृत हो जानेकी संभावना न रहे और जहाँसे मोतीके बाहर निकल जानेका डर न रहे। पढ़नेमें यह बहुत आसान मालूम पड़ता है, परन्तु इसका पता कि हीर कहाँ रक्खा जाय और वहाँ कैसे पहुंचाया जाय वर्षों निरन्तर प्रयोग करते रहनेपर लगा है।

बोस्टविकके प्रयोग

श्रीबोस्टविकने अपनी प्रयोगशालाके आयोवा नदीके किनारे बनवाया था। फर्श सीमेंटका था। इसमें कई एक नहरें कटी थीं। प्रत्येक करीब ८ इञ्च गहरी थी। कम्पसे इन नहरोंमें बराबर पानी धीरे-धीरे बहता रक्खा जीता था। पेंदीमें बालू, कीचड़, मिट्टी, रोड़े, सेवार इत्यादि सीपियों और घोंघोंके आवश्यकतानुसार रक्खे जाते थे। सीमेंटकी एक मेज़ भी बनी थी जिसपर तीन इञ्च गहरा बहता हुआ पानी बराबर रहता था। इसीपर चीड़फाड़ किया जाता था।

प्राकृतिक दशामें बने मोती और इन पालतू सीपियों में जबरदस्ती बनाये गये मोतीमें एक अन्तर यह होता है कि स्वाभाविक मोतीके केन्द्रमें बालूका कण, या हड्डीका टुकड़ा या जरा सा कीचड़ रह सकता है, जिसपर मोती बनना प्रारम्भ हुआ हो, परन्तु पालतू सीपियोंके मांसमें नन्हा-सा असली मोती घुसा देनेसे ऐसे मोती बनते हैं जो भीतरसे बाहरतक मोतीके ही मसालेके बने होते हैं। उनके भीतर कोई रद्दी माल नहीं रहता।

बोस्टविकका कहना है कि मोतियोंका उगाना बहुत कठिन नहीं है, केवल सीपियों या घोंघोंके भीतर ठीक जगह में हीरे रखनेकी क्रिया सूक्ष्म होनेके कारण देरमें आती है। प्रत्येक जातिकी सीपी या घोंघोंकी शरीर-रचना भिन्न होती है, इसलिये प्रत्येक जातिके लिये नया प्रयोग करना पड़ता है। वैज्ञानिक प्रकृतिके मनुष्योंको इन कठिनाइयोंपर विजय पानेमें बड़ा मजा मिलता है। मोतियोंके पैदा करनेके लिये शल्यशास्त्र जर्राहीकी एक विशेष सूक्ष्म क्रिया करनी पड़ती है और उसके लिये विशेष रूपसे यन्त्र बन-

वाने पड़ते हैं। यदि हीर उचित स्थानमें रक्खा जायगा तो अच्छा मोती अवश्य बनेगा जिसका आकार बड़ा होगा और जो पूर्णतया गोल होगा।

सीपियोंमें मोती पैदा करनेके बाद बोस्टविकने शंखोंमें मोती उत्पन्न करनेमें सफलता पायी। फिर कैलिफोरनिया से उनकी बुलाहट आयी और वहाँ की एक विशेष जातिकी सीपीपर वे वर्षों प्रयोग करते रहे। अभी-अभी उनको सफलता मिली है। बड़े और अत्यन्त सुन्दर मोती इस जाति की सीपीमें उगाये जा सकते हैं और ऐसा प्रतीत होता है भविष्यमें इच्छानुसार बड़े आकार और आबके मोती उत्पन्न किये जा सकेंगे।

परन्तु रोजगारके लिये मोती पैदा करनेका काम बोस्टविकने दूसरोंपर छोड़ दिया है। वे तो इन दिनों एक विशेष जातिके चांदीके समान चमकीले सफेद बड़े घोंघोंपर मुग्ध हो गये हैं। हो सकता है कि इस जातिमें मोती न पैदा हो सके परन्तु बोस्टविक इसी धुनमें हैं कि सच्ची बातका पता लगाया जाय।

और हम ?

भारतवर्षमें भी बड़े-बड़े जीव-विज्ञानी हैं और शिल्पशास्त्री भी। क्या यहां कोई सीपी शंख या घोंघा पालकर, और प्रयोग करके मोती पैदा करनेके भेदका पता न लगायेगा? क्या नहीं है कोई माईका लाल जो इस क्षेत्रमें अग्रसर होकर भारत-माताकी गोद मोतियोंसे भर दे?

तैरनेकी कला और व्यायाम

[स्व० कालिदासजी माणिक]

(१)

१—'लड़काईको पैरिबो आगे होत सहाय"

याम सम्बन्धी जितने खेल-कूद हैं उनमें तैरना सबसे उपयोगी है। तैरनेसे व्यायाम भी हो जाता है और शरीर भी प्रफुल्लित रहता है। बाल-वृद्ध सभी इस खेलमें योग ले सकते हैं। सभ्य देशोंमें तैरना भी स्कूल के बालक और बालिकाओंको सिखलाया जाता है उनकी शिक्षाका यह भी एक अंग है।

पानीमें उतराना एक स्वाभाविक नियम है। संसारमें जितने जन्तु हैं सभी पानीपर उतराते हैं अन्तर केवल इतना ही होता है कि मनुष्यका सिर भारी होनेके कारण पानीमें डूबा रहता है, और जन्तुओंका सिर हलका होनेके कारण ऊपर निकला रहता है। कुत्ता, बैल, गदहा इत्यादि स्वयम् तैरते हैं। उनको कोई तैरना नहीं सिखलाता। मनुष्य भी यदि घबराय न तो तैर सकता है, परन्तु वह पानीमें पड़ते ही भयभीत हो जाता है, और छटपटाकर डूब जाता है। इस विषयमें पशु हमसे अच्छे होते हैं, क्योंकि ज्यों ही पशु पानीमें पड़ता है, उसका शरीर पीपेकी भांति काम देता है और उसके पैर पानीके ऊपर नहीं निकल सकते। तटपर पहुंचनेके लिये वह अपने हाथ-पैर पानीके भीतर ही भीतर चलाता है। गडही या तालाबमें तैरनेवाले तैराक नहीं कहाते। मनुष्य इसमें पशुओंसे भी गये बीते हैं। डरके मारे वह अपने हाथ-पाँव पानीके ऊपर निकालता है। जिससे उसका शरीर और भी डूबने लगता है। पशु अपने हाथ-पांव पानीके ऊपर स्वभावतः नहीं निकाल सकते हैं इसलिये उतराते हैं। मृत्युके भयसे मनुष्य चीख मारता है इससे जो सांस रहती है वह भी निकल जाती है। जब वह फिर सांस लेता है तो हवाकी जगह पानी फेंफड़ेमें भर जाता है। इस तरहसे खाली पेट और फेंफड़ेमें पानी भर जाता है और मनुष्य दम घुटकर मर जाता है। प्रकृतिके नियमके अनुसार मनुष्य भी पशुकी भांति उतराता है परन्तु वह मिथ्या भय और घबराहटसे अपने पैरमें कुल्हाड़ी मारता है।

तैरना कई प्रकारका होता है। कोई खड़े-खड़े तैरता है। कोई चित्त, कोई पट, कोई पलथी मारकर तैरता है। कई लोग पानीमें भांति-भांतिके कला-कौशल दिखाते हैं।

तैरना तभी सार्थक है जब वह दूसरोंकी जान बचाने अथवा अपने ही प्राण बचानेमें काम आवे। अनेक तरहका तैरना काम नहीं देता। हां, मनोरंजनके लिये कई प्रकारका तैरना जानना अच्छा है, पर इस बातका अभ्यास अवश्य करना चाहिये कि डूबते हुए मनुष्यको तुम किस तरह बचा सकते हो। पहली बात तैरना सीखनेके समय साहसी होना चाहिये, और इस बातपर विश्वास रखना चाहिये. कि जब अनेकों मनुष्य सुगमतासे तैरना सीख जाते हैं तो हम भी सीख जायंगे।

जहाँतक हो सके किसी यन्त्रद्वारा जैसे तुम्बा, कार्क (cork) बाय (Buoy) मशक इत्यादि को काममें न लावे। किसी तैरनेवालेके पास जाकर सीखना चाहिये। इस विद्याके सिखलानेवाले थोड़ा खर्च करनेपर मिल जाते हैं।

२–तैरनेकी शिक्षा और यन्त्र

कई शिक्षक तैरना सिखलाते समय किसी प्रकारके यंत्र (जैसे तुम्बा, water wings, बेल्ट इत्यादि) पसन्द नहीं करते। वे कहते हैं कि इन यन्त्रोंसे चालमें रुकावट पड़ती है। परन्तु अनेक तजुर्बेकार शिक्षकोंकी राय है कि शुरूमें किसी यन्त्रके सहारे तैरना अच्छा ही नहीं है बल्कि किसी किसी के लिये तो यन्त्रका लगाना परम आवश्यक है।

वाटर विंग्स (water wings) मैं नव-शिक्षितोंके लिये पसन्द नहीं करता क्योंकि इसमें हवा एक तो देरतक नहीं ठहरती और दूसरे न मालूम किस समय धोखा दे दे। लड़का जब हाथ ऊपर फेंकता है तो मुमकिन है कि उस समय विंग् नीचेसे खसक जायं। ऐसी हालतमें लड़केका सर्वनाश हो जायगा। कभी कभी समाचार-पत्रोंमें पढ़ा गया है कि He lost his wings and was drowned" अर्थात् उसने अपना विंग् खो दिया और वह डूब गया फिर इसमें एक दिक्कत और भी होती है। जब कभी एक नये बालकको विङ्ग दिया जाता है तो अधिक समय वह उनके फूंकनेमें लगा देता है। बालकको कभी विश्वास नहीं होता कि उसमें हवा भरी हुई है।

हिन्दुस्तानी लड़के विङ्गके बजाय लौकी या तुम्बा काम में लाते हैं। इसमें एक कठिनाई यह पड़ती है कि बालक पानीसे ऊपर उठा रहता है और हाथ पैर फेंकनेमें अड़चन पड़ती है।

मेरी समझमें कार्क बेल्ट या आजकलकी नयी ईजाद रूई भरा हुआ बेल्ट नवशिक्षितोंके लिये अति उत्तम होता है। इन नवीन प्रकारके बेल्टोंमें न हवा निकलने और न टूटने फूटनेका भय रहता है और यह यन्त्र कमरमें खूब कसकर बांध दिया जाता है। इसमें बड़ा गुण यह रहता है कि चाहे तुम उलट भी जाओ तो कुछ हर्ज नहीं, इससे तुम बराबर पानी पर उतराते रहोगे।

इन सब यन्त्रोंको छोड़कर एक बांसकी लम्बी लकड़ी करीब ६ फुट ऊंची और इंच सवा इञ्च मोटी शिक्षकको हर समय अपने पास रखनी चाहिये। इसके सिरेपर दस बारह हाथ लम्बी मजबूत रस्सी बंधी रहनी चाहिये जो नौसिखुएकी कमरमें पहिनायी हो इससे जलमें छोड़नेसे उसे सहारा रहता है और कोई खतरा भी नहीं होता।

जब कभी तुम्हें पानीके बाहर निकलकर सुस्तानेका अवसर मिले तो पहिले तुम अपने नथनोंको खूब साफकर लो। नथुने साफ न रहने से कभी कभी व्याकुलता बहुत बढ़ जाती है और परिणाम यह होता है कि लोग घबराकर बहुत पानी पी जाते हैं।

शिक्षकोंको चाहिये कि बीच बीचमें शिष्योंको चित्र खींचकर अथवा प्रश्नोत्तरद्वारा भी बतलाया करें कि अमुक चालसे कितना लाभ अथवा हानि है। जैसे बालकोंको यह सिखलाना है कि खड़ेसे आड़ा तैरना आसान है तो उन्हें चाहिये कि एक लकड़ीका तख्ता लेकर उसके सिरपर कुछ बान्धकर पानीमें इस तरह छोड़ दे कि वह तख्ता खड़ा रहे और तब उसको एक तरफ खींचे। तख्ता सीधा खड़ा होने के कारण जल्दीसे नहीं खींचा जा सकेगा। फिर उसी तख्ते को उसका बोझ खोलकर (Horizontal) आड़ा करके खींचे। अब यह बहुत जल्द खिंच जायगा। सारांश यह कि तख्ता खड़ा रखनेसे आगे बढ़नेमें रुकावट पड़ती थी परन्तु तख्तेको आड़ा कर देनेपर पानीकी रुकावट जाती रही मतलब यह कि अगर तुम भी पानीपर हारीज़नटल (आगे रहोगे) तो तुम्हें आगे बढ़नेमें विशेष रुकावट न होगी। हां, यदि पैर नीचे रक्खोगे तो उसी तख्तेकी तरह तुम्हें भी आगे बढ़नेमें बड़ा जोर लगाना पड़ेगा। इस तरह

समझानेसे लड़कोंको अच्छी तरह समझमें आ जाता है और फिर वह अपने पैरोंको कभी नीचे नहीं रक्खेंगे।

नव शिक्षितोंको एक बातका और भी उपदेश देना चाहिये कि बहुत देरतक पानीसे बाहर निकलकर न बैठे रहें। कपड़ा खोलते ही पानीमें घुस जाना चाहिये और सिवाय कूदने और प्लन्ज करनेके समयको छोड़कर बाहर नहीं निकलना चाहिये। नये खिलाड़ी भींजे हुए कपड़ोंमें किनारेपर बैठना और सिसिकना ज्यादा पसन्द करते हैं। बड़े-बड़े लड़के यदि ऐसा करें तो ज्यादा हरज नहीं होता परन्तु छोटे-छोटे बालकोंके लिये ऐसा करना बड़ी भूल है।

शिक्षकोंको चाहिये कि लड़कोंको थोड़े प्रयत्नपर शाबासी देते रहें। ऐसा करनेसे उनका उत्साह बढ़ता है। कोई कोई उस्ताद लड़कोंको ज़रा-जरा भूलपर झिड़कते हैं हमेशा उनको कोसा करते हैं— "अरे तू बड़ा मूर्ख है तुझे कभी तैरना नहीं आवेगा" ऐसे दुर्वचनों से नये बालक और घबड़ा जाते हैं और तैरनेसे जी चुराते हैं। कभी भूलकर भी नव शिक्षितोंको पानीमें ढकेलना नहीं चाहिये। तैरना तो लड़का स्वयम् चाहता है उसको उसके माफिक सबक देना चाहिये जल्दी करनेसे काम बिगड़ जाता है। शिक्षकों को ऐसा प्रयत्न करना चाहिये कि बालककी रुचि तैरनेकी ओर बहुत बढ़ जाय बस फिर क्या आधी बाजी मार ली।

निम्नलिखित नियमोंपर पूरा ध्यान दो —

(१) सिर को केवल इतना पीछे रखो कि पानी तुम्हारे ठोड़ीतक रहे। (२) जहांतक हो सके तैरते समय तुम्हारा बदन पानीकी सतहसे ऊपर न निकला रहे, बदन पानीमें डूबे रहनेसे जोर भी कम लगाना पड़ता है और फुर्तीके साथ तैरना भी होता है। तैरते वक्त कमर और कन्धोंको हिलाना नहीं चाहिये।

(३) हाथ जब सामने फेंको उसी समय सांस बाहर निकाल दो। जिस समय हाथ पीछे आवे उस समय सांस लो। ऐसा करनेसे सीना बढ़ता है। जहांतक हो सके मुंह बन्द रक्खो, केवल नथनेद्वारा सांस लो।

३–छातीके बल तैरना

किसी अच्छे घाटपर जहां कि चट्टान दूर तक हो, पानी में उतरे और इतनी दूर पानीमें जाय जहां कि पानी छाती तक हो। अब मुंह घाटकी ओर कर लो। हाथोंको छातीके पास इस तरह लाओ कि मानो हाथ जोड़ रहें हो। अंगुलियां और अंगूठे आपसमें मिले रहें हथेली नीचेकी ओर हो और हथेलियोंको इस तरह बना लो कि चम्मच हो जावे ऐसा करनेसे तुम पानीको अच्छी तरह काट सकोगे। ऊपर के बाजू और केहुनी पसलीकी हड्डियोंसे मिले रहें। अब दोनों हाथोंको पानीके भीतर ही भीतर सीधे आगे करो कि वह बदनसे समकोन बनावे, उंगलियां और हथेलियों को पहिलेकी तरह सटा रक्खो। कलाईयोंको घुमाकर अंगूठी के नीचेकी ओर करो कि छोटी उंगली ऊपरकी ओर हो जाय, हथेलियोंको चम्मचकी तरह रखकर हाथोंको कन्धेकी लाइनमें जाने दो जबतक कि दोनों हाथ कन्धेतक न पहुँच जांय। केहुनी झुकने न पावे। इसके बाद हाथोंको मुलायम करके फिर पहिलेकी ढंगपर आ जावो।

इस अभ्यासको पहिले तो गिनतीके साथ करना चाहिये फिर इसके बाद समयके साथ करना चाहिये (१) अपने हाथोंको छातीके पास लाओ, उंगलियां और अंगूठे सब सटे रहें। (२) हाथोंको सामने पूरा फैला दो पर हाथ ज़रा पानीके अन्दर रहे। (३) कलाइयोंको बाहरकी ओर घुमाते हुए कन्धेकी सीध में सामनेसे चक्कर देते हुए लाओ।

जब इन तीनों बातोंको गिनतीके साथ अच्छी तरह कर लेवे तो सीखनेवालेको चाहिये कि अपने आप फुर्तीसे तैर लेवे, और धीरे धीरे इतनी जल्दी हाथ फेंके कि जितनी देरमें एक कहनेमें लगे उतनी ही देरमें तीनों चाल खतम हो जाय। तैरते समय मुंह अच्छी तरह बन्द रखना चाहिये।

तैरते समय सांस लेनेके नियमपर भी ध्यान रखना चाहिये, क्योंकि बहुधा नवशिक्षित आगे हाथ फेंकते समय सांस लेते हैं और इसका परिणाम यह होता है कि बहुत सा पानी पी जाते हैं। सांस उस समय लेना चाहिये जब कि हाथ कन्धेसे आगेकी तरफ बढ़ाते हैं। हाथोंको पहिले धीरे धीरे मुस्तैदीके साथ फेंकना चाहिये (एक मिनटमें बीस बारसे ज्यादा न हो) सिखलानेवालेको चाहिये कि सीखनेवालेकी कमरमें धोती लंगोट या कोई मजबूत रस्सी अच्छी तरहसे बांधे और गांठकी बंधान भी मजबूत हो। कमर के बीचमें नाभीके पास एक दूसरी रस्सीको इस तरह उठाये रहे कि सीखनेवालेको भी आराम मिले। हाथ पैर

आसानीसे फेंक सके और डूबनेसे बचा रहे। सीखनेवाले को चाहिये कि अपने सिरको खूब पीछे हटाये रहे और कमरको धनुषाकार रक्खे ऐसा करनेसे छातीमें हवा भरी रहती है और उसको उतारनेमें सुभीता होता है। अपने पैरोंको भी फेंकते रहो। इस अभ्यासको बार बार करनेसे सीखनेवालेकी हिम्मत बढ़ जाती है और वह बहुत जल्द तैरना सीख जाता है।

४–उतराना

चित उतराना अवश्य सीखना चाहिये। इससे बड़ा सहारा मिलता है। जब मनुष्य तैरते तैरते थक जाता है उस समय चित उतरानेसे थकावट कम हो जाती है और सांस लेनेमें भी सुभीता होता है। नवशिक्षित इस प्रकार पीठके बल तैरनेसे बहुत घबराते हैं क्योंकि इसमें सिरको अच्छी तरह झुकाना पड़ता है। ऐसा करनेमें पानी कानों में घुसता है सिर ऊपर रखनेसे बैलेन्स (Balance) ठीक नहीं रहता कमर झुक जाती है और पैर भी कुछ ऊपर निकल आते हैं। हाथोंको तुम किसी ढंगसे रख सकते हो. परन्तु शुरूमें हाथोंको बगलमें रखना अच्छा होता है। हथेली नीचेकी ओर रहे और चम्मचकी तरह बनकर पानी डूबी रहे। पहिले पैर डूबेंगे पर जरा अभ्यास हो जानेसे बराबर ऊपर उठे रहेंगे। पैरोंके पंजोंको ज़रा ज़रा हिलाते रहनेसे पैर नीचे कभी नहीं डूबेंगे। इस ढंगसे तैरनेमें खास बात ये है कि छातीको खूब उभाड़े रखना चाहिये। कमर को खाली या पिचकी रक्खो और ठोढ़ीको ऊपर निकाले रहना चाहिये। ऐसा करनेसे सिरका हिस्सा पानीमें रहता है तथा नाक और मुंह पानीके ऊपर निकले रहते हैं इस प्रकार तैरनेसे तुम सांस खूब अच्छी तरहसे ले सकोगे। जब ज़रा ज़रा बैलेन्स होने लगे तो तुम हाथोंको किसी तरह रख सकते हो, चाहे बगलमें चाहे पीछे चाहे हाथोंको बांधकर सिरके नीचे रक्खो। यह अन्तिम ढंग बहुत अच्छा होता है क्योंकि हाथोंको सिरके नीचे रखनेसे छाती खूब फैल जाती है, और सांस लेनेमें भी सुभीता होता है। हजारों लोगोंकी जान इस सरल ढंगपर तैरनेसे बच गयी है। पहिले-पहल पैर डूब जाते हैं पर पैर ज़रा ज़रा हिलनेसे नहीं डूबते। हाथोंको भी पानीके भीतर बगलमें हिलाता रहे। जो लोग कि चित्त उतराना नहीं जानते उनको अच्छा तैरनेवाला नहीं कह सकते। तैरना जानना केवल इतना ही नहीं है कि दस पांच हाथ पानीमें बढ़ गये। वास्तवमें वही तैरना जानता है जो कि डूबते हुए मनुष्यको निकाल लावे और आफत बिपत पड़नेपर अपने आपको भी बचा लेवे। नदीमें तैरते समय कभी-कभी शरीरमें ऐंठनकी बीमारी हो जाती है। उस समय चित्त तैरनेसे तुम अपनी जान बचा सकते हो।

अभ्यास हो जानेपर तुम पलथी मारकर और हाथोंको छातीके ऊपर बांधकर या हाथ जोड़कर भी तैर सकते हो।

५–पानीके भीतर तैरना

पानीके भीतर तैरनेका भी अभ्यास करना चाहिये। साइड स्ट्रोक (Side stroke) यानी तिरछे तैरनेके पहिले पानीके भीतर-भीतर तैरना सीखना अच्छा है। इस अभ्यासमें दमको खूब बढ़ाना पड़ता है, सांस खींच कर डुबकी मारना चाहिये, पर बहुत नीचे न जाना चाहिये। दो या तीन फिटकी गहराई काफी है। हाथ-पैरकी चाल बिलकुल वैसी ही रखते हैं जैसे कि पानीकी सतहपर तैरते समय रखते हैं। सिर्फ सांस रोककर इसमें तैरना पड़ता है। पानी के भीतर ही भीतर तैरनेमें एक बड़ी कठिनाई यह होती है कि पानी हमेशा ऊपर फेंकता रहता है, जिसका दम ज्यादा होगा वही पानीके भीतर देरतक रह सकता है, पर साधारण लोग चालीस सेकेन्डतक रह सकते हैं। पानीके भीतर लोग सतहके ऊपरकी बनिस्बत ज्यादा तेज़ीसे तैर सकते हैं। पानीके भीतर कभी आंख खोलकर भी तैरना चाहिये। पानी में डूबनेके पहिले ही आंख खोलकर डूबना चाहिये क्योंकि पानीमें डूबनेके बाद आंख खोलना कठिन होता है।

६–कपड़ा पहिनकर तैरना

कभी कभी कपड़ा पहिनकर तैरना चाहिये, क्योंकि कभी ऐसे अवसरमें पड़ जाय जब कि कपड़ातक न उतार सके तो उसके साथ ही पानीमें कूद पड़े। परन्तु अभ्यास करते समय सब कपड़े एक साथ ही पहनकर पानीमें न उतरे। पहिले सिर्फ पाजामा या पैन्ट पहनकर अभ्यास करना चाहिये। बाद इसके वेस्टकोट कमीज फिर कोट या अंगा पहनकर। मोजा या जूता पहिले नहीं रखना चाहिये। जब अभ्यास अच्छी तरह हो जावे तो मोजा और जूता पहिनकर भी कोशिश करनी चाहिये। पहिले तुम पर लोग हंसेंगे कि

यह देखो एक नये तैराक आए और स्वयम् तुमको भी अनकुस मालूम पड़ेगा पर धीरे धीरे तुम आसानीसे डूबते हुए मनुष्यको बचा सकते हो इस कार्यके लिये कुछ पुराने कपड़े काफी होंगे।

५-डुबकी मारना और कूदना

(Diving & Jumping)

तैरनेवालोंको डुबकी लगाना भी जानना परम आवश्यक है। इसके कई ढंग हैं। परन्तु पहिले पैरोंके ही बल डुबकी मारना चाहिये। कई अच्छे तैरनेवाले सिरके बल गोता लगाना अच्छा समझते हैं परन्तु नवशिक्षितोंको सिर के बल कूदना ही उचित नहीं है। गोता लगानेमें बदनको खूब कड़ा रखना चाहिये। हाथ बदनसे चिपका रहे। बदन और हाथ पैरको एक सीधमें रखना चाहिये। अच्छे तैरनेवाले बुर्ज या किसी ऊंचाईप से कूदते हैं। कूदनेके पहिले इस बातकी जांच परताल अच्छी तरह कर लेनी चाहिये कि पानी खूब गहरा है या नहीं, नहीं तो बड़ी चोट लगेगी। कई अच्छे तैराकोंकी जान इसी कारण चली गयी है कि वे छिछले पानीमें कूद पड़े और उनके हाथ पैर टूट गये। हिन्दोस्तानी लोग अक्सर सीधा कूदते हैं। इस रीतिसे कूदनेमें चोट बहुत कम लगती है। हां, कूदते समय पेटके बल न गिरे नहीं तो पेटमें बड़ी सख्त चोट लगेगी। गट्ठर बांधकर कूदना अच्छा होता है। इसमें पैरोंके घुटनेको मोड़ लेते हैं और हाथसे पैरोको इस तरह दबा लेते हैं कि आदमी पूरा गट्ठर सा मालूम पड़ता है। कूदनेमें लंगोटका पहिनना बहुत जरूरी है।

हत्याका भेद गोलीने बता दिया

जासूसीकी सच्ची कहानियाँ

[मूल लेखक-श्रीएडविन डबल्यू० टील]

(१)

ने कई सप्ताह तक उन आश्चर्यजनक विशेषज्ञोंका कार्य अध्ययन किया है जो बन्दूकों और गोलियोंसे उनके पेटमें छिपे रहस्यका उद्घाटन करते हैं। इन विशेषज्ञोंकी प्रयोगशालाओंमें जाकर मैंने देखा कि किस प्रकार प्रत्येक तमंचा और बन्दूक अपनी छाप अपनी गोलीपर लगा देता है। उनके यन्त्रोंद्वारा मैंने स्वयं उन सूक्ष्म खरोंचोंको देखा है जिससे हत्यारे न्यायके पंजेसे बच नहीं सकते।

इन विशेषज्ञोंकी गोलीवाली कोठरीमें मुझे अनेक विचित्र शस्त्र देखनेमें आये ऐसे तमंचे जो देखनेमें फौंटेनपेन जान पड़ते थे चाकूके आकारके रिवॉलवर और नली काटकर छोटे किये गये बन्दूक। बार बार पिस्तौल छूटनेकी आवाज भी आ रही थी। जाकर देखा तो पता चला कि गोलियां रद्दी की टोकरीमें दागी जा रही हैं। मैंने अपने हाथोंमें उन गोलियोंको भी उठाकर देखा जो पिछले दस वर्षोंके अत्यन्त रोमांचकारी हत्याओंमें लोगोंके प्राण ले लिये थे।

नन्हे-नन्हे निशानोंसे बड़े-बड़े पते

ऐसी ही प्रयोगशालाओंका विशेषज्ञ गोलीपर पड़े अति सूक्ष्म खरोंचोंसे ऐसे भेदोंका पता पाता है जिससे बड़ी बड़ी हत्याओंकी गुत्थी सुलझ जाती है।

मुझे ज्ञात हुआ कि मुर्चेके एक कण, धातुके अति सूक्ष्म टुकड़े, शीशेकी गोलीपर की खरोंचें जिनकी गहराई शायद इञ्चके हजारवें भागसे भी कम होगी, पीतलमें पड़े गड्ढे जो इतने सूक्ष्म हों कि आंखसे दिखलाई भी न पड़ें, हाथकी त्वचामें घुसे बारूदके नन्हेसे नन्हें कण—ऐसी ही सूक्ष्म बातोंपर भयानक खूनियोंके छूटने अथवा फांसी पानेका निर्णय निर्भर रहता है।

नये सालवाली हत्या

देखिये न, 'नये वर्षवाली हत्या' में किस प्रकार जमीन में गड़ी हुई पुरानी गोलीसे उस हत्यारेका पता चला जिसने

अपने सब चिह्नोंको मिटा डाला था, यहांतक कि अपने तमंचेका भी नाश कर डाला था।

रातके ग्यारह बजेके थोड़े ही देर बाद, जब बाहर गहरा कुहासा पड़ रहा था, अमरीकाके एक शहरमें एक नौकर सोने ही जा रहा था जब उसे ऊपर अपने मालिककी कोठरी में शोर-गुलकी आवाज सुनाई पड़ी। तुरन्त ही तमंचा छूटनेकी आवाज आयी और तब कोई भागता हुआ जान पड़ा। दौड़ता हुआ नौकर ऊपर पहुंचा तो उसने देखा कि मालिक फर्शपर औंधा पड़ा है और बिलकुल मर गया है। दरवाजे की तरफ नौकर लपका तो देखा कि भागता हुआ हत्यारा देखते ही देखते कुहरेमें विलीन हो गया।

शुबहेदार पकड़ा गया

अट्ठारह घन्टे बाद जासूसोंने एक व्यक्तिको पकड़ा जो दक्षिण जानेके लिये टिकट खरीद चुका था और गाड़ीमें बैठने वाला ही था। इतना निश्चय था कि इस व्यक्ति और मरे हुए पुरुषमें पुरानी दुश्मनी थी और इसके पहले एक डाक्टर के घरसे तमंचा चुरानेके अभियोगमें उसपर मुकद्दमा भी चल चुका था। परन्तु उस समय तमंचा उसके पाससे बरामद नहीं हुआ था। पुलिसको यह सन्देह हुआ कि इसी तमंचेसे उसने उस व्यक्तिकी जान ली होगी। परन्तु जब तक वह तमंचा न मिल जाय या कम-से-कम जबतक उस तमंचेसे छोड़ी गयी कोई गोली न मिल जाय, तब तक मृतक के शरीरसे निकाली गयी गोलीके खरोंचोंका मिलान किससे की जाती और कैसे सिद्ध होता कि उसी व्यक्तिने गोली चलायी थी?

जब मामला यहांतक पहुंच चुका था तब एक ऐसी अनहोनी बात हुई जो कभी-कभी जासूसोंकी सहायता कर जाती है। इससे मिलान करना संभव हो गया। जिस डाक्टरका तमंचा चोरी गया था उसे स्मरण हो आया कि नूतन वर्षकी खुशियालीमें उसने एक गोली अपने बरामदेमें से सामनेके बागमें दागी थी!

गड़ी गोलीने उसे फांसी दिलायी

इस सूचनाके पुलिसतक पहुँचने एक घन्टेके भीतर ही पड़ोसियोंको यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि बहुतसे पुलिसवाले फावड़ा और चलनी लिये चले आ रहे हैं। मिट्टीको विशेष सावधानीसे चालते-चालते उनको वह बहुमूल्य गोली मिल ही गयी और उसे वे इतने हर्ष और इतनी सावधानीसे उठा ले गये मानो वह सोनेकी ईंट रही हो। जाकर उसे उन्होंने विशेषज्ञकी प्रयोगशालामें जमा किया।

विशेषज्ञने बड़ी सावधानीसे उसपरसे मिट्टीकी तह छुड़ायी और अपने सूक्ष्मदर्शक यन्त्रसे उसके खरोंचोंकी जांच की। फिर उनकी तुलना खूनी गोलीके खरोंचोंसे की। ये खरोंच पूर्णतया मिलते थे। यद्यपि हत्यारेने खूनी तमंचे को कारखानेकी भट्ठीमें फेंककर जला डाला था तो भी महीनोंसे मिट्टीमें दबी नूतन वर्षकी गोलीने उसकी सजा करा ही दी।

फ्रेडबर्कका मुकद्दमा

साधारणतया विशेषज्ञको अभियुक्तका शस्त्र मिल जाता है। इससे वह तुलनाके लिये गोलियां दाग लेता है। गहरी टोकरियोंमें रुई भर दी जाती है। इन्हींमें गोली चलायी जाती है। दस पन्द्रह इञ्च भीतर घुसकर गोलियां रुक जाती हैं और उनपर अन्य किसी प्रकारकी चोट नहीं लगने पाती।

इस प्रकारकी जासूसीमें फ्रेडबर्कका मुकद्दमा अत्यन्त प्रसिद्ध है।

एक साथ सात आदमी मारे गये

१४ फरवरी १९२९को खुफिया शराब बेचनेवालोंके एक संघके सात सदस्योंको प्रतिद्वन्द्वी संघके सदस्योंने पकड़कर शिकागो शहरके एक मोटरखानेमें दीवालकी ओर मुंह करके खड़ा कर दिया और उनपर गोली चलाकर सबके शरीरको चलनी कर डाला। पुलिसने मरे व्यक्तियोंके शरीर से निकले और फर्शपर बिखरे गोलियोंको सावधानीसे एकत्र करके करनल गॉडर्डके पास भेज दिया। साथ ही पुलिसको जिन-जिनपर शक था सबकी बन्दूकें भी भेज दीं। गॉडर्डने इन शस्त्रोंसे छोड़ी गयी गोलियोंसे पहलेवाली गोलियोंकी तुलना करके यही बयान दिया कि इनमेंसे किसी भी बन्दूकसे उस हत्यामें गोली नहीं चलायी गयी थी।

फ्रेडबर्क कैसे पकड़ा गया?

दस महीने बीत गये। तब एक दिन सेंट जोजेफ शहर में दो मोटरें लड़ गयीं। आपसमें खूब झौं-झौं हुई। एक पुलिसवाला भी वहां पहुंच गया। उसने कहा कि चलो दोनों जने थानेपर चलकर अपना निपटारा कर लो। इसपर

एकने अपनी जेबसे ४५ बोरका तमंचा निकालकर पुलिस वालेको मार डाला, उधरसे जाती हुई एक मोटरकी पावदानपर कूदकर चढ़ गया, ड्राइवरकी खोपड़ीपर तमंचा ताने रहा और इस प्रकार भागकर निकल गया।

जो मोटर वह छोड़ गया उसकी तलाशी लेनेपर ऐसे कागज पत्र निकले जिससे पता चला कि अभियुक्तका नाम फ्रेडबर्क था। उसके घरकी तलाशी लेनेपर एक ऐसी आलमारी मिली जो पूरा शस्त्रागार था। इसमें तरह-तरहके मशीनगन भरे रक्खे थे। करनल गॉडर्डने अपनी प्रयोगशाला में उनकी जाँच की। इनमेंसे एकसे गोलियोंपर वैसा ही खरोंच पड़ता था जैसा मोटरखानेकी हत्याकांडमें पड़ा था। इससे सिद्ध हो गया था कि फ्रेडबर्कने ही शिकागोमें उन सात व्यक्तियोंकी हत्या की थी।

कई बन्दूकोंमेंसे एकको चुनकर कोई कैसे कह सकता है कि इसीसे छोड़ी गयी गोलीने खून किया है? अपनी प्रयोगशालामें करनल गॉडर्डने मुझको दिखलाया कि ऊपर वाली हत्यामें उन्होंने कैसे पहचान की थी। उन्होंने मुझे गोलियां दिखलायीं। एकपर उन्होंने 'एफ' नम्बर डाल रक्खा था. दूसरे पर 'टी'। पहली गोली खूनी गोली थी, जो मृत व्यक्तिके शरीरसे निकाली गयी थी। दूसरी जांचके लिये दागी गयी थी।

ये गोलियां लम्बी थीं और प्रत्येकपर लम्बी-लम्बी और कुछ तिरछी धारियां थीं। डॉडर्डने मुझे बतलाया कि बन्दूक की नलीको यदि सूक्ष्मदर्शकसे देखा जाय तो वह पूर्णतया चिकनी न दिखलाई पड़ेगी। उसमें कई एक उभरे हुए स्थान और खरोंच दोनों रह ही जाते हैं। इनके अतिरिक्त राइफलोंमें तो सर्पिल धारियां जानबूझकर बनायी जाती हैं जिसमें गोली नाचने लगे और इस प्रकार बहुत दूर पहुंचने पर बेड़ी न हो जाय। सौभाग्यवश प्रत्येक बन्दूक या तमंचे से कुछ भिन्न ही खरोंच पड़ता है। कुछ खरोंच गहरे, कुछ छिछले, पड़ते हैं। उनके बीचकी दूरियां बराबर नहीं रहतीं। प्रत्येक गोलीपर दो चार स्पष्ट खरोंच मिल ही जाते हैं।

खरोंच बाज बन्दूकसे दाहिनी ओर घूमते हुए पड़ते हैं, बाजसे बायीं ओर घूमते हुए। फिर, खरोंच न्यूनाधिक चक्करदार होते हैं।

इस प्रकार, यह देखकर कि खरोंच कितना चक्करदार है, दाहना है या बायाँ उनकी गिनती कितनी है, इत्यादि, विशेषज्ञ तुरन्त बतला सकता है कि किस कारखानेकी बनी बन्दूकसे कोई गोली छोड़ी गयी है। फिर अपने सूक्ष्मदर्शक यन्त्रसे खरोंचोंकी तुलना उन बन्दूकोंसे छोड़ी गोलियोंसे करके यह भी बतला सकता है कि इन बन्दूकोंमेंसे किस विशेष बन्दूकसे खूनी गोली छोड़ी गयी थी।

करनल गॉडर्डने अपने दो नली सूक्ष्मदर्शक यन्त्र के नीचे 'एफ" और "टी" नम्बर वाली गोलियोंको रखकर मुझे देखनेको कहा। इस यन्त्रमें दोनों गोलियां एक साथ ही एकके और एक चढ़ी हुई सी दिखलाई पड़ रही थीं। एक गोलीको उन्होंने घुमाकर उसके सबसे अधिक गहरे खरोंच को ऊपर कर दिया। तब उन्होंने दूसरी गोलीको भी धीरे धीरे घुमाना शुरू किया।

जब इस गोलीमें भी वैसा ही खरोंच ऊपर आ गया और दोनों गोलियोंको धीरे-धीरे एक साथ घुमाना आरंभ किया, मैं बराबर यन्त्रमें आंख लगाये देख रहा था। हलके से हलके खरोंच इसके द्वारा हजार गुने बड़े दिखलाई पड़ रहे थे। यन्त्रमें दोनों गोलियां एक साथ ही दिखलाई पड़ रही थीं। मैंने देखा कि दोनों गोलियोंपर सब खरोंच ठीक एक ही प्रकार पड़े हैं। दोनों गोलियोंपर अवश्य ही एकही बन्दूककी छाप पड़ी थी। तब करनल गॉडर्डने एक गोली बदलकर उसी नापकी, परन्तु दूसरे बन्दूकसे छोड़ी गयी गोली लगा दी। एकके प्रमुख खरोंचको दूसरी गोलीके प्रमुख खरोंचकी सीधमें कर दिया। मैंने देखा कि कहीं ही कहीं दूसरे खरोंच भी सीधमें पड़ जाते थे, अधिकांश एक सीध में नहीं थे।

करनल गॉडर्डने मुझको समझाया—"जब राइफलोंमें उनकी नलीमें छेद काटा जाता है तो उनमें पक्के लोहेके यंत्र फेरे जाते हैं। संसारमें कोई भी दो काटनेवाले यन्त्र ऐसे न न मिलेंगे जो ठीक एक ही आकारके हों। सूक्ष्मदर्शक यन्त्र से देखनेपर प्रत्येक यन्त्रकी धार आरीकी दांतीके समान दांतीदार दिखलाई पड़ती है चाहे यह धार कोरी आंखको कितनी भी तेज और सीधी दिखलाई पड़े। प्रत्येक धारमें इन दांतियोंका क्रम भिन्न होता है। इसलिये ऐसी धारसे काटी गयी नलीमें अति सूक्ष्म खरोंच रहते हैं जो उससे चलायी गयी प्रत्येक गोलीपर अपनी मुहर लगा देते हैं।

क्षयरोगकी चिकित्सा

[डा० त्रिलोकीनाथ वर्म्मा, सिविलसर्जन, बिजनौर]

पाठकोंको याद रखना चाहिये कि अभीतक किसी चिकित्सामें (वैद्यक, डाक्टरी, हिकमत इत्यादि) इस रोगके लिये कोई अमोघ औषध* मालूम नहीं हुई। किसी वैद्य, डाक्टर या हकीमने अभीतक यह दावा नहीं किया कि वह ऐसी औषध जानता है जो इस रोगको अवश्य अच्छा कर देगी। किसी औषधके संबंधमें यह भी नहीं कहा जा सकता कि वह रोग अच्छा न करे तो कमसे कम बढ़ने नहीं देगी।

रोगीको ऐसे मकानमें रहना चाहिये जहां वायु अच्छी तरह आती जाती हो। ठंडी वायुके झोंके और गर्म लू तो

* कुछ रोगोंके लिये डाक्टरीमें अमोघौषध मालूम हैं जैसे—
(१) मलेरिया ज्वरके लिए कुईनीन (Quinine)
(२) उपदंशके लिये पारेके यौगिक और सालवर्सान (Mercury compounds and salvarsan)
(३) काला आजारके लिये ऐन्टीमनीटार्टेट (Antimony tartarate)
(४) एक प्रकारकी पेचिशके लिये इमेटीन (Emetine)। तजुर्बेसे मालूम हुआ है कि ये चीजें रोगीके लिए अत्यन्त हितकारी हैं, मानो अमृत समान हैं।

"फिर, एक ही यन्त्रसे काटी गयी नलियोंमें भी अंतर होता है क्योंकि काटनेवाले यन्त्रकी धार बराबर घिसा करती है और इसलिये उसीसे काटे गये बन्दूकोंकी नलियोंमें थोड़ा अन्तर पड़ जाता है, जांचके लिये एक ही काटनेवाले यन्त्र से और एक के बाद ही एक बने चार बन्दूकोंसे छोड़ी गयी गोलियाँ विशेषज्ञोंको दी गयीं। इन गोलियोंपर भी जो खरोंच पड़े थे वे इतने विभिन्न थे कि विशेषज्ञोंको यह बतलानेमें जरा भी कठिनाई नहीं पड़ी कि किस बन्दूकसे कौनसी गोली छोड़ी गयी है।

कभी कभी वे चिह्न और खरोंच जो गोलियोंपर छूटनेके बाद पड़ जाते हैं हत्याओंकी गुत्थी सुलझानेमें बड़ी सहायता देते हैं। करनल गॉडर्डने बतलाया कि एक बार एक मनुष्यकी मृत्यु ३२ नम्बरकी ऐसी गोलीसे हुई थी जिसकी नाक चिपटी हो गयी थी और जो स्पष्टतः पहले पत्थरसे टकरा चुकी थी। इससे सिद्ध हुआ कि उस व्यक्तिकी किसीने जान-बूझकर हत्या नहीं की थी। पत्थरपरसे छटककर गोली उसे अकस्मात लगी थी।

—

स्वस्थ मनुष्यको भी हानिकारक हैं. इसलिये इनसे रोगी सदा बचा रहे। जहां रोगी रहता है वहां सूर्यका प्रकाश अवश्य पहुंचे। सूर्यके प्रकाशमें कीटाणुनाशक शक्ति होती है और उससे हमारी रोगनाशक शक्ति भी बढ़ती है। गर्म स्थानसे एकदम ठंडे स्थानमें जाना या ठंडे स्थानसे एक दम गर्म स्थानमें जाना अच्छा नहीं। जब रोगीको ज्वर आता हो तब वह किसी प्रकारका शारीरिक परिश्रम न करे, चारपाईपर लेटा रहे। तजुर्बेसे यह बात मालूमकी गयी है कि यदि रोगी कुछ दिनोंतक शय्यापर आरामसे लेटा रहे तो उसका ज्वर धीरे-धीरे कम होने लगता है।

रोगीको चाहिये कि किसी योग्य चिकित्सकसे अपनी चिकित्सा करावे और जैसा वह बतलावे वैसा ही करे। चिकित्सक यथावश्यकता औषधियोंका भी प्रयोग करायेगा। क्षय रोगीकी चिकित्सा मामूली घरोंमें वैसी नहीं हो सकती जैसी कि होनी चाहिये। इस रोगमें रोगीका जितना उपचार हो उतना ही अच्छा है। यूरोप और अमरीकामें बहुतसे स्वास्थ्यभवन बनाये गये हैं, जहां क्षय रोगियोंका विशेष रीतिसे उपचार और चिकित्सा होती है इन स्वास्थ्य भवनोंमें बहुतसे रोगी अच्छे हो जाते हैं। उत्तर भारतमें दो स्वास्थ्यभवन हैं एक नैनीतालके पास भवालीमें दूसरा शिमलाके पास धर्मपुरमें। जहांतक हो सके रोगीका निदान निश्चित होते ही उसे स्वास्थ्यभवनमें रखना चाहिये। स्वास्थ्यभवनोंकी कमीके कारण अभीतक केवल अमीरलोग ही इनसे लाभ उठा सकते हैं।

रोगसे बचनेके उपाय

वैसे तो हर एक रोगसे बचनेके उपाय जानने चाहियें परन्तु जिस रोगकी कोई औषध मालूम न हो उससे बचनेके उपाय जानना तो परमावश्यक है। जो बातें हम नीचे लिखते हैं उनके काममें लानेसे यूरोप अमेरिका देशोंमें यह रोग दिन-प्रति-दिन घटता हुआ दिखाई देता है—

१. सूर्यका प्रकाश
२. पवित्र वायुका सेवन
३. आराम, रंज और फिकरसे छुट्टी
४. आसानीसे पचने वाला पौष्टिक भोजन
५. स्वच्छता

१. पहिली बात जो याद रखनी चाहिये वह यह है कि यह रोग दुर्बल मनुष्योंको अधिक सताता है। हमको ऐसे काम करने चाहिये जिनसे हम हृष्टपुष्ट बनें। भारत हितैषियोंका धर्म है कि वे दरिद्रताको दूर करें, बालविवाहकी कुरीतिको देशसे निकालें और शिक्षा-प्रणालियोंको ऐसा बनावें जिससे विद्यार्थी स्वास्थ्यरक्षाके नियमोंका उल्लंघन न करें।

२. दूसरी बात यह है कि क्षय-रोगीका बलगम एक बहुत खतरनाक चीज है, क्योंकि उसमें करोड़ों जीवित कीटाणु रहते हैं जो दूसरे मनुष्योंके शरीरमें पहुंचकर रोग उत्पन्न कर सकते हैं। क्षयीको चाहिये कि वह कभी मकानके फर्श और दीवारोंपर न थूके, न वह इस प्रकार और ऐसी जगह थूके और खांसे कि जिससे और लोगोंके शरीर, कपड़े या भोजनपर बलगमकी छींटें पड़ें। रोगीके पास एक पीकदान होना चाहिये और यह बलगम समय समयपर आगमें जला देना चाहिये। जो लोग खर्च कर सकते हैं वह पीकदानमें कीटाणुनाशक औषध रख सकते हैं। रोगी कागजके लिफाफों या थैलियोंमें भी थूक सकता है और यह थैलियां फिर जलायी जा सकती हैं। जब रोगी खांसे तो मुंहके सामने कपड़ा रक्खे, जिससे आस पासकी वायु अधिक दूषित न होने पावे। जिस कमरेमें रोगी रहे वहां जल छिड़ककर झाड़ू लगायी जावे, जिससे धूल उड़कर वायुमें न मिले। रोगीके कपड़ोंको रोज कुछ समयके लिये धूपमें रखना चाहिये जिससे कपड़ोंमें लगे हुए कीटाणु मर जावें। जिस रूमाल या तौलियासे रोगी मुंह पोंछे उसको धोबीके यहां जानेसे पहिले उबलते हुए जलमें कुछ देर भिगोना चाहिये।

प्रत्येक मनुष्यको चाहे वह स्वस्थ हो या क्षयी यह याद रखना चाहिये कि हर एक स्थानमें थूकना अच्छा नहीं है। बहुत लोग विशेषकर वह जो तम्बाकू चबाते हैं जहां जी चाहता है थूक देते हैं चाहे वे सोनेके कमरेमें बैठे हों, चाहे पढ़नेके कमरेमें चाहे स्नान करनेके कमरेमें। बहुत दफे ऐसा होता है कि थूककी छींटें कपड़ों, किताबों और भोजन पर पड़ जाती हैं। छोटे बच्चोंकी आदत होती है कि वे फर्शपर पड़ी हुई चीजोंको उठाकर मुंहमें रख लेते हैं। यदि उनके माता पिता हर जगह थूक देते हैं तो इन नन्हे-नन्हे बालकोंके मुंहमें यह थूक पहुंचता रहता है।

हमारा तो विचार है कि जिन घरोंमें मनुष्य बे सोचे समझे हर जगह थूक देते हों उन घरोंका भोजन समझदार मनुष्योंको कभी न खाना चाहिये। बड़े दफतरों और कहीं कहीं रेलकी गाड़ियोंमें इस प्रकारके नोटिस लगे रहते हैं, "थूकना सख्त मना है" 'थूको मत इससे बीमारी फैलती है" इन नोटिसोंका मुख्य अभिप्राय यही है कि दीवारें फर्श और गद्दियां खराब न हों और थूकद्वारा रोग (विशेषकर क्षय रोग) न फैले। यह मतलब न समझना चाहिये कि थूक मुंहसे बाहर निकालना बुरा और उसको निगल जाना अच्छा है। थूकनेकी आवश्यकता हो तो अवश्य थूको परन्तु पीकदान, या नालीमें थूको या ऐसी जगह थूको जहां थूकनेसे और मनुष्योंको घृणा न आवे या उनको किसी प्रकार हानि पहुंचनेकी संभावना न हो।

क्षयीको चाहिये कि वह बलगमको कभी भी न निगले क्योंकि इससे न केवल उसका रोग बढ़ेगा बल्कि अंत्रकेक्षय रोग होनेका भी बहुत डर है।

३. क्षय-रोगीके साथ और मनुष्योंको भोजन न करना चाहिये और न उसका जूठा पानी पीना चाहिये। उससे बरतन अलग रखने चाहिये और भोजनके पश्चात् उबलते हुए जलसे धोने चाहियें। रोगीको चाहिये कि वह किसीको न चूमे

४ निदान निश्चित होते ही (या क्षयका सन्देह होते ही) रोगीका किसी योग्य चिकित्सकसे अपना इलाज कराना चाहिये जिससे रोग बढ़ने न पावे। अच्छा हो जाने से रोगके टीकाणु मर जाते हैं और रोगी और लोगोंके लिये खतरनाक नहीं रहता। जिन लोगोंका इलाज नहीं होता उन लोगोंसे रोगके फैलनेका बड़ा डर रहता है।

जहांतक होसके रोगीको पहाड़पर स्वास्थ्यभवनमें ले जाना चाहिये।

म्युनिसिपल्टियोंको (Municipalities) चाहिये कि ऐसे रोगियोंके इलाजका प्रबन्ध करें जो दरिद्रताके कारण स्वयं इलाज नहीं करा सकते।

५. स्वास्थ्यरक्षाके नियमोंका पालन करना चाहिये। डाक्टरों तथा अध्यापकोंका यह कर्तव्य है कि स्वास्थ्यरक्षाके नियमोंका सर्वसाधारणमें प्रचार करें। बड़े-बड़े शहरोंमें स्वास्थ्य सम्बन्धी व्याख्यान समय समयपर होने चाहिएं स्वास्थ्य समितियां और क्षय-रोग-निवारिणी समितियां बननी चाहियें, और इन समितियोंकी ओरसे प्रचारक ग्रामोंमें घूमकर स्वास्थ्य रक्षाके नियमोंका प्रचार करें। निम्न लिखित चीजें रोगोंको दूर करनेवाली हैं। इस कारण हमको उनसे प्रेम रखना चाहिये—

१. पवित्र वायु—वायुमें धूल मिट्टी, कूड़ा करकट, धुआं, दुर्गन्ध न हों। सामान्यतः ग्रामोंकी वायु शहरकी वायुसे अधिक शुद्ध होती है। शहरोंमें जंगलोंकी वायु गुंजान मुहल्लों या कारखानोंके पासकी वायुकी अपेक्षा अच्छी होती है। पहाड़ोंकी वायु बहुत पवित्र होती है।

२. पवित्र पीने की चीजें—मदिरा, भंग इत्यादि को अपवित्र समझना चाहिये। जो जल पिया जावे उसमें किसी प्रकारका रंग गंध या अस्वच्छता न हो।

३. पवित्र भोजन—भोजनमें मैले कुचैले हाथ न लगे हों, न वह मैले कुचैले स्थानमें पकाया गया हो। पाकशाला के पास न तो पखाना और मूत्रस्थान हों और न उसके पास कूड़ा करकट डाला जावे। विधिपूर्वक पकाया हुआ भोजन शुद्ध बासनोंमें परोसा जावे। भोजन करनेसे पहिले हमको अपना शरीर भी शुद्ध कर लेना चाहिये। जिस स्थानमें भोजन खाया जावे वह पवित्र हो और वहां किसी प्रकारकी दुर्गन्ध, कूड़ा करकट और मक्खियां न हों।

४. सूर्यका प्रकाश—जहांतक हो सके मकानकी खिड़कियों और दरवाजोंको खोलकर सूर्यका प्रकाश भीतर आने दें। कपड़ोंको विशेषकर बिस्तरको रोज धूप देनी चाहिये। इस कहावतको याद रखना चाहिये—'जहां प्रकाश नहीं पहुंचता वहां डाक्टर अवश्य पहुंचता है।" म्युनिसपल्टियोंको (Municipalty) चाहिये कि शहरोंमें तंग गलियां न रहने दें तंग गलियोंमें कई-कई मंजिल ऊंचे मकान बनानेकी आज्ञा भी न देनी चाहिये।

५. पूर्ण स्वच्छता

निम्न लिखित पांच चीजोंसे सदा डरना चाहिये—

१. धूल
२. मैल
३. सील
४. अन्धेरा
५. वायु संचारकी कमी

सूर्यकी उपासना एक वैज्ञानिक क्रिया है

[डा० आर० एस० अग्रवाल, नेत्र चिकित्सक देहली]

आजकल नेत्ररोग बहुत ही बढ़ता जा रहा है। कोई घर ऐसा नहीं जिसमें नेत्र-रोगी न हों। आंख दुखने तथा रोहोंकी एक आम शिकायत हो गयी है। सूबा देहली के स्कूलोंके विद्यार्थियोंमें २४ फीसदी (Trachoma) रोहों से बीमार हैं। अनेक शफ़ाख़ाने भी खुले हैं। डाक्टरों और विशेषज्ञोंकी संख्या भी अधिक होती जा रही है। तो फिर क्या कारण है कि नेत्रपीड़ा बढ़ती ही जा रही है।

नेत्रपीड़ा बढ़नेका खास कारण डाक्टर ही हैं। वह रोगियोंको ऐसा पढ़ाते हैं कि धूपकी ऐनक लगाओ, अंधेरे मकानमें रहो। बच्चोंके चेहरेपर धूप न पड़ने दो। आपको शायद यह मालूम हो कि मछलियां जो अंधेरे गड्ढोंमें रहती हैं अंधी हो जाती हैं। कानों में रहनेवाले आदमी खुदाईके लिये जो कि अंधेरी जगहोंमें रहते हैं नेत्ररोगसे आमतौरसे बीमार रहते हैं। बच्चे, जवान या बूढ़े ग़रज हर कोई जो अपनी आंखें रोशनीसे बचानेके वास्ते धूपकी ऐनक पट्टी या अंधेरे कमरे इस्तेमाल करते हैं अकसर नेत्ररोगकी शिकायत करते हैं। नेत्रोंसे रोशनी बरदाश्त करनेकी शक्ति कम होती चली जाती है। नेत्रकी जीवनीशक्ति गिर जाती है जिसकी वजहसे रोगाणु जल्दीसे अपना असर करके रोग पैदा कर देते हैं और इसीके कारण रोहोंकी आम शिकायत हो गयी है।

हमारे हिन्दू शास्त्रोंमें वेद और उपनिषदोंमें सूर्यको नेत्रोंका देवता माना है। हमारे ऋषि यह बताते आये हैं कि सुबह शाम नेत्र सूर्यकी ओर करके संध्या करनी चाहिये। बहुतसे हिन्दू घरोंमें आज भी ऐसा रिवाज है कि स्नानके बाद सूर्यको तरफ मुहं करके जल चढ़ाते हैं। याद रखिये नेत्रोंका स्वास्थ्य ठीक रखनेके वास्ते सूर्यकी रोशनीकी आवश्यकता है। बिला रोशनीके नेत्रोंका स्वास्थ्य अच्छा रह ही नहीं सकता। सूरजकी किरनोंमें नेत्ररोग दूर करनेकी पूर्ण शक्ति है। नेत्रोंके वास्ते सूर्यसे ज्यादा लाभदायक वस्तु और कुछ है ही नहीं। अनेक रोगियोंमें सूर्य-व्यायामसे जादू जैसा असर होता है। नेत्रपीड़ा चोटका लगना एक बार में ही कम हो जाते हैं। रोहे बहुत ही जल्दी अच्छे होते हैं। खास बात तो यह है कि हानि तो किसीकी होती ही नहीं। यदि आप किसीका इलाज भी लेते हों तो भी सूर्य व्यायामसे अधिक फायदा होता है। नेत्रोंमें एक प्रकारकी शक्ति पैदा हो जाती है जो नेत्रोंमें तेज पैदा करती है और नेत्रोंको स्वस्थ रखती है। मस्तिष्ककी शक्ति बढ़ाती है और सूर्यके जरिये भगवानके दरशन होते हैं। सूर्य अमृत समान है इस लिये नन्हें बच्चोंसे बूढ़ोंतकको सूर्य-व्यायाम लेना चाहिये। मैं खुद भी एक घंटा नेत्र बन्द करके और खोल कर सूर्य-व्यायाम करता हूँ। मैं ६००० नेत्र-रोगियोंमें सूर्य की विशेषता जांच चुका हूं।

छोटे बच्चोंके वास्ते सूर्य-व्यायाम

बच्चोंको गोदीमें इस प्रकार लो कि सूर्यकी किरणें उसके चेहरेपर पड़ें और बच्चेको गोदीमें आहिस्ता-आहिस्ता हिलाओ। बच्चा पहले तो रोवेगा परन्तु फिर चुप हो जावेगा। यदि बच्चा रोता भी रहे तो ५ या ७ मिनिटतक हिलाते ही रहो बच्चेके नेत्रोंको तुरन्त आराम मिलेगा, नेत्रपीड़ा कम हो जावेगी। शुबह-शाम धूपमें हिलाना काफी है। यदि नेत्रोंसे किसी प्रकारकी मैल कीचड़ गाद निकलती हो तो नेत्रोंको पहले जाड़ोंमें गरम पानीसे और गरमीमें ठंडे पानी से धो लो। तब सूरजमें बच्चेको हिलाकर किसी औषधको इस्तेमाल करना हो तो करो। यदि बच्चेको पालनेमें रक्खा जावे तो धूप नेत्रोंपर पड़ती रहे। ग़रज बच्चेके नेत्रोंको ५ या ७ मिनिटको धूप लगाते रहना चाहिये। बच्चेके नेत्र स्वस्थ रहेंगे।

बड़े बच्चोंके वास्ते सूर्य-व्यायाम

धूपमें झूलामें झुलाओ। मुहँ सूर्यकी ओर रक्खो या जमीन अथवा कुरसीपर बिठा दो और सूर्यकी ओर मुहँ रक्खो।

बड़ोंके वास्ते

आरामसे कुरसी या ज़मीनपर सूर्यकी ओर मुहँ करके नेत्र बन्द रखकर १० से २० मिनिटतक बैठो। सुबह शाम या किसी समय भी जबकि सूर्यमें तेजी न हो बैठ सकते हो। यदि चाहो तो सिरको एक रूमालसे ढक लो। यदि सूर्य नहीं चमकता है तो २००से १००० पावरकी बिजलीकी बत्तीके सामने ६ इञ्चकी दूरीपर बैठ जाओ या जलती आगके शामने बैठो। सूरज बिजली या आगके सामने बैठकर अपने बदनको इस प्रकार हिलाते रहो जैसे कि घड़ीका पैनडूलम हिलता है या सांप बैन बाजेके सामने अपने फनको हिलाता है।

यदि सूर्यव्यायाम लेते समय ध्यानशक्ति भी ठीक रहे तो बड़ा लाभ होता है। अकसर सूर्यके सामने बैठते समय दिमाग खामखाहकी बातें सोचा करता है। ध्यान को ठीक रखनेका हम एक सहज साधन बतलाते हैं।

अपने अंगूठेको अपने शुरूकी अंगुलीपर धीरेसे रक्खो और ११४ इंचके चक्रमें अँगूठा उंगलीपर घुमाओ। एक चक्र में एक बार ॐ कहो। अब अपने बदनको भी चक्रमें घुमाना शुरू करो। बदनको अंगूठेके साथ-साथ 'घुमाओ'। अब बदन और अंगूठा साथ साथ चक्रमें घूमें और मनमें हर चक्रपर ॐ कहते रहो। यदि ठीक प्रेक्टिस होगी तो १० या १५ मिन्टमें नींदके झोंके आने लगेंगे या सिरमें बड़ा हलकापन मालूम होगा। कुछ दिनके अभ्यासके बाद बदनका चक्र छोटा करते जाओ, आहिस्ता आहिस्ता इतना छोटा हो जावेगा कि दूसरोंको बदन स्थिर मालूम होगा परन्तु शरीर तेजीके साथ बिजलीके पंखेकी तरह घूमता रहेगा, तुमको अपनी सुध न रहेगी, दिमाग शांतिमें होगा। एक तरहका आनन्द मालूम होगा।

आंखें खोलकर सूर्य-व्यायाम

खुली आंखोंसे सूर्य व्यायाम और भी ज्यादा लाभदायक है परन्तु यह व्यायाम स्वस्थ नेत्रवालोंको करना उचित है या जिन्होंने कुछ समयतक नेत्र बन्द करके प्रेक्टिस करली है और जिनको चौंध ही सताती है। खराब आंखोंवालोंको यह प्रेक्टिस नहीं करनी चाहिये।

तरीका १—यह व्यायाम सिर्फ सुबह शामको ही करना उचित है जिस समय सूर्यमें लाली न रहे और उसमें तेज़ी न आवे उस समय ठीकसे यह व्यायाम होता है।

२—आरामसे बैठजाओ। नेत्र खोलकर जमीनकी तरफ देखो और इस प्रकार नेत्र ऊपर करते लेजाओ कि पलक न उठे केवल ठोड़ी ऊंची होती जावे, सिर पीछेको चलता जावे और इतने ऊपर ठोड़ी ऊंची करते लेजाओ कि नेत्र सूर्यके करीब एक गज़ नीचे आसमानको देखें अपने पलक हलके-हलके झपकते रहो।

३—अब सांपकी तरह या घड़ीके पैंडूलमकी तरह आहिस्ता आहिस्ता हिलना शुरू करो। हिलनेमें यह ध्यान होगा कि सामनेकी वस्तु मकान पेड़ इत्यादि चलते मालूम होते हैं। जब तुम दायीं ओरको हिलोगे तो चीजें बायीं ओरको हिलेंगी और जब तुम बायीं ओरको हिलोगे तो वस्तु दायें ओरको। इस प्रकार ध्यान रखते हुए सूर्य भी दीखता रहेगा और नेत्रोंको किसी प्रकारकी हानि न होगी।

४—सूर्यको एकटक न देखना चाहिये वरना, सूर्यान्ध Sunblind होनेकी संभावना है। बीच-बीचमें हर दो चार मिनिटके बाद एक या दो मिनिटको नेत्र बन्द करलो।

कुछ समय इस तरह अभ्यास करते रहो। नेत्रोंमें शक्ति बढ़ती चली आवेगी, तेज टपकने लगेगा। पूर्ण रीतिके व्यायामकी पहचान यह है कि सूर्यव्यायाम लेनेके बाद नेत्रोंके सामने धुन्धलापन नहीं आवेगा, दृष्टि साफ ही रहेगी। यदि धुंधलापन आवे तो थोड़ी देर करीब पांच मिनिट आंखें बन्द करके नेत्रोंको अपनी हथेलियोंसे ढक लो। यदि नेत्र कमजोर हों तो साथ साथ और दूसरे नेत्र-ज्योति बढ़ानेके साधन भी करो जो कि पुस्तक Mind & Vision में से जाने जासकते हैं। यह पुस्तक Thacker Spink & Co. Calcutta के यहांसे ४)में मिलती है।

यदि आपका प्रेम ईश्वरभक्तिमें है तो अब ऐसा ध्यान करना शुरू कर दो कि सूर्यमें उस देवताका स्वरूप है जिसके तुम उपासक हो। वह प्रत्यक्ष चमकता दमकता प्रतीत होने लगेगा, किरनें उसी स्वरूपसे निकलती मालूम होंगी और हृदयमें नेत्रद्वारा जाती मालूम होने लगेंगी। हृदयके स्थान पर सूर्यचक्र है। इस चक्रमें जागृति होगी और यह हृदयके स्थानका सूर्य्य भी चमकने लगेगा। इसकी चमक धीरे धीरे बढ़ने लगेगी, किरनें निकलने लगेंगी। इस सूर्यमें भी

प्रकाश-दर्शन
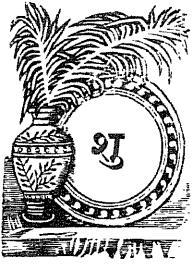
द्ध प्रकाश-दर्शन (एक्सपोझ़र) ही अच्छी फोटोग्राफीकी जड़ है। यदि प्रकाश-दर्शन ठीक रहे तो बिना भयानक असावधानी किये फोटो बिगड़ ही नहीं सकता, क्योंकि यदि नेगेटिव कम डेवेलप किया गया हो तो वह नेगेटिव 'इन्टेन्सिफाई' अर्थात् गाढ़ा किया जा सकता है। यदि यह अधिक डेवेलप हो गया हो तो 'रेड्यूस' अर्थात् हलका किया जा सकता है। इतना ही नहीं, 'विगरस' अर्थात् चटक या 'सॉफ्ट' अर्थात् कोमल कागजपर छापनेसे भी बिना नेगेटिवको किसी प्रकार बदले ही हम अच्छी छाप तैयार कर सकते हैं।

इससे सिद्ध है कि प्रकाश-दर्शन पर विशेष ध्यान देना चाहिये। परन्तु अधिकांश नेगेटिव अशुद्ध प्रकाश-दर्शन पाने के ही कारण नष्ट हो जाते हैं और केवल नौसिखे ही नहीं पुराने फोटोग्राफर भी अकसर इसमें गलती किया करते हैं। बात शायद यही है कि वे उन कारणोंमेंसे सबपर ध्यान नहीं रख पाते जिनपर प्रकाश-दर्शन निर्भर है।

इसलिये यहांपर एक प्रकाश-दर्शन-सारिणी दी जाती है जिससे नौसिखोंको भी साधारण फोटोग्राफोंके खींचनेमें कोई कठिनाई न पड़ेगी। इस सारिणीमें प्रत्येक कारणपर ध्यान रक्खा गया है।

प्रकाश-दर्शन कई बातोंपर निर्भर है। ये हैं—

(१) समय—क्योंकि दोपहरके करीब रोशनी तेज रहती है और सुबह-शाम कम।

(२) बादल—क्योंकि बादलोंके रहने न रहनेके अनुसार भी प्रकाश बदलता रहता है।

(३) विषय—क्योंकि जिस विषयका फोटो खींचा जाता है उसके गाढ़े या हलके रंगके रहनेपर प्रकाश-दर्शन बहुत कुछ निर्भर है।

(४ प्लेट—क्योंकि बाज प्लेट (या फिल्म) सुस्त और बाज तेज होते हैं। फलतः उनके लिये प्रकाश-दर्शन न्यूनाधिक लगता है।

अपने देवताका स्वरूप प्रतीत होने लगेगा। यह समय बड़े आनन्दका होगा। हृदय दैवी ज्योतिसे भरा होगा। नेत्रोंसे प्रेम और आनन्दके आंसुओंकी झड़ी लगी होगी। शरीर पुलकायमान होगा। जितना इस सूर्यमें तेज बढ़ता जावेगा उतना ही ईश्वर प्रेम बढ़ता जावेगा और उतनी पवित्रता शरीरमें आती जायेगी।

अब आप अपने शरीरके दोषोंको देखिये। जैसे काम, क्रोध, मोह लोभ, अहंकार, इत्यादि बातें। एक एक दोपको लीजिये और उसपर इन किरणोंको डालिये। सब दोष जलते चले जावेंगे। जो शरीरका हिस्सा कमजोर हो जैसे मनोमय कोष प्राणमय कोष और अन्नमय कोष हैं, इनपर उन किरनोंके डालनेसे इनमें भी तेज पैदा होने लगेगा।

इस अभ्याससे तुम्हारे अन्दरकी ज्योति चमकने लगेगी। तुम्हारी मानसिक शक्ति बढ़ी होगी। एक मोहिनी शक्ति पैदा हुई होगी। जो आपसे बातें करेंगे आपके हो जावेंगे। तुम जिस कामको करोगे वह ठीकसे होगा, भगवान स्वयम् उस कामको तुम्हारेद्वारा करेंगे।

——

(५) **स्थान**—क्योंकि खुले मैदानकी अपेक्षा दालान में, और दालानकी अपेक्षा मकानके भीतर रोशनी बहुतकम रहती है, इसलिये स्थानपर भी ध्यान देना चाहिये ।

(६) **लेंज़-छेद**—(तालके सामनेका सूराख) क्योंकि लेंजके छेदको छोटा बड़ा करनेसे भीतर जाने वाले प्रकाशकी मात्रा घटती बढ़ती है ।

नीचे इन प्रत्येक कारणोंके लिये संख्याएं दी गयी हैं । प्रत्येक कारणके लिये उपयुक्त संख्या चुन लेनी चाहिये । फिर सबके योगके सामने सारिणीमें देखना चाहिये कि कितने समयका प्रकाश-दर्शन बतलाया गया है । सारिणीके बाद जो उदाहरण दिया गया है उससे सारिणीकी प्रयोग-विधि स्पष्ट हो जायगी ।

सारिणी

(१) सारिणीके लिये अंक

समय—गरमीके दिनोंमें ९ बजेसे ३ बजेतक और जाड़ेके दिनोंमें १० बजेसे २ बजेतक, ०; इस समयके दो घन्टे पहलेतक या दो घन्टे बादतक १ ।

बादल—धूप, ०; हल्के बादल, परछाहीं पड़ती हो, १; गाढ़े बादल, परछाहीं न पड़ती हो, २; काली घटासे अन्धकार, ३ ।

विषय—केवल जल, आकाश और बादल, ०; बर्फ़ इत्यादि या नावयुक्त जल और आकाश, या एकदम सफेद वस्तु, १; हल्के रंगकी वस्तु या ऐसे दृश्य जिनमें कोई निकट वस्तु न हो २; साधारण विषय, जैसे मकान, मनुष्य-चित्र, मनुष्य-समूह, घरका भीतरी भाग फूल, इत्यादि, ३; गाढ़े रंगकी वस्तु या काले मनुष्योंका चित्र, ४ ।

प्लेट—परम तेज प्लेट (एच० डी० ६००), ०; विशेष तेज प्लेट (एच० डी० ३००), १; मध्यम तेजीके प्लेट (एच० डी० १५०), २, साधारण प्लेट (एच० डी० ७५), ३ ।

स्थान– धूपमें या यदि बादल है तो खुले मैदानमें ०; वृक्ष या मकानके सायेमें, ४; दालान इत्यादिमें, ५; दो खिड़कीके सफेदी किये मकानमें ६; यदि एक ही खिड़की हो तो, ७; यदि खिड़कियों द्वारा आकाश न दिखलाई पड़े तो, ९ से अधिक ।

३

(२) प्रकाश-दर्शन

अंकोंका योग	प्रकाशदर्शन	अंकोंका योग	प्रकाशदर्शन
२	$\frac{1}{1000}$ सेकेंड	१२	१ सेकेंड
३	$\frac{1}{500}$,,	१३	२ ,,
४	$\frac{1}{250}$,,	१४	४ ,,
५	$\frac{1}{100}$,,	१५	८ ,,
६	$\frac{1}{50}$,,	१६	१६ ,,
७	$\frac{1}{25}$,,	१७	३२ ,,
८	$\frac{1}{15}$,,	१८	१ मिनट
९	$\frac{1}{8}$,,	१९	२ ,,
१०	$\frac{1}{4}$,,	२०	४ ,,
११	$\frac{1}{2}$,,	२१	८ ,,

लेंज़-छेद—फ ४, ०; फ ५ ६, १; फ ८, २; फ ११, ३; फ १६ ४; फ २२, ५; फ ३२, ६; फ ४४, ७; फ ६४, ८ ।

उदाहरण—एक तैरते हुये बालकका फोटो गरमीके दिनमें ८ बजे सबेरे खींचा गया था । वायु मण्डल स्वच्छ नहीं था, परन्तु परछाहीं स्पष्ट पड़ती थी । कमरेमें तेज फिल्म लगा था । लेंज छेद फ ४,५ था ।

अब सारिणीसे प्रकाश-दर्शन निकालनेके लिये हमको ये अंक मिलते हैं समय, १; बादल, १; विषय, ३; प्लेट, ०; स्थान ०; लेंज-छेद ० (लगभग) । कुलका योग हुआ १ + १ + ३ + ० + ० + ० अर्थात् ५ । सारिणीसे ५ के आगे $\frac{1}{100}$ सेकेन्ड लिखा हुआ है । इसलिये $\frac{1}{100}$ सेकेन्ड का प्रकाश-दर्शन दिया गया ।

धुँधलापन—यदि ऊपरकी सारिणीके अनुसार

प्रकाश-दर्शन दिया जाय और धुंधलेपनसे बचनेके लिये सतर्क रहा जाय तो नेगेटिव निश्चय ही ठीक बनेगा। परन्तु बहुत से फोटोग्राफरोंके व्यवसायी और अनुरागी दोनोंके, नेगेटिव धुंधले हो जाते है। इसके कई कारण हैं। वे नीचे गिनाये गये हैं। प्रत्येकसे बचना चाहिये।

(१) प्लेटपर थोड़ा बहुत सफेद रोशनीका लग जाना (अन्धेरी कोठरी, या कैमेरा दूषित हो सकता है)।

(२) लाल रोशनीका ठीक न होना (साधारण लाल शीशेके बदले फोटोग्राफी केलिये बने विशेष लाल शीशोंका प्रयोग करना चाहिये)।

(३) लाल रोशनीके ठीक होते हुए भी बहुत देरतक ऐसी रोशनीमें प्लेटको रखना। तेज प्लेटोंपर लाल रोशनी भी असर करती है, अन्तर केवल इतना ही है कि सफेद रोशनीको अपेक्षा बहुत कम असर पड़ता है। इसलिये प्लेट या फिल्मको ऐसी रोशनीमें बहुत कम समयतक रखना चाहिये। प्लेटघरमें प्लेट लगानेका काम अन्धेरेमें किया जा सकता है। डेवेलप करते समय प्लेटको ढँक रखना चाहिये। फिल्मको बन्द या ढँके हुए टंकीमें डेवलप करना अच्छा है। पैनक्रोमैटिक प्लेट तो लाल रोशनीमें तुरन्त खराबहो जाता है। उसके लिये विशेष हरा प्रकाश चाहिये।

(४) गलत नुसखेसे बना डेवेलपर।

(५) डेवेलपरका काफी ठंढा न रहना।

(६) पूर्णतया स्थायी (फिक्स) हो जानेके पहले अन्धेरी कोठरीमें सफेद रोशनी आने देना।

(७) बहुत अधिक समयतक डेवेलप करना अक्सरकम प्रकाश-दर्शन पाये प्लेटोंको लोग बेहद देरतक डेवेलप करते हैं)।

(८) बहुत पुराना या गरम या नम स्थानमें रक्खा हुआ प्लेट या फिल्म।

(९) बहुत अधिक प्रकाश-दर्शन।

(१०) लेंज़का साफ न रहना (उसपर अंगुलीके धब्बे न पड़े रहें)।

(११) कैमेरेके भीतर गर्द, या कोई चमकीली वस्तु।

(१२) कैमेरेकी भाथी आदिमें छेद।

(१३) लेंज़पर धूप, या आसमानकी तेज रोशनीका पड़ना।

(१४) फोटो लेते समय कैमेरेका हिल जाना, या विषय का हिल जाना।*

—'सिद्धहस्त'

उड़नेमें आसमानसे भी ऊँचा !

[डा० गोरखप्रसाद, डी० एस-सी०]

मनुष्य उड़कर कितना ऊंचा जा सकता है? हालमें ही अमरीकाकी राष्ट्रीय भूगोल परिषद् और सेना-विभागने मिल कर खूब ऊंचे उड़नेकी परीक्षा की थी और उस समय दो व्यक्ति एक गुब्बारेमें ७४००० फुट ऊपर उड़ गये थे।

विशेषज्ञोंका मत है कि मनुष्य सत्तर पचहत्तर हज़ार फुटसे अधिक ऊँचा नहीं उड़ सकता। गुब्बारेमें उड़नेमें चार बातोंपर ध्यान रखना पड़ता है—गुब्बारेका बोझ, गुब्बारेमें बँधा मनुष्योंके बैठनेके लिये 'खटोले'का बोझ, सामानका बोझ और, अंतमें, आपद्-मुक्ति।

इतना तो प्रत्यक्ष है कि अधिकाधिक ऊपर उड़नेके लिए केवल बड़े-बड़े गुब्बारोंकी आवश्यकता है क्योंकि गुब्बारे के व्यासको दुगुना कर देनेसे बोझ केवल चौगुना ही होता है, परंतु उसकी उड़नेकी शक्ति अठगुनी हो जाती है। इस प्रकार गुब्बारेको बड़ा बनानेसे अधिक बोझा लेकर उड़ा जा सकता है।

गुब्बारेमें अधिक बोझ चाहिये

परंतु खूब ऊंचे उड़नेका प्रश्न इतना सरल नहीं है। गुब्बारेके बोझ और नापके अतिरिक्त और बातोंपर भी विचार करना आवश्यक है। गुब्बारे के नीचे एक 'खटोला' लगाना पड़ता है जिसमें उड़ाके बैठते हैं। उड़ाकोंके साथ वैज्ञानिक यंत्र रहते हैं और फिर इन सबके अतिरिक्त इसपर भी ध्यान रखना पड़ता है कि उड़ाकोंकी जान जोखिम न पड़े। अंतिम प्रश्न सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। इसके लिये फालतू बोझ लादकर उड़ना पड़ता है। यदि यह बोझ साथ

*नोट—इस लेखकी प्रकाश-दर्शन-सारिणी डा० गोरखप्रसादकी पुस्तक "फोटोग्राफी-सिद्धान्त और प्रयोग" से ली गयी है।

—सिद्ध०

न रहे तो फिर कुशल सहित नीचे उतरना असंभव हो जाय इस प्रकार सब मिलाकर गुब्बारेको बहुत सा बोझ उड़ा ले चलना पड़ता है।

गुब्बारा जब इतना ऊपर उड़ जाता है कि वह और अधिक ऊपर नहीं उठ सकता—लगभग १२ मीलकी ऊँचाई पर—तब उड़ाके लोग फालतू बोझको नीचे गिरा देते हैं और इस प्रकार वे और ऊंचे उड़ सकते हैं, परंतु इस प्रकार बोझा हलका करके ऊपर उड़नेमें नीचे उतरते समय दुर्घटना होनेकी संभावना बहुत बढ़ जाती है। बात यह है कि जब उड़ाकोंको नीचे उतरना होगा तब गुब्बारेका थोड़ा गैस निकाल देना होगा। इस प्रकार हलके गैसके निकल जानेसे गुब्बारा भारी हो जायगा और नीचे गिरने लगेगा, परंतु यदि पहलेसे ही फालतू बोझ सब फेंक दिया जाय, तो गिरते समय गुब्बारेको काबूमें रखनेके लिये कोई उपाय न रह जायगा और गुब्बारा तथा उड़ाके पृथ्वीपर इतनी ज़ोरसे गिरेंगे कि चकनाचूर हो जायंगे। रूसी उड़ाके वासेङ्को और उसिस्किन, ऐसा समझता जाता है, इसी कारण मरे। शायद खूब ऊंचे उड़ चलनेके लोभमें वे अपना बोझ हलका करते गये। परंतु जब वे उतरने लगे तब गुब्बारेके वेगको वे अपने वशमें न कर सके और पृथ्वीपर भयानक वेगसे गिरकर चूर हो गये।

उड़नशक्ति और बोझका समतोल

गुब्बारेसे उड़नेमें सबसे सूक्ष्म कार्य यह है कि गुब्बारेके उड़नशक्ति और बोझको इस प्रकार समतुलित रक्खा जाय कि गुब्बारा इच्छित वेगसे ऊपर उड़े या नीचे उतरे। पृथ्वी पर कुशल पूर्वक उतरनेके अतिरिक्त अन्य किसी अभिप्राय से बोझ हलका करना जान जोखिममें डालना है, क्योंकि जब गुब्बारा ऊपर रहता है तब धूपके कारण वह गरम हो जाता है। इस प्रकार गुब्बारा भरपूर फूल जाता है और उसमें अधिक ऊपर उड़नेकी शक्ति आ जाती है। परन्तु नीचे उतरते समय धूपकी कड़ाई कम हो जाती है और गुब्बारा कुछ पिचक जाता है। इस लिये वह बड़े वेगसे नीचे गिरने लगता है। तब चटपट बोझ फेंककर इस वेग को कम करना पड़ता है। यही कारण है कि गुब्बारेमें फालतू बोझ अवश्य रखना पड़ता है। इसके अतिरिक्त उतरते समय यदि बादल रहें, तो गुब्बारा ज्यों ही बादलके नीचे उतर आता है त्यों ही छांहके कारण अधिक ठंढा होकर और भी पिचक जाता है। ऐसी दशामें बोझ और भी अधिक हलका करना पड़ता है। इसलिये सदा अपने साथ काफ़ी फालतू बोझ रखना पड़ता है।

कितना बोझ चाहिये ?

७२ हज़ार फुट (लगभग १४ मील) ऊँचा उड़नेके लिये गुब्बारे और सामानका बोझा लगभग ६० मन होता है और फालतू बोझका करीब २५ मन। इससे ऊंचा उड़नेके लिये कितने बोझकी आवश्यकता पड़ेगी इसका अभी पक्का हिसाब नहीं लगाया गया है, क्योंकि ७५ हज़ारसे अधिक ऊपर उड़नेकी अभी कोई संभावना नहीं है। परंतु मोटे हिसाबसे पता चलता है कि यदि ९० हज़ार फुट ऊँचा उड़ना हो तो शायद इतना बड़ा गुब्बारा बनाना पड़ेगा कि उसकी तौल १५० मन हो जायगी और उसमें ५० मन फालतू बोझ रखकर उड़ना पड़ेगा। जितनी ऊंचाईतक आज पहुँच सके हैं कहीं उसका दुगुना ऊपर कोई उड़ना चाहे तो, ऐसा अनुमान किया जाता है, इतने बड़े गुब्बारेकी आवश्यकता पड़ेगी कि केवल उसीका बोझ ७५ हज़ार मन हो जायगा!

इन सब गणनाओंसे इस बातका स्पष्ट पता चलता है कि अधिकाधिक ऊँचा उड़नेके लिये गुब्बारोंकी नाप-तौल बढ़कर भयानक हो जाती है। इतने बड़े गुब्बारे आजकलके सामान और यन्त्रोंसे बनाये ही नहीं जा सकते। इसीसे अनुमान किया जाता है कि अभी मनुष्य ७५ हजार मीलसे अधिक ऊँचा नहीं उड़ सकता। यदि गुब्बारेको रेशमका बनाया जाय तो वह अधिक हलका होनेके कारण अवश्य अधिक ऊंचा जा सकेगा, परन्तु रेशमके फट जानेसे उड़ाकों की जान चली जानेका भय रहता है। इसी प्रकार यदि गुब्बारेमें हीलियम गैसके बदले हाइड्रोजन गैस भरा जाय तो गुब्बारा अधिक ऊंचा जायगा, परन्तु हाइड्रोजनमें आग लगनेका बड़ा डर रहता है और हाइड्रोजनसे भरा गुब्बारा बम गोलेके समान नाद करके क्षण भरमें जल जा सकता है।

खटोला कैसा होता है ?

उड़ाकोंके बैठनेका 'खटोला' अब खटोले या टोकरीकी तरह नहीं बनता। यह अल्युमिनियमका गोला होता है जो चारों ओरसे बन्द कर दिया जाता है और इसके काच लगे झरोखोंमेंसे बाहरका दृश्य देखा जा सकता है। ऊपरी

आकाशमें बाहरकी हवा इतनी हलकी रहती है कि उसमें कोई प्राणी सांस नहीं ले सकता। यदि कोई इस हवामें रख दिया जाय तो उसकी नसें फट जायेंगी। इसीलिये 'खटोला' चारों ओरसे बन्द रहता है। इसके भीतर साँस से निकली हवाके दूषित अंशको सोखनेके लिये रासायनिक पदार्थ रहते हैं और ऑक्सिजनकी कमीकी पूर्तिके लिये टंकियां रक्खी रहती हैं जिनमें आक्सिजन दबाकर भरा रहता है। वायुको ठंढा या गरम करनेका भी प्रबन्ध रहता है। शायद लोग समझते होंगे कि आक्सिजनकी कमीसे ही अधिक दिक्कत पड़ती होगी, परन्तु बात यह नहीं है। दिक्कत सांससे निकले कार्बन-द्विओषिदसे होती है। इसके थोड़ा भी अधिक हो जानेसे आदमी हांफने लगता है। अधिक मात्रामें उपस्थित रहनेसे सरमें चक्कर और बेहोशी हो जाती है। इसलिये धूएकी तरह ऐसबेस्टसपर कास्टिक सोडा या पोटाश छिड़ककर रक्खा रहता है। यह पदार्थ कार्बन-द्विओषिदको सोख लेता है।

प्रोफेसर पिकर्ड ही अभीतक सबसे ऊंचे उड़ सके हैं। इनका कहना है 'पहलेके उड़ाकोंको नमीसे भी बड़ी तकलीफ होती थी। सांस पसीने आदिसे निकला वाष्प 'खटोला' के ऊपरी ठंढे भाग पर पानीके रूपमें जम जाता था और तब उड़ाकोंके ऊपर टपकने लगता था। इसलिये मैंने अबकी बार सुखाये हुए मैगनेसियम परक्लोरेटके बोरे रखलिये थे। ये वाष्पको इतनी अच्छी तरह सोख लेते थे कि हम सब को पानी टपकनेसे तकलीफ न हुई।"

यदि भविष्यमें कोई क्रांतिकारी आविष्कार न हुआ तो पन्द्रह मीलसे ऊपर उड़ सकनेकी संभावना अभी नहीं दिखलाई पड़ती। परन्तु १५ मील! यह भी कितना ऊंचा है। हिमालयके उच्चतम शिखर भी तो ५ मीलसे अधिक ऊंचे नहीं हैं!

(पापुर मेकैनिकसके एक लेखके आधारपर)

तारोंवाली दुनिया

नाक्षत्र-संसार कितना बड़ा है?

[डा० गोरखप्रसाद, डी० एस-सी०]

यह नाक्षत्र संसार कितना बड़ा है? इस प्रश्नका उत्तर अब भी नहीं मालूम है, परन्तु इतना अवश्य हम कह सकते हैं कि एक नीहारिका❀ (नेब्युला) लगभग ६०,००,००,००,००,००,०० ००,००० साठशंख मीलकी दूरीपर है। प्रकाश एक सेकन्डमें १८६ हजार मील चलता है और इस प्रकार प्रकाशको हमारी पृथ्वीकी ८ बार प्रदक्षिणा करनेमें केवल एक सेकन्ड लगेगा। परन्तु शीघ्रगामी प्रकाश को भी उक्त नीहारिकासे इस पृथ्वीपर आनेमें १० लाख वर्ष लग जायेंगे। इतनी बड़ी दूरीकी कल्पना भी हमारी शक्तिके बाहर है।

साठ संख मीलकी दूरी कैसे नपी?

परन्तु इस नीहारिकाकी दूरी नापी कैसे गयी? आपने कदाचित सुना होगा कि कुछ महाशय चन्द्रमातक यात्रा करनेके लिये पगले हो रहे हैं। इससे यह न समझिये कि किसी महाशयने सचमुच ही उस नीहारिकातककी यात्रा की है। जिस कौशलपूर्ण युक्तिसे यह कार्य सिद्ध किया गया है वह आधुनिक विज्ञानकी आश्चर्यजनक शक्तिका अच्छा उदाहरण है। कदाचित् आप विचार करते होंगे कि इसका

❀ दूरबीनसे देखनेपर नीहारिका सफेद बादलके समूहसी दिखलाई पड़ती है सब नीहारिकाएं एक ही भांति नहीं दिखतीं। एन्ड्रोमिडा मण्डलकी नीहारिका जिसकी यहां चर्चा है, बिना दूरबीनके भी सुगमतासे दिखलाई पड़ती है, परन्तु रात अन्धेरी होनी चाहिये।

समझना कठिन होगा। परन्तु नहीं, इसका समझना कुछ भी कठिन नहीं है।

सब नीहारिकाएं इतनी अधिक दूर हैं कि इनकी दूरी का जानना वैसा मनोरंजक नहीं है जैसा यह देखना कि इनकी दूरी नापी कैसे गयी। इसलिये हम इस बातको यहां बड़ी सरल रीतिसे समझावेंगे।

आकाशमें जितने तारे आंखसे या दूरबीनसे दिखलाई पड़ते हैं उनमें कई एक ऐसे हैं जिनका प्रकाश घटा-बढ़ा करता है। इस प्रकारके तारोंकी एक जाति (जिसे अंग्रेजीमें Cepheid variables सीफिइड वेरिएबिल कहते हैं) औरों से बिल्कुल भिन्न है। इस जातिके तारोंकी ज्योति बढ़ती है जल्द, परन्तु घटती है धीरे-धीरे। प्रकाशके घटने बढ़नेका ऐसा अचल नियम है कि इनका पहचानना ज्योतिषियोंके लिए सरल और (संशयरहित) है। इनमेंसे कई एककी दूरी उसी साधारण रीतिसे निकाली गयी जिस रीतिसे सरवे करनेवाले किसी दूरस्थ और अगम्य विन्दुकी दूरीका पता लगाता है। दूरी जान लेनेपर इस बातका बड़ी आसानीसे पता लग सकता है कि अमुक ताराकी वास्तविक चमक क्या है अर्थात् यदि उस तारेको सूर्यके समीप खींच लायें तो वह सूर्यकी अपेक्षा कितना चमकीला जान पड़ेगा इसकी गणना इस जानी हुई बातपर निर्भर है कि यदि दूरी दूनी हो जाय तो प्रकाश घटकर एक चौथाई हो जाता है और यदि दूरी तिगुनी होजाय तो प्रकाश पहलेका केवल नवां भाग (१/३×३) हो जाता है, इत्यादि प्रकाशको घटने-बढ़ने के एक चक्रमें कितना समय लगता है यह तो तारेकी परीक्षा से ज्ञात होगया और इसकी वास्तविक चमक कितनी है यह इसकी दूरी जानकर उक्त गणनासे जान लिया। इस प्रकार इस जातिके कई तारोंके चक्रकाल और वास्तविक चमकका ज्ञान करनेपर एक नयी बातका पता हमको लगता है। वह यह है कि चक्रकाल और वास्तविक प्रकाशमें सम्बन्ध है। उदाहरणार्थ यदि चक्रकाल २४ घन्टेके बराबर है तो तारा सूर्यसे १०० गुना अधिक चमकदार होगा। चक्रकाल अधिक होनेसे वास्तविक चमक कम और कम होने से वास्तविक चमक अधिक होगा।

ज्योतिषीगण इसी जातिके तारोंको नीहारिकाकी दूरी नापनेके काममें लाये हैं। ऐन्ड्रोमिडा नामके तारामण्डलमें जो नीहारिका है उसमें संसारके सबसे बड़े दूरबीन* से जांच करनेपर पता चला कि इस नीहारिकामें भी ऊपर बतायी गयी जातिके कुछ तारे हैं। बस नीहारिकाकी दूरी जाननेके लिये इतना ही पर्याप्त था। उन तारोंका चक्रकाल नाप लिया गया। फिर चूंकि चक्रकाल और वास्तविक चमकका सम्बन्ध ज्ञात हो चुका था (ऊपर देखो) इसलिये इन तारोंके वास्तविक ज्योतिका पता चल गया। फिर इस पर ध्यान देनेसे कि वे देखनेमें कितने फीके लगते हैं साधारण गणनासे तुरन्त पता चल गया कि वे कितनी दूरीपर होंगे। सब तारोंकी दूरियोंकी गणना करनेपर पता चला कि इस नीहारिकाके प्रत्येक तारेकी दूरी एक ही, लगभग ६० शंख मील है। इसलिये नीहारिका स्वयं इसी दूरीपर होगी।

ऊपरके तर्कमें एक त्रुटि जान पड़ती है। कौन जाने वे तारे जिनका जिक्र ऊपर किया गया है नाहारिकाके पीछे हों और उनका प्रकाश कुछ नीहारिकामें समा जाता हो इसी लिये वे इतने फीके लगते हों और न कि इस लिये कि वे सचमुच बहुत दूर हैं। परन्तु जरा ध्यान देनेसे पता चलता है कि इसकी बहुत सम्भावना नहीं है। यदि नीहारिकाके कारण इन तारोंके प्रकाशमें कमी पड़ती तो किसी तारेमें कम और किसीमें अधिक पड़ती क्योंकि नीहारिका सब जगह एक सी घनी नहीं है और इस लिये उन तारोंकी दूरी एक समान न निकलकर किसीकी दूरी बहुत कम और किसीकी बहुत अधिक निकलती। परन्तु हम देख चुके हैं कि बात ऐसी नहीं है। इसलिये हम इस विचारको छोड़ देंगे और इसको निश्चित समझेंगे कि नीहारिका सचमुच ६० शंख मीलकी दूरी पर है।

६० शंख मीलकी दूरी! और वहां जो नीहारिका है उसका व्यास हमें यहांसे २ अंश, समकोणका पैंतालीसवां भाग, जान पड़ता है, मानचित्र बनाकर देख लीजिये। नीहारिकाका व्यास लगभग २ शंख मील होगा! सूर्य तो इसके आगे इतना नन्हा सा लगेगा जैसे पर्वतके आगे राई। सूर्यका व्यास केवल साढ़े आठलाख मील तो है ही, यद्यपि पृथ्वीकी अपेक्षा सूर्य बहुत बड़ा है—१० ००,००० (दस लाख) पृथ्वियोंको मिलानेपर भी सूर्यके समान पिंड न बन सकेगा। इसीसे नीहारिकाके बृहत आकारका कुछ-कुछ अनुमान किया जा सकता है।

* यह अमरीकामें है। व्यासमें ८॥ फुट और लम्बाईमें लगभग १०० फुट है।
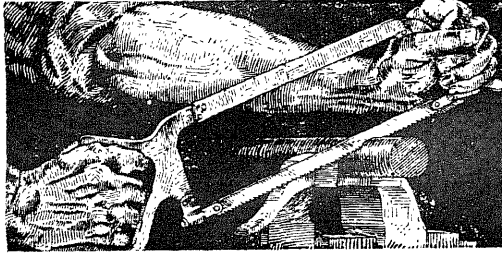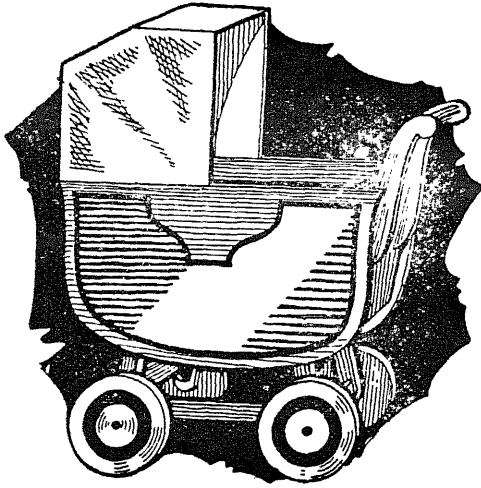
गुड़ियोंकी गाड़ी

गुड़ियोंकी इस गाड़ीके बनानेमें शौकीन कारीगरोंको बड़ा मजा आयेगा। ऐसी गाड़ी पाकर लड़कियां हर्षसे नाचने लगेंगी। ये गाड़ियां बेचनेके लिये भी बनायी जा सकती हैं, परन्तु इनके खरीदनेवाले केवल बड़े शहरों ही में मिल सकेंगे। इस गाड़ीका बनाना काफी सरल है।

बगल और हैंडल

गाड़ी चीड़की लकड़ीके ढांचेपर प्लाइवुड जड़कर बनायी जाती है। पहियोंके जड़नेके लिये गाड़ीके नीचेलगा चौखटा भी चीड़ ही का है। गाड़ी बनानेके लिये पहले चीड़का ढांचा बनाना चाहिये, परन्तु उसके पहले प्लाइवुड के दो बगल काट लिये जायं तो अच्छा है। $\frac{3}{16}$ या $\frac{1}{4}$ इञ्च मोटे प्लाईवुडपर एक-एक इञ्चके वर्ग खींचकर उसपर चित्र १ में दिखलाये गये आकारको असली पैमानेपर उतार लेना चाहिये। इसके लिये करीब १६ इञ्च + ९ इञ्चकी लकड़ी चाहिये। चित्र १ में विन्दुमय रेखाएं जहाँ बनी हैं वह उदरका पेंदा और किनारे जड़े जायँगे। इन रेखाओंको भी लकड़ीपर उतार लेना चाहिये। इसी चित्रमें हैंडलकी शकल भी दिखलायी गयी है। हैंडलको प्लाइवुडसे काटनेके बदले उसे $\frac{3}{4}$ या $\frac{1}{2}$ इञ्च मोटी चीड़की लकड़ीसे काटना चाहिये, यद्यपि सुभीतेके लिये हैंडल बगलके साथ ही दिखला दिया गया है।

अब बारीक रेगमालसे रगड़कर इन टुकड़ोंके किनारोंको साफ कर लेना चाहिये। तब उनको नयी लकड़ीपर रखकर और चारों ओर बारीक पेंसिल दौड़ाकर उनकी शकल दूसरी लकड़ीपर उतार लेनी चाहिये। अन्तमें इस लकड़ीको भी काटकर पहले कटे टुकड़ोंकी जोड़ी तैयार कर लेनी चाहिये।

उदर

गाड़ीके उदरका पेंदा १२$\frac{3}{4}$ इञ्च + ८$\frac{1}{2}$ इञ्च नापका करीब आध इञ्च मोटा लकड़ीसे काटना चाहिये। फिर इनके दोनों ८$\frac{1}{2}$ इञ्च वाले सिरोंपर रंदा करके उनको जरा तिरछा कर देना चाहिये। चित्र १ की विन्दुमय रेखाओं या चित्र२ की मोटी काली रेखाओंसे इसका पता चल जायगा कि किस प्रकार इन सिरोंको तिरछा किया जाय कि उनपर उदरके
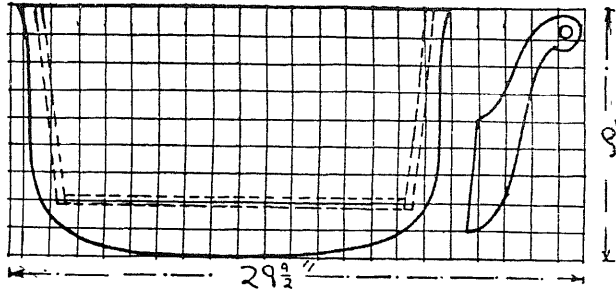
चित्र १ बगल और हैंडलका आकार

सिरे ठीक बैठें। उदरके सिरोंके लिये दो ८½ इञ्च + ७½ इञ्च की लकड़ियोंकी आवश्यकता पड़ेगी। इनको चौकोर काटना चाहिये। पेंचसे जड़कर उदरके सिरोंको उदरकी पेंदीपर जड़ना चाहिये।
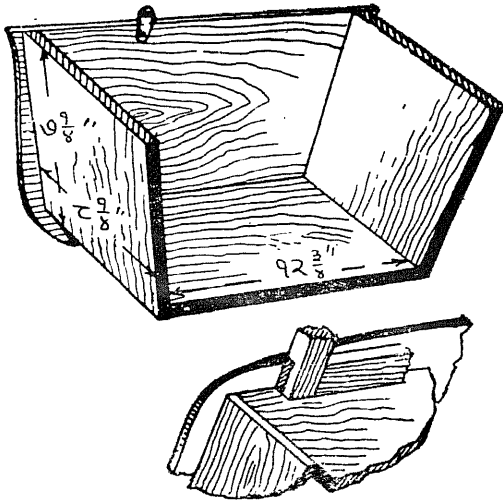
चित्र २ गाड़ीका उदर। एक कोना उलट कर अलग दिखलाया गया है।

नीचेका भाग

गाड़ीके नीचेका भाग चित्र ३ में स्पष्टरूपसे दिखलाया गया है। पहले अगल-बगलके चौखटोंको बना लेना चाहिये। फिर उनको नीचे वाली बेंड़ी लकड़ियोंसे जोड़ देना चाहिये। ऊपरकी ओर किसी लकड़ीके जड़नेकी आवश्यकता नहीं है। क्योंकि यह भाग तो उदरमें और फिर प्लाइवुडकी बगलियों में भी जड़ा रहेगा। जड़नेके ढंगका चित्र २ के उस अंशसे पता चल जायगा जिसमें एक कोना बड़े पैमानेपर दिखलाया गया है। प्रत्येक चौखटेका ऊपरी किनारा ९½ इञ्च + ¾ इञ्च + ½ इञ्चकी लकड़ीसे बना है। बगलकी लकड़ियाँ उसी मोटाई-चौड़ाईकी हैं, परन्तु वे केवल ५½ इंच लम्बी हैं। किनारोंपर इनकी मोटाई आधी करके इन लकड़ियोंको जोड़ा गया है।

लकड़ियोंकी मोटाईको कोनोंपर आधा करनेके लिये उनपर सावधानीसे चिह्न लगाना चाहिये। नीचेवाली बेंड़ी लकड़ी केवल ८½ इञ्चकी है। इसके जोड़ केवल 'टक्करी' हैं, अर्थात् न तो किसी प्रकारका मूल है और न लकड़ीकी मोटाई ही कम की गयी है। केवल इसे सच्चे आकारका काट कर और बगलकी लकड़ियोंसे भिड़ाकर कील ठोंक दी गयी है। ध्यान रहे कि इस लकड़ीके सिरोंको जरा तिरछा काटना पड़ेगा।

दोनों चौखटोंको ठीक एक नापका बनना चाहिये।

पहिये

दोनों चौखटोंको ७¾ इञ्च लम्बी ¾ इञ्च + ½ इञ्च नाप की लकड़ीसे जोड़ना चाहिये। इसके सिरे चौचक काटे जायँ (चित्र ३ में भूलसे चौखटोंके बीचका फासला ऊपरके सिरे पर ७¾ इञ्चके बदले ७½ इञ्च लिख गया है।) इन लकड़ियोंको भी केवल टक्करी जोड़से दोनों चौखटोंके बीच जड़ा जाता है। जड़नेवाली कीलें लंबी रहें। मजबूतीके ख्यालसे लकड़ीके टुकड़े काटकर उनको कोनोंमें सरेससे चिपका देना अच्छा है। चित्र ३में ऐसे-ऐसे दो टुकड़े लगे हुए दिखलाये गये हैं। दूसरी ओर भी ऐसे ही दो टुकड़े लगेंगे।

इस प्रकार गाड़ीका निचला भाग तैयार हो जायगा। इसे उदरके नीचे सरेससे चिपकाकर पेंचसे जड़ देना चाहिये।
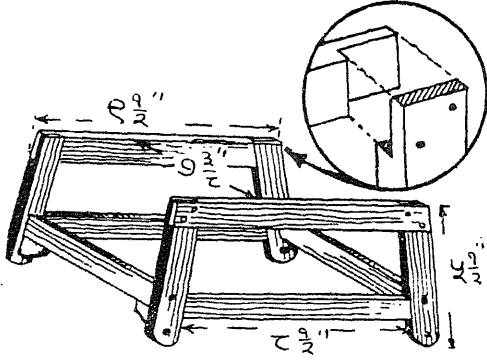
चित्र ३–गाड़ीका नीचेवाला भाग गोलाईमें चौखटों के कोनेके जोड़नेकी रीति दिखलायी गयी है।

हैंडल भी अब जड़ देना चाहिये। इसके लिये दोनों हैंडलोंके बीच लकड़ीका गोल छड़ पहना देना चाहिये। छड़की लंबाई इतनी हो कि हैंडलके बाहरी पृष्ठोंके बीचकी दूरी ठीक ८¼ इञ्च हो जाय। हैंडल और गाड़ीका निचला भाग कहां जाता है इसका पता चित्र ४ से लग जायगा।

अन्तमें चार खरादे हुए पहियोंको गोल माथेके पेंचोंसे चित्र ४ में दिखलायी गयी स्थितियोंमें जड़ देना चाहिये। किसी भी खरादने वालेसे ये बनवा लिये जा सकते हैं।

रँगाई

गाड़ीको चटक रंगोंमें रँगना चाहिये। तेलमें घोंटे हुए जो रंग बाजारमें बिकते हैं वे ठीक होंगे। कमसे कम दो बार (यदि हो सके तो तीन बार) रंगाई करनी चाहिये और प्रत्येक बार रंगके खूब सूख जानेके बाद बारीक रेगमालसे रंगको चिकना कर देना चाहिये। अन्तमें रंगके ऊपर वार्निश कर देनी चाहिये। जैसा शीर्ष-चित्रमें दिखलाया गया है। बगलियोंपर रेखाएं किसी अन्य रंगसे खींच देनेपर गाड़ी बहुत सुन्दर लगने लगती है। पहियोंपर भी इसी प्रकार रेखाएँ खींच देनी चाहिये।

चित्र ४ में दिये गये नापोंसे ½ इञ्च मोटी प्लाईवुडका एक सुन्दर टप (हुड) भी बनाया जा सकता है। टप मुड़ तो न सकेगा परन्तु अन्य सब बातोंमें बड़ा सच्चा दिखलाई पड़ेगा। एक-एक इञ्च चौड़ी ¼ इञ्च मोटी लकड़ीकी कुछ धज्जियां काटकर ½ इञ्च मोटी प्लाइवुडवाले चौखटोंके बीच रखकर उनपर इन चौखटोंके जड़ देनेसे टपका ढाँचा तैयार हो जायगा चित्र ४ में धज्जियोंकी स्थितियाँ बिन्दुमय रेखाओं से दिखलायी गयी हैं। ढाँचेपर मोमजामा या पुस्तकोंपर जिल्द बाँधनेवाला कपड़ा (हो सके तो वह जो देखनेमें चमड़ेकी तरह बना रहता है) तान देना चाहिये। कपड़ेके किनारोंको सफाईसे मोड़कर भीरतकी ओर सरेससे चिपका देना चाहिये।
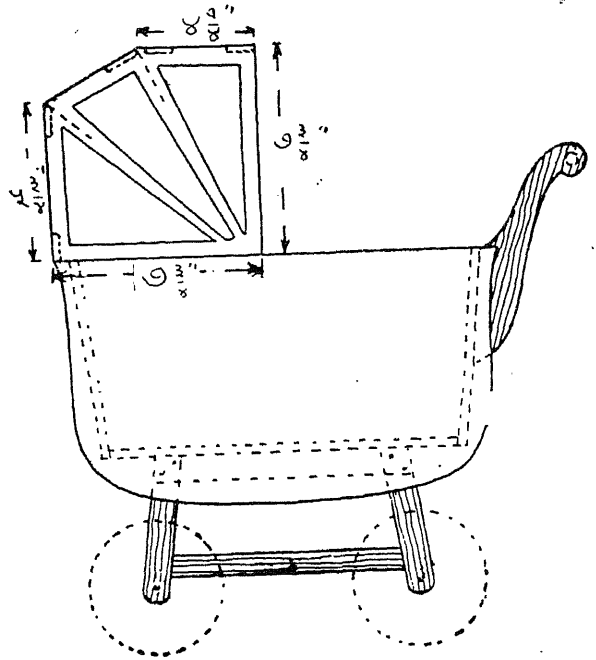
चित्र ४–गुड़ियोंकी गाड़ी, बगलका दृश्य, जिससे पहियों आदिकी स्थितिका ठीक-ठीक पता चलता है।

आगमें बेधड़क विचरनेवाले
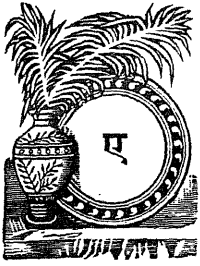
एक बड़े-से मैदानमें एक हवाई जहाज पड़ा है। दुम ऊपर उठ गयी है। नाक जमीनमें धंस गयी है। आस पास लोग इकट्ठे हो गये हैं और यदि आप उधरसे होकर निकलें तो आप यही समझेंगे कि कोई भीषण दुर्घटना हो गयी है। परन्तु यदि आप ध्यानसे देखें तो आपको पता चलेगा कि यहाँके सब व्यक्तियों और सब वस्तुओंमें कुछ विचित्रता है।

आग लगा दी

टूटे हवाई जहाजके नीचे एक व्यक्ति एक बड़ेसे थालमें पेट्रोल उड़ेल रहा है। एक व्यक्ति हवाई जहाजके कोनों-अंतरोंमें चीथड़े डाल-डालकर उनपर पेट्रोल छिड़क रहा है। जब तक आप इस चक्करमें हैं कि मामला क्या है तबसे एक व्यक्ति जानबूझकर दियासलाई घिसता है और जहाजमें आग लगा देता है। तब सबलोग जहाज छोड़ अपना प्राण लेकर भागते हैं—रह जाते हैं केवल दो व्यक्ति, परन्तु वे विशेप वेष-भूषामें हैं, जान पड़ता है जैसे वे तैराकियोंकी पोशाक पहने हों। क्षणभरमें समूचा जहाज जलने लगता है और उसकी लपटें पचीस-तीस फुट ऊँचे पहुँच जाती हैं।

आगकी लपटोंमें बैठा आदमी

अचानक आगके बीचमें कोई चलता हुआ नजर आता है। संचालककी कुरसीसे एक व्यक्ति उठनेकी चेष्टा कर रहा है। पर शायद उठ नहीं पाता। एक दर्शक घबराकर लोगोंका ध्यान उधर आकर्षित करता है। 'अरे! जहाजमें एक आदमी रह गया, वह चिल्लाता है. देखो न, वह संचालककी कुर्सीमें फंस गया है। बेचारा जिन्दा ही इस चितापर जल जायगा!"

परन्तु उसकी बातकी कोई परवाह नहीं करता। कई सेकन्ड बीत जाते हैं। तब वे दोनों व्यक्ति जो जहाजके पास पहलेसे विचित्र वेश-भूषामें खड़े थे आगेकी ओर शान्तिसे बढ़ते हैं और उस प्रदग्ध ज्वालामें पिल पड़ते हैं। धाँय-धाँय करते हुए उस प्रलयाग्निमें संचालककी कुरसीपर बैठा हुआ व्यक्ति धीरेसे उठता है और ये दोनों उसे कंधेपर लाद कर चल देते हैं। विचित्र शान्तिके साथ वे एक चौथे व्यक्तिकी ओर बढ़ते हैं जिसके हाथमें घड़ी है।

घड़ीवाला व्यक्ति बोलता है, 'दो मिनिट हुए सब कुशल तो है?'

जहाजसे निकाल लाया गया व्यक्ति उत्तर देता है, 'पूर्णतया सकुशल हूँ।'

आगमें पड़ा डाकका थैला नहीं जला

एक व्यक्तिने कहा 'अरे! डाकका थैला तो रह ही गया!'

'डाकका थैला! उसे तो मैं भूल ही गया था'—ऐसा कहता हुआ वह फिर धधकते हुए जहाजकी ओर दौड़ता है। आगको चीरता हुआ वह जहाजमें घुस जाता है, और संचालककी कोठरीमें पहुंच जाता है जो अब गरमीसे लाल हो गयी है। कुछ ही क्षणोंमें वह प्रसन्नतासे एक थैला उठाता है और शीघ्र अपने साथियोंके पास थैला लिये पहुंच जाता है। जब थैला खोला जाता है जब उसके भीतरसे चिट्ठियाँ निकलती हैं। चिट्ठियाँ अब भी ज्योंकी त्यों हैं। केवल जरा-सी बदरंग हो गयी हैं।

अस्वेस्टासकी करामात

इस प्रकार मनुष्यने अग्निपर विजय पायी है. परन्तु इसके लिये उसे अनेक जान-जोखिम प्रयोग करने पड़े हैं। विजय असबेस्टस नामक खनिज पदार्थकी सहायतासे मिली है। यद्यपि इस पदार्थका पता आजसे २००० वर्ष पहले चला था. तो भी उन्नीसवीं शताब्दीके मध्यतक इसका कोई विशेष उपयोग न हो सका। परन्तु वाष्प और विद्युतसे संचालित यन्त्रोंके आविष्कार और निरन्तर प्रयोग होने लगनेपर, और कारखानों तथा गृहस्थोंके मकानोंमें ज्वलनशील वस्तुओंके अधिकाधिक उपयोग होनेपर लोगोंका ध्यान उस विचित्र पदार्थ, असबेस्टस-की ओर विशेष रूपसे आकर्षित हुआ जिसका पता यूनानी लोगोंने प्राचीन समयमें ही लगा लिया था। गत पचास वर्षोंमें असबेस्टसका प्रचार इतना हो गया है कि इसके बिना इञ्जिनियरोंका काम चल ही नहीं सकता। तो भी वैज्ञानिकोंका विश्वास है कि असबेस्टसके सब लाभदायक गुणोंका और इसके उपयोगके सब

रीतियोंका पूरा पता अभीतक नहीं लगाया जा सका है। भविष्यमें इस पदार्थसे और भी अधिक लाभ उठानेकी आशा की जाती है।

असबेस्टस ताप अवरोधक है। यदि एक इञ्च मोटी असबेस्टसकी गद्दीका एक पृष्ठ गर्म करके लाल भी कर दिया जाय तो दूसरा पृष्ठ कुछ विशेष गर्म न होगा। गत पांच वर्षोंमें इङ्गलैण्डके रुफ नामक स्थानपर टी० जी० बिडवेल के अनेक प्रयोगोंके बाद अन्तमें एक ऐसी पोशाक बनी है जिससे पहन लेनेपर मनुष्य आगमें जल नहीं सकता। इसे पहनकर वह १७०० डिगरी फा०के तापक्रमवाली भट्टी में घुस सकता है और उसको कोई हानि नहीं पहुंचेगी। रुफकी प्रयोगशालामें यदि आप जायं तो वे आपको ऐसा दस्ताना पहना सकते हैं जिससे आप भट्टीमें डालकर लाल किया लोहा आरामसे पकड़ सकते हैं और चाहें तो जबतक वह ठंढा न हो जाय पकड़े रह सकते हैं, या वे आपको ऐसा ओवरकोट पहना सकते हैं जिसपर लकड़ीकी आंच क्या, हरहराते हुए ब्लोटार्चकी लौ भी असर न करेगी।

परन्तु अग्निपर इस प्रकारकी विजय सहजमें नहीं मिली। इस प्रयोगशालाके मिस्टर ब्रिजमैनसे बात करनेपर इसका भेद खुला। इन महाशयका काम यह है कि नयी पोशाकों को पहनकर भट्टियोंकी सैर किया करें और धधकती हुई अग्नियोंमें कूदनेका मजा उठायें।

अस्बेस्टस पहनकर अदाह्य हो गया

उन्होंने बतलाया कि सन् १९३३ में हमलोगोंने असबेस्टरके कन्टोप, दस्ताने, अंगरखे और पैजामें बनानेकी चेष्टा आरम्भ की। शीघ्र ही पता चला कि हमें असबेस्टससे किसी नवीन प्रकारसे सूत कातना होगा क्योंकि साधारण रीतिसे बने असबेस्टसके सूतके कपड़े आगसे गरम होनेके बाद चूर होकर गिर पड़ते थे। जब इस कठिनाईका संतोषजनक उपाय ज्ञात हो गया तब कन्टोप आगसे चूर तो नहीं होता था परन्तु तब भी उसमें दो विशेष दोष रह गये थे। सौभाग्यकी बात थी कि जांच कठपुतलेपर की गयी थी। मनुष्य होता तो चल बसता। कठपुतलेको बड़ेसे चीड़की लकड़ी के बक्समें बन्द करके उसपर पुआल लाद दिया गया और पेट्रोल छिड़क दिया गया। आग लगाकर हमलोग परिणाम देख रहे थे और ऊपरका एक अधजला पट धड़ामसे पुतले के सिरपर गिरा। यदि कोई आदमी होता तो तुरन्त मर जाता। इसके बाद जो कनटोप बनाया गया उसका चंदवा इस्पातका था और सामने भी झंझरीदार इस्पात था, परन्तु जब इसे पहनकर मैंने जांचकी तो मेरी नाक जल गयी। इसलिये हमलोगोंने शिरस्त्राणका आकार बदल दिया और नाकोंकी रक्षाके लिये अबरककी दो परतें लगायी गयीं और इन परतोंके बीचमें झरी रख दी गयी जिसमें हवा रहे।

'जलते हवाई जहाजमें नये पोशाकोंकी जांच करनेके पहले हमलोग उसकी जांच प्रयोगशालामें बनायी हुई भट्टी में कर लेते हैं क्योंकि ऐसा न किया जाय तो जान जानेका डर रहता है। भट्टी खूब गरम रहती है। मैंने बिना असबेस्टसके कपड़े पहने एक बार घुसनेकी चेष्टा की थी परन्तु गरमी इतनी अधिक थी कि मैं ऐसा न कर सका। असबेस्टसके कपड़े पहनकर मैं आरामसे भट्टीमें घूम-फिर सकता था। भट्टीके भीतर जानेसे बड़ी गरमी लगती थी, परन्तु आरंभमें गरमी असह्य न थी। मैं दो मिनटतक भट्टीमें ठहर सका। यह कुछ कम नहीं है।

आगसे निकलनेके बाद जी यही चाहता है कि सब कपड़े चीड़-फाड़कर फेंक दूं, परन्तु ऐसा करनेसे शरीरका तापक्रम इतना शीघ्र घटेगा कि मृत्यु हो जा सकती है। लगभग २० मिनट तक धीरे-धीरे ठंढा होना पड़ता है और केवल तभी ऐसबेस्टसके कपड़े उतारे जा सकते हैं।'

ऐसा इरादा है कि इस प्रकारके असबेस्टसके कपड़े प्रत्येक हवाई जहाजके बन्दरगाहोंके अग्नि संरक्षकोंको दिये जायं। ऐसबेस्टस-विशेषज्ञोंने ऐसी कोठरी बनानेका ढंग भी ईजाद किया है जो इतना हलका होगा कि हवाई जहाजोंमें बनायी जा सकेगी। ऐसबेस्टसके भारी कपड़े पहने रहनेपर इस कोठरीके भीतर मनुष्य जलते हुए हवाई जहाजमें ५ मिनिटतक बैठ सका था।

रुफकी प्रयोगशालाके प्रयोगोंकी ओर गृहनिर्माता, जहाज बनानेके कारखानेवाले, रसायनज्ञ और रंगसाज सभी आकर्षित हुए हैं। सम्भव है भविष्यमें चूनेके बदले असबेस्टसका पलस्तर हुआ करे। आज भी ऐसा सम्भव है कि समुद्री जहाजके इंजन घरको इस प्रकार असबेस्टसकी दीवालोंसे घेरा जाय कि वहां आग लगनेपर आग बाहर न फैलने पावे। असबेस्टसके असाधारण ताप-अवरोधकताके

कारण असबेस्टस मिश्रित सीमेंटकी बनी चादरें बनने और बिकने लगी हैं। ये चादरें टीनकी तरह मकान छानेके काम में लायी जा सकती हैं। टीनसे बहुत भारी नहीं होतीं परन्तु टीनकी तरह गरमीके दिनोंमें ये तपती नहीं हैं।

(पापुलर मेकैनिक्सके एक लेखके आधारपर)

सहयोगी विज्ञान

(१) जोड़ीदार या युग्मपद्धति

शिक्षाके क्षेत्रमें इधर धीरे-धीरे कक्षा-पद्धति का महत्त्व घटने लगा है, और व्यक्तिगत शिक्षाको प्रधानता मिलने लगी है। कक्षा-पद्धतिसे होनेवाली अनेक हानियां अब ध्यान में आने लगी हैं और यही वजह है कि जगह-जगह व्यक्तिगत शिक्षाके प्रयोग हो रहे हैं। व्यक्तिगत शिक्षाके इन प्रयोगोंमें इटलीकी सुप्रसिद्ध डाक्टर मोण्टीसोरीको पूरी सफलता प्राप्त हुई है। लेकिन उनकी यह सफलता बालकों तक ही परिमित रही है। इंग्लैण्ड और बेलिजयममें व्यक्तिगत शिक्षाके प्रयोग हो रहे हैं, और उनमें ख़ासी सफलता भी मिली है। इसका सम्बन्ध बड़ी उम्रके बालकोंसे भी है। व्यक्तिगत शिक्षाके लिए जिन अनेक पद्धतियोंका उपयोग हो रहा है, उनमें जोड़ीदार या युग्मपद्धति भी एक है।

जोड़ीदार-पद्धतिका मुख्य हेतु यह है कि विद्यार्थी खुद अपने बलपर अपनी प्रगति करें और शिक्षकपर कम-से-कम आधार रक्खें! जब शिक्षक खुद विद्यार्थियोंको सिखाता है, तो विद्यार्थी बहुत कम सीखते हैं, और खयाल यह रहता है कि हमतो सीखनेवाले हैं, कोई सिखावेगा, तो सीख लेंगे! नतीजा यह है, कि विद्यार्थी उतना ही सीखनेको कोशिश करते हैं, जितना शिक्षक सिखाते हैं और शिक्षक भी इसी में अपनी सफलता समझते हैं कि जितना उन्होंने सिखाया है, विद्यार्थियोंने उतना सीख लिया है!

इसका एक परिणाम यह होता है कि आगे चलकर विद्यार्थी न तो दूसरोंको कुछ सिखा सकता है, न खुद अपना शिक्षक ही बन सकता है। जोड़ीदार पद्धतिका एक गौण किन्तु महत्त्वपूर्ण हेतु यह है कि विद्यार्थी न केवल अपना ही गुरु बने, बल्कि दूसरोंको भी सिखा सके!

इस पद्धतिसे एक लाभ और भी है। सामूहिक शिक्षा की पद्धतिसे जो समय बच सकता है, उससे ज्यादा समय इस पद्धतिद्वारा बचाया जा सकता है। यह पद्धति विद्यार्थियों में आत्मविश्वास, स्वावलम्बन और उद्योगपरायणता पैदा करती है। अच्छे-से-अच्छे विद्यार्थीसे लेकर मन्द-से-मन्द विद्यार्थीतक, सबको, अपनी-अपनी शक्तिके अनुसार सीखने का उत्साह और शक्ति यह देती है, और अगर समय-समय पर ऊँचे या नीचे दर्जोंके विद्यार्थियोंको अलग करके उन्हें ऊपरके दर्जोंमें चढ़ाया जाय, तो उन विद्यार्थियोंको जो कुशाग्र हैं, बिना रुके, थोड़े समयमें अपना अभ्यास पूरा करनेका अवसर देती है, और मन्द विद्यार्थियोंको अपनेसे तेज विद्यार्थियोंके साथ घसीटनेसे बचाती हैं, और उन्हें मौका देती है कि वे सहूलियतके साथ अपनी तरक्की करें!

इस पद्धतिका स्वरूप इस प्रकार है। कक्षाके दो दो विद्यार्थियों की एक-एक जोड़ी बनायी जाती है। हरएक जोड़ीके विद्यार्थी एक-दूसरेको आपसमें सिखाते हैं और जहां आवश्यकता होती है, शिक्षक की सहायता लेते हैं, और जहांतक चाहते हैं, अपनी रुचिके विषयको सीखते रहते हैं। जोड़ियां लगभग समान योग्यतावाले विद्यार्थियोंकी बनायी जाती हैं। और जहां, विषयोंकी पढ़ाई अनिवार्य नहीं है, वहां तो समान योग्यता और समान रुचिके छात्रोंकी जोड़ी बन सकती है। दो साथियोंमें से एकका दूसरेसे कुछ अधिक योग्य रहना बेहतर होता है। जोड़ियां बन जानेपर विद्यार्थियोंको उस विषयकी पाठ्य-पुस्तक देनी चाहिए, जिसका अभ्यास करना हो अगर एकसे अधिक पाठ्य पुस्तकोंका उपयोग करनेकी स्वतंत्रता हो, तो वे सब पुस्तकें उन्हें देनी चाहिएँ, और यदि उस विषयका अभ्यास साधनोंद्वारा करना हो, तो आवश्यक साधन उनके सामने रखदेने चाहिएँ फिर अपनी रुचिके अनुसार दो साथी कोई एक पुस्तक पसन्द कर लें और पहले अलग-अलग, यानी स्वतंत्ररूपसे उसका अध्ययन शुरू करें। अध्ययन करते समय जो कठिनाइयां पेश हों, उन्हें आपसमें एक दूसरेकी सहायतासे या कक्षाके

किसी भी विद्यार्थीकी सहायतासे हल कर लिया करें, इतने पर भी अगर कोई सन्देह बना रह जाय, तो अन्तमें अपने शिक्षकसे पूछें। इस प्रकार शिक्षक और साथियोंकी सलाह से जब कक्षाके विद्यार्थी अपना सबक तैयार कर चुकें तो अपने-अपने साथीसे उसकी जांच करवा लें। इस तरह जब एक साथी अपने विषयको भली-भांति जान लेता है, तो दूसरे साथीको उससे पूरा विषय सीख या समझ लेना पड़ता है, और पहले साथीको अपने दूसरे साथीसे वह काम सीख लेना पड़ता है, जो दूसरा सीख चुका है। इस तरीके से दोनों साथी एक दूसरेके शिक्षक बन जाते हैं, और हर एक विद्यार्थी यह समझने लगता है कि मैं भी कुछ जानता हूं और दूसरोंको सिखा सकता हूं। इस प्रकार कक्षाके सभी विद्यार्थियोंमें एक प्रकारका आत्मविश्वास उत्पन्न हो जाता है।

इसमें शक नहीं कि शिक्षककी तनिक सी सहायतासे विद्यार्थी बहुत कुछ सीख सकते हैं; लेकिन यह भी हो सकता है कि विद्यार्थी आपसमें पूछकर जो कुछ सीखें, उसमें ग़लतियाँ रह जायँ। इसके लिए ज़रूरी है कि शिक्षक चौकन्ना रहे, कक्षा में घूमता-फिरता रहे. और देखे कि कौन छात्र कहाँ ग़लती कर रहा है, और क्यों कर रहा है। जहाँ गलती मालूम हो, तुरन्त दुरुस्तकर दिया करे। अगर पाठ्य-पुस्तक एक ही हो, तो अच्छा तरीका यह है कि उसके थोड़े-थोड़े पाठोंकी एक-एक छोटी पुस्तक बना दी जाय और फिर यह विद्यार्थियोंकी रुचिपर छोड़ दिया जाय, कि वे कौनसा पाठ तैयार करेंगे। जहाँ एक ही साथ भिन्न-भिन्न कक्षाओंके छात्रोंको आवश्यक भोजन देनेवाली पुस्तकें उपलब्ध हों, और अभ्यासके स्थूल परिमाणका विशेष मोह न हो, वहाँ शिक्षकको स्वयं ही अनेक प्रकारकी पुस्तकें चुनकर विद्यार्थियोंके सामने रखनी चाहिएँ। विद्यार्थी उनमेंसे अपनी योग्यताके अनुसार आवश्यक पुस्तकें चुन सकते हैं और बिना डरे या हाय-हाय किये आरामसे अपनी प्रगति कर सकते हैं। विद्यार्थियोंके काम आनेवाले साधनोंका भी कुछ ऐसा प्रबन्ध होना चाहिए, जिससे उन्हें एक ही साथ अनेक विषयोंका काम करनेमें ज़रा भी कठिनाई न हो। उदाहरणके लिए शब्दकोश जैसी पुस्तकोंके कई हिस्से कर डालने चाहिएँ, जिससे एक ही कोश एक साथ बहुतोंके काम आ सके। इस पद्धतिमें शिक्षकको बहुत ही सतर्क रहना पड़ता है। जब इस पद्धतिके अनुसार काम शुरू किया जाता है, तो प्रायः एक बारगी ही सारी कक्षाके छात्रोंकी कठिनाइयोंको हल करनेका कठिन काम शिक्षकके माथे आ पड़ता है। सारी कक्षा मधुमक्खीके छत्ते का एक नमूना बन जाती है। सब अपने तईं सीखते होते हैं। फिर भी शिक्षकका काम इतना बढ़ जाता है कि उसे दम मारनेकी फुरसत नहीं मिलती! कारण यह होता है कि हरएक विद्यार्थी अलग-अलग सीखता है, और हरएकका अपना नया सबक रहता है। इससे साधारण स्थितिमें कक्षाके अन्दर तीन घण्टोंमें जितना काम हो पाता है, उतना काम इस नये ढंगसे विद्यार्थी एक ही घण्टेमें कर सकते हैं। इसीसे शिक्षकका काम भी उतना ही बढ़ जाता है। शिक्षक का काम है कि वह विद्यार्थियोंको स्वावलम्बी बनाये। अतएव उसका कर्त्तव्य हो जाता है कि वह जहाँतक हो सके, छात्रोंको रास्ता सुझाता रहे। दूसरे, विद्यार्थियोंकी प्रवृत्तिके स्वरूपको ध्यानमें रखकर शिक्षकको उनके सामने हरएक पाठके भिन्न-भिन्न अंग जैसे, वाचन, लेखन, हिज्जे, आदि इस तरह रखने चाहिएँ, जिससे वे अलग-अलग अंगोंका अभ्यास कर सकें और शिक्षक उन्हें राह दिखा सकें!

विद्यार्थियोंकी प्रगतिका अन्दाज़ निकालनेके लिये इस पद्धतिमें परीक्षाका उपयोग नहीं किया जा सकता। अतएव आवश्यक है कि शिक्षक देखे कि हरएक विद्यार्थीके पास उसके अपने विषयोंकी अलग-अलग एक डायरी है, जिसमें वह अपनी रोज़-रोज़की प्रगतिका ब्यौरा लिखता है! इसके सिवा, विद्यार्थीकी प्रगतिको ध्यानमें रखकर शिक्षकको चाहिए कि वह उसे उसकी योग्यताके अनुसार नया-नया काम देता चले। इस पद्धतिके अनुसार अलग-अलग जोड़ियोंके साथ यदि समय-समय पर शिक्षक स्वयं भी शामिल होता रहे और काम करे, तो छात्रोंको उससे बहुत लाभ पहुंच सकता है। (गि०, शिक्षणपत्रिकामें)

संस्कृत साहित्यमें विमान

स्कृत-साहित्यमें विमानोंका वर्णन पर्याप्त मिलता है। परन्तु इसकी वास्तविकता-अवास्तविकताके विषयमें सब एकमत नहीं। कुछ लोगोंकी तो इसमें यह सम्मति है कि यह केवल कवि-कल्पनाका ही विषय है, किन्तु इसके विरुद्ध कुछ लोग

इसे सत्य मानते हैं और उनका विश्वास है कि प्राचीन काल में हमारे यहां विमान बनते थे।

इस विषयमें एक भारतीय उद्भट विद्वान्का तो यह मत है कि वैदिक-साहित्यमें विमान बनानेकी विधि अब भी मौजूद है, और उससे विमान बनाये भी जा सकते हैं। वे यह भी कहते सुने जाते हैं कि वैदिक विज्ञानके सम्मुख वर्तमान विज्ञान कुछ नहीं है। अस्तु, हो कुछ भी, परन्तु इस लेखमें हम यथाशक्ति संस्कृत-साहित्यके सहारे विमानों की सत्ताके विषयमें अपने विचार प्रकट करेंगे।

संस्कृतके सब शब्द प्रायः यौगिक और योगरूढ़ होते हैं, इसलिये वे अपने वाच्य पदार्थ पर अच्छा प्रकाश डालते हैं। कपाट करनीर और केश आदि शब्दोंकी व्युत्पत्ति इसका ज्वलन्त प्रमाण है। ऐसे शब्द एक नहीं दो नहीं, अपितु सहस्रों हैं और शब्दोंकी इस व्युत्पत्तिकी दृष्टिसे जब हम, 'विमान' शब्दपर विचार करते हैं तो साफ मालूम होता है कि विमान कोई उड़नेवाली वस्तु ही रही होगी, क्योंकि इसकी व्युत्पत्ति है—

"विः पक्षी एव मान उपमा यस्य तद् विमानम्"

अर्थात्—जो पक्षीकी तरह आकाशमें उड़े वही विमान है। इसके सिवाय संस्कृत कोश भी इस बातके प्रमाण हैं। वे हमें बतलाते हैं कि—इन शब्दोंका अर्थ यही है कि

"व्योम-यानं विमानो स्त्री विमानं व्योमयानकम्"

विमान व्योमयानका ही नाम है।

कुछ लोगोंका यह भी विचार है कि देवताओंके वाहन भी जो कि पशु-पक्षी आदिके आकार-प्रकारके बताए जाते हैं, वे विमान ही रहे होंगे, क्योंकि ब्रह्माजीके विषयमें एक स्थान पर यह आया है कि—

"हंस-युक्ता विमानाग्रे साक्ष सूत्र कमण्डलु"।
संयाता ब्रह्मणः शक्तिर्ब्रह्माणी साभिधीयते॥"

इस श्लोकमें "हंसयुक्ता विमानाग्रे" शब्दोंसे हंसाकार विमानका ही अनुमान होता है। संभव है महादेवजीका वाहन वृषभ भी वृषभाकार विमान ही रहा हो क्योंकि एक स्थानपर ऐसा लिखा है—

"ततो वृषभमास्थाय पार्वत्याः सहितः शिवः।
वायुमार्गेण गच्छन्वै शुश्राव रुदितं स्वनम्।"

इस श्लोकमें 'वृषभ'पर बैठकर वायु-मार्गसे जाते हुए शिवजी' इस अर्थसे वृषभ शब्दका अर्थ वृषभाकार विमान ही हो सकता है। वायु-पुराणके निम्न-लिखित श्लोकसे यह विषय और भी अधिक स्पष्ट हो जाता है—

'विमान-यानैः श्रीमद्भिः शतसंख्यैर्दिवौकसः।
...................मेरु पर्वणि पर्वणि॥'

अर्थात्—मेरु-पर्वत देवताओंके सैकड़ों विमानोंसे सुशोभित था। वाल्मीकि-रामायणमें तो इसका स्पष्ट उल्लेख है, देखिये उसमें लिखा है—

पुष्पकं नाम भद्रन्ते विमानं सूर्यसन्निभम्।
हृतं निर्जित्य संग्रामे कामगं दिव्यमुत्तमम्॥

अर्थात् रावणने कुबेरको युद्धमें जीतकर उसका दिव्य और इच्छानुसार चलनेवाला विमान इसने छीन लिया था। इस विषयमें महाभारतमें आये हुए दो प्रसंग इस प्रकार हैं—

(१) घोड़ोंकी चालसे आकाशमें आकर अयोध्यापति ऋतुपर्ण उनके (विमानोंके) वेगातिशयको देखकर विस्मित हुए।

(२) श्रीमान् कुरुनन्दन जब इन्द्रके दिव्य रथपर चढ़कर आकाश-मार्गसे जा रहे थे, तब मृत्युलोक-निवासियोंके दृष्टि पथसे अदृश्य होनेपर, उन्होंने आकाशमें सहस्रों विमान देखे। एक विद्वानने संस्कृत-ग्रन्थोंके आधारपर यह भी लिखा है—

"प्राचीन कालमें भारतमें विमानोंके बनानेवाले शिल्पी पर्याप्त संख्यामें थे। उनके बनाये हुए विमान बाजारमें विक्रयार्थ रखे जाते थे, और वे ग्राहकोंको अपने विमानोंकी कीमत, दृढ़ता, प्रगति और सुभीते आदि विषयोंको सप्रमाण समझाकर और उनको उड़ाकर उनसे खरीद लेनेका आग्रह भी करते थे। एक विक्रेताके निम्न-लिखित शब्द इस विषय को और भी स्पष्ट कर देते हैं—

'यह विमान एक सहस्र मनुष्योंको बड़ी आसानीसे ले जा सकता है।"

"यन्मानुष सहस्राणि वहत्यव्यवहेलया"।

महाभारतके आदि पर्वमें एक जगह आया है कि—बृहस्पतिकी एक बहिन थी, जो कि ब्रह्मवादिनी और योग-विद्याकी जाननेवाली थी। उसके गर्भसे विश्वकर्मा उत्पन्न हुआ, उसने देवताओंके लिये सहस्रों प्रकारके शिल्प संबंधी

*यन्मानुषसहस्राणि वहत्यव्यवहेलया।

आविष्कार किये, और उसीने उनके लिए विमान भी बनाये। † यह भी कहा जाता है कि उसने फिर अनेकोंको विमान बनानेकी यह विद्या भी सिखायी।

विमान-विद्याके आपसमें सीखने-सिखानेके प्रमाण भी संस्कृत साहित्यमें अनेकों स्थानोंमें मिलते हैं। इस विषयका एक पद्य-खण्ड यह है—

विमानं साधनं तस्मै तथैवहि दिदेशसः।

अब यहां फिर यह प्रश्न होता है कि ये विमान कैसे बनाये जाते थे, और कैसे चलाये जाते थे? यद्यपि इस विषयमें ठीक तरह कुछ भी नहीं कहा जा सकता, फिर भी नीचे लिखे कुछ प्रमाण विचारणीय अवश्य हैं-

(१) तस्मिन्वातयन्त्रविमानके।

(२) कीलिकाहतिमात्रेण।

(३) प्रादात्सौभमयस्मयम्।

अर्थात् वे विमान वातयन्त्रात्मक होते थे। वातयन्त्रात्मक का अनुवाद हम बेलून या एरोप्लेन कर सकते हैं। इनके चलानेके विषयमें तो साफ लिखा है कि ये कीलीके दबाने से चलते थे। ये विमान किस धातुके बनते थे, इस विषय में ऊपरके अवतरणमें 'अयस्मयम्' शब्द आया है, जिसका अर्थ लोहेका बना हुआ विमान है। सम्भव है अन्यान्य धातुओंके भी विमान उस समय बनते हों।

अन्वेषणसे हमें यह भी मालूम होता है कि भारतीय Engineering Philosophy शिल्प-संहितामें जिन वैज्ञानिक विद्याओंका वर्णन आया है उनमें एक विमान बनानेकी विद्या भी है। उन विद्याओंका वर्गीकरण इस प्रकार है—(१) कृषि-विद्या (२) जल-विद्या (३) खनि-विद्या (४) नौका-विद्या (५) रथ-विद्या (६) विमान-विद्या (७) वास्तु-विद्या (८) प्राकार-विद्या (९) नगर-विद्या (१०) यन्त्र-विद्या

इस विषयमें राय साहब पं० के० बी०का मत है कि प्राचीन कालमें भारतमें जल, स्थल और आकाश-तीनोंमें चलनेवाले यान होते थे। इनके नाम क्रमशः इस प्रकार थे—

(१) नौका (२) रथ (३) अग्नि-यान

वह यह भी कहते हैं कि इन तीनों यानोंके शिल्प-शास्त्रका नाम 'सविन-शास्त्र' था। उसमें इन तीनोंका वर्णन इस प्रकार आया है—

'नौका रथाग्नियानानां कृतिः साधनमुच्यते।'

वैदिक मेग्जीनमें वे एक जगह यह भी लिखते हैं कि ये विमान संभवतः नप्थ-सदृश किसी तेलसे बनाये हुए hot air गर्म वाष्पसे चलते होंगे। अथवा उदान (Hydrogen) वायुसे। आकाश-यान कैसे होते थे, और कैसे चलते थे—इस विषयके विशेष अन्वेषणके लिये हमें इन पुस्तकोंका अध्ययन करना चाहिए।

१ मय-संहिता २ कश्यप-संहिता. ३ भौतिक-विज्ञान

बस, स्थानसंकोचसे हम इस विषयको अब यहीं समाप्त करते हैं, यदि फिर कभी अवकाश हुआ तो इसपर और अधिक प्रकाश डालनेका प्रयत्न करेंगे, परन्तु अन्तमें यह कह देना चाहते हैं कि हमारे यहां आकाशमें उड़नेकी विद्या थी, और वह न केवल भौतिक ही थी, अपितु आध्यात्मिक भी थी, क्योंकि योगियोंके उड़नेकी बातें प्रायः हम सब परंपरासे सुनते आरहे हैं। इस विषयमें अब भी ऐसे योगी हैं। योगी चाहे न भी हो, परन्तु ऐसे वैज्ञानिक तो अवश्य हैं कि जो वर्तमान कालीन विमान-विद्यासे कहीं अधिक योग्यताके आविष्कार करनेकी शक्ति रखते हैं।

(वाणीसे)

सम्पादकीय टिप्पणियां

कवरके चित्रका परिचय

मार्चके कवरका चित्र

किसी समय पृथ्वीपर बहुतसे जन्तु पाये जाते थे जो अब नहीं मिलते, पर उनकी हड्डियां मिलती हैं। इन्हींमेंसे एक जीव चौसिंघा (Arsinotherium) है, जिसका चित्र मार्चके कवरपर बना है। यह जीव मिश्र देशमें लगभग एक लाख वर्ष बीते (Eocine)

†या दिव्यानि विमानानि त्रिदशानां चकार ह।

किसी प्राचीन युगमें इसी धरतीपर रहते थे। इनकी शकल सूरत, भारी डीलडौल और विचित्र सींगको देखकर आज कलके जीवित जन्तु गेंडेका ध्यान आ जाता है। वास्तवमें यह गेंडेका पुरखा है भी। सृष्टिके विकासमें इन्हींके समान जीवोंसे बदलते बदलते आजकलका गेंडा बन गया। पुरातन कालके पशुकी हड्डियां मिश्र देशके फायुम नगरमें उसी युग की ऊपरी बालूई भूमिसे मिला है और इससे डा० ऐन्ड्रूज ने हाथीके पूर्वजोंका पता लगाया है। इस विचित्र पशुकी खोज मिश्रके भौगर्भिक खोज मंडलके मि० ब्रैडवेलने किया, और इसका नाम आरसीनोथिरियम (Arsinotherium) चौसिगा रखा गया। इसके बड़े सींगोंकी जोड़ी नाककी हड्डियोंसे सम्बद्ध थी और एक छोटे सींगकी जोड़ी छोटी हड्डियोंकी जोड़ियोंसे इनके पीछे लगी थी। इन्हीं अस्थि खंडोंके मिलनेसे इस चतुः शृङ्गकी आकृति बनायी गयी।

श्री एस० के० एस-सी०

इस अङ्कके कवरके चित्रका परिचय

मध्यकालीन युगतक युरोपके विद्वानोंका यही विश्वास था कि सूर्यके पृथ्वीके चारों ओर घूमनेसे ही दिनरात होते हैं। और इसमें गौरव समझते थे कि जिस नक्षत्रपर मनुष्य जाति पैदा हुई है उसके चतुर्दिक् सूर्यचन्द्र आदि सभी ग्रह चक्कर लगाते हैं। लेकिन कॉपरनिकसने यह सिद्ध कर दिया कि पृथ्वी सूर्यके चारो ओर घूमती है न कि सूर्य पृथ्वी के। दिनरात तो पृथ्वीके अपनी कीलीपर लट्टूकी तरह घूमनेसे होते हैं। कवर-चित्रमें पृथ्वीका सूर्यके चारों ओर एक दीर्घ वृत्ताकार मार्गमें घूमना दिखाया गया है। वास्तव में यह मार्ग वृत्तसे कुछ ही भिन्न है और सूर्य पृथ्वीसे तेरह लाख गुना बड़ा है।

पृथ्वी इस मार्गका पूरा चक्कर एक सालमें लगा लेती है। ऋतु-परिवर्तन पृथ्वीके इस मार्गमें विविध स्थितियोंमें होनेसे होता है। अब प्रश्न यह उठता है कि पृथ्वीको घुमाये रखनेकी शक्ति कहांसे आती है? इसका उत्तर सर आइज़क न्यूटनकी मूलखोज आकर्षण-के सिद्धान्तमें मिलता है। इसके अनुसार प्रति वस्तुओंके मध्य एक आर्कषक शक्ति उसके द्रव्यके कारण होती है जिससे वे एकको दूसरेके साथ खींच लेनेकी चेष्टा करते हैं। अतः सूर्यको स्थिर मानते हुए पृथ्वीको इस शक्तिके विवश सूर्यसे जा टकराना चाहिये। परन्तु पृथ्वी गतिशील है। आकर्षण शक्तिका प्रभाव पृथ्वी को दूर सीधे चले जानेसे रोक देना है। और सूर्यके चारों ओर घुमाये रखता है। क्योंकि यदि कभी यह आकर्षण शक्ति नष्ट हो जाय तो जैसा चित्रमें बांयीं ओर चित्रित किया गया है पृथ्वी अपना मार्ग छोड़ सूर्यसे दूर तीरकी दिशामें चलने लगे। यह आकर्षण शक्ति ही 'शक्ति' रूपधर सूर्याश्वोंपर आरूढ़ अपने आकर्षणकी जंजीरसे तालिका जटित नीलिमामय गगनमें पृथ्वीको घुमाती हुई विराजमान दृष्टिगोचर होती है। यह चित्र सौर-परिवारसे लिया गया है।

—हरिश्चन्द्रगुप्त

किसानोंकी मोटी हाय

परमहंस राघवदासजीने आजमें ईख बोनेवाले किसानों की करुण कहानी लिखी है, उसका कुछ अंश यह है—

"बाढ़से १५००से अधिक ग्राम तबाह हो चुके ही थे। जो बचे वे दहारीसे गये। खरीफ योंही नष्ट हो गयी। रबीकी कुछ आशा थी तो कुसमय वर्षा तथा ओले पत्थरने उसका भी वारान्यारा कर दिया। दुखिया किसानोंको ईखकी फसलका बड़ा सहारा था। पर गोरखपुर, बस्ती और छपरा जिलेके चीनीके मिल मालिकोंकी सभा गत ९ मार्चको गोरखपुर में हुई जिसमें तय हुआ है कि चीनीकी मिलें १ अप्रैलसे बन्द कर दी जायँ।

इस वर्ष किसानोंने और किसी फसलमें तरता न देख कर अधिक ईख बोयी थी। जहांतक जानकारी है गतवर्षकी अपेक्षा २६ फीसदी रकबा अधिक ईख बोयी गयी थी। इसलिये किसानोंने मिलोंमें अधिक गाड़ियां भेजना शुरू किया। वहां गाड़ियां ७।७ दिन खड़ी रहीं। अभी सलेमपुर में सुना है कि, एक किसानने २५ मनकी गाड़ी १) में बेच डाली। इस तरह योंही ईख मिट्टीके मोल बिक रहा है यदि १ अप्रैलसे मिलें बन्द हुई तो १५ फीसदीसे अधिक ईख बिना पेरे रह जायगी।

अनुमानतः गोरखपुर जिलेभरमें इसवर्ष २ करोड़ रुपये की फसल है। उसमेंसे २५ प्रतिशत ईखके न पेरे जानेके माने यह है कि किसानोंको ५० लाख रुपयोंका घाटा उठाना पड़ेगा। जब किसान एक एक पैसेके मुहताज हैं तो ५०

४—हवाई हथौड़ा

एक नये मेलका हथौड़ा बना है जो दबी हुई हवाके जोरसे चलता है। इसमें बड़ी शक्ति रहती है, परन्तु कारीगर इच्छानुसार इससे हल्कीसे हल्की चोट लगा सकता है, यहाँतक कि इसकी चोटोंको थरथराहट मात्रमें बदला जा सकता है। मोटर-कारोंके पिचके हुए मडगार्डके सही करनेमें यह विशेष उपयोगी होगा। हथौड़ेका सिरा करीब तीन सेरका है और घोड़ा खींचनेपर १ मिनटमें ६ हजार बार चोट मारता है। इच्छानुसार यह गहरी आध इञ्चकी चोटें मार सकता है, और ऐसी हल्की चोटें भी कि रंगी चादरका रंग ज़रा भी न बिगड़े। गो० प्र०

५-बटन दबानेसे जलते हुए सिगरेट मिलेंगे

अब दियासलाइयोंकी झंझट मोटरके शौकीनोंको न रहेगी। यन्त्र-पट्ट पर अब ऐसी डिब्बी लगायी जा सकती है जिसमें सिगरेट रहेंगे। बटन दबाते ही एक सिगरेट निकल पड़ेगा, और मजा यह कि बिजलीकी जोरसे इसका सिरा तुरंत जल भी उठेगा। इस प्रकार मोटर चलानेवालेको चक्केसे अपने दोनों हाथोंकी एक साथ ही उठानेकी कोई आवश्यकता न रहेगी। गो० प्र०

६—एक कीड़ेका स्मारक स्तंभ

अस्ट्रेलियाको नागफनीकी महामारीसे बचानेके स्मारक स्वरूप एक कीड़ेके लिये स्तंभ खड़ा किया जा रहा है। लगभग १०० वर्ष हुए किसीने दक्षिण अमरीकासे नागफनी लाकर अपने गमलोंमें बांध दिया। थोड़े ही दिनोंमें गमलों में नागफनी उगानेका फैशन चल पड़ा। फिर जब यह पौधा वहां बहुतायतसे मिलने लगा तो लोग इसे मेंड़ोंपर उगाने लगे। कुछ ही वर्षोंमें यह इतना फैला कि इसे काट डालना कठिन हो गया। अस्ट्रेलियामें आदमी कम हैं भी। १९२५ में नागफन्नीने १० करोड़ बीघा उपजाऊ जमीन छेंक लिया और प्रति वर्ष १५ लाख बीघाके हिसाबसे बढ़ने लगा। चारो ओर नागफनीके जंगल ही जंगल दिखलाई पड़ने लगे। तब वैज्ञानिक लोग दक्षिण अमरीका गये और इस बातकी खोज की कौनसे जानवर नागफन्नी खाते हैं। उनको और कुछ तो न मिला। केवल एक कीड़ा मिला जो नागफन्नी खाकर ही जीता था। वैज्ञानिक लोग २,७५० कीड़े पकड़कर अपने साथ लाये, अस्ट्रेलियामें लाकर छोड़ देनेपर वे खूब बढ़े और आज कीड़ोंने करीब तीन हिस्सा जमीन से नागफन्नी साफ कर डाला है। वस्तुतः स्मारक बनाने योग्य ही काम किया है। गो० प्र०

७—सुषुप्त मनके चमत्कार

वियनाके डाक्टर डी० एडवानके यौगिक चमत्कारोंका वर्णन करते हुए २४ नवम्बर, ३६ का "स्वराज्य" एक लम्बे लेखमें उक्त डाक्टर महोदयके इस कथनको उद्धृत करता है—

"योगीके चमत्कारोंका रहस्य यह है कि वह अपने सुषुप्त मन याने अन्तर्मनको अपने वश कर लेता है। अन्तर्मन की शक्तियां इतनी प्रबल हैं कि अभी वैज्ञानिक उनका सम्पूर्ण रहस्य ही नहीं समझ पाये हैं। उन्हें समझनेके लिए उन्हें वर्षों लगेंगे! सुषुप्त मनपर आधिपत्य जमा लेना एक-दो दिनमें संभव नहीं है। उसके लिए वर्षोंका सतत अभ्यास आवश्यक है।"

"मैं जिस समय चाहूं, सो सकता हूं और जितने समय तक चाहूं निद्रितावस्था में रह सकता हूं। योगी भी इसे कर सकते हैं। सुषुप्त मनके वशमें हो जानेपर शरीरपर होने वाले व्यापारोंका कुछ भी प्रत्यक्ष असर नहीं होता। जलते हुए अंगारोंपर चलना योगी के लिए साधारण बात है। अन्तर्मनको वशमें कर लेनेपर शरीरको कुछ भी कष्ट अनुभव नहीं होता।" आगे चलकर सहयोगी कहता है—

"यहां प्रसंगवश हम यह भी बतला देना चाहते हैं कि एक योगीको शरीरके एक भागपर चीरफाड़की आवश्यकता पड़ी। डाक्टरने उन्हें क्लोरोफार्म सुंघाना चाहा। आपने कहा, 'मुझे क्लोरोफार्मकी जरूरत नहीं है। मुझे जरा भी दर्द नहीं होगा आप अपने औजार गरम और तेज कीजिए मैं निश्चल रहूंगा।' डाक्टर बड़ी झिझकके बाद राजी हुए। देखा योगी महाशय सवा घण्टेतक आपरेशन टेबलपर बिना क्लोरोफार्म के पड़े शस्त्र-क्रिया कराते रहे। उनके चेहरेपर जरा भी सिकुड़न न आयी।"

स्वर्गीय स्वामी सियारामजीने देहरादूनमें ठीक इसी तरह भगन्दरका आपरेशन कराया था। सहयोगीने जो कुछ लिखा है, मानों उन्हींका वर्णन किया है। रा० गौ०
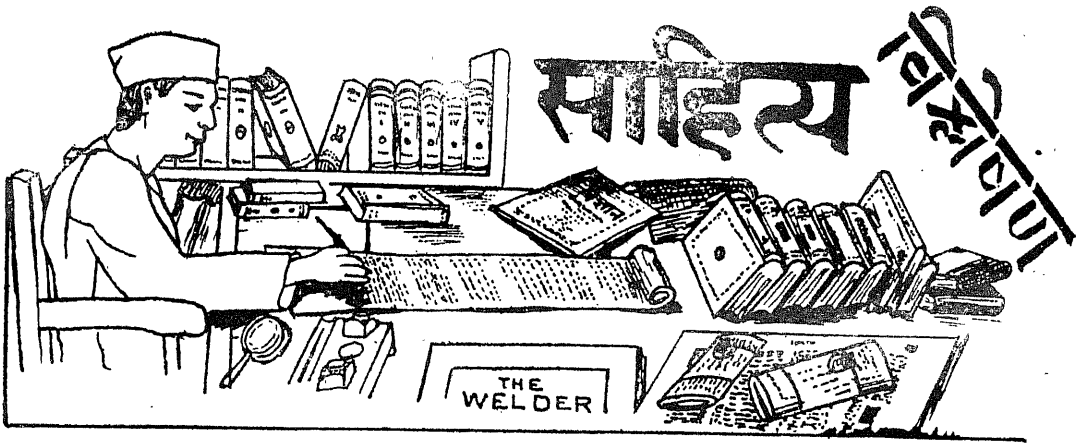
लिपिकला—प्रणेता सुलेखाचार्य्य श्रीमान् पं० गौरीशंकर भट्ट। प्रकाशक, अक्षरविज्ञानकार्यालय, मसवानपुर, कानपुर। १९९३ वि०। मूल्य चार आना मात्र। डबलक्रौन १६ पेजी के ३६+३६ = ७२ पृष्ठ। लिपिकलाका परिशिष्ट। ७×१९॥ ×१६ पृष्ठ। मूल्य ।) मात्र।

हमारे हिन्दी स्कूलोंमें कहनेको तो सुलेख-शिक्षाका प्रबन्ध रहता है, परन्तु वास्तवमें नाम ही नाम है। जो कुछ प्रबन्ध है उससे सच पूछिये तो कुलेखनकी शिक्षा होती है, सुलेखनकी नहीं। और एक बार जो बुरी लिखावटपर अंगुलियां मँज गयीं तो सारे जीवन पछताना ही हाथ आता है। जो लिपिपुस्तकें और स्लिपें प्रचलित हैं, वह इतनी निकम्मी हैं, ऐसी अवैज्ञानिक हैं, ऐसी भद्दी हैं कि उनसे अभ्यास करानेमें अबोध बालक ठीक मार्गसे भटक जाते हैं। उनके शिक्षक भी प्रायः उसी अन्धपरम्पराकी शिक्षा पाये हुए कुलेखक ही होते हैं। उनसे यह आशा करना वृथा है कि स्लिपों और लिपिपुस्तकोंकी भूलोंका निराकरण करके स्वयं अच्छा लिखना सिखावेंगे। इन शिक्षकोंके हितके लिये भट्टजीने लिपिसमीक्षा नामकी पोथी प्रकाशित की थी, परन्तु एक ओर उससे कम ही शिक्षकोंने लाभ उठाया, दूसरी ओर शिक्षाविभागकी ओरसे इन रद्दी स्लिपों और लिपिपुस्तकोंका रोजगार न तो बन्द किया गया और न इस बात पर जोर दिया गया कि प्रकाशक उनमें सुधार करके शुद्ध सुलेखनका प्रचार करें। वह समीक्षा अरण्य-रोदन ही ठहरी। शिक्षाविभागने उसे गर्ल्स स्कूलोंके लिये "टीचर्स हैंडबुक" के रूपमें स्वीकार तो किया पर इससे अधिक कुछ भी हुआ नहीं दीखता।

परन्तु भट्टजी अपनी धुनके पक्के हैं। सर्वांगदूषित लिपिपुस्तकों द्वारा आज भी कुशिक्षाकी लीक प्रत्यक्ष पिटवायी जाती देखकर भी भट्टजी हताश नहीं हुए। आपने "लिपिकला" और "लिपिकलाका परिशिष्ट" निकालकर फिर भी भूले-भटकोंको मार्ग दिखानेका बीड़ा उठाया है। परिशिष्टमें आपने विस्तारसे विविध लिपिपुस्तकोंके एक-एक अक्षरके निर्माणमें जो भूलें हुई हैं विशद रीतिसे दिखायी हैं। मूल पुस्तकमें लिपिकलाकी परिभाषा है। अक्षर और लिपिके सम्बन्ध बताये हैं। सौन्दर्य्य, बाह्यसौन्दर्य्य, सुलेख, विद्यार्थी और सुलेख, उपेक्षा और अभिमत लेखविज्ञान, आलेख्याक्षर और लेख्याक्षर, अलंकृत अक्षर, मुद्राक्षर और चित्रबन्ध, तथा लेखन और अक्षर-निर्माणविधि, इन्हें मिलाकर कुल तेरह प्रक.ण हैं। अन्तमें आकृतिखंडमें इन सब विषयोंके उदाहरण दिये हैं।

आपने इस पुस्तकमें नागरी अक्षरोंके एक-एक जोड़को पहले अलग-अलग दिखाया है। फिर उन्हें एकमें जोड़कर एक सुन्दर अक्षर बना देनेकी प्रक्रियाका बड़ी ही सुबोध-शैलीसे वर्णन किया है। वर्णमात्रा और मीलित वर्णोंके जोड़ोंकी विवेचना ही आपने नहीं की है वरन आपने भांति-भांतिके अलंकृत अक्षर, मुद्राअक्षर, सांकेतिक अक्षर, चित्र-बन्ध यानी खतेतुगरा आदि लिखनेका भी बड़ा सुन्दर विवेचन किया है। अंग्रेज़ी आदिमें अलंकृत अक्षरोंकी कमी नहीं

है, परन्तु छापेके संकुचित क्षेत्रने नागरी अक्षरोंकी अलंकृति की रेढ़ मार दी। हमारा तो ऐसा अनुमान है कि बंगला, गुजराती, उड़िया, तेलुगु, गुरुमुखी आदि अक्षर भी देवनागरी के ही अलंकृत रूपोंके विकासमात्र हैं, जिनका अर्धविकसित रूप टैपोंमें ढलकर स्थायी बन गया है। हमारे यहाँ सुन्दर लिखनेकी चाल पुरानी है। पुराने लेख और हाथके लिखे ग्रंथ इस बातके गवाह हैं। हमारे बड़े सौभाग्यकी बात है कि फौंटेनपेन, टैपरैटर, त्वरालेखन और छापेके युगमें भी भट्टजीने प्राचीन सुलेखन परम्पराको केवल सुरक्षित ही नहीं रखा बल्कि उसे बहुत आगे बढ़ाया और खूब सजाया और सँवारा है। हमें खेद है दीवान चन्दूलाल सरीखा इनके गुणोंकी कीमत लगानेवाला कोई नहीं है। प्रत्येक लेखन-शिक्षकको चाहिये कि आठ आने खर्च करके इन दोनों पुस्तकोंका अनुशीलन करे और सदा अपने पास रखे और अन्धपरम्परावाली कुशिक्षासे मुक्त होनेके लिये फिरसे शुद्ध और सुन्दर लिखनेका अभ्यास करे। शिक्षाविभागसे हम जोरदार सिफारिश करते हैं कि प्रत्येक लिखना सिखानेवाले पाठकको यह पुस्तकें खरीदकर भेट करे और शिक्षकोंकी सुलेखनकी परीक्षा लेनेके लिये समय नियुक्त करे। अगर थोड़ा ध्यान देकर शिक्षाविभाग उपाय करे तो लेखनकलामें अब भी यथेष्ट सुधार संभव है।

—रामदास गौड़

पञ्चभूतविज्ञानम् और त्रिदोषविज्ञानम्—ले० कविराज उपेन्द्रनाथदासजी, भिषगाचार्य काव्यतीर्थ व्याकरण-तीर्थ, प्रोफेसर तिबिया कालेज देहली, पृष्ठसंख्या ३०६ तथा २७८ मूल्य २) तथा १॥।)।

पाठकोंसे छिपा नहीं कि १९३३ में मेरे द्वारा त्रिदोष मीमांसा नामक पुस्तक प्रकाशित की गयी। और साथमें घोषणा की गयी कि इस पुस्तकके उत्तरदाताको ५००) रु० का पुरस्कार दिया जायगा। १९३४तक इसका किसीने सन्तोषप्रद उत्तर न दिया। इसीलिये अहमदाबाद आयुर्वेद सम्मेलनावसर पर १०००)रु०की घोषणा कर दी गयी।

उक्त पुस्तकको जिन जिन विद्वान् वैद्योंमें पढ़ा अत्यन्त प्रभावित हुए। और बड़े बड़े विद्वान वैद्योंने परामर्श करके इस विषयके निर्णयार्थ एक सम्भाषा परिषद करनेकी योजना की। १९३५ नवम्बर मासमें काशी विश्व-विद्यालयमें श्रीयुक्त महामना पं० मदनमोहन मालवीयजीकी स्वागताध्यक्षतामें यह संभाषा परिषद हुई। इसमें भारतके बड़े बड़े लगभग ४०० विद्वान वैद्योंने भाग लिया। इस सम्भाषा परिषदके कार्य सम्पादनार्थ एक समिति बनायी गयी थी जिसके मन्त्री थे नासिकके पं० वामन दातारजी शास्त्री। उनकी ओर से पंचभूत सम्भाषार्थ तथा त्रिदोष सम्भाषार्थ एक-एक प्रश्नावली प्रकाशित हुई थी। उस समय उस सम्भाषा परिषदमें उसी प्रश्नावलीपर वादविवाद हुआ। उस समय उन प्रश्नोंके उत्तरस्वरूप श्रीयुक्त कविराज उपेन्द्रनाथजी पञ्चभूत विज्ञानम् तथा त्रिदोष विज्ञानम् नामक निबन्ध वहां लिखकर लाये थे, शोकसे कहना पड़ता है कि आपके उक्त निबन्ध वहां न पढ़े जा सके न सुने जा सके। उन्हीं निबन्धों को जो आपने संस्कृतमें लिखा था भाषा टीकासे युक्त करके प्रकाशित किया है। यद्यपि कविराजजी कई बार "त्रिदोष मीमांसा" पर विवाद करनेकी इच्छासे प्रान्तीय सम्मेलन और अखिलभारतीय आयुर्वेद सम्मेलनपर आग्रह कर चुके थे, तथापि मेरी ओरसे यही कहा जाता था कि यह विषय मौखिक शास्त्रार्थका नहीं जिस प्रकार मेरी ओरसे लेखबद्ध आक्षेप रक्खे गये हैं उसी तरह आपकी ओरसे भी लेखबद्ध उत्तर प्रकाशित होना चाहिये। आपने वचन भी दिया था किन्तु उक्त पुस्तकको पढ़नेपर मेरी आशा निराशामें परिणत हो गयी। मेरी लिखी त्रिदोषमीमांसाके आक्षेपयुक्त अंशोंका कुछ भी समाधान नहीं किया गया। आपने किन किन प्रश्नोंका किस रूपमें उत्तर दिया है? वह उत्तर कहां तक आयुर्वेद सिद्धान्तोंकी रक्षा करते हैं? उनके उत्तरसे क्या सिद्ध होता है, इसकी हम किसी अगले अंकमें आलोचना करेंगे। यों तो एक अच्छी पुस्तक संग्रह करनेमें आपने काफी प्रयत्न किया है आपका प्रयत्न स्तुत्य है। हरिशरणानन्द

विज्ञान रहस्य—घरेलू उद्योग धंधे सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण पुस्तक। लेखक, साहित्यरत्न मनोहरकृष्ण सकसेन विशारद। मानसरोवर, कमल २। प्रकाशक मानसरोवर साहित्य निकेतन, मुरादाबाद। डबलक्रौन १६ पेजी पृष्ठ १२८ मूल्य बारह आने।

इस छोटी सी पुस्तकमें घरेलू उद्योगधंधोंके नुसखे बातचीतके रूपमें दिये हैं। चरबी और तेलके उद्योग, साबुन सब तरहके, दियासलाई, गैसकी रोशनी, रंग कांच, फिनाइल, लाख, प्लेट, ट्रेसिंगपेपर, तेलफुलेल, रबर, मंजन

पौडर, खिजाब आदि चीजोंके बतानेके नुसखे हैं। चुनाव बहुत अच्छा हुआ है. परन्तु लेखकने यह कहीं नहीं लिखा कि इन नुसखोंमें से एक भी उसका अपना आजमाया हुआ है। कुली स्नान आदिके नुसखे भी अक्सर बिल्कुल ठीक नहीं उतरते। उनमें फेरफारकी आवश्यकता होती है। हैड्रोमीटर आदिका इस्तेमाल विस्तारसे बताये बिना काम नहीं चल सकता। फिर भी अनेक नुसखे सहजमें सफल हो सकते हैं। रोजगार चल सके यह दूसरी बात है। इस संग्रहके लिये हम लेखकको बधाई देंगे, क्योंकि रासायनिक धंधोंपर यह अपने ढंगकी हिन्दीमें पहली पुस्तक मालूम होती है। इसके नामका चुनाव ठीक नहीं हुआ है। यह न तो विज्ञान रहस्य है, और नवस्तुतः रसायन-रहस्य ही है। इसे "वैज्ञानिक-घरेलू धंधे" कहना अधिक उपयुक्त होता। नाम ऐसा रखना चाहिये था कि विषयका भी कुछ बोध हो जाय।

विज्ञान संबन्धी पुस्तकोंमें छापेकी भूलें और लिखनेकी भी भूलें भयानक परिणाम ला सकती हैं। प्रकाशकने इससे बचनेकी कोशिश सफलता पूर्वक की है। फिर भी कुछ भूलें रह ही गयी हैं। पृ० १०९ पर फिलाटक एसिड तो हमें भी समझमें नहीं आया। शायद "हैड्रोफ्लोरिक एसिड" की जगह लिखा गया है। इन वस्तुओंके इस्तेमालमें जो खतरे हैं उनकी ओर अधिक विस्तारसे ध्यान दिलानेकी जरूरत थी। यह होते हुए भी पोथी हाथों-हाथ बिक जानी चाहिये। बहुत उपयोगी है। और ज्योंही नया संस्करण निकले हमारी इन सूचनाओं पर अवश्य ध्यान दें। रामदास गौड़

भगवद्गीता—प्रकाशक श्रीराज्यवैद्य जीवराम कालीदास-शास्त्री, रसशाला औषधाश्रम, गोंडल, काठियावार, पृष्ठसंख्या, ११+७८+१४५+१९०=४१४, सजिल्द मू० ४)।

गीता-प्रेमी सज्जनोंके लिये यह एक नयी चीज है। इस पुस्तकका पाठ एक अत्यन्त प्राचीन हस्तलिखित संवत् १२३५ की प्रतिके आधारपर निर्धारित है। किन्तु प्रकाशक महोदयने उस हस्तलिखित प्राचीन प्रतिके किसी पृष्ठका चित्र नहीं दिया है। कमसे कम अन्तिमका जिसमें संवतादि रहते हैं देना चाहिये था कि अन्य लोग भी उसकी प्राचीनताकी जांच कर सकें। इस पुस्तकमें श्लोकोंकी संख्या ७२० है तथा अध्याय अठारह हैं। महाभारत भीष्मपर्वके अनुसार श्लोकोंकी संख्या ७४५ होनी चाहिये। यथा

षट्शतानि सविंशानि श्लोकानां प्राह केशवः।
अर्जुनः सप्त पंचाशत् सप्तषष्टिं तु संजयः॥
धृतराष्ट्रः श्लोकमेकं गीताया मानमुच्यते।
अध्याय ४३।२७३।

अतः वर्तमान गीता तथा उपर्युक्त श्लोकके अनुसार विभिन्न पुरुषोंके श्लोकोंकी संख्या क्रमशः केशवके ६२०, ५७५ अर्जुनके ५७,८४, संजयके ६७, ४० धृतराष्ट्रका १, १ होना चाहिये। किन्तु उपर्युक्त पर नीलकंठ जो महाभारतके सर्वप्राचीनलब्ध टीकाकार हैं टीका नहीं की है और कहते हैं "गीता सुगीता कर्तव्या, इत्यादयः सार्धाः पञ्चश्लोका गौडैर्न पठ्यन्ते। अपि तु भाष्यकार श्रीशंकराचार्य (जिनका प्रादुर्भाव गतकलि २५१३ में हुआ) आदि किसी प्राचीन टीकाकारने गीताके ७४४ श्लोक संख्याको प्रामाणिक नहीं माना! अभी हालमें एक श्रीमद्भगवतगीताके नामसे पुस्तक टी० आर० जनार्दन, मैलापुर, मद्रासद्वारा सुधाधर्ममंडलसे प्रकाशित हुई है। तथा इसपर श्रीहंस योगीकी टीका भी है। इसमें श्लोकोंकी संख्या ७४५ तथा अध्याय २६ है। अभीतक इसका प्रथम अध्याय ही प्रकाशित हुआ है। श्रीकाशीनाथत्र्यम्बक तैलङ्गने अपनी गीताकी भूमिकामें उनकी मौलिकतापर सन्देह किया है। हालमें भंडारकर रिसर्च इन्स्टीट्यूट पूनासे कई प्राचीन हस्तलिखित प्रतियोंका मिलानकरके अत्यन्त प्रामाणिक संस्करण प्रकाशित किया जा रहा है। इसके प्राक्कथनसे ज्ञात होता है कि जो पाठ हर एक प्रतिमें हो वही पूर्ण प्रामाणिक माना जाना चाहिये। किन्तु इसी आधारपर हमलोग डाक्टर सुखथान्कर से पूर्ण सहमत नहीं हो सकते। यदि पाठभेद समुचित होते तो उन्हें स्वीकार करनेमें कोई भी आपत्ति नहीं होनी चाहिये। किन्तु इसमें हमलोग प्रथम श्लोकमें पढ़ते हैं।

"धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे सर्वक्षत्रसमागमे"।

किन्तु वर्तमान गीताका पाठ है।

"धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः॥

अतः यह स्पष्ट है कि 'सर्वक्षत्रसमागमे'का अर्थ 'समवेताः'से ही निकल आता तथा 'युयुत्सवः'का अर्थ इस पाठभेदसे नहीं निकलता। गीताके अन्तिम श्लोकका

चतुर्थ पाद इसमें इस प्रकार है "ध्रुवा इति मतिर्मम" किन्तु वर्तमान गीताका पाठ 'ध्रुवानीतिर्मतिर्मम' है। इसी तरहके इसमें लगभग २५० पाठभेद हैं।

हमारे देशमें सप्तशती लिखनेकी परिपाटी चल गयी है। यथा गीता, दुर्गा सप्तशती, आर्या सप्तशती, विहारी सतसई। भारतमें अभीतक अगणित विद्वान् पड़े हुए हैं जिन्हे गीता आद्योपान्त कण्ठस्थ है, तथा अशुद्ध पाठ करना पाप समझा जाता है। अतः यही कहा जा सकता है कि किसी धुरन्धर विद्वान्‌ने अपने पाण्डित्यको दिखलानेके लिये पाठभेद कर दिया है तथा बीच-बीचमें उपयुक्त श्लोक भी प्रक्षिप्त कर दिये हों।

इस गीताकी पुष्पिकामें इति श्रीभगवद्‌गीतायां श्रीकृष्णार्जुन संवादे सैन्यदर्शनो नाम प्रथमोऽध्यायः उल्लेख प्रचलित गीताकी पुष्पिका 'इति श्रीमद्‌भगवद्‌गीतासु उपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे अर्जुन विषादयोगो नाम प्रथमोऽध्यायः' के बदले पाया जाता है। इसी प्रकार कई अन्य अध्यायोंके भी नामकरणमें भेद है। यथा ४ में "ज्ञान-कर्म-संन्यास-विविध-यज्ञविभाग" बदले में ज्ञानकर्म-संन्यास-योगके, ५ वे में 'सन्न्यासयोग" बदले में ज्ञानसंन्यासयोगके, ६ठेमें "ध्यानयोग-ब्रह्मप्राप्ति-मार्ग-दर्शकरूप" बदलेमें ध्यानयोगके, ७वेमें "विज्ञानयोगौ ब्रह्मप्राप्ति मार्गदर्शकयोग" बदलेमें ज्ञानविज्ञानयोगके, ८ वें में "अक्षरब्रह्मयोगज्ञानेन परमगतिप्राप्तिनिरूपण" बदलेमें "अक्षरब्रह्मयोगके" १०वेमें "शुभदिव्यविभूतियोग" बदले में विभूतियोगके, १२ वेमें "योगवित्तम-विवरणपूर्वक कर्मफलत्यागरूप धर्मामृतोपदेश" बदलेमें भक्तियोगके, १३वें में "प्रकृतिपुरुषक्षेत्रज्ञादिवर्णन" बदलेमें क्षेत्रक्षेत्रज्ञविभागयोगके। इसी तरह १४ वें १५ वें, १६ वें, १७ वें, तथा १८ वेंमें "सर्वकर्मफल त्यागपूर्वक काम्यकर्मणां सम्यग्न्यासपूर्वकं सत्वरजस्तमोगुणमयजगद्-विवरणपूर्वकं ब्रह्मप्राप्तियोगः" बदलेमें योगसंन्यास योगके पाया जाता है। अतः स्पष्ट है कि इस गीताको उपनिषत्‌का स्थान प्राप्त नहीं है। तथा इसके नामकरण दीर्घ होनेपर भी उपयुक्त हैं किन्तु सरलतया कंठाग्र नहीं किये जा सकते।

तथापि, इस पुस्तककी उपादेयता अकथनीय है। श्रीमान् शास्त्रीजीने इसपर एक चन्द्रघंटा संस्कृत टीका रचकर उसीके आधारपर इसका गुजराती अनुवाद किया है तथा सिद्धिदात्री नामक टिप्पणीका भी समावेश किया है। यह पुस्तक बहुत ही खोज तथा विद्वत्ताके साथ लिखी गयी है। पृष्ठान्तमें भिन्न पाठके श्लोकोंकी संख्याएँ लिख दी गयी है जिससे पाठ मिलानेमें सुभीता भी होता है। टीका तथा भाषान्तरमें आचार्य शंकरका ही विशेष अनुकरण है। इस पुस्तकमें गुजराती तथा देवनागरी वर्णमालाकी खिचड़ी है। यदि देवनागरी ही लिपिमें प्रकाशित की जाती तो राष्ट्रलिपिके प्रचारमें विशेष सहायता पहुँचती। आशा है प्रकाशक महोदय द्वितीय संस्करणमें त्रुटियोंका कुछ सुधार करेंगे तथा आदि मध्य और अन्तके पृष्ठोंके चित्र भी जोड़ने की कृपा करेंगे। यह पुस्तक प्रत्येक गीताप्रेमीके हाथमें होनी चाहिये। हमलोग ऐसी प्राचीन पुस्तकके प्रकाशनके लिये वैद्यजीको हृदयसे धन्यवाद देते हैं। **—देवसहाय त्रिवेद, साधोलाल स्कालर,** काशी।

आयुर्वेद-विज्ञान-मीमांसा—(सायंटिफिक इनवेस्टिगेशन ऐंड एक्सपोजिशन अव् आयुर्वेद), भाग ३-४ लेखक आयुर्वेदनिधि भिषग्रत्न डाक्टर प्रसादीलाल झा, फूलसकैप फोलियो, पृष्ठ संख्या ४८ + ४ = ५२। मूल्य पौने पांच रुपये। लेखकसे ही प्राप्य। पता, कानपुर।

कुछ दिन हुए डा० बकलेने काशीमें ही आयुर्वेदको अवैज्ञानिक कह डाला था। उसका उत्तर काफी दिया गया। परन्तु आयुर्वेद-विज्ञान-मीमांसा जिसका केवल भाग ३-४ हमारे सामने है, रचनात्मक रीतिसे अंग्रेजी भाषामें आयुर्वेद की पूर्ण वैज्ञानिकताका प्रतिपादन करती है। और भाग हमने नहीं देखे हैं। किन्तु प्रस्तुत पुस्तक अनेक वैज्ञानिकम्मन्योंकी शंकाओंका समाधान करनेका उपयुक्त साधन है। विशेषतः अंग्रेजीमें लिखकर लेखकने आयुर्वेदसे अनभिज्ञ अंग्रेजीदानोंको यह विज्ञान सुलभ भी कर दिया है।

तीसरे भागमें आयुर्वेदके अनुसार निदानके सिद्धान्तों और विधियोंका कुछ विस्तारसे वर्णन है। चौथे भागमें औषधोपचारकी विधिका सिद्धान्तरूपसे संक्षेपमें वर्णन है। आपकी वर्णन विधि वैज्ञानिक और अत्यन्त उपयुक्त है। हां, कहीं कहीं छापेकी भूलोंने भयंकर स्थिति उत्पन्न कर दी है, और उनके निराकरणके लिये डाक्टर साहबने कोई शुद्धिपत्र नहीं लगाया है। जो प्रतियां अभी बाहर न गयी हों उनमें शुद्धिपत्र लगा देना अब भी कठिन नहीं है। रा० गौ०
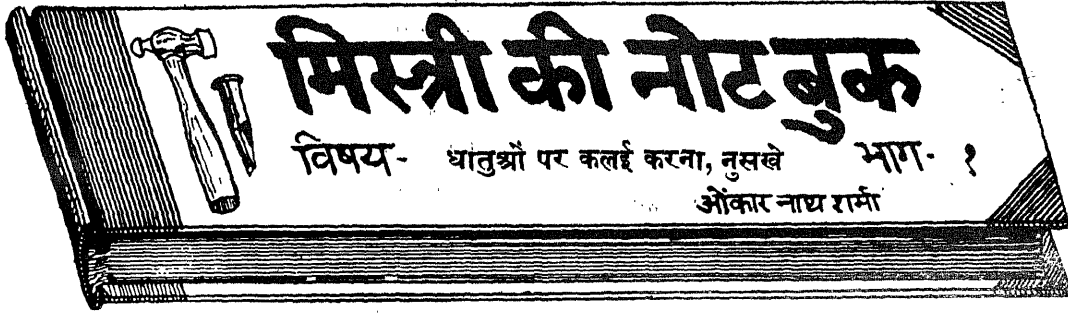
१—बिजलीद्वारा

लोहा, पीतल, तांबा, जस्ता, सीसा, चांदी और सोना आदि किसी भी धातुकी बनी हुई चीजपर बिजलीके द्वारा नीचे लिखे तरीक़ेसे किसी भी धातुकी क़लई की जा सकती है।

१—जिस चीजपर क़लई करनी हो उसकी ऊपरी सतहको सबसे पहिले खूब रगड़कर, माँजकर और दवाइयों से धोकर बिलकुल साफ और चिकना कर लेना चाहिये जिससे कि उसपर किसी दूसरी चीज़के धब्बे और किसी तेलकी चिकनाई न रह जावे।

२—उस चीज़पर, जिस धातुकी क़लई करनी हो, दवाइयोंके मेलसे उसी धातुका जरूरतके माफिक घोल (झोल) तयार कर लेना चाहिये, और उस घोलको किसी तामचीनी, चीनी मिट्टी, पत्थर, कांच अथवा सीसेकी चद्दर जड़े हुए लकड़ीके हौज़में भर देना चाहिये।

३—उस हौज़में एक तरफ तो जिन चीज़ोंपर कलई करनी हो उन्हें और दूसरी तरफ जिस धातुकी क़लई करनी हो उस धातुका पत्तर लटका देना चाहिये, और उस हौज़के भीतर घोल इतना भर देना चाहिये कि जिसमें यह सब चीजें डूबी रहें।

४—उस धातुके पत्तरका सम्बन्ध तो किसी बैटरी अथवा डायनमो (बिजली पैदा करनेवाली मशीन) पोजेटिव तार से और जिन जीचोंपर कलई करनी हो उनका सम्बन्ध उसी बैटरी अथवा डायनमोके निगेटिव तारसे कर देना चाहिये।

कलई करनेके लिये बैटरियां

१-डेनियल बैटरी

निगेटिव—तांबा

सोल्यूशन—नीलाथोथा पानीमें जितना घुल सके।

पॉजिटिव—जस्ता

सोल्यूशन—गंधकका तेजाब १ भाग और पानी १२ अथवा १६ भाग।

इलेक्ट्रोमोटिवफोर्स—१०.७९ वोल्ट।

रेजिस्टेन्स—२ से ५ ओह्म तक।

उपयोग—सोना, चांदी और तांबेकी कलई करने और बिजलीसे टाइप तयार करनेके लिये।

२-समी बैटरी

निगेटिव—प्लेटिनम चढ़ी हुई चांदी।

सोल्यूशन—गंधकका तेजाब १ भाग और पानी १० भाग १५ भाग अथवा २० भाग।

पॉजिटिव—जस्ता

सोल्यूशन—गंधकका तेजाब १ भाग और पानी १० भाग १५ भाग अथवा २० भाग।

इलेक्ट्रोमोटिवफोर्स—०.४७ वोल्ट।

रेजिस्टेन्स—०.५ ओह्म।

उपयोग—सोना और चांदीकी कलई करने और बिजलीसे टाइप तयार करनेके लिये।

३-वाकर बैटरी

निगेटिव—प्लेटिनम चढ़ा हुआ कारबन।

सोल्युशन—गंधकका तेजाब १ भाग और पानी १० भाग, १५ भाग अथवा २० भाग।

पॉजिटिव—जस्ता

सोल्यूशन—गंधकका तेजाब १ भाग और पानी १० भाग, १५ भाग अथवा २० भाग।

इलेक्ट्रोमोटिवफोर्स—०.६६ वोल्ट।

रेजिस्टेन्स—०.४ ओह्म।

उपयोग—सोना और चांदीकी कलई करने और बिजलीसे टाइप तयार करनेके लिये।

४–बनसन बैटरी

निगेटिव—कारबन

सोल्यूशन—शोरेका तेजाब।

पॉजिटिव—जस्ता

सोल्यूशन—गंधकका तेजाब १ भाग और पानी १५ अथवा २० भाग।

इलेक्ट्रोमोटिवफोर्स—१·७ वोल्ट।

रेजिस्टेन्स—०·८ से ०·११ ओह्म तक।

उपयोग—तांबे और निकलकी कलई करनेके लिये।

५ फ्रेंच बनसन बैटरी

निगेटिव—कारबन

सोल्यूशन—गन्धकका तेज तेजाब।

पॉजिटिव—जस्ता

सोल्यूशन—गंधकका तेजाब १ भाग और पानी १५ अथवा २० भाग।

इलेक्ट्रोमोटिव फोर्स—१·६ वोल्ट

रेजिस्टेन्स—०·११ ओह्म।

उपयोगी—सोना, चांदी, तांबा और निकलकी कलई करनेके लिये।

डायनमो

बिजलीद्वारा कलई करनेके डायनमो ऐसे होने चाहिये जो ५ से लेकर ८ वोल्टके दबावकी बिजली दे सकें और उसके एम्पियर ३० से लेकर ३०० तक हों। रोशनी करने के डायनमोसे यह काम नहीं लिया जा सकता।

सामानकी तयारी

जिस चीजपर कलई करनी होती है उसकी ऊपरी सतहको पहिले खूब साफ करनेके लिये दो तरीके हैं। पहिला कलई होनेवाली सतहको खूब रगड़ और मांजकर साफ करना और दूसरा किसी दवाईसे धोकर साफ करना।

रगड़ और मांजकर साफ करनेके लिये नीचे लिखे तरीके काममें लाये जाते हैं।

१–पालिश करनेकी खरादपर सख्त तारोंकी ब्रुश लगाकर साफ करना।

२—बजरीके(Sand-blast) फुहारेसे साफ करना।

३—बहुतसी बस्तुओंको पहलदार ढोलोंमें बंदकरके एक साथ लुढ़काकर साफ करना।

४—कुरंडकी सानपर साफ करना।

५—कुरंडकी मुलायम सानपर पालिश करना।

दवाइयोंके द्वारा सफाई दो बेर की जाती है, एक तो उपर्युक्त प्रकारसे रगड़ने और मांजनेके पहिले और दूसरे बादमें जिससे मांजते समय यदि कोई चिकनाईके धब्बे लग गये हों तो वे छुट जावें।

चिकनाईके धब्बे छुटनेके लिये—५ भाग कास्टिक पोटाश और फिर झांवा पत्थरकी रेतसे मांजकर धोलेना चाहिये।

ढले हुए लोहेकी चीजोंकी पपड़ी उतारनेके लिये—हाइड्रोक्लोरिक एसिड (एक प्रकारका तेजाब) जिसके शरीरपर गिर जानेसे बड़े दुःखदायी धाव हो जाते हैं) १ भाग और पानी २० से २५ भागतकके घोलमें डाल देने से एक घण्टेके अन्दर लोहेकी सब पपड़ियां उतर जाती हैं।

ईस्पातकी चीजोंको साफ करनेके लिये—पानी ४०० भाग २८ भाग गंधकका तेजाब, २ भाग जस्ता, और १२ भाग शोरेका तेजाब।

ईजस्तेकी चीजोंको साफ करनेके लिये—पानी ९० भाग और गंधकका तेजाब १० भाग।

तांबा, पीतल, कांसा और जरमन-सिलवरकी चीजोंको साफ करनेके लिये—मांजनेके पहिले—५० भाग गन्धकका तेजाब, १०० भाग ५३% (३६ डिगरीका) शोरेका तेजाब, १ भाग नमक और १ भाग दीयेकी कालोंस।

जब मांजना ज़रूरी न हो—२०० भाग ५३% (३६ डिगरी) शोरेका तेजाब, १ भाग नमक और २ भाग दीयेकी कालोंसके घोलमें पहिले डुबोना चाहिये जबतक कि सारे धब्बे न उतर जावें और फिर उन्हें चमकानेके लिये नीचे लिखे घोलमें डुबोना चाहिये।

७५ भाग ६२% (४० डिगरी) शोरेका तेजाब, १०० भाग गंधकका तेजाब, और १ भाग नमक।

सीसेकी चीजोंको साफ करनेके लिये—पहिले हाइड्रोल्फोरिक एसिड ५ भाग और पानी ९५ भागके घोल में साफ करना चाहिये। फिर—१०० भाग गंधकका तेजाब और ७५ भाग शोरेके तेजाबके घोलमें डुबोना चाहिये फिर—पानीसे धोकर, हल्का-सा जस्ते अथवा निकलका परत बिजलीसे चढ़ाना चाहिये जिससे उसपर तांबा, चांदी अथवा सोनेकी कलई की जा सके। सोनेकी कलई करनेके पहले जस्तके बादमें तांबा चढ़ाना भी जरूरी है।

मई १९३७

मूल्य ।)

भाग ४५, संख्या २

प्रयाग की विज्ञान-परिषद् का मुख-पत्र, जिसमें आयुर्वेद-विज्ञान भी सम्मिलित है

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते,

विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५।।

भाग ४५ { प्रयाग । वृषार्क, संवत् १९९४ विक्रमी । मई, सन् १९३७ ई० } संख्या २

मंगलाचरण

सौम्य-स्मृति

[साहित्यरत्न भगवतीलाल श्रीवास्तव्य "पुष्प", काशी]

जय जय विभु-वैभव विज्ञान !

तू भव-रीति, तू प्रतीति, साधक महा असाध्य-लोपके,
तू नव-नीत, तू अतीत, बाधक पथ पाखण्ड पोपके,
संसृति-बीच-सदा अभिनीत, हे नकारके नव विपरीत !
गुप्त-प्रकट-मय गौरव-गान ! शरणागतके स्वर्ण-विहान !
सदा सदाके आन आजके, हे अनन्त ! हे भगवन्त !
प्रथा प्रकट की, कथा अकथकी, हे ज्वलन्त ! हे जग-कन्त !
गुरुतर कौन पुराना-गीत ? कहाँ न पाये जय-यश-जीत ?
उन्नत युगके बीज महान ! अवनतके उन्नत-उत्थान !

जय जय विभु-वैभव-विज्ञान !

शेरोंका गुरुकुल और अखाड़ा

[डा० गोरखप्रसाद डी० एस-सी०]

अरे, शेरके बच्चेको जरा दूध तो पिला दे और देख, टामी अब दो महीने का हो गया। उसे आजसे जरा-जरा कीमा भी चटाया कर। मैं आज शामको बाहर जा रहा हूँ। शाम होते ही शेरके छोटे बच्चेको तू कंबल ओढ़ाकर सुला देना, भूलना मत!

इस तरहका हुक्म श्रीगोबलके पशुशालामें किसी नौकर को मिलना कोई असाधारण बात नहीं है। यह पशुशाला अमरीकाके सिनेमाकेंद्र हॉलीवुडके पास ही है। चित्रोंके लिये जब शेरोंकी जरूरत पड़ती है तो वे यहांसे किरायेपर जाते हैं। वे यहां बचपनसे पाले और सिखाये जाते हैं। छोटे बच्चेका पालना ही सबसे कठिन होता है और गोबल पशुशालामें शेरोंके शिक्षक श्रीरोट महाशयको दाईगीरी भी करनी पड़ती है। अपने २७ वर्षकी नौकरीमें रोटने चींटोखोरसे लेकर जिराफतक पाला है।

शेरको भी दूध चाहिये

सब जानवरोंके बच्चोंको दूधकी आवश्यकता पड़ती है और शेरके बच्चोंको तो प्रत्येक घन्टेमें एक बार दूध चाहिये। पहले सप्ताहमें, जब बच्चा केवल आध सेरका होता है एक बारमें एक ही दो चम्मच दूध पी सकता है। धीरे-धीरे उसकी खुराक बढ़ती जाती है और तीसरे सप्ताहमें करीब १० छटाँक दूध रोज पीने लगता है।

बच्चोंको नहलाना भी पड़ता है। प्रत्येक बच्चेके बाल दिनमें दो बार ब्रशसे साफ किये जाते हैं और गरम पानी में भिगोयी रूईसे बच्चे पोंछे जाते हैं। रातके समय बच्चे छोटे-छोटे कटघरोंमें बन्द किये जाते हैं। इनमें नर्म स्वस्थ कंबल रक्खे रहते हैं जिनपर बच्चे आरामसे पड़े रहते हैं।

शेरके बच्चोंको जब भूख लगती है तब वे बिल्लीकी तरह म्याऊँ-म्याऊँ बोलते हैं। पर जब उनका पेट भरा रहता है और वे खुश रहते हैं तब वे गुर्राते हैं। इन बच्चोंके बाल बिल्लीके बालसे कड़े और घने होते हैं, बिल्लियोंके बच्चों की तरह शेरके बच्चोंकी भी आंखें जन्मके समय बन्द रहती हैं और उन्हें एक सप्ताह तक प्रकाससे बचाना पड़ता है। बिल्लियोंके बच्चोंकी तरह शेरके बच्चे भी छोटेपनमें बड़े खिलाड़ी होते हैं, परन्तु बड़े होनेपर आलसी हो जाते हैं।

शेरनी अपने बच्चोंको भी मार डालती है

साधारणतः बच्चोंका पालन-पोषण शेरनीपर ही छोड़ दिया जाता है । शिक्षक केवल इस परिवारपर अपना निगाह रखता है और देखा करता है कि इनके स्वास्थ्यमें कोई गड़बड़ी न होने पाये । परन्तु यदि मां बीमार हो, या वह अपने बच्चोंको मार डालना चाहे जैसा कभी-कभी कट-घरोंमें बन्द शेरनियां करती हैं, तो बच्चोंको शेरनीसे अलग कर देना पड़ता है और उनको दूध पिलाकर जिलाना पड़ता है ।

रबरकी टोंटीसे दूध !

शेरके बच्चे दो-तीन सप्ताहके हो जानेपर भी रबड़की टोंटी लगे बोतलोंसे दूध पीते हैं क्योंकि तबतक उनके दांत नहीं उगे रहते । परन्तु इतने ही समयमें उनके पंजे मजबूत हो जाते हैं । बच्चोंको इनकी आवश्यकता ढालू जमीनोंपर चढ़नेमें पड़ती है । वे गिरनेसे बहुत डरते हैं । इसलिये वे पंजा खूब धंसा-धंसाकर ऊपर चढ़ते हैं । यदि शेरके बच्चे जमीनपर पड़े हों तो वे बिल्लीके बच्चोंकी तरह शान्त रहते हैं, परन्तु यदि उनको उठाया जाय तो वे यथाशक्ति अपने पंजोंसे जमीनको पकड़ लेते हैं ।

शेरको मांस खानेकी शिक्षा !

शायद लोग समझते हों कि दांत निकलते ही शेरके बच्चे मांस बड़े चावसे खाते होंगे परन्तु सच्ची बात यह है कि उनको मांस खाना सिखलाना पड़ता है । यदि बच्चा अपनी मां के साथ रहता है तो मां स्वयं यह सिखला देती है, परन्तु यदि बच्चे बोतलसे दूध पिलाकर पाले जाते हैं तब नौकरको मांस खाना सिखलाना पड़ता है । इसके लिए पहले वह अपने हाथ पर मांस रगड़ लेता है और बच्चोंसे अपना हाथ चटवाता है । जब कुछ दिनोंमें बच्चेको मांसका स्वाद मिल जाता है तब उसको थोड़ा सा बारीक कुटा हुआ कीमा दिया जाता है । धीरे धीरे मांसकी मात्रा बढ़ा दी जाती है ।

शूकर मांस छोड़कर अन्य दूसरे सभी तरहके मांस इनको अच्छे लगते हैं । अधिकतर घोड़ेका मांस दिया जाता है । कुछ दिनों बाद कीमेके अतिरिक्त उनको कुछ ऐसी हड्डियां भी दे दी जाती हैं जिनपरसे प्रायः सभी मांस हटा दिया रहता है । बच्चे इन हड्डियोंसे खेलते हैं, चाटते हैं, चबाते हैं और उसपर लगा सब मांस खा जाते हैं। समूचा मांस उनको वर्ष भरके हो जानेके बाद मिलता है । तब उनको करीब चार सेर मांस रोज मिलता है । इसके दो साल बाद इनकी खुराक बढ़ जाती है और वे रोज ८ सेर या अधिक मांस प्रति दिन खाते हैं ।

अपने बच्चोंके प्रति पशुओंके भाव

बच्चोंके प्रति बड़े शेरोंको वैसा ही आकर्षण रहता है जैसे मनुष्योंमें । गोबल पशुशालामें पचास शेर हैं । उनके कटघरे एक घासके मैदानके किनारे पर हैं । यदि कोई मनुष्य इस मैदानमें बैठे, पड़े या खाये तो शेर कुछ परवाह नहीं करते, परन्तु जब नौकर किसी शेरके बच्चेको घासपर खेलनेके लिये छोड़ जाता है तो सब शेर खड़े हो जाते हैं और जबतक बच्चा वहां रहता है उसे ध्यानसे देखा करते हैं । शेरनी और बाघिन अपने बच्चोंको प्राणपणसे रक्षा करती हैं परन्तु लकड़बग्घिन कभी दो बच्चोंसे अधिक को नहीं पोसती । यदि उसे दोसे अधिक बच्चे पैदा होते हैं तो वह दोको रख लेती है और शेषको कटघरेके बाहर ढकेल देती है । इन बच्चोंकी तुरन्त सेवा करनी पड़ती है, क्योंकि यदि वे इस प्रकार घण्टे, दो घण्टे, पड़े रह जाते हैं तो वे मर जाते हैं । जेबरा बड़ी अच्छी मां होती हैं और अपने बच्चोंको बड़ी सावधानीसे पालती हैं, परन्तु पालतू ऊँटनी फूहड़ होती है । कभी-कभी तो उसका पैर बच्चों पर ही पड़ जाता है । इसलिये ऊँटनी बच्चोंको अलग पालने में अधिक अच्छा रहता है ।

परंतु जानवरोंमें बंदरिनसे बढ़कर मां नहीं होती। प्रथम एक या दो सप्ताहतक तो बँदारिनें बच्चे को बराबर अपनी गोदमें रखती हैं । पीछे बच्चेको अलग खेलनेकी इजाजत मिल जाती है, परंतु मां बराबर निगरानी किया करती है । यदि बच्चा भागनेके लिये झपटे तो मां हाथ बढ़ाकर चट पूँछ पकड़ लेती है । जब बच्चे खाने लगते हैं तब मां पहले सब चीज चख लेती है । यदि बच्चा कोई हानिकारक चीज़ खानेकी चेष्टा करे तो मां थप्पड़ मारकर उसे दूरकर देती है ।

प्रेमसे शेर भी बसमें

शेरके बच्चोंको बचपन ही से पाले और उनके साथ

हमेशा मेहरबानीसे पेश आवे तो वे पीछे यों ही कभी खूंखार होते हैं, परन्तु ज्यों-ज्यों वे बड़े और मजबूत होते हैं उनके साथ खेल करना अधिकाधिक कष्टप्रद होता जाता है, क्योंकि वे बहुत भारी और बड़े डील-डौलके होते हैं।

जिन शेरोंसे सरकसोंमें उनका शिकारी कुश्ती लड़ता है, इसी तरह बचपनसे पाले जाते हैं और कुत्तेकी तरह वे अपने मालिकसे प्रेम करते हैं।

रोटका कहना है कि दो दिनके प्यारसे जानवर जितना अपने वशमें आ जाते हैं उतना वे दो महीनेके की मार-पीट से नहीं आ सकते। मैंने एकबार बारह जंगली शेरोंको पकड़ मंगवाया और कुल तीन सप्ताहमें ही वे इतने सध गये कि सरकसमें तमाशा दिखलाने लगे। मैं जो हाथमें बराबर चाबुक लिये रहता हूँ वह तो महज इशारा करने या तड़-कानेके लिये है। यदि मैं शेरोंको पीटनेका आदी होता तो कभी भी एक बारगी इतने शेरोंके साथ खेल न दिखा सकता।"

शेरसे भयानक कुश्ती

रोटका सबसे प्यारा शेर 'बॉबी' है। यह अभी १७ ही महीनेका हुआ, लेकिन अभी ही वह ५ मनका हो गया है। इससे रोट कुश्ती लड़ता है। रोटने इसे अपने घर बचपनसे पाला है। जब वह कुल आध सेर तौलमें था। कुछ महीने पहले तक 'बॉबी' मकानमें जहाँ चाहे तहाँ जाने पाता था और बराबर कुत्ते-मुर्गियों और रोटके बच्चोंके साथ खेला करता था। अब चूँ कि वह बहुत बड़ा हो गया है उसको बड़ेसे कटघरेमें रक्खा जाता है।

परन्तु रोज सबेरे पासके कृत्रिम 'जंगल'में उसे कई घन्टेके लिये छोड़ दिया जाता है जिसमें उछल-कूद करनेसे उसका व्यायाम हो जाय। 'बॉबी' पूरा पालतू है और मालिकका हुक्म पाकर उसने सिनेमा-चित्रोंके लिये बहुतसे खेल किये हैं। इन खेलोंमें उसके आस-पास ही बहुतसे लोग थे जिनपर वह चाहता तो झपट सकता था, परन्तु उसने कभी वार नहीं किया।

पांच मनके शेरसे कुश्ती लड़ना कोई खेल नहीं है। बड़े-बड़े पहलवान शीघ्र थक जाते हैं। परन्तु जानवरका दिल शीघ्र नहीं भरता। इसलिये कभी कभी उसे खुश रखने के लिये कई पहलवानोंको उससे पारी-पारी लड़ना पड़ता है। रोटका कहना है कि 'यदि 'बॉबीमें कोई दोष है तो यही कि वह खेल समाप्त करना कभी नहीं चाहता और कभी-कभी उससे छुटकारा पाना कठिन हो जाता है। दस बार कुश्तीमें पटके जाने और कई बार दुनमुनिया खानेके बाद, और विशेषकर जब दो जबरदस्त पंजे देरतक जमीन पर मुझे दाबे रहते हैं शीघ्र थकान आजाता है। एक बार जब बॉबी छोटा ही था मैं पेड़पर चढ़कर सेब तोड़ रहा था। बॉबीको शैतानी सूझी। कूदकर उसने मेरी बगलमें बैठना चाहा। हम दोनों धड़ामसे नीचे आ रहे!'

'बॉबी' की माँ अब आठ वर्षकी हुई। बिरले ही शेरनियां पकी रसोई खाती होंगी, परन्तु बॉबीकी मांकी बात दूसरी है। बात यह है कि रोटने उसे अपने कुत्तोंके साथ पाला था। खानेके समय शेरनीको कच्चा मांस मिलता था और कुत्तोंको रींधा हुआ मांस, बिस्कुट और अन्य रसोई। अपना भाग खा लेनेपर वह अकसर खाना खतम करनेमें कुत्तोंकी सहायता कर दिया करती थी।

शेरनीने जब अपने साथी कुत्तोंको शाक-भाजी खाते देखा तो उसका भी मन चला कि तरकारी खाऊँ। अब तो वह हर तरहकी तरकारी खाती है। यहांतक कि निरी मूली या आलूकी तरकारी भी खा जाती है, और यदि मिल जाय तो आधी बाल्टी दाल भी पी जाती है।

शेरोंकी शिक्षा

रोटने केवल सब शेरों या बाघोंको बचपनसे ही नहीं पाला है। कुछ तो थोड़ा बड़े होनेपर पकड़े गये थे। ऐसे शेरोंके मिजाजकी पहचान रोट तभी कर लेता है जब वे कटघरेमें बन्द रहते हैं। जो जानवर आदमीको देखकर बार-बार कटघरेके छड़ोंपर हमला करता है उसका सिखाना असम्भव होता है। यदि शेर या बाघ अच्छे मिजाजका हुआ तो उसके गरदनमें खूब चौड़ा और मजबूत पट्टा पहना दिया जाता है। इस पट्टेमें सिक्कड़ बांध दिया जाता है और सिक्कड़को बाहर निकाल कर उसे कई नौकर पकड़े रहते हैं। तब रोट कटघरा खोलकर भीतर घुसता है। यदि शेर झपटता है तो बाहरवाले सहायक शेरको पीछे खींच लेते हैं। रोट जानवरकी पहुँचके बाहर रहकर उसको पुच-कारता है। धीरे-धीरे वह उसके अधिक नजदीक जाता है और अपने चाबुकके सिरेसे उसकी पीठ भी सुहराने लगता

है। कुछ दिन बीतनेपर शेरके पास एक तिपाई रख दी जाती है, साधारणतः शेर तुरन्त कूदकर उसपर बैठ जाता है। यदि अबतक शेर पालतू-सा हो गया तो इसके बाद सिक्कड़ खोलकर उसे रोट सिखाता है।

बड़ी जोखिमका काम !!

चाहे कितने भी प्रेमसे शेर पाला जाय, और चाहे वह कितना भी परच जाय, धोखा हो जानेकी संभावना बराबर ही रहती है. रोटको शेरोंने कई बार नोच-खसोट लिया है, लेकिन साधारणतः किसी भूलके कारण ही ऐसा हुआ। सबसे अधिक जोखिमकी बात तब हुई थी जब एक दरजन बड़े-बड़े बाघ अखाड़ेमें कतार बांधकर उतर रहे थे। कतार में जरा धक्कम-धक्का आवश्यकतासे अधिक हो गयी और पंक्तिके दूसरे शेरने अगुएकी पूँछको जोरसे काट लिया सरदार शेर चौंक उठा, जोरसे गरजता हुआ उछल पड़ा और गिरा कहाँ ? ठीक रोटके कन्धेपर। पंजोंसे बचनेके लिये हाथ उठाते-उठाते-भरमें रोटका मुख और कन्धा चिर उठा। चट शेरोंके चढ़नेके लिये रखी हुई तिपाइयोंके बीचमें हो गया। सरकसके खेलमें ऐसा हुआ था। खेल बन्द करने के बदले रोटने तुरन्त रूमाल अपने सरपर बांध लिया और खेल पूरा किया। इसके बाद वह अस्पताल पहुंचाया गया। वहां ठीकसे मलहम-पट्टी कराकर वह सरकसमें आ गया और अपना आखिरी तमाशा भी दिखलाया, जिसमें १६ शेरोंका खेल था ! रोटका कहना है कि लोगोंका यह विश्वास, कि शेर ज्योंही मनुष्यका खून चख लेता है त्योंही खूंखार हो कर उस मनुष्यको मार डालता है मिथ्या है।

भालूको सबक

रोटका सबसे कठिन काम था चार उत्तरी भालुओंको खेल सिखलाना। ये भालू उत्तरके बर्फवाले देशोंसे पकड़कर मँगाये गये थे। चारों भालू पांच-पांच वर्षके थे और उनमें से सबसे छोटा सवा छः मनका था। शिक्षाके आरम्भमें एक भालूके गलेमें मजबूत पट्टा पहनाकर अखाड़ेमें लाया गया। पट्टेमें दो मजबूत रस्सियां लगी थीं और कटघरेके बाहरसे इन रस्सियोंको चार-चार मजबूत आदमी पकड़े थे। ज्योंहीं रोट कटघरेके भीतर घुसा त्योंही वह भालू उसपर झपटा। जो आठ आदमी भालूको पकड़े हुए थे वे घिसट गये। रोट चट कटघरेके भीतर रक्खी मेजके नीचे छिप गया और चुपकेसे बाहर निकल आया। दूसरे दिन उसने फिरसे सिखाना शुरू किया और दो ही महीने बाद वे चार भालू ऐसा खेल दिखाने लगे मानों वे बचपनसे पालतू रहे हों। वे तिपाइयों पर बैठते थे और रोटका हुक्म पाकर एक तिपाईसे दूसरेपर कूदते थे रोट उनके बीच केवल एक चाबुक लेकर खड़ा रहता था।

हत्याका भेद गोलीने बता दिया

(२)

जासूसीकी सच्ची कहानियां

[मूल लेखक—श्रीएडविन डब्ल्यू. टील]

गोलीपर कपड़ेकी छाप पड़ गयी

एक विचित्र घटना, जिसमें छोड़े जानेके बाद गोलीपर ऐसे चिन्ह पड़ गये थे जिससे निर्णय किया जा सका, थोड़े हीं महीने हुए दक्षिणी यूनाइटेड स्टेटसमें हुआ था। पड़ोस के दो जमींदार जानी दुश्मन थे। एकने हलफ लेकर बयान किया कि दूसरेने अपने दूरके खेतसे उसपर गोली चलायी थी। गोलीमें इतना जोर नहीं रह गया था कि वह कपड़ा चीरकर इसके शरीरमें घुस जाय, तो भी गोली पेटमें जहां लगी थी वहां नीला पड़ गया था।

पुलिसको उसके बयानपर विश्वास नहीं हुआ। उन्होंने यही समझा कि इसने अपने शत्रुको फंसानेके लिये यह कहानी गढ़ ली है, परन्तु जब एक विशेषज्ञने गोलीकी जांच की तब उसने देखा कि गोलीकी नाकपर चारखानेके समान चिह्न छप गये हैं। तुलना करनेपर ये चिह्न मुद्दईके कोटके

कपड़ेसे ठीक-ठीक मिलते हुए दिखलाई पड़े। उसी कपड़े पर जब उस विशेषज्ञने काफी दूरीसे गोली चलाई तब इस गोलीकी नाकपर भी कपड़ेकी छाप उतर आयी। मुद्दईकी विचित्र कहानीका इस प्रकार विशेषज्ञद्वारा समर्थन हो जाने से दूसरा जमींदार पकड़ लिया गया।

लगी-गोली तौलमें कम उतरी!

कभी-कभी खूनके मामलोंमें गोलीकी तौल ही महत्वपूर्ण हो जाती है और इसीसे मुकदमेका वारा-न्यारा होता है। उदाहरणार्थ, लॉस ऐंजेलसमें दो भाइयोंको उनका जानी दुश्मन मिल गया। घूंसेबाजी शुरू हो गयी। तब वह व्यक्ति जो अकेला था पिस्तौल निकालकर गोली चलाने लगा। इधर दो भाइयोंमेंसे एक मर चुका था। शेष दोनों व्यक्ति केवल घायल ही हुए थे। प्रश्न यह उठा कि मृत व्यक्ति अपने भाईकी गोलीसे मरा या अपने दुश्मनकी गोलीसे।

जो अकेला आदमी गोली चला रहा था उसके पास ३८ नम्बरका तमंचा था। दो भाइयोंमेंसे एक ही गोली चला रहा था उसका तमंचा ३२ नम्बरका था। खूनी गोली मृत व्यक्तिके सिरको छेदती हुई पार निकलकर दूसरी गोलियोंमें मिल गयी थी, इसलिये यह पता नहीं लगता था कि वह ३८ नम्बरकी गोलीसे मरा कि ३२ नंबरकी गोलीसे। घावकी जांच करते समय सरजनोंको गोलीका एक नन्हा सा टुकड़ा मांसमें धंसा हुआ मिला।

इस लड़ाईमें जितनी गोलियाँ चलीं थीं सबको पुलिस ने एक विशेषज्ञके पास भेज दिया था। उस विशेषज्ञ ने सब गोलियोंको सावधानीसे तौला। सबकी तौलें ठीक निकलीं केवल एक जरा-सा हलका था। यह गोली ३८ नंबरकी थी। जब इस गोलीके साथ मृत व्यक्तिके सिरमें मिला टुकड़ा रख दिया गया तब तौल पूरी हो गयी। उस गोली की रासायनिक और सूक्ष्म-दर्शनीय जाँच करनेसे भी पता चला कि उसमें खून और हड्डीके लेशमात्र चिह्न रह गये थे। इससे सिद्ध हो गया कि उस अकेले व्यक्तिकी गोलीसे ही मृत व्यक्तिका खून हुआ था।

बदमाश हत्यारोंका पहला ख्याल अब यह होता है कि विशेषज्ञोंसे कैसे बचा जाय। अब सब खूनी बदमाश हत्या के बाद अपना बन्दूक अवश्य फेंक देते हैं, जिसमें उनके कब्जेमें पाये बन्दूकका सम्बन्ध खूनी गोलीसे स्थापित होने पर वे पकड़े न जा सकें। शिकागोके कई हत्याकांडोंमें खूनियोंने साधारण गोलीके बदले पक्के लोहेके छ ेंका प्रयोग किया था। इन गोलियोंपर बन्दूकका चिह्न नहीं पड़ने पाता।

धोखा देनेपर भी भेद खुल गया

शायद विशेषज्ञोंको धोखा देनेके लिये सबसे अच्छी तरहसे रचा गया षडयन्त्र वह था जो कुछ ही वर्ष हुए अमेरिकाके पूरब प्रदेशके एक शहरमें हुआ। इस घटनाकी कथा-वस्तु बड़ी असाधारण थी।

दिनमें ही, शहरके एक प्रमुख सड़कपर एक दूकानदार की हत्या उसकी दूकानपर ही हो गयी। हत्यारेका पता न चला। यदि उसके पकड़नेका कोई सूत्र हस्तगत हुआ तो यही कि ३२ नंबरका एक कारतूस मृतकके पास ही पड़ा था लूटके कारण यह हत्या नहीं हुई थी, क्योंकि दूकानदार का गोलक ज्योंका-त्यों पड़ा था। किसी पड़ोसीको गोली चलानेका शब्द सुनाई नहीं पड़ा था।

लोगोंका विश्वास था कि जब उधरसे एक राजनैतिक संस्थाका जलूस धूमधामसे गुजरा था उसी समय वह अज्ञात हत्यारा दूकानमें घुस आया होगा और गोली मार कर भीड़में छिप गया होगा। जलूसके शोर-गुलमें गोली चलनेकी आवाज किसीने न सुनी होगी। जहांतक पता चला मृत व्यक्तिका कोई दुश्मन नहीं था। जान यही पड़ता था कि यह मामला भी पुलिसके रजिस्टरोंमें "पता नहीं चला" ऐसा लिख जानेके बाद दाखिल दफ्तर कर दिया जायगा।

दो सप्ताह हो गये किसी नये सूत्रका पता न हो चला। उधर जासूसोंने एक व्यक्तिके घर पर धावा मारा, जिसपर यह सन्देह था कि उसके घर जुआरियोंका अड्डा है। तलाशी लेते समय उसके निजी मेजके दराजमें समाचार-पत्रोंके कतरन मिले। देखनेपर ज्ञात हुआ कि ये सभी कतरन उस दूकानदारकी हत्यासे सम्बन्ध रखते थे। जिरह करनेपर उस व्यक्तिने कबूल किया कि उसके पास ३२ नंबर का तमञ्चा है। मांगनेपर उसने इसको खुशीसे पुलिसके हवाले किया।

जब विशेषज्ञने खूनी गोलीका मिलान इस तमंचेसे छोड़ी

गयी गोलीसे किया तो उसने देखा कि दोनोंके खरोंच विभिन्न हैं। परन्तु मारकेकी बात यह थी कि घटनास्थल पर मिले कारतूस पर वैसे ही चिह्न थे जैसे इस तमंचेसे कारतूसकी पेंदीपर पड़ जाते थे। विशेषज्ञने जोर देकर कहा कि यह हो नहीं सकता कि खूनी गोली किसी दूसरे तमंचे से छोड़ी गयी हो। इस लाख तमंचोंमें शायद ही कोई दूसरा तमंचा हो जिससे कारतूस पर ठीक इसी तरहके चिह्न पड़ें।

तब, एक नवयुवक जासूसने एक बड़ी मजेदार बातका पता लगाया। उस नवयुवककी तैनाती इस बातपर हुई थी कि वह अभियुक्तकी गत महीनेकी पूरी कार्यवाहीका पता लगावे, उससे पता चला कि हत्याके दूसरे ही दिन अभियुक्तने तार देकर अपने तमंचेके लिये दूसरी नली और कुछ अन्य पुर्जे नये मंगाये थे। अभियुक्त यह अच्छी तरह जानता रहा होगा कि विशेषज्ञोंको पता लग जाता है कि कौनसे तमंचेसे कोई गोली छोड़ी गयी है। इसलिये उसने नलीको बदल डालनेकी तरकीब सोंची, जिसमें उसके तमंचेसे छोड़ी गयी गोलियोंपर खूनी गोलीसे विभिन्न चिह्न पड़े, परन्तु वह यह नहीं जानता था कि तमंचेकी छाप गोली ही पर नहीं, कारतूसके पीतल पर भी पड़ जाती है।

हत्यारेने पीछे कबूल किया कि मृत दूकानदार घरवालों को खबर दिये बिना ही जुआ खेला करता था और बहुत अधिक ऋणी हो गया था। पीछे उसने अपना ऋण चुकाना अस्वीकार कर दिया। हत्याके दिन अभियुक्त उससे अपना रुपया वसूल करने गया था। बात बढ़ गयी। उसने तमंचा निकालकर दूकानदार पर गोली चला दी। एक ही गोलीमें उसका प्राण पखेरू उड़ गया। बाहर बिगुल बज रहे और जनता चिल्लाती और गाती चली जा रही थी। इसी कारण किसीने तमंचेकी आवाज न सुनी। जाड़ेका दिन था। अधिकांश दरवाजे बन्द थे। किसीने देखा भी नहीं। वह चुपकेसे बाहर निकल गया। तमंचेमें नयी नली लगा देनेके बाद उसने सोचा था कि डरकी कोई बात अब नहीं है। परन्तु उसके तमंचेसे निकले कारतूसके पेंदेमें जो अतिसूक्ष्म गड्ढे बन गये थे उनसे वह पकड़ा गया। बात यह है कि तमंचेका घोड़ा और कारतूस रखनेका स्थान कारखानेमें रेती से रेत कर तैयार किये जाते हैं। रेतनेके चिह्न कभी भी दो तमंचों पर ठीक एकसे नहीं पड़ते। ये चिह्न कारतूसके पीतल पर उभड़ आते हैं ठीक उसी तरह जैसे लाहपर कोई मुहर कर दे। कारण यह है कि पीतल फौलादकी अपेक्षा बहुत नरम होता है और बारूदमें आग लगने पर १०० मन प्रति वर्ग इंच दबाव उत्पन्न होता है। इस प्रका प्रत्येक तमंचा कारतूस पर अपना ऐसा हस्ताक्षर छाप देता है जिसकी नकल करके किसी प्रकारकी जालसाजी नहीं की जा सकती।

अब सैरबीनोंके प्रयोगसे हत्यारोंकी सजा करानेमें सहायता ली जाती है। सिनेमाके आगे सैरबीनका जमाना चला गया, परन्तु जजको सलाह देनेके लिये तो पंच लोग बैठते हैं उनको वैज्ञानिक रीतियों पर विश्वास दिलानेके लिये इस यन्त्रका प्रयोग किया जा रहा है। पहले उन दोनों गोलियोंका प्रवर्द्धित फोटोग्राफ लिया जाता है जिनकी तुलना करनी रहती है। फिर इन फोटोग्राफोंको दफ्ती पर मढ़कर सैरबीनसे दिखलाया जाता है। सैरबीनमें एक आँखसे एक चित्र और दूसरीसे दूसरा चित्र दिखलाई पड़ता है और दोनों चित्र एकके ऊपर एक चढ़े हुये दिखलाई पड़ते हैं। इस प्रकार तुलना करना बहुत सरल हो जाता है और पंचलोग स्वयं दोनों गोलियोंकी तुलना करके अपना परिणाम निकाल सकते हैं।

खूनी गोली कितनी दूरसे चलायी गयी, इस प्रश्नका उत्तर देना भी अकसर विशेषज्ञोंके सर पड़ता है। क्योंकि यह प्रश्न भी कई बार घटनाके समझनेमें बड़ा महत्वपूर्ण होता है।

मैंने चार घन्टे तक एक विशेषज्ञको इस बातकी खोज में संलग्न देखा। रद्दीसे भरी टोकरीके मुंह पर सफेद सोख्ता तानकर उसपर वह विशेषज्ञ गोली चला रहा था। सोख्ते को प्रत्येक बार वह वह बदलता जाता था। हाथमें एक चमचमाता हुआ नीला तमंचा वह लिये हुए था और उसी से पहले एक इंच फिर दो इंच फिर तीन, इसी प्रकार उत्तरोत्तर अधिकाधिक दूरीसे वह सोख्ते पर गोली चला रहा था। इसी तमंचेसे दो दिन पहले एक बदमाशने दूसरे बदमाशकी हत्याकी थी। प्रत्येक बार गोली चलानेके बाद वह सोख्तेकी जांच सावधानीसे कर रहा था और तमंचेसे निकली बारूदसे कागजपर छेदके चारो ओर जो घेरा बन

गया था उसे नापता था। उस विशेषज्ञने मुझे बताया कि बारूदके घेरेको इस प्रकार नापनेसे और फिर मृत व्यक्तिके घावके गिर्द पड़े घेरेको नापनेसे बहुत ठीक-ठीक बतलाया जा सकता है कि कितनी दूरसे गोली चलायी गयी थी।

तमंचेके विशेषज्ञोंने हालमें एक नया आविष्कार किया है जिससे चोरकी त्वचाके भीतर घुसे हुए गैस और रासानिक पदार्थोंसे वह पकड़ लिया जाता है जब बारूद जलती है तो बहुत सा धुआं निकलता है और इस धुएंके सूक्ष्म कण तमंचा चलानेवाले व्यक्तिकी त्वचामें घुस जाते हैं।

इसलिये यह पता लगानेके लिये कि अभियुक्तने हाल ही में गोली चलायी है या नहीं, जासूस उसके हाथ पर पिघला मोम पोत देता है, विशेषकर अंगूठे और तर्जनी पर जिससे घोड़ा खींचा जाता है। जब मोम चौथाई इंच मोटा हो जाता है और गरम ही रहता है, तब उसे हाथ परसे उखाड़ लिया जाता है और उसे ठंडा होने दिया जाता है। जब यह सांचा कड़ा हो जाता है तब उस ओर जो हाथसे सटा था शुद्ध गंधकके तेजाबमें डाइ-फेनिल-अमाइन घोलकर छोड़ा जाता है और उसकी जांच आतिशी शीशेसे की जाती है। आतिशी शीशेसे सब कण स्पष्ट दिखलाई पड़ने लगते हैं। यदि त्वचामें बारूदके धुएंके कोई कण मौजूद रहते हैं तो वे चिपक कर मोममें चले आते हैं और ऊपर बतलाये घोलके पड़नेसे चमकदार नीले नीले रवे बन जाते हैं, जिससे चोर पकड़ जाता है।

गोलीकी जांच नयी विद्या है

तमंचे और बन्दूकोंकी जांचसे इस प्रकार हत्यारोंका पकड़ना अभी हाल हीमें ईजाद हुआ है। अभी दस वर्ष भी नहीं हुए कि यहांके हाईकोर्टने अपने एक फैसलेमें लिखा था कि भला यह भी कहीं हो सकता कि कोई व्यक्ति गोली देखकर बतला दे कि वह गोली किस बन्दूकसे छूटी थी। यदि कोई इस बातका दावा करे तो उसकी गवाहीपर विश्वास नहीं किया जा सकता। परन्तु अभी दो ही चार महीने हुए उसी हाइकोर्टने अपने पुराने निर्णयके पूर्णतया विपरीत यह तय किया है कि हत्याकाण्डोंमें इस नवीन विद्यासे बड़ी सहायता मिलती है।

[अनुवादक—डा० गोरखप्रसाद]

तैरनेकी कला और व्यायाम

[श्रीहरिदासजी माणिक काशी]

हेडर या तिरछुंगा
(Header)

एक नये प्रकारका कूदना होता है जिसको अंग्रेजीमें (Header) हेडर कहते हैं इसमें हाथोंको सिरके ऊपर जोड़ लेते हैं और पानीमें इस तरह कूदते हैं कि सिर और हाथ पानीमें पहिले डूबता है। दोनों पैर ऊपर रहते हैं। नवशिक्षितोंको पहिले बड़ा भय मालूम होता है क्योंकि सिरका पहिले पानीमें घुसना स्वभावके विरुद्ध होता है जिस सिरको बचानेके लिये तैरना सीखा जाता है वही सिर पहिले पानीमें घुसे यह कैसी विपत्ति है। इस अभ्यासके करनेमें अकसर लोग यह भूल करते हैं कि पानी तक पहुँचते २ हाथ फैला देते हैं और इससे उनको चोट लगती है। नवशिक्षितोंको पहिले किनारे पर खड़ा होना चाहिये पर इस बातको अच्छी तरह जाँच लेना चाहिये कि पानी खूब गहरा है, या नहीं।

हेडर करनेके नियम

किनारे पर खड़े होकर या किसी पानीमें निकले हुए तख्ते पर खड़ा होकर हाथोंको सिरके ऊपर जोड़ ले और कमरसे दोहर जाय और धीरेसे पानीमें सरक जावे। यह अभ्यास सरल नहीं है। पहिले आहिस्ता २ सीखना चाहिये धीरे २ कुछ दौड़कर कूदना चाहिये। जब अभ्यास बढ़ जाय तो खूब उछलकर सिरके बल पानीमें आना चाहिये। कमानीदार तखतेपरसे कूदनेमें बड़ी मदद मिलती है। हेडरके अभ्यास करनेमें सिरके ऊपर हाथ कई बार उठाना चाहिये। ऐसा करनेसे फेफड़ेकी कसरत हो जाती है। हाथ और पंजोंको सिरके ऊपर इस तरह मिल जाना चाहिये कि उंगलियाँ

और अँगूठे आपसमें सटे रहें। बदनको खूब सीधा ताने रहें। पानीमें घुसनेके समय तीरकी तरह जाना चाहिये।

नाव-परसे कूदना

नावपरसे जब कूदना पड़े तो नावके आगेके हिस्सेपरसे कभी न कूदे क्योंकि जब तुम ऊपर निकलोगे तो सम्भव है कि नाव तुम्हारे ऊपर आ जाय और तुम उसकी तलेटीसे चिपक जावो। पटरीपरसे बगलमें भी कूदना अच्छा नहीं होता इसमें नाव उलट जानेका भय रहता है। सबसे अधिक अच्छा तरीक़ा यह है कि नावके पिछले हिस्से स्टर्न (Stern) परसे कूदे। ऐसे कूदनेमें पैर अच्छी तरह जमे रहते हैं।

नावपर चढ़ते समय पैर ऊंचा करके तैरना चाहिये। पैरों को जहाँतक हो सके पानीकी सतहसे ऊपर उठाकर रखे। यदि पैरोंको ऊपर न उठाये रहेंगे तो पैर नावके पेंदेमें सट जायेंगे, इसलिये ऊंचा पैर करके तैरना अच्छा होता है। एक बार खूब जोर लगाकर और पैरोंसे पीछे किक(Kick) करके नावपर चढ़ जावो। सिर और छातीको ऊपर झुका दो और धीरेसे नावमें सरक जावो। इस अभ्यासको बड़ी सावधानीसे करना चाहिये नहीं तो नड़हरमें बड़ी चोट लगेगी। अकसर लोग तीन चार डंडेका सीढ़ी नावपर रखते हैं वह नावके पीछे लटकता देते हैं जिसके सहारे चढ़नेमें बड़ा सुभीता होता है। जब नाव आंधीमें पड़ जाती है तो मल्लाह एक डांड़ा लेकर कूदते हैं। उससे उनको बहुत सहारा मिलता है।

डूबतेको बचाना

"डूबतेको बचाने" का सवाल बड़ा ही विकट है। यह सवाल वैसा ही विकट है जैसे आगमें जलते हुएको बचा लेना। दोनोंहीमें बचाने वालेको जान जोखममें रहती है। अगर बचानेवाला व्यक्ति बचानेकी कठिनाइयोंसे आगाह रहा तब तो वह बच जायगा, अन्यथा डूबने वालेके साथ ही बचानेवाला भी डूब जायगा।

अमरीका, जर्मनी तथा नारवे, स्वीडेन और फ्रान्स इत्यादि देशोंमें तो बड़ी भयंकर घटनाएं हो जाती है। हजारों आदमी केवल डूबकर ही कालके गालमें चले जाते हैं। इसका मुख्य कारण यह बताया जाता है कि भारतवर्ष में जैसा नदियोंका सुपास है वैसा यूरोपमें नहीं है। खास कर इंगलैंडमें तो इस बातकी बड़ी दिक्कत है, उसके चारो तरफ समुद्र हिलोरें मारता है। तैरना सीखनेवालोंको चहबच्चेमें सीखना पड़ता है। एक चहबच्चा बनवानेमें पचासों हजार रुपये खर्च हो जाते हैं फिर भी वह बात नहीं आती जो कि नदीकी तैराईमें हासिल होती है। भारतवर्षके ऐसा कुंड सरोवर और झील भी इङ्गलैंडमें दिखाई नहीं पड़ती।

भारतवर्षमें भी बहुतसे लोग अपनेको तैराक कहते हैं। पर ये तैराक गांवकी गड़हियों और तालाबोंमें सीखे हुए होते हैं जिनमें जल बिलकुल शान्त रहता है, हिलोरोंका नाम नहीं होता। जब गांवके तालाबोंमें तैरना सीखनेवाले मेढ़ककी तैराई नदीमें तैरते हैं तो अच्छा तैराक तुरत ताड़ जाता है कि यह शख्स तालाबमें तैरा हुआ। तालाबके तैरनेवाले नदी-तटपर भलेही पानी थपथपा लें, पर वे नदी तटसे दस बीस हाथ आगे बढ़ने पर वापस नहीं आ सकते। एक तो उनको यह डर कि नदीमें पानी बहुत है, दूसरे पाट बड़ा है।

इस सम्बन्धमें एक अति उत्तम घटना याद आ गयी। बड़ेगांवके एक जमीन्दारका लड़का गंगा स्नानको आया। मैं भी दशाश्वमेध घाटपर कुछ लड़कोंको तैरना सिखा रहा था। संयोगसे उस जमींदारके लड़केसे हमारे एक साथीसे जान-पहिचान थी। हमारे साथीने जमीन्दारके लड़केसे कहा—क्या तुम तैरना जानते हो ? उसने कहा—हां और वह तुरत पानीमें उतर पड़ा, बस दोनों बातें करते-करते थोड़ी दूर चले गये। लौटते समय जमींदारका लड़का थक गया, क्योंकि वह तालाबमें तैरना सीखे हुए था। हमारा साथी बड़े फेरमें पड़ा कि अब वह क्या करे। सिवाय चिल्लाने के और कोई उपाय न था। वह बहुत चिल्लाया पर घाटपर स्नान करनेवालोंने समझा कि वह हंसी कर रहा है, कारण कि जो शख्स इतनी दूर तैर कर गया वह डूब कैसे सकता है।

मुझे एक बात याद आई। मेरे पूज्य भ्राता स्वर्गीय प्रोफेसर कालिदास मानिकने डूबतेको बचानेको शिक्षा देते समय यह कहा था कि गांवके तैरनेवाले नदोमें धोखा खाते हैं, क्योंकि वे केवल मेंढककी तैराई जानते हैं। उन्हें मल्लाही

नहीं आती। वही बात मेरे ध्यानमें आई। मैं तुरत ताड़ गया कि उक्त जमींदारका लड़का डूब रहा है। मुझसे अब न रहा गया। मैं उसकी ओर बढ़ा। उसने मेरा सारा बदन पकड़ लिया। अगर कहीं मैं धोती पहिने होता तो मैं भी डूब जाता, क्योंकि डूबता व्यक्ति धोतीका कोई हिस्सा अवश्य पकड़ता है। मैंने डुबकी मारकर उसे ऊपर उठाया जब वह ऊपर आया तब वह मुझे फिर पकड़ने लगा। इस वार मैंने उसे दो चभकोरे देकर घाटकी ओर ढकेला। मेरे भी होश हवास गुम हो गये और मैंने समझा कि अब यह जमींदारका लड़का बच नहीं सकता। कारण कि एक भी घा-टिया या और कोई मेरी मददको नहीं आया। जो साथी उस लड़केको अपने साथ लिवा लेगये थे वे भी डरके मारे बचाने न आये। मुझे अब कोई तरीका बचानेकी सूझ न पड़ती थी। मैंने कहा अब परमात्माका नाम लो और इसकी चोटी पकड़के घसीट ले चलो एक हाथसे चोटी पकड़ी और दूसरे से तैरता हुआ घाटपर आ पहुंचा। लड़का बच गया, धन्यवाद के दो चार शब्द मुझे भी मिले।

तालाव और नदीकी तैराईमें बड़ा फर्क है। तालाबके तैरनेवालेको चाहिये कि मल्लाही हाथ जरूर जाने। मल्लाही हाथ यह है कि दोनों हाथ मुंहके सामनेसे जोड़ते हुए ले जाय और दाहिने बाएं फैला दे, इससे तैराक थक नहीं सकता। डूबतेको बचानेमें 'खड़ी" लगाना बहुत ही जरूरी है। खड़ी यह है कि हाथ और आधी छाती पानीके ऊपर रहे और पैर पानीके भीतर गोलाकार चलता रहे। पहिले तो एक एक पैरसे अभ्यास करते हैं, फिर दोनों पैर एक साथ चलाना चाहिये। बिना दोनों पैर एक साथ चलाये आदमी दूसरेका भारी बोझ उठा नहीं सकता। "खड़ी" चलानेवाला डूबते हुए को एक दम ऊपर उठाये रह सकता है।

खड़ी लगानेकी महत्ता

हमारे उस्ताद हाजी नूर मुहम्मद साहबने यह खड़ी मुझे बतायी थी और इसके सम्बन्धमें उन्होंने अपने ऊपर बीती हुई एक घटनाका भी वर्णन किया था। उन्होंने कहा इसी खड़ीकी बदौलत मैंने दो तैराकोंकी जान बचायी थी। मैं अपनी जवानीमें अस्सीसे गढ़वा घाट जो कि कमसे कम कई कोस अस्सीसे होगा तैरकर गया। मैं सदा तैरते वक्त अपनी जंघियामें हल्दी बांधकर तैरता था। हम तीन आदमी अस्सीसे चले। जब रामनगरके आगे गये तो एक सूईंस हम लोगोंके पास उतरायी हमारा साथी डर गया। दूसरे साथी के पैरमें सूईंसके दांत लग गये। अब क्या था। वह यही कहने लगा कि घड़ियालने मुझपर चोट की है। मैं भी पहले दहला फिर यह सोचकर भयरहित हुआ कि हल्दीसे घड़ियाल पास नहीं आते। हमारे दोनों साथी इतने घबरा गये कि वे डूबने लगे। मैं बड़ा घबड़ाया, पर साथ ही इसके खड़ी लगाकर दोनोंको हाथसे सम्हाल किसी तरह गढ़वा घाटके आगे ही एक गांवमें लग गये। इस खड़ीको मैं हरवक्त माँजता रहता हूं। रोजमर्रा अभ्यास करनेसे दम बढ़ जाता है और आदमी अपनेसे दस गुनेको भी बचा सकता है।

इसी प्रकार आगरेमें कालिजके दो विद्यार्थी यमुनामें तैरने गये। दोनों दूर चले जानेके कारण फिर वापस न आ सके एक तो आ सकता था दूसरा कमजोर था पर मित्र अपने साथीको छोड़कर किस प्रकार आवें। अस्तु, उसने अपने डूबते मित्रको बचानेकी बड़ी कोशिश की। यहांतक कि घाटपर आते-आते जिसने बचाया वह तो मुंहसे खून फेंककर मर गया और डूबनेवाला बच गया। इस लड़केको खड़ीसे आगाही न थी वरना कभी खून न फेंकता। यह घटना भारतमित्रमें छपी थी।

विसूचिका

(डा० रामचन्द्र भार्गव, एम. बी. बी. एस.)

विसूचिका एक दारुण और संचारिन रोग है जिसके मुख्य लक्षण हैं— चांवलके मांडके सदृश-सीरमी पदार्थका मलोत्चार तथा वमनद्वारा अपरिमित प्रवाह, पेशियोंमें उद्वेष्टन, मूत्रावरोध, भीषण दारुणता, शक्तिपात, अन्त्र तथा मलमें विशेष जीवाणुकी उपस्थिति और बहुत प्राण घातकता।

विसूचिकाका संचार जल द्वारा होता है

अगस्त १८५४ में विसूचिका लण्डनके कुछ भागोंमें विशेषतः गोलडन स्क्वायर, सोहोके पास फैला हुआ था। यहाँ ४० ब्रौड स्ट्रीटमें एक बच्चा तीन दिनकी बीमारीके पश्चात् ८ सितम्बरको मरा। इस रोगीका मल और वमन एक स्रवणशील चौबच्चेमें फेंक दिये गये। इस चौबच्चेके समीप तीन फ़ीटपर एक कुँआ था। सम्बन्ध तलाश करने पर इस कुंएसे भी निकला। आसपासके निवासी इस ही कुंएका जल पीते थे। ३१ अगस्तकी रातको इस कुंएके पानी पीनेवालोंमें विसूचिका फैल गया बहुत ही कम उनमेंसे विसूचिकाके आक्रमणसे बचे। २ सितम्बरको एक स्त्री हैम्पस्टैडमें विसूचिकासे मरी। यह हैम्पस्टैडमें विसूचिकाकी पहिली रोगिणी थी। पूछनेपर यह पता चला कि यह स्त्री ब्रोडस्ट्रीटके कुंएका पानी पीती थी, क्योंकि वहाँपर निवास कर चुकी थी और उस कुंएका पानी बहुत पसन्द करने लगी थी। ३१ अगस्तको लाया हुआ पानी उसने उस दिन भी पिया और १ सितम्बरको भी पिया। एक सितम्बरको ही उसे विसूचिका हो गया। इस स्त्रीकी भतीजीने भी वही पानी पिया और उसे भी विसूचिका हुआ। एक नौकरने भी वह पानी पिया और उसे भी यह रोग हुआ। किन्तु वह अच्छा हो गया। जहाँतक पता चला इन लोगोंका वहाँके पानीके अतिरिक्त विसूचिका ग्रसित भागसे कोई सम्बन्ध नहीं था।

दूसरा विसूचिकाका पानीसे फैलनेका उदाहरण हैम्बर्गके आक्रमणमें मिलता है। उस समय स्वास्थ सम्बन्धी और सब प्रबन्ध आलटोना, वण्डस्बेक, और हैम्बगर्गमें एक सा था केवल जल प्रबन्धमें ही अन्तर था। आल्टोना और हैम्बर्ग दोनोंमें ही एल्ब नदीका जल प्रयोगमें लाया जाता था किन्तु हैम्बर्गमें पानी साफ़ नहीं किया जाता था, सीधा नदीसे नलमें भेज दिया जाता था। आल्टोनामें पानी सावधानीसे छाना जाता था। वण्डस्बेकका जल प्रबन्ध एक झीलसे था और जल छानकर नलों में भेजा जाता था। हैम्बर्गमें आक्रमणके समय विसूचिकासे

८६०५ अर्थात् १३-४ प्रति सहस्र मृत्यु हुई। आल्टोनामें केवल २·१ प्रति सहस्र मृत्यु हुई। आल्टोना और हैम्बर्ग बिल्कुल मिले हुए हैं और इनको एक ही नगरके भाग समझना चाहिये। एक गलीमें दोनों भागोंको प्रबन्धकारिणी समितिकी सरहद मिलती है। इस गलीके दोनों ओर वही एक प्रकारके मकान हैं और वहां एक प्रकारके निवासी रहते हैं। गलीके एक ओर बड़ी जोरोंसे विसूचिका फैला और दूसरी ओर बिल्कुल शान्ति रही। जहाँतक खोज करनेसे ज्ञात हुआ जल-प्रबन्धका अन्तर ही इस संचारके अन्तरका कारण था। हैम्बर्गकी ओरवाले कुछ घर रोगसे बचे रहे। खोज करने पर ज्ञात हुआ कि यहाँ पर आल्टोना वाला ही पानी प्रयोग किया जाता था।

इस ही प्रकार कितने ही उदाहरण दिये जा सकते हैं कि जिनसे जल ही विसूचिका वाहक सिद्ध होता है। जब कि जीवाणु जलमें मिल जाते हैं तो रोगका संचार बहुत बढ़ जाता है। गांवोंमें यह रोगके संचारका अत्यन्त साधारण कारण है, क्योंकि गांवोंमें कोई सुरक्षित जल प्रबन्ध नहीं रहता पानीके तालाब दूषित वस्त्र इत्यादि धोनेसे दूषित हो जाते हैं। कलकत्तेमें युरोपीय सेनामें १८२६ से १८६३ तक विसूचिकासे मृत्युसंख्या २० प्रति सहस्र थी। जबसे पवित्र जलका प्रबन्ध हो गया मृत्यु संख्या १ प्रति सहस्र हो गयी।

विसूचिकाके जीवाणु मल और वमनमें रहते हैं

इस बातकी पूर्ण साक्षी मिल चुकी है कि विसूचिका जीवाणु जलमें पिये जानेके पश्चात् आहारपथमें खूब बढ़ते हैं। फिर मल और वमनमें बाहर निकलते हैं। फिर कहीं जलमें पहुँचकर अच्छा अवसर मिलनेपर और बढ़ते रहते हैं। डाक्टर मक्नामाराके एक उदाहरणसे यह लगभग सिद्ध हो जाता है। एक रोगीका वमन अकस्मात् कुछ सेर पानी में मिल गया। यह जल १२ घंटेतक रखा रहा। अगले दिन प्रातःकाल १९ आदमियोंमेंसे प्रत्येकने इस जलका ⅛ छटांक पिया। ३६ घंटेके भीतर १९ मेंसे पांच मनुष्योंको विसूचिका हो गया।

यह बिलकुल स्पष्ट है कि विसूचिका जीवाणुका अन्दर पहुँचना रोगके होनेका एक आवश्यक कारण है। किन्तु बहुतसी बातोंसे यह ज्ञात होता है कि केवल विसूचिकाके जीवाणु अन्दर पहुँचनेसे ही विसूचिका नहीं होता नहीं तो ऊपरके दृष्टान्तमें प्रत्येक मनुष्यको रोग अवश्य होता और और जो बातें मनुष्यको रोगशील बनानेके लिये आवश्यक है, वह आगे चलकर कुछ कुछ बतलायी जायँगी।

विसूचिका जीवाणुको पृथक् करनेकी विधि

पहिले मलको अणुवीक्षण यन्त्रसे परीक्षा कीजिये। पहिले सूक्ष्मस्तर (Film) बनाइये और उसे किसी साधारण रंगसे रंग लीजिये किन्तु इस कामके लिये सबसे उपयुक्त तनू (१:४) अंगारोल फक्सिन (Carbol fuchsin) है। सूक्ष्मस्तरके अणुवीक्षणीय दृश्यको समांतर पंक्तियोंमें बहती हुई असंख्य मछलियोंसे उपमा दी गयी है। यह दृश्य स्त्रीय है। फिर उत्लंबित (Hanging drop) विन्दुकी विधिसे परीक्षा कीजिये। विन्दुमें जैन्शन नील (Gentian violet) अथवा और कोई रंग मिला सकते हैं। इस विधिसे जीवाणुकी चालक शक्ति देखी जा सकती है। इतनी परीक्षासे ज्ञात होगा कि धन्वाकार जीवाणु उपस्थित हैं और उनकी संख्याका कुछ पता लग जायगा। मलमें जीवाणु बहुत संख्यामें होते हैं और ५० प्रतिशत रोगियोंमें केवल अणुवीक्षणीय परीक्षा ही निदानके लिये पर्याप्त होती है।

यदि जीवाणु बहुत संख्यामें है तो शैवलिन पट्ट (Agar plate) या डिओडीनके आहारपर एक दम कृषि बो दीजिये फिर संवकी सहायतासे विशुद्ध कृषि प्राप्त कर लीजिये।

यदि जीवाणु बहुत अधिक संख्यामें नहीं हैं तो इसे १ प्रतिशत पाच्योन (Peptone) के घोलमें बोइये और पांच छः घन्टेतक पालक यन्त्रमें (Incubator) रखिये। यदि ऊपरके पृष्ठपर कुछ दिखे या द्रवके ऊपरी भागको अणुवीक्षण यन्त्रसे देखनेपर जीवाणु मिले तो फिर शैवलिन् पट्टपर कृषि कर लीजिये यदि जीवाणु और भी कम संख्यामें हों तो पाच्योनके घोलकी समय समयपर परीक्षा करनी चाहिये। जब जीवाणु दिखने लगें परन्तु विसूचिका जीवाणु फिर भी कम हो तो फिर दूसरे और आवश्यकतानुसार तीसरे पाच्योनकी (फ्लास्क) सुराहीमें बोइये। फिर इससे प्लेट बना लीजिये।

विसूचिका जीवाणुके पृथक् करनेके लिए ओटोलेंघीका

आहार भी बहुत अच्छा है। यह गायके पित्तका बना होता है जिसमें १%-१० % लावण्यम् अंगारेत ($Na_2 CO_3$) का घोल मिला देते हैं। इसमें अन्य आन्त्रिक जीवाणु सुविधासे नहीं उगने पाते।

हालके विसूचिकाके कई आक्रमणोंमें अन्त्रके बहुत क्षुद्र विकारोंके रोगियोंके मलमेंसे भी विसूचिका जीवाणु निकाले गये हैं। विसूचिकाके आक्रमणके दिनोंमें बहुतसे स्वस्थ पुरुषोंके मलमें भी विसूचिका जीवाणु मिलते हैं। इन लोगों को 'वाहक' कहते हैं। बहुतसे बीत रोगियों और रोगीसे सम्बन्धमें आये हुए मनुष्योंके मलकी परीक्षासे यह ज्ञात होता है कि मलमें विसूचिका जीवाणुकी उपस्थिति दो तीन सप्ताहमें बन्द होती है। वाहकके मलमें विसूचिका जीवाणु केवल समय समयपर निकलते हैं। इसलिये जबतक कई परीक्षा न कर ली जायं यह नहीं कहा जा सकता कि मलमें विसूचिका जीवाणु बिलकुल नहीं हैं। विसूचिका जीवाणुको पहिले-पहिल कौकने मिस्र देशमें १८८३में निकाला था। फिर उसने कलकत्तेमें आकर और वहां विसूचिकाके प्रत्येक रोगीमें विसूचिका जीवाणु दर्शाकर अपनी खोजको दृढ़ किया।

विसूचिका जीवाणुका वर्णन

विसूचिका जीवाणुकी लम्बाई क्षय रोगके जीवाणुकी लम्बाईसे आधी और मोटाई द्विगुण होती है। विसूचिका जीवाणुकी आकृति धनुषके सदृश्य कुछ टेढ़ी होती है। उपयुक्त रंगके प्रयोगके पश्चात् इसमें कशा (Flagellum) देखी जा सकती है। कभी-कभी दोनों ओर कशा होती हैं और कभी एक ही ओर दो कशाएं होती हैं। कशा जीवाणुके शरीरको एकसे पांच गुनीतक लम्बी होती है किन्तु बारीकीके कारण इनका दिखना बड़ा कठिन होता है। यह कशा जीवाणुके जीवनमें हर समय नहीं होती है। इस कशाके कारण जीवाणु बड़ी शीघ्रतासे चलते हैं कभी कभी दो जीवाणु मिल जाते हैं जिससे S अक्षरकी आकृति उत्पन्न हो जाती है। तरल आहारपरकी हुई कृषिमें कहीं कहीं इसी प्रकार कई जीवाणु जुड़े हुए मिल सकते हैं। पुरानी कृषियोंमें विसूचिका जीवाणु कई आकृतियोंके हो सकते हैं। कुछ विरूपतासे मुड़े होते हैं। कोई गोल होते हैं। किसी किसीके दोनों सिरे मोटे हो जाते हैं। कोई कोई बीचमें कहीं कहीं फूले दीखेंगे। कोई बहुत छोटे और मोटे होते हैं। कोई कोई बिन्दुके आकारके हो सकते हैं। इन जीवाणुओंपर रंग अच्छी तरह नहीं चढ़ता है। इन रूपों को पतित (Involution form) कहते हैं।

रंगशीलता—विसूचिका जीवाणु अंगरोल फकसिनके (Carbol fuchsin) तनूघोलसे अथवा लौफलरकी दार्वलीन नील (Methyylene blue) से बड़ी सुभीतासे रंग जाते हैं। ग्रामकी विधिसे उनका रंग उड़ जाता है।

कृषि—विसूचिका जीवाणुकी कृषि आलूके अतिरिक्त जीवाणुओंके लिये प्रयोग किये जानेवाले किसी साधारण आहारपर साधारण कमरेके तापक्रमपर की जा सकती है। सबसे उपयुक्त तापक्रम शरीरका तापक्रम ही है। १६°श. पर विसूचिका जीवाणुओंकी उत्पत्ति बन्द हो जाती है। उस क्षारस्वभाविक अहारपर जिसमें और अन्त्रिक जीवाणुओंकी वृद्धि बन्द हो जाती है विसचिका जीवाणुओंकी वृद्धि खूब होती है।

पाच्योन सान्द्रिन (Peptone gelatin)—इस आहारपर जीवाणुओंकी खूब वृद्धि होती है और सान्द्रिन (Gelatin) तरल हो जाती है। छिद्र कृषिमें २२°श पर सुईके मार्गपर एक श्वेत रेखा बन जाती है। इस रेखा के ऊपरी भागमें साथ साथ ही आहारका तरल होना आरंभ होता है। जैसे जैसे सान्द्रिनका जल वाष्पीभूत होता जाता है ऊपरके भागमें गर्त (गड्ढा) होता जाता है। और यहांपर सान्द्रिन अधिक घन हो जानेसे शीघ्र तरल नहीं होती। इस कारण चौथे पांचवे दिनका दृश्य यह होता है—सबसे ऊपर एक गर्त रहता है उसके नीचे कुप्पीकी आकृतिका तरल क्षेत्र रहता है। बिना तरल हुई सान्द्रिनका गर्त वायुके बुद्बुदके सदृश्य दीखता है। द्रव बहुत ही कम मेघाकीर्ण (गदमैला) होता है किन्तु तरल रेखाके नीचे के भागमें कुछ कुछ सर्पिल (Spiral) आकृतिके संघ (Colony) दिखते हैं। किसी किसी नसलके विसूचिका जीवाणु बहुत अधिक अवसरके पश्चात् यह दृश्य उत्पन्न करते हैं, विशेषतः जबकि सान्द्रिन और किसी किसी नसल में तरलता बहुत धीरे धीरे उत्पन्न होती है और यह दृश्य

बिल्कुल ही नहीं दिखलाई देता है। कुछ दिनोंके पश्चात् तरलता नलीकी भित्तीतक फैल जाती है। बार बार अनु-कृषि करनेसे जीवाणुओंकी तरलता उत्पन्न करनेके लक्षणमें बहुत कमी हो जाती है।

सान्द्रिन पट्टपर उत्पन्न हुए संघोंमें कुछ स्वीय लक्षण रहते हैं। २४ से ४८ घन्टेमें संघ (Colony) श्वेत विन्दुके रूपमें दिखलाई देने लगते हैं। अणुवीक्षण यन्त्रसे देखनेपर इनका ऊपरी पृष्ठ कणमय (दानेदार) अथवा हल्यवत् (furrowed) दिखलाई देता है। संघके चारो ओर तरलता उत्पन्न हो जाती है और फिर संघ द्रवमें डूब जाता है। अणुवीक्षण यन्त्रसे गर्तकी बाहरी सीमा चक्राकृतिसी दिखती है। गर्तके भीतर द्रवका एक मंडल हो जाता है जो कि कणमय दिखलाई देता है। संघोंका सिरा विपन्न होता है।

आगरके पृष्ठपर कृप पारदर्शिन स्तर (layer) बन जाता है जिसके कोई स्वीय लक्षण नहीं होते। घन रक्त सीरमपर वृद्धि पहले वैसी ही होती है किन्तु इसके पश्चात् जीवाणु आहारमें तरलता उत्पन्न कर देते हैं। शैवलिन् पट्ट-पर ऊपरके संघ अनुवीक्षण यन्त्रसे चक्राकार और बादामी मायल पीले दिखते हैं और बहुतसे दूसरे जीवाणुओंके संघों से अधिक पारदर्शिन होते हैं।

आलूपर साधारण तापक्रमपर वृद्धि नहीं होती किन्तु ३०°–३७°श पर एक आर्द्र स्तर उत्पन्न होता है। यह स्तर धीरे धीरे बादामी रंगका हो जाता है। रंगत जीवाणुकी नसल और आलूकी किस्मपर निर्भर है।

क्षार स्वभाविक जूष (Bouillon) में जीवाणु बड़ी शीघ्रतासे उत्पन्न होते हैं। १२ घंटेके भीतर २ मेघाकीर्णता उत्पन्न हो जाती है और पृष्ठपर एक कृप स्तर दिखलाई देने लगता है, जिसके भीतर बड़ी शीघ्रतासे चलनेवाले जीवाणु रहते हैं। पाच्योनके घोलमें (१ प्रतिशत पाच्योन और ५ प्रतिशत लवण) में भी उतनी ही शीघ्रतासे वृद्धि होती है। विसूचिका जीवाणु द्राक्षाशर्करा, इक्षुशर्करा, यवशर्करा, (mlatose) और वंश शर्करामें (mannose) बिना गैस बनाये अम्ल उत्पन्न करते हैं। शर्कराके भी फेन (fermentation) अम्ल उत्पन्न होता है। किन्तु २।३ दिन लगते हैं। दूधमें जीवाणु खूब बढ़ते हैं किन्तु दूधके देखनेमें कमसे कम कई दिनतक कोई अन्तर नहीं होता।

सब प्रकारके आहारपर और विशेषतः जूष और पाच्योनके घोलमें जीवाणुओंकी वृद्धि अत्यन्त शीघ्रताके साथ होती है। विसूचिका जीवाणु ओषजनकी अनुपस्थितिकी अपेक्षा ओषजनकी उपस्थितिमें बड़ी शीघ्रतासे बढ़ते हैं। ओषजनकी पूर्ण अनुपस्थितिमें वृद्धि बहुत कम होती है।

विसूचिका जीवाणुकी लाल प्रतिक्रिया—असली विसूचिका जीवाणुके साथ इस परीक्षणमें अवश्य सफलता होती है। यद्यपि इस परीक्षणमें सफलतामें सहायता विसूचिका जीवाणुका स्वीय लक्षण नहीं है तद्यपि बहुत ही कम और जीवाणुओंमें यह लक्षण होता है। परीक्षणकी विधि यह है—पाच्योनके घोल या जूपकी ३७°श पर पालनकी हुई २४ घंटेकी कृषिमें कुछ बूँद गन्धकाम्लकी डालिये। विसूचिका जीवाणुकी कृपिके साथ नीलाई लिये गुलाबी रंगत उत्पन्न हो जायगी। इसका कारण यह है कि जीवाणु द्वारा तन्द्रालु (Indol) और नत्रित दोनों बन जाते हैं। यह आवश्यक है कि गन्धकाम्ल बिल्कुल विशुद्ध हो क्योंकि यदि नत्रितका सूक्ष्मसे सूक्ष्म भाग भी गन्धकाम्लमें हुआ तो ये परीक्षण उन जीवाणुओंके साथ भी जो नत्रित नहीं उत्पन्न करते सफल हो जायगा।

रक्ताणुलय (Haemolytic) परीक्षण—ये परीक्षण क्राऊसने निकाला था। शैवलिन् पट्ट बनाते समय यदि कुछ कुछ सूत्रिन रहित (defibrinated) रक्त अच्छी तरह मिला दिया जाता है. यदि किसी जीवाणुमें रक्ताणुलयके लक्षण होते हैं तो प्रत्येक संघके इर्दगिर्द रक्तगोलिन (Haemoglobin) के व्यापनेसे (difusion) स्पष्ट मंडल बन जाता है। विसूचिका जीवाणु रक्ताणुल नहीं करते किन्तु केवल २४ घंटेतकका फल देखना चाहिये। क्योंकि इसके पश्चात् फिर विसूचिका जीवाणुओंके संघोंके इर्द गिर्द भी स्पष्ट मंडल बन जा सकता है।

रक्ताणुलयका परीक्षण तरल कृपिके प्रयोगसे अच्छी तरह किया जा सकता है। क्षार स्वाभाविक जूपकी तीन दिनकी विसूचिका जीवाणुकी कृपिका १ घन शतांशमीटर रक्ताणुओंके ५ प्रतिशत पायस (Suspension) के १ घन शतांशमीटरके साथ एक नली (ट्यूब) में मिला

दीजिये। नलीको दो घंटेतक पालन यन्त्रमें २७°श पर रखिये। फि रातभर बर्फ़में रखे रहिये। प्रातः फल देखिये। यह परीक्षण विसूचिका जीवाणुकी ३०० नस्लोंके साथ किया गया किन्तु एकमें भी रक्ताणुलय नहीं हुआ। एलटूर समुदायमें रक्ताणुलयके लक्षण पाये जाते हैं। इस प्रकार हम इस क्रियासे असली विसूचिका जीवाणुको उस श्रेणीके जीवाणुओंसे पहचान सकते हैं।

जीवन दृढ़ता

तापके विमुख विसूचिका जीवाणुकी जीवन-दृढ़ता उतनी ही है जितनी और बिना बोजकोष वाले जीवाणुओं की होती है। विसूचिका जीवाणु ५५°श तापक्रमपर एक घण्टेमें मर जाते हैं इससे ऊँचे तापक्रमपर और भी जल्दी मरते हैं। शीतमें उनकी जीवन दृढ़ता बहुत अधिक है। वे अधिकसे अधिक शीतमें भी जीवित रह सकते हैं। −१०°श पर भी ये एक घंटेतक जीवित रहते देखे गये हैं। किन्तु बरफ़में रखनेसे कुछ दिनोंमें ही मर जाते हैं। साधारण जीवाणुनाशक औषधियोंकी विमुखतामें विसूचिका जीवाणुकी जीवन दृढ़ता बहुत ही कम है। एक प्रतिशत चूनेके पानीमें मिलानेसे विसूचिका जीवाणु एक घंटेमें मर जाते हैं।

साधारण कमरेके तापक्रमपर मलमें और बिगलनकारी जीवाणु बहुत अधिक शीघ्रतासे बढ़ते हैं। इस कारणसे विसूचिका जीवाणु बहुत स्वाधीनतासे नहीं बढ़ सकते हैं। किन्तु कभी कभी विसूचिका जीवाणु मलमें दो दो तीन तीन महीनेतक जीवित रहते देखे गये हैं। किन्तु अधिकांश परीक्षणोंमें इससे कहीं थोड़े समयके पश्चात् भी मलमेंसे विसूचिका जीवाणु कृषि करनेमें सफलता नहीं होती। साधारण पाखानेके पानीमें भी विसूचिका जीवाणु बड़ी शीघ्रतासे बढ़ते हैं। यह भलीभांति ज्ञात है कि विसूचिका जीवाणुकी वृद्धिके लिए आवश्यक दशाएँ यह हैं—जीवप्रभाव पदार्थ, साधारणके लगभग तापक्रम, नमी और ओषजनकी उपस्थिति। किन्तु यह ठीक ठीक नहीं कहा जा सकता कि किन किन दशाओंमें विसूचिका जीवाणु विगलिताहारी बनकर अपरमित समयतक जीवित रह सकते हैं। विसूचिकाका स्थिर निवासस्थानका क्षेत्र बहुत कम है। इससे तो यह ज्ञात होता है कि साधारणतः विसूचिका जीवाणुके लिये शरीरके बाहर निरन्तर वृद्धिके लिये उपयुक्त दशा अधिकतर नहीं मिल सकती। विसूचिका जीवाणु निष्कर्षित जलमें शीघ्र मरते हैं लवणमय जल जैसे सामुद्रिक जलमें बहुत दिन जीवित रहते हैं।

विसूचिका जीवाणु सूखेमें बहुत जल्दी मर जाते हैं। इस कारणसे वायु द्वारा विसूचिकाका संचार सम्भव नहीं है। यह बात संचार मार्ग देखनेसे भी ज्ञात होती है। दूषित जल और भोजनसे ही विसूचिका फैलता है। मक्खियोंको दूषित भोजन खिलाकर मक्खियोंके शरीरमेंसे विसूचिका जीवाणु २४ घंटेतक जीवित देखे गये हैं। अन्धेरे में विसूचिका जीवाणु ४ घंटेमें मर जाते हैं।

इसमें संशय नहीं है कि विसूचिकाका जनसंख्यामें बहुत शीघ्रतासे संचारका कारण जल प्रबन्धका दूषित होना होता है। पवित्र दूध यदि विसूचिका ग्रसित स्थानमें खुला हुआ रक्खा जाय तो मक्खियोंद्वारा विसूचिका जीवाणुसे दूषित हो जाता है। इस विधिसे कभी-कभी तो इस रोग का संचार अवश्य होता है।

अब हम यह अच्छी तरह समझ सकते हैं कि विसूचिकाको संसारमें किन-किन स्थानीय अवस्थाओंसे सहायता मिलती है।

(१) मल इत्यादिक जीवप्रभव पदार्थोंसे धरतीका दूषित होना।

(२) नमी और कुछ गरमीसे विसूचिकाके संचारमें बहुत सहायता मिलती है। किन्तु बहुत ठंडमें विसूचिका का बन्द होना ज़रूरी नहीं है। पञ्जाबमें कभी कभी उस समय भी विसूचिका प्रचलित रहता है जब तापक्रम ०°श तक हो जाता है।

(३) ऊँची और शुष्क धरतीकी अपेक्षा नीचे और नदीके किनारे वाले ज़िलोंमें विसूचिका अधिक होता है।

(४) अधिकतर विसूचिका गरमीके अन्तमें आरम्भ होता है और सर्दीके आरम्भ होते ही बन्द हो जाता है। बंगालमें अप्रेल, मई और पंजाबमें वर्षाऋतु विसूचिका फैलनेके साधारण महीने हैं।

जीवाणुद्वारा रोग उत्पन्न करनेके परीक्षण

रोगोत्पादनके परीक्षणोंके फलको समझते समय यह

ध्यानमें रखना चाहिये कि जन्तुओंमें प्राकृतिक दशामें यह रोग कभी नहीं होता है।

नीकेटी और रीशने कुत्ते और शशकके पक्वाशय (duodenum) में विसूचिका जीवाणु अन्तःक्षेपण (Injection) किये, और वह बहुतसे पशुओंकी अन्त्रों में विसूचिकाके समान परिवर्तन उत्पन्न करनेमें सफल हुए। यह सोचकर कि विसूचिकाके जीवाणु आमाशयके अम्लसे नाश हो जाते हैं कौकने गिनी शूकर (guinea pig)के आमाशयका अम्ल नाश करनेके लिये ५ प्रतिशत लावण्यम् अंगारेत ($Na_2 CO_3$) के घोलका ५ घन शतांशमीटर पिलाया और फिर एक नलीसे विसूचिका जीवाणुकी विशुद्ध कृषि आमाशयमें चढ़ा दी। इस प्रकार सफलता नहीं प्राप्त हुई तो लावण्यम् अंगारेत ($Na_2 CO_3$) पिलानेके अतिरिक्त आन्त्रको कृमिवत आकुञ्चन रोकनेके लिये उदरस्थ आवरण (Peritoneum) में (१ घन शतांशमीटर प्रति २०० ग्राम जन्तु तोलके हिसाबसे) अहिफेन आसव (Tr. Opii) अन्तःक्षेपण कर दिया। ३५ में से ३० पशुओंमें शक्तिपातसे मृत्यु हुई। मृत्यु कुछ घंटे पश्चात् हुई और मृत्युके पश्चात् अन्त्र फूली हुई पाई गई, अन्त्रकी श्लेष्मल कलाप रक्तपूर्ण पाई गई। अन्त्र रंगहीन द्रवसे भरी हुई थी। इस द्रवमें कुछ छिछड़े भी थे, और अणुवीक्षण यन्त्रसे परीक्षा करनेपर इस द्रवमें विसूचिका जीवाणु विशुद्ध कृषिमें पाये गये। फिंकलर प्रायर, मिलर, उनीके जीवाणु प्रयोग करनेपर इतनी मृत्यु नहीं है हुई। इन परीक्षणोंसे यह प्रकट होता है कि विसूचिका जीवाणु और विसूचिकामें घनिष्ट सम्बन्ध है।

जिन शशकोंमें विसूचिका नाशक सीरम बनानेके लिये जीवाणओंका शिरामें अन्तःक्षेपण किया जाता है उनमें पित्ताशयमें भी जीवाणु मिलते हैं और पित्ताशयमें पित्ताश्मरी (Gall stones) भी मिलते हैं। यह बड़ी रोचक बात है। क्योंकि शायद वाहकके मलके जीवाणुओं का स्रोत भी पित्ताशय है।

इस ही सम्बन्धके और भी रोचक परीक्षण दिये जाते हैं। सोबोल्टनीने मारमट (marmot) पर परीक्षण किया। मारमटमें केवल विसूचिका जीवाणु खिलानेसे ही अन्त्रमें रोग उत्पन्न हो जाता है और अन्तमें वही स्वीय परिवर्तन पाये जाते हैं। कभी कभी रक्तरक्षणिक उदरस्थ आवरण प्रदाह भी मिलती है और जीवाणु शरीर भरके रक्तमें पाये जाते हैं।

मैचिनीकाफने यह अनुसन्धान किया कि शशकके (rabbit) बच्चेमें विसूचिका जीवाणुओंको केवल दूधके साथ पिलानेसे ही रोग उत्पन्न हो जाता है। यह परीक्षण मांके थनमें विसूचिका जीवाणु लगानेसे किया जा सकता है, और फिर प्राकृतिक विधिसे अपने आप संचार आरम्भ हो सकता है। सुस्सेके बच्चोंमें विसूचिकाके प्रायः सभी लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं।

गिनी शूकरमें उदरस्थ आवरणीय अन्तःक्षेपण करनेसे लगभग सब विषज लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। मुख्य लक्षण होते हैं उदरका फूल जाना, शीतज्वर और शक्तिपात उदरस्थ आवरणमें अवस्थाके अनुसार आकर्षित पदार्थ स्वच्छ द्रव हो मेघाकीर्ण पदार्थ हो अथवा उसमें कुछ लसीकाके छिछड़े हो सकते हैं। यदि जीवाणुओंकी मात्रा अधिक दी जाय तो क्षुद्रान्त्र और रुधिरमें भी जीवाणु बहुसंख्यामें मिलते हैं। कोलने यह मालूम किया कि यदि कमसे कम विनाशक मात्राका प्रयोग किया जाय तो मृत्युके समीप जीवाणु नाश हो जाते हैं। मृत्यु केवल विषके समावेश होनेसे ही होती है। इससे सिद्ध हुआ कि परीक्षणोंमें जीवाणुकी संख्या बढ़ती तो है, किन्तु विसूचिका जीवाणुओं में तन्तुओंपर आक्रमण करनेकी शक्ति बहुत अधिक नहीं होती। विष समावेशके लक्षण सदा स्पष्ट रहते हैं।

मनुष्यपर परीक्षण

मनुष्यपर कुछ परीक्षण असावधानीके कारण हो गये हैं और कुछ जान बूझकर किये गये हैं। कौफकी प्रयोगशाला के एक काम करनेवालेको विसूचिका जीवाणु बहुत संख्यामें थे। रोगी अच्छा हो गया। इस रोगीमें उन कृषियोंके अतिरिक्त जिनसे कि वह काम करता था और कोई कारण विसूचिका का नहीं हो सकता क्योंकि उस समय जर्मनीमें विसूचिकाका नाम भी नहीं था। मनुष्योंपर इसी प्रकार बहुत परीक्षण हो चुके हैं। जिनसे यह ज्ञात होता है कि कभी कभी विसूचिकाके जीवाणओंसे बहुत कठिन लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं और कभी कभी कोई लक्षण नहीं होते। इसलिये

और पेख कोवरने अपने ऊपर परीक्षण किये और दोनों बहुत बीमार हो गये। दोनोंमें प्रवाहिका बहुत कठिन थी, मलमें विसूचिका जीवाणु बहुत संख्यामें थे किन्तु विष-समावेश के लक्षण इतने कठिन नहीं थे। मेचनीकौफने भी अपने ऊपर और औरोंपर परीक्षण करके विसूचिका और विसूचिका-जीवाणुका सम्बन्ध सिद्ध किया। हैम्बर्गके डाक्टर और्गेलको विसूचिका जीवाणुकी कृषिसे परीक्षण करते समय यह रोग लगा और चिकित्सा होनेपर भी उनकी मृत्यु हो गई। विसूचिका जीवाणुयुक्त कुछ उदरस्थ आवरणीय द्रव पिपेटसे खींच रहे थे और उसमें कुछ उनके मुंहमें चला गया था। यह सितम्बर १८९४ की बात है, जिस समय जर्मनीमें विसूचिका नहीं था। यह हम पहिले भी देख चुके हैं कि प्रत्येक मनुष्य-परीक्षण सफल नहीं होता विसूचिका के संचारके दिनोंमें भी उन्हीं अवस्थाओंमें रहते हुए भी बहुतसे मनुष्य विसूचिकासे विमुक्त रहते हैं। विसूचिकाके वाहक मनुष्योंकी ओर भी ध्यान देते हुए इसी परिणामपर पहुँचते हैं कि कुछ मनुष्य विसूचिकाके लिये बहुत ही रोगशील होते हैं।

विष

छनी हुई कृषि बहुत कम विषैली होती है अर्थात् वहिर्कोषीय विष विसूचिका जीवाणुओंमें बहुत कम होता है। फाईफरने यह सिद्ध किया कि मृतक जीवाणु बहुत विषैले होते हैं। उनके अन्तःक्षेपणसे गिनी शूकरमें वही लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं जो कि जीवित जीवाणुओंके अन्तः-क्षेपणसे होते हैं। शीतज्वर और शक्तिपातका बहुत आधिक्य रहता है। फाईफरका विचार है कि विष जीवाणुके भीतर रहता है, अर्थात् विष अन्तःकोषीय होता है, और जीवाणुओंके लयके कारण विमुक्त हो जाता है। फाईफरने यह सिद्ध किया कि यदि जीवाणुओंका अन्तःक्षेपण जीवाणुओंके उदरस्थ आवरणमें किया जाय और फिर कुछ विसूचिका नाशक सीरमका भी अन्तःक्षेपण कर दिया जाय तो जीवाणुओंका लय होने लगता है, और विष विमुक्त हो जाता है और फिर विषके समावेश होनेसे बड़ी शीघ्रतासे शक्तिपात होता है। मृत कृषि खिलानेपर अन्त्रकी (Epithelium) पृष्ठीय कोषस्तरमें कोई क्षति न हो तो कोई प्रभाव नहीं होता। यदि पृष्ठीय (Epithelium) कोषस्तरमें कोई क्षति हो तो विष-समावेश हो जाता है। फाईफरका विचार है कि पृष्ठीय कोषस्तरमें क्षति होना मनुष्यमें रोग होनेके लिये आवश्यक है। फाईफरने मालूम किया कि ६०°शपर अधिकांश विषनाश हो जाता है किन्तु बचा हुआ विष १००°शपर भी नष्ट नहीं होता। कृषि विषका भी प्रभाव नहीं है। मक्फेडियनने कृषिको तरल वायुसे जमाकर, और उसे पीसकर विष निकाला। यह विष शिरामें अन्तःक्षेपणपर अत्यन्त विषैला सिद्ध हुआ। जमी कृषिसे निकाले विषका भी अधिकांश भाग ६०°श पर नाश हो जाता है।

इसके विरुद्ध और वैज्ञानिकोंने छनी हुई कृषिमें भी विष पाया है। मेचनीकाफ, सेलिम्बेनीने यह सिद्ध किया कि तरल आहार व्यापी (diffusible) विष बनते हैं। लेपोपम् (Collodion) की थैलीमें जीवाणुकी कृषि भरकर उदरस्थ आवरणमें रख दी। उन्होंने यह सिद्ध किया कि ऐसे विष बनते हैं जो थैलीकी भित्तीके भी पार जा सकते हैं। औ विषैले लक्षण उत्पन्न कर सकते हैं। जीवाणुके प्राबल्यको बढ़ाकर फिर उसे जूषमें उगाकर ३रे या ४थे दिन छाननेपर उनको एक विष मिला। यह बहुत विषैला था १/५ व. श. मी. प्रति १०० ग्राम जन्तु बोझके हिसाबसे गिनी शूकरको मार सकता था। लक्षण फाईफरके परीक्षणवाले ही थे। इस विषका विषैलापन उबालनेसे भी कम नहीं होता। इससे यह मालूम होता है कि यह कोई दूसरा विष है। हंटमूलने विसूचिका की कई नस्लोंसे एक वहिर्कोषीय विष निकाला जिसको कि वह रक्ताणुलयकारी समझते हैं। यह विष बड़ा अस्थिर होता है। उन्होंने इस विषका एक विषनाशक भी बनाया। इन फलोंके परस्पर विरोधका कारण यह मालूम होता है कि विसूचिका जीवाणुओंकी भिन्न नस्लोंमें वहिर्कोषीय विष उत्पन्न करनेकी शक्ति एक समान नहीं होती। तो भी अधिकांश विष सदा अन्तःकोषीय होता है।

प्राकृतिक चिकित्सा या नेचुरोपथी

[श्रीगंगाप्रसाद गौड़, "नाहर", भूपतिपुरी]

१—मलेरिया अंतरिया आदि, ज्वरोंकी अचूक चिकित्सा

प्रसिद्ध पर्यटक डा० ब्रोकने अपने पर्यटन-कालमें एक ऐसी, सब जगह मिलनेवाली औषधिका पता लगाया है जिससे सबतरहके मलेरिया, अँतरया ज्वर बात-की-बातमें 'छू-मन्तर' हो जाते हैं। उक्त डाक्टर, अपने सफरनामेमें, लिखता है।

"हंगरी, थीस, और मारीसके मलेरिया पूर्ण मैदानोंकी यात्रामें, तथा दक्षिण-अमेरिकाके गुआरोसी इन्डियन लोगोंके अस्वास्थ्यकर निवास-स्थानोंमें, मैं एक ऐसी सस्ती औषधिका प्रयोग करता था, जिसकी एक ही मात्रा और अधिक-से-अधिक दो मात्राएं, जाडेके बोखारके प्रत्येक मरीजके लिये राम-बाण सिद्ध हुई हैं। वह औषधि और कुछ नहीं केवल साधारण खानेका नमक था। मैं एक पैसाभर खाने का अच्छा, स्वच्छ तथा पिसा हुआ नमक लेता था और सम्भवतः नयी कढ़ाई, या किसी साफ बर्तनमें, या तवेपर ही, धीमी आँचपर, उसे उस वक्ततक भूनता था जबतक कि उसका रंग खाकी (भूरा) न हो जाता था। फिर उस भूने हुए नमकमेंसे बालिग मरीज़को, खानाखानेके चम्मच भर नमक (इससे कम नहीं, बल्कि अधिक ही) एक गिलास भर गरम पानीमें घोलकर, खालीपेट, जूड़ीके अगले दिन पिलाता था। और रोज़ाना आनेवाले ज्वरमें, जूड़ी उतरने के कुछ घन्टे बाद देता था, जिससे मरीज़ प्रायः एक ही खुराकमें भला-चंगा हो जाता था। चूँकि यह दवा खालीपेट ही पर अवश्य ही असर करती है, इसलिये औषधि सेवन के बाद, न तो कुछ खाना चाहिये और न पीना। अधिक प्यास लगनेपर रोगी 'नरई' से पानीको चूसे, और ४८ घंटे बाद जब उसे भूख लगे तब मुनक्का या साबूदाना खा सकता है। आहारमें कठिन संयम चाहिये, और ठंढसे बचे रहना भी अत्यन्त आवश्यक है। मैं इस औषधिकी प्रयोग १८ वर्षोंसे कर रहा हूँ और इस दरम्यानमें मुझे एक-बार भी असफलता नहीं हुई........"

इस प्रयोगके सम्बन्धमें प्रसिद्ध साहित्यिक शिकारी श्रीराम शर्मा जीका भी कहना है कि—मलेरियाकी सर्वोत्तम और अत्यन्त सस्ती औषधि साधारण नमक है। वह कहते हैं—"हमने सैकड़ों मरीज़ोंपर इसे आज़माया, और एक-एक दो-दो महीनोंका मलेरिया, चाहे वह 'इकतरा' हो वा 'तिजरा' एक और अधिक-से-अधिक दो खुराकमें चला गया है। हमको इस दवाका पता शुरूरकी "Twelve-Tissue Remedies" नामक पुस्तकसे चला। इससे पहिले फिटकरीका फूला भी मलेरियामें कारगर साबित हुआ था किन्तु नमकवाली औषधिको कोई नहीं पाता।"

२—शीतज्वरका दूसरा बेपैसेका इलाज

शीतज्वर निवारणार्थ, आमके वृक्षकी जड़के पास कुदरती तौरपर जमा हुआ पानी, काफी प्रसिद्ध है। देहातों में इसका प्रयोग 'टोटके' के तौरपर किया जाता है, और मन्त्रवत् फल देता है। किन्तु वास्तवमें है यह एक वैज्ञानिक प्रयोग। बात यह है कि आमकी जड़के पास जो पानी बहुत दिनोंसे जमा रहता है उसमें रासायनिक प्रक्रियाद्वारा आमके जड़की छालका रस उतरकर उसे इस योग्य बना देता है कि उसके पीनेसे वह एक उत्तम औषधिका कार्य करे। नहीं तो परीक्षा करके देखा गया है कि थोड़े पानी में आमकी छाल भिगोकर और उसका रस निकालकर लगभग २॥ तोला रस मलेरियाके मरीज़को पिलानेसे वह चंगा हो गया है। यह प्रयोग बीसों रोगियोंपर आज़माया गया है और शत-प्रति-शत लाभ पहुँचा है। आमकी छालका यह रस करीब २॥ तोला किसी भी शीतज्वरसे पीड़ित रोगीको देनेसे पहले ही दिन आश्चर्य-जनक लाभ होता है। लगातार कुछ दिनों तक सेवन करते रहनेसे रोग जड़-मूलसे नष्ट हो जाता है। ग़रीबोंके लिये यह एक अच्छा सस्ता नुसखा है।

३—नये आविष्कार

"व्यायामं कुरु" मशीन—आविष्कारोंकी भी हद हो

गयी। वैज्ञानिकोंने अब एक ऐसे यन्त्रका भी आविष्कार कर लिया है, जिसकी मददसे आपको सब प्रकारकी कसरत करायी जा सकेगी। एक ही मशीन आपको घोड़सवारी करावेगी, नाव-खेनेकी कसरत करायेगी, साइकिल-दौड़का मज़ा देगी तथा अन्य सभी प्रकारके शारीरिक व्यायाम करानेमें सफल होगी। यह मशीन बिजली द्वारा चलती है। मशीनपर बैठकर बिजलीका बटन दबाते ही वह उचक कर, ठुनुककर, मटककर सारे-के-सारे व्यायाम करा देती है। बीसवीं सदीका यह एक अद्भुत आविष्कार है।

धीमी-से-धीमी आवाज़ भी भारी-से-भारी बना लीजिये—विज्ञानने जहाँ कोलाहल पैदा करनेवाले यन्त्रों का प्रचुर संख्यामें आविष्कार किया है वहां उसने ऐसे यन्त्र भी निकाले हैं जो कम-से-कम आवाज़ करते हैं। अब एक बिजलीका यन्त्र ऐसा निकाला है, जिससे धीमी-से धीमी आवाज़ भी भारी और विस्तृत हो सकती है। इस यन्त्रद्वारा लिफ़ाफ़ा चीरनेमें जो शब्द होता है वह ३५०'०० मीलकी दूरीपर स्पष्ट सुनाई देता है। इस यन्त्रसे कई काम लिये जायँगे। मनुष्यके अङ्गोंकी संधियोंसे हिलने-डोलनेके समय कैसी स्वर-लहरी निकलती है, यह भी उस यन्त्रद्वारा सुना जाता है।

हँसाकर रोगोंका इलाज—संसारमें अबतक रोगोंसे छुटकारा पानेके लिये कितने ही तरीके निकल चुके हैं, किन्तु यह हँसानेवाला प्रयोग तो सबसे निराला निकला। पेरिस के एक डाक्टरने हँसाकर रोगको अच्छा करनेका तरीका निकाला है। वह प्रत्येक रविवारको सबेरे एक हालमें अपने मरीज़ोंको, उनकी आँखोंमें पट्टी बाँधकर बैठाता है। फिर वह ग्रामोफोनपर एक ऐसा रिकार्ड रखकर बजाता है जो हास्यरससे परिपूर्ण होता है, और जिसको सुनकर सारे-के-सारे मरीज़ एक साथ हँसना आरम्भ करते हैं और साराहाल क़हक़होंसे गूँज उठता है। उक्त डाक्टरका कहना है कि इस प्रकार हँसने, और दूसरोंका हँसना सुननेसे मरीज़ोंका स्वास्थ्य बहुत जल्द सुधर जाता है।

४ कुछ जानने योग्य बातें

प्र०—क्या बड़ा सिरवाला, बुद्धिमान होता है ?

उ०—लोगोंकी ऐसी धारणा है कि जिसका सिर जितना ही बड़ा होता है वह उतना ही अधिक बुद्धिमान भी होता है। किन्तु अनुभव सिद्ध करता है कि बड़ा सिर बुद्धिका परिचायक नहीं बुद्धि बड़े और छोटे सिरपर निर्भर नहीं करती। विद्वानोंने पता लगाया है कि पुरुषोंका मस्तिष्क औसतन् ४९॥, और स्त्रियोंका ४४ औंस होता है; साथ-ही-साथ यह भी प्रमाण है कि बड़े भारी बुद्धिमान लेखक अनातोले फ्रांसके मस्तिष्कका वज़न केवल २८ औंस था। इस लेखकको डाक्टरोंने अपवाद रूपसे माना है, क्योंकि ३० औंससे कम, और ७५ औंससे अधिक वज़नके मस्तिष्क वाले, प्रायः बेवकूफ़ होते हैं। कुछ वर्ष पहले प्रो० कार्ल पियर्सन एफ़० आर० एसने २१०० पुरुषों, और १०६४ स्त्रियोंके दिमागोंकी 'एक्स-रे' द्वारा परीक्षाकी। परीक्षाके फल स्वरूप पता लगा कि बोहेमियन जातिवालोंका मस्तिष्क बड़ा, और अंग्रेज़ोंका छोटा होता है।

प्र०—क्या दूध सबसे अधिक पौष्टिक खाद्य पदार्थ है ?

उ०—शिमलाके हेल्थ आफिस मेजर डब्ल्यू० एच० क्राइटनने म्युनिस्पल कमेटीकी ओरसे बालकोंको दूध देकर नियम पूर्वक परीक्षण किया था। उनकी रिपोर्ट है कि चार अंडोंसे, १२ औंस मछलीसे, तथा ६ औंस अच्छे मांससे एक पौंड दूध अधिक पौष्टिक और प्रभावकारी होता है।

प्र०—क्या पुरुष भी बाँझ होता है ?

उ०—जनसाधारणकी यह धारणा है कि स्त्रियां ही बांझ हो सकती हैं, पुरुष नहीं, और यही कारण है कि जब स्त्रीके सन्तान नहीं होती तो सारा दोष स्त्रीके ही सिर मढ़ा जाता है। उसकी परीक्षा करायी जाती है, दवाएं पिलायी जाती हैं—टोटके-टमाने होते हैं, और यदि इतनेपर भी कोई संतान न हुई तो बेचारी दूधकी माखीकी तरह त्याग दी जाती है। ऐसी स्थितिमें यह कोई नहीं सोचता कि पुरुष भी स्त्रियों ही की तरह हड्डी और माँससे बने हैं, फिर सन्तान न होने पर उनकी भी डाक्टरी परीक्षा क्यों न करायी जाय, और यदि वे बाँझ साबित हों तो स्त्रियोंकी भाँति उनका भी माकूल इलाज क्यों न हो।

डाक्टर एडमंडग्रेने पुरुषोंके बांझपनपर कुछ प्रकाश डाला है, पाठकोंके लाभार्थ, उनकी इस सम्बन्धमें लिखी, कुछ पंक्तियां आवश्यक परिवर्तनके साथ उद्धृतकी जाती हैं—

"बहुतसी बीमारियां ऐसी हैं जिनसे पुरुष बांझ हो जाता है। मधुमेह, रक्तहीनता, रीढ़की बीमारियां तथा शरीरमें सीसेका विष प्रविष्ट हो जानेसे बाँझपन अवश्य होता है। अत्यन्त व्यभिचारसे भी पुरुष नपुंसक और बांझ हो जाता है। नपुंसक वा बांझ पुरुषको अंडेका सेवन कभी नहीं करना चाहिये, इससे अत्यधिक उत्तेजना उत्पन्न होती है। ऐसे पुरुषोंको हरे फल, शाक-भाजी और सादा भोजन लाभ-प्रद होता है। कोष्ठबद्धता न होने देना चाहिये। अश्लील और गन्दे साहित्य नहीं पढ़ने चाहिये। बहुधा उपन्यासों और कहानियोंमें अश्लीलता रहती है। सदैव सूर्योदयसे प्रथम खुली हुई प्राण-प्रद वायुमें घूमनेकी आदत डालनी चाहिये। शामको योगासनोंमेंसे कोई-सा अच्छा आसन, इस रोगके लिये लाभ दायक सिद्ध हो सकता है।"

शीर्षासनको लोग उत्तम बताते हैं किन्तु इन पंक्तियोंके लेखककी रायमें योगके आसनोंके चक्करमें जितनाही कम पड़ा जाय, उतना ही अच्छा है; क्योंकि बिना गुरुके अथवा आसनोंको विधिवत न करनेसे कभी-कभी भारी हानि उठानी पड़ती है। सूर्य्य-नमस्कारकी सारी कसरतें निर्दोष और लाभकर हैं।

प्र०—प्रकृति मनुष्यको स्वस्थ बनाती है, या ओषधि?

उ०—प्राकृतिक चिकित्सा विशारदोंने तो सिद्ध कर दिया है कि एक अस्वस्थ व्यक्ति केवल प्रकृतिद्वारा ही पूर्ण स्वास्थ्य लाभकर सकता है, और डाक्टरी दवाएं उनके स्वास्थ्य-लाभमें सुविधाएं उत्पन्न करनेके बदले अनेक बाधाएं उपस्थित कर देती हैं, और अन्तमें रोगको इतना टेढ़ा बना देती हैं कि फिर कोई दवाकारगर नहीं होती, तब लाचार होकर फिर उसी प्रकृति माताकी सुखमय गोदकी शरण ली जाती है, और मरीज हवा-पानी बदलनेके लिये पहाड़आदि पर भेजा जाता है; किन्तु यह वही मसल है कि 'चेते भी तो देरसे चेते'। ओषधि-विद्याकी भांति 'सर्जरी'-विद्या भी अभी अपूर्ण ही है। एक दृष्टान्त लीजिये अलबर्ट-जॉनसन जिसकी अवस्था इस समय ५० वर्षकी है, जब १२ वर्षका था तब उसकी छातीमें एक गोली प्रविष्टकर गयी थी। जिस व्यक्तिने उसपर गोली चलायी थी, उसका आजतक पता न चला, और न उस गोलीका ही पता मिला जो उक्त अलबर्टके शरीरमें प्रविष्ट हुई थी। बड़े-बड़े सर्जरी-विशेषज्ञोंने बड़े प्रयत्नसे गोलीका पता लगाना चाहा, किन्तु शरीरके भीतर वह कहीं मिलतीही नथी। एक दिन अलबर्टको इतने ज़ोरकी खाँसी आयी कि वह घबरा उठा। थोड़ी देरमें वह देखता क्या है कि खाँसीके कफ़के साथ वही गोलीबाहर निकली पड़ी है। जिस गोलीको निकालनेमें सर्जनोंकी दर्जनों छुरियाँ विफल सिद्ध होचुकी थी, उसीको प्रकृतिकी एक साधारण खाँसीने किस आसानीसे निकाल फेंका, यह ज़रा सोचनेकी बात है।

प्र०—क्या नमकका सेवन शरीरके लिये आवश्यक है?

उ०—योगके ग्रन्थोंमें, योगीके लिये नमकका प्रयोग निषिद्ध है। प्राकृतिक चिकित्सकोंका भी यह मत है कि नमक रक्तको विषाक्त बनाता है, इतना ही नहीं, उनलोगोंका कहना है कि नमकसे ही सारे रोग उत्पन्न होते हैं। महात्मा गान्धीने भी अपनी एक स्वास्थ्य सम्बन्धी पुस्तकमें नमकको स्वास्थ्यके लिये हानिकारक बतलाया है। नमकके विरोधमें ये दलील दीजाती है कि वह अप्राकृतिक रूपमें ग्रहण किया जाता है। प्राकृतिक लवण तो फलोंद्वारा ही प्राप्त होते हैं। किन्तु इस युगमें मनुष्य केवल फलोंपर निर्वाह करनेसे रहे, अतएव शरीरको जितने परिमाणमें लवणोंकी आवश्यकता होती है, उसकी पूर्ति एक-दो फलोंसे नहीं होसकती। इसके अतिरिक्त शरीरको क्लोरीन या हरिनवायुकी भी आवश्यकता होती है। जो नमकसे ही हमें मिलती है। अन्नमें यद्यपि प्राकृतिक अवस्थामें कुछ लवण पाये जाते हैं, तथापि वे काफी नहीं होते। शाक और फल भी हम काफी सेवन नहीं करते। इसलिये हमें अधिक नमक चाहिये भी, और अन्न पकाकर उसमें ऊपरसे नमक बिना मिलाये हमारी लाखों बरसकी पड़ी स्वादकी आदत नहीं मानती। इसलिये अन्न जब पकाकर खाया जाता है, तब उसमें बाहरसे नमक मिलाकर खाना ही अच्छा है। हाँ, जिन्हें खुजली, कोढ़ आदि चर्मरोग हुए हों, उन्हें बाहरसे नमक कदापि न लेना चाहिये। उन्हें आहारके स्वभाविक नमकपर ही गुजर करना चाहिये।

अबोल पेड़ोंकी गवाही

[श्री कृपाशंकर जायसवाल, बी० ए०]

डिसन (अमेरिका) के विसकान्सिन विश्व-विद्यालयके बनस्पतियोंकी प्रयोगशालामें सरकारी वैज्ञानिक कानूनके कठिनसे-कठिन ग्रन्थियोंको वृक्षोंके द्वारा हल करते हैं। यह कार्य वृक्षोंके अणुओंके खुर्दबीनों द्वारा अध्ययनसे और वृक्षोंके काटनेपर जो छल्ले दिखलाई पड़ते हैं उनके विश्लेषणसे होता है।

ये विज्ञानवेत्ता लकड़ीको केवल जलाने और मकानोंमें लगानेकी ही वस्तु नहीं किन्तु सेलों, लिगनिन, स्टार्च, गोंद चीनी और रङ्गोंका एक संमिश्रण भी समझते हैं। और इन्हीं के द्वारा, अपने अनुभवके बलपर, ऐसी बातोंका पता लगाया है, और लगाते हैं जो जासूसी उपन्यासोंसे भी अधिक रोचक और मनोरञ्जक है।

एक लेखक पापुलर मिकैनिक्समें लिखता है कि इस बातका सुन्दर उदाहरण ब्रूनोरिचार्ड हाप्टमैनका मुकदमा है। इसे लिन्डवर्गके एक बालककी हत्याके अपराधमें सज़ा हुई थी। आर्थर कोहेलर प्रयोगशालाके दक्षने केवल सीढ़ीमें, जिसके द्वारा बालक उतारा गया था, पेन्डरोज़ा पाइन लकड़ी काही नहीं पता लगाया किन्तु यह भी सिद्ध कर दिया कि सीढ़ीके सोधी लकड़ियोंमेंसे एक लकड़ी अभियुक्तके कोठेके फर्शमेंसे निकाली गयी थो।

कोहेलरके इस सबूतसे जनता लकड़ीके द्वारा पहचान के मूल्यसे भी परिचत हो गयी।

दूसरा उदाहरण विसकान्सिनके बम फेंकनेवालेको है जिसने ड्रेनेज कमिश्नरको मारनेका इरादा किया था। उसने बमको सफेद एल्म लकड़ीके डिब्बेमें भरकर कमिश्नरके मेलवाक्समें रख दिया। कमिश्नरकी पत्नीने, चूँकि [क्रिसमस] बड़ेदिनके पहिलेकी बात थी उसे पतिका उपहार समझकर उठालिया। खोलते ही बम फट गया और वह स्वयं परमात्माका उपहार बन गयी।

हत्यारेके ऊपर जोकि बढ़ई था शक हुआ किन्तु सबूत न मिलनेसे सब लाचार थे। जो कुछ उनका धन था वह बमवाला डिब्बा जोकि अब टुकड़े-टुकड़े हो गया था। पुलिस केवल इन्हींके बलपर क्या कर सकती थी और यही हालत काष्ठ-विशेषज्ञोंकी भी थी। इन लोगोंने टुकड़ोंके कोणीय संगठन की परीक्षाकी। इसके बाद बढ़ईके कारखानेका निरीक्षण किया जो होशियारीसे झाड़पोंछ दिया गया था। लकड़ीके छिलकोंकी टोकरी दुकानसे हटाकर एक बेन्चके नीचे छिपा दी गयी थी। किन्तु काष्ठवेत्ताओंने एक छिलका ढूंढ़ ही निकाला जिसने बढ़ईके भाग्यका निपटारा कर दिया यह छिलका सिर्फ सफेद एल्मका ही नहीं था किन्तु इसका कोषीय संगठन भी ठीक डिब्बेवाले लकड़ीकासा ही था।

एक दूसरे मुकदमेमें एक लकड़ीके टुकड़ेने जो बर्मीमें अटका रह गया था एक निर्दोष मनुष्यको डकैतीके अपराध से बचालिया था। काष्ठ-दक्षोंने साबितकर दिया कि यह टुकड़ा उस दरवाजेके लकड़ीसे भिन्न था जिसमें चोरोंने छेद किया था।

काष्ठ-वेत्ताओंके औज़ार भी कोई वैसे विशेष नहीं होते। साधारणतः वे ये हैं—खुर्दबीन, कैलिपर्स, दोनली खुर्दबीन, तेज़ रोशनियाँ, प्रवर्द्धकताल, इत्यादि। इसके अलावा कुछ उनके अपने नये ढंगके हैं जिनसे लकड़ीके छिद्र जन्य कठोरता सम्बन्धी बातोंका पता लगता है।

जिस तरह दो उँगलियोंके उँगली-छाप एकसे नहीं होते वैसे ही काष्ठविद् जानते हैं कि दो वृक्षोंके वार्षिक छल्ले भी एकसा नहीं होते। यदि दो टुकड़ोंके छल्लोंका रूप बिल्कुल एकसा होता है—तो मालूम हो जाता है कि ये टुकड़े एक ही लकड़ीके हैं। वैज्ञानिकोंने पता लगाया है कि दो टुकड़े जब एक दूसरेसे मिलते हैं तब एक ही लकड़ीके और एक विशेष स्थानके होते हैं।

इस विशेषताका दायित्व प्रकृतिके ऊपर है। मधुमासमें जब मिट्टीमें पानी अधिकतासे रहता है तो जीविन सेल वृक्ष की छालके नीचे नलीकी एक तह पैदा करते हैं जिससे वृक्ष अपनी खुराक खीचता है। गर्मियोंमें जब पानी कम मिलता है और वृक्षोंके बढ़नेका क्रम कम होजाता है, छोटी नलियोंकी एक सतह पैदा होती है। ये नलियाँ जो बेड़ी नहीं खड़ी

होती हैं लकड़ीके टुकड़ेमें अगुवत प्रतीत होती हैं। मधुमास-की नलियाँ गर्मीकी नलियोंकी अपेक्षा रङ्गमें हलकी और चौड़ी होती हैं।

यह नलियोंका चक्र साल-बसाल जारी रहता है और वैज्ञानिक लोग इनसे केवल वृक्षकी आयु ही नहीं वरन् यह भी बतला सकते हैं कि यह वृक्ष कहाँ और किस जलवायु में पैदा हुआ है।

क्योंकि यह असम्भव है कि दो वृक्षोंकी नलियाँ एक ही परिस्थितिमें उत्पन्न हों और बढ़ें—कारण जल और बढ़नेकी शक्तिमें कुछ-न-कुछ अन्तर पड़ ही जाता है—इसलिये दो टुकड़ोंकी काटोंकी बनावट कभी एक नहीं हो सकती और प्रायः नलियोंकी चौड़ाईमें अन्तर पाया हो जाता है। यह कभी कभी बहुत सूक्ष्म होता है और इतना सूक्ष्म कि मानवी चक्षु देखनेमें असमर्थ है। किन्तु अन्तर रहता है ज़रूर और यह खुर्दबीनों द्वारा बड़ी आसानीसे मालूम होजाता है। जहाँ कुछ भी अन्तर नहीं रहता जैसे लिन्डवर्गवाली सीढ़ी और फर्शके तख्तेवाले मामलेमें हुआ था, अनुभवी लोग स्वभावतः समझ जाते हैं कि टुकड़े पहले एक ही लकड़ीके थे।

जब कोहेलरको न्यू जेरेसीकी पुलिसने सीढ़ीवाले मामले में बुलाया तो उसे पहले बहुत कठिनाई मालूम पड़ी पर वह तनिक भी न हिचका। वह सीढ़ीको मेडिसनके प्रयोगशाला में लेगया और अन्तमें खुफिया-संसारमें वह कार्य कर दिखाया जो अपने ढङ्गका अद्वितीय है। उसने सीढ़ीकी खड़ी और बेंड़ी दो लकड़ियोंको चीरा और लकड़ीके धूलको भी ख किया। लकड़ीका आपेक्षिक घनत्व निकाला और एसिडसे जलाकर उसके राखका भी अध्ययन किया। उसने लकड़ी को टुकड़े-टुकड़े करके उसकी मजबूती और घनत्वका पता लगाया। विशेषकर एक्सरे और एनलारजिंग केमरा और किस्म-किस्मके बेनाम औजार जिन्हें उसने स्वयं बनाया था काममें लाया गया। अन्तमें वह इस नतीजेपर पहुंचा कि किसी तेज रन्दा करनेवाली मशीनसे लकड़ी चिकनी की गयी थी, जिससे कुछ विशेष प्रकारकी धारियां बन गयी थीं। उसने ४०,००० मीलोंमें जंचवाया कि ऐसा प्लेनर किस मिलका है। उसने स्वयं आरेगन जंगल और ग्रेटलेक मिल्स में जाकर देखा और आखिरकार दक्षिण केरोलिनामें अधिक शक्तिवाला कटर मिला। इसकी धारसे किया हुआ चिकनापनने कोहेलरके लिये वही कार्य्य किया जो उंगली-छाप वेत्ताओं के लिये रेखाओंके चक्कर और फन्दे करते हैं। किन्तु अभी उसकी यात्रा समाप्त नहीं हुई थी। वह ब्राक्सके मिलमें गया जहां हाप्टमैनने लकड़ी खरीदी थी और वहां पेन्डोरोना पाइनके टुकड़े पाये जो इतनी ही सुन्दरतासे चिकने किये गये थे।

यह आविष्कार केवल फौजदारीके ही मामलेमें सफलीभूत नहीं हुआ है। दीवानीमें भी इससे बड़ा काम निकलता है। फेडरल ट्रेड कमीशनको मुगालतेके मामलेमें इसके सबूतकी बड़ी जरूरत पड़ती है। एक मामला ऐसा था जिसमें दो चित्रकार एक सीढ़ीसे गिर पड़े थे जब कि तसबीर बना रहे थे। उनलोगोंने सीढ़ी बनानेवालेके ऊपर दावा किया। उनका कहना था कि सीढ़ी दूसरी मामूली लकड़ी की बनायी गयी थी इससे टूट गयी। कोहेलरने साबित किया कि लकड़ी ठीक थी किन्तु सीढ़ी बारबार गिराने उठानेसे कमजोर हो गयी इससे टूट गयी।

इसी तरह एक दूसरे मुकदमेमें, जिसमें एक पावा टूट जानेसे, जोकि शर्तके अनुसार पाइनका होना चाहिये था, एक कम्पनीको नुक्सान देना पड़ा, कोहेलरने साबित कर दिया कि लकड़ी असली नहीं है।

सरकसके खेलाड़ी

छोटे बच्चोंको वे खिलौने बड़े प्यारे लगते हैं जिन्हें वे खींच सकते हैं। ऐसे ही दो खिलौने बनानेकी रीति यहाँ दिखलायी जाती है। कोई चतुर बालक इनको फ्रेट-सॉसे काटकर बना सकता है। ये थोकमें बनाकर बेंचे भी जासकते हैं। इन खिलौनोंको चटकीले रङ्गोंमें रङ्गना चाहिये। एनामेलके रङ्ग इसके लिये अच्छे हैं, परन्तु यदि सस्ते दामोंमें बेंचनेके लिये ऐसे खिलौने बनाने हों तो पानीमें घोले गये बुकनीके रङ्गोंसे भी रङ्गे जासकते हैं। थोकमें बनाके लिये कई लड़कियोंको एक-के-ऊपर-एक रखकर सबको एक साथ ही बिजलीसे चालू किये फ्रेट-सॉसे काटना ठीक होगा।

एक दो खिलौने बनाने हों तब तो अच्छे प्लाइवुडका प्रयोग किया जासकता है परन्तु सस्ते मालके लिये सस्ता प्लाइवुड या हल्दू आदिकी तरह किसी रेशा रहित लकड़ीको पतला चीरकर प्रयोग करना चाहिये।

चित्र १

चित्र १ और २ में सम्पूर्ण खिलौने दिखलाये गये हैं। चित्र ३ और ४ में खिलाड़ियोंकी शकलें चारखानेपर बनायी गयी हैं। इन चारखानोंको भिन्न नापके खींचकर खिलौनें इच्छानुसार छोटे-या बड़े बनाये जासकते हैं। यदि चारखाने में प्रत्येक वर्ग $\frac{1}{2}$ का रक्खा जाय तो काफ़ी बड़ा खिलौना बन जायगा। इच्छानुसार नापके वर्गोंका चारखाना खींच कर उसपर यहाँ दिये गये चित्रोंके आधारपर चित्र खींचना चाहिये। यदि एक ही एक खिलौने बनाने हों तो चारखाने सीधे लकड़ीहीपर खींचे जा सकते हैं। अन्यथा उनको पहले काग़ज़पर खींचना चाहिये और 'कारबन-पेपर'की सहायतासे उनको लकड़ीपर उतार देना चाहिये।
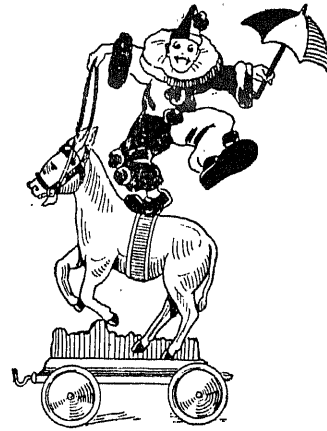
चित्र २

इन खिलौनोंको खड़ा रखनेके लिये जो जड़ दिखलायी गयी है उसमें बीचमें खाँचा कटा हुआ है। ये खाँचे विशेष रन्देसे आसानीसे बनाये जा सकते हैं, परन्तु यदि खाँचेके बनानेमें कोई कठिनाई हो तो केवल दो चौकोर छेदोंको

पतली रुखानीसे काट लेना काफ़ी होगा । खिलाड़ियोंके नीचे दिखलायी गयी ज़मीनके बीचवाले सिरेको तब सीधा न रखना चाहिये । उनमें भी चूलें बना देनी चाहये । सरेस लगाकर चूल ठोंक देनेसे खिलौने काफ़ी टिकाऊ हो जायँगे, परन्तु प्रत्येक चूलमें एक बारीक कील भी ठोंक देना अच्छा होगा ।

चित्र ३

चित्र ४

खिलौनोंके खींचनेके लिये इनके आगे और पीछे दोनों ओर हुक लगा देना चाहिये । इसप्रकार कई एक खिलौने एक साथ जोतकर खींचे जा सकते हैं ।

पहियोंके लगानेके लिये दो बेंड़ी लकड़ियां भी लगानी पड़ेंगी । ये चित्र ५में स्पष्ट दिखलाई पड़ रही हैं । ये लकड़ियाँ यदि बहुत छोटी रक्खी जायँगी तो खिलौने अकसर उलट जाया करेंगे । इसलिये इनको खिलौनेकी ऊंचाईके आधेसे कुछ लम्बा ही रखना अच्छा होगा ।

घरेलू कारीगरोंको पहियोंके बनानेमें कुछ दिक़्क़त पड़ेगी। परन्तु यदि 'कैरम' खेलनेकी गोटी खरीद ली जाय और सँभालकर इनके ठीक बीचमें छेद कर लिया जाय तो बढ़िया पहिया बन जायगा । इन पहियोंको कीलसे उपरोक्त बेंड़ी लकड़ियोंके सरपर जड़ देना चाहिये । कील इतनी न ठोंकी जाय कि पहियोंके घूमनेमें कठिनाई पड़े ।
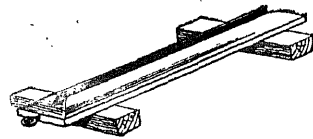
चित्र ५

खिलौनोंको काटनेके बाद रंगमार या रेगमालसे उनके किनारोंको चिकना कर देना चाहिये और तब उनको रँगना चाहिये* ।

—घरेलू कारीगर

*इस लेखके चित्र Hobbies' Weekly से लिये गये हैं ।
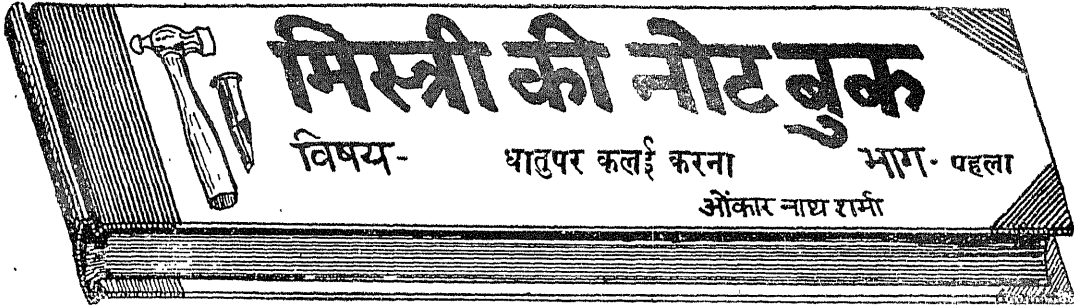
कलईका बोझा और मोटाई

कलई करवाईके दाम लगाते समय यह विचार करना आवश्यक होता है कि किसी चीजपर कितनी धातु चढ़ादी गई, इसका अन्दाजा विशेष प्रकारके तराजुओंसे किया जाता है। सोना, चांदी आदि कीमती धातुओंके लिये यह जरूरी है। नीचे दी हुई सारणीसे भी बहुत कुछ अन्दाजा लग सकता है।

कलईकी मोटाई प्रतिघन्टा प्रति एम्पियर

धातुका नाम	बोझा औंसोंमें	आपेक्षिक घनत्व	मोटाई प्रतिवर्ग फुट इंचोंमें
निकल	०·०३८७५	८·८	०·००००५५
कोबाल्ट	०·०३८८०	८·६	०·००००५५
तांबा	०·०४१८६	८·९	०·००००५९
चांदी	०·१४२००	१०·५	०·०००१७०
सोना	०·०८६५०	१९·३	०·००००५६
जस्ता	०·०४३००	७·१	०·००००६५
लोहा	०·०३६७४	७·८	·००००५८

मोटाई इनसाइक्लोपीडियासे (side note in table)

निकलकी कलई करनेका घोल

निकल अमोनियम सल्फेट १७ भाग
अमोनियम सल्फेट १७ भाग
डिस्टिलड अर्थात् भपकेका पानी ३०० भाग

नोट—इस घोलको तयार करके देखना चाहिये कि वह आसमानी रंगके लिटमस कागजको डुबोनेसे लाल करदेता है या नहीं। यदि उसमें कुछ तेजाबी असर होगा तो वह लाल कर देगा। यदि कागज लाल न हो तो उसमें कुछ साइट्रिकएसिड अथवा गन्धकका तेजाब थोड़ा-थोड़ा टपकाकर और मिलाकर देखना चाहिये कि वह कागजको लाल करता है या नहीं। बहुत ज्यादा तेजाबी होना भी अच्छा नहीं होता। यदि अधिक तेजाबी हो तो उसमें कुछ अमोनियाकी बूंदें डालकर मिला देना चाहिये।

लोहेकी कलई करनेका घोल

कसीसके रवे ४॥ भाग
अमोनियम क्लोराइड ३॥ भाग
भपकेका पानी २॥ भाग

इस घोलको बनानेके लिये जो पानी काममें लाया जाय उसे पहिले आधे घंटे तक उबाल लेना चाहिये और फिर ठंडा हो जानेपर काममें लाना चाहिये।

टीनकी कलई करनेका घोल

पाइरोफॉस्फेट ऑफ सोडा ३॥ भाग
स्टेनस क्लोराइड, गला हुआ (फ्यूस्ड) ०·३५ भाग
भपकेका पानी ३०० भाग

इस घोलके द्वारा, जस्ता, तांबा, और कांसे-पीतलकी चीजोंपर टीन एकदम चढ़ाया जासकता है। लोहे और स्पातकी चीजोंपर पहिले तांबा चढ़ाकर फिर इस घोलसे टीन चढ़ाना चाहिये।

नीचे लिखे घोलसे लोहे और स्पातकी चीजोंपर एकदम टीन चढ़ाया जासकता है।

अमोनियम एलमके रवे ५६ भाग
स्टैनस क्लोराइडके रवे २·८ भाग
स्टैननस क्लोराइड, गला हुआ २·८ भाग
भपकेका पानी २०० भाग

अमोनियम एलमके रवोंको पहिले गरम पानीमें घोल लेना चाहिये और फिर दूसरी दवाइयाँ उसमें मिलानी चाहिये। यह घोल औटता हुआ काममें लाया जाना चाहिये।

भाग २

परिमाण

तौल

१-अंग्रेजी एवर्डोपाइज़ तौल

१६ ड्राम = १ औंस

१६ औंस = १ पौंड

२८ पौंड = १ क्वार्टर

४ क्वार्टर = १ हण्डरवेट

२० हण्डरवेट = १ टन

१ स्टोन = १४ पौंड

२-जौहरियोंका अंग्रेजी तौल

२४ ग्रेन = १ पेनीवेट

२० पेनीवेट = १ औंस

१२ औंस = १ पौंड

३-सूखी दवाइयोंका अंग्रेजी तौल

२० ग्रेन = १ स्क्रूपल

३ स्क्रूपल = १ ड्राम

८ ड्राम = १ औंस

१२ औंस = १ पौंड

४-फ्रांस देशीय तौल

१० मिलीग्राम = १ सेन्टीग्राम

१० सेन्टीग्राम = १ डेसीग्राम

१० डेसीग्राम = १ ग्राम

१० ग्राम = १ डेकाग्राम

१० डेकाग्राम = १ हेक्टोग्राम

१० हेक्टोग्राम = १ किलोग्राम

५-गीली दवाइयाँ अथवा रस नापनेके लिये

६० बूँद = १ ड्राम

८ ड्राम = १ औंस

२० औंस = १ पाइन्ट

८ पाइन्ट = १ गैलन

६-साधारण रस नापनेका अंग्रेजी तौल

४ जिल = १ पाइन्ट

२ पाइन्ट = १ क्वार्ट

४ क्वार्ट = १ गैलन

लम्बाई

७-अंग्रेजी लम्बाईका नापः

१२ इञ्च = १ फुट

३ फुट = १ गज़

५॥ गज़ = १ पोल

४० पोल = १ फर्लांग

८ फर्लांग = १ मील

३ मील = १ लीग

८-फ्रांस देशीय लम्बाईका नाप

१० मिलीमीटर = १ सेन्टीमीटर

१० सेन्टीमीटर = १ डेसीमीटर

१० डेसीमीटर = १ मीटर

१० मीटर = १ डेकामीटर

१० डेकामीटर = १ हेक्टोमीटर

१० हेक्टोमीटर = १ किलोमीटर

९—समुद्री नाप

६०८०·४५ फीट = १ जहाज़ी मील = खुश्कीका १·१५१६ मील

३ जहाज़ी मील = १ लीग

पृथ्वीकी भूमध्य रेखापर एक अंशमें ६० जहाज़ी मील पड़ते हैं, इसलिये ३६० अंशोंमें अर्थात् पृथ्वीके पूरे १ चक्करमें २१,६०० जहाज़ी मील अथवा हमारे २४८७७·५ मील पड़ेंगे।

क्षेत्रफलका नाप

१०-अंग्रेजी वर्ग नाप

१४४ वर्ग इञ्च = १ वर्गफुट

९ वर्गफुट = १ वर्गगज़

४८४० वर्गगज़ = १ एकड़

६४० एकड़ = १ वर्गमील

११-फ्रांस-देशीय वर्ग नाप

१०० वर्ग मिलीमीटर = वर्ग सेन्टीमीटर

१०० वर्ग सेन्टीमीटर = वर्ग डेसीमीटर

१०० वर्ग डेसीमीटर = वर्ग मीटर

१०० वर्ग मीटर = वर्ग डेकामीटर

१०० वर्ग डेकामीटर = वर्ग हेक्टोमीटर

१०० वर्ग हेक्टोमीटर = वर्ग किलोमीटर

'वाच्य'-विचार

[श्री पं० किशोरीदास वाजपेयी, शास्त्री, काव्यतीर्थ, हरद्वार]

हिन्दी-व्याकरणोंमें पं० कामताप्रसादजी गुरुका हिन्दी-व्याकरण सर्व-श्रेष्ठ समझा जाता है, परन्तु यह भी हिन्दीका पूर्ण तथा निर्दोष व्याकरण नहीं है। इसके कुछ चिन्त्य स्थलों पर मैंने पहले प्रकाश डाला था, और अपने विचार 'भारत' तथा 'गंगा' में प्रकाशित कराये थे। आज एक विचारणीय विषय यहां भी हिन्दी-जगत्‌के सामने रख रहा हूं। आशा है, व्याकरणके विद्वान् इसपर विचार करेंगे।

हिन्दीमें बोला जाता है—'मैंने लड़कीको देखा' 'रामने उन लड़कोंको दो भागोंमें बाँट दिया' इत्यादि। 'गुरुजी' का कहना है कि हिन्दी-व्याकरणकी रीतिसे इस प्रकारके वाक्य गलत हैं, क्योंकि न ये कर्तृ-वाच्य हैं, और न कर्म-वाच्य। इनका कहना है कि सकर्मक क्रियाका प्रयोग या तो कर्तृ-वाच्यमें होगा, या कर्मवाच्यमें, परन्तु उपर्युक्त-जैसे प्रयोग न कर्तृवाच्य हैं और न कर्मवाच्य! इस तरहके प्रयोग उर्दूसे हिन्दीमें आगये हैं। इसलिए, त्याज्य हैं और हिन्दी-व्याकरणकी दृष्टिमें 'अछूत' हैं! बोलना यों चाहिए—'मैंने लड़की देखी' 'रामने वे लड़के दो भागोंमें बांट दिये' इत्यादि। गुरुजीका मतलब यह कि यों कर्मवाच्य शुद्ध प्रयोग होगये।

मैं आपके सिद्धान्तसे बिलकुल, असहमत हूं। हिन्दीमें जो कुछ आज बोला जाता है, व्याकरणमें उसीका विचार होना चाहिये। व्याकरण भाषाका अनुवर्ती है, नेता नहीं। हिन्दीमें जो प्रयोग प्रचलित हैं, वे ठीक हैं, दुरुस्त हैं चाहे कहींसे भी क्यों न आये हों। इनको हटाया भी तो नहीं जासकता! ये तो हिन्दीकी प्रकृतिमें मिले हुए हैं। 'मैंने तुमको देखा' इसकी जगह 'मैंने तुम देखे' कैसे ठीक कहा जासकता है? कौन ऐसा व्याकरण है, जो इस कर्म-वाच्यका प्रयोग ठीक बतलाये? इससे स्पष्ट है कि इस विषयमें 'गुरु' जीकी धारणा भ्रमात्मक है। उन्हें उचित है कि अपने व्याकरणके अगले संस्करणमें इसे ठीक कर दें।

'गुरुजी'का यह भ्रम भी आश्चर्य-जनक है कि हिन्दीमें सकर्मक क्रियाओंका प्रयोग या तो कर्तृ-वाच्यमें होता है, या कर्मवाच्यमें! मालूम होता है, हिन्दीका व्याकरण लिखते समय आपने हिन्दीके स्वरूपपर ध्यान नहीं दिया है, केवल अंग्रेजी, संस्कृत तथा मराठी भाषाओंके व्याकरणोंपर ही नजर रखी है! संस्कृतमें सकर्मक क्रियाओंके प्रयोग कर्तृ-वाच्य तथा कर्मवाच्यमें होते हैं, भाव-वाच्यमें नहीं। हाँ, अकर्मक क्रियाओंके प्रयोग कर्तृवाच्य तथा भाव-वाच्यमें होते हैं। उसीके अनुसार 'गुरु'जी हिन्दीमें भी देखते हैं! आप इसीलिए कहते हैं कि 'मैंने लड़केको देखा' प्रयोग गलत है, 'मैंने लड़का देखा' होना चाहिए!

परन्तु यह आपको ध्यानमें रखना चाहिए कि प्रत्येक भाषाका अपना अलग स्वरूप होता है, उसकी अलग प्रकृति होती है। एक भाषाके सब नियम दूसरीपर जैसेके तैसे लागू नहीं हो सकते। संस्कृतमें सकर्मक क्रियाओंके भाव-वाच्यमें प्रयोग नहीं होते, तो हिन्दीमें भी न हों, ऐसा आर्डिनेन्स चल नहीं सकता। भाषा तो अपने प्रवाहमें जायगी। व्याकरणको उसके पीछे चलना होगा। हिन्दीमें सकर्मक क्रियाओंके भाव-वाच्य प्रयोग भी होते हैं—'मैंने लड़कीको देखा' 'रामने लड़कोंको देखा' आदि प्रयोग सकर्मक क्रियाओंके भाव-वाच्यमें हैं और हिन्दी-भाषा साधारण जनता ही नहीं, सब कवि तथा लेखक ऐसा लिखते हैं और स्वयं 'गुरु'जी भी ऐसा लिखते हैं! उनकी इबारतमें इस प्रकारके हजारों प्रयोग मौजूद हैं। फिर भी आप इन्हें गलत बतलाते हैं! यह क्यों?

संस्कृतमें जो बात है, वह सब हिन्दीमें रहे और जो वहां नहीं है वह यहाँ भी न रहे, यह कैसे सम्भव है? संस्कृत, और हिन्दीका सम्बन्ध है, पर हिन्दी संस्कृत तो नहीं न? तब फिर क्या बात है?

आपका यह कथन भी सारहीन है कि वैसे प्रयोग उर्दूसे आये हैं! मैं कहता हूँ, हिन्दीसे ही उर्दूमें गये हैं। 'गुरु' जीके पास प्रमाण क्या है? वस्तुतः तो हिन्दी तथा उर्दू

कोई दो भिन्न भाषाएँ नहीं हैं। बिगड़े-दिल और हठी मुसल्मान भाई जब हिन्दीमें फ़ारसी अरबीके अप्रचलित शब्द भरकर उन्हींके व्याकरणोंका अनुशासन मानकर चल पड़ते हैं, तब यह हिन्दी ही विकृत होकर उर्दू नाम पा जाती है। बस, वैसे मूलतः उर्दू-हिन्दीमें कोई भेद नहीं है। एक ही भाषाके आगे दो नाम हो गये हैं। परन्तु 'मैंने लड़कोंको देखा' आदि प्रयोगोंमें कौनसा उर्दूपन है, मेरी समझमें नहीं आता! एक गांवका किसान भी ऐसे प्रयोग बोलता है। और समझता है तथा हिन्दीके बड़ेसे बड़े लेखक इस प्रकार शब्द-प्रयोग करते हैं। तब यह हिन्दीकी चीज हुई कि नहीं? तब व्याकरणकी क्या शक्ति है कि इन्हें गलत बतलावे? ऐसा कहनेवाला व्याकरण ही गलत है।

और मान लीजिए, उर्दूसे ही ऐसे प्रयोग हिन्दीमें आये; बल्कि फारसी, अरबी या फ्रेंचसे आये! परन्तु अब तो आ गये। और हिन्दीमें घुल-मिल गये। जब हिन्दीने ऐसे प्रयोग अपना लिए, अपने बना लिए, तब व्याकरणकार कैसे उन्हें दूर फेंक सकता है?

मुझे विश्वास है कि 'गुरु'जी तथा उनके अनुयायी अन्य व्याकरणकार भी इसपर सोचेंगे और अपनी पुस्तकोंके ऐसे अंश ठीक करदेंगे। इसी प्रकारकी और बातें भी हैं, जिनपर पहले विचार किया जा चुका है; इसलिये यहां उनसबका जिक्र अनावश्यक है।

एकटक निगाहसे इलाज

[रामदास गौड़]

मसीहाई चमत्कार

अपने सम्बन्धमें लिखनेमें कई कारणोंसे बड़ा संकोच होता है। परन्तु जहां उससे लोकोपकार होता हो वहां निजी विषयोंको भी पबलिकमें लाना पड़ता है। ऐसे ही विचारसे अपने घरकी एक घटनाका समाचार मैंने काशीके "आज"में छपनेको भेजा। २९ मार्गशीर्ष. १९९३ भौमवारके अंकमें मेरे नामसे यह नोट छपा—

योगका अद्भुत चमत्कार

तीन मिनिटके मानसोपचारसे लाभ

अभी बुधवार ९ दिसम्बरकी बात है कि एक बूढ़े सिख सज्जन मुझसे मिलने आये। कोई १०॥ बजे दिनका समय था। वेदान्त और योगपर बातें छिड़ीं। मालूम हुआ कि उन्हें योगसाधनका शौक है। उन्होंने बतलाया कि मैं योगबलसे किसी तरहकी पीड़ाका तुरत शमन कर देता हूं केवल रोगीको एकटक देखकर। मैंने पूछा कि आप त्राटक करते रहे हैं? उन्होंने कहा नहीं। यह त्राटक नहीं है। मेस्मरिजम भी नहीं है। परन्तु उससे सादृश्य रखता है। मैंने

यह चमत्कार देखना चाहा। वह राजी हो गये।

मेरी पत्नीको लगभग बारह बरससे संग्रहणी थी। यकृतमें शोथ और पीड़ा थी। पेटपर एक गुलमसा उभरा था जिसमें भी पीड़ा रहा करती थी। उस दिन इन जीर्ण रोगोंके सिवा एक और बात भी थी। उससे एक दिन पहले मंगलको दौड़ते सांड़के धक्के से राहमें गिर पड़ी थीं। बड़ी चोट आयी थी। उठने बैठनेमें बड़ी पीड़ा थी। पुट्ठोंकी ग्रन्थियोंमें सूजन आ

गयी थी। वह मुद्दतसे औषध नहीं करतीं। मैं उनकी पीड़ासे चिन्तित था ही। इन सज्जनकी तुरन्त ही परीक्षा कर सका।

उन्होंने मेरी पत्नीसे कहा कि मेरी आंखोंकी ओर एकटक देखती रहिये और स्वयं उनकी आंखों-की ओर एकटक देखने लगे। कोई ढाई मिनिटमें उन्होंने कहा "अब चलिये, फिरिये, देखिये पीड़ा कैसी है।"

सारी पीड़ा रफूचक्कर हो गयी थी। सूजन कहीं न थी। किसी तरहका कष्ट नहीं रह गया। नये कष्ट ही गायब नहीं हुए, यकृतका शोथ, पीड़ा, पेटपरका गुल्म और पुरानी संग्रहणी सभी गायब हो गये। आज चार दिन हुए, कोई शिकायत नहीं है। एक और भी अद्भुत लाभ हुआ। उनके लिये नागरी टाइपका छोटा अक्षर जिसमें यह अंश छपा है लिपा पुताला लगता था और बड़े अक्षर कठिनाईसे पढ़ती थीं। अब छोटे अक्षर सहजमें पढ़ सकती हैं। यह सब लाभ उसी ढाई मिनिटमें हुए। मेरे लिये तो ये मसीहा हुए।

इन्होंने कोई फीस नहीं ली। ये औरोंको, जो इनके पास जायं, वही लाभ पहुंचा सकते हैं। इनका नाम है सरदार मास्टर श्री कान्हसिंहजी और पत्थरगलीमें, भेलूपुरामें, रहते हैं।

काशी, शनिवार
२६—८—९३ } रामदास गौड़

सरदारसाहबने मेरी पत्नीको तो ढाई तीन मिनिटमें ही अच्छा कर दिया और अच्छा करके ही टले। मैंने अपने जीवनमें इस तरहका चमत्कार पहलेपहल देखा। इससे पहले अनेक बार मैंने मेस्मरिज्मके करश्मे देखे थे। साधारण सिरकी पीड़ा, ज्वर आदि नवीन रोगोंको तुरन्त अच्छा होनेके थोड़े ही पीछे उन रोगोंका फिरसे होना देखकर यह अनुमान किया था कि रोगीपर प्रयोक्ता अपनी मनःशक्तिकी प्रबलतासे अच्छे होनेका निश्चय करा देता है, परन्तु वास्तव में शरीरका विकार स्थायी रूपसे दूर नहीं होता। हां एक ही उपचार अनेक बार करते रहनेसे धीरे धीरे शरीरके सेलोंमें इष्ट परिवर्तन हो जाता है और रोगी पक्की तौरपर चंगा हो जाता है। मानस उपचारका अनेक बार किया जाना हर हालतमें जरूरी मालूम होता है। परन्तु प्रस्तुत प्रयोग तो अद्भुत था। थोड़ी ही देरके प्रयोगमें बारह बरसका जीर्ण रोग सदाके लिये अच्छा हो जाना मेरे निकट अद्भुत बात थी।

इञ्जीलमें मैंने हजरत ईसाका स्पर्श मात्रसे हर किसीको अच्छा करदेना पढ़ा था। स्पर्शकी अपेक्षा दृष्टिकी क्रिया दूर से होती है, अतः प्रस्तुत प्रयोग हजरत ईसाकी अपेक्षा अधिक चमत्कारिक समझा जाना चाहिये।

जानेके पहले सरदार कान्हसिंहसे उस दिन मैंने पूछ लिया था कि क्या इस चमत्कारकी चर्चा मैं समाचारपत्रों में करूं। उन्हें कोई आपत्ति न थी। परन्तु मैंने स्वयं तीन चार दिनतक बिना यह देखे कि उनकी दृष्टिका प्रभाव स्थायी है या नहीं पत्रमें देना उचित न समझा।

मैंने चौथे दिन शामको उपर्युक्त नोट आज कार्य्यालय में भेज दिया।

२-भयंकर भीड़

मैं यह जानता था कि पत्रमें यह समाचार ज्योंही प्रकाशित होगा सरदार कान्हसिंहके यहां भीड़ लग जायगी। बात वही हुई। उनके यहां आदमियोंका ऐसा तांता लगा कि पहले तीन दिनोंतक उन्हें नहाने और खानेकी भी छुट्टी रोगियोंने न दी। मैं उनके यहां अगले गुरुवारको गया और उनकी दशा देखकर बहुत पछताया। रोगियोंको देखने का समय निश्चित किया। स्त्रियोंके लिये सवेरे चार घन्टे और पुरुषोंके लिये शामके चार घन्टे रखे। भारी भीड़, तंग गली, देखनेवाला कमरा छोटा धक्कमधक्का, कशमकश— यह सब देखकर नम्बरवाले टिकट बांटे जाने लगे। स्वयंसेवक और स्वेच्छासेविकाएं दोनों बराबर प्रबन्धमें रहने लगे। रोगी नम्बरसे बुलाये जाने लगे। भड़भड़ कुछ घटा। काम कुछ नियमसे होने लगा।

योगिराजसे अधिक सम्पर्क होनेसे मुझे मालूम हुआ कि योगीजी दो तीन बरस पहलेसे यह क्रिया करते रहे हैं। जब काशीमें बेरी-बेरीकी धूम थी उस समय सारा बंगाली टोला उमड़ पड़ा था। जो आये अच्छे हुए। मेरे नोटके छपनेसे पहले महाजनी मुहालके लोग बहुत आते थे। परन्तु भीड़ इतनी नहीं थी। एक बंगाली सज्जन स्वयं इस भीड़के

प्रबन्धके लिये मंगलके ही दिनसे आने लगे थे । वह सरदार साहबके पूर्व परिचित निकले । उनसे मैंने उनकी कथा सुनी मेरे यहां तो बारह बरसके रोग तीन मिनिटोंमें छूटे, परन्तु उन्हें रेंगनी बाई sciatica pain कटिशिरा की दारुण वेदना होती थी और वे इलाज करते-करते निराश हो गये थे । सरदार साहबसे जब इलाज कराने लगे तो पीड़ा जगह बदलने लगी । यह देखकर रोगीको आशा हो गयी उन्होंने पूरे चारमासतक इलाज जारी रखा और बिलकुल अच्छे होकर ही दम लिया । उनसे मैंने लिखा हुआ वर्णन मांगा, जिसका आवश्यक अंशमैं यहां देता हूं ।

३—अच्छे होनेमें चार महीने लगे

मेरा तो हिन्दू शास्त्रके अनुसार यह विचार है कि हर एक मनुष्य अपने कर्मों और ग्रहोंके अनुसार अपने ऊपर आयी हुई बीमारियोंको झेलता है और जबतक उसका ग्रह पूर्णरूपसे शान्त नहीं हो जाता झेलता ही रहता है। ऐसी अवस्थामें रोगी को तनिक भी विचिलित न होकर शान्तिपूर्वक चिकित्सा करानी चाहिये ।

मैं भी दाहिने कूल्हेके दर्दसे अत्यन्त पीड़ित था कुछ दिनोंतक कई डाक्टरों और वैद्योंसे इलाज कराया, किन्तु मुझे कुछ भी लाभ नहीं हुआ । इसके प्रतिकूल मेरा दर्द सारे पाँवमें फैल गया । इसी व्याकुलतामें अचानक २ जुलाई सन् १९३६ को मुझे बाबा कान्हसिंहकी योगशक्तिका पता लगा और मैं तुरन्त ही उनके यहां गया । बाबा कान्हसिं जीने अपनी योगशक्ति द्वारा चिकित्सा की और उस समय मुझे थोड़ी देरके लिये आराम तो अवश्य हुआ, लेकिन फिर दर्द वैसेका वैसा ही हो गया । चार महीने स्थायी रूपसे लगातार इलाज होता रहा । मैं घबराया नहीं । मेरा दर्द धीरे-धीरे कम होता गया और साथही-साथ मेरी और भी कई अन्दरूनी बीमारियां जैसे सांसका फूलना, बहुमूत्र, खांसी, कम सूझना, इत्यादि भी जाती रहीं । चार महीनेके बाद मैं बिल्कुल चंगा हो गया । अब कोई शिकायत बाकी नहीं है । आशुतोषनाथ, रिटायर्ड गवर्मेन्ट सर्वेन्ट, ७।१५६ सेनपुरा, बनारस । २७-१२-३६

बाबू आशुतोष नाथका हाल सुनकर इतना तो मुझे मालूम हो गया कि निगाहसे इलाज करनेपर अच्छे होनेकी मुद्दत तीन मिनटसे लेकर चार महीनेतक हो सकती है । चार महीनेसे ज्यादा होना भी मुमकिन है ।

मैंने अब अपने मधुप्रमेहके लिये उनके पास नित्य जाना शुरू किया । इन दिनों मुझे मौका मिला कि मैं और रोगियोंसे भी बातचीत करूं और हाल जानूं ।

४—निराश लौटे

भारी भीड़ होने लगी । दिनों दिन आनेवाले बढ़ते जाते थे । परन्तु एक बात अच्छी थी । मैंने अपने 'आज" वाले नोटमें यह लिख दिया था कि ढाई मिनिटमें ही बारह बरसके रोग दूर हो गये । उस नोटके पढनेवालोंने इसी एक बातको पकड़ लिया, और मुद्दतोंके मरीज यही आशा बांधकर आने लगे कि आननफानन छूमंतरकी तरह हमारा रोग रफूचक्कर हो जायगा । फीसके नाम एक कौड़ी देनी न थी । योगीजी किसी तरहकी भेंट कबूल नहीं करते थे । कोई दवा खानी न थी । एक ही प्रकारका इलाज था, यानी एक-टक देखना । इसलिये अपना-अपना दुखदर्द सुनानेकी जरूरत न थी । लोग गये और मौका पाकर उनकी निगाहके सामने हो गये । दो मिनिट बाद हटे । किसी-किसीको लाभ हुआ । परन्तु बहुतोंको कोई फायदा मालूम नहीं हुआ । देरतक बड़े धक्कमधुक्काके साथ दर्शन भी हुए तो लाभ कुछ नहीं । ऐसे निराश लोग मुझे सरदार कान्हसिंहको और प्रबन्ध करनेवाले स्वेच्छासेवकोंको कोसते चले गये । ऐसे लोग जाकर फिर नहीं आते थे ।

५—दावा झूठा

इससे बड़ा लाभ हुआ । ऐसा न होता तो योगीराजके प्राण न बचते । भारी भीड़ उन्हें खाजाती । निराश लौटने वालोंकी संख्याने रोजकी बढ़ती हुई संख्याकी हद बांध दी।

ये निराश लौटनेवाले अधिकांश मुझपर खफा हुए । कई सज्जन मेरे पास आये और उलाहना दिया कि उन्हें कुछ लाभ नहीं हुआ । जब मैंने उन्हें धीरजसे इलाज करने की सलाह दी और बतलाया कि सबको तीन मिनिटमें लाभ नहीं होता । मैं स्वयं अपने लिये रोज जाता हूं, तो उन्होंने कहा कि यह भ्रम पत्रमें प्रकाशित करके दूर करदो। परन्तु, मैंने इस भ्रमके निराकरणका अर्थ समझा उस बूढ़े

योगीकी कठिनाइयां बढ़ाता, इसीलिये जब "आज" में ही श्रीविट्ठलदास मोदीका यह पत्र निकला कि योगीका दावा झूठा है, तो मैं इस निरे झूठे अपवादपर क्षुब्ध नहीं हुआ। मैंने देखा कि इस तरहके प्रकाशनोंद्वारा परमात्माकी ओरसे उस बूढ़ेकी रक्षा ही की जा रही है।

लगे हाथों 'आज" सम्पादकने मुझपर यह धौंस जमायी कि 'गौड़जी' का लेख था इसीसे छप गया नहीं तो 'आज" तो ऐसे लेख कभी छापता ही नहीं। मानों, योगीका दावा बिल्कुल झूठा था, मैंने रिश्वत लेकर उन्हें प्रमाणपत्र दे दिया था, और "आज"को मेरे कारण धोखा हो गया। [इस अनौचित्यपर सम्पादकका ध्यान दिलाया गया और लिखा गया कि प्रतिनिधि भेजकर तसदीक कर लीजिये, परन्तु मेरे पत्रपर कोई ध्यान न दिया गया। अस्तु। रा० गौ०]

६—फिर भी काम जारी रहा

जो लोग धीरजसे बराबर अपना इलाज कराते रहे उन्हें लाभ अवश्य हुआ। मुझे स्वयं मधुप्रमेहमें तो विशेष अन्तर नहीं दीखा। परन्तु आंखोंको बहुत कुछ फायदा हुआ। इसीके लगभग अखिल भारतीय वैद्य सम्मेलन भी हुआ। मेरे विशेष आग्रहसे योगीजी मेरे साथ सम्मेलनमें गये। विश्वविद्यालयके एक प्रोफेसरको शरीरके विविध अंगोंमें पीड़ा थी। सम्मेलनके सामने दो-दो मिनिटतक कई अंगोंपर देखनेपर उक्त प्रोफेसरने घोषणा की कि पीड़ा सर्वथा मिट नहीं गयी। परन्तु हलकी हो गयी है। यह सार्वजनिक प्रदर्शन था। परन्तु उनके घर तो हम नित्य देखते थे कि रोगीको प्रत्यक्ष लाभ हो रहा है। मेरे सामने एक पागल लड़का एक सप्ताहमें बिलकुल अच्छा हो गया। एक और पागल चार-पांच दिनमें ठीक हुआ। राय भगवानप्रसाद साहब पेंशनर इञ्जिनियर जो काशी भेलूपुराके ही रहनेवाले हैं लकवेके मारे गठरीसा बांधकर कलकत्तेसे बनारस लाये गये। वह बोल नहीं सकते थे। आठ दिनोंके इलाजमें वह इतने अच्छे हो गये कि डोलीपरसे उतरकर योगीजीके पास घरमें अपनेसे आते थे और स्वयं अपना हाल बयान करते थे।

७—कोढ़ीका हाथ अच्छा हुआ

"आज"में छपे हुए मेरे नोटको और पत्रोंने भी उद्धृत किया। दूर-दूरके प्रदेशोंसे भी लोग आने लगे। दिसम्बरके

पूर्वरूप करपृष्ठ

पूर्वरूप हथेली

अन्तिम सप्ताहमें ढाकेके श्रीगोपेन्द्रनाथ साहा आये। ये जब इक्कीस बरसके थे तभी कुष्ठके कारण इनकी दाहनी हथेली की ओर अंगुलियां मुड़सी गयीं और पंजेका फैलना असंभव हो गया। कनिष्ठिकाके मूलके लगभग मांसकी एक गांठ बन गयी। बहुत इलाज किया जरा भी लाभ न हुआ। कोढ़ तो इलाजसे रुक गया। हाथकी दशा किसी तरह नहीं सुधर सकी। अब उमर पैंतालीस बरसकी हो चुकी थी। डाक्टरोंने जवाब दे दिया था कि हाथ बिल्कुल नष्ट हो जायगा। इन्होंने जब निगाहसे इलाजवाली बात सुनी तो तुरन्त काशी आये और योगीजीका इलाज आरम्भ किया मेरी सलाहसे उन्होंने अपने हाथकी तस्वीर खिचवा ली।

पन्द्रह दिन बाद

पन्द्रह दिनके इलाजमें पंजा फैलने लगा। परन्तु चमड़े का संकोच और अंगुलियों और अंगूठेकी सिकोड़ अभी ज्यादा बाकी थे। फैलानेकी कोशिशसे पंजा फैलता था, परन्तु विशेष प्रयास करना पड़ता था। प्रयास बिना फिर पंजा मुड़कर ज्योंका त्यों हो जाता था। गांठ कुछ ही घटी थी। चमड़ेपर सफाई नहीं आयी थी।

डेढ़ महीना बाद

यह एक ऐसा रोगी था जिसकी दशाकी तस्वीर सहजमें खिंच सकती थी। पूर्वरूपके चित्रोंमें करपृष्ठ और हथेलीदोनोंके रूप दिखाये गये हैं।

डेढ़ महीना पीछे हाथका पंजा पूरा फैलने लगा गांठ बहुत थोड़ी रह गयी। चमड़ेकी रंगत बहुत साफ हो गयी। बायें पंजेसे मिलानेसे अंगुलियां कुछ छोटी जरूर हैं, पर अब बहुत कुछ स्वाभाविक दशामें आ गयीं।

डेढ़-महीनेबाद अत्यन्त कृतज्ञ बाबू गोपेन्द्रनाथ साहा हरिद्वार यात्रा करके अपने घर गये।

सफेद दाग तो जो आये सबके अच्छे हुए। इसीतरह गठिया, दमा, बवासीर, पुराना ज्वर, संग्रहणी आदिके भी रोगी आये और अच्छे होकर गये।

एक बात देखी गयी। एक ही रोगसे पीड़ित तीन आदमी आये। परन्तु तीनों एक ही मुद्दतमें अच्छे नहीं हुए। किसीको एक दिन लगा, किसीको चार दिन तो किसीको

पन्द्रह दिन। इलाज एक ही था। परन्तु शरीर भिन्न थे। उनके कार्य-कारणके सम्बन्धसे इलाजका प्रभाव विभिन्न होता रहा।

८—अडवोकेट दरबारीका अनुभव

प्रयागके मित्रोंसे भी मैंने इस चमत्कारिक इलाजकी चर्चा की। मेरे मित्र श्रीभगवानस्वरूप दरबारी साहब अडवोकेटने अपने कई सम्बन्धियोंका इलाज काशी आकर कराया। वह लिखते हैं—

"परसाल मेरे भाई आगरेके अडवोकेट बाबू विष्णुस्वरूप दरबारी अपनी पत्नी और परिवारके साथ काश्मीर गये थे। जब लौटे तो उनकी पत्नी बीमार हो गयीं। उन्हें अकसर उदरशूल हो जाया करता था और नाभिप्रदेशमें तो लगातार मीठा-मीठा दर्द रहा करता था। यह दर्द बराबर आठ नौ महीने से जारी रहा। मेरे एक भाई डाक्टर दरबारीके इलाजसे शूल तो अच्छा हो गया, परन्तु नाभिप्रदेश वाला मीठा दर्द किसी तरह न गया। पिछली २६ जनवरीको मैं बनारस ले गया और योगीजीकी निगाहका इलाज केवल दो दिन हुआ। वह दर्द बिलकुल रफा हो गया। यह दर्द जड़से मिट गया और दो महीने हो चुके फिर नहीं हुआ।

मेरे चचेरे भाई एम० पी० दरबारी अलमोड़ेमें वकील हैं। उनकी पुत्री कमलादेवी दूसरी रोगिणी थी। बड़ी मुद्दतसे, कई बरसोंसे, उसकी आंखोंमें रोहे थे जो अच्छे नहीं होते थे। आंखें खराब हो गयी थीं, आँखोंपर एक सफेद परदासा बन गया था। रोशनीमें वह आंखें नहीं खोल सकती थी। उसकी निगाह ऐसी कमजोर हो गयी थी कि वह छतकी कड़ियां न तो अच्छी तरह देख ही सकती थी, न गिन सकती थी। वह एक महीनेके लगभग बनारस रही और बराबर निगाहवाला इलाज होता रहा। उसके रोहे अच्छे हो गये। अब वह मोटे अक्षर पढ़ लेती है और उसकी आंखें पहलसे ज्यादा खुलती हैं।"

९—इलाजकी विधि

हमने यहां थोड़ेसे प्रमाण दिये। लाभ तो हजारों आदमियोंको हुआ है। जहांतक मालूम हुआ है उन्हींको नहीं हुआ जो धीरजसे लगातार हाजिरी न दे सके।

उनके इलाजकी विधि बहुत सीधी सादी है। सभी तरहके रोगोंके लिये वे डेढ़ पौने दो मिनिटतक रोगी की आंखोंमें एकटक देखते हैं। इससे ज्यादा देरतक देखें तो रोगी बेहोश हो जाय या चक्कर खाकर गिर पड़े। सिर-दर्दकी दशामें वह अपनी निगाह सिरपर डालते हैं। गर्दनमें हाथमें या और कहीं पीड़ा हो तो उस अंगको देखते हैं—वही १॥—१॥ मिनिट। यही एक मात्रा है। कई मात्राएं देनेके लिये दस-दस, पन्द्रह-पन्द्रह मिनिटपर फिर देखते हैं।

अंग देखनेके बदले वह देखकर फलालैन भी देते हैं। इसकी देखी हुई तह पीड़ित अंगपर लगा देनेसे पीड़ा दूर हो जाती है। एक बारका देखा हुआ लगा रहकर छः घन्टे तक अपना इष्ट प्रभाव डालता रहता है। अधिक नहीं। बिना लगा देखा हुआ कपड़ा आठ दिनतक रखा रहे तब भी काम दे सकता है। इस कामके लिये रोगीको फलालैन ले जाना पड़ता है। साहा बाबूका हाथ भी पकड़कर वह उनके हाथ और शरीरमें बिजलीका संचार करते थे। मेरे हाथमें एक बार पीड़ा हुई थी। उस समय उन्होंने मेरे हाथको दबाकर कुछ संचार किया था जिससे पीड़ा तत्काल ही दूर हो गयी।

परीक्षा नहीं की गयी, परन्तु मेरा विश्वास है कि देखा हुआ गंगाजल ओषधिका काम करेगा। इसकी परीक्षा करने वाला हूँ।

१०—सरदार कान्हसिंहजीका परिचय

ये सिखोंके दसवें बादशाह गुरु गोविन्दसिंहजीके वंशज क्षत्रिय हैं। जिला गुरदासपुरमें संवत् १९१३ के लगभग आपका जन्म हुआ था। पिता घरके जमींदार और फौजमें रिसालदार थे। सिख हैं। शिक्षा केवल गुरुमुखीकी हुई है। ग्रंथसाहब पढ़ा है। शंकरके अद्वैत सिद्धान्तको मानते हैं। उसका अच्छा सत्संग किया है। गुरुनानकका यही मत है। साथ ही लड़कपनसे योगसाधनका शौक रहा। संवत् १९६२ में गोस्वामी भवानीपुरीके द्वारा महामना मालवीय जीने कांग्रेसके अवसरपर प्रदर्शिनीके कामसे बनारस बुलवाया था। उस समय बुनाईकी मशीनें बनवानेके लिये आये।

फिर यहीं रह गये। सरकारी बुनाईके स्कूलमें विविध विषयों की शिक्षा देते रहे। इधर बहुत बरसोंसे होजियरीके मास्टर रहे। बाबा सेवादास, खाकी बाबा कुत्ते बाबा आदि पाँच गुरु किये। इनमेंसे लखनऊके बाबा सेवादासने विशेषरूपसे वेदान्त और योग सिखाया। वह श्रीबीसूजीकी कोठीपर काशी आया करते थे। उनका सत्संग यहीं नसीब हुआ। संवत् १९८५ में श्री सेवादासजी ब्रह्मलीन हो गये। इस तरह लगभग २२ बरसके इनके सिरपर गुरुकी छत्रच्छाया रही। अब सरकारी नौकरीसे मास्टर कान्हसिंहजीने पेंशन लेली है।

इनके दूसरे नये दांत निकल रहे हैं और सिरके कुछ बाल फिरसे काले हो चले हैं।

११—उपसंहार

सरदार कान्हसिंहजी हद दरजेके दयालु और सहनशील हैं। किसीके लिये इनकार इनकी जबानसे नहीं सुना। इस स्वभावके कारण पहले तीन दिन तक अन्नजलसे वंचित रहे। भीड़पर काबू पानेके लिये कई बार मैंने चाहा कि फीस लगाकर भीड़ छटा दूँ, परन्तु योगिवर्य किसी तरह राजी न हुए। छोटी-सी बैठक, तंगगलीका दरवाजा, भीड़ की रेलपेल कहाँ जाय? जाड़ोंमें ओस और शीतमें बाहर दरवाजेपर तीन बजे रातसे ही गरजमन्द औरतें इकट्ठी होने लगती थीं, बड़ा कष्ट उठाती थीं। इनके लिये पड़ोसीने कमरे खाली कर दिये। परन्तु ये कमरे भी भीड़के लिये काफी न थे। हम चाहते थे कि किसी बगीचेके हातेमें, बड़े हालमें, यह काम हुआ करे परन्तु योगीजीका स्वाभिमान किसीके इहसान तले दबना पसन्द न करता था। परन्तु, सब कुछ है, बूढ़ा शरीर इस दरजेकी रेलपेलको बहुत काल तक सह न सका। आखिर स्वास्थ्य बिगड़ चला। हम लोगोंकी सलाह हुई और आप मान गये और कुछ दिनोंके लिये तीर्थयात्राको चले गये। उनकी चिकित्साविधि इस बातको सिद्ध करती है कि आँखोंके पीछे कोई शक्ति है। जिसका प्रयोग करनेवाला दूसरोंके शरीरकी बिगड़ी हुई सेलोंको ठीक-ठाक करके यथास्थान कर सकता है। यह शक्ति बिजलीसे भी सूक्ष्म है और धारामें काम करती है। राधास्वामी मतवाले भी आत्माका स्थान आँखके पीछे बतलाते हैं। विज्ञानके खोजियोंको चाहिये कि इस शक्तिकी भी खोज करें।

आदमीके घरका धीरे-धीरे विकास

१—नराकार प्राणी कैसे हुए?

पच्छांही विज्ञानने विश्वकी परिस्थितिपर पूरा विचार करके यह निश्चय किया है कि सृष्टिका बहुत धीरे-धीरे करोड़ों बल्कि अरबों बरसमें विकास हुआ है। कई करोड़ बरसमें जलमें आदि जीवसे प्राथमिक सेलोंका विकास हुआ। फिर कई करोड़ बरसमें बहुसेलमय प्राणी बने। फिर बेरीढ़वाले, फिर रीढ़वाले जलचर। फिर उभयचर। फिर स्थलचारी व्याल और स्थलके उद्भिज्ज। व्यालोंसे नभचर और स्थलचर प्राणी। स्थलचरोंका विकास होते-होते नराकार प्राणी पैदा हुए।

२—नराकार प्राणी कैसे थे?

और प्राणियोंके जबड़े थूथन आदि उभरे और निकले हुए होते थे। दो आखें प्रायः दो ओर पड़ती थीं। उनके चार पांव थे, या दो डैने और दो पंख थे, सीधे खड़े नहीं हो सकते थे। परन्तु नराकार आदिम प्राणी इन बातोंमें विलक्षण था। उसके ठोड़ीकी हड्डी तो न थी, मगर खोपड़ी में आँखें एक ही ओर पड़ती थीं। वह बातें तो न कर सकता था परन्तु जो आवाज निकालता था उसके विविध रूप थे जो विविध भावोंको प्रकट करते थे। वह पेड़ोंपर ही रहता था, अर्थात् शाखामृग था और शुरूमें उसी तरह पेड़ोंपर रहता था जैसे आज उसीके खानदानकी एक शाखावाले वानर और लंगूर रहते हैं। धीरे-धीरे वह बढ़ा। शऊर सलीका कुछ ज्याद आया। पेड़पर ही बड़ी-बड़ी टहनियोंको और शाखाओंको बांधकर विशालकाय घोंसले बनाकर रहने लगा। नराकार [प्राणी देखिये कवरका पहला चित्र] अपने घोंसले या कुटियासे निकलकर पेड़ोंपरसे फल लेता था शायद चिड़ियोंके अंडे भी खा लेता था और संभवतः कुछ चिड़ियोंको भी पकड़कर चट कर लेता था। परन्तु आग जलाकर पकाना उसे नहीं आता था।

३—पेड़से उतरा

पेड़पर ही रहनेमें उसे सुभीता था। धरतीपर उसको जानकी जोखिम थी। परन्तु यह बात नहीं कि वह पेड़परसे उतरता ही न हो। वह उतरता था। खूब दौड़ता-उछलता शिकार खेलता धूम मचाता, मम्मथ और काटीली-दनका मुकाबला करता, और फिर पेड़पर चढ़ जाता। उसकी स्त्री और बच्चे भी ऐसा ही करते थे।

हम पहले ही कह चुके कि यह क्रिया करोड़ों बरसकी है। अर्थात् पहले नराकार प्राणी पेड़ोंपर बिना झोंपड़ी बनाये रहता था। उस समय परिवार बढ़ा। उसके वंशके अनेक लोग जो दिमागी ताकतमें, बुद्धि-विवेकमें बढ़े, जहाँके तहां रहे. परन्तु कोई-कोई बहुत बड़े और ज्यादा समझदार हुए। उन्होंने झोपड़ियां बनायीं। घूमते-घूमते देखा कि जंगलमें रगड़ खाकर भयानक आग लग जाती है। वे अपने बैरी भयंकर पशुओंको चकमाकके ढेलोंसे पत्थरोंसे मारना सीख गये। उन्होंने पत्थरकी चोटसे चिनगारी निकलते देखी। धीरे-धीरे आग बनाना सीख गये। आग तो पेड़पर जलानेमें खतरा था। जमीनपर बनाकर पहले आतशबाजीका खेल करते थे। फिर उसमें ऊपरसे फल गिरे, भुन गये। उन्होंने खाया। अच्छे लगे। फिर तो वह आगमें भूनकर खाने लगे। अब नीचे रहनेमें ज्यादा सुभीता दीखा। पर्वतके खोहोंमें उन्होंने बना-बनाया घर पाया। गुफाओंमें रहने लगे अब पेड़की झोंपड़ी छोड़ी। परन्तु गुफाओंमें और जानवरों से मुकाबला हुआ। यह उनसे कमजोर था, मगर इसमें उनसे अधिक बुद्धि थी। इसने चकमाकके पैने हथियार बनाये। उन्होंने हमला किया। आग जलाकर जलती लकड़ियोंसे मुकाबला किया। उसके इन दोनों हथियारोंने पेड़ों के राजासे धरतीका मालिक भी बना दिया। वह अब पत्थर तोड़कर तरह-तरहकी चीजें बनाने लगा। बड़े-बड़े टुकड़े जोड़कर घरोंके आरंभिक रूप रचने लगा। कवरके दूसरे चित्रमें जो दहनी ओर पुरुष बैठा चकमाक गढ़ रहा है उसकी मांदके एक बगल उसकी औरत लड़का गोदमें लिये बैठी है और दूसरी बगल चट्टानका एक टुकड़ा पड़ा है और आग जल रही है। पहले शाखामृग था, अब गुफावासी है। कई लाख बरस पहले इसके दुम भी थी, जैसी कि इसके और खानदानवालोंकी अब भी है। इस दुमसे पेड़पर उसे बहुत सुभीता था पर पेड़पर ही झोंपड़ी बनाते-बनाते उसकी दुम घटती गयी थी। गुफाबासके युगमें उसकी दुम बिलकुल झड़ गयी थी। और उसके बदनके रोयें बहुत कम हो गये थे। अब उसकी स्त्री खाल ओढ़ती थी और खाल और पत्तों से वह भी अपने नंगापनको ढकता था।

४-पहाड़ काटकर घर बनाये

नराकार प्राणियोंके वंशकी इस शाखाको हम मानव-शाखा कहते हैं. क्योंकि इनकी मानसिक शक्तियां बढ़ी हुई हैं। इस वंशके लोग तेज दिमागवाले होते थे। इन्होंने बहुत पैने हथियार और औजार बनाये जिनसे वह पत्थर भी काट लेते थे। छोटी गुफाओंको अपने रहने लायक बड़ी करने को जहां-तहां काटा. ऊबड़खाबड़ दीवारोंको छीलकर बराबर किया। सूझ बूझ बढ़ी, तो और बढ़े। गढ़कर खम्भे निकाले। कोठरियां बनायीं। कला और बढ़ी तो पत्थरमें कारुकारी करने लगे। अब गुफा मन्दिरोंमें मानव रहने लगा बड़े-बड़े भाले बर्छे बनाकर शिकार खेलने और दुश्मनोंका मुकाबला करने लगा। हमला होनेपर गुफाओंमें छिपने लगा। भारी चट्टानोंसे गुफाद्वार बन्द करने लगा। कवरके तीसरे चित्रमें पहाड़में काटी हुई गुफाके भीतर मानव जीवन चित्रित किया गया है।

५—घरोंका क्रम-विकास

गुफाओंमें पहाड़ काटकर बने घरमें उसे बड़ा आराम था। मगर मुश्किल यह थी कि उसे घरोंके बनानेमें एक तो बहुत काल लगता था, बड़ी मेहनत पड़ती थी, दूसरे चट्टानोंमें ही ऐसे घर बन सकते थे। इसी लिये उसने नयी नयी तरकीबें सोचीं। उसने लम्बी हरी लकड़ियां चुनकर धन्वाकार करके दोनों ओर गाड़ दिया। पत्ते और लम्बी घाससे छाकर छांह कर ली। उसने मूँज कास बटकर रस्सी बनाना सीख लिया। फिर खंभे गाड़कर शामियाना सा झोंपड़ा बनाया। फूस कास मूंजका बटना सीखा तो चटाइयां बनानेकी सूझी। चटाइयोंसे उसने छोलदारियां बना डालीं। अब वह घुमक्कड़ भी बना। जहां जीमें आता चटाइयोंकी छोलदारियां खड़ी करके वह जहां चाहता था कुछ दिन रहता था। जब कोई जगह ज्यादा पसन्द आती तो ठहरनेकी जरूरत पड़ती। इसलिये पहले पत्थरके टुकड़े जमा करके उसने गुमटियां बनायीं। ऐसी गुमटियोंको पायदार

करनेके लिये कीचड़ दे देकर इनके छेद मूंदे। इस तरह उसने गारा देना सीखा। आग जलानेपर उसने देखा कि नम ज़मीन आगकी आंचसे पत्थरकी तरह कड़ी हो जाती है। उसने मिट्टी सान-सानकर खूब ताव दिया तो पककर मिट्टी बहुत कड़ी हो गयी। उसने इस तरह मिट्टीके बासन बनाये। पैजाये लगाये और फिर खपरे और ईंटें बनायीं। कवरके चौथे चित्रमें जो दहनी ओर आधेपर आरम्भ होकर बायीं ओर नीचेवाले आधेमें पूरा होता है, मनुष्यका यहां तक घर सम्बन्धी विकास दिखाया गया है।

६--आलीशान महल और बस्ती

अब मनुष्य खेती करना सीख गया था। इसलिये उसे खेतोंके पास रहनेकी जरूरत थी। वह कच्चेघर, फूसके झोंपड़े, ईंटके घर बनाकर खेतोंके पास रहने लगा। और साथ रहनेमें एक दूसरेकी मदद भी कर सकते थे, इसलिये गांव बने। छोटी-छोटी बस्तियां बनीं। जीवनकी जरूरतें बढ़ गयीं। अब उसे कपड़े-लत्ते भी चाहियें। रोशनी चाहिये। खाट चाहिये। एक आदमी अपनी सारी जरूरतें पूरी नहीं कर सकता, इसलिये औरोंकी मेहनतसे लाभ उठाना पड़ा, अपनी मेहनतका लाभ औरोंको देना पड़ता। इसतरह अदलाबदली शुरू हुई। इस अदलाबदलीके लिये हाटबाजार लगे। अब बस्तियां बढ़ीं। मामूली झोंपड़े न तो टिकाऊ थे, न उनमें काफी जगह थी। अब बस्ती घनी बनी। बड़े-बड़े मकान बने। सड़कें बनीं। आलीशान महल बने। अधिक सभ्य लोग इन महलोंमें रहने लगे बस्तियां बड़ी रंजी पुंजी बनीं, जिनमें सभ्य आदमियोंकी भीड़ रहने लगी। पिछले कमसे-कम आठ-दस हजार बरसोंसे इस तरहकी शहरी सभ्यता मनुष्योंमें फैली हुई है। अब तो शहर भयानक रूपसे बड़े हो गये हैं। पहले घर बनानेवाली सभ्यता चारों दिशाओंमें फैली और खूब फैली। इतनी फैली कि सारी दुनियां उससे भर गयी। अब इस बीसवीं शताब्दी विक्रमीके अन्तमें वह ऊपरको बढ़ी। आज भी घुमक्कड़ और बसनेवाली दोनों सभ्यता ऊपरको बढ़ रही हैं। विमान तो ऊपर उड़ते हैं, पर मकान भी आसमानसे बातें करते हैं, इतने ऊँचे उठते हैं कि आसमानकी कड़ाहीको खुरचते दीखते हैं। न्यूयार्क नगरमें दो-दो सौ मंजिलके गगनचुम्बी घर हैं जिनमें महल्लेके-महल्ले बसते हैं, जिन घरोंमें पहुँचनेके लिये सीढ़ियां नहीं हैं, बिजलीके झूलेपर चढ़कर एक-एक मिनिटमें लोग ऊँची-ऊँची मंजिलपर पहुँच जाते हैं। अन्तिम दो चित्र जो कवर के नीचे पड़ते हैं, शहरके इस गृहविकासका दर्शन कराते हैं।

७—पच्छिमी और पूरबी अटकल

ऐसा कोई न समझे कि घरके विकासका ऐसा इतिहास कहीं किसी पुरानी पोथीमें लिखा मिला है। इतनी पुरानी पोथी कहाँ मिलेगी, क्योंकि ऊपर जो अटकल है वह तो प्रोफेसर रेलेके अनुसार शायद पचास करोड़ बरसोंसे कम का हरगिज न होगा। यह अनेक प्रकृत तथ्योंको देखकर अनुमान किया गया है।

परन्तु पूरबी विचार और तरहका है। वह यह मानते हैं कि सृष्टिका विकास बहुत धीरे-धीरे हुआ है। परन्तु साथ ही यह भी मानते हैं कि देवता, पितर और ऋषि मनुष्यकी सभ्यताको आगे बढ़ाते चलते हैं, पग-पगपर सहारा देते हैं। जहाँ जरूरत पड़ती है वहाँ आकर हाथ पकड़कर ठीक राह लगादेते हैं। रा० गौ०

[पृ० ८० परका शेषांश]

सेवन करते रहते हैं। जब वहांसे निराश हो-हो जाते हैं और रोग असाध्य व अन्तिम अवस्थाको प्राप्त हो जाता है तो प्राकृतिक चिकित्साकी शरण लेते हैं। रोगीको सादी प्रसन्न चित्त और आशामय रखनेके यत्न किये जायें। आने-जानेवालोंकी संख्या कम की जाये, आराममें विघ्न न डाला जाये। प्रातः-सायं उसके सम्मुख मधुर स्वरमें परमात्मा व प्रकृतिकी महिमाके गायन किये जायें। गायन विद्या स्वयं ही एक चिकित्साकी विधि है। जिस मकानमें रोगी रहा हो उस स्थानका निवास ६ मासके लिये त्याग दिया जाये। मकानकी मिट्टी १ या दो फुटकी गहराई तक निकालकर ग्रामसे दूर जहाँ लोगोंकी बस्ती न हो फेंक दी जाये। मकान में गंधक आदिका धुंआ किया जाये और पश्चात् मकानके सब द्वार, खिड़कियां आदि खुली छोड़ दी जायें। इस अवधिके पश्चात् खेतकी सूखी मिट्टी डालकर गोबरका लेपन देकर, होम करके वायु व प्रकाशके लिये और द्वार, खिड़कियां रौशनदान निकलवाये जायें तब कहीं पुनः निवास किया जाए। जिस मकानमें दो, तीन वा अधिक मृत्यु हो चुकी हो, उचित हो यदि मकान गिरा दिया जाये और उस परिवारके सब लोगोंकी स्वास्थ्य-परीक्षा की जाये।"

['जीवन-संदेश" से]

हम कौन रोजगार करें ?

हमारे पढ़े लिखे बेकार नौकरियोंकी खोजमें दरदर ठोकरें खाते फिरते हैं और पूछते हैं, हम कौन रोजगार करें ? न मालूम कितना डाकमहसूल और कागज स्टेशनरीका खून करके भी हाथपर-हाथ धरे बैठे रहते हैं। अनमोल समयको व्यर्थ खोते हैं। अपने समयकी कीमत ये चाहें तो सहजमें बढ़ा सकते हैं। जो मिनिट इनके किसी कामके नहीं, उन्हें काममें ला सकते हैं। वह अपने दिमागपर जोर देकर अपने मनपर संयम करके, बेकारीमें भी अपनेको बाकार बना सकते हैं। वे सभी रोजगार जो विदेशियोंके हाथमें चले गये हैं, हमारे ही हाथसे गये. उन्हींके कारण तो हम बेकार हैं। हम वही सब करने लग जायँ और मजूरीकी चिन्ता न करें तो अपने समयको तो हम अकारथ न खोयेंगे। हमारा स्वभाव तो न बिगड़ेगा। हम हर मिनिटको कीमती बनानेके आदी हो जायंगे।

हमारा भ्रम

विदेशियोंके भारी-भारी कारखानों और कलोंकी माया से हम मोहित हो रहे हैं। हम समझने लगे हैं कि भारी भारी कल जो काम करते हैं, हमसे कैसे होगा। इस माया मोहको अपने दिलोंसे उखाड़ फेंकनेकी जरूरत है।

"जवानाने सआदत-मन्द जब करनेपर आते हैं।
समुन्दर फांदते हैं, कोहसे दरया बहाते हैं॥"

हम क्या नहीं कर सकते ? पुतलीघरोंमें जो काम अलग-अलग पुरजे करते हैं हम बेकारोंके हाथ तो उनसे कहीं अच्छे काम कर सकते हैं। सब बेकार मिलकर अपना संगठन करें तो हर आबादी, हर गांव, हर मुहल्ला, एक-एक भारी-भारी कारखाना है। भारी पुतली घर है। हां, संगठनकी देर है।

खद्दरका भेद

खद्दरका भेद भी तो आखिर यही है। जो काम पुतली घरोंमें इकट्ठा होता है, वही तो खद्दरकी तैयारीमें आदमी अपने हाथोंसे कर लेता है। जैसे पुरजोंमें श्रमविभाग है वैसे ही मजदूरोंमें भी श्रमविभाग हो सकता है। जरूरत है संगठित कामकी और उसके लिये आन्दोलनकी। अगर हमारे पढ़ेगुने दिमाग संगठन भी न कर सकें तो हमारी शिक्षा और डिग्रियां अकारथ हैं।

आन्दोलनकी जरूरत

पढ़े-लिखोंमें घोर आन्दोलनकी जरूरत है कि नौकरीकी खोज छोड़कर स्वतंत्र मजूरी करें, औ दिमागका काम न खोजकर हाथसे काम लेनेका जीतोड़ जतन करें। कुछ न बन पड़े तो तकली ही बनाकर रजाईके रुअड़ कातें। और कुछ न होगा तो अपने लिये कपड़ोंकी कुछ जरूरत तो रफा होगी। हाथ सूत कातता रहे और दिमाग हाथके लिये और कामोंकी चिन्तामें रहे। काम एकसे एक चोखे निकलेंगे और बेकारी हवा हो जायगी। रा० गौड़

हवाई जहाजोंसे बरबादी

मनुष्यके वैज्ञानिक विकासका ही फल हवाईयान हैं। हवाईयानोंके द्वारा जो अनिष्ट संसारका होता है उसकी जिम्मेदारी विज्ञानके ऊपर है। प्राणिनाशके लिये विज्ञानका अधिकाधिक दुरुपयोग हो रहा है।

अमरीका आज कई बड़े-बड़े जंगी हवाई जहाज बना रहा है जो २५ ००० फुटकी ऊंचाईतक २५० मील फी घंटे

की चालसे उड़ सकेंगे और ४ टन बम गिरा सकेंगे। इनके साथ रक्षाके लिये २० छोटे-छोटे जपलिन रहेंगे, जिनमें १०-१० मशीनगनें रहेंगी, जो एक-एक मिनटमें पाँच-पाँच लाख गोलियाँ बरसा सकेंगी। बादलोंसे कोई रुकावट न पड़ेगी। ये बादलोंके ऊपर उड़ा करेंगे और नीचे आकर बम तथा गोलियाँ बरसाकर फिर बादलोंमें गायब हो जाया करेंगे। ३०० पौंडका एक बम किसी समुद्री जहाजको डुबा देनेको या बेकार कर देनेको काफी होगा। २० हवाई जहाजोंका एक बेड़ा अमरीका तटसे १५०० मीलकी दूरीपरके जल जहाजको दो लाख पौंड बम्ब गिराकर एक पलमें बरबाद कर देगा। संसारका भारीसे भारी जहाज अब अपनी रक्षा किसी तरह न कर सकेगा। किसी मुल्कके पास आज १२ से ज्यादा बड़े जंगी जहाज नहीं हैं। बाहरी शत्रुओंकी सेना अमरीकाके तटपर अब पैर न रख सकेगी। १५ घंटेमें अमरीकाके एक कोनेसे दूसरे कोनेतक उसके हवाई जहाज पहुँच सकेंगे। किसी तरफसे चढ़ाई न हो सकेगी। ये हवाई जहाज एक उड़ानमें अटलांटिक महासागर पार करके यूरोप के किसी नगरको पलभर-भरमें खतम कर सकेंगे। विज्ञानका कैसा भयानक दुरुपयोग है। क्या अच्छा होता यदि रूसकी नकल की जाती।

हवाई जहाजोंसे फायदेका काम

रूसके पास आज ४,००० हवाई जहाज हैं, युद्ध छिड़नेपर ये भी आग बरसायेंगे, यह तो है ही, परन्तु आज तो इनमेंसे बहुते किसानोंकी सेवामें लगे हुए हैं। यह देखा गया है कि २५०० एकड़ भूमिको हाथसे बोनेमें ३००० घण्टे और घोड़ोंद्वारा चलानेकी मशीनसे एक हजार घण्टे लगते, पर हवाई जहाजोंसे यह काम ६० घण्टेमें ही हो जाता है। गेहूँ जल्दी बोनेसे फसल अच्छी होती है, हवाई जहाजोंसे इसमें बड़ा सुभीता रहता है। वहाँ खेतोंमें मईतक बरफ जमी रहती है, इनपर हवाई जहाजोंद्वारा राख और कालिख छिड़क जाती है, जिससे बरफ काली पड़ जाती है, और सूरजकी किरणोंको खूब सोखती है। इस तरह बोनेके समयके एक सप्ताह पहले बरफ गल जाती है। ४० गज ऊपर उड़कर हवाई जहाज खेतोंमें बीज गिराते हैं. इस तरह २० गज की चौड़ाईमें बोते चलते हैं। रूसमें टिड्डियां खूब होती हैं, जो सारी खेती चौपट कर देती हैं। जब इनका दल खेतोंको ढक लेता है, तब एक हवाई जहाज आकर सारे खेतपर जहरीली बुकनी छिड़क देता है, जिससे घण्टेभरमें सारा टिड्डीदल नष्ट हो जाता है। पिछले साल रूसके हवाई जहाजोंने टिड्डियोंसे रक्षा की। सारी दुनियांमें जितने जङ्गल हैं, उनके एक चौथाई रूसमें हैं। इनमेंसे आधे तो ऐसे हैं, जिनमें अबतक मनुष्यका प्रवेश भी नहीं हुआ है। जो ३५ आदमी इनको नापते रहें तो २०,००० दिनमें अपना काम पूरा कर सकेंगे। पर अब एक हवाई जहाज द्वारा फोटो केमरासे इतने जंगल कुल ४० दिनमें नापे जा सकते हैं। आगसे जङ्गलोंकी रक्षा करनेमें भी हवाई जहाजोंसे मदद ली जाती है। ५० लाख एकड़ जङ्गलोंपर कितने ही जहाज मँडराया करते हैं। कहीं भी धुआं देखते ही रेडियोद्वारा आग बुझानेके दफ्तरको खबर देते हैं और वहाँसे इञ्जन आकर फौरन आग बुझाने लगते हैं। मरुस्थलमें भी जङ्गल लगानेका प्रयत्न हो रहा है, और २५०० एकड़ भूमिमें हवाई जहाजोंसे देवदार बोवाये गये हैं, जो धीरे-धीरे उग रहे हैं। इस तरह रूसमें हवाई जहाज किसानोंका सच्चा मददगार बन रहा है। विज्ञानका इस तरह सदुपयोग करते हैं।

सम्मेलनका सभापतित्व

सेठ जमनालाल बजाजको राष्ट्र भाषा हिन्दीसे अपरिमित अनुराग है। आपके ही बलपर हिन्दीका मद्रास प्रान्तमें प्रचार हुआ है। कुल १८ बरसोंमें छः-सात लाख हिन्दी समझने और बोलनेवाले हो गये। इसमें कुल ४-५ लाख रुपये खर्च हुए। सालमें औसत तीस-पैंतीस हजार आदमियोंको औसत पचीस हजार रुपये में ही हिन्दी लिखना-पढ़ना सिखा देना एक चमत्कार है। अठारह बरसके इस लगातार ठोस कामके बाद इस साल सम्मेलनका वार्षिक अधिवेशन वहाँ बड़ी सफलता और यशस्वितासे सम्पन्न हुआ। सेठजी न तो कवि हैं, न ग्रन्थकार। वे साहित्यकारके नाते सभापति नहीं चुने गये। राष्ट्रभाषाका प्रचार सम्मेलनका एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अंग है जिसकी पूर्त्ति भारतमें और कोई संस्था नहीं करती। साहित्य-निर्म्माणके लिये तो बहुत-सी संस्थाएं हैं। सम्मेलनका मुख्य काम तो प्रचार ही है। इस प्रचारवाले अंगका पोषण सेठजकी ही बदौलत हुआ है। सम्मेलन उसक

उचित प्रत्युपकार तो करनेमें सर्वथा असमर्थ है। उसके पास कृतज्ञता प्रदर्शनका सबसे उत्तम साधन एक ही है, वह है सम्मेलनका सभापतित्व। अतः उसने सेठजीको यह सम्मान देकर ऋणशोधका एक छोटा-सा प्रयत्न किया है। संसारमें अन्यत्र भी यही दस्तूर है। जैसे लण्डनकी रायल सोसायटीमें या तो किसी भारी वैज्ञानिकको सदस्यता मिलती है या प्रचुर धनसे उसकी सेवा करनेवालेको सेठ जीके भाषणमें प्रचारकी ही महत्ता प्रदर्शित है। अनेक तरह की त्रुटोंसे पीड़ित सम्मेलनमें भी ऐसी सुमति यशस्विनी हुई कि सेठजीका यह उचित सम्मान किया जा सका, यह राष्ट्रके लिये शुभ लक्षण हैं। रा० गौ०

हा ! राजा साहब !!

बड़े दुःखकी बात है कि कुर्री सुदौली नरेश राजा-रामपालसिंहजी अब इस संसारमें नहीं हैं। राजा साहब २॥ बरस तक लगातार बीमार रहकर ३ अप्रेलको सवेरे ७० बरसकी आयुमें स्वर्ग सिधारे। आप राजनीतिज्ञ, व्यापारकुशल और शिक्षा-विशेषज्ञ थे। आप सन् १९०६ से १६ तक यू० पी० कौंसिलके सदस्य रहे। रायल अग्रीकल्चरल कमीशनके भी सदस्य रहे। आप लीडरके एक हिस्सेदार और इलाहाबाद बैंकके डैरेक्टर भी थे। विज्ञान परिषत्‌के आप फेलो थे और सभा-पति भी रह चुके थे। आपके निधनसे अनेक संस्था-ओंकी बड़ी क्षति हुई। भगवान् गतात्माको सद्गति और वियुक्त परिवारको धैर्य्य प्रदान करें।

रा० गौ०

सम्मेलनकी विज्ञानपरिषत्

हर सालकी तरह अबके मदरासमें भी सम्मेलनके साथ विज्ञानपरिषत्‌का अधिवेशन प्रो० रामनारायणमिश्रके सभा-तित्वमें हुआ। इन प्रोफेसर साहबके परिचयका सौभाग्य हमें नहीं है और न हिन्दीके वैज्ञानिक साहित्यमें इनकी कोई कृति हमारे देखनेमें अभीतक आयी है। यह महाशय कहां प्रोफेसर हैं, किस विषयका अध्ययन अध्यापन करते हैं, यह पत्रोंमें भी नहीं निकला। और नहीं तो सम्मेलनके मंत्रियोंको चाहिये था कि 'विज्ञान" को तो इनका परिचय अवश्य देते। केवल इसलिये नहीं कि हिन्दीका एकमात्र वैज्ञानिक पत्र होनेके नाते वह अधिकारी है, वरन् इसलिये भी कि सम्मेलनके सभी कामोंके विज्ञापनकी बड़ी जरूरत है। आखिर ऐसा नहीं है तो प्रचार फिर है ही क्या ?

परिषत्‌के स्वागताध्यक्ष मद्रास प्रान्तके प्रसिद्ध हिन्दीके विद्वान् महीशूर विश्वविद्यालयके प्रोफेसर श्रीजम्बुनाथनका भाषण मिला, इसमें विज्ञानके सदुपयोग और दुरुपयोगका थोड़ेमें ही ठोस वर्णन करते हुए आपने दिखाया है कि देश की किसी भाषाके द्वारा विज्ञानकी ऊँचीसे ऊँची शिक्षा दी जा सकती है और परायी भाषाके मध्यमने खामखाह वैज्ञा-निक शिक्षामें निरर्थक बाधा डाल रखी है। आपका भाषण सारगर्भित और मार्मिक हुआ है।

पारिभाषिक शब्द भरसक समान हों

आपने अपने भाषणमें ठीक ही कहा है कि "यह भी वांछनीय है कि भारतके सभी भाषाओंके पारिभाषिक शब्द जहांतक हो सके, समान हों"। यह प्रश्न असाधारण मह-त्त्वका है। भारत एक महाद्वीपके समान है जिसकी सभी प्रान्तीय भाषाएं एक ही संस्कृतके विविध प्राकृतरूप हैं, अतः यदि प्रत्येक प्राकृतके बोलनेवाले वैज्ञानिक इकट्ठे होकर समान पारिभाषिक शब्दोंकी नियुक्ति करलें तो विज्ञानका अखिल भारतीय साहित्य राष्ट्रभाषा हिन्दीमें तथा प्रान्तीय भाषाओंमें सहजमें ही तैयार हो सके। अखिल भारतीय साहित्य परिषत् इस तरहकी योजना करके भारतके प्रमुख वैज्ञानिकोंके सहयोगसे सारे भारतके लिये निर्णय कर सकती है। प्रयागकी परिषत्‌ने इसी उद्देश्यको लेकर विज्ञानका प्रका-शन आरम्भ किया परन्तु उसके साधन अत्यन्त सीमित रहे, अतः इस दिशामें हम बहुत कम काम कर सके। यदि भारतीय साहित्यपरिषत् इस कामका बीड़ा उठावे तो विज्ञानपरिषत्‌से जो कुछ बन पड़ेगा अवश्य सहकारिता और सहायता करेगी। रा० गौ०

卐

क्षयरोगकी समस्या

सर्व प्रथम यह आवश्यक है कि ग्राममें एक सुव्यवस्थित प्रयोगशाला (clinic for thorough diagnosis) हो जिसमें रोगके निदान रोगीके रक्त, थूक मल, मूत्रादिकी सूक्ष्म तथा सम्पूर्ण परीक्षाके लिये पुरातन व आधुनिक साधनों, यंत्रादि तथा अनुभवी सुयोग्य रासायनिकका उचित प्रबन्ध हो। इस बातपर ज़ोर देते हुए आप ने बतलाया कि कई अन्य रोगोंके रोगी निदानकी भूलके कारण जीवनसे हताश हो बैठे थे और चिकित्सा भी औषधियों द्वारा क्षय रोगकी हो रही थी। यदि लक्ष्यमें भूल हो तो सफलताकी आशा दुराशामात्र हो जाती है। आपने एक उदाहरण दिया कि एक रोगीका मूल रोग पेटमें कीड़े किन्तु बाह्य (प्रत्यक्ष) लक्षण क्षयसे मिलते-जुलते थे। जब उसको अपनी वास्तविक अवस्थाका ज्ञान हुआ तो उसको अत्यन्त प्रसन्नता हुई मानो उसको भावी मृत्युके स्थानपर जीवनका दैवी दान प्राप्त हुआ हो। उसकी औषधि चिकित्सा बंद कर दी गयी और सरल प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा वह शीघ्र चंगा हो गया। इसी प्रकार अनेक रोगी गलत निदानके कारण मृत्युके घाट उतर रहे हैं। ऐसी मृत्युकी संख्या ऊपर लिखी प्रयोगशालाद्वारा बंद हो सकती है।

जब किसी मनुष्यके स्वास्थ्यपर संदेह हो शीघ्र ही प्रयोगशालामें उसकी परीक्षा की जावे और यदि क्षयका निश्चय हो जाये तो ऐसे रोगियोंके निवास और चिकित्सा के लिये ग्रामसे दूर खुले मैदानमें दूर-दूर झोंपड़े (sheds) बनाये जायें। इन झोपड़ोंमें दीवारें नहीं, केवल फूसकी छत हो जो खम्भोंपर खड़ी की जाये ताकि आवश्यकता पूर्ण हो जाने पर उनको जला दिया जाये। इस स्वास्थ्यालयमें सूर्य्य और जलके स्नान, सूर्य्य नमस्कार आदि प्राकृतिक प्रणाली अनुसार चिकित्सा की जाये। प्राकृतिक चिकित्सा विज्ञान एवं भोजन विज्ञानके विशेषज्ञ एक प्रधान तथा आवश्यकतानुसार सहायक नियुक्त हों।

वैयक्तिक रूपमें एक-एक रोगीकी औषधि-चिकित्सापर एक दो हज़ार रुपया व्यय हो जाता है इसके अतिरिक्त रोगी और उसके सम्बन्धियोंको कष्ट भी सहने पड़ते हैं। फिर जो ऐसे रोगियोंकी सेवा करते हैं उनमेंसे कितने ही पूर्व-संचित विकार (विजातीय द्रव्य) अथवा भयके कारण रोगीके संसर्गसे रोग-ग्रसित होकर समान गति (मृत्यु) को प्राप्त होते हैं। इतने कष्ट और धन-व्ययके पश्चात् भी मृत्युसंख्या दिन ब दिन वृद्धिपर है। यदि यही धन राशि सम्मिलित रूपमें हो तो ऊपर लिखित चिकित्सापद्धति कार्य्यरूपमें परिणत हो सकती है और ग्राम इस भयङ्कर रोगसे मुक्त हो सकता है।

ग्रामोंकी वर्तमान अवस्थामें निम्न लिखित नियमों का पालन उपयोगी है—

जिस रोगीपर क्षयका संदेह हो उसको ग्रामसे बाहर खुले स्थानमें खुले झोपड़ेमें रखा जाये। सेवाके लिये एक समझदार व्यक्ति जो रोगीका हितेच्छु हो, स्वयं पूर्ण स्वस्थ हो तथा जिसकी मानसिक शक्ति प्रबल हो पर्य्याप्त है। औषधिसेवनका निषेध हो, क्योंकि सर्व प्रकारकी औषधियां अप्रमाणित सिद्ध हो चुकी हैं और रोगीके कष्टोंको बढ़ाती हैं। अतएव प्राकृतिक-चिकित्साको व्यवस्था आरम्भसे ही की जाये। कई रोगी अज्ञानता व भ्रममें पड़कर औषधि-सेवन

[पृ० ७६पर शेषांश पढ़िये।]

जून १९३७

मूल्य ।)

भाग ४५, संख्या ३

प्रयाग की विज्ञान-परिषद् का मुख-पत्र, जिसमें आयुर्वेद-विज्ञान भी सम्मिलित है

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते,
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० । ३ । ५ ॥

भाग ४५ } प्रयाग । मिथुनार्क, संवत् १९९४ विक्रमी । जून, सन् १९३७ ई० { संख्या ३

मंगलाचरण

ॐ अम्भस्य पारे भुवनस्य मध्ये
नाकस्य पृष्ठे महतो महीयान्
शुक्रेण ज्योतीꣳषि समानुप्रविष्टः
प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तः
यस्मिन्निदꣳ संचविचैति सर्वम्
यस्मिन्देवा अधिविश्वे निषेदुः
तदेव भूतं तदुभव्यमाइदम्
तदक्षरे परमे व्योमन्
येनावृतं खं च दिवं महीं च
येनादित्यस्तपति तेजसा भ्राजसाच
यमन्तः समुद्रे कवयो वयन्ति
यदक्षरे परमे प्रजाः

(नारायणोपनिषत्)

डाक्टर आर्थर रिचर्डसन् Ph. D., F. R. C. S., F. A, U.

१—प्रा० रैमजेका लेक्चर

"इन्होंने तो अजीब बात बतायी। अभी तो उस दिन डाक्टर साहबने हवामें आक्सिजन, नैट्रोजन दो ही एलिमेन्ट बताये थे, आज ये पांच और निकल पड़े। क्या डाक्टर साहब को मालूम न था?" शीतलाप्रसादने कहा।

"वाह! मालूम क्यों न था? सुना नहीं? प्रोफेसर रैमजे तो कहते थे कि तुम लोगोंका दादागुरु होनेका मुझे सम्मान है, क्योंकि तुम्हारे उस्ताद डाक्टर रिचर्डसन मेरे शिष्य हैं। शिष्य होकर क्या उन्हें पता न होगा कि उनके गुरुने पांच और हवाके एलिमेंट मालूम किये हैं?" लक्ष्मीनारायणने उत्तर दिया।

"क्यों नहीं, जी! वह कहते न थे कि हवामें इन एलिमेंटोंकी मात्रा बहुत कम है, इतनी कम कि इनका होना न होना बराबर है। इसीलिये डाक्टर साहबने नहीं बताया होगा" मैंने बातोंमें शामिल होकर कहा।

"और यह बात भी तो है कि केमिस्ट्रीकी सारी बातें और विस्तारके साथ फर्स्ट-यिअरमें ही बतादी जायंगीं क्या? देखो ना, अभी स्पेक्ट्रोमीटरका बयान हमलोगोंने पढ़ा नहीं और न जेज़्लर ट्यूब ही जानते हैं। परन्तु आज इन्हीं ट्यूबों में इन हवाओंमें बिजली चलाकर इनका रंग दिखाया गया। हमे तो कुछ भेद नहीं समझमें आया, पर मिसिज बेसन्ट और डाक्टर साहब आदि वह छोटे छोटे स्पेक्ट्रोमीटर लेकर उसी ज्योतिको देख रहे थे। उन्हें भेद समझमें आता होगा। हमलोग अभी इन बातोंको क्या समझेंगे।" यह बातें मेरे बड़े भाई साहबने समझायीं जो सेकन्ड-यिअरमें पढ़ रहे थे।

जहांतक मुझे याद है यह घटना सितम्बर सन् १९०० की है। हिन्दू कालिजकी छात्र मंडली प्रोफेसर विलियम रैमजेका व्याख्यान सुनकर घर जा रही थी।

काशीनरेश हालके सामनेके विशाल प्रांगणमें काशीके अंग्रेजी समझ सकनेवाले सज्जनों और छात्रोंका लगभग ५०० आदमियोंका समूह बड़ी उत्सुकतासे प्रो० रैमजेका व्याख्यान सुनने आया था। मिसिज़ एनी बेसेंट सभाध्यक्षा थीं। डाक्टर रिचर्डसन साहबने प्रबन्ध किया था। काशीनरेश हालमें ही अब हिन्दूकालिज आ गया था। अपने हाथोंसे चार मील लम्बाईका ताम्बेका तार ढोलपर लपेटकर डा० रिचार्डसनने रूमकार्फ-कोइल तैयार किया था। वही कोइल लाकर बैटरी आदिसे सुसज्जित मेजके नीचे रखा था। मेजपर कई जेज़्लर ट्यूब रखे थे। किसीमें अन्यल्प आर्गन था किसीमें हीलियम, किसीमें नीयन किसीमें क्रिप्टन, किसीमें जीनन बड़ी क्षीण मात्रामें था।

प्रोफेसर रैमजेका परिचय मिसिज बेसंटने दिया! प्रोफेसर साहब किसी विशेष कामसे भारत-भ्रमणको आये थे। यहां हिन्दू कालिजमें उनके प्रिय छात्र डाक्टर रिचर्डसन प्रिंसिपल थे। उन्होंने आग्रह करके अपने गुरुको अपने कालिजमें निमंत्रित किया था। रैमजेने एक दो नहीं, पांच पांच नये एलिमेंटोंका पता लगाया था। उन्हींका वर्णन श्रीमुखसे सुनाया, उन पांचों पुत्रोंके नामकरणकी बड़ी रसीली कथा सुनायी और यह भी सुनाया कि ये पांचों, उनके प्रिय छात्र डा० रिचर्डसनकी तरह आजन्म ब्रह्मचारी थे और राजा जनक सरीखे ब्रह्मज्ञानियोंकी तरह दुनियामें वायुके सभी घटकोंसे मिले जुले रहते हुए भी अलग-अलग रहते थे, किसी और एलिमेंटसे या आपसमें भी कभी मिलते न थे। ये पांचों बहुत सूक्ष्म मात्रामें थे, उसी तरह से जैसे महात्मा लोग संसारमें रहते हुए भी कदाचित् ही बड़े भाग्यसे किसीको मिल जाते हैं। उनकी खोजमें रैमजेको न जाने कहां-कहांकी खाक छाननी पड़ी और कई बरसोंकी लगातार कोशिशोंके बाद कहीं उनका भेद खुला। निदान, रैमजेने सिद्ध किया कि जिस वायुमंडलमें हम सांस लेते हैं, उसमें कुल सात तरहकी मौलिक हवाएं मिली हैं। व्याख्यान बड़ा ही रोचक हुआ था और बातें बहुत महीन थीं तब भी ऐसे सुबोध ढंगसे कही गयीं कि सभी कान पारकर सुन रहे थे और सबने विज्ञानकी इस नयी खोजका कुछ न कुछ हाल जान लिया।

२—उनकी पढ़ाईके ढंग

हमलोग डाक्टर रिचर्डसनसे केमिस्ट्री रसायन शास्त्र)

पढ़ते थे। डाक्टर साहबका हाथ और मुंह दोनों साथ चलते थे। उनका कोई सहायक न था। वह स्वयं प्रयोगकी सामग्री पहलेसे जुटाकर रखते मुंह बोलता जाता था, हाथ प्रयोग दिखाता जाता था। पीछे जब मैं स्वयं केमिस्ट्री पढ़ाने लगा तब कहीं मुझे डाक्टर साहबके सर्वांगीण कौशल का मूल्य मालूम हुआ। वे अपने व्याख्यानको बेतरह सरल और सुबोध बना डालते थे। उनकी बदौलत रसायन शास्त्र कालिजमें बड़ा लोकप्रिय विषय हो गया था। पीछे जब मैं स्वयं पढ़ाने लगा तो मेरे हृदयमें उन्हींकी पढ़ाईकी बदौलत अपनी मातृभाषामें सुबोध विज्ञानशिक्षाका शौक पैदा हुआ। वह व्याख्यानमें ही बीच-बीचमें नोट लिखाते जाते थे। नोट भी ऐसे होते थे कि किसी पाठ्यग्रंथ पढ़नेकी आवश्यकता नहीं थी। वह नोट और प्रत्यक्ष प्रयोग वह काम करते थे जो किसी अच्छेसे अच्छे ग्रन्थसे सम्भव न था।

डाक्टर साहबके हाथ और जबान और मस्तिष्क पढ़ाने में तन्मय रहते थे फिर भी एक सच्चे प्रयोगकर्त्ता और कुशल शिक्षककी तरह उनकी निरीक्षिका अन्तर्दृष्टि अत्र-तत्र-सर्वत्र रहा करती थी। वह हम सब छात्रोंके भाव चेहरे से ताड़ लेते थे। पहले तो उनकी विधि ऐसी रोचक, ऐसी मनोमोहक थी कि लद्धड़से लद्धड़ लड़का मेजकी ओर टक-टकी बाँधे रहता था। कुछ न भी समझे तब भी जो बाजीगरीके खेलसरीखे प्रयोग होते रहते थे, उन तमाशोंको छोड़ उसकी आँखें कहाँ जातीं। परन्तु डाक्टर साहबकी निगाह और भी गहरे पैठती थी। न समझनेवालेसे प्रश्नों की झड़ी लग जाती और विषयको हृदयंगम कराके ही दम लेते थे।

३—उनका धार्मिक भाव

उनके धार्मिक विचार हिन्दुओंके-से थे। आर्य्य-संस्कृति में वे पैदा तो नहीं हुए थे, परन्तु उसका आदर्श उनके हृदयके अन्तस्तलमें रमा हुआ था। शौचाचारमें वह ब्राह्मणत्व को आदर्श मानते थे। पढ़ाते हुए जब परखनलियोंको साव-धानीसे कई बार साफ करते होते उस समय अकसर कहते कि वैज्ञानिकको सफाईमें सच्चा ब्राह्मण होना चाहिये। वे बालब्रह्मचारी थे। उनके निकट ब्राह्मण और हिन्दू सत्य और अहिंसाकी मूर्त्ति था। गंगा और काशी उसके पवित्र तीर्थ थे। लोकसेवा और दान उसके परम कर्त्तव्य थे। अपने जीवनमें वे इसी हिन्दूत्वको बराबर निभाते थे। काशीवास तो वे कर ही रहे थे। लोकसेवामें उन्होंने अपना तन-मन धन लगा दिया था। वे हिन्दूकालिजमें प्रोफेसर और प्रिंसिपलकी हैसियतसे जो सेवा कर रहे थे उसके लिये कोई तनखाह नहीं लेते थे। उलटे एक अच्छी रकम कालिज को चन्दा देते थे। उस दानके सिवा वे निर्धन छात्रों की बड़ी उदारतासे सहायता करते थे। कोई और दीन दुःखिया देखनेमें आया तो अपने शरीरसे और कपड़े-लत्ते से और रुपये-पैसेसे भी उसकी सेवा करते थे।

४—हिन्दू-सत्यपर उनका भाव

हिन्दूकालिजमें नित्य प्रार्थनासे कार्य्यारम्भ होता था। पढ़नेवाले और पढ़ानेवाले दोनों काशीनरेश-हालमें पौने दस बजे घंटा बजते ही इकट्ठे होते। पहले हाजिरी होती। फिर गीतामें अर्जुनद्वारा कृष्णस्तुतिवाले अंशसे प्रार्थना। फिर पं० नित्यानन्दजी पर्वती महाभारतके शान्तिपर्वसे कोई प्रकरण कोई १० मिनिट तक कहते। अन्तमें डाक्टर साहब कुछ उपदेश देते। अन्तमें लोग अपने-अपने क्लासमें चले जाते थे। नित्यका क्रम यही था। एक दिन डाक्टर साहबको यह भ्रम हो गया कि किसी लड़केने किसी अनुपस्थित सहाध्यायीकी ओरसे हाजिरी बोल दी है। वह जब्त किये बैठे रहे। चेहरा लाल हो गया था। रोषसे भरे हुए थे। उपदेशके समय उबल पड़े। लड़कोंको बड़ी जलीकटी सुनायी कहा कि मैं कल ही बम्बई चला जाऊँगा और वहाँसे एकान्तस्थानको। मेरा सच्चा भारत, मेरा नैतिक हिन्दुत्व एक मानसिक महल था, जो आज ढह गया। अब मैं कैसे रह सकता हूँ? हिन्दू बालकोंका ऐसा हीन चरित्र मैं सह नहीं सकता।" वह बड़े दुःखी होकर जब अपने कमरेमें गये, सारे समुदायमें सन्नाटा छा गया था कि क्या होगा। उस समय जेम्स स्काट एम्० ए०, बैरिस्टर अंग्रेजीके प्रोफेसर थे। सौभाग्यवश उन्हें डाक्टर साहबके भ्रमका पता था। वे तुरन्त डाक्टर साहबके पास गये। रजिस्टर मँगवाया। उस लड़केको बुलवाया। डाक्टर साहबने कहा कि हाँ यही लड़का देर करके आया और मुझे ख्याल है कि इसकी जगहपर किसी औरने हाजिरी बोल दी। रजिस्टर में देखे तो उसके नामके आगे "अनुपस्थित" वाला चिन्ह

था। स्पष्ट था, पीछेसे नहीं बनाया गया था। संदेहकी गुंजाइश न थी। डाक्टर साहबका भ्रम दूर हो गया और बड़े प्रसन्न हुए। दूसरे दिन उसी समय उन्होंने अपनी बड़ी खुशी जाहिर की, किसी हिन्दू लड़केपर इस तरहकी कुचालकी धारणापर बहुत पछताये।

५—आदर्श चरित्र-सुधारक

हिन्दूके प्रति उनकी जैसी अटल श्रद्धा थी वैसा ही सुन्दर उन्हें अनुभव भी होता था। हिन्दूकालिजोंमें हर सनीचरको साप्ताहिक परीक्षाएँ ली जाती थीं। डाक्टर साहब स्वयं हालमें बैठते थे। पहले ही दिन वह जब आकर बैठे तो लड़कोंसे बोले "प्यारे बच्चो! मैं यहाँ इसलिये नहीं बैठा हूँ कि तुम लोगोंपर चौकी पहरा रखूँ। तुम लोग हिन्दू हो। तुम कभी चोरी नहीं कर सकते, झूठ नहीं लिख सकते, नकल नहीं कर सकते। मैं तो इसीलिये बैठा हूँ कि तुम्हारी जरूरतोंको पूरा करूँ। चौकी पहरेके लिये मैं नहीं बैठा।" फिर क्या मजाल कि कोई अपने पड़ोसीकी तरफ गलतीसे भी निगाह डाले। नकलबाजी रफूचक्कर हो गयी। लड़कोंके मनमें हिन्दूत्वकी पवित्रताके भाव भर गये। अपनी ईमानदारी, अपनी सचाई अपनी अपनी इज्जतपर हृदयमें सच्चा गर्व और पवित्र भावना उत्पन्न हो गयी। डाक्टर रिचार्डसनकी बदौलत उस समय के हिन्दूकालिजमें नैतिक पवित्रताकी गम्भीर भावना प्रत्येक अध्येताके हृदयमें घर कर गयी। शिक्षकोंपर भी इसका बड़ा उन्नायक प्रभाव पड़ा। हिन्दूकालिजका उस समय का वातावरण नैतिकता, परोपकार और उदारतासे ओतप्रोत था। मिसिज़ बेसन्ट श्री उपेन्द्रनाथवसु, श्री गोविन्ददासजी श्रीभगवानदासजी पंडित छेदालाल आदिका सहयोग भी इस वातावरणके निर्माणमें बहुत कुछ सहायक हुआ।

६—सहकारियोंसे अपार स्नेह

प्रिंसिपलीके काममें उन्होंने अपने सहकारियोंसे पूरे बन्धुत्वका भाव रखा। उनकी मातहतीमें जो काम करते थे उनसे भी उन्हें अपार स्नेह था। मैं सन् १९०४ की जुलाईमें उनका सहायक (डिमांस्ट्रेटर) नियुक्त हुआ। उसी समयकी बात है। थर्डयियर रसायनका प्रैक्टिकल कर रहा था। सटे हुए बड़े कमरेके अन्दर प्रोफेसर दामोदर किनी अमोनियाका मुहरबन्द बोतल खोलनेकी कोशिशमें थे। डाक्टर साहब लड़कोंको प्रैक्टिकल बतला रहे थे। एका-एकी जोरका धड़ाका हुआ और सारा कमरा अमोनिया गैससे भर गया। बोतलके फट जानेसे बहुत-सा अमोनिया गिर गया। प्रोफेसर किनीको अपनी जानकी चिन्ता न थी वह बोतल सँभाल रहे थे। मैं समझ न सका कि क्या हुआ। परन्तु आवाजपर ही डाक्टर साहब दौड़ गये और दूसरे क्षण देखता क्या हूँ कि प्रोफेसर किनीको पकड़कर खींचते हुए वह कमरेसे निकाल लाये और बरामदेसे बाहर मैदानमें ले गये। जब किनी साहबका मिजाज ठिकाने हुआ, तो डाक्टर साहब हंसने लगे। पूछा "तुम भागे क्यों नहीं।" किनी साहब बोले "मैं बोतल सँभाल रहा था।" डाक्टर साहबने कहा "नहीं, कौड़ियोंके बदले अनमोल जान दे रहे थे। ऐसा कभी न करना।"

मैंने उनकी मातहतीमें नयी-नयी नौकरी की थी। डाक्टर साहबने मुझे फर्स्ट यिअर पढ़ानेको सौंपा। मुझे पढ़ानेकी विधि बतायी, जिस दिनसे आरंभ करना था उसके तीन दिन पहलेसे पुस्तकालयसे पढ़नेको किताबें दीं। दूसरे दिन मेरी जांच की कि क्या कैसे करूंगा। मुझे जो प्रयोग करके दिखानेके थे उनकी सामग्री सजवायी, फिर मुझसे वह प्रयोग करवाये। उनके सारे भेद समझाये। पूरी तैयारी हो गयी तो बोले, अगर तुम्हें कोई कठिनाई मालूम हो तो तुम लेक्चर देना मैं तुम्हारे लिये प्रयोग करता चलूंगा। मुझे सिखानेके लिये मेरे आचार्य मेरे सहायकका काम करनेको तैयार थे। मैंने धन्यवाद देकर कहा कि मैं आपके सामने बोल न सकूंगा। बड़ा संकोच लगेगा कोशिश करके दोनों काम आप करूंगा"। फिर भी उन्होंने आश्वासन दिया "अच्छा, कोई बात नहीं। मैं किवाड़के पास कुरसी डालकर झांकता रहूंगा। कोई काम बिगड़ता देखूंगा, तो सहायता कर दूंगा।"

दरजा बड़ा था चालीस पचास लड़के थे। थियेटर नहीं बना था। एक ही तलपर बेंचें बिछी थीं। जब मैं प्रयोग करने लगा आगेके लड़कोंने खड़े होकर छेंक लिया। पीछेवालोंका मुझे पता न था। मैं प्रयोगमें व्यस्त था। लड़कोंको काबूमें रखने और बैठा देनेका ध्यान न रहा। पीछेवाला बेंचपर एक लड़का लम्बा लेट गया। डाक्टरसाहब

धीरेसे दूसरी तरफसे आये, लड़केको पकड़कर आफिस ले गये और एक हफ्तेके लिये रस्टिकेट करनेकी आज्ञा दी। लड़का रोने लगा। डाक्टर साहबने उसकी एक न सुनी। बोले कि जाकर भरे दर्जेमें अपने प्रोफेसरसे क्षमा प्रार्थना करो। वह माफ करें तो माफ हो सकता है। लड़केने अपनी कथा कहकर क्षमा मांगी। वह तो क्षमा कर दिया गया परन्तु सारे क्लासके कान खड़े हो गये। सबने समझा कि डाक्टर साहब देखते रहते हैं। कोई जरा भी गड़बड़ करेगा तो उनकी निगाहोंसे बच नहीं सकता। अब मेरे लिये क्लास-पर काबू पाना एक सरल बात हो गयी।

डाक्टर साहब अपने शिष्योंको सदा पुत्रवत् मानते थे। सम्बोधन भी कभी कभी 'माइ चाइल्ड" कहकर करते थे। केवल सम्बोधन ही नहीं था। सच्चा वात्सल्य भाव था। वे बाल ब्रह्मचारी थे बालबच्चोंवाले तो न थे, परन्तु फिर भी वात्सल्य प्रेम उमड़ा पड़ता था। छात्रोंके वे सच्चे पिता थे। मैं उनकी निर्मित ब्लोपैपके सहारे कांच फूँकनेका अभ्यास करता था और टूटी हुई परख-नलियोंकी मरम्मत करता था। उन्हें दिखाता था तो वे बढ़ावा देनेके लिये प्रशंसा करते थे। एकाध बार स्वयं बनाकर मेरे दोष बतलाये। एक दिन इस अवसरपर कहा "देखो, तुम और किनी, दोनों कांचका काम अच्छा सीख रहे हो। तुमलोगों का हौसला बढ़ानेको मैं तुम्हारी प्रशंसा कर देता हूँ। यह घमंड न करने लग जाना कि मैं सचमुच बड़ा अच्छा काम करता हूं। अभी तो आरंभ है। कुशलताके लिये बरसोंका अभ्यास चाहिये।" वह प्रोत्साहन देना भी जानते थे, परन्तु मिथ्या गर्वसे रक्षा करनेका भी उनको पूरा ख्याल था।

७–लोकसेवाका भाव उनका जीवन था।

वह जर्म्मनीसे रसायन शास्त्रकी विद्वत्ताके लिये पी-एच० डी० की उपाधि पाये हुए थे। चिकित्साके डाक्टर न थे। परन्तु चिकित्साकार्य्यमें उन्हें बड़ा रस था। लगभग तेंतालीस बरस हुए बम्बईमें पहले-पहल प्लेग फैला और बड़ा हाहाकार मचा। प्लेग-पीड़ितोंकी चिकित्सा और सेवाके लिये डाक्टर साहब जो एक कड़ी बीमारीके बाद फ्रांसमें प्रवास कर रहे थे, प्लेग फैलनेके कुछ पीछे अपनी खुशी और खर्चसे बम्बई चले आये। प्लेग पीड़ितोंका इलाज और मरहम पट्टी करना, दीन दुखियोंकी औषधि पथ्य और कपड़े लत्तोंसे भी सहायता करना एक मात्र काम था। थियोसोफिकल सोसायटीके आप मेंबर भी थे। जब सन् १८९८ ईसवीमें काशीमें हिन्दूकालिजकी स्थापना हुई तो अपने एकान्तवाससे थड़ोंकी अवैतनिक प्रिंसिपली करनेको डाक्टर साहब काशी आये। यह काम भी आपके लिये पूर्णतया अनुकूल था। यह भी लोकसेवा ही थी और वह भी उस वातावरणमें था जिसका पवित्र आदर्श डाक्टर साहबके हृदयमें घर कर चुका था। थियोसोफिकल सोसायटीमें लोग विविध मतोंके अनुयायी होकर भी इकट्ठे होते हैं और विश्वबन्धुत्व उनका एकमात्र ध्येय होता है। डाक्टर रिचर्डसन ईसाईके घर तो पैदा हुए थे, परन्तु स्वयं अपनी इच्छासे कालिज में उन्होंने हिन्दूमतके अनुयायीके रूपमें प्रवेश किया था। उनके हिन्दुत्वका आधार वह उपनिषदें थीं और इतिहास पुराणमय साहित्य था जिसका अनुवाद अंग्रेजीमें हो चुका था, वह संस्कृत वा अन्यकोई भारतीय भाषा नहीं जानतेथे। परन्तु उनके मतका सम्बन्ध उनके आत्मासे था। फिर भी जिस हिन्दुत्वका आदर्श उनके हृदयमें मूर्तिमान था, वह थी परोपकारपरायण जनसेवा।

मैं जब पढ़ता था, फर्स्टयिअरकी वार्षिक परीक्षाके समय बीमार होगया। घरपर रहता था अकेला। एक पड़ोसी सहाध्यायी देख जाता। उसीके हाथ मैंने अर्जी भेजी। डाक्टर साहबने मेरे सहाध्यायीसे कहा कि "आज ज्योंही परीक्षासे छुट्टी मिलेगी हम तुम साथ उसके यहां चलेंगे।" अप्रैलका महीना था। कोई साढ़े ग्यारह बजेकी धूपमें गन्दी गलियोंको पार करते डाक्टर साहब मेरे घर पहुंचे। ज्वर देखा तो १०४॥ था। तुरन्त अस्पतालसे बड़े डाक्टरको अपने खर्चसे बुलवाया और उन्हें सहेजा कि नित्य आकर मुझे देखा करें और मेरे लिये दवाका भी बन्दोबस्त करा दिया। जब मैं अच्छा हुआ तो उन्होंने गन्दी गलियोंसे घिरे घरको छोड़वाकर हठात् छात्रावासमें रखा। उनका बरताव अपने सभी छात्रोंसे इसी ममता और स्नेहका था। हिन्दू कालिज नया था। विशेष रूपसे गरीब छात्रोंके लिये बना था। ऐसे ही छात्र भरे थे जिन्हें सब तरहकी सहायता चाहिये थी। और उनके सहायक भी डाक्टर साहब जैसे दयालु, करुणाकर और उदार आचार्य्य थे। जो लड़के उनसे सीधे सहायता लेनेमें सकु-

चाते थे उन्हें छात्रवृत्तिके रूपमें किसी दाताकी ओर से सम्मान्य दान दिला देते थे।

एक दिनकी बात है कि एक बंगाली छात्र ढाकेसे भाग कर काशी आगया था। उसके पास खर्च न था। कपड़े चीथड़े हो रहे थे। खानेका ठिकाना न था। उसपरसे उसकी दाहनी टांगमें भयानक घाव था जिसमें कीड़े पड़ गये थे। बातें करने लायक अंग्रेजी जानता था।

डाक्टरसाहबके अन्तस्तलकी करुणाका स्रोत उमड़ आया। उनका ध्यान उसकी ओर ऐसे समय आकृष्ट हुआ जब प्रयोगशालासे थके मांदे सांझको अपने स्थानपर जा रहे थे। लड़केको अपने पास बुलाकर उसका हाल सुन लिया। उसके व्रणको देखा। उसे अपने यहां आधा घंटा बाद आनेको कहकर चले गये। एक छात्रके संग वह निश्चित समयपर डाक्टरसाहबके कमरेके पास पहुंचा। डाक्टरसाहब कम्पौंडरकी सी तैयारी किये खड़े थे। उन्होंने लड़केके व्रणको बड़ी सावधानीसे धोया, कीड़े साफ किये। औषधियां लगायीं। पट्टी बांधी। उसके पास मैली धोती थी मैला कमीज था। अपनी धोती और कमीज देकर ये कपड़े बदलवाये। उसे एक छात्रको सौंपा कि रातको आश्रय दे। दूसरे दिन प्रातः उसके नहाने धोनेका प्रबन्ध कर दिया, मरहम पट्टीकी, औषधि लगायी। इस प्रकार तीन दिन की सेवामें उसका रंग रूप बदल गया। व्रण ठीक हो चला। जब उसका व्रण प्रायः अच्छा होनेको आया और वह रोगी स्वयं अपनी मरहम पट्टी करने लगा, तो डाक्टर साहब ने उसे बड़ी देरतक परिवारमें मेलसे रहनेके सुबीते समझाये और अपने पाससे खर्च देकर उस लड़केको उसके मां बापके पास ढाके पहुंचवा दिया।

हिन्दूकालिजके दीन छात्र जब कभी बीमार होते थे तो उसकी वे अक्षरशः तन-मन-धनसे सहायता करते थे। साथ ही खूबी यह थी कि बहुत कमको पता होता था कि डाक्टरसाहब किसकी किस तरहकी सहायता कर रहे हैं।

उनके वैज्ञानिक काम भी लोकसेवाके ही उद्देश्यसे होते थे। उन्होंने बम्बईमें रहते प्लेग कीटाणुओंके नाशके लिये हरिन (क्लोरीन), अरुणिन् (ब्रोमीन) और नैलिन् (अयपोडीन) के बहुतायतसे प्रयोग किये थे, उनके सम्बन्धमें इनकी खोज महत्त्वकी थी। हिन्दूकालिजमें आनेपर उन अनुसन्धानोंको विस्तारसे चलानेके लिये डाक्टरसाहबने थोड़े ही खर्चमें सारी सामग्री जुटायी। इस कामके कांचके उपकरण चाहिये थे। तात्कालिक आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिये विदेशोंसे मंगवानेमें धननाश और मार्गमें टूट-फूटका डर तो था ही, समय भी बहुत लगता। उन्हें वह स्वयं तैयार कर सकते थे। परन्तु कांचको इस बारीक कामके उपयुक्त बनानेमें गैसकी ब्लोपैप चाहिये थी।

परन्तु गैस-प्लांटमें हजारोंका खर्च था। इटना-ब्लो-स्टोव तबतक ईजाद नहीं हुआ था। होता भी तो उसमें ब्लोपैपकेसुभीते तो आज भी नहीं हैं। डाक्टरसाहब मिट्टीके तेलके गैसकी ब्लो पैप बनानेमें जुट गये। सन् १९०२से १९०४तक बराबर भांति भांतिके डिजाइन बड़े लगनसे बनाते और फेंकते रहे। अन्तमें उनका किरोसिन-ओयल-ब्लोपैप बन ही गया। इसमें मिट्टीका तेल जलता था, परन्तु आंच गैसकी ही होती थी और शिखा मनमानी मोटी पतलीकी जा सकती थी। इससे उन्होंने बड़े सुन्दर और विचित्र उपकरण बनाये। डाक्टर साहबके हाथोंमें कांच उस ब्लोपैपके सामने हमारे निकट कल्पनातीत रूप ग्रहण कर लेता था। ब्लोपाइप निर्माणकी कथा मैंने बड़े कुतूहल से उनके ही मुखसे सुनी और डिजाइनोंके अस्वीकृत टुकड़ोंकी राशिजो उन्होंने मुझे दिखायी थी एक कमरेके एक तिहाईके लगभग स्थान घेरे हुए थी।

७—हरिन् वायुका प्रकाश-रसायन

हरिन वायुके कृमिनाशक गुणोंका अध्ययन करते समय उसके विविध प्रकारके घोलोंपर उन्हें अनुसन्धान करना पड़ा। उन अनुसन्धानोंको उचित उपकरणोंके अभावमें उन्हें हिन्दूकालिज आनेपर कई बरसोंतक स्थगित करना पड़ा। जब उन्होंने सब साधन जुटा लिये तब हरिन् वायुके प्रकाश रसायनपर उन्होंने बहुत विस्तृत खोज किये जिनका विवरण "जरनल आफ दि केमिकल सोसायटी आफ लंडन" एवं अन्य कई अनुसन्धानपत्रोंमें छपा। ये इतने महत्वके काम थे कि हरिन् साहित्यमें तुरन्त ही इनका समावेश हुआ और रास्को ऐंड शारलेमरके "ट्रीटिज़ आन केमिस्ट्री" नामक प्रामाणिक ग्रंथके पहिली जिल्दके नये संस्करणमें यह विषय विस्तारसे उनके नामोल्लेखके साथ दिया गया है। प्रकाश-रासायनके सिवा और भी उनके अनु-

सन्धानके काम हुए हैं जिनका विवरण इन पंक्तियोंके लेखकके लिये साधनाभावमें देना अशक्य है। प्रकाश-रसायन पर जो उन्होंने खोज की थी, और केरोसीन-ओयल-ब्लोपैप जो बनायी थी, इन दोनोंकी तो मेरी निजी जानकारी थी।

८—उनका अन्त

डाक्टर रिचर्डसनके जन्म कुल आदिका विवरण नहीं मालूम। श्रद्धेय श्री उपेन्द्रनाथ वसुसे यह मालूम हुआ है कि उनका जन्मकाल १८५९ ईसवीके लगभग है। उनके निधनके समय पहली जुलाई सन् १९१२के सेंट्रल हिन्दू कालिज मेगेज़ीनसे एवं श्रद्धेय डा० भगवानदासजीके लेखोंसे, जिनके लिये मैं उनका कृतज्ञ हूँ उनको जीवनकी यत्किंचित् सामग्री मिलती है।

डा० रिचर्डसन जर्मनीके पी० एच० डी० थे और रायल कालिज आफ सायंसके फैलो थे। इनके पिता व्यापारी थे और इस दरजेके अमीर थे कि दानमें कभी पन्द्रह हजारसे कम रकमका दान नहीं करते थे। दैवयोगसे जिस साल बालक आर्थरका जन्म हुआ उसी साल उनके कारबारमें ऐसा घाटा आया कि घर बरबाद हो गया और आर्थरका बड़ी मुसीबतमें पालन-पोषण और शिक्षण हुआ। बालक आर्थरकी प्रतिभा मुसीबतोंके आवरणमें भी चमक उठी। प्रोफेसर विलियम रैमज़ेके ये विशेष कृपापात्र हो गये। रसायन विज्ञानके रहस्य इन्हें हस्तामलकवत् हो गये। ब्रिस्टलकालिजमें ये प्रोफेसर नियुक्त हो गये। कुछ ही पीछे इन्हें आमवात ज्वर हो गया जिसकी भयंकर वेदनाओंसे बहुत दिनोंतक ये पीड़ित रहे। अन्तमें इन्हें नौकरी छोड़ ही देनी पड़ी और फ्रांसके दक्षिण प्रान्तमें कई बरसतक बराबर रहनेसे इनका स्वास्थ्य सुधरा और ये अच्छे हो गये। परन्तु अच्छे होनेपर ये फिर प्रोफेसरी करने नहीं गये। ये थियोसोफिस्ट और ब्रह्मविद्याके सच्चे उपासकके रूपमें सन् १८९६में भारत आये और दो बरसतक बम्बईमें प्लेग पीड़ितोंकी सेवा करते रहे। फिर ये एल्लोराकी गुफाओंके पास जाकर साधुकी तरह रहने लगे। सन् १८९८में जब हिन्दूकालिजकी स्थापनाका विचार पक्का हो गया तब श्रीमती एनीबेसंटने उनसे पत्रद्वारा प्रार्थना की कि इतनी जल्दी संसार त्याग करनेके बदले वह कृपाकर बनारस चले आवें और अपनी योग्यता और विद्यासे भारतके छात्रोंको लाभ पहुँचावें। डाक्टर साहब राजी हो गये और बनारस आकर सन् १८९८की ७ जुलाईसे काम शुरू कर दिया। उस समय स्कूलकी नवीं दसवीं और कालिजकी पहली श्रेणी, तीन ही दरजे थे। ये तीनों दरजे शहरके अन्दर एक मकानमें थे। डाक्टरसाहब नित्य गलियों और बाजारमेंसे होकर वहां जाते-आते थे। मार्गमें दूकानदार उन्हें अक्सर सलाम करते थे और उनके सेवाभाव और त्यागपर उनको बड़े प्रेमकी दृष्टिसे देखते थे दो बरस बाद यह संस्था महाराज काशी नरेशकी कृपासे उनके चिड़ियाघरमें स्थान पा गयी। फिर थोड़े ही काल पीछे सेठबन्धु धरमसी और नरोत्तमजी मुरारजी गोकुलदासके उदार दानसे प्रयोगशालाओंकी बुनियाद पड़ी। डाक्टर रिचर्डसनको रासायनिक खोजके सुभीते मिले। उन्होंने प्रयोगशाला-निर्म्माणकी आदिसे अन्त तक अध्यक्षताकी, अपनी पसन्द और देखभालमें, अपने नकशे और ब्योंतके अनुसार इमारत उठवायी और अपने ही निरीक्षण और आदेशसे उसे सजवाया। उन्होंने अपने ही हाथोंसे अनेक अद्भुत यंत्र बना डाले। उनके अनुसन्धान "जर्नल आफ़ दि केमिकल सोसायटी आफ लंदन"के उस समयके अंकोंमें प्रकाशित हुए। वे अपने छात्रोंको यंत्र बनाना और स्वावलम्बी होना सिखाते थे।

प्रिंसिपलकी हैसियतसे विनय और अनुशासन के वे पूरे पाबन्द थे। उनकी इस विषयमें दृढ़ता और नियमकी कठोरता सहनशीलताके पांव उखाड़ देती परन्तु उनका हार्दिक स्नेह और प्रेमपूर्णवात्सल्य भाव बहुत गर्वोन्नत, उच्छृंखल और विद्रोही मस्तकको भी चरणोंपर गिरा देता था। इस प्रकार उनकी प्रिंसिपलीमें गम्भीर प्रेम और कठोर अनुशासनका अद्भुत संयोग था।

उनका जीवन हिन्दू-कालिजमय था। वह दिनभर तो उसीमें मन-वचन-कर्म्मसे लीन रहते थे, पर रातमें शायद वह उसीके सपने भी देखते थे। सोने-नहाने-खानेके सिवा उनका सारा समय प्रयोगशालामें या क्लासमें बीतता था। वे बिना दूध और चीनीकी चाय अपने हाथों तैयार कर प्रयोग शालामें ही पी लेते थे। कई ओषधियां वे प्रयोगशालामें ही रखते थे। उनकी गृहस्थी प्रायः प्रयोगशाला ही थी। अपने बीमार छात्रोंको वहीं ओषधि देते थे। किसीसे मिलना,

बातचीत करना हो तो प्रयोगशालामें ही उनसे भेंट होती थी। वह आफिसमें थोड़ी देर आवश्यक कामभरके लिये बैठते थे। दिनमें हेडक्लार्क श्री अभयचरण गुई अनेकबार आकर कागजपत्र दिखाते और आज्ञा ले जाते थे। शामको अंधेरा होनेपर वे प्रयोगशाला छोड़ते और कभी-कभी तो रातको भी देरतक वहीं रहते थे। जब वे अनुसन्धानमें लगे होते थे तो बराबर दिन भर अंधेरे कमरेमें बिताते थे।

मैंने उन्हें एक बार साढ़े दस बजे रातको जाकर जगाया। परन्तु वे नाराज नहीं हुए, वरन् धन्यवाद दिया।

बात यह थी कि भौतिक विज्ञान भी वे ही पढ़ाते थे। कोर्स पूरे हो चुके थे। परीक्षाके पाँच दिन और रहे थे। मैं सिलेबससे मिलाकर देख रहा था कि पाठ्य विषयोंमें मैंने अपनी तैयारीमें कुछ छोड़ तो नहीं दिया है। रातके दस बजे थे। मेरे साथ पं० वैद्यनाथझा और स्व० पं० बागीश्वर मिश्र भी पढ़ा करते थे। उस समय यह मालूम करके हमारे होश उड़ गये कि हम लोगोंने "स्पेक्ट्रस्कोपी" तो पढ़ी ही नहीं। और पढ़ाते कैसे, डाक्टर साहबसे पढ़नेमें यह विषय रह गया था। पाँच ही दिन रह गये। परीक्षाकी तैयारीके लिये कोई एक पाख पहलेसे छुट्टी हो चुकी थी। यदि कहीं इसी विषयपर प्रश्न आ गये तो एफ० ए० के सभी छात्र बिलट जायँगे। इसकी खबर डाक्टर साहबको तुरन्त होनी चाहिये। शायद इन्हीं पाँच दिनोंमें वह कुछ प्रबन्ध कर दें। एक राय यह ठहरी कि सबेरे खबर की जाय क्योंकि देर हो गयी है, फिर यही निश्चय हुआ कि उन्हें जगाकर खबर की जाय, शायद सबेरे तक ठहरनेमें देर हो जाय। इस समय जगानेसे शायद नाराज हों, परन्तु एक आदमीपर नाराज भले ही हो लें, सबका तो भला ही होगा। इस विचारसे मैंने हिम्मत की। छात्रावाससे थोड़ी ही दूर पर एक और कम्पौंडमें उनका कमरा था। मैंने सुपरिंटेंडेंट पण्डित छेदालालजीसे आज्ञा ली और उसी समय जाकर जगाया। पहले तो क्षमा मांगी फिर सब बातें कहीं। वे नाराज़ नहीं हुए, बल्कि खुश हुए, धन्यवाद दिये। चौकीदारको बुलाया, फिर हेडक्लर्कके घर आदमी दौड़ाया। हेडक्लर्कने रातको बैठकर आफिसमें प्रत्येक छात्रका पता लेकर कई सर्कुलर तैयार करके सबेरे ही कई आदमी दौड़ाये। दोपहरके बाद दूसरे ही दिन सभी लड़के आ गये और डाक्टर साहबने लगातार दो दिन पढ़ाकर उस विषयको पूरा किया। यह परिश्रम सार्थक हुआ क्योंकि उस सालकी परीक्षामें इसी विषयपर दो प्रश्न महत्त्वके थे और डाक्टर साहबने जो नोट लिखाये थे तीन दिनोंमें लड़कोंने रट लिया था। कुछ लड़कोंने यह भी खबर उड़ा दी थी कि डाक्टर साहबको मालूम हो गया है कि इस विषयप प्रश्न दिया गया है। परीक्षामें आकास्मिकताका तत्त्व कितना है यह बात भी इस घटनासे स्पष्ट होती है।

डाक्टर साहब प्रयोगशालामें घोर परिश्रम करते ही थे। इसका परिणाम उनके स्वास्थ्यपर बड़ा अनिष्ट हुआ। सन् १९०६में वह स्वास्थ्य-सुधारके लिये एक वर्षके लिय इंगिलस्तान चले गये। परन्तु वह लौटे तो काशीमें ही शरीर छोड़नेका निश्चय करके लौटे। उन्होंने कम ही लोगोंसे मित्रता की परन्तु जिस किसीसे की वह गहरी और स्थायी थी। परन्तु उनके सद्व्यवहार औदार्य्य और वत्सलतासे उनके मित्र असंख्य हो गये थे। जिस हिन्दूकालिजको उन्होंने व्यवहारतः जन्म दिया था और जो अत्यन्त छोटे रूपमें सात बरस पहले शुरू हुआ था, अब वह एम्-ए० तकके लिये प्रयाग विश्वविद्यालयमें सम्बद्ध हो गया था। उसके परीक्षाके परिणाम बड़े अच्छे होते थे। अपनी योग्यताके कारण डाक्टर साहब प्रयाग विश्वविद्यालयके फेलो कभीसे थे। उनका उस संस्थापर अच्छा प्रभाव था। उनकी बदौलत सेंट्रल हिन्दू कालिज प्रसिद्ध हो गया था। परन्तु उनका स्वास्थ्य घोर परिश्रमसे बरबाद हो चुका था। फलतः सन् १९०८के अकटूबरमें उनके दहने अंगपर फालिज गिरा। उसी समयसे असलमें उनकी प्रिंसिपली खतम हो गयी, क्योंकि फिर वह कभी सफ़ साफ़ बोल न सके और न अपने अंग आजादीसे हिला-डुला सके। इन संकटके दिनोंमें भी वे विरक्त और प्रफुल्ल-चित्त रहते थे। बीमारीके दिनोंमें वे भरसक आराम पासकें इस विचारसे कालिज कमिटीने उनके लिए एक छोटा सा घर बनवा दिया था। उनको सैर करानेके लिये कमिटीने एक गाड़ी रखी थी। इसमें वे शामको हवाखोरीको जाते थे और अक्सर अपनी प्यारी प्रयोगशालाको देखते हुए गुजरते थे, क्योंकि अब भी उनके मनमें उसकी बड़ी ममता थी, यद्यपि वह अब

कुछ कर नहीं सकते थे। राहमें सभी तरहके लोग मिलते और उन्हें प्रणाम करते थे क्योंकि उनके त्याग और उदारताकी कहानी सारे बनारसमें मशहूर हो चुकी थी। उनको अपने जमा किये हुए धनसे सौ रुपये मासिककी आमदनी थी। परन्तु वह इतनी किफायतसे रहते थे कि इसमेंसे अधिकांश बचा लेते थे और गरीब छात्रोंको और स्वयं हिन्दूकालिजको दे डालते थे। यह बात लोग जान गये थे।

उनकी बीमारीमें डाक्टर ईशानचन्द्र राय बराबर उनका इलाज करते रहे। उनकी कुशल चिकित्सासे डाक्टर साहबकी पीड़ाओंमें बहुत कमी रहती थी। उनकी मृत्युके दो महीने पहले प्रबन्धसमितिने कालिजके काशीनरेश हालमें संगमरमरकी एक तख्ती लगा दी जिसमें उनकी अनमोल सेवाओंका उल्लेख है। हालमें जानेकी सीढ़ियोंके ऊपर सामनेकी दीवारपर उनका एक बड़ा चित्र भी लगाया गया था। ये अबतक मौजूद हैं।

पहली जून सन् १९१२का सूर्योदय अन्तिम था जो इस तपस्वी वैज्ञानिककी निगाहोंने देखा। फिर वह शीघ्र ही सदाके लिये मुँद गयीं। उनके अनेक हिन्दू मित्र और शिष्योंने उनको लाश कमच्छासे राजघाट पहुँचायी। साथ में भारी भीड़ थी। "राम, राम सत्य है" की ध्वनि गूँज रही थी। डाक्टर साहबने अपने वसीयतनामेमें यह स्पष्ट लिख रखा था कि मेरी लाश हिन्दू रीतिसे जलायी जाय। ऐसा ही किया गया। मैनेजिंग कमिटीके मंत्री विद्वद्वर श्रद्धेय श्रीभगवान्‌दासजीने एवं अन्य कई मित्रोंने उनका अग्नि-संस्कार किया।

यह घटना अनोखी थी। एक अंग्रेज लाश हिन्दूविधिसे जलायी गयी। महाराज काशीनरेशतक कुछ पण्डितोंने शिकायत पहुँचायी। उन्होंने इशारेसे पुछवाया कि "हिन्दू कालिजवालोंने ऐसा क्यों किया?" इस प्रश्नके उत्तरमें श्री गवान्‌दासजीने कई श्लोक लिखकर भेजे जिसपर काशीनरेश सन्तुष्ट हो गये। उन श्लोकोंमेंसे केवल पहला श्रद्धेय रचयितासे मिल सका है—

"गृध्रंददाह भगवान्रघुवंशवीरः।
कर्म्मौर्ध्वदेहिकमथास्यचकार राजा॥
जानन्प्रमाणपुरुषः सुकृतंकृतंच।
कस्माद् भवेममनुजेऽपिवयं कृतघ्नाः॥"

भगवान् रामचन्द्रजीने एहसान मानकर जब गिद्धतक का अग्निसंस्कार किया तो हम जिस मनुष्यके इहसानमन्द हों उसकी उत्तरक्रिया न करके कृतघ्न क्यों बनें?

९. वज़ाका ख्याल

डाक्टर साहबका जीवन सच्चे वैज्ञानिकका जीवन था। विश्वके उपकारके लिये ही वैज्ञानिक अपने जीवनका उत्सर्ग कर देता है। डाक्टर साहब शुद्ध भारतीय आदर्शके वैज्ञानिक और सच्चे तपस्वी थे। सूखी रोटी दालपर बसर करते थे। युरोपियनोंका कोई ठाट न था। घरमें कुरता धोती पहनते थे। जाड़ोंके आते ही वह दो-दो रुपयेवाले दो कम्बल खुद बाजार जाकर खरीद लाते थे। एक बिछाते थे। दूसरा ओढ़ते थे। कालिज आते तो उनका पहरावा अच्छे वज़ाक़िता के युरोपियनका होता था। इसीमें उनका कुछ अधिक खर्च होता था। उनका ख्याल था कि कालिजमें या दफ़तरमें हर आदमीको अच्छे क़तावज़ामें आना चाहिये।

मैं सन् १९०४में उनका डिमान्स्ट्रेटर हुआ। उन दिनों मैं धोतीपर कोट पहने कालिज जाया करता था। डाक्टर साहबने एक दिन पास बुलाकर सलाह दी कि तुम अब विद्यार्थी नहीं हो, अध्यापक हो। अपने लिये पतलून या पाजामे बनवा लो। मैंने कहा कि यह जरूरी न हो तो आप मुझे क्षमा करें, क्योंकि मुझे पाजामा या पतलून पसन्द नहीं है। वह बोले, प्रोफेसरोंको अच्छी पोशाकमें आना चाहिये। मैंने डरते-डरते कहा कि 'पांडेय रामावतार शर्मा भी तो प्रोफेसर हैं।" वह हँसकर बोले 'मेरे बच्चे! तुमने भी क्या अच्छी मिसाल ली! जो ईश्वरको ही अंगूठा दिखाता है वह दुनियाकी क्या परवा करेगा! परन्तु तुम तो ईश्वरको और उसकी दुनियांको माननेवालोंमें हो तुम्हें तो पहरावाका ख्याल रखना ही चाहिये।"

पांडेयजी मेरे कुछ ही पहले संस्कृत प्रोफेसर नियुक्त हुए थे। वह आशिखान्त लम्बी लाठी एक हाथमें और दूसरेमें एक लुटिया, कन्धेपर अंगौछा और घुटनोंतक धोती पहने, नंगे सिर नंगे बदन, और कभी-कभी इसी वज़ाके साथ कमीज पहने हैट लगाये कालिजमें नमूदार होते थे। दूरसे उन्हें देखा था कि क्लासमें मेजपर लट्ठको सुलाकर, लुटिया एक तरफ रखकर अंगौछा कंधेपर धारण किये, कुरसी अलग हटाकर, उसी जगह खड़े-खड़े लम्बी शिखा

फटकारते हुए जबानी ही मूल रघुवंश और मल्लिनाथी टीकाकी धारा बहा रहे हैं। जब ऐसे अक्खड़ वज़ाकी वहाँ गुन्जायश थी, तो मेरी बदवज़ईका तो कोई शुमार न था। परन्तु डाक्टर साहबके वे शिष्य न थे और डाक्टर साहब जानते थे कि वे अनीश्वरवादी हैं। उन्होंने कभी पांडेयजीसे ऐसा प्रश्न नहीं छेड़ा। परन्तु, मैं तो डाक्टर साहबका शिष्य था, वह रत्तीसे रवातक मेरे हितचिन्तक थे और मुझपर उनका वात्सल्य स्नेह था। वह चाहते थे कि मैं प्रोफेसर सा ही दीखूं।

१०. उनके धार्मिक विचार

हर रोज प्रार्थनाके समय जब पंडित नित्यानन्दजी पर्वती महाभारतका कोई अंश सुना लेते थे तब डाक्टर साहबका भी पांच-सात मिनिटतक कुछ उपदेश होता था। इस अवसरपर छात्रोंके जीवनसंबन्धी बड़े कामकी बातें सुननेमें आती थीं। कोई पहलू उनके उपदेशमें छूटता न था। स्वास्थ्य-रक्षा, सफाई, आहार, खेल, अध्ययन, सभी विषयोंपर बड़े मार्मिक, मौलिक और अनमोल उपदेश होते थे। ऐसे अवसरोंपर वे युरोपीय छात्र-जीवनपर बड़ी कड़ी टीका करते थे। वे पच्छाहीं छात्रजीवनकी बुराइयां खूब जानते थे। हमारे छात्रजीवनकी बुराइयोंका उन्हें अनुभव न था। परन्तु सुनकर उन्होंने बहुत कुछ समझ लिया था। मुझे याद है कि उन्होंने ब्रह्मचर्य्यपर उपदेश देते हुए बतलाया था कि युरोपके स्कूलोंमें अप्राकृतिक व्यभिचारकी बुराई फैली हुई है।

एक बार उन्होंने अंग्रेज शरीफजादोंकी तारीफ़ की। उनके चरित्रको प्रायः पवित्र नैतिक और उदार बतलाया और यह जोर देकर कहा कि अच्छे अंग्रेजोंके चरित्रकी परख तुम भारतमें आनेवाले अंग्रेज सिविलियनोंसे न करना, भले अँग्रेज यहां बहुत कम आते हैं। उन्हें पराये देशको लूटना खाना पसन्द नहीं है। वे हृदयहीन और चरित्रहीन नहीं होते। 'यह सच है कि यहाँके सिविलियनों के बरतावसे लोगोंको अंग्रेजोंके प्रति घृणा हो जाती है, पर वस्तुतः घृणा उन्हींसे होनी चाहिये जो उसके योग्य बरताव करते हैं। सबसे घृणा करना अन्याय है।" वस्तुतः विरोध के बदले भारतीयों और अंग्रेजोंमें प्रेमकी अवस्था अवश्य स्थापित हो जाय यदि हमारे देशमें आनेवाले अंग्रेज डाक्टर रिचर्डसन सरीखी प्रवृत्ति अख्तियार करें।

हम अन्यत्र कह चुके हैं कि वे हिन्दू विचारोंके थियोसोफिस्ट थे जिन छात्रोंका धार्मिक झुकाव देखते थे उन्हें वह बहुत चाहते थे। मैंने एक बार उनसे थियोसोफीके सम्बन्धमें कुछ बातें कीं। जब स्कूलमें पढ़ता था तब, "प्रश्नोत्तर" मासिकपत्र और कुछ तत्सम्बन्धी पुस्तकें पढ़ी थीं। डाक्टर साहब मुझे 'प्रश्नोत्तर" प्रतिमास देने लगे। मिसिज बेसंटकी एंशेंट विज़डम आदि कई पुस्तकें उनसे लेकर पढ़ीं। उन्होंने कई पुस्तकें अपनी ओरसे भेट कीं, जैसे "दि वॉयस् अव् दि सैलेंस" "भगवद्गीता" आदि। यों भी मुझपर अतुल कृपा रखते थे। हिन्दूकालिजमें फीस बहुत थोड़ी थी। २) मासिक। आठ मासका बकाया जब चढ़ चुका मैंने देनेमें असमर्थता प्रकट की। डाक्टर साहबने शुरूसे मुझे फ्री कर दिया। बोर्डिंगहौसमें १०) मासिक छात्रवृत्ति देकर रखा। यद्यपि मैं क्लासमें अव्वल रहता था, तथापि अव्वलके लिये कोई छात्रवृत्ति न थी। मेरी निर्धनतापर डाक्टर साहबने यह छात्रवृत्ति देकर मेरी सहायता की थी। इस तरहके उनके कृपापात्र अनेक छात्र थे। आजकलके-से हिन्दूविश्वविद्यालयका खर्च होता तो हम लोग ऊँची शिक्षा कदापि न पा सकते।

११. उपसंहार

सन् १९१२की जुलाईमें हिन्दूकालिज डाक्टर रिचर्डसन के बिना ही खुला। उस समयतक अनेक स्वार्थत्यागी अध्यापन-मंडलीमें आ चुके थे। विद्वद्वर मिस्टर अरंडेल थे जो अवैतनिक सेवा कर रहे थे। उनकी बुआ मिस अरंडेल एक साध्वी देवी थीं वह भी सेवामें संलग्न थीं और अर्थतः सम्पन्न थीं। प्रोफेसर तेलंग साहब विद्वान् थे, तेजस्वीथे, सम्पन्न थे और अवैतनिक सेवक थे। पंडित। इकबाल नारायण गुर्टू साहब भी इन्हीं सारे गुणोंसे सम्पन्न थे। श्रद्धेय श्रीभगवान्दासजी अब मंत्री ही न थे, धर्म्म विज्ञानके अवैतनिक प्रोफेसर थे। बूढ़े पंडित छेदालालजी छात्रोंपर अपना तनमनधन वारे हुए अवैतनिक सेवा कर रहे थे। एक डाक्टर रिचर्डसनके महान त्याग और तपस्या और मिसिज बेसन्ट और श्रद्धेय भगवान्दासजीके आत्मबल और सात्विक वृत्तिसे खिंचकर कितनी बलिदान-मूर्तियां इकट्ठी हो गयी थीं! परन्तु जुलाई १९१२में जब हिन्दूकालिज खुला डाक्टर रिचर्डसनका आसन रिक्त था। फिर भी उपर्युक्त त्यागियोंने हिन्दूकालिजकी सत्ता सुरक्षित रखी। यह मुद्दततक रिक्त रहा और अन्तमें वह प्राचीन हिन्दूकालिज ही लुप्त हो गया। उसके भस्मावशेष पर वर्त्तमान हिन्दू विश्वविद्यालयका निर्म्माण हुआ। रा. गौ.

हमारे प्राचीन इतिहासकी खोज

[श्री जयशंकर प्रसाद]*

१-इंडो-सुमेरियन सभ्यता नहीं वरन् सिन्धुकी सभ्यता

पच्छाहीं विद्वानोंने संसारकी सबसे बड़ी और पुरानी पुस्तक ऋग्वेद और उसके परिवारके शास्त्रीय ग्रंथोंका अनुशीलन करके हमारी ऐतिहासिक स्थितिको बतलानेकी चेष्टा की है, और उनका यह स्तुत्य प्रयत्न बहुत दिनोंसे हो रहा है। किन्तु इस ऐतिहासिक खोजसे जहां प्राच्य दृष्टिसे हमारे भारतीय इतिहासकी सामग्री बननेमें बहुत सी सहायता मिली है, वहां अपूर्ण खोजोंके कारण और किसी अंशमें सेमेटिक पुरानी धर्म पुस्तक (Old Testament) के + ऐतिहासिक विवरणोंको मानदंड मान लेनेसे बहुत सी भ्रांत कल्पनाएँ भी चल पड़ी हैं। बहुत दिनोंतक पहिले ईसाके २००० वर्ष पूर्वका समय ही सृष्टिके प्राग् ऐतिहासिक कालको भी अपनी परिधिमें ले आता था, क्योंकि ईसासे २००० वर्ष पूर्व जलप्रलयका होना माना जाता था और सृष्टिके आरम्भसे २००० वर्ष के बाद जल-प्रलय का समय निर्धारित था—इस प्रकार ईसा से ४००० वर्ष पहले सृष्टिका आरंभ माना जाता था। बहुत संभव है कि इसका कारण वही अंतर्निहित धार्मिक प्रेरणा रही हो जो उन शोधकोंके हृदयमें बद्धमूल थी। प्रायः ईर्षाके वशवर्ती होकर बहुतसे प्रकांड पंडितोंने भी, ऋग्वेदके समय-निर्धारणमें संकीर्णताका परिचय दिया है। हर्षका विषय है की प्रत्नतत्त्व और भूगर्भ शास्त्रके नये नये अन्वेषणों और आविष्कारोंने मानव जातिके प्राग् ऐतिहासिक कालको, और उसके साथ ही आर्य-संस्कृति को भी, अधिक पुरातन कर दिया है। फलतः उस कालकी सीमा विस्तृत हो चली है।

श्री हियरेन्शा अपने 'संसारके इतिहास† ' पृष्ठ ३३ में लिखते हैं— 'पिछले कई बरसोंसे मिस्रकी प्राचीनता में विश्वास बढ़ रहा था। उसके मितीवार इतिहासका क्रम तो प्रायः ई० पूर्व ४००४ वर्ष से चला, पर इसके भी हजारों बरस पहिले से वहांके लोग सुसंगठित जीवन व्यतीत कर रहे थे। अब बर्तमानकालकी खोजों और उपलब्धियोंने प्राचीनताका अधिकार बैबिलोनियाकी सभ्यताको देनेका अभिमत दिया है। इसके अतिरिक्त बैबिलोनियाकी सभ्यता के पूर्व उससे भी कुछ अधिक पुरानी सभ्यता एलामकी है।"

---

* हमारे प्राचीन इतिहासकी बड़ी दुर्दशा हुई है। सच्चे इतिहासकी खोजमें अनेक विद्वानोंने परिश्रम किया है। उन्हींके परिश्रमका फल हम इस स्तंभमें प्रतिमास देते रहेंगे। श्री जयशंकरप्रसादजीने कई वर्ष हुए इस सम्बन्धमें एज अनुसन्धान पूर्ण लेख लिखा था। वह इतना अच्छा और सुलझा हुआ है, कि उससे ही इस स्तंभको आरंभ करनेका लोभ हम संवरण नहीं कर सकते। रा० गौ०

+ जो अनेक भ्रान्त अनुवादोंसे भरी है, क्योंकि मूल पुरानी इब्रानी भाषामें हैं। रा० गौ०

† "Egypt until the last few years has been generally regarded as having the best title to priority : its calendar was fixed in or about 4004 B. C., and for a thousand years before that it had lived a more or less settled life. But the weight of modern evidence seems to be definitely establishing a claim to a still earlier antiquity on behalf of the civilisatoin of Babylonia; while behind the Babylonian civilisation there seems to lie a still more primitive civilisation of Elam". F. G. C. Hearenshaw: World History. P. 33

सभ्यताका प्रश्न हल करनेके लिये अवशिष्ट चिह्नोंसे काम लिया जाता है और यही उसकी प्राचीनताके मापक हैं। अभी कुछ दिनों पहिलेतक भारतवर्षमें खोदाईका काम पूर्णतः न होनेके कारण ईसवी पूर्व छठी शताब्दीसे पहलेके कोई चिह्न न मिले थे और इस कारण आर्य्य संस्कृतिकी प्राचीनतामें संदेह किया जाता था। केवल ऋग्वेदके मंत्रोंसे सामाजिक और साहित्यक विकासके अनुमानपर अधिकसे अधिक २००० वर्ष ई० पूर्वकी आर्य्य सभ्यतामें पाश्चात्य अपना विश्वास प्रकट कर रहे थे। पर हरप्पा और मोहंजोदरोकी हालकी खोदाईने, कुछ कुछ पत्थरके टुकड़ोंको ही प्रामाणिक महत्ता देनेवालोंकी आंखें खोल दी हैं, जिसकी प्राचीनताको डाक्टर मार्शल-जैसे विद्वानोंने भी पैंतीस सौ ईसवी-पूर्वकी माना है। प्रायः इतना ही समय ब्रेस्टेड आदि विद्वान् मिस्रके पिरामिडोंको देते हैं। सर मार्शल लिखते है—'जैसे-जैसे खोदाईका कार्य्य अधिक विस्तृत होता गया यह प्रमाणित होने लगा कि भारतसे मेसोपोटामियाँका संबन्ध, केवल संस्कृतिकी प्रकृत एकताके आधारपर नहीं था, किन्तु दोनों देशोंमें गाढ़तम व्यापारिक और अन्य संपर्कोंके कारण था। इसी लिये "इंडो-सुमेरियन सभ्यता" शब्दको हटाकर उसके स्थानपर "सिंधुकी सभ्यता" रखा गया *।"—

इस "इंडो-सुमेरियन' सभ्यताका विश्वास करनेका कारण प्रोफेसर 'इलियड स्मिथ जैसे विद्वानोंकी सम्मति है। वे लिखते हैं—"सुमेरियाकी मूल जातिकी पूर्वीय और पश्चिमीय शाखाएँही क्रमशः भारत और बृटिश द्वीपपुंज एवं आयर्लैंडमें पहुँची †।" उसी ग्रंथकी भूमिकाके पृष्ठ ३० में लिखा है—' आधुनिक खोजोंने यह सिद्ध करनेकी चेष्टाकी है कि बैबिलोनियाके सुमेरियन, प्राग् ऐतिहासिक कालके मिस्र-निवासी, प्रस्तर युगके योरोपीय तथा दक्षिण फारस और भारतके आर्य्य एकही जातिके मनुष्य थे‡।"

अभी तक सुमेरियाकी सभ्यताको सबसे प्राचीन माननेके कारण 'इंडो-सुमेरिया' नाम देना निर्बाध समझा जाता था, किन्तु अत्यन्त नयी खोजोंने ऐतिहासिकको सिन्धुकी एक स्वतंत्र सभ्यता माननेके लिये विवश किया। इस प्रकार इन शोधोंके आधार पर ही अब यह कहा जासकता है कि अवशिष्ट चिह्नोंके द्वारा भी भारत अपनी प्राचीनता प्रमाणित कर सकता है। यद्यपि आर्य्योंकी आत्मवाद-प्रणाली अत्यंत प्राचीन कालसे ही भौतिक सत्ताके प्रदर्शनोंमें उतनी श्रद्धा न रखती थी, ऐसा मेरा अनुमान है, ऋषियोंकी वाणीमें माननीय महत्त्वको अमर कर रखनेकी शक्तिपर ही उनका विश्वास था, फिर भी कौन कह सकता है कि कितने स्मृति-चिह्न अभी दबे पड़े हैं। कितनेही बर्बर आक्रमणोंसे आर्य्य साहित्यका

* With the progress of exploration, however it has become evident that the connection with Mesopotamia was due, not to actual identity of culture, but to intimate commercial or other intercourse between the two countries. For this reason the term "Indo-Sumerian" has now been discarded and "Indus" adopted in its place.—(B. H. U. Magazine, 1928.)

† This distinguished ethnologist is frankly of opinion that the Sumerians were the congeners of the pre-Dynastic Egyptians of the Mediterranean (or Brown race), the eastern branch of which reaches to India and the western to British Isles and Ireland. *Myths of Babylonia*. P. 7.

‡ The results of modern research tend to establish a remote racial connection between the Snmerians of Babylonia, the prehistoric Egyptians, and the Neolithic (Later Stone Age) inhabitants of Europe, as well as the southern Persians and the " Aryans " ot India.

—P. XXX, Myths of Babylonia.

कितना विनाश हुवा है, उसका अनुमान करना भी कठिन है। इसलिये ऐतिहासिक विवरणोंका अभाव होना कुछ असंभव नहीं। यद्यपि पारजीटर (Pargiter) आदिने पुराणोंकी प्रामाणिकतामें अधिक विश्वास प्रकट किया है, तथापि सभ्यताके उद्गमको, जहाँतक हो सके, पश्चिममें स्थापित करनेकी प्रेरणाने शोधकोंको उनसे सहमत नहीं होने दिया। यद्यपि, भौतिक अवशिष्ट चिह्नों पर ही इन शोधक विद्वानोंका अधिक विश्वास है- जैसा हम ऊपर कह आये हैं, तथापि, वे अनुसंधानमें पुस्तक अभिलेख और विवरणोंके संबंधमें अपनी उस मूल मनोवृत्तिसे प्रभावित हुए बिना न रह सके। ईसवी पूर्व तीसरी शताब्दी में होनेवाले मिस्र देशवासी धर्मयाजक 'मनेथो' (Manetho) ने अपने देश के इतिहासमें जिन राजाओंके तीश वंशोका वर्णन किया है, उन्हें प्रामाणिक मान लेनेके लिये प्रोफेसर 'फिलडर्स पिट्री' (Flinders Petrie) ने अधिक आग्रह किया है। बाबुलका धर्मयाजक बेरोसस (Berosus) ईसवी पूव तीसरी शताब्दीमें हुआ जिसने ग्रीक भाषामें अपने देशका कुछ वृत्तांत लिखा था। अब उसके आधारपर उक्त-देशका इतिहास बनाने और धार्मिक सामंजस्य स्थिर करनेका प्रयत्न किया जाता है। उसी तरह, ईसवी-पूर्व चौथी शताब्दीके ग्रीक राजदूत 'मेगास्थनीज'ने भारतीय इतिहासका समय तत्कालीन पुराणोंके आदिम रूपमें निर्धारित किया है और उस पूर्वकालमें भी भारतीयोंके प्राचीन इतिहासका विवरण महीनों और वर्षोंके साथ राजाओंकी संख्याके उल्लेखसे पूर्ण है। 'मेगास्थनीजने ६४५१वर्ष औ ३ महीने चन्द्रगुप्तसे पहिले १५४ राजाओंका राज्य करना लिखा है किंतु भारतीय इतिहास लिखनेवाले पाश्चात्य विद्वान् इस ओर ध्यान भी नहीं देना चाहते।

मिश्र, चैल्डिया, बाबीलोनिया, इलाम आदि देश अपने धार्मिक अनुष्ठान और जातियोंके सहित कुछ मिट्टी और पत्थरके चिह्न छोड़कर मिट गये, पर आर्य्यावर्त्त या सिंधुकी गोदमें अभी आर्यजाति अपने धर्मानुष्ठानोंके साथ जीवित है।

२-जलप्रलयकी कथा

तिलकने ज्योतिषके आधारपर अपने अन्वेषणोंसे यह प्रमाणित किया है कि बहुतसे वेदमंत्र छः हजार वर्ष ईसवी पूर्वसे पीछेके नहीं है। मेगास्थनीज़के भारतीय इतिहास के विवरणसे अविरुद्ध होनेके कारण भी हमारी सभ्यता उक्त कालसे और पहिले की ही मानी जासकती है।

इसलिये बाइबिल वर्णित जलप्रलयवाले नूह की संतान—हेम, सेम या याफतके वंशधरों—का उल्लेख करके संसार के प्राग् एतिहासिक कालके आर्य्योंका इतिहास बनाया जाना अधिक भ्रमात्मक ही सिद्ध होगा, क्योंकि, ऋग्वेदका समय उस जलप्रलयके समयसे पहिलेका है। ऋग्वेदकी ऋचाओं में जलप्रलयका वर्णन नहीं मिलता, जैसा पीछेके अथर्वमंत्रों में उसका उल्लेख है। मेरा विश्वास है कि सुमेरियाके जल प्लावनमें 'पीरनिपीश्तीम्'का जो वर्णन है, वह एक कल्पना है, जो जलप्लावनसे बच जानेके बाद वहाँके निवासियों ने गढ़ी थी। जलपुत्र वा जलशक्तिका नाम ऋग्वेदमें अपान्नपात् है। अवेस्तामें भी अपान्नपात् जलके देवता माने गये हैं। मंडल २—३५ का सूक्त उन्हीं की प्रार्थनामें है। वहाँ वह जलपुत्र हैं। सुमेरियावालोंने जलप्रलयसे बचनेपर इन्हीं आर्य्य देवताको त्राणकर्त्ताका रूप दिया था। उनके पीर निपीश्तीम् (Pir Nepi-h-tim) भी जलके बीचमें द्वीपके रहनेवाले देवता थे। जैसा आगे चलकर दिखलाया जायगा, ये सुमेरियावासी भी आदिम आर्य्य-संतान ही थे; उससे इनका ऋग्वैदिक देवतासे परिचित होना असंभव नहीं। किंतु अपनी रक्षाका संबंध जो इन्होंने उक्त देवतासे जोड़ लिया है, उससे प्रतीत होता है कि यह घटना ऋग्वेदसे पीछेकी है। अन्यथा, ऋग्वेदमें भी जलप्रलयका प्रसंग आता।

अभी तक यही विश्वास था कि ऋग्वेदसे पीछेके शतपथब्राह्मणमें जिस जलप्रलयका वर्णन मिलता है वह सेमेटिक जातिके बैबिलोनियावालोंसे उधार लिया हुआ है; किंतु, मैकडानलके विचारसे यह एक अनावश्यक कल्पना है*।

* It is generally regarded as borrowed from a Semitic source, but this seems to be an unnecessary hypothesis.—P. 139, Vedic Mythology.

अब मैकडानलके विचारकी पुष्टि भूगर्भ शास्त्रके विद्वानों-द्वारा भी होने लगी है। हिमालयकी खोज करके लौटे हुए Dr. E. Trinkler का अभिमत १९ अक्टूबर सन् २८ के 'पायनियर' में प्रकाशित हुआ है। उनका विचार है कि वालूमें दबे हुए प्राचीन नगरोंके चिह्न इस बातको प्रमाणित करते हैं कि हिमालय और उसके प्रांतमें भी जलप्रलय या ओघका होना निश्चित सा है।

'सिंधुकी सभ्यता' प्राचीन सुमेरियन सभ्यतासे संस्कृति की विशेषताके कारण जब विभिन्न मान ली गयी है, तब वह 'मेना' (Mana) के मिस्र-विजय ('ब्रिस्टेड' के मतानुसार) ३४०० बी० सी० से पूर्वकी ही प्रमाणित होगी। मिस्रकी प्राथमिक सभ्यतासे पहिले ही सिंधुकी घाटीमें नागरिक सभ्यताका विकास हो चुका था, जिसके लिये और भी हजारों वर्ष पहलेका समय चाहिए। वह सिंधुकी सभ्यता ऋग्वेदके आर्य्योंकी सप्तसिंधुवाली सभ्यतासे भिन्न नहीं प्रमाणित होगी।

जब हम देखते हैं कि ग्रीकोंके हरक्यूलिसकी जन्मभूमि मेगास्थनीजके कथनानुसार आर्य्यावर्त है, टाह (Ptah) ने पूर्वसे ही जाकर मिस्रमें सभ्यता फैलायी, और सुमेरियाके आदि निवासी और भारतके आर्य्य एक ही वंशके हैं, तब हम उस प्राचीन ऋषिके इस कथनको क्यों न सत्य मान लें—

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥

३—मेरु कहां है ?

अब सबसे पहिले हमें उस देशको खोजना होगा जहाँ ये अग्रजन्मा उत्पन्न हुए। आर्य्योंके अग्रजन्मा देव थे, ऐसी ही अनेक विद्वानों और आर्य्य शास्त्रोंकी सन्मति है। देवगण की प्रधान भूमिका पता आर्य्य-साहित्यमें 'मेरु' नामसे लगता है।

कहा जाता है कि मेरुपर देवताओंका स्वर्ग है। पांडवों के महाप्रस्थानकी यात्रामें उत्तर कुरुके समीप ही मेरु और स्वर्गका वर्णन मिलता है। आदि पर्व (१२२ अध्याय) के अनुसार पांडव पहले किंपुरुषवर्ष पहुँचे, फिर उत्तर हरिवर्ष गये और तब उत्तरकुरुके द्वारपर पहुँचे। इस उत्तर कुरुको विजय करनेसे वे रोके गये और उनसे कहा गया कि यह देवभूमि है। यहांसे कुछ उपहार लेकर वे लौट आए।

'बृहत्संहिता' में उत्तर-प्रदेशके प्रसंगमें कहा गया है—

उत्तरतः कैलासो हिमवान् वसुमान् गिरिर्धनुष्मांश्च।
क्रौंचो मेरुः कुरवो तथोत्तराः क्षुद्रमीनाश्च ॥१४-२४॥

मेरु और उसके पास ही उत्तर कुरुका वर्णन है। कई प्राचीन ग्रंथोंमें मेरुके समीप ही उत्तर कुरुका नाम आनेसे प्रतीत होता है कि ये दोनों देश और पर्वत पास पासके हैं। यह उत्तर कुरु प्रदेश भारतीय उपाख्यानोंमें पवित्र और पूर्वजोंका देश माना जाता है। भीष्म पर्वमें इसका विशद वर्णन है। यहाँके लोग शुक्ल (गौरवर्ण) अभिजात, संपन्न, नीरोग और दीर्घजीवी होते हैं। इस प्रदेशका अनुसंधान लगजानेसे मेरुका पता भी चल सकता है। सामश्रमी महोदय लिखते हैं—' अस्ति चान्यः कुरुवर्षः स नूनं मेरुसम्बद्धः।" किंतु, वे उत्तरकुरु को तिब्बत मानते हैं। परन्तु तिब्बत की प्राचीन सीमा आजकलकी शासन—सीमा से निर्दिष्ट नहीं की जा सकती। वर्तमान तिब्बत काश्मीर के द्वारा उसी भूमिसे संलग्न है जिसे हम आगे चलकर बतावेंगे।

युधिष्ठिरके राजसूयमें तंगण देशके निवासियोंने कुछ उपहार दिये थे। ये लोग मेरु और मंदराचलके बीच बहनेवाली शैलोदा-नदीके तटके रहनेवाले थे (सभापर्व ५२ अध्याय)। इधर 'बृहत्संहिता'में तंगण देश वर्तमान कुल्लू के पास ही निर्दिष्ट किया गया है—

"अभिसारदरदतंगणकुलूतसैरिंध्रवनराष्ट्राः"
—(१४—२९)

ग्रीकोंने अभिसार देश (Abissorian) सिंधु और झेलमके बीचमें माना है और काकेशस (हिंदूकुश) पर्वतके पाददेशमें बसनेवाली जातियोंका उल्लेख करते हुए मेगास्थनीज ने शैलोदा (Soleadae) जातिका भी वर्णन किया है। यह शैलोदा-नदी-तटकी जाति है, जिसका वर्णन सभापर्व ५२ अध्यायमें है।

वेंदिदाद फरगर्द १ में पारसियोंकी पवित्र भूमिका वर्णन है। अहुरमज्द कहते हैं—

तीसरी पवित्र भूमि जो मैंने बनायी वह दृढ़ और पवित्र मौरु है* । चौथी अच्छी भूमि उन्नत पताकावाली बख्धी (वाल्हीक) है † । पांचवीं अच्छी भूमि निशय है, जो मौरु और वाल्हीकके बीचमें है ‡ ।

ऊपरके विवरणसे यह स्पष्ट हो जाता है कि मेरु और वाल्हीक (आधुनिक बलख) के बीच 'निशय' प्रदेश था । ऐतरेय ब्राह्मणमें हिमालयके उत्तर दो विराज् प्रदेशोंका साथही वर्णन किया गया है। वे हैं—उत्तर कुरु और उत्तर मद्र । (८—३—१४) । उत्तर शब्दका प्रयोग जो इन देशोंके नाम के साथ आता है उसका तात्पर्य मैं यही समझता हूँ कि ये हिमालयके उत्तरमें हैं, और इसका कारण है—मद्र, कुरु और कोशलका हिमालयके दक्षिणमें भी अस्तित्व—स्यालकोट (शाकल) को मद्रकी राजधानी और अयोध्याको कोशलकी राजधानी कहते हैं । ऐसे ही प्रदेशोंका संगठन सिंधुके उसपार भी था । फारसके एक बड़े अंशको प्राचीन कालमें 'मीडिया' (Media) कहते थे । यह संभवतः उत्तर मद्र था, और अफगानिस्तान तथा फारसका कुछ अंश आरकोशिया (Archotea) कहलाता था । यह उत्तर कोशल था । इसी उत्तर कोशल में हरिरूद (Harirud) सरयूके तटपर वह अयोध्या रही होगी जिसका संकेत, अथर्वके ०-२-३१ मंत्रमें-"अष्टचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या"—से किया गया है । अवेस्ता में कहा है कि छठी पवित्र भूमिधर कुड़ानेवाली सरयू है । इसके नीचे टिप्पणीमें हरयूका प्राचीन पारसीक रूप हरैवा तथा फिरदौसीके अनुसार हरिरूद माना गया है* । हिंदूकुशके पास बलखसे लेकर स्वात और उत्तरी काश्मीरतकके प्रदेशको प्राचीन उत्तर कुरु कहा जासकता है । क्योंकि जिस निशय प्रदेशका वर्णन पारसियोंने किया है उसीका ठीक-ठीक प्रसंग ग्रीकोंके ग्रंथमें भी पाया जाता है ।

सिकंदर जब हिंदूकुश (Indian Caucasus) पर्वतपर पहुँचा तो ग्रीक लोगोंने उसे काकेशसका विजेता माना । वाल्हीकके पास ही भरतके ननिहाल केकयका वर्णन वाल्मीकिमें भी आया है । वह गिरिव्रज हिंदूकुशके खवक या कोहदामन (कोशन)के समीप रहा होगा । कोहदामनका उल्लेख मुगलोंकी चढ़ाईमें भी मिलता है । भरतकी यात्रामें इसीको "सुदामानं च पर्वतं" कहा है । संभवतः केकय देशके समीप होनेसे सिकंदरके साथियोंने उसे काकेशस कहा है । हिंदूकुशसे उतरकर सिकंदरने वर्तमान चारिकाराके समीप 'अलेग्जेंडिया' नामका नगर बसाया । पर्दिकसको सिंधुकी ओर जानेके लिये कहकर स्वयं कुभाकी ओर चला और चित्रालकी घाटीमें पहुँचा, क्रटेरसको कुनारकी घाटी सर करनेकी आज्ञा दी और स्वयं बाजौर पहुचकर मसागा (Messaga)का ध्वसं किया, जो वर्तमान मालकंद गिरिपथके समीप है । फिर उसने निशा प्रदेश और मेरु विजय करनेकी इच्छा प्रगट की ।

* The thrid of the good lands and countries which I, Ahura Mazda, created, was the strong, holy Mouru.—(Darmesteter Vendided, P. 5.)

† The fourth of the good land and countries which I, Ahura Mazda, created, was the beautiful Bakhdhi with high-lifted banners. (The Avestha Vendidad, P. 5.)

‡ The fifth of the good lands aud countries which I, Ahura Mazda, created, was Nisaya that lies between Mouru and Bakhdhi.—(P. 5, Vendidad.)

The tenth of the good lands and couutries which I, Ahura Mazda, created, was the beautiful Harahvaiti.

(Foot note.)—Harahvaiti; Apaxwaia; corrupted into Ar-r-okhag (name of the country in the Arabic literature) and Arghand (in the modern anme of the river Arghond-ab.)—(P. 7. Vendidad.)

वर्तमान स्वात और पंजकोड़के उपरके इस प्रदेशको (Hyperborians) उत्तर कुरुके नामसे ग्रीकोंने निर्दिष्ट किया है। 'ऐतरेयालोचन' में आचार्य्य सत्यव्रत सामश्रमी इसी सुवास्तु (Suvat) को आर्य्योंकी आदिभूमि मानते हैं। "आर्य्यावासस्तदाप्ययं सुवास्तुप्रदेश एवासीत्"—(ऐतरेयालोचन, २४)। इसकी प्रधान नगरी उक्तकालमें भी पारसीकोंद्वारा कथित निशय (Nisaya) नामसे विख्यात थी और इसके समीपके शैलको 'मेरोस' (Meros) कहते थे। इस मेरोस (Meros) या मेरुको अब कोह-मोर कहते हैं। ग्रीकोंने इस विराट् शैलको त्रिश्रृंग कहा है और ऋग्वेदने भी इसे त्रिककुद माना है। विष्णुपुराणमें इसी त्रिककुद्को त्रिकूट नामसे अभिहित किया है। मेरुका वर्णन करते हुए विष्णुपुराणमें लिखा है—

"त्रिकूटः शिशिरश्चैव पतङ्गो रुचकस्तथा।
निषधाद्या दक्षिणतस्तस्य केसरपर्वताः" ॥

तिलकके कथनानुसार मेरु प्रदेश उत्तरीय ध्रुवमें है। परन्तु इस सिद्धान्तको आचार्य सत्यव्रत सामश्रमी और अविनाशचन्द्रदास नहीं मानते। क्योंकि, पारसीलोगोंके ही कथनानुसार अवस्ताके आर्य्यानावायजो (आर्य्यनिवास) में हिमप्रलय होनेपर नायक यम आर्य्योंको लेकर वार प्रदेशकी ओर गये। यह वार प्रदेश उत्तरीय ध्रुवके समीप की साइबीरिया मानी जा सकती है, क्योंकि वहींके लिये अवस्तामें लिखा है—"अहुरमज्दने उत्तर दिया, वहां प्राकृत और अप्राकृत प्रकाश है......कभी-कभी चन्द्र, सूर्य्य और नक्षत्रोंके दर्शन नहीं होते, लम्बी उषामें वर्षभरका एक दिन होता है*।" और इधर 'ऐतरेय" में मिलता है कि कश्यप नामके आदित्य 'महामेरु' नामक पर्वतपर सदा रहकर उसे प्रकाशित करते हैं। इसलिये मेरुप्रदेश वह नहीं हो सकता, जहां छः महीनेका दिन और छः महीनेकी रात होती हो। छः महीनेका दिन और छः महीनेकी रातवाले 'वार' प्रदेश की गणना वह नहीं कर सकता जो उसके पहिले आर्य-निवास वा मेरु प्रदेशके २४घन्टेवाले दिनरातके देशोंमें नहीं रह चुका है।

संसारका इतिहास लिखनेवाले (Hearenshaw) का मत है कि अब तकके प्रमाणोंसे यही कहा जा सकता है कि मध्य एशियामें आदिम मनुष्यकी उत्पत्ति हुई†।

तुलनात्मक शब्दशास्त्रके जन्मदाता (Adelung) एडिलंग, जिनका शरीरांत १८०६में हुआ काश्मीरको मानव जातिका पालना बताते थे और उसीको स्वर्ग समझते थे‡।

जिस सोमका व्यवहार प्राचीन भारतमें होता था, वह काश्मीरके उच्च शिखरोंपर उत्पन्न होता था और इन हरी-भरी गहरी घाटियों तथा उच्च शिखरोंकी भूमिमें आर्य्यलोग ऋग्वेदके मन्त्रोंके संकलन-कालसे भी पहले रहते थे*।

इसलिये देवोंका स्वर्ग तथा पारसीकोंका प्रथम आर्य्य-निवास Ariyana Vaijo) अफगानिस्तान, काश्मीर तथा बलखके बीचकी रमणीय भूमि थी। इसीकी समीपवर्ती शैलमाला तथा उच्च भूमि मेरुके परिवार रूपसे आर्य्य साहित्यमें अत्यंत पवित्र मानी गयी है। लिंग पुराणमें में लिखा है—

मानसोपरि माहेन्द्री प्राच्यां मेरोः स्थिता पुरी।
दक्षिणे भानुपुत्रस्य वरुणस्य तु वारुणे ॥
सौम्ये सोमस्य विपुला तासु दिग्देवताः स्थिताः।
अमरावती संयमिनी सुषा चैव विभा क्रमात् ॥
दक्षिणां प्रक्रमेद्भानुः क्षिप्तेषुरिव धावति।

* There are uncreated lights and creatd lights. The one thing missed there is the sight of the stars, the moon, and the sun and a year seems only as a day.—(Pp. 19 and 20, Vendidad.)

† Regions of Central Asia, and it was there, so far as at present we can tell, that, from among the anthropoids, Primitive Man emerged.—(P. 12.)

‡ Adelung, the father of comparative Philology who died in 1806, placed the cradle of Mankind in the valley of the Cashmere which he identified with Paradise.—(The Origin of Aryans.)

मानसरोवरके ऊपर मेरुके पूर्व महेंन्द्रकी नगरी अमरावती, मेरुके दक्षिण यमकी नगरी संयमिनी, मेरुके पश्चिम में वरुणकी नगरी सुसा (Sussa ?) और मेरुके उत्तर सोमकी नगरी विभा है। मेरुकी प्रदक्षिणा करते हुए सूर्य क्रमसे इन नगरियोंके ऊपरसे जाते हैं।

विष्णुपुराण अध्याय ९ में भी इसी तरहका वर्णन है। छठे श्लोककी टीकामें—'सूर्यः प्रत्यहं मेरुं प्रदक्षिणीकुर्वन्नपि—' इत्यादिसे मेरुकी प्रदक्षिणाका स्पष्ट उल्लेख है। सूर्यके उत्तरायण और दक्षिणायन होनेका यही पौराणिक कारण बतलाया गया है।

श्री शंकराचार्यने—"सयावदादित्य उत्तरत उदेता दक्षिणतोस्तमेता द्विस्तावदूर्ध्व उदेतार्वाङस्तमेता साध्यानामेव तावदाधिपत्यम् स्वाराज्यं पर्येता" । (छांदोग्य ३-१०-४) के भाष्यमें इसका यथाकथंचित् समाधान करते हुए लिखा है—'मानसोत्तरमूर्धनि मेरोः प्रदक्षिणा वृत्तितुल्यत्वात्'' । फिर आगे चलकर लिखते हैं—"सर्वेषां च मेरुरुत्तरतो भवति ।" मानसरोवरके उत्तरमें मेरुकी स्थिति मानकर और सूर्यको उसकी प्रदक्षिणा करते हुए समझकर भी मेरुको सबसे उत्तर माननेकी कल्पना आचार्यको भूगोल-भ्रमण संबंधी नये आविष्कारोंके कारण हुई होगी । किन्तु जब सबसे उत्तरमें मेरु है तो फिर ऊपरके प्राचीन पौराणिकोंके विचारानुसार उक्त मेरुके भी सौम्य अर्थात् उत्तरमें सोमकी नगरी विभा कहां होगी ? किन्तु आचार्यने स्वयं इस सिद्धांत में विरोध देखा और इसीके परिहारके लिये उन्होंने स्पष्ट चेष्टा भी की "अत्रोक्तः परिहार आचार्यैः ।" किन्तु इस उपनिषद्, पुराण और ज्योतिष-संबंधी विरोधका स्पष्ट समन्वय नहीं किया जा सका ।

ऐसा प्रतीत होता है कि पृथ्वीका अपने अक्षोंपर भ्रमण सिद्ध करनेवाले नवीन सिद्धांतके साथ सूर्यकी मेरु-प्रदक्षिणावाले प्राचीन विचारका सामंजस्य स्थिर करनेके लिये सुमेरु और कुमेरुकी कल्पना पीछेसे की गयी है। क्योंकि, पूर्व-कालमें ऐसा माना जाता था कि पृथ्वी अचला है और उसके मध्यमें कनक-पर्वत मेरु है तथा सूर्य उस देवभूमि स्वर्गकी प्रदक्षिणा करते हैं। मानसके उत्तरमें मेरुका निर्देश करके उसकी चारों दिशाओंमें इन्द्र, यम, वरुण और चंद्रकी चार नगरियां मानते थे । सूर्य मेरुके चारों ओर दक्षिणावर्त्त घूमते हुए इन्हीं नगरियों परसे होते हुए परिक्रमा करते हैं। इसी विचारसे विष्णुपुराणमें लिखा है कि जंबूद्वीपके बीचोंबीच मेरु पर्वत है—

जंबूद्वीपः समस्तानामेतेषां मध्यसंस्थितः ।
तस्यापि मेरुर्मैत्रेय मध्ये कनकपर्वतः ॥
भारतं प्रथमं वर्षं ततः किंपुरुषं स्मृतम् ।
हरिवर्षं तथैवान्यं मेरोर्दक्षिणतो द्विज ॥
रम्यकं चोत्तरे वर्षं तस्यैवानुहिरण्यकम् ।
उत्तराः कुरवश्चैव यथा वै भारते तथा ॥

मेरुके समीप दक्षिणमें प्रथम भारतवर्ष है, उसीके पास किंपुरुष है । महाभारतके अनुसार किंपुरुषवर्ष यमुनाके उद्गमके पास है । इसी प्रकार पश्चिम और उत्तरके वर्षों का भी वर्णन है । उत्तरकुरु आदि मेरुसे संलग्न हैं ।

अवगाढा उभयतः समुद्रौ पूर्वपश्चिमौ ।
जंबूद्वीपे महाराज षडिमे कुलपर्वताः ॥
हिमवान्, हेमकूटश्च, निषधो, नील एव च ।
मेरुश्च शृंगवांश्चैव सर्वे रत्नाकराः शुभाः ॥
देवः स्वां नगरीं नित्यं मानसोत्तरमूर्धनि ।
मेरुं तु पश्यति विभुस्तत्स्थो मेरुगतां पुरीम् ॥
उदक्शृंगवतोर्धे तु याम्येन कुरुसंज्ञितम् ।
वर्षं कथितं दिव्यं सर्वोपद्रववर्जितम् ॥

ऊपरके अवतरणोंसे प्रमाणित होता है कि मेरु और उत्तर कुरुका ठीक वैसा ही सम्बन्ध है जैसा कि यूनानियोंने मेरु विजय निशा प्रदेश और 'हाइपर बोरियन्स' (Hyper-

* The Some used in India certainly grew on mountains, probably in the Himalyan highlands of Cashmere. It is certain that Aryan tribes dwelt in this land of tall summits of deep-valleys in very early times. Probably earlier than that when the Rig-hymns were oded or collected. Ragozin 170 V. India.

borian)के प्रसंगमें लिखा है। इसी मेरुके सम्बन्धमें असुरों और देवोंके युद्धका वर्णन है। ग्रीकोंने भी इसी प्रदेश को देखकर कहा था कि पिता दानवेश (Dainesus) ने एक वार स्वर्ग विजय किया था, अब दूसरी बार सिकन्दरने किया। यह कोहमोर वैदिक त्रिककुद और पौराणिक त्रिकूट का एक श्रृंग है। त्रिकूटके ये तीनों उच्च श्रृंग पेशावरसे ही दिखाई देते हैं। यहींपर स्वर्ग-सुखका आनन्द लेनेके लिये सिकन्दरने दस दिन बड़ा भारी महोत्सव मनाया था। उक्त प्रदेशकी निसर्ग-रमणीयताका उल्लेख करके यूनानियोंने बड़े उल्लाससे कहा था कि सचमुच यही पृथ्वीका स्वर्ग है।

तैरनेकी कला और व्यायाम

[श्री हरीदास माणिक]

अब हमें देखना है कि डूबते हुए व्यक्तिको किस प्रकार बचाना चाहिये।

१–जब तुम किसी मनुष्यको पानीमें डूबते हुए देखो, जोर से चिल्ला कर उसको ढाढ़स दो कि घबराओ मत मैं आता हूं।

२–पानीमें कूदनेके पहिले जहाँतक हो सके अपने कपड़ोंको उतारकर फेंक दो। यहाँतक कि धोती दुपट्टा अंगोछा वगैरः कसकर कमरमें बाँध लो। अगर पाजामा पहिने हो तो उपर चढ़ा लो। नहीं तो थैला में पानी भर जायगा, और पैर भारी हो जायेंगे। पानी भर जानेसे पैरका हिलाना कठिन हो जाता है। कपड़ाके उतारनेमें बड़ी फुर्ती करनी चाहिये यदि कपड़े न उतार सके तो उसे चाकू या कैंचीसे चीर कर फेंक देना चाहिये, क्योंकि कपड़ोंकी अपेक्षा किसी की जान बचाना श्रेष्ठ है।

३–नदी या तालाबमें डूबते हुए मनुष्यको बचानेके लिये (जब कि वह पानीमें छटपटा रहा हो) एक दम उसके पास नहीं चले जाना चाहिये और न छटपटाता ही उसको पकड़ ले। ज़रा देरके लिये उससे दूर रहो। जब वह कुछ पानी पी लेगा उसका छटपटाना बन्द हो जायगा। यही समय उसके पकड़ने का है। यदि इसके पहिले तुम उसको पकड़ते हो तो तुमको वह इस तरह पकड़ लेगा कि शायद तुम भी उसके साथ ही साथ डूब जावोगे, और यदि तुम नहीं जानते कि तुम्हें उस समय कैसे छुड़ाना चाहिये तो तुम दोनों डूब जाओगे।

४–अब उसके पास पीछेसे पहुंच जाओ। उसके सिरके बालोंको पकड़कर जोरसे खींचकर उसको पीठके बल कर दो। इस समय एक धक्का पीछेकी ओर देनेसे वह चित्त उतराने लगेगा। अब स्वयं भी पीठके बल तैरने लगो। ऐसी अवस्थामें दोनों आदमी पीठके बल तैरने लगोगे। डूबते हुए मनुष्यका सिर तुम्हारी छातीपर होगा अब किनारेकी ओर आओ। परन्तु इस बातपर भी ध्यान रखना चाहिये कि पानीका बहाव जिस तरफ़ हो उसी ओर तैरकर घाट पर लगना चाहिये। बहावकी ओर तैरनेमें बड़ा सुभीता होता है। इस नियमको पालन करनेमें तुम तटपर जल्दी पहुंच जाओगे और ज्यादा थकोगे भी नहीं। इस कायदेसे तैरनेमें सबसे बड़ी मदद यह मिलती है कि बचने और बचानेवाले दोनोंके सिर ऊपरकी ओर रहते हैं इससे सांस लेनेमें बड़ी आसानी पड़ती है। सबसे मोटी बात इसमें ध्यान देनेकी यह है कि डूबते हुए मनुष्य का सिर केश या गरदन पकड़कर उठाओ और दोनों आदमी पीठके बल हो जावो। बड़े बड़े तैरनेवालोंकी राय है कि सबसे अच्छा तरीका डूबते हुए मनुष्योंके बचानेका यही है, जैसा कि ऊपर बयान किया गया है, इस कायदे से तुम बहुत देरतक तैर सकते हो और इस अरसेमें सम्भव है कि कोई नाव, रस्सी या तुम्बीकी मदद पहुंच जाय।

५–बहुतसे लोगोंका ख्याल है कि डूबता हुआ आदमी इस तरह पकड़ लेता है कि बचानेवाला भी डूब जाता है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि अनाड़ी बचानेवाला

स्वयं भी डूब मरता है। परन्तु इस बातपर विश्वास रखना चाहिये कि ज्यों ज्यों डूबनेवाला पानी पी जाता है वह बेहोश होता जाता है और फिर उसके हाथ पांव ढीले पड़ जाते हैं, परन्तु बचानेवाला यदि डरपोक हो भूत प्रेतादिसे डरता हो तो उसकी भी मृत्यु हो जाती है। डूबा हुआ मनुष्य तुम्हें देरतक पानीमें थामे हुए बैठा नहीं रह सकता।

६—यदि कोई मनुष्य डूब गया हो और उसका पता न लगता हो तो जिस जगहपर बबूले (बुल्ले) निकलते हों वहीं पर उसको डूबा हुआ जानना। अगर वहां पर बहाव तेज हो तो बहावको समझ ढूंढ़नेके लिये डुबकी मारे। इन बबूलोंके सहारेसे कितने डूबते हुए लोग बचा लिये गये हैं।

७—यदि कोई आदमी डूबकर बहुत नीचे चला जाय तो बचानेवालेको चाहिये कि आंख खोलकर डुबकी मारे और दोनों हाथों से टटोलकर लाशको तलाश करे लाश मिलने पर एक हाथ से उसके सिर के बाल पकड़े और दूसरे हाथ और अपने पैरों के सहारेसे तैरता हुआ ऊपर उठे। समुद्र में यदि ज्वार हो अथवा नदीमें बहाव तेज हो तो कभी बहावके विरुद्ध नहीं तैरना चाहिये क्योंकि धाराके विरुद्ध तैरना योंही कठिन होता है फिर एक दूसरे आदमीको खींचकर लाना और भी कठिन है। जिधर बहाव हो उसी तरफ धीरे-धीरे बहता जाय सम्भव है कि कोई नाव आकर तुमको उठाले या तुम किसी घाटपर लगजाओ। जो लोग कि धाराके विरुद्ध तैरते हैं अकसर तीरपर पहुंचने के पहिले ही थककर डूब जाते हैं। इसलिये नदीकी धारा के अनुकूल तैरना चाहिये। ऊपरकी सब बातें समुद्र नदी तालाब वा पानीकी सभी जगहोंमें उपयोगी है।

८—डूबते हुए आदमीको बचाने के लिये पीठके बल तैरना जानना जरूरी है। अगर तैरनेवाला उलटा तैरना नहीं जानता हो तो उसको कभी भी अकेले बचानेके लिये नहीं जाना चाहिये। दोके साथ जाय और टाँगकी ओर मदद दे।

९—यदि तैरनेवाला "खड़ी" लगाना जान जाय तो वह दो डूबते हुए मनुष्योंको भी आसानीसे बचा सकता है। "खड़ी" खड़े तैरनेको कहते हैं जिसमें छाती ऊपर रहती है। पैर गोलाईसे एक के बाद दूसरा पानीके भीतर चलता रहता है। अभ्यास रोज करना चाहिये।

डूबे हुएको जिलाना।

कहावत है कि साँपके पकड़नेवालेकी मृत्यु प्रायः साँपके काटनेसे ही होती है। उसी तरह तैराकोंकी मौत भी प्रायः पानीमें ही होती है। इटाली देशमें मैनुएल नामी बड़ा भारी तैराक था। वह प्रायः तैराही करता था। उसे लोग जलजन्तु कहा करते थे। एक दिन इटली नरेश ने स्वयं उसकी तैराकी देखनी चाही और कहा झीलभर में एकी लाल मछली है उसे पकड़ लाओ। विचारा मैनुएल उस मछलीको पकड़नेके लिये पानीमें घुसा, मछली भी अपने जीवनके भयसे एक घासके झुण्डमें घुस गयी मैनुएल भी वहीं घुसा। अन्तमें मैनुएल इतना नीचे घुस गया कि संयोगसे उसकी टाँग एक झाड़ीमें इस प्रकार फँस गयी कि वह फिर न निकल सका। सारी दर्शक मण्डली इस लिये बाहर घंटों खड़ी रही कि वह मैनुएलको देखे लेकिन विचारा मैनुएल सुरपुर चल बसा था। सशोक चित्त हो राजा तथा मंडली लौट गयी।

इसी प्रकार की हजारों घटनाएं होती रहती हैं। अब हमें उन तरीकों पर विचार करना है कि जिनसे पानीमें डूबा हुआ आदमी बाहर लाये जाने पर जीवित किया जा सकता है। मैं कुछ ऐसे तरीकोंको बतलाऊंगा जिनसे १५–२० मिनटका डूबा हुआ व्यक्ति भी जीवित हो सकता है। आप हँसी-हँसीमें तत्काल डूबी हुई मक्खीको हाथमें लेकर उसे धीरे-धीरे गर्म करिये, थोड़ी देरमें देखियेगा कि मक्खी उड़कर अन्यत्र कहीं चली जायगी। इससे हमें यह सबक सीखना है कि डूबे हुए व्यक्तिके ठंडे शरीरमें किसी प्रकार की कुछ गर्मी पहुंचानी चाहिये।

सबसे पहला उपाय जो हमें करना चाहिये वह यह है कि डूबे हुए व्यक्तिकी स्वांसा शीघ्र चलने लगे फिर रुधिर संचार और शरीरकी गरमाहटपर विशेष ध्यान दें। डूबे हुए व्यक्तिके कपड़ों को फौरन उतार कर फेंक दे। मुंहमें पानी झाग या कंकड़ी इत्यादि चलीगयी हो उसे अंगुली डालकर फौरन निकाल दे। शरीरसे जल निकालनेके लिये डूबे हुए मनुष्यको उलटा करके लेटा दे। उसकी छातीके नीचे उस समय जो कुछ मिले रख दे। तकिया सबसे अच्छा होता है। उसकी एक हाथकी कलाईपर उसका सिर रख दे। उसके मुख नाक इत्यादिको जमीनसे न

लगने दे, उसकी पीठका तीन चार बार, चार पाँच सेकंड तक दबावे फिर उलटा लेटाकर उसके पेटके नीचे हिस्सेमें दबावे। इससे पेटके भीतर का सारा जल निकल जायगा।

यदि डूबा हुआ व्यक्ति अधिक उमर का हो, शरीर अधिक मोटा ताज़ा हो, तो उसे अच्छा करनेमें और भी किसीकी मदद लेनी पड़ेगी। शुद्ध हवाका विशेष ध्यान रखना चाहिये। यदि उलटा करते समय जीभ न निकले तो उसे पकड़कर निकाल लेना चाहिये और सम्हालकर पकड़े रहे। यदि उपरोक्त उपायोंसे श्वास चलने लगे तो फिर शरीरमें गर्मी भी धीरे-धीरे आजायगी। यदि श्वांस न चले तो नाकमें बत्तीका प्रयोग करे। छींक आनेसे सम्भव है कुछ पानीके निकलनेमें भी सुभीता हो और श्वास भी चलने लग जाय।

उसके मुख, छाती और हाथोंको गरम करे। हो सके तो तलवा भी गरमादे। यदि एकबार गर्म और एकबार ठंडे जल का छींटा शरीरभरमें दें तो अच्छा होता है। यदि चार पांच मिनटके भीतर कुछ लाभ न मालूम पड़े तो नीचे लिखे हुए तरीकोंका प्रयोग करे।

"अमरीकन फिजीकल कलचर"में एक स्थानपर लिखा है कि तात्कालिक चिकित्सा द्वारा डूबा हुआ मनुष्य यदि साधारण तैराकसे जीवित न हो तो उसे एक और विधीसे जीवित करनेका प्रयत्न करें।

डूबे हुए व्यक्तिको उलटा लिटाकर उसके पेट व पसुलियोंके नीचे कपड़ा या और किसी चीजका तकिया बनाकर रखदे। फिर उसे ऐसा सुलावे कि पीठका कुछ भाग जमीन से छूता रहे। इस प्रकार करवट और उलटा करे। उलटा करनेसे शरीरकी हवा बाहर निकलती है। और करवटसे बाहरकी हवा शरीरके भीतर प्रवेश करती है। एक आदमी केवल उसके सिर को घुमाते और उलटा करते समय एक हाथ मस्तकके नीचे लगानेके लिये हो। थोड़ी देरमें गरम वस्त्र से ढाँककर सूखा कपड़ा पहिना दें।

इतनी क्रिया हो जानेपर हाथ पैरके गरम करनेपर विशेष ध्यान दें। यदि इससे भी चार पाँच मिनटके भीतर श्वास न चले तो और भी तरीका इस्तेमालमें लावे। इस तरीकेमें कमसेकम तीन आदमी चाहियें।

डूबे हुए व्यक्तिको समथर भूमिमें चित्त लेटा दे। सिर और कंधेके नीचे तकिया लगादे। जीभको एक आदमी सावधानीसे पकड़े रहे। चित्त सुलानेमें जीभका पकड़ना जरूरी है। दूसरा आदमी दोनों हाथ पकड़कर, जरा ऊपरसे लाकर रोगीके सिरसे मिलादे। पसली ऊपर उठ जानेके कारण छाती हलकी हो जाती है। इससे हवा शरीरके भीतर प्रवेश करती है। रोगीके हाथोंको उसके सिरसे दो तीन सेकंड लगाये रखे। फिर नीचे लाकर और छातीकी ओर सटावे और दो तीन सेंकड दबाता रहे। इससे छातीकी हवा बाहर निकलती है। इससे रोगी अवश्य ही सांस लेने लग जायगा। पर एक बातपर विशेष ध्यान रखे कि जबतक रोगी अपने आप श्वास न लेने लग जाय तबतक इस क्रिया को बराबर जारी रखे। कितने ही लोग, तीन चार घंटेके बाद श्वास लेने लगे हैं।

यह विधि कुछ कठिन है और अकेले करना भी असम्भव है पर अपनी निगरानी में एक अजान आदमीसे भी स्काउट या प्रारम्भिक चिकित्सा जानने वाला काम करा सकता है यदि दो आदमी थक जांय तो दूसरे दो आदमी लग जांय। इसी प्रकार बराबर क्रिया जारी रहे। जब अपने आप श्वास आने-जाने लगे तब इन बनावटी उपायोंको छोड़ दे। गरम और ठंडा जल बारी-बारी मुखपर छिड़कता जाय।

जब श्वास चलने लग जाय तब हाथ पैर इत्यादि अंगपर सोंठ जायफल इत्यादि पीसकर लगावे। रोगीके समस्त शरीरको कपड़ेसे ढककर उसे बराबर मलता जाय। शरीरको बराबर मलते रहनेसे खून आसानीसे हृदयकी ओर दौड़ता है। इससे रोगीको नीरोग होनेमें विशेष सुभीता पड़ता है।

पेटके ऊपरी भागपर, दोनों बगलोंमें पावोंके तलुओंके ऊपर तथा दोनों तलुओंके बीचमें गरम जलसे सेंकें। हो सके तो बोतल गरम ईंट या बालूसे भी सेक सकते हैं।

इस प्रकार जब रोगीके शरीरमें काफी गरमी पहुँच जाय और वह गलेसे कुछ अपने आप उतारने लगे तब उसे दो तीन चम्मच गरम जल पिलावे। जलके उतर जानेके बाद गरम चाय बादाम, दूध इत्यादि दे। इन सब क्रियाओं के बाद रोगी को मुलायम बिछौनेपर सुलानेका प्रयत्न करें। अगर नींद आजाय तो इससे बढ़कर और क्या औषधि है। पर कभी-कभी इतनी क्रिया होनेपर भी श्वांस रुक जाती

है। उस समय राई या अलसी की पुलटिस छातीपर बांधे। यदि श्वास रुके तो फिर पहिलेकी विधिको काममें लावे।

बहुतसे लोग "नीचे सिर ऊपर टांग"की विधिका प्रयोग करते हैं। यह बिधि ठीक नहीं है। इससे कभी-कभी रुधिर सिरमें चढ़ जाता है और बड़ीही विकट समस्या उपस्थित हो जाती है।

जबतक श्वास चलने न लग जाय तबतक शरीरमें गरमी लानेका प्रयत्न नही करना चाहिये। जबतक रोगी अपने-आप न निगल सके तबतक उसे खानेके वास्ते भी कुछ नहीं देना चाहिये। इस प्रकार हजारों लोग बचाये जा सकते हैं।

नावका डूबना

नावके डूबनेका दृश्य और भी भयंकर होता है। जिस समय नाव डूबती है उस समय वह अपने आस-पासके जलको बड़ीही तेजीसे खींचती है। उस समय अगर कूदनेवाला होशियार हुआ तबतो उसके प्राण बच जाते हैं। अन्यथा बड़े-बड़े तैराक भी नावकी डुबाईमें डूब मरते हैं। नावपरसे कूदते समय कभी भी बीचसे न कूदे। ऐसा करनेसे नाव अपने ऊपर आजाती है। हमेशा नावके पिछले हिस्सेसे कूदे। ऐसा करनेसे नाव ऊपर नहीं आ सकती।
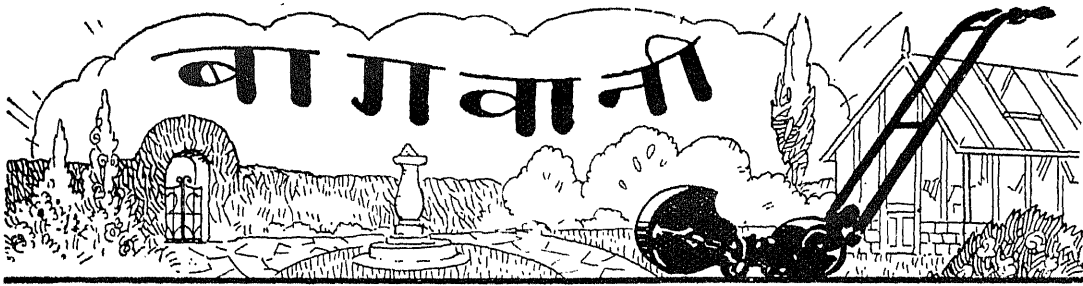
हरियाली-लान

हरे घासके मैदानको हरियाली कहते हैं। बिना हरियालीके बागकी शोभा नहीं रहती। बड़ी न होसके तो छोटीही सही, दस पाँच चटाई भरकी हरियालीभी बागमें जान डाल देगी, घास कई तरहकी होती हैं, लेकिन हरियालीमें दूबही लगायी जाती है, दूब प्रायः सभी जगह भारतवर्षमें उत्पन्न होती है। और यह पौधा ऐसा बलिष्ट होता है कि ईटोंके कोने अंतरोंमें जहाँ-कहींभी इसे थोड़ीसी जगह मिल जाती है यह लग जाता है। अपने शाख़ चारों ओर यह दौड़ाया करता है, शाख़ोंके प्रत्येक गांठ से जड़ें निकल आती हैं। सब कुछ होते हुएभी हरियालीमें विशेष सावधानीके साथ दूबकी सेवा करनी पड़ती है, नहीं तो मख़मलके समान नर्म और घाससे हरीभरी हरियाली नहीं बनी रह सकती।

ख़ुदाई—हरियाली लगानेके लिये पहली आवश्यक बात यह है कि ज़मीनकी खूब खुदाईकी जाय। बिलोयी ज़मीनोंको कमसेकम एक फुट गहरा और चिकनी मिट्टी वालोंको दो फुट गहरा ज़रूर खोदना चाहिये। गर्मीके मौसम (मार्च अप्रैल या मईमें) खुदाई करना ठीक है. बड़े-बड़े ढेले मट्टीके होजायें बस इतनाही काफ़ी है। मिट्टीको चूर करनेकी कोई जरूरत नही। इसी तरह महीने दो महीने बरसाततक पड़े रहनेपर एकतो वे जंगली पौधे जल जाते हैं जो पीछे घासको दबा देते हैं। दूसरे मिट्टीके भुरभुरीहो जानेसे घास आसानीसे पैदा हो सकती है, फिर रोशनीके लगनेसे ऐसा सोचा जाता है कि उपयोगी खादकी मात्रा बढ़जाती है, गहरी खुदाई करनेके लिये एक तरीक़ा यह है कि ज़मीनकी खुदाई चार फुट चौड़ी पट्टियोंमें कीजाय। ज़मीनमें एक सिरेपर चार फुट लम्बी दो फुट चौड़ी जगहमें से मिट्टी काटकर अलग रखदेनी चाहिये। जब यह काफ़ी

गहरा, एक या दोफुट, होजाय तब सामनेकी मिट्टीको काट-कर इस गढ़ेमें खींच लेना चाहिये। इस प्रकार ज़मीनको खोदते हुए आगे बढ़ना चाहिये। अन्तमें जो गढ़ा बचजायगा उसमें पहली निकाली हुई मिट्टी छोड़ देनी चाहिये, पहली बार ज़ोरसे पानीके बरसनेके दो चार दिन बाद, जब मिट्टी गीली तो न रहे केवल नमभर रहे तब, फ़ावड़ेसे ज़मीनको चौरस करडालना चाहिये। और इसपर हल्का बेलन दौड़ा देना चाहिये।

आँखसे जहाँतक चौरस होसके वहाँतक चौरस करने के बाद किसी राजको बुलाकर चौरसाईकी जांच करानी चाहिये. राजलोग अपनी गुनियों और साहुलसे चौरसाईकी सच्ची जांच कर सकते हैं, गुनिया जितनीही बड़ी हो उतना ही अच्छा है, जब राज चारों कोनेकी चौरसाई ठीक कर दे और बीचमें भी दो चार रेखाओंकी चौरसाई ठीक करदे तो इन्हीं चौरस किये विन्दुओं और रेखाओंके सहारे सारी ज़मीनको चौरसकर डालना चाहिये। यह बात छोटी जमीनों के लिये लिखी गयी है, अगर कई सौ गज़ ज़मीन हो और कोई उसे ऊंची नीची और ढालूही रखना चाहे तो वहभी अच्छा रहेगा। लेकिन कहींभी ढाल इतनी अधिक न हो कि पानी ज़ोरसे बहे और वहाँकी मिट्टी कट जाय।

ज़मीनको चौरस करनेके लिये ऊँची जगहोंसे मिट्टी काट कर नीची जगहोंमें डालदेनी चाहिये। इस प्रकार खूब गहरी खुदाई करके घास लगानेपर पांच छः वर्षके लिये छुट्टी मिल जायगी।

बोआई—घास बीजसे भी उगायी जासकती है और घाससे भी। सुविधा घासहीसे उगानेमें होती है। जब पानी बरसनेकी उम्मेद हो तब घास मंगवाना चाहिये।

किसी अच्छी जगहसे दूब छिलवाकर मंगवा लेना चाहिये। घसियारे इस कामको पैसे पानेपर खुशीसे करदेंगे। उनको कुछ पैसे अधिक देकर इस बातका आदेश करदेना चाहिये कि दूबके सिवाय और कोई जंगली पौधे दूबके साथ न छील लायें। अगर दूबके साथ दूसरे पौधे भी हों जैसे मोथा, दूधिया तो इन सबोंको बीनकर निकलवा देना चाहिये। इस दूब को ज़मीनपर छिड़क देना चाहिये जिससे ज़मीन क़रीब-क़रीब ढक जाये। बहुत मोटी तह बिछानेकी ज़रूरत नहीं है। घास को छोटे-छोटे टुकड़ोंमें भी काटनेकी ज़रूरत नहीं है। घासके ऊपर अब मिट्टी छिड़क देनी चाहिये। यह मिट्टी भुरभुरी हो। अगर मिट्टी ऐसी हो कि पानी पड़नेसे इसके बंध जानेका भय हो तो इसमें काफ़ी बालू मिला देना अच्छा होगा। इस मिट्टीमें खाद थोड़ीसी ही हो। अधिक खाद रहनेसे घासके सड़ जानेका डर रहेगा। पुराने गोबरकी खाद अच्छी है। परन्तु मिट्टी और खादको खूब मिलानेके बाद तारकी जालीसे छान लेना अच्छा है। घासमें मिट्टी छिड़कनेके लिये मज़दूर मिट्टीको अपने सरपर उठाकर इस प्रकार नचाकर फेंकता है कि मिट्टी कई फ़ुटतक बिखरकर एक समान आ गिरती है, अगर मिट्टी ऊंची नीची गिरीहो तो लकड़ी या बांसकी फल्टीसे इसे चौरसकर देना अच्छा होगा। अगर पानी इसके बाद इतनी ज़ोरसे बरसे कि मिट्टी बहजाय तो एकबार फिर थोड़ी-थोड़ी मिट्टी छिड़कवा देनी चाहिये। या अगर पानी चार पांच दिन तक बरसे ही नहीं तो थोड़ा पानी छिड़कवा देना चाहिये, नहीं तो घास सूख कर जल जायगी।

जब घास क़रीब दो तीन इञ्च बढ़जाय तब इस पर पुराने गोबरका खाद और मिट्टी आधा-आधा लेकर अच्छी तरह मिलाकर और चालकर छिड़कना चाहिये, पचास वर्ग ज़मीन पीछे एक गाड़ी खाद ज़रूर होनी चाहिये।

कटाई—जब घास क़रीब ६ इञ्च बड़ी होजाय (इसमें क़रीब १½ महीनें लगेंगे) तब इसको हंसिये या झावासे काटना चाहिये। अभी घासकी जड़ें इतनी मज़बूत नहीं हैं कि मशीनसे घास काटी जासके। मशीन चलानेसे बहुतसी घास जड़से ही उखड़ आयेगी। दो या तीन बार इस प्रकार झाबेसे काट लेनेके बाद घासपर मशीन चलानेमें कोई हर्ज न होगा। लेकिन मशीन चलानेके पहले घासपर बेलन चला देना चाहिये। बेलन अगर पत्थरका हो तो एक फुटके क़रीब इसका व्यास हो। भारी बेलन चलानेसे ज़मीन बहुत कड़ी होजायगी और घास बढ़ियां न हो सकेगी। बेलन न चलाने में ज़मीन इतनी पोली होगी कि उसपर घास काटनेकी मशीन न चल सकेगी और जहां लोग इसपर पैर रखेंगे वहां गड्ढे बन जायेंगे।

सेवा—ऊपरकी तरह घास लगजानेके बाद निम्न लिखित काम बराबर जारी रखना चाहिये।

१—निराई—आधे इञ्च चौड़ी खुर्पीसे सब जंगली

घास और पौधोंको जड़से उखाड़कर फेंकना चाहिये । बांये हाथसे पौधेको पकड़कर दाहने हाथसे खुर्पीको इतना नीचे धंसाना चाहिये कि पौधा जड़से कटजाय । ज्योंही जंगली पौधे दिखाई पड़ें त्योंही उनको निकाल बाहर करना चाहिये देर करनेसे इन पौधोंके बीज बन जाते हैं जो बढ़कर नये पौधे पैदा करते हैं और तब उनको निकाल बाहर करना कठिन हो जाता है, खास करके दूधिया नामक पौधा तो थोड़ेही दिनमें फूलने और बीज देने लगता है, और एक-एक पौधेसे हजार-हजार बीज पैदा होते हैं । इसलिये ज्योंही यह दिखाई पड़े त्योंही उखाड़ देना चाहिये । नहीं तो जब यह एकबार हरियालीमें ज़ोर पकड़लेंगे तब उनका निकाल बाहर करना कठिन हो जायेगा । इसी तरहसे मोथासे भी सावधान रहना चाहिये । मोथाकी पत्तियां लम्बी और नन्हीं-नन्हीं तलवारकी तरह होती हैं, इसकी जड़में छोटे-छोटे कन्द होते हैं जिससे जड़ कटजानेपर भी यह फिरसे पैदा हो जाता है । इसलिये मोथेको कन्दके साथ निकाल बाहर करना चाहिये, ढेलों ठीकरों इत्यादिको भी निकाल देना चाहिये नहीं तो यह घासकी मशीनको खराब कर डालेंगे।

२-कटाई—पहले दो तीनबार झावेसे कटवानेके बाद घासको बराबर घास काटनेकी मशीनसे काटना चाहिये, ज्योंही घास एक इन्चसे ज्यादा बड़ी होजाय त्योंही एक-बार फिर मशीन चला देनी चाहिये, इस प्रकार बराबर मशीनसे कटते रहनेपर घास ऊपर बढ़नेके बदले अगल बगल बढ़ती है, और खूब घनी होजाती है, जिससे हरियाली मखमलसी जान पड़ती है । कुछलोग घासके बड़े हो जाने पर ही चलाते हैं । इसका नतीजा यह होता है कि घासके कट जानेके बाद पत्तियां जो ऊपर हैं ऊपरही रहती हैं । सब कटजाती हैं और फिर डन्ठलही डन्ठल दिखाई देते हैं । जिससे हरियाली हरी रहनेके बदले बदसूरत दिखाई पड़ती है ।

फिर दुबारा जब बरसात आये तब घासको दो महीने तक यदि मशीनसे न काटा जाय और केवल झावेसे तीन-तीन चार-चार सप्ताहके बाद काटा जायतो अच्छा है । बात यह है कि बरसातही घास बढ़नेके दिन हैं और जबतक पत्तियां न बढ़ने पायेंगी तबतक जड़ें भी न बढ़ेंगी ।

३-बेलन करना—कुछ लोगोंका कहना है कि जितनी बार घासको मशीनसे काटना हो उतनीही बार हरियालीपर बेलन भी चलाना चाहिये । उनका कहना है कि बेलन चलाने से ठीकरे इत्यादि ज़मीनमें दबजाते हैं जिससे घास काटनेकी मशीन ख़राब नहीं होती और फिर घासभी मिट्टीमें दब जाती है, जिससे इसमें नयी जड़ें निकल आती हैं । परन्तु मेरी राय यह है कि महीनेमें एकबार बेलन करना काफ़ी है। घासको तोशायद महीनेमें पांच या छै बार काटना पड़ेगा मशीनको इस तरह सही करना चाहिये कि यह घासको खूब जड़ बैठाकर काटे जिसमें कटनेके बाद वे आधे इन्च या पौन इन्चसे बड़े न रह जायें । मिट्टी जब गीली रहे तब कभी भूलके भी बेलन न करना चाहिये । नहींतो मिट्टी बंध जायगी और हरियाली सब चौपट होजायगी ।

४-सिंचाई—घासको फव्वारेसे सींचनेके बदले उसे खूब तर करना चाहिये । अगर रोज़ थोड़ासा पानी घासपर छिड़का जायगातो जड़ें सब ज़मीनके पासही रहेंगी और जिस दिन पानी नहीं दिया जायगा उसदिन घासको बहुत नुक़सान पहुंचेगा । दो या तीन दिन पानी न मिलनेसे घास जल जायगी । इससे अच्छा यह है कि घासको जब पानी दिया-तब खूब तर कर दियाजाय और फिर उसे कई दिनोंतक न सींचा जाय । जेठ बैसाखके दिनोंमें विलोयी ज़मीनोंमें तीसरे चौथे दिन और अच्छी ज़मीनोंमें हर सातवें दिन सींचना काफ़ी होगा । जाड़ेके दिनोंमें दो सप्ताहमें केवल एकबार सींचना काफ़ी होगा । अगर म्यूनिसपिल्टीसे पानी काफ़ी मिल सके तो बात दूसरी है । नहीं तो कुंएसे पानी पुरसे सिंचवाना चाहिये । या कुंएमें बिजलीका पम्प लगाना चाहिये ।

५-खुरपियाना—जैसे सब पेड़ोंकी-जड़ोंको हवा की ज़रूरत पड़ती है इसी तरह घासकी जड़ोंको भी । लेकिन जैसे और पौधोंके पासकी मिट्टीको खुर्पीसे पोली कियाजाता है उसी तरह हरियालीकी मिट्टीको पोली नहीं करसकते । क्योंकि खुर्पी चलानेसे घासकी जड़ें कट जायगी । इसकेलिये नोकीली चीज़को तीन चार इन्चतक तिरछे मिट्टीमें डालकर ज़रासा दबानेसे मिट्टी पोली की जासकती है, इसकेलिये पांच नोक किये हुये पंजे (फ़ौर्क) बाज़ारमें बिकते हैं । इनके बदले एक फुट लम्बी ९ इन्च चौड़ी और १॥ इन्च मोटी लकड़ीमें अगर तीन इन्चकी कीलें इस प्रकार जड़ दी जायं कि नोकें दूसरी ओर १॥ इन्च बाहर निकली रहें औसरह

लकड़ीमें एक बेंट (मुठिया) लगा दी जायतो लकड़ीको ज़मीनपर खड़ी पटकनेसे कीलें ज़मीनमें धंस जायंगी। और मिट्टी कुछ पोली हो जायगी। इसके बदले कुछलोग लोहेके खुरेरेसे घासको खरोंचते हैं। इसलिये मिट्टी ¼ इञ्चकी गहराई तक पोली होजाती है। गवर्मेंट गार्डनके सुपरिन्टेडेन्ट मिस्टर शेरार्डस्मिथका कहना है कि इस क्रियासे घासको वही लाभ होता है जो मनुष्योंको बालमें कंघी करनेसे। लोहे के खुरेरे इस कामके लिये बनेबनाये बिकते हैं औरवे आसानी से बनाये भी जासकते हैं। महीनेंमें केवल एकबार खुर्पियाना काफ़ी होगा।

६–चौरसाई—बरसातमें खूब पानी बरसनेसे या हरियालीपर खेलने कूदनेसे ज़मीन ऊंची नीची होजाती है। हमेशा नीची ज़मीनोंमें मिट्टी छोड़ते रहना चाहिये। इस तरहसे हरियाली हमेशा चौरस बनी रहेगी। घास मिट्टीके नीचेसे जल्दही ऊपर निकल आयेगी। लेकिन मिट्टी चिकनी नहो यह खाद मिली हुई बिलोई मिट्टी रहे।

७–खाद—सालमें कमसे कम एकबार (वर्षा ऋतुके आरम्भमें) मिट्टी और खाद बराबर-बराबर मिलाकर और चालकर घासपर जरूर छोड़ना चाहिये। क़रीब एक इन्चकी तह पड़जाय। अगर सालमें दो बार खाद डाला जासके तो और भी अच्छा है। पांच या छै साल बाद ज़मीनको फिरसे खोदकर नयीघास बोनी चाहिये। बाजलोग सलफेटआव एमोनिया या नैट्रेट आव् सोडा हरियालीपर छिड़कते हैं। यह दोनों बहुत तेज़ खाद हैं इसलिये इनको संभालकर छोड़ना चाहिये। प्रति पांचसेर पानीमें एक छटांक इनमेंसे कोई खाद घोलकर हज़ारेसे हरियालीके ऊपर छिड़कना काफ़ी होगा। कहीं भी यह खाद ज़्यादा छोड़ी जायगी तो घास जल जायगी। लेकिन अगर थोड़ी-थोड़ी मात्रामें यह खाद अकसर दिये जायें तो अच्छा है।

८–रोगोंकी दवा—अगर हरियालीमें कहीं पानी लगेगा (जमा रहेगा) तो वहां की घास सड़ जायगी। ऐसी जगहोंका ढाल दुरुस्त करदेना चाहिये जिसमें पानी बहजाया करे। अगर कहीं पानी बहुत दिनोंसे लगे रहनेकी वजहसे मिट्टी सड़ने लगीहो तो वहां थोड़ासा चूना छिड़क देना चाहिये। वर्ग गज़ पीछे आधी छटांक काफ़ी होगा। दीमक से भी घासको काफी नुक़सान होता है, पानीकी खूब सिंचाई करनेसे इनका ज़ोर कम होजाता है. कहीं खास जगह दीमक बहुत हो तो वहां फ़िनाइलका घोल छिड़का जासकता है, लेकिन फिनाइल घासपर सूखने न पाये नहीं तो घास भी जल जायगी। बरसातके दिनोंमें केंचुये भी हरियालीको गंदा कर देते हैं। लेकिन सच पूछा जाय तो केंचुएसे घास को फ़ायदा ही होता है। केंचुये जो मिट्टी बाहर फेंकते हैं उन्हें झाड़ू से फैला देना चाहिये। बेलन करनेसे वे आपही घासके नीचे दब जायेंगे।

और रीतियां—बीजसे घास पैदा करनेके लिये बीज को बारीक मिट्टीमें मिलाकर ज़मीनपर छिड़कना चाहिये. इस के लिये भी जमीनकी खुदाई चौरसाई आदिकी वैसीही ज़रूरत है जैसी ऊपरकी रीतिके लिये। एक सेर बीजको क़रीब एक टोकरी चाली हुई बिलोयी मिट्टीमें मिलाना चाहिये। इतना बीज क़रीब १६ वर्गगज़ ज़मीनके लिये काफ़ी होगा। बीज सब जगह बराबर पड़े, बीजके बो जानेके बाद उसपर मिट्टीकी पाव इन्च मोटी तह छिड़क देनी चाहिये। और चिड़ियोंको जबतक घास अच्छी तरह उग न आये उसपर बैठने न देना चाहिये। नहीं तो वह बीजको चुन जायेंगी।

खुर्पीसे ज़मीनमें छेद करके उसमें दूब रोपदेनेसे भी घास पैदा होसकती है। इसके लिये खुर्पीको ज़मीनमें धंसाकर ज़रासा हिलानेसे घासके लायक़ काफ़ी बड़ा गढ़ा बन जायगा, इसमें घासका एक गुच्छा रोप देना चाहिये। दो-दो या तीन-तीन इञ्चपर घास लगा देना काफ़ी होगा। कुछ दिनोंमें घास बढ़कर कुल ज़मीनको छेंक लेगी। और सब बातें ऊपर की तरह जमायी हुई घासके लिए जैसी हैं।

ऊपरकी रीतिसे जमायी हुई घास अगर कहीं न उगे तो वहां इस तरहसे घास रोप देनी चाहिये।
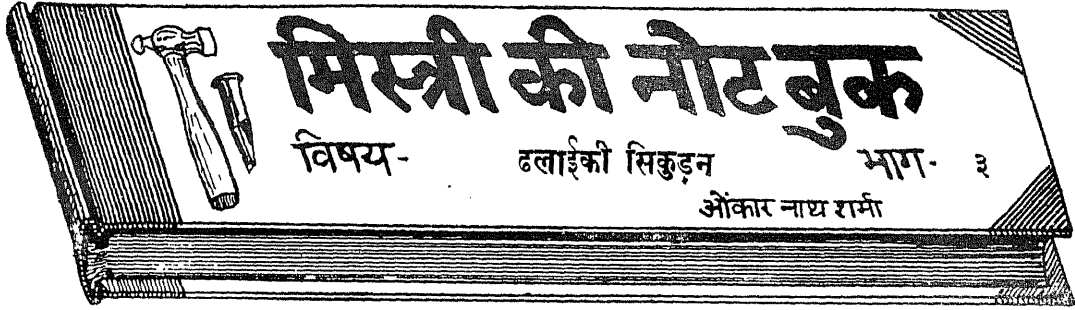
१२-बिजलीके तारोंका नाप

१ गोल इंच = १०००००० मिल

१ गोल इंच = ०·७८५४ वर्ग इंच = चौकोर इंच

१ चौकोर इञ्च = १·२७३२ गोल इञ्च

१ चौकोर इञ्च = १२७३२३९ मिल

१ मिल = ०·००१ इञ्च व्यासके गोलेका क्षेत्रफल

घनफलका नाप

१३-अंग्रेजी घनफल—

१७२८ घन इञ्च = १ घन फुट

२७ घन फुट = १ घन गज

१४-फ्रांस देशीय घनफल—

१००० घन मिलीमीटर = १ घन सेंटीमीटर

१००० घन सेंटीमीटर = १ घन डेसीमीटर

१००० घन डेसीमीटर = १ घन मीटर

१५-जहाज़ोंमें लादे-जाने-वाले मालका नाप

अमेरिकाका १ जहाज़ी टन = ४० घन फुट = ३२·१४३ बुशल*

अंगरेजी १ जहाजी टन = ४२ घन फुट = ३३·७५ बुशल *

१६-कोणोंका नाप

६० सेकन्ड = १ मिनट

६० मिनट = १ अंश अथवा डिग्री

९० डिग्री = १ समकोण

३६० डिग्री = ४ समकोण अथवा १ गोला

१७-विविध नाप

१२ वस्तुएँ = १ दरजन

१२ दरजन = १ ग्रोस

१२ ग्रोस = १ बड़ा ग्रोस

अथवा २० वस्तुएँ = १ कोड़ी

२४ तख्ते कागजके = १ दस्ता

२० दस्ते = १ रीम

दबावका नाप—

१ पौंड प्रति वर्ग इञ्च = १४४ पौंड प्रति वर्ग फुट

" " " " = ०·०६८ वायुमंडलका दबाव

" " " " = २·०४२ इञ्च पारा ६२°फ पर

" " " " = २७·७ इञ्चजल ६२°फ पर

" " " " = २·३१ फुट जल ६२° फ पर

१ वायुमंडलका दबाव = ३० इञ्च पारा६२° फ पर

" " = १४·७ पौंड प्रति वर्ग इञ्च

" " = २११६·३ पौंड प्रति वर्ग फुट

" " = ३३·९५ फुट जल ६२°फ पर

१ फुट जल ६२° फ० पर = ६२·३५५ पौंड प्रति वर्ग फुट

" " " " " = ०·४३३ पौंड प्रति वर्ग इञ्च

१ इञ्च पारा ६२° फ० पर = ·१३२ फुटजल

" " " " = १३·५८ इञ्च जल

" " " " = ०·४९१ पौंड प्रतिवर्ग इञ्च दबाव

२१-हवाका बोझा

साधारण वायुमंडलके दबावपर ३२°फ के तापक्रमपर

एक घनफुट हवा = ०·०८०७३ पौंड

१२·३८७ घनफुट हवा = १ पौंड

---

*अमेरिकाके बुशल

४

२१-जलका नाप और बोझा—

गैलन	घनफुट	बोझा टन,	हंडरवेट,	कार्टर,	पौंड
१·०	·१६०४		–		१
६·२३५५	१				६२·३५५
८·३३	१ ३३७			२	२७
१०·०	१·६०४			३	१६
४१·६	६ ६८५		३	२	२४
५०·०	८ ०२०		४	१	२४
८३·३	१३ ३७		७	१	२१
१००	१६ ०४		८	०	४
४१६·६	६६·८५	१	१७	०	२१
२२०·४	३५·३५		१९	२	२०
२२४	३५ ९३	१		०	०
५००	८० ८०	२	४	२	१६
८३३	१३३ ७	३	१४	१	१७
१०००	१६० ४	४	९	१	४
१६६६	२६७·४	७	८	३	६
२०००	३२०·८	८	१	८	८
२५००	४०१·१	११	३	०	२३
३०००	४८१·८	१३	७	३	१२
३३३३	५३४·८	१४	१७	२	१२
४०००	६४१·६	१७	१७	०	१६
५०००	८० ·२०	२२	६	१	२०
६०००	९६२·४	२६	१५	२	२४

भाग ३

ढलाईकी सिकुड़न

ढलाईके लिये फरमे बनाते समय उन्हें नीचे लिखे हिसाबसे बड़ा बनाना चाहिये जिससे ढालनेके बाद पुरजा ठंडा होनेपर सिकुड़कर सही नापपर आजावे।

बड़े सिलिंडर	एक फुट में	३/३२	इञ्च
छोटे सिलिंडर	,,	१/१६	इञ्च
शहतीर	,,	५/१०	इञ्च
मोटा पीतल	,,	५/३२	इञ्च
पतला पीतल	,,	३/१६	इञ्च
पानीके नल	,,	१/८	इञ्च
ईसपात	,,	१/४	इञ्च
जस्ता	,,	५/१६	इञ्च
सीसा	,,	५/१६	इञ्च
टीन	,,	१/४	इञ्च
तांबा	,,	३/१६	इञ्च
लचीला देगसार लोहा	,,	१/८	इञ्च
अलम्यूनियम	,,	१/५	इञ्च
चांदी	,,	१/८	इञ्च

फरमा और ढले हुए सामानका बोझा

फरमेके बोझेसे ढले हुए सामानके बोझेका अन्दाजा लगानेके लिये नीचे दी हुई सारणीके अंकोंसे फरमेके बोझेको गुणा कर देना चाहिये।

फरमेका माल	ढलाईका माल: देगसार लोहा	अलम्यूनियम	तांबा	जस्ता	पीतल, जिसमें तांबा ७० भाग और जस्ता ३० भाग हो
तुनकी लकड़ी	१६·००	५ ७०	१९·६०	१५·००	१९·००
चीड़ अथवा देवदार	१२·००	४·५०	१४·७०	११·५०	१४·००
सागवान	१०·५०	३·८०	१३·००	१०·००	१२·५०
देगसार लोहा	१·००	०·३५	१·२२	०·९५	१·१७
अलम्यूनियम	२·८५	१·००	३·४४	२·७०	३·३०
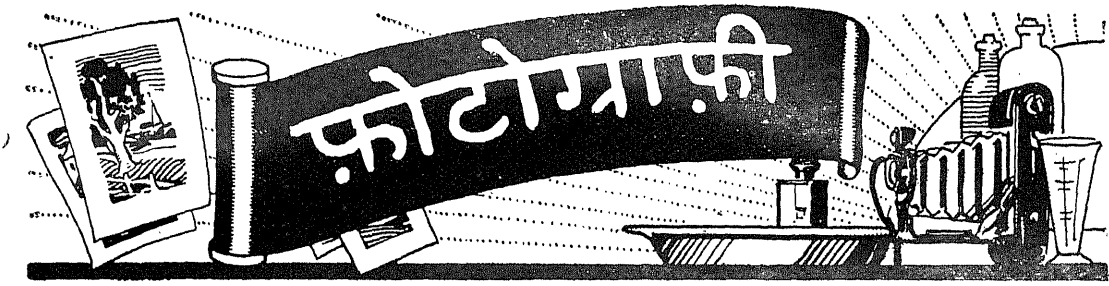
ब्रिटिश जरनल अव् फ़ोटोग्राफ़ीके अलमनाकमें हर सालसालभरके भीतर नये आविष्कारों का सारांश दिया रहता है। सन् १९३७का अलमनाक अभी हालमें छपा है। इससे कुछ बातें नीचे दी जाती हैं।

प्लेटोंपर गर्मीका प्रभाव

बिलेअर और लेटन महाशयोंने प्लेटोंपर गर्मीके प्रभाव की जांच करनेके लिये ईस्टमैनपोज़ेटिव प्लेटको बिजलीके तन्दूरमें ७८ डिग्री सैन्टीग्रेडसे लेकर १७८ डिग्री सैन्टीग्रेड तक और विभिन्न समयोंतक गरम किया। गरम करनेके बाद प्लेट शीघ्र ठंडी करली जाती थी। फिर उसी डेवेलपरसे सब प्लेट ठीक एक ही रीतिसे डेवेलप किये गये। (जमाने) स्थायी करने धोने और सुखानेके बाद इन प्लेटोंको घनत्व मापक यन्त्रसे नापा गया। इन प्लेटोंको आदिसे अन्ततक रोशनी कभी नहीं लगने पायी थी। इसलिये जो कुछ भी घनत्व उत्पन्न हुआ था गर्मीका परिणाम था। बिलेअर और लेटन इस नतीजेपर पहुँचे कि प्रत्येक तापक्रमपर जैसे-जैसे समय बढ़ता जाता है वैसे ही वैसे घनत्व भी बढ़ता जाता है। ठीक उसी प्रकार जैसे प्रकाश लगनेसे।

गर्मीके दिनोंमें डेवेलप करना।

कोडक रिसर्च लेबोरटरीमें से ५७७ नम्बरका परचा जो छपा है उसमें पारकर और क्रोबिट्री महोदय बतलाते हैं कि यदि हाइडरोकिनोन कासटिक सोडा डेवेलपरमें एक प्रतिशत फार्मलीन छोड़ दिया जाय तो ९० डिग्री फारेनहाइट के तापक्रम वाले डेवेलपरसे भी प्लेटोंको आसानीसे डेवलप किया जा सकता है। नुसखा यह है।

घोल (क)

पानी क़रीब	१६	औन्स
सोडियम बाईसलफ़ाइट	३/४	,,
हाइड्रोकिनोन	३/४	,,
पोटैशियम ब्रोमाइड	३/४	,,
पानी इतना, कि कुल हो जाय	३२	,,

घोल (ख)

पानी क़रीब,	३२	औन्स
कास्टिक सोडा (शुद्ध)	१॥	,,

इस्तेमालके लिये एक औन्स घोल (क) और एक औन्स घोल ख और १० बून्द फ़ार्मलीन। डेवलप होजानेके बाद उसे पांच सेकेंन्डतक धोना चाहिये और तब उसे नीचे लिखे घोलमें स्थायी करना (जमादेना) चाहिये।

पानी क़रीब	२०	औन्स
हाइपो	८	औन्स
सोडियम सलफ़ाइट (सूखी बुकनी)	१/२	,,
ऐसेटिक ऐसिड (शुद्ध)	१॥	औन्स
बोरिक ऐसिड	१/४	,,
फिटकरी	१/२	,,
पानी इतना, कि कुल होजाय	३२	,,

ज्योंही प्लेट साफ हो जाय उसे थोड़ी देर धोकर सुखा लेना चाहिये।

चटपट फोटो छपना

अगर समाचार पत्रोंके लिये या और किसी कामके लिये बहुत जल्द फोटो तैयार करना हो तो गीले नेगेटिवसे ही

ब्रोमाइड छाप तैयार की जासकती है। इसके लिये मिस्टर साइमन्सने निम्नलिखित रीति बतलायी है।

पहले निगेटिवके पीछे और सामनेको शामी चमड़ से (मोटर की दुकानों पर यह चमड़ा बिकता है) मढ़ दो। निगेटिवको सोखतेपर रखना चाहिये। मसाला ऊपर रहे। इसके बाद ब्रोमाइड या गैसलाइट पेपरको साफ़ जलमें तीन या चार सेकिंडतक रखकर और फिर ५ या ६ सेकिंडतक निथारकर निगेटिवपर ठीक उसी प्रकार रखना चाहिये जिस प्रकार ग्लेज करनेके लिये शीशेपर छापको रखा जाता है। अभिप्राय यह है कि निगेटिव और कागज़के बीचमें हवाके बुलबुले न बन जायें। अब कागज़पर एक या दो सोखता रखकर रबड़के बेलनसे हलके हाथ बेलन करदेना चाहिये। इसके बाद प्रकाशदर्शन मामूली रीतिसे देना चाहिये। लेकिन निगेटिवको छापनेके चौखटेमें बन्द करनेकी ज़रूरत नहीं है। प्रकाश दर्शन देनेके बाद सोखतेको हटाकर निगेटिव परसे ब्रोमाइड कागज़को उखाड़ लेना चाहिये। और उसे डैवलप करना चाहिये। उसी निगेटिवसे और भी छाप बनाने हों तो उस क्रियाको दोहराना चाहिये। सुखानेपर छाप और कुछ चटक हो जायगी। यदि इससे कोई हानि होनेकी सम्भावना हो तो डेवेलेप नाममात्र ही करना चाहिये। अच्छे निगेटिवसे छाप बनानेके लिये इस रीतिमें कुल १२ मिनट समय लगेगा। इस समयकी गणना उस क्षणसे की गयी है जिस क्षण निगेटिवको हाइपोके घोलसे निकाला जाता है। जिसका व्योरा यों है—

(१) १ मिनट बहते पानीमें या आठ बार पानी बदल कर निगेटिवका धोना।

(२) १ मिनटमें छैबार पानी बदलकर पोटेशियम परमांगनेट मिलेहुए पानीसे केवल एक या दो बूंद पोटेशियम परमांगनेटका घोल धोनेके पानीमें प्रत्येक बार मिला देना काफ़ी होगा।

(३) १ मिनट निगेटिवको पोंछना और सोखतेपर रखना।

(४) २ मिनट प्रकाशदर्शन और ब्रोमाइडका डैवलप करना।

(५) तीन मिनट ब्रोमाइड छापकर स्थायी करना (या जमाना।)

(६) दो मिनट धोना। ठीक उसी प्रकार जैसे नेगेटिव धोया गया था।

(७) दो मिनट छापको सोखतेसे सुखाना, मेथिलेटेड स्प्रिटसे दो बार धोना।

आंच या बिजलीके पंखेसे सुखाना।

कुल १२ मिनट

निगेटिवको अगर रखनाहो तो उसे फिरसे धोकर रखना चाहिये। गर्मीके दिनोंमें स्थायी करनेवाले घोलमें क्रोम-ऐलम मिला रहना चाहिये। नेगेटिवपर लगे हुए पानीको पोंछनेके लिये मिस्टर स्टेडने चित्रमें दिखलाया गया यन्त्र बनाया है। सात या आठ इन्च लम्बी दो इन्च चौड़ी और $\frac{1}{8}$ इन्च मोटी रबड़ की पट्टीपर अच्छे मेलका शामी चमड़ा मढ़दिया जाता है, और तब रबड़ और चमड़ेको दो टुकड़े लकड़ीके बीच दिया जाता है। रबड़ खूब नर्म और लचीला हो और उसकी कोर बिलकुल सीधी हो। एकबार या दोबार शामी चमड़ेको निगेटिवके मसालेपर फेरनेसे सब फ़ालतू पानी निकल जायगा।

प्लेट-घरोंकी जांच

मिस्टर राबिन्सनने प्लेट-घरोंकी जांच इस अभिप्रायसे करनेके लिये कि प्लेट उसी स्थानमें पड़ता है या नहीं जहां फ़ोकस पड़ता है निम्नलिखित सरल रीति बतलायी है। इसके लिये एक पूर्णतया चपटा लकड़ीका टुकड़ा चाहिये। जिसकी लम्बाई प्लेट-घरकी चौड़ाईसे थोड़ी अधिक हो। लकड़ी क़रीब $\frac{1}{8}$ इन्च मोटी हो। एक $\frac{1}{8}$ इन्च लम्बे पेंचकी भी आवश्यकता पड़ेगी। उचित नापका छेद बीचमें करके लकड़ीमें पेंच कसदिया जाता है। पेंच छेदमें काफ़ी कसा रहे परन्तु इतनाभी कसा नहो कि लकड़ी फटजाय। फ़ोकस पर्दे के चौखटेपर इस यंत्रको रखकर पेंचको इतना घुमा दिया जाता है कि पेंचकी नोक अंधे शीशेको छुए। अब इस लकड़ीको प्लेट-घरमें कोई रद्दी निगेटिव लगालेना चाहिये। यदि पेंचकी नोक निगेटिवको ठीक-ठीक छूले तबतो प्लेट-घर ठीक है परन्तु यदि नोक निगेटिवको न छूपाये या अंतिम चित्रकी तरह लकड़ी नोकके बल उठजाय और इधरसे उधर हिल सके तो समझना चाहिये कि प्लेटघर उचित स्थानमें नहीं पड़ता।

बैकग्राउंड (पर्दे)

प्रोफैशनल फ़ोटोग्राफ़ी नामक पत्रिकामें मिस्टर कोबलने एक बड़ी सरल रीति बतलायी है जिससे चित्रों या इस प्रकारके अन्य कामोंके लिये पीछेके ऐसे पर्दे बनाये जासकते हैं जिनपर बादल आदि रंगे हों। काफ़ी बड़ा चौखटा बनाकर उसपर कोरा मारकीन तान देना चाहिये। और कीलसे जड़ देना चाहिये। इसपर रंग उस पिचकारीसे छिड़का जाता है जिससे पेड़के कीड़ोंके मारनेके लिये दवा छिड़की जाती है। इस पिचकारीसे रंगनेसे रंग एकरूप चढ़ता है और ब्रशके चिन्ह नहीं बनजाते जैसा नौसिखये रंगसाज़ोंसे अकसर होजाता है। रंगनेके लिये एक पाव सरेसको एक बोतल खौलते पानीमें पहले घुलाया जाता है। इसमें फिर १॥ छटांक कपड़ा धोनेका पीला साबुन घोला जाता है। और आधा सेर ह्वाइटिंग फेट दीजाती है। रंगसाज़ोंकी दुकानोंपर ह्वाइटिंग पुटिन बनानेके लिये बिकती है। सस्ती चीज़ है। क़रीब ६ पैसे सेरमें आती है) जब यह सब चीज़ें खूब मिल जायें तो इसमें थोड़ी सी इतनी कालख मिला दी जाती है कि रंग इच्छानुसार सुरमई हो जाय। क़ाफ़ी ज़्यादा कालख मिलानेसे काला रंगभी तैयार किया जाता है।

विज्ञान-संसार

भातसे मांड़ पसानेमें जलनका कोई डर न रहेगा

भातसे मांड़ पसाते समय दोनों हाथ लगानेकी आवश्यकता पड़ती है और ढक्कन या पौनेके फिसल जानेसे जलने की संभावना सदा वर्तमान रहती है। इस लिये एक आविष्कारकने ऐसा ढक्कन बनाया है जो एक पेंचके घुमातेही बटलोई पर चिपक जाता है। इस पेंचके कस देनेके बाद माड़ पसानेका काम एक हाथसे किया जा सकता है और जलनेका डर भी नहीं रह जाता।—गो०प्र०

मांड़को फेकना उचित नहीं है

भात पकानेमें केवल इतना पानी देना चाहिये कि चावल पूरे तौरपर पक जाय और भात सूखा न रहे। गीला भात स्वादिष्ट होता है। मांड पसानेसे चावलका पौष्टिक अंश मांड़में निकल जाता है। इसलिये या तो पसाया न जाय या पसाया जाय तो मांड़ दालमें छोड़ दिया जाय, या उसकी मांड़ी बनाकर खायी जाय। —रा० गौ०

४ आदमी सोते हुए उड़ेंगे

इस समय ६ हवाई जहाज़ इतने बड़े बन रहे हैं कि प्रत्येकमें ६० यात्री आ सकेंगे। रातके समय इसमें ४० यात्री लिये जायंगे और प्रत्येकके सोनेके लिये बिस्तर लगा रहेगा। यह हवाई जहाज़ दो मंज़िला रहेगा। ऊपर वालेमें असबाब और ड्राइवर, मिस्त्री आदिके लिये स्थान रहेगा। नीचे यात्रियोंकी कोठरियां रास्ता, गुसलखाना आदि रहेगा। पंखके भीतर इञ्जनोंतक जानेका रास्ता भी रहेगा, जिससे हवामेंही इञ्जनोंकी देख-भालकी जासकेगी. यात्रियों की कोठरियाँ शब्द-अभेद्य बनेंगी जिसमें उनके भीतर इञ्जन का शोर न पहुँच सके। कोठरियोंकोग रम करनेकाभी प्रबंध रहेगा और ताज़ी हवा उनमें बराबर आया करेगी। प्रत्येक जहाज़की तौल १ ० मन, दोनों पंखोंकी सम्मिलित नाप १५२ फुट और जहाज़की लंबाई १०९ फुट होगी। आवश्यकता होनेपर ये जहाज़ पानीपर भी उतर सकेंगे।

दीवालपर फोटो छापना

इंगलैंडके दो आविष्कारकोंने मिलकर दीवालपर फ़ोटोग्राफ़ छापनेकी रीति निकाली है इससे बड़े बृहद्काय फ़ोटो आसानीसे छप सकते हैं। दीवालपर पहले एक ऐसा सफेद रंग छिड़का जाता है जिसमें अस्बेस्टस मिला रहता है, इसके ऊपर फिर परिवर्तनशील मसाले फुवारेके ज़रिके चढ़ाया जाता है। अब प्रवर्द्धन लालटेनसे नेगेटिवका प्रवर्द्धिक चित्र इस प्रकार तैयार की गयी दीवालपर डाला जाता है। फिर क्रमानुसार डेवेलप करनेके और स्थायी करनेके घोल भी फुवारेसे इसपर छिड़का जाता है। अंतमें चित्रपर पारदर्शक वार्निश छिड़क दी जाती है। इस रीतिसे बड़े-बड़े थियेटर एक रातमें रँग डाले गये हैं। चित्रजो बनते हैं धूप या पानीसे नष्ट नहीं होते। इसलिये ऐसे चित्र बाहरी दीवालोंपर भी बनाये जासकते हैं। इस आविष्कारसे साइनबोर्ड आदि रंगना बड़ा सरल हो जायगा।

भूकंपके समय आग लगे तो क्या किया जाय?

भूकंपमें पाइपके टूट जानेसे अक्सर नल बंदहो जाता है, साथही बिजलीके तार टूट जानेसे आगभी अकसर लग जाती है जो पानीके न रहनेसे बुझायी नहीं जासकती। इस लिये अमरीकाके फ्रांससिसको शहरने मुख्य-मुख्य स्थानोंमें गड्ढे खुदवाये हैं, जिनको पक्का करा दिया गया है। प्रत्येक गड्ढा चौदह फ़ुट गहरा और तीस फ़ुट व्यासका है। प्रत्येकमें पचहत्तर हज़ार गैलन पानी अंटता है, जिससे आग बुझाये की बड़ी मशीन डेढ़ घंटेतक बराबर चलायी जासकती है। उक्त शहरमें। इस प्रकारकी १८० टंकियाँ बनी हैं।

९२००० फुट ऊँचा

कस्मिक किरणोंकी जाँचके लिये स्वयं लेखक यंत्रोंसे सुसज्जित पाँच गुब्बारे एकमें-एक जुते हुए अमरीकाके एक शहर सैन अनटोनियोंसे छोड़े गये थे। वे ९२,००० फुट ऊँचे तक पहुँच गये थे। अभीतक जितने भी गुब्बारे संसारमें उड़ाये गये थे उनसे यह २००० फुट अधिक ऊँचा गया। यह गुब्बारा हमारे वायुमंडलके अट्टानबे प्रतिशतको पार कर गया था। स्वयं-लेखक यंत्रोंके परिलेखोंसे वैज्ञानिकोंको बहुत सी बहुमूल्य बातोंका पता लगेगा। मदरासमें इनसे भी अधिक ऊँचाईतक गुब्बारोंके भेजनेकी तैयारी हो रही है।

मेघभेदी दूर्बीन

यों तो दुनियांमें दूरकी चीजें देखनेके लिये रंग-रंगके दुर्बीन आविष्कृत हुए हैं। लेकिन जब आसमानमें बादल होते हैं तो वे सभी बेकारसे सिद्ध होते हैं। अब इटलीकी एक विज्ञानशालाके अध्यापक फिलोमेनो मिनर्वाने एक ऐसे यंत्र का आविष्कार किया है, जो बदलीके दिनोंमें भी पूरा पूरा काम देगा। बादलोंको छेदकर इस यंत्रके जरिये आसानीसे आकाशके ग्रह-नक्षत्रोंको देखा जासकता है। इस यंत्रका नाम है 'पैरलाइजर-रेग्यूलेटर आफ ऐटमस्फियरिक रिफ्रैक्शन्स' इतने बड़े नामसे यह नहीं समझना चाहिये कि यंत्र भी कुम्भकर्णके ही लायक होगा। वह तो साधारण दूर्बीन के ही बराबरका है। युद्धमें यह यंत्र बहुत उपयोगी सिद्ध होगा। जहाजके चालक और ज्योतिषी इस प्रकारके किसी यंत्रकी बड़ी जरूरत महसूस करते थे। मिनर्वा महोदय एक दूसरे यंत्रका भी आविष्कार करनेवाले हैं, जिसके जरिये सभी चीजोंके पीछेकी वस्तुएं उसी प्रकार देखी जासकेंगी, जिस प्रकार कांचके पीछेकी। तात्पर्य यह कि उस यंत्रसे अन्धगर्भ पदार्थ भी पारदर्शक से हो जायंगे। (नवशक्ति)

लकवाका अचूक इलाज

लकवाका मर्ज ऐसा है कि इससे लोगोंको चंगा होनेमें वर्षों नहीं तो ६-७ महीने अवश्य लग जाते है। पर लंडन के एक प्रोफेसर डाक्टर गोसेटका दावा है कि वे लकवाके मरीजोंको कुछ घंटोंके अन्दर चंगा कर सकते हैं। लड़ाइयोंमें बिषैली गैसोंके प्रभावसे जब किसीको लकवा हो जाता है तो वह प्रायः असाध्य हुआ करता है। लेकिन प्रोफेसर गोसेट का यह भी कहना है कि वे किसी भी गैसके प्रयोगके बिना ही विषैलीसे विषैली गैसके कारण सुन्न हुए अंगोंको ठीक कर सकते हैं। उनकी यह दवा है बिल्ली और खरगोशकी अस्थि-मज्जा। कुछ और औषधियोंके साथ उस मज्जाके लेप मात्रसे अंग ठीक होजाता है। पहले कई कुत्तोंपर आपने इसका प्रयोग किया। इसके बाद आदमियोंपर करने लगे। अबतक तीन आदमियोंपर आपने प्रयोग किया और तीनोंमें ही सफल रहे। मारशैलसके तो एक ऐसे व्यक्तिको आपने चंगा किया है, जिसके लिये सभी जवाब देचुके थे।

(नवशक्ति)
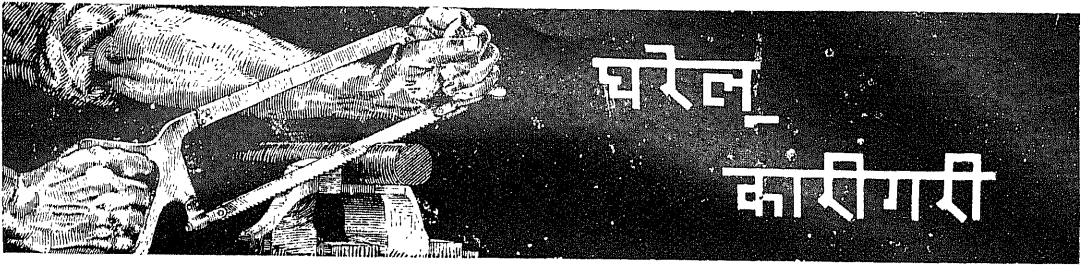
गोरख-धंधा

१–सरल गोरख-धंधा

तारके बने ये गोरख-धंधे या तो अपने बच्चोंके मनोरंजनके लिये या बेचनेके लिये आप बना सकते हैं।

तार इतना मोटा हो कि आसानीसे वह मुड़ न सके।
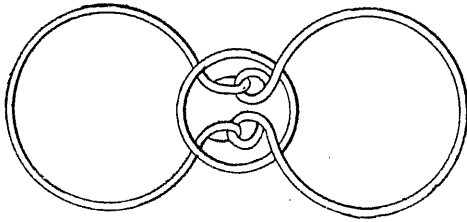
चित्र १–सरल गोरख धंधा

चित्र १में एक सरल गोरख-धंधा दिखलाया गया है। दो छल्ले एक दूसरेसे जुड़े हुए बनाये जाते हैं और एक तीसरा छोटा छल्ला उनके बीच पहना दिया जाता है। बड़े छल्लोंके बनानेके लिये तारको मोटे बाँसपर लपेटकर मोड़ना चाहिये। बननेपर वे करीब २ इञ्च व्यासके रहें। छल्लोंके सिरोंको जोड़नेके लिये उनको गोल नोकके पलाससे मोड़ना चाहिये।

छोटा छल्ला करीब १इञ्चके व्यासका हो। इसके सिरों को पीतलके टाँकेसे जोड़वा देना अच्छा होगा, यद्यपि यह सिरोंको ऐंठ देनेसे भी तैयार हो जायगा।

इस गोरख धंधेमें प्रश्न यह है कि बीचवाले छल्लेको बड़े छल्लोंके बीचमें से किस प्रकार बिना टेढ़े किये या तोड़े निकाला जासकता है।

हल

दोनों बड़े छल्लोंको एक दूसरेसे सटा दो और तब छोटे छल्लेको बड़े छल्लोंके एक जोड़पर पिन्हा दो। अब छोटे छल्लेको बड़े छल्लोंके चारों ओर घुमाकर निकाल लो।
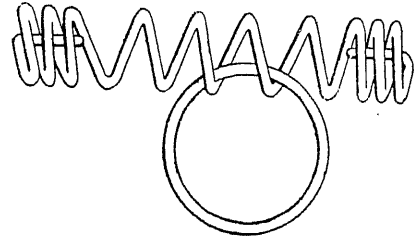
२–जादूका छल्ला

इस गोरख-धंधेको बनानेके लिये मोटे मज़बूत तारको १२ बार ½इञ्च मोटे छड़पर लपेटकर बनाया जाता है। सिरों को ऐंठकर भीतर कर दिया जाता है, जैसा चित्रमें दिखलाया गया है। अब इस सरपट छड़को दोनों सिरोंके बल पकड़कर कुछ खींचना चाहिये। जिसमें बीचका भाग फैल जाय। इसके बाद एक छोटा छल्ला बीचकी दो चूड़ियोंमेंसे पहनाकर बनाना चाहिये। जैसा कि चित्रमें दिखलाया गया है। छोटे छल्लेका मुँह पीतलके जोड़से जुड़ा है। इस गोरख धंधे में प्रश्न यह है कि बिना तारको तोड़े या टेढ़ा किये छल्ले को कैसे अलग किया जाय।

हल

छल्लेको घुमाते-घुमाते सरकिल तारके एक सिरेतक ले जाना चाहिये। और तब इसको सिरेके ऊपर पहना देना चाहिये। ऐसा करनेसे दो चूड़ियोंमें पहने रहनेके बदले छल्ला

सिर्फ़ एक चूड़ीमें फंसा रह जायगा। अब सरकिल तारको बायें हाथमें पकड़कर और छल्लेको दाहने हाथके अंगूठे और तर्जनीसे पकड़कर छल्लेके सामनेवाले भागको दाहनी तरफ़ घुमाना चाहिये। ऐसा करनेसे इसे उठाकर सरकिल तारसे छुड़ाया जा सकता है।

३—पा [illegible] -धंधा
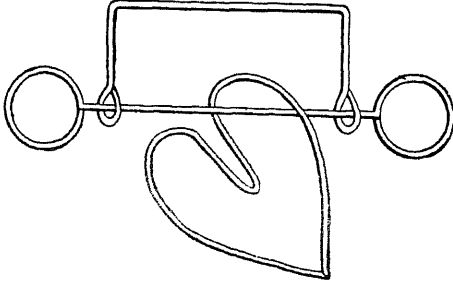
मज़बूत और कड़े तारसे पहले तारकी शक्ल बना लेनी चाहिये। दोनों सिरे या तो पीतलके जोड़से या ऐंठकर जोड़ दिये जायें। अब एक टुकड़े छड़को पानके भीतर डालना चाहिये और उसके दोनों सिरोंपर दो बड़े फन्दे बना देना चाहिये, अब एक तीसरे टुकड़े छड़को लेकर और दोनों सिरों से थोड़ी दूर हटकर तारको सरकोंणकी दिशामें मोड़कर सिरोंपर बहुत छोटे-छोटे फन्दे बनादेना चाहिये। इन फन्दों के बीच नं० २वाला छड़ रहे, जैसा कि चित्रमें दिखलाया गया है। प्रश्न यह है कि पान और तारको किस प्रकार अलग किया जाय।

हल

आख़री चित्रमें दिखलायी गयी रीतिसे पान अलग किया जासकता है। पानके पतले दोहरे भागको छोटे फन्देमें डाल देना चाहिये। अब यह हिस्सा बीचवाले तारके बड़े फन्देके उसपार किया जासकता है, और इस प्रकार अलग किया जासकता है।
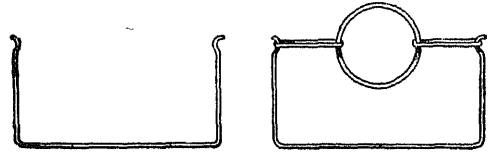
४—बच्चोंके वास्ते

अपने मित्रोंको खूब छकाइये

अब जब कभी तुम्हें अपने मित्रको पत्र लिखना हो तो पहले एक लचीले फ़ौलादके तारको मोड़कर बायें चित्रमें दिखलाये आकारका बना लो। और एक छोटासा छल्लाभी इसी तारका बनालो। अब इस छल्लेको पहले बने तारके भीतर दोहरे तागोंमें बांध दो जैसा दाहनेवाले चित्रमें दिखलाया गया है। छल्लेको कई बार ऐंठकर मुड़ी हुई चिट्ठीमें डालकर रखदो। जब तुम्हारे मित्र तुम्हारे पत्रको खोलेंगे तो छल्ला नाचता हुआ छटककर उछल पड़ेगा और वे चौंक पड़ेंगे। बड़ा मज़ा आयगा। पियानो बाजामें जो तार लगता है या बच्चोंके खेलनेकी रेलगाड़ीमें जो तारकी कमानी लगी रहती है इस कामके लिये अच्छी रहेगी।

आलपीनके सिरेपर रेशमका धागा बांधदो और कैंचीसे काटकर झब्बेका सिरा चौरस करदो। ऐसी आलपीनको किसी नलीमें रखकर फूंकनेसे आलपीन बहुत दूर जाकर सीधी चोट करेगी। इस प्रकार आलपीन दस-बीस बनाकर अपने पास रखलो और मित्रोंकी पीठ और टोपीपर खूब निशाना लगाया करो। यदि सायंस क्लाससे एक टुकड़ा शीशेकी नली मिल सके तो अच्छा है। नहीं तो नरकटकी नलीसे भी काम चल जायगा या बाईसिकिलके पम्पके भीतर वाली नलीको सफ़ाईसे रेतीसे काटकर तुम अच्छी नली बना सकते हो। ख्याल रखना कि आलपीन किसीकी आँखपर न जाबैठे नहीं तो शायद वह आदमी अंधा होजायगा।
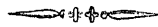
मरु-भूमिके मीठे फल और लाखोंकी आमदनी

भारतवर्षके बाज़ारोंमें अमरीकाके खजूरकी भरमार हैं। तीस बरस पहले अमरीकावालोंने अरबसे खजूर पैदा करना सीखा आज अमरीका इस विद्यामें सारे संसारका गुरु होगया है।

खजूरकी प्राचीन खेती

आजसे छै हज़ार बरस पहलेसे अरबमें खजूर उगाया जा रहा है। पर उसी पुराने ढर्रेपर बराबर काम जारी है। कुछ दिन हुए अमरीकाको यह सूझी कि अपनेही देशमें खजूर क्यों न पैदा किया जाय। पापूलर मेकेनिक्स अपने मार्चके अंकमें ऐसा लिखता है। नैर्ऋत्य कोणपर क़रीब ६८ हजा वर्गमील ज़मीन मरुभूमि थी और वहां बालू और अंधड़के सिवाय और कुछ नहीं था। ज़मीन और आबोहवाकी जांच करनेसे पता लगा कि कौलोरेडो नामक अमरीकाका रेगिस्तान सहारा रेगिस्तानसे मिलता जुलता है। ज़मीन उपजाऊ थी और अब अठारह-सौफुट तक खुदाई करनेपर न तो कहीं पत्थर मिला और न पानी।

नर, मादा और बांझ खजूर

कोलोरेडोके रेगिस्तानमें कुछ खजूर और ताड़ आपसे आप उगते थे। पता नहीं कहाँसे वे आये थे। वे बांझ थे। उनमें फल नहीं लगता था। कृषि-विद्या विशारदोंने सोचा कि अगर यह बांझ खजूर उगते हैं तो फलवाले खजूर क्योंन उगेंगे। तुरन्त एक तार मिश्र देशमें भेजा गया कि खजूरके छोटे पौधे भेजो लेकिन इसका नतीजा केवल यही हुआ कि एक अच्छा सबक़ सीखनेको मिला।

सौदागरने अमेरिकाको ठगा

तारके जवाबमें मिश्रसे एक विदेशी सौदागरने पौधे भेजे लेकिन इनमें आधेसे ज़्यादा नर पौधे थे। सच्ची बात तो यह है कि तीस पैंतीस मादा पौधोंके बीचमें एक नर पौधा काफ़ी होता है। परन्तु सौदागरने जान बूझकर बदमाशीकी क्योंकि अमरीकावाले उस समयतक खजूर उगानेका हुनर नहीं जानते थे। उसने इतनाही नही किया बल्कि क़लमी पौधोंके बदले उसने बीजसे उगाये पौधे भेज दिये। दोनोंमें आकाश पातालका अन्तर रहता है। एक लाख बीजसे उगाये पौधोंमेंसे केवल एक पौधा औसतन अपनी मांकी तरह होता है। अन्य पौधोंमेंसे एक दो नये क़िस्मके पौधे होते हैं और बाक़ी पौधे रद्दी होते है। होसकता है कि बीजसे उगाया पौधा दुनियाके सब खजूरोंसे अच्छा फल देवे। परन्तु अधिक संभावना इसी बातकी है कि पौधा बहुत मामूली होगा और फल कम लगेंगे। ऐसा भी होसकता है कि फल कुछ भी न लगें और हज़ारमें ९९९ पेड़ोंमें ऐसे खजूर लगें जो खानेके लायक न हों।

दस बरस बाद ठगीका पता लगा

लेकिन अमरीकावालोंको इस बातका पता दस-वर्षबाद लगा। पौधे सन् १८९०में खरीदे गये थे। पौधे बढ़े तो खूब। हरसाल वे दो फ़ीट बढ़ते थे। लेकिन ज्यादातर पेड़ बांझ निकले और जो फले भी वे अच्छे नहीं थे। आखिरमें डाक्टर (David Fairchild) डेविड फेअरचाइल्ड अमरीकाकी ओरसे इस बातका पता लगाने सहारा गये कि मामला क्या है।

खजूर जानसेभी ज्यादा प्यारा

सन् १९०१में उन्होंने उपजाऊ पौधोंके क़लमका पहला पारसल भेजा। लेकिन इस बातके लिये उन्हें मिश्रके ब्रिटिश गवर्नर-जनरलकी सहायता लेनी पड़ी। वहांका निवासी अपनी स्त्रीको बेच सकता हैं, अपने ऊंट या खच्चरको भी बेच सकता है। लेकिन अगर आप उसके खजूरका क़लम खरीदना चाहें तो वह तुरन्त तलवार खींच लेगा। बाग़के चारों ओर वह ऊंची दीवार उठाये रहता है। और बराबर उसकी चौकीदारी करता है। डाक्टर फेअरचाइल्डने बाज़ारमें एक बहुत बढ़िया खजूर देखा जो नील नदीके किनारेके शहरोंमें बिकता था। इसका नाम 'वही" था। इस बातका पता लगानेमें कि कौनसे पेड़ोंसे यह खजूर बाज़ारमें आता है उसे हज़ारों मीलका सफ़र ऊंटपर चढ़कर करना पड़ा। लेकिन उसे पता न लगा।

मुश्किलसे भेद मिला

औरोंने भी इसके पता लगानेकी कोशिश की लेकिन वे कामयाब न होसके आखिरमें डाक्टर सिलासो मेसन सन्

१९१३में मिश्र भेजे गये। और वे हरे-भरे हज़ारों क़लमी पौधे अमरीका लेगये। एक शेख़से उनको इसका भेद पहले पहल मिला। शेख़ने बतलाया कि हमलोग इसे "सैर्द" कहते हैं। लेकिन जब हमसे सौदागर लोग इसे ख़रीदते हैं तो इसको "वही" कहते हैं। लेकिन 'वही" के माने 'कोई भी खजूर' है जो किसी भी मरुभूमिमें पैदा हो।

पेड़के तनेसे नया पेड़ पैदा होता है। तीनचार सालतक अपनी मातासे इस पौधेको भोजन मिलता है। जब इसमें जड़ निकल आती है और यह खुद २० या २५ सेरका हो जाता है तब इस पौधेको इसकी मांसे अलग कर दिया जाता है। इस पौधेमें फल ठीक वैसेही लगेंगे जैसे मां में। मांके फल अच्छे होंगे तभी इस पौधेको लोग रोपेंगे नहीं तो इस पौधे को लोग जला डालते हैं।

खजूरका वंश कैसे बढ़ता है ?

एक मज़बूत मादा पेड़में इस प्रकार दससे बीसतक बच्चे पैदा होते है और मांके फलके गुण और मात्राके अनुसार एक-एकका दाम अमरीकामें ५) लेकर ५० हजार रुपयेतक होते हैं।

मांसे अलग करनेके बाद लगभग ५से आठ वर्षोंमें यह पौदे खुद फलने लगते हैं। १२ वर्षसे २० वर्षकी आयुतक इससे बच्चे पैदा होते हैं। इसके बाद बच्चोंका पैदा होना बन्द होजाता है। परन्तु फलोंका लगना जारी रहता है। एक पेड़से ५०से लेकर २५० सेरतक हरसाल फल लगता है। सौ वर्षकी आयुमें इन पेड़ोंकी जवानी गिनी जाती है। और एक-एक पेड़ पांच-पांच सौ वर्षतक फल देता रहता है। अभीतक वैज्ञानिकोंके लाख कोशिश करनेपर भी २० वर्षके बाद भी इन पेड़ोंके बच्चे पैदा नहीं हुए है। खूब पानी देनेपर एक दोबार २० वर्षके बाद भी बच्चे पैदा हुए हैं लेकिन यह इतने मज़बूत नहीं होते कि जितने कम आयुमें पैदा हुए बच्चे। जिस प्रकार मादा पेड़ोंके मादा पौधे पैदा होते हैं उसी प्रकार नर पेड़ोंके नर पौधे पैदा होते हैं। प्रकृतिमें नर और मादा पेड़ोंकी संख्या क़रीब बराबर होती है और हवा और कीड़े मकौड़ेसे नर पेड़ोंका पराग मादा पेड़ोंपर पहुंचता है। लेकिन आजसे ६ हज़ार वर्ष पहलेही खजूरके पैदा करने वालोंको मालूम होगया था कि नर पौधेके फूलवाले बालको मादा पेड़ोंके फूलवाले तनेमें बांध देनेसे फल खूब लगता है यह क्रम आजतक बना रहा है और इसका परिणाम यह हुआ है कि नर पेड़ोंकी अधिक तादाद रहनेकी जरूरत नहीं रहती। अमरीकाने इस रीतिको और भी वैज्ञानिक तरीक़ेसे सुधारा है। और फलोंको इच्छानुसार पहले या पीछे पैदा करनेमें भी सफ़लता पायी है। ज्योंहीं मादा पेड़ोंमें फूल पैदा होते हैं उसपर पारदर्शक कागज़का थैला बांध देते हैं। इन्हीं थैलोंके भीतर नर पेड़ोंके परागवाले बाल डाल दिये जाते हैं और उनमें खटका लगा दिया जाता है जिससे पराग इच्छानुसार झाड़ा जा सके। जब फल लग जाता है और पकनेकी बारी आती है तो इस पारदर्शक कागज़के थैले को हटाकर फलोंपर सूती कपड़ेका ओवरकोट पहना दिया जाता है। इस प्रकार फलोंका गुच्छा पानीसे बचाया जा सकता है जो इसका जानी दुश्मन है। एक बूंद ओससे २५ सेर फल सड़ जासकते हैं।

फ़सलकी मात्रा परागकी जातिपर निर्भर है। जान पड़ता है कि जैसे मादा पेड़ोंकी रुचि अरुचि होती है. किसी पेड़में खूब फल लगेंगे यदि वह एक विशेष नर पेड़के परागसे गर्भित किया जाय, लेकिन होसकता है कि बग़लवाले पेड़में इसी नर पेड़के परागसे बहुत कम फल लगें। इसलिये इन सब बातोंपर भी पूरा ध्यान रखना पड़ता है। मादा पेड़के फूल ज्योंही खिलने लगते हैं त्योंही उनतक पराग पहुँचाया जाता है। लेकिन एक गुच्छेके फूलोंके खिलते-खिलते ८ या १० सप्ताह लग जाते हैं। फल भी इसी क्रम से पकता है और गुच्छोंमेंसे बार-बार पके फलोंको तोड़ना पड़ता है। केलेकी तरह यदि गुच्छेको काटकर पेड़से अलग कर दिया जाय तो फल नहीं पकता। काटकर रखा हुआ हरा खजूर हरा ही रह जायगा और उसका स्वाद बहुत कड़वा हो जायगा।

अमरीकामें खजूर तोड़नेवाले मचानपर चढ़कर फल तोड़ते हैं जैसे-जैसे पेड़ बढ़ते जाते हैं वैसे-वैसे मचान ऊंचे कर दिये जाते हैं। मचानोंपर चढ़नेके लिये सीढ़ी रहती है। मिश्र देशमें रस्सी और कमर बन्दके सहारे पेड़पर चढ़कर खजूर तोड़ते हैं। वहां तो खजूर तोड़नेवालोंकी एक जाति ही अलग हो गयी है। परन्तु जिस रीतिसे वे हज़ारों वर्ष पहले फल तोड़ते थे अब भी तोड़ते हैं।

सिंचाई कब-कब होती है ?

जब पौधे अपनी मांसे अलग किये जाते हैं तो ४० दिनतक उन्हें सवेरे और शाम दोनों समय सींचा जाता है। इसके बाद ४० दिनतक केवल एक ही बार सींचा जाता है। फिर सालभरतक हर दूसरे दिन सिंचाई होती है। इसके बाद अंततक उन्हें सप्ताहमें केवल एकबार सींचा जाता है। अगर पानी १५ फुटसे अधिक गहराईपर न हो तो बिना सिंचाईके भी काम चल जायगा। लेकिन फल इतना ज्यादा न लगेगा। शुरूमें एक एकड़ खेतमें खजूर बोने और खेतको तैयार करनेमें लगभग दस हज़ार या १५ हज़ार रुपया लग जाता है। लेकिन एक बार अच्छी तरह तैयार हो जानेपर एक खजूरके पेड़से प्रति वर्ष २॥ मन खजूर पैदा होता है। यह मिश्रके पैदावारका लगभग दूना है। बाज़-बाज़ पेड़ोंमें तो छै-छै मन खजूर प्रति वर्ष फलते हैं और कोई भी फ़सल ऐसी नहीं है जो इतने ज्यादा दिनोंतक लगातार एक तरहसे भोजन-सामग्री पैदा करे।

दजला और फुरात नदियोंके संगमके पाससे अधिकांश खजूर संसारके अन्य देशोंमें भेजा जाता है। बकरोंके बाल के बने बोरोंमें भरकर ऊंटपर लादकर वे जहाज़तक पहुँचाये जाते हैं। आजसे हज़ारों वर्ष पहले जिस तरह वे लादे जाते थे उसी तरह अब भी लादे जाते हैं। अमरीकाकी प्रतियोगिता से वे अब भी बाज़ी मार ले जाते हैं, क्योंकि खजूरके अलावा वे इससे और भी चीजें पैदा करते हैं। रस्सी, जलाने के लिये लकड़ी और छानेके लिये फूस सब कुछ वह इसी पेड़से पाता है। खजूरकी ही रोटी वह खाता है और ताड़ी देनेवाले पौधोंसे वह अपना पेय पदार्थ पाता है।

खजूरके पेड़ बड़े तगड़े होते हैं। पाला मारनेसे भी बे नहीं मरते और अभीतक इसका पता नहीं लगा कि कितनी गर्मी वे सहन कर सकते हैं। अमरीकाके मैदानोंमें उनपर इतनी गर्मी पड़ती है जितनीसे कीड़े मकोड़े और अंडे सभी जल जाते हैं।

कोई कह नहीं सकता कि अमरीकामें खजूरकी खेती कहां जाकर रुकेगी।

बोल्डर-डैम जो अभी हालमें बना है मीलोंतक पानी पहुंचायगा और वहां खजूर लगाये जायेंगे। नयी-नयी ऋतुओं और देशोंमें खजूर उगानेका प्रयत्न किया जारहा है जिससे पता चलता है कि शायद सहारामें बिलकुल विभिन्न देशों में भी खजूर उपज सकेंगे। सम्भव है कि अमरीका करोड़ों रुपयेका माल प्रति वर्ष बाहर भेज सके। क्या भारतके मरुस्थलोंमें खजूरकी खेती नहीं की जासकती ?

विज्ञान वार्त्ता सचित्र, लेखक—श्रीगुलाबराय, एम० ए०। प्रकाशक गयाप्रसाद एण्डसन्स आगरा। डबलक्रौन १६ पेजीके २२१+१० पृष्ठ। सजिल्द मूल्य १।)

इस पुस्तकमें साधारण विज्ञान, प्रकाश, विद्युत, रसायन, यान, शब्दचित्र, प्रकाशचित्र, लेखन और टाइपके यंत्र और जीवन-विज्ञान इन नव वैज्ञानिक विषयोंपर तीस अध्याय लिखे गये हैं। इन अध्यायोंमें प्रायः उन्हीं आविष्कारोंका वर्णन किया गया है जिनका कि मानव जीवनसे सम्बन्ध है और जो मनुष्यमात्रके लिये हितकर सिद्ध हुए हैं। आविष्कारककी जीवनी और चित्र आदि देकर प्रत्यक अध्याय बड़ा रोचक बनाया है। शैली सुन्दर साहित्यिक और वर्णन

मनोहर काव्यमय उदाहरणोंसे सुसज्जित है। अंग्रेजीमें भी इन विषयोंपर ऐसे रोचक ढंगकी लिखी पुस्तकें बहुत नहीं हैं। हिन्दीके साधारण पाठकोंके लिये भी जो सामयिक साहित्य पढ़ते रहते हैं और शहरोंके रहनेवाले पढ़े लिखे निवासियों और व्यापारियोंके लिये भी जिन बातोंकी जानकारीके बिना काम नहीं चल सकता उनको बड़ी सुगम रीतिसे इस पुस्तकमें समझाया गया है। सांस्कृतिक परीक्षाओंमें और सब पाठ्य पुस्तकोंके साथही-साथ विज्ञान-वार्त्ताभी पढ़ना आवश्यक कर दिया जाय तो शिक्षित समुदायका वास्तविक उपकार हो। ऐसी पुस्तकोंकी हिन्दीमें बड़ी आवश्यकता है।

हमारा तो मत है कि ऐंग्लोवर्नाक्युलर स्कूलोंकी नवीं और दसवीं श्रेणीके लिये सांस्कृतिक पाठ्य पुस्तककी तरह यह पुस्तक अनिवार्य कर दीजाय तो आगेके दरजोंमें उन्हीं लड़कोंको विज्ञान विषय लेनेमें अधिक दिलचस्पी होगी।

—रामदास गौड़

पञ्चभूत विज्ञानम्-हिन्दी भाषाटीकोपेतम्। कविराज श्रीउपेन्द्रनाथ दास भिषगाचार्येण विरचितमनूदितं प्रकाशितं च। मूल्य दो रुपये। डबल-क्राउन १६ पेजीके ३० + २०पृष्ठ। ग्रन्थकार प्रोफेसर श्री उपेन्द्रनाथदास, सदर बाजार देहलीसे प्राप्य।

इस पोथीकी चर्चामात्र पिछले अंकमें हुई है। विषयपर विचार नहीं हुआ था।

पंचभूतोंके सम्बन्धमें प्राच्य दृष्टिकोणसे जितना समीचीन तर्कयुक्ति पुरःसर विचार सम्भव है, ग्रन्थकारने सब कुछ किया है। परन्तु ग्रन्थका लक्ष्य था पाश्चात्य विचारका खंडन, उसका भेदन नहीं होसका है। पहले अध्यायमें पाश्चात्य विषयोंकी जो प्रतिज्ञा दी है, वही आज ठीक नहीं है। पाश्चात्य विज्ञान सतत वर्धमान और परिवर्त्य शास्त्र है। तीस बरस पहले जिस प्रतिज्ञापर पच्छाहीं चलते थे, उनका खण्डन जब उन्होंने स्वयं करडाला है, तब आज फिरसे उनका खंडन करनेका आपका प्रयास पिष्टपेषण है, व्यर्थ है। पांचवें अध्यायमें बड़ी धूम धामसे "एलिमेंट" शब्दकी विस्तृत आलोचनासे आरंभ है। इसीमें भारी भ्रम है। "एलिमेंट" शब्दका प्रयोग जिस अर्थमें पचास बरस पहले होता था, आज उसका खंडन करनेसे क्या लाभ? जिन परिभाषाओंमें विज्ञानपक्ष कभीका परिवर्त्तन संशोधन कर चुका है उन्हींका खंडन पिष्टपेषणमात्र है। जब संस्कृतकी अमर भाषाके शब्दोंके अर्थ कालके प्रभावसे बदल जाते हैं, तो अंग्रेजी सरीखी मर्त्य वा मर भाषाके शब्दोंके अर्थ बदलते जाना कोई बातही नहीं। फिर इतनी जल्दी-जल्दी अपनी स्थितिको बदलते जानेवाली विज्ञानकी धारणाओंके खंडनका मूल्यही क्या? हाँ, जो लोग इन धारणाओंके आधारपर उतावली करके अपनी अमर भाषाके स्थायी सिद्धान्तोंका खंडन करनेका दुःसाहस करते हैं वे भी निरर्थक प्रयास करते हैं, इसमें भी सन्देह नहीं है। काव्य-शास्त्र-विनोदमें कालक्षेप करना और बात है, और सत्यान्वेषण और बात है। दोनों पक्षोंको एक दूसरेके दृष्टिकोणको पहले समझनेकी कोशिश करनी चाहिये। दृष्टिकोण भेदसे लक्ष्यका रूप भी भिन्न दीखता है, यद्यपि सत्य एक ही है।

वस्तुतः हमारे शास्त्रोंके दृष्टिकोणसे उनकी शब्दावली, उनका तर्क और युक्ति ठीक है। उसको उपस्थित करनेके ढंगमें फेर-फार होनेसे आपसमेंही हमारा कितना मतभेद है, इससे किसको इनकार हो सकता है। फिर जहां दृष्टिकोणही भिन्न है वहां तो दृष्टि-भेद है ही। दृष्टि-सापेक्ष्य सत्य दोनोंही हैं, दोनों अविरुद्ध हैं। समझका फेर है। दोनोंका समन्वय वही कर सकता है जिसकी दृष्टि इतनी विवृत है कि दोनों पक्षोंकी सम्यक्रीत्या समझता है, और युगपत् रीतिसे सत्यके सम्यक् रूपका पूरा दर्शन करता है।

इतना मैं मुक्तकंठसे कह सकता हूं कि प्राच्यपक्षसे विद्वान् लेखकने अपने विषयका बड़ी योग्यतासे प्रतिपादन किया है, और अनुवाद देकर संस्कृत न समझ सकनेवाले पाठकोंका महान् उपकार किया है। रा० गौड़।

हिटलर महान अथवा जर्मनीका पुनर्निर्माण—लेखक आचार्य्य चन्द्रशेखर शास्त्री। प्रकाशक, भारती साहित्य मन्दिर, देहली। मूल्य ३)। डबल-क्राउन १६ पेजीके ८२ + २४ पृष्ठ। सुन्दर जिल्द। सोल एजेंट्स—एस० चाँद एण्ड कम्पनी, चांदनी चौक देहली।

हिन्दीमें अन्तर्राष्ट्रिय राजनीतिपर इतनी भी पुस्तकें नहीं हैं कि अंगुलियोंपर गिनी जासकें। ऐसी दशामें शास्त्रीजीने हिलटर महान् लिखकर बड़ा उपकार किया है। हिटलरके नाजीवादसे, उसकी यहूदी-निष्कासन नीतिसे,

उसकी अन्य उद्दण्डताओंसे हमें भलेही मतभेद हो, परन्तु यह तो मानना ही पड़ेगा कि उसीके दमसे धराशायी जर्म्मनी आज फिर झाड़पोंछकर उठखड़ा हुआ है। हिटलर और मुसोलिनी समाजवादके बिगड़े हुए और आवारा लड़के भलेही समझे जायँ, पर वे अपने-अपने देशके भाग्य-विधाता हैं यह बात सर्ववादिसम्मत है। शास्त्रीजीको इस कृतिका हम सहर्ष स्वागत करते हैं और हम हिन्दीमें अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिसे दिलचस्पी रखनेवालोंसे सिफारिश करते हैं कि इस महत्वपूर्ण ग्रंथको अवश्य पढ़ें। रा० गौड़।

लेखक—प्रधान सम्पादक श्री भारतीय एम० ए०, प्रकाशक हिन्दी लेखक संघ प्रयाग। वार्षिक मू० ३) आकार विज्ञानका ही।

सन् १९३४में प्रयागमें हिन्दी लेखक संघ स्थापित हुआ था, उसीका यह मुखपत्र मासिक है। हिन्दीमें अभी तक लेखनकला सम्बन्धी कोई पत्र नये लेखकोंके लाभार्थ नहीं था। इस कमीको वह पत्रिका पूरी करती है प्रत्येक आरम्भिक लेखकको तथा अनुभवी लेखकोंको भी इससे लाभ उठाना चाहिये। संघके पहले सभापति औपन्यासिक सम्राट् स्वर्गीय श्रीप्रेमचन्द्रजी थे। लेखन सम्बन्धी प्रत्येक विषयपर लेखक युक्त सलाह देता है। भाषा सरस तथा सरल हुआ करती है। हम इसकी सफलताके लिये परमात्मासे प्रार्थना करते हैं। रा० गौ०

भूगोल—इतिहास चित्रावली, प्रकाशक भूगोल कार्यालय, प्रयाग। इस प्रतिका मूल्य ॥)

इसके सम्पादक हैं सुप्रसिद्ध विद्वान् पं० रामनारायण मिश्र। इसके तैयार करनेमें उभयश्री जयचन्द्रजी तथा परमानन्दजीका भी हाथ है। पुस्तककी छपाई तथा कागज प्रशंसनीय है। किन्तु यह पुस्तक जिस उद्देशसे प्रकाशित की गयी है, उसे पूरा करनेमें कदाचित् असमर्थ होगी। यदि इसकी पूर्ण समालोचना की जाय तो इससे भी मोटी एक पुस्तक छपवाना पड़ेगा। किन्तु स्थानाभावसे थोड़ा सा ही गुणदोष दिखलाया जायगा। पुस्तक मध्यकालीन तथा आधुनिक भारत सम्बन्धी विषयोंके लिये बहुत ही उपयोगी तथा रोचक है। हर एक युगका संक्षिप्त इतिहास तथा तिथिक्रम भी दिया हुआ है। पुरातत्व-सम्बन्धी सिक्कों तथा चित्रोंकी कमी नहीं है। हिन्दी भाषामें एक सजीव इतिहास चित्रावली प्रकाशित कर मिश्रजीने भारतका परमोपकार किया है इसके लिये उन्हें बधाई है।

इसके अनुसार रामायणकालीन भारतका प्रादुर्भाव महाभारत तथा बौद्धकालके बाद हुआ जो भारतीय और विदेशीय विद्वानोंको मान्य नहीं है। वैदिक कालीन आर्यावर्तका मानचित्र अत्यन्त अपूर्ण है। इसमें न तो डा० अ०-च०-दासके "ऋग्वेदिक इंडिया"का ही अवलम्बन है, न एच० जी० वेल्सके ऐन औटलैन-आफ़-वर्ल्ड-हिस्ट्रीका ही आधार लिया गया है। इसमें सभी नाम दे दिये गये हैं, मानों उस कालमें वर्तमान हों। रामायण और महाभारतके समय भी अफगानिस्तान, लाहौर, दिल्ली, इलाहाबाद, सतलज इत्यादि नाम प्रचलित थे। यह मान लेना बुद्धिके बाहर है। सिकन्दर साम्राज्यके बाद बुद्धकालीन भारतका आरम्भ होता है। भारतका तिथिक्रम ७०० खृष्टपूर्वसे आरम्भ होता है। भगवान महावीर तथा बुद्ध दोनोंका काल प्रचलित संवत्के प्रतिकूल तथा अमान्य है। अशोक मौर्यका राज्याभिषेक २६८ ख्रीष्टपूर्व हुआ न कि २६१ ख्रीष्टपूर्व। पुलिकेसी द्वितीयका हर्ष वर्द्धनके साथ युद्ध सन् ६२९ ई०में हुआ था न कि सन् ६२० ई०में। यह ग्रंथ राष्ट्रीयताका विरोधक होगा। आशा है मिश्रजी दूसरे संस्करणमें इसको सुधार कर बच्चोंका विशेष उपकार करेंगे।

Dyers' Annual, 1934 and 1935 सम्पादक डी० जी० काले, प्रकाशक डायर एसोशियेशन कानपुर, मूल्य—१॥)

भारतीयोंके लिये ऐसी पुस्तकोंका प्रकाशन अत्यन्त हर्षकी बात है। किन्तु इससे सीमित व्यक्ति ही लाभ उठा सकते हैं। इसका प्रधान कारण इसका विदेशीय भाषा होना तथा पारिभाषिकता है। आशा है शीघ्रही यह संस्था इसका प्रकाशन देशीय भाषामें आरम्भ करेगी, जैसा कि संस्थाके प्रस्तावसे प्रकट है। उस दशामें अनेक भारतीय बेकारीके प्रश्नको सुलझा सकेंगे तथा हमारे देहाती भाई भी वैज्ञानिक उन्नतियोंका यथेष्ट लाभ उठावेंगे। दे० त्रिवेद

तुलसी और उसके सौ उपयोग-प्रणीता काशीनाथ शर्मा ज्योतिषतीर्थ, प्रकाशक हिन्दी साहित्य मंडल बनारस सिटी, पृष्ठ ५४ मूल्य ।-)

जिस प्रकार गंगाका जल अमृत है उसी प्रकार तुलसी

का पौधा कल्पतरु है। इसमें वे अनन्त गुण भरे पड़े हैं जो सारे संसारको मथनेसे तथा सर्व शारीरिक तथा मानसिक परिश्रम करनेपर भी नहीं प्राप्त हो सकते। प्रत्यक्ष प्रमाणके लिये जिसको विश्वास न हो परीक्षा करके देख ले। यह पुस्तिका खूब अच्छी तरहसे बतलाती है कि किन-किन रोगोंपर तुलसीका पौधा प्रयोग किस प्रकार करना चाहिये। तुलसीदल भारतमें सभी जगह होता है। इस पुस्तिकाको साथ रखनेसे यह पुस्तक तथा तुलसीदल वैद्य या डाक्टरका काम करेंगे। आपको डाक्टरोंके लिये प्रत्येक मास बिलें नहीं चुकानी पड़ेंगी। दे० त्रिवेद

स्वप्न-विज्ञान—लेखक श्री गोपीवल्लभ उपाध्याय, प्रकाशक हिन्दी साहित्य मण्डल, बनारस सिटी, मूल्य ॥।) पृष्ठ संख्या ४ + १२८।

यह पुस्तक श्रीरामचन्द्र विनायक कुलकर्णीकी स्वप्न-मीमांसाके आधारपर लिखी गयी है। हिन्दी भाषाके अभाव को यह पुस्तक पूरी करती है। यह वैज्ञानिक तथा अन्ध-परम्परा दोनों सिद्धान्तोंका वर्णन करती हैं। हर एक गुत्थियोंको सुलझानेमें तथा वैज्ञानिक सिद्धान्त उपस्थित करनेमें लेखकने कमाल किया है। क्या ही अच्छा होता यदि नये विचारोंके मौलिक ग्रंथ हिन्दुस्तानीही भाषामें लिखे जाते।

—दे० त्रिवेद

सम्मेलनकी विज्ञान-परिषत्के सभापति

पिछली संख्यामें मैंने सम्मेलनकी विज्ञान परिषत‌के सभापतिके सम्बन्धमें अपनी अनभिज्ञता प्रकट की थी। इस नोटके छप जानेके बाद मुझे मालूम हुआ कि विज्ञान परिषत्‌के सभापति भूगोल सम्पादक विद्वद्वर पं० रामनारायण मिश्र हुए थे। परन्तु उनका भाषण अबतक नहीं मिलसका है।

एक विशेष पाठकको उसमें अपमानकी गंध मिली है। अपमानकी कोई बात न थी। हमारा उद्देश्य समझा नहीं गया। हमें विद्वानोंका सम्मान करना नहीं आता। हम जिस किसी विद्वान्‌को सभापति चुन लेते हैं, उसकी जीवनीपर उसकी कृतिपर सामयिक पत्रोंमें लेख निकलने चाहियें। उसके चित्र छपने चाहियें। यह सच है कि पत्रोंका कर्त्तव्य है कि अपने प्रतिनिधि भेजकर यह बातें मालूम करलें। परन्तु अपने कर्त्तव्योंके पालनमें कितने पत्र सक्षम हैं? फिर वह ऐसा न करसकें, तो सम्मेलनको, जिसके पास प्रचारके काफी साधन हैं, स्वयं प्रयत्न करना चाहिये। सम्मेलन पत्रिका बन्द है तो और पत्रोंसे यही काम लेना चाहिये। उनका चित्र चरित्र हमें मिलता तो हम शौकसे छापते। सायंस-कांग्रेस हो जाती है, नेशनल इंस्टिट्यू आव् सायंसेज़के वार्षिकाधिवेशन होजाते हैं परन्तु किसीको कानोंकान खबर नहीं होती। चाहिये तो यह था कि उनमें भाग लेनेवाले प्रमुख वैज्ञानिकोंके चित्र-चरित्र निकलते। विदेशी पत्रोंमें ऐसी घटनाएं नित्य छपा करती हैं। चित्र-चरित्र वा केवल चरित्र बराबर निकलते रहते हैं। "नेचर" विज्ञानका एक साप्ताहिक पत्र है। उसके प्रायः प्रत्येक अंकमें प्रमुख वैज्ञानिकोंका परिचय रहता है। सम्मेलनकी विज्ञानपरिषत्‌का सभापतित्व एक महत्वका पद है। उसकी चर्चातक पत्रोंमें न होना उसके महत्त्वको घटा देता है। सम्मेलनकी ओरसे, और नहीं तो,

उनका भाषण ही भेज दिया जाता तो पत्रोंमें अवश्य छपता और असंख्य पाठक उससे, बिना मद्रास गये, लाभ उठा सकते थे। 　　　　रा० गौ०

नागरिक शिक्षाकी ज़रूरत

हमारे देशमें सब तरहकी शिक्षा दी जाती है परन्तु अच्छे नागरिक बननेकी शिक्षा नहीं दी जाती। चरित्र नहीं सिखलाया जाता। शिक्षा-विज्ञानके विवेषज्ञ कहते हैं कि हर शिक्षकका काम है कि चाहे जो विषय पढ़ावे दो बातें तो हर हालतमें उसे सिखानी चाहिये ही। एकतो शुद्ध बोल और दूसरे शुद्ध चाल। बोल तो सिखाया जाता है पर चाल सिखानेकी ओर शिक्षा विभागका ध्यान नहीं है। "आज" में एक लेखमें वर्त्तमान आवश्यकताओंको दिखाते हुए काशी के श्री श्रीप्रकाशजीने चालकी शिक्षा देनेपर उचित जोर दिया है। वह कहते हैं—

'मेरी समझमें हमें केवल एकही कार्यक्रमकी आवश्यकता है, अर्थात् आत्मनियन्त्रणके साधारण सरल नियम सबको सिखलाये जायँ। गूढ़ विषयोंपर जितनी शक्ति हम व्यय करते हैं उसकी आधी भी यदि हम सामाजिक कर्तव्योंके प्रचारमें व्यय करें और सबको बतलावें कि घरमें रहते हुए सड़कपर चलते हुए, रोजगारका अपना काम करते हुए. दूसरेके प्रति हमारा क्या कर्तव्य है अगर हम सब को सचेत और कार्यशील रहना सिखलावें. अगर हम लोगोंको यह बतलावें कि मृत्यु और परलोकसे परेशान न होकर जीवन और इस लोककी चिन्ता करें, अगर हम सबको समझावें कि संसार न उनके जन्मसे आरम्भ हुआ है न उनकी मृत्युसे समाप्त होगा, पर उनसे अधिक स्थायी है जिसपर उनके कार्योंका भी असर पड़ सकता है। यदि वे यत्नशील हो जायँ तो हम उन्नतिके पथपर अग्रसर हो सकते है।'

कितनी सच्ची बात कही है! हमतो अभी पशुओंकी सी भीड़ हैं। हमें तो बैठना, उठना, चलना फिरना, भीड़में अपना स्थान समझना, टिकट खरीदना, अपने जरूरी काम करना सभी कुछ सीखना है. यह शिक्षा सौमें-सौको मिलनी चाहिये। 　　　　—रा० गौ०

देवनागरी-लिपि-ज्ञानकी आवश्यकता

इसी शीर्षकके नीचे पं० चेतरामजी शर्म्मा जलन्धरीने "आर्य्य" में एक सुपाठ्य और विमर्शपूर्ण-लेख लिखा है। हमारे ही देशके विद्वान् देवनागरीकी अनभिज्ञतासे कैसी-कैसी भूलें करते हैं, यह दिखाते हुए लिखते हैं—

एक पुस्तक 'हिन्दू हीरोज़ एंड हीरोइन्स (Hindu Heroes and Heroines) लाहौरके दीवानचन्द शर्माजी (Professor Diwan Chand Sharma M.A. University of Lahore) ने लिखी है। इस पुस्तकको मैकमिलन कम्पनीने प्रकाशित किया है। हम नहीं कह सकते कि मैकमिलनके अधिकारी भारतीय विषयोंका कितना ज्ञान रखते हैं पर यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि भारतमें बिकने लगने योग्य पुस्तकादिका बहुत अच्छा ज्ञान-ध्यान उक्त कम्पनीका है। भारतीय विषयोंपर भारतीय ग्रेजुएट विद्वानोंद्वारा लिखी हुई पुस्तकें भी यदि भाँति-भाँतिकी भद्दी भूलोंसे भरी हुई हों तो उक्त विदेशी कम्पनीका क्या दोष?

'हिन्दू हीरोज़ एंड हीरोइन्स (Hindu Heroes and Heroines) के ८वें पृष्ठसे रामायणकी चर्चा आरम्भ हुई है, (The Ramayana)। इसकी तीसरी पंक्तिमें दशरथको 'Dashratha — 'दश्रथ' लिखा है। इसी प्रकार शत्रुघ्न को Shatrughana'—शत्रुघन, वशिष्ठको 'Vashishta'— वषिष्ट, मिथिला Mithila को 'Mithla'- मिथ्ला, चित्रकूटको' Chitar Koot चितर कूट कौशल्याको Kaushlaya—कौशलय' वा 'कौशलया' पञ्चवटीको 'Panchwati'—पच्वटी शूर्पणखाको Sarupnakha'—सरूप्नखा लिखकर ग्रन्थकारने रामायण और वाल्मीकि दोनोंका पार्वण श्राद्ध कर डाला है। बड़े जनोंको और क्या कहें!

हमारे कवरका चित्र

आजकलका दूरबीन विज्ञानका एक चमत्कार है, फोटोग्राफी दूसरा। दूरबीनने तो लाखों करोड़ों मीलकी दूरीको घटा दिया और फोटोने दुर्लभको सुलभ कर दिया। दो ढाई लाख मील दूरीपरका चन्द्रमा जब हमें दीखता है तो हम

समझते है कि चन्द्रमामें धब्बे हैं, कलंक हैं। परन्तु जब सबसे बड़े दूरबीनसे जिसमें १०० इंच व्यासका ताल लगा है, देखते हैं तो वह सूरत दीखती है जिसका फोटोचित्र इस बार कवरपर छपा है। सबसे बड़े दूरबीनसे देखनेके लिये बारह तेरह हजार मील दूर अमेरिका जाना पड़ता। परन्तु फोटोग्राफीने विज्ञानके हर पाठकके लिये वह दृश्य सुलभ कर दिया है।

जिसे हम धब्बे देखते हैं, वह पहाड़के सिलसिले हैं. उनके बीचकी झीलें हैं, समुद्र हैं। चन्द्रमाके पास अपनी ज्योति नहीं हैं। सूरजकी धूप उसपर पड़ती है, वही धूप हमको चमकती दीखती है, वही चांदनीके रूपमें हमारी धरतीपर पड़ती है। रा० गौड़

सहयोगी-विज्ञान

पथरी कैसे दूर होगी ?

पथरी, जिन्हें होती है उन्हें पेशाब रुक-रुककर आता है और उस समय कष्ट भी होता है। पथरीके लिये शस्त्र-क्रिया भी की जाती है। पर जैतूनका तेल और नीबूका रस इस बीमारीमें इतना मुफीद है कि उसके परिणामको देखकर आश्चर्य होता है। सुबह थोड़ेसे नीबूके रसमें जरा-सा जैतून का तेल मिलाकर पी लीजिये, दिनभर कटकटकर थोड़ी-थोड़ी पथरी निकलती रहेगी। कुछ ही दिनोंमें सारी पथरी कटकर निकल जायगी। यह इलाज सस्ता और निरापद समझा जाता है। (स्वराज्य)

फलोंका रस।

फलोंका रस रक्तको शुद्ध करता है। नीबू और नारंगी तथा अंगूरका रस इसके लिये रामबाण है। अंगूरके मौसममें एक गिलास अंगूरी-रस रक्तको शुद्धही नहीं बनाएगा, शरीरमें बल भी बढ़ाएगा, ओज, और वीर्यकी उसमें वृद्धि होगी। बुखारके समय जब किसी तरहका भोजन शरीर लेनेसे इन्कार कर देता है मीठी नारंगी या अंगूरका रस 'टानिक' का काम देता है। दवाइयोंकी शीशियोंके बजाय यदि हम बीमारीकी दवामें रोगीको फलों का रस दें तो उसके शरीरसे विष-पदार्थ शीघ्रही बाहर निकल जायगा और रोगी खतरेसे बचा रहेगा। मीयादी बुखारमें तो गरम पानी और फलोंका रस बड़ाही मुफीद सिद्ध हुआ है। उनमें आवश्यक विटामिन्स रहते हैं जो शरीरके रक्तको शुद्ध करते और जीवन-शक्ति बढ़ाते हैं। खट्टे फलोंमें नीबू सर्वश्रेष्ठ है। जिस समय शहरमें कोई संक्रामक बीमारी फैली हो उस समय रोज नीबूका रस पीनेसे बीमारीका कतई भय नहीं रहता। सौंदर्य बढ़ानेमें भी फलों के रसका सेवन अजब असर रखता है। नारंगीके छिलके का रस चेहरेपर मलनेसे झाईं मुहासे आदि दूर होते हैं। सोनेके पूर्व दूध पीनेके बजाय यदि हम गरम पानीमें थोड़ा सा नीबू निचोड़कर पीयें तो सुबह शौच-शुद्धिमें अच्छी सहायता मिल जायगी। इसीसे प्राकृतिक-चिकित्सक जोर देते हैं कि 'दवाइयोंके विषैलेपनसे अपना पेट मत भरो। प्रकृति तुम्हारे लिए फलोंका उत्तम उपहार लिए खड़ी है, उसका सेवन करो और पूरी उमरका उपभोग करो।'

नीम वृक्षके गुण

नीम वृक्षमें अनेक गुण हैं, किन्तु उसके प्रयोगके हेतु पृथक पृथक हैं। यदि विधिपूर्वक इसका सेवन किया जाय तो स्वास्थ्यको अति उत्तम गुणकारी है।

१ शरीरमे यदि किसी स्थानपर बादीसे सूजन आगयी है तो नीमके पत्ते गरम पानीमें डालकर उससे वह भाग धोया जाय तो लाभ होगा।

२ यदि आखें दुखने आगयी हैं तो गरम पानीमें नीम के पत्ते डालकर आखें धोयी जांय तो अवश्य लाभ होगा।

३. नीमके पत्तोंका रस कर्णरोगके बीमारके कर्णमें डाला जाय तो गुणकारी होगा।

४. किसी शरीरके भागमें फोड़ा हो गया हो और पकनेमें देरी हो और उसको शीघ्र पकाना हो तो नीमके पत्ते गरम करके बांधनेसे वह शीघ्र पक जावेगा।

५ नेत्र रोगी नीमके पत्ते गरम-गरम सायंकाल सोते समय नेत्रोंसे बांधकर सोजाय तो बहुत लाभ पहुंचेगा।

६. नीमके पत्तोंको गरम पानीमें डालकर स्नान करना गुणकारी है।

७ फोड़ा फुन्सी नीमके पत्तोंको गरम पानीमें डालकर धोया जाय तो लाभदायक है।

८. नवरात्रिके दिनोंमें नीमके कोमल कोमल पत्तों काली मिरच ७ व ११ पत्तेके साथ पीसकर प्रातःकाल खानेसे अत्यन्त गुणकारी होता है। (संकलित)

कर्कार्क, १९९४

जुलाई, १९३७

मूल्य ।)

भाग ४५, संख्या ४

प्रयागकी विज्ञान-परिषद्‌का मुख-पत्र, जिसमें अमृतसरका आयुर्वेद-विज्ञान भी सम्मिलित है

नराकार प्राणियोंका वंशवृत्त

श्यामांग
गिब्बन
गोरिल्ला
चिम्पांजी
ओरंग
श्वेतांग मानव वंश
रक्तांग मानव वंश
पीतांग मानव वंश
कृष्णांग मानव वंश

वैवस्वत
चाक्षुष
रैवत
तामस
उत्तम
स्वारोचिष
स्वायंभुव

वर्त्तमान मानवकी संयुक्त शाखा
रामकालीन वानर वंश
रामकालीन मानव वंश
राक्षस वंश
बड़े लंगूरोंकी शाखा
आदिम श्यामांग
आदिम गिबन
बनमानुस, आदिम बड़ा लंगूर
आदिम मानव वंश
बड़े लंगूर और आदिम मानव-का युक्तवंश
छोटे लंगूरोंका युक्तवंश
आदियुगीन छोटा लंगूर
जंबूद्वीपीय कपिस्कन्ध
अमेरिकाई कपिस्कन्ध
नराकार सृष्टिस्कन्ध

कुष्ठ या कुठ या कुस्तुल-बहर

[स्वामी श्रीहरिशरणानन्दजी वैद्य]

१—क्या यह संदिग्ध ओषधि है ?

संस्कृत और मराठीमें इसको कुष्ट कहते हैं। हिन्दीमें कुठ, बँगलामें पाचक, गुजरातीमें उपलेत, कर्णाटकीमें कोष्ट, तेलंगीमें गोश्तमु, तमिलमें गोश्तम् और अंगरेजीमें Saussured Lappa वा Arabian Costus कहते हैं। यह Compositæ वर्गका उद्भिज्ज है। यह अत्यन्त प्रसिद्ध वस्तु है और इसमें सुगन्ध होती है, यह कृमिघ्न गुण रखती है। प्रायः इसकी गन्धके समीप कीड़े नहीं आते। रेशमी और ऊनी वस्त्रोंमें रखनेसे कीड़े नहीं लगते। इसीलिये इसका उपयोग चीनमें रेशमकी रक्षाके लिये होता है तथा वहाँ इसे धूपकी सामग्रीके साथ मिलाकर देवस्थानोंको सुगन्धित करनेके लिये अधिक उपयोगमें लाते हैं। इसीसे यह चीन देशमें अधिक जाती है। इसका उत्पत्ति-स्थल एकमात्र चम्बा और जम्बू कश्मीर स्टेट था। इसे वहांसे ठेकेदार ही खरीद सकते थे। अन्य व्यक्ति नहीं। कुष्टके विक्रयकी रोक-थामके लिये जम्बू कश्मीर स्टेटने सन् १९२२में पंजाब गवर्मेण्ट द्वारा विशेष अधिकार प्राप्त किये और कानून बनवाया। इसीसे कुठको प्रत्येक व्यक्ति न ला सकता था न बेंच सकता था। जभी यह आमतौरपर महँगी रहती थी। किन्तु, आज कोई ६–७ वर्षके भीतर स्वर्गवासी लाला धन्वन्तरिप्रसादजी कविराज इसका बीज जम्बू कश्मीर स्टेटसे किसी तरह प्राप्त कर सके और उन्होंने मण्डी स्टेट, टिहरी स्टेट, चम्बा स्टेट तथा कांगड़ा जिलाके लाहौल प्रान्तमें इसके बीजोंको भेजकर वहाँ खेती उगवायी। परिणाम यह हुआ कि पंजाब गवर्मेण्टने इसके विक्रयकी बन्दिशें पंजाबसे उठा लीं। अब प्रत्येक व्यक्ति कश्मीर स्टेटसे बाहर कहीं लगा सकता, रख सकता और बिना परमिट (पास) के बेंच सकता है। इसका बीज अन्य स्थानोंमें पहुँच जानेसे इन दो तीन वर्षोंमें इसकी खेती काफी बढ़ी। इसी कारण इस वर्ष कुठ बाजारमें काफी आयी और इसका बाजार भाव काफी गिर गया।

यद्यपि कुठका पूर्ण अभाव कभी नहीं हुआ, तो भी ठेका होने और चीनमें जानेके कारण भारतमें प्रायः कम रह पाती थी। इसीलिये महँगी और बहुत स्थानोंमें अप्राप्य रही। जब जो चीज महँगी हो और प्रायः कठिनतासे मिले और माँग अधिक हो, तो दूकानदार उसके स्थानमें दूसरी चीज देने तथा नकली चीजें मिलाकर बेंचनेका प्रपंच करते हैं। इसीलिये पंजाबको छोड़कर प्रायः अन्य प्रान्तोंमें वैद्योंको यह मिलावटका या नकली मिलता था। जभी, "कुठ क्या है ? कैसा होता है ?" इसके सम्बन्धमें वैद्य समुदाय सन्देहमें रहता आया है। अभी थोड़े दिनकी बात है अनुभूत योगमाला नामक वैद्यक पत्रिकामें "सन्दिग्ध आयुर्वेदीय ओपधियाँ" नामके शीर्षक से ६४ ओपधियोंकी एक सूची प्रकाशित हुई है। उसमें उन्होंने कुष्ट और पुष्करमूलतकको संदिग्ध वनस्पतियोंमें स्थान दिया है। हालांकि यह कभी सन्दिग्ध नहीं थी। कश्मीर स्टेटके जंगलातके महकमेसे पता चलता है कि वहाँ ठेके द्वारा इसका विक्रय १८८०–८१ ईसवीसे होता चला आ रहा है। फिर आजतक वैद्य इसको सन्दिग्ध कहनेका साहस करें तो उन्हें क्या कहा जाय, यह मेरी समझमें नहीं आता।

२—कुठकी जन्मभूमि

इसका मूल उत्पत्ति-स्थान जिला हजारा, कश्मीर स्टेटका बारामूलावाला प्रान्त, कष्टवार भद्रवार प्रान्त तथा चम्बा स्टेटका मनमहेस और पांगी-की-जोत नामके स्थान थे। हजारों वर्षोंसे इन्हीं प्रदेशोंके हिमाच्छादित स्थानोंमें और उसके आसपास होता चला आया है। इसकी उत्पत्ति प्रायः सात हजार फुटसे लेकर बारह हजार फुटकी हिमाच्छादित गिरिशिखरपर देखी जाती है। परीक्षाओंसे सिद्ध हो गया

है कि यह हिमालयके किसी भी ऊँचे स्थानपर लगानेसे लग जाती है। इसीलिये अब कश्मीरसे लेकर टिहरी गढ़वाल तक फैल गयी है। यह वनस्पति बहुत प्राचीन वनस्पतियोंमें से है। इसका उल्लेख अथर्ववेदमें कई जगह आया है।

३—उसके रूप आदिका वर्णन

इसका क्षुप ४॥—५ फुट तक सीधा उठता है, बहु वार्षिक होता है। बरफ गलनेके कुछ दिन पीछे पत्र निकलने लगते हैं। जेठ-आसाढ़में अंकुर निकलते हैं और कार्त्तिकमें जब काफी ठंढ पड़ने लगती है इसके पत्ते जल जाते हैं। केवल डंठल खड़े रह जाते हैं। वह भी वर्फबारीमें टूट-फूट जाते हैं। इसके पत्तोंकी आकृति राईके बड़े पत्तोंके समान होती है। पत्ता आगेसे चौड़ा पीछेसे पतला होता चला जाता है। अर्थात् पत्ते गावदुम होते हैं। कुछ पत्ते बीचसे तीन-चार हिस्सोंमें बँट भी जाते हैं। पत्तेके किनारे आरे सरीखे या कँगूरेदार होते हैं। पत्तेके बीचमें एक बड़ी रेखा चलती है। उसीमेंसे पत्राच्छादक और रेखाएँ निकलती हैं। पत्ता खुरदरा और वृन्त-विहीन होता है, अर्थात् पत्र-दण्डी नहीं होती, मूल दण्डसे ही पत्रका भाग लगा होता है। पत्रकी चौड़ाई आगेकी ४ से ६—७ इंचतक और लम्बाई १२—१८ इंचतक होती है। अंकुरोदय होनेपर वह पत्ता जैसे-जैसे बढ़ता है धरतीपर सरसों या राईकी तरह चारों ओर फैलने लगता है। तीन-चार बरसोंमें जाकर उसमेंसे ऊँटकटारा या राईके समान एक मूल तना या डंठल निकलता है जो ऊपर जाकर कुछ शाखा प्रशाखाओंमें बँट जाता है। इसके डण्ठलकी लम्बाई चार-पाँच फुटतक चली जाती है। डण्ठल या मूलतना बीचसे रेंडकी तरह पोला रहता है। उस डण्ठलपर पत्र-रचना विषम होती है, मूलकी अपेक्षा डण्ठलपर, छोटे पत्ते होते चले जाते हैं। शाखाओंके अन्तमें तीन-तीन चार-चार फूलोंके गुच्छे निकलते हैं। फूलकी आकृति चन्द्रमल्लिकाके (गुलदाउदीके) समान ज्वालामुखी फूल जैसी होती है। फल अव्यक्त अवस्थामें ईषत् नील-पीत वर्णका पुष्पपत्र द्वारा छोटे-छोटे कांटोंसे युक्त होता है। फूल खिलनेपर कुछ पीला सूरजमुखीकी तरह होता है। बीजोंकी शकल भी इससे मिलती है। फूल भादोंमें खिलते हैं और कार्त्तिकमें बीज पककर गिरने लगते हैं। [आरंभमें रंगीन चित्र देखिये।]

४—उसकी जड़

इसके जड़की शकल मूली गाजरकी तरह होती है। किसी-किसी जड़में शाखाएँ भी हो जाती हैं। इसकी लम्बाई ज़मीनमें कभी-कभी दो-दो फुट तक चली जाती है। जड़में छोटेछोटे रेशे या रोएं होते हैं जो आसपासकी भूमिमें फैल जाते हैं। उन्हींके द्वारा यह अपना खाद्य चूसता है। इसके मूलका रंग हल्का पीला सफेदीमायल होता है। उखाड़नेपर अच्छी तरह सुखाया जाय तो उसका रंग ज्योंका त्यों बना रहता है। इसे यदि पूरेका पूरा सुखा लिया जाय तो यह हरिनकी सींगकी तरह लम्बी-लम्बी सीधी छुरियोंमें मरोड़ खाकर और सिकुड़कर सूख जाता है। इसीलिये तो शास्त्रकारने "मृगशृङ्गोपमंकुष्ठं" अर्थात् कुठ मृगके सींगकी आकृतिका होता है और तोड़नेपर भी मृगशृंग जैसा तोड़में दिखाई देता है, ऐसा लिखा है।

५—संग्रह करनेका समय

इसका मूल चार-पाँच बरसोंमें काम लायक होता है। जबतक इसमें बीज न आवें उखाड़ना नहीं चाहिये। कुछ लोग इसे भादों कुआँरमें उखाड़ लेते हैं। उस समयका उखाड़ा कुठ कच्चे रससे युक्त रहनेसे कम गुणवाला होता है और सूखकर दो सेरमें ६ छटांक ही रहता है। यदि इसे मार्गशीर्षमें जबकि इसके पत्ते बीज झड़ जायँ, उखाड़ा जाय, तो पूर्ण गन्धयुक्त, गुणयुक्त तथा दो सेरमें बारह छटांक सूखकर प्राप्त होता है। इसके मूलको उखाड़ कर उसी समय इसे कोई मन्द-मन्द आँचपर भूनते हैं। कोई इसे भूभुलमें दबा देते हैं। जब लगभग आधा रस सूख जाता है तो इसे निकाल कर तीन-तीन चार-चार इंचके टुकड़े काटकर इसे या तो टोकरोंमें डालकर झकोरते हैं या इन्हें लम्बी-लम्बी शिलाओं पर डालकर मलते हैं। ऐसा करनेसे इनके रोएं, मिट्टीके कण और ऊपरकी पतली श्याम वर्णकी त्वचा दूर हो जाती हैं। तब इसे धूपमें सूखनेके लिये डाल देते हैं। यदि इसे अग्निपर न भूना जाय तो इसका बजन सूखने पर बहुत घट जाता है। उसका वर्ण भी अच्छा नहीं रहता। ऐसा कुठ प्रायः श्याम वर्णका रहता है जो अग्नि पर आधा सूखा होता है उसका वर्ण हलका पीला उत्तम सुगन्धयुक्त होता है।

६—इसका उपयोग

इसका उपयोगी अंश मूल ही होता है जो कुठ के नामसे बाजारमें बिकता है। किन्तु इसका डण्ठल जिसका वर्ण भूरा, काला और पीला होता है युक्त प्रान्तमें पुष्कर-मूलके स्थानमें पन्सारी लोग बेंचते हैं। पुष्करमूलके नामसे बिकनेवाली पोली-पोली लकड़ियाँ वास्तवमें इस कुठ की शाखाएं मात्र हैं जिनमें कोई गुण नहीं होता। इन डण्ठलोंकी बिक्रीने ही अनेक वैद्योंके विचारोंमें भ्रम उत्पन्न कर दिया।

७—कुठमें मिलावट

जबसे कुठ अधिक महँगा हुआ है, निम्नलिखित चीजोंकी मिलावट कर देते हैं। प्रायः पुष्करमूल इसकी आकृति और गन्धमें बहुत सम-समीपी होता है, इसीलिये इसको मिला देते हैं। चोटकमूल भी अत्यन्त सुगन्धित होता है। यह भी उसकी आकृतिसे मिलता है। इसे मिला देते हैं। काली कुठमें काला पुष्करमूल भी मिलाया जाता है। ढुठ नामक एक वनस्पतिमूल है जिसको यूनानी वाले मीठा कुठ कहते है उसके छोटे-छोटे टुकड़े भी मिला देते हैं। धूप नामक जड़ी भी इसकी मैली गांठों जैसी होती है। निकृष्ट कुष्ठमें उसे भी मिला देते हैं। उक्त वस्तुओंकी मिलावट मन पीछे सेर दो सेरसे अधिक नहीं होती। किन्तु, अब प्रायः लोग मिलावट नहीं करते क्योंकि व्यापारी बहुत अच्छी तरह इसकी पहचान रखते हैं। मिलावटकी कुठका भाव कम होता है। प्रायः यह पंजाबमें आकर ही बिकती है इसीसे मिलावट करना बन्द होगया। हाँ, अन्य प्रान्तोंमें प्रायः कुछ पन्सारी कुठके स्थानमें पुष्करमूलको या नकली मीठे कुठको बेचते हैं। कुष्ठ और पुष्करमूल बहुत ही साम्याकृति गन्धयुक्त वनस्पतियाँ हैं। इसलिये वैद्य प्रायः धोखा खाजाते हैं। इन दोनोंमें क्या अन्तर है? आगेके किसी अंकमें पुष्करमूलके वर्णनमें देंगे।

८—कुठके गुण

ग्रन्थोंमें कुष्टको कटु उष्ण, तिक्त कहा है। यह कफ और वात नाशक है। कुठ कुष्ठ, रक्तपित्त, गुल्म, विषदोष, खसरा, दाद, चम्बल, विसर्प, अर्श, अपस्मार, कास, श्वास, हिक्का, ज्वर नाशक है। लगानेसे मुखपर निकलनेवाली जवानीकी पिटीकाओं झांइयोंको दूर करता है, वर्णको बढ़ाता है। प्रायः यह लगानेमें अधिक प्रयुक्त हुआ है। नव्य मतानुसार कुठ उष्ण, उत्तेजक, कफ, श्वांस, विशूचिका एवं अजीर्णमें हितकर है। पुराने चर्म रोग जैसे खारश, चम्बल, दाद, मण्डल, कुष्ठ आदिमें काफी लाभकारी है। आमवात शोथमें, हस्तपाद शोथमें इसके लेपसे लाभ होता है। शिरःशूलमें भी लेप हितकर है। व्रणोंको रोपण कर्त्ता है। दाहको दूर करता है। अफीमके बदलेमें इसका धूम्र पान करनेसे अफीमचीको कुछ शान्ति मिलती है। दांतके दर्द और पार्श्व शूलमें लगानेसे लाभ होता है।

धातुओंकी मिलावटसे सोनेको अलग करना

[श्री दिलीपचन्द्र स्नातक, मैनेजर, पंजाब आयुर्वेदिक फार्मेसी]

सोनेकी भस्म बनाते समय अकसर वैद्य लोग उसमें अन्य धातुओंका मिश्रण करते हैं। या सीसा या नागकी कटोरी बनाकर उसमें स्वर्ण रखकर भस्म बनानेकी कोशिश करते हैं। फल यह होता है कि स्वर्णकी भस्म तो बनती नहीं, उलते सीसामें स्वर्ण मिल आता है। अकसर चांदी मिलाकर वैद्य इसे भस्म बनानेकी वृथा कोशिश करते हैं और सोनेको मिलाकर खराब कर लेते हैं। ऐसी दशामें सोनेको फिर अलग करना चाहें तो नहीं कर पाते। हम यहां अलग करनेकी सरल और उत्तम विधि देते हैं। इससे सोना शुद्ध मिलेगा।

सोनेको अलगानेकी विधि

सीसा, रांगा, जस्ता या चांदी, तांबा भी मिला हो तो उसे निम्नविधिसे निकालें। चांदी सोना गलानेकी कुठाली

लें। बबूलकी छालकी भस्म २ भाग और चूना कलई १ भाग, दोनोंको छानकर उस कुठालीमें भरकर उसे खूब दबा दें। जब राख अच्छी तरह बैठ जाय तब मोगली आदिसे रगड़कर उस कुठालीके मध्य ऐसी गहराई बनावें जिसमें सोना मिली धातुएं आजायँ। यदि भस्म अच्छी तरह न बैठे तो जरा जलका छींटा देकर राखके ऊपरकी तहको गीला करके फिर अच्छी तरह उसे दबाकर चिकना गड्ढा बना दें। जब इस तरह कुठालीके मध्य राखकी दृढ़ कुठाली तय्यार हो जाय तो उसपर सोना जो अन्य धातुओंका मिश्रण हो रहा हो रखे। स्मरण रहे कि यदि सोना तोला दो तोला हो तो उसमें ५-७ तोला चांदी डाल दें और सिक्का रांगा थोड़ा हो तो यह भी ५-७ तोला और मिला दे, सिक्का मिलाना चाहिये। फिर उस कुठालीको जिसमें मिली धातुएं डाली हैं आगपर चढ़ाकर धौंकनीसे सोनेको गलावें। सोनेके गलनेपर सीसा, कलई रांगा या जस्ता आदि धातुएं तो धुँवां देकर उड़ने लगती हैं। जब तक धुँवां निकलता रहे उसे तेज़ धौंकनीसे धौंकते रहें। जब धुँवां निकलना बिलकुल बन्द हो जाय तो फिर कुठाली निकालकर उसपर पानी छिड़क दें ताकि गली हुई धातुएँ जम जायँ फिर उस डलीको निकाल लें और राख आदि जो लगकर उसपर जम गयी हो उसे हथौड़ेसे कूटकर झाड़ डालें। हथौड़ेकी चोट खाकर यदि वह सोने चांदीकी मिलावट कड़कदार न हो तो समझें कि इसका सीसा रांगा आदि उड़गये हैं। यदि कड़कदार हो तो समझें कि इसमें अभी कुछ सीसा है। इसे फिर दूसरी कुठालीमें रखकर सुहागा देकर गलावें। जब गल जाय तो कुछ देर धौंकते रहें और देखें कि उक्त गला हुआ माल चुरता या पकता तो नहीं। यदि पकता हो और धुँवां दे तो समझो कि अभी सीसा उड़ रहा है। जब गले हुए चांदी सोनेका मिश्रण न तो पके न उसमें कोई विकार दिखाई दे तब कुठालीको निकालकर गले हुए उस मिश्रणको ऊपरसे पतली धारसे जलमें डालें ताकि उसके छोटे-छोटे रवे बन जायँ। अब इसका रंग सफेद चांदी जैसा होगा। स्याही हो तो इसमें लोहा या तांबेका अंश जानना चाहिये। फिर इन रवोंको यदि ऽ= चाँदी हो तो ऽ॥ शोरेके तेजाबमें एक अलुमीनियमके बर्त्तनमें डालें। इसमें कोई ऽ– जल डालकर इसे आंच पर चढ़ा दें। इसे आग पर पकावें। जब यह पकने और उबलने लगे तो उबलनेसे बचावें। जब पकते-पकते चांदी गल जाय, सोना नीचे बैठ जाय, पकना बन्द हो जाय, तब उसे उतार लें। उसपर कुछ पानीका छींटा देकर देखें कि सोना कत्थई रंगका होकर नीचे बैठ गया है। उस समय उस तेजाबको दूसरे अलुमिनियमके बर्तनमें निकाल लें। उस सोनेमें फिर ३ छटांकके लगभग और तेजाब डालकर फिर उसे पकावें। यदि उसमें कुछ चांदी तांबे आदिका और अंश होगा तो वह भी घुलकर निकल जायगा, जब उसमें फिर विकार उठता न दिखाई दे तो उतार ले और उसपर जरा जलका छींटा मारकर ऊपर-ऊपरसे तेजाब उस पहले बर्त्तनके तेजाबमें डाल लें और अब सोना जो नीचे बैठा है उसमें थोड़ा-थोड़ा जल डालकर धोवें और उसका जल एक अलुमीनियमके बर्त्तनमें जमा करते जायँ। जब सोने पर पानी डालनेसे उस पानीका रंग न बदले, सफेद दूधिया न हो, तब जानें कि धुल गया है। उसको किसी लोहेकी करछी आदिमें डालकर उसका पानी सुखा दें। यह अब सोनेका चूर्ण होगा जो बिलकुल शुद्ध होगा। इस चूर्णको एकत्र करके कुठालीमें डालकर सुहागा देकर गला लें। सोनेकी डली बन जायगी। सोना तो इस तरह शुद्ध रूपमें निकल आया। अब चांदी रह गयी। इसको निकालना है।

चांदी निकालनेकी विधि

मिट्टी या चीनीके बर्त्तनमें उस तेजाबको जिसमें चांदी घुली होती है डाल दें और उस तेजाबमें तांबेके कुछ कुछ छीलन डाल दें। इसको एक दो दिन पड़ा रहने दें। अब तांबा घुल जायगा और चांदी नीचे बैठ जायगी। चीमटेसे उस तेजाबसे तांबेका छीलन सावधानीसे निकाल दे और फिर तेजाबको दूसरे चीनी या मिट्टीके बरतनमें डालदें। नीचे बैठी हुई चांदीको एकत्र करके किसी गफ कपड़ेपर डालकर उसपर पानीकी धार छोड़ते रहें ताकि उसमेंका समस्त तेजाबी असर जाता रहे। इस चांदीको इकट्ठा करके भट्टीकी आंचपर सुखा लें। यह शुद्ध चांदीका चूर्ण होगा जिसे गलाकर डली बना लें।

तुत्थ बनाना

अब जो तेजाब बचा है उसमें ताम्रका नोषेत बना

हुआ होगा। इस तेजाबको कढ़ाईमें डालकर गाढ़ा करें। जब रवा बननेके योग्य गाढ़ा हो जाय तो इसे जमा दें। दो तीन दिनमें तुत्थके नीले रवे बर्त्तनमें जमे दिखेंगे जिसको तेजाबवाले पानीसे भिन्न करके सुखा लें। बस यह नोपेतका तुत्थ होगा। यह वह तुत्थ नहीं है जो नीला थोथा या तूतिया कहलाता है। कई बार इस लेखमें जितनी बातें बतायी गयी हैं अनुभवमें लाकर अच्छी तरह देख और समझ ली गयी हैं। जो बात पूँछनेकी हों, वैद्य इस सम्बन्धमें पूँछ सकते हैं। शहरोंमें न्यारिये स्वयम् तुत्थ नहीं बनाते बल्कि इस तुत्थवाले पानी या तेजाबको पुनः तेजाबके कारखानेमें वापस भेज देते हैं। वह जलको उड़ा कर तेजाबको गाढ़ा कर लेते हैं और तुत्थके क्रिष्टल बनाकर उसे अलग कर लेते हैं, बाकी तेजाबको पुनः साफ करके तेजाबमें मिला देते हैं।

सोनेको अम्लराजके द्वारा अलगाना

कोई-कोई वैद्य एक भाग शोरेका तेजाब और तीन भाग निमकका तेजाब मिलाकर अम्लराज बना लेते हैं। इस अम्लराजमें सोना घुल जाता है। अन्य किसी तेजाबमें सोना नहीं घुलता। इस घुले हुए तेजाबसे सोना अलगाना हो तो इस घोलमें हरे कसीसके कुछ रवे डाल दें। जैसे-जैसे कसीस घुलता जायगा सोनेके कण नीचे बैठते चले जायँगे। जब कसीस घुलना बन्द हो जाय सारा सोना नीचे बैठ जाय तो तेजाबको ऊपरसे उतार दो। तहमें बैठे सोनेको एकत्र करके पानीसे धो लो। यह स्वर्णका लवणजनके साथ मिलकर बना स्वर्णलवण होगा। अर्थात् यह स्वर्ण लवणिद नामक एक यौगिक है जो विलायतसे बनकर आता है।

बाजारकी ठगीका भंडाफोड़

[श्रीस्वामी हरिशरणानन्दजी]

१—अकरकरा

अकरकरा नामसे बाजारमें एक तीन-चार अङ्गुल लम्बी और दो तीन-सूत मोटी जड़ें बाहरसे आकर बिकती हैं। यह हमारे देशकी उपज नहीं। जंजबार, अफ्रिका आदि देशोंसे आती है। बम्बई इसकी मण्डी है।

हमारे देशमें भी अकरकराके क्षुप पाये जाते हैं। प्रायः अनेक जगह गमलोंमें सुन्दरताके लिये लगाये जाते हैं। किन्तु इस अकरकराके मूलमें और बाजारमें आनेवाले अकरकराके मूलमें काफी अन्तर होता है। जितना मोटा मूल बाजारी अकरकराका होता है इतने मोटे मूलका यह नहीं हो पाता, चाहे कितना ही पुराना पौधा क्यों न हो जाय। इसकी जड़ें झखरा रहती हैं और बाजारमें मिलनेवाला एक तना या मूल तना शाखायुक्त देखा जाता है। यद्यपि हमारे देशके पौधेके फूलमें ठीक वैसी ही चरपराहट होती है जैसी अकरकरेमें, तो भी मूलमें इसके इतनी तीक्ष्णता नहीं होती जितनी बाजारीमें होती है। अकरकरा महँगी चीज है इसीलिये इसमें मिलावट भी करते हैं तथा बिलकुल नकली भी बिकती है।

नकली और असली अकरकरामें अन्तर

असलीकी जड़ें एक तो ज्यादा मोटी नहीं होतीं। तीन-चार इञ्चसे अधिक लम्बी नहीं होतीं। इससे भिन्न अकरकराके उक्त मूलके उस स्थानपर जहाँ अङ्कुर निकलता है या पत्र-शाखाएँ उत्पन्न होती हैं, वहाँपर बारीक-बारीक श्वेत धूसर वर्णके रोएँ और कुछ तन्तु मूलके उक्त स्थानको आच्छादित किये रहते हैं। और इसके टुकड़ेको तोड़कर मुँहमें डालो तो यह जिह्वापर रगड़े खाकर लालारससे मिलकर जहाँ-जहाँ लगता चला जाता है, काली मिर्चकी तरह झनझनाहट उत्पन्न करता चला जाता है और कुछदेरमें इसकी झनझनाहटका वेग इतना बढ़ता है कि मानो ऐसा प्रतीत होने लगता है कि सांस रुक रही है, गला घुट रहा है। यह जितनी देरतक मुँहमें पड़ा रहेगा यह दशा बनी रहेगी प्रत्युत बढ़ती ही चली जायगी। नकली अकरकरेमें यह बात नहीं होती।

नकली अकरकराकी जड़ें यद्यपि देखनेमें बाह्य रचनासे बहुत कुछ सादृश्य रखते हैं, तथापि निम्न अन्तर होता है। एक तो यह जड़ें असली अकरकराकी जड़ोंसे लम्बी और मोटी होती हैं। दूसरे इनके पत्रांकुरके फलस्थानके पास लोमाच्छादन नहीं होता। तीसरे इसके और असली अकरकराके तोड़में भी अन्तर होता है। चौथे जब इसे मुँहमें डालो तो पहले यह कुछ झनझनाहट देता है किन्तु इसकी जड़का टुकड़ा मुँहमें कुछ देरतक पड़ा रहे तो उसकी झनझनाहट बढ़ती नहीं, प्रत्युत घटती चली जाती है।

वास्तवमें नकली अकरकराको अर्थात् अकरकरा सदृश्य किसी वनस्पति मूलको इसके बेचनेवाले इसको अकरकरेके क्वाथमें भिगोकर सुखा लेते हैं। एक सेर अकरकराचूर्णके क्वाथमें मनभर नकली जड़को भिगो देनेपर उसमें ऊपर-ऊपर अकरकराका इतना असर बैठ जाता है कि मुहँमें डालनेसे वह झनझनाहट देने लगता है किन्तु बादमें कुछ नहीं रहता। इसी अकरकरेके छोटे-छोटे मूलको असली अकरकरामें भी मिला देते हैं जिसको पहचानकर निकालना किसी बुद्धिमान्का ही काम है।

२-काला और सफेद जीरा

सफेद जीरा भारतवर्षके ही कई प्रान्तोंमें उत्पन्न होता है। यथा पंजाब, युक्तप्रान्त, गुजरात आदि में। अमृतसर और देहली इसकी भारी मण्डियाँ हैं। यद्यपि सफेद जीरा इतनी महँगी चीज नहीं है। १०-१२ रुपये मन बिकता है, तो भी देशमें इसकी खपत बहुत है। इसीलिये इसमें मिलावटकी सूझी। सिन्धमें सक्कर शिकारपुरकी ओर एक ऐसा तृण जातिका घास होता है जिसकी सींकपर जीरेकी आकृतिका फल लगता है। आज कोई ३५-४० वर्षसे वह बीज उस प्रान्तमें संग्रह होकर शिकारपुरमें आकर बिकता है। फसलके मौकेपर उसका वहाँ ३-४ रुपये मन भाव होता है। अमृतसरमें आकर वह ६-७ रुपये मन पड़ जाता है। हजारों क्या लाखों रुपयोंका वह सींकज़ीरा यहाँ आकर असली ज़ीराके साथ मन पीछे ८-१० सेर मिलाकर बेंचा जाता है। कितने ही व्यापारी इस तरह इसीका व्यापार करते हैं। यहां इस तरहका मिलावटी जीरा तय्यार करके देसावरको भेजा करते हैं और वह इसतरह रुपया दो रुपया मनकी बचत करके हजारोंका नफा उठाते हैं।

असली और नकली जीरेकी पहचान

यदि असली और नकली जीराको नंगी आँखों देखा जाय तो कोई अन्तर प्रतीत नहीं होता किन्तु, यदि इन्हीं चीजोंको किसी आतशी शीशा या सूक्ष्मवीक्षण यन्त्रसे देखा जाय तो दोनोंमें पड़ी हुई झुर्रियोंमें अन्तर दिखाई देता है। असली जीरेकी झुर्रियाँ बिलकुल सीधी पड़ती हैं, किन्तु सींक जीरेकी झुर्री जरा बल खाकर पड़ती है जिसे खाली आँखोंसे नहीं देखा जा सकता। इसके सिवा दोनों प्रकारके जीरेके दानोंको अलग-अलग मुँहमें डालकर उनको दाँतसे तोड़कर देखा जाय तो असली जीरा दाँतके नीचे बहुत सख्त टूटता है उसमें गिरी होती है और तोड़नेके समय उसमें बहुत अच्छी सुगन्ध भी निकलती है। नकली जीरेमें इनमेंसे कोई बात नहीं पायी जाती। वह दाँतों के नीचे आनेपर प्रायः पिसकर टूटता है, तोड़नेमें सख्त नहीं होता, न टूटनेके समय किसी प्रकारकी सुगन्ध ही देता है। मिश्रित जीरेमेंसे कुछ दानोंको चुन-चुनकर इसतरह इन दोनोंकी कई बार परीक्षा करनेपर पता लग जाता है।

एक और परीक्षा

जीरेके थोड़ेसे दानोंको लेकर जलमें भिगो दें। दो तीन घंटेके बाद जब वह फूलेंगे तब अच्छी तरह पता लग जायगा। पहले तो पानीमें डालते ही नकली जीरा हल्का होनेके कारण तैरता रहता है। दूसरे फूलनेपर अपनी असलियत प्रकट करदेता है। इस तरह इनकी पहचान हो जाती है।

काला जीरा

काला जीरा हमारे देशकी उपज नहीं है। यह हिरात, काबुल आदि यवन देशोंसे आता है। यह अत्यन्त सुन्दर मनोमोहक सुगन्धसे युक्त होता है। दाल भाजीमें थोड़ा डाल दिया तो ये अत्यन्त स्वादिष्ट बन जाती हैं। यह अच्छा वातनाशक भी है और पाचन क्रियापर इसका परिणाम अच्छा होता है। इसीलिये इसका व्यवहार हमारे देखनेमें बढ़ गया है। यह जीरा सफेद जीरेकी अपेक्षा अत्यन्त महँगा होता है। जितनी इसकी खपत रहती है उतनी इसकी

आय भी नहीं है। इसीलिये व्यापारी इसमें सफेद जीरेकी अपेक्षा अधिक मिलावट करते हैं।

असली जीरेकी परीक्षा

असली काले जीरेके छोटे-छोटे भूरे-भूरे चिपटे दाने होते हैं किन्तु इन दानोंके साथ बहुत कुछ जीरेकी बारीक-बारीक लकड़ियाँ या जीरा वृक्षका वह भाग मिला रहता है जहाँपर गुच्छोंमें जीरा लगता है। वास्तवमें जीराका यह भाग भी कुछ-न-कुछ सुगन्ध-युक्त होता है। कितना ही अच्छे-से-अच्छा जीरा आप लें उसमें थोड़ा बहुत यह तृण-तन्तु अवश्य होगा। यह भाग यदि जीरामें मिला हो तो उसे नकली या मिलावटका नहीं कहा जाता। यह भाग आसानीसे बीजोंसे अलग भी हो जाता है, और मिलाया भी जा सकता है। इस तृण-तन्तुसे मिले जीरेको आप हथेलीपर डालकर दूसरी हथेलीसे मलें और उसकी सुगन्ध लें तथा बारम्बार मुँह की फूँक मार-मारकर मलते जायँ, यदि जिस जीरेमें मिलावट न होगी तो उस जीरेको अधिक मलनेपर उसके रंगमें कोई अन्तर न आवेगा यदि नकली जीरा इसमें मिला होगा तो कई बारके मलने पर नकली जीराके बीजोंपरसे रंग उतर जायगा और वह असली जीरासे भिन्न दिखाई देगा। ऐसे मिश्रित जीरेमें से कुछ दानोंको छाँटकर पानीमें डाल दो तथा दूसरे बर्त्तनमें असली जीरेके कुछ दाने भी भिगो दो और दोनोंको मलो। असली जीराका जल जैसा-का-तैसा रहेगा, पर नकली जीरेका पानी कुछ हल्का रंगदार हो जायगा। दूसरे उन दोनोंके वर्णका अन्तर भी स्पष्ट हो जायगा।

नकली जीरा क्या चीज है? वास्तवमें नकली जीरा भी एक दूसरे प्रकारका सींक जीरा है जो दो प्रकारका आता है। एक भूरा होता है और दूसरा मटमैला। यह दोनों ही जीरे असलीमें मिलाये जाते हैं। भूरे रंगका सींक जीरा तो आसानीसे काले जीरेमें खप जाता है, किन्तु मटमैले जीरेको रंगकर मिलाते हैं। भूरे सींक जीरेको और असली जीरेको यदि सूक्ष्मवीक्षणसे देखा जाय तो दोनोंकी स्पष्ट रचना भिन्न-भिन्न दिखाई देती है। फिर यह सींक जीरा सुगन्ध-रहित भी होता है।

आयुर्वेदकी उन्नतिके लिये हम क्या क्या करें?

[श्रीयोगेन्द्रपालशास्त्री आयुर्वेदाचार्य]

डाक्टरोंका मत है—'हिन्दुस्तानी वैद्य मरनेवालोंकी संख्या बढ़ानेमें सिद्धहस्त हैं।' वैद्य लोगोंका कहना है, ये बिचारे डाक्टर लोग तो योरुपकी फार्मेसियोंके एजण्ट हैं, इन्हें तो इतना भी ज्ञान नहीं कि चिकित्सा होती क्या है? दोनों ही एक दूसरेके तईं बुरी निगाहोंसे देखते हैं। डाक्टर विदेशियोंकी सहायता प्राप्तकर अपनेको अजेय समझते हैं। वैद्य लोग 'न दैन्यं न पलायनम्' को सामने रखते हुए अभिमानसे अकड़े हुए हैं, मानों समस्त संसारमें एकमात्र येही चिकित्साशास्त्र विशेषज्ञ हैं। किन्तु दोनों ही ग़लतीपर हैं।

वैद्य लोगोंको यह भूल जाना चाहिये कि उनका आयुर्वेद सर्वांगपूर्ण है। मैं तो दावेसे कहता हूँ कि कोई विद्या पूर्ण नहीं हो सकती। वह अनन्त है, वह अनादि है। जितना बढ़ाओगे बढ़ती जायेगी, इसका अन्त होगा ही नहीं। इस वास्ते निम्न बातोंपर यदि हमने विचार कर कार्यमें परिणत करनेका प्रयत्न किया तो निःसन्देह हम अपने पूर्वजोंके ऋणसे उऋण होंगे। हमारे पूर्वजोंकी आत्माएँ हमें आशीर्वाद देंगी और हम भी उन्नत लोगोंकी पहली पँक्तिमें बैठनेके योग्य हो सकेंगे।

१—आयुर्वैदिक शारीरिक स्थान खूब विशद होना चाहिये और दुराग्रहको छोड़ जो सच्ची बात हमें जँचे उसका इस स्थानमें समावेश करें। और जो ठीक प्रतीत न हो उसे प्रक्षिप्तका नाम देकर निकाल बाहिर करें। पुनः शारीरिक स्थानपर उत्तमोत्तम ग्रन्थोंका निर्माण होना चाहिये जो सर्वसम्मत तथा सर्वमान्य हों।

२—यही बात निदान के विषयमें कही जा सकती

है। आज अनेक नये रोग उत्पन्न हो गये हैं जिनकी उत्पत्ति, पूर्वरूप, निदान, सम्प्राप्ति आदिका बहुतोंको क्या सौमेंसे ९९ को ज्ञान नहीं होता। मेरा कोई भाई यह कह सकता है कि इन सब रोगोंका आयुर्वेदीय रोगोंमें अन्तर्भाव हो सकता है। इसपर केवल इतना ही कहना काफ़ी होगा कि अन्तर्भाव करनेसे आयुर्वेदकी पूर्णता सिद्ध नहीं होगी उल्टे उसे और भी बदनाम करनेकी राह ढूँढ निकालना है।

३—आयुर्वेदकी उन्नतिको लक्ष्य कर इस नामधारी-वैद्योंकी बढ़ती हुई बाढ़के रोकनेके लिये एक मजबूत बान्ध तैयार करना परम आवश्यक है। इसके लिये वैद्य-महामण्डलको चौकन्ना होना चाहिये। बहुतसे चलते हुए लोगोंने रुपया लूटनेका यह अनूठा ढंग निकाला है। इससे बहुत ही बुरा प्रभाव पड़ रहा है।

४—प्रान्त प्रान्तमें प्रयोगशालाएँ और गवेषणागृह होने चाहियें।

५—विज्ञानको दुत्कार न देकर इसके द्वारा अपना संशोधन करना चाहिये। इससे औषधिनिर्माण तथा व्यवसायमें बड़ी सहायता मिलेगी। भारतका कला-कौशल बढ़ेगा। और साथ ही आयुर्वेदीय चिकित्सापद्धति सरल तथा सुंदर बन जायगी।

६—शल्यचिकित्साके पृथक् पृथक् महाविद्यालय हों और सुश्रुतोक्त शल्य-क्रियोपयोगी शस्त्र तैयार करके उनका प्रचार किया जाय। आधुनिक अल्लोपैथिक शस्त्रोंका भी प्रयोग होना चाहिये।

७—प्रत्येक प्रान्तमें एक सर्वाङ्गपूर्ण आयुर्वेद वियालय हो जहाँपर तक्षशिला या ग्लासगो और लिवरपूलकी तरह प्रत्येक विभागके विशेषज्ञोंद्वारा शिक्षा दी जाया करे।

८—एक वैद्यकज्ञान विशेषज्ञ विद्वानोंका महामण्डल हो जो हर एक स्थानपर बैठकर नित नये आविष्कार किया करे। नये-नये रोगोंकी सम्प्राप्तिसे अन्य वैद्योंको आगाह किया करे तथा मानव-देह सम्बन्धी तत्त्वोंका अनुसन्धान किया करे।

९—अन्धाधुन्ध पदक वितरणसे बड़ी-बड़ी हानियाँ हो रही हैं। लोग इन पदकों और सम्मानपत्रोंकी ओटमें दिन दहाड़े डाके डाल रहे हैं। इस तरहसे जहाँ वे रोगियोंको अनुचित रूपसे कष्ट देनेके उत्तरदायी हैं वहाँ वे आयुर्वेदको कलंकित करनेका भी उत्तरदायित्व रखते हैं। इसका कड़ा नियन्त्रण होना चाहिये।

इसी तरहकी बहुत सी बातें हैं जिनके न होनेसे आयुर्वेदकी मिट्टी खराब हो रही है। अन्य लोग इसकी दिल्लगी उड़ाते हैं। समय नींदका नहीं रहा। इस शताब्दिमें बड़े कुम्भकर्णोंकी नींद टूटी है। अन्य लोग उन्नतिकी ओर बढ़े चले जा रहे हैं जहाँ ये वैद्य पुरानी लकीरके फकीर बन आँखें मीच चुपचाप बैठे हैं। मेरा हरगिज यह मतलब नहीं कि आप हम आयुर्वेदको एकदम विदेशी बना डालें। मेरे विचारमें यह हमारी चिकित्सा पद्धतिकी मृत्यु होगी और साथ ही हमारा भी दुनियाँमें कुछ अस्तित्व न होगा। नहीं, मेरा केवल अभिप्राय महाकवि कालिदासके शब्दोंमें यह है:—

"सन्तः परीक्ष्यान्यतरद्भजन्ते, मूढः पर प्रत्ययनेय बुद्धिः।" आयुर्वेद चिकित्साको सर्वोत्तम बनानेके लिये इसकी त्रुटियाँ निकाल, कमियोंको पूरा करना कोई लांछनकी बात नहीं है। जहाँसे कोई अच्छी बात मिले ले लेनी चाहिये। हमारे आयुर्वेदसे ज्ञान प्राप्त करनेमें यदि प्राचीनकालमें चीन, यूनान और मिश्र आदि देशोंने कोई बुरा नहीं समझा तो आज हमें भी क्यों लाज आनी चाहिये?

हमें हठको छोड़कर अपना संगठन करना चाहिये, अपनी कमीको पूरा करना चाहिये। नये-नये साधनोंको अपनाना चाहिये। विद्यालय प्रत्येक दृष्टिकोणसे उत्तम हों। छात्रोंको मासिक वृत्तियाँ देकर देशान्तरोंमें भेजना चाहिये ताकि वे वहाँसे आकर आयुर्वेदको परिवर्द्धित कर सकें। व्यवसायिक दृष्टिसे भी इस ओर ध्यान होना चाहिये।
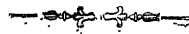
रोगके ठीक कारण और इलाज

[स्वामी हरिशरणानन्दजी वैद्य]

प्रश्न—आयुर्वेद शास्त्रका मूल स्तम्भ "दोष-धातु-मल-मूलं हि शरीरम्" दोष धातु और मल ही शरीरके मूल पदार्थ हैं। इनमेंसे दोष (वात पित्त कफ) वह व्यापक पदार्थ माने गये हैं जिनका सम्बन्ध केवल शरीरसे ही नहीं बल्कि वनस्पतियों, खनिजों औषधोंतकसे बताया गया। चिकित्साके समय हेतु-विपरीत चिकित्सा दोषोंको दृष्टिगत रखकर ही की जाती है यदि त्रिदोष-मीमांसाके लेखानुसार दोषोंकी उपस्थिति शरीरमें न मानें, न-षट्रस-मय द्रव्योंमें उक्त दोषोंका ज्ञान करें तो हम ऐसी स्थितिमें आयुर्वेद शास्त्रके अनुसार चिकित्सा करही नहीं सकते। हम व्याधियोंके रूपको कैसे, किस निदानके आधारपर समझें? और चिकित्साके लिये औषधगुण-ज्ञानार्थ किस निघण्टुका आश्रय लें? क्या कोई ऐसे आयुर्वेद-विषयक ग्रन्थ हैं जो त्रिदोषरहित चिकित्सा-पद्धति बतलाते हैं?
—एक वैद्य ग्राहक।

उत्तर—जबसे त्रिदोष मीमांसा प्रकाशित हुई तबसे अनेकों वैद्य उक्त प्रश्नसे मिलते-जुलते प्रश्न करते ही रहे हैं जिनका समय-समय पर समाधान भी करता रहा हूँ। किन्तु, लेखद्वारा मेरी ओरसे इसपर प्रकाश नहीं डाला गया। लेखद्वारा मैं आज अपना अभिमत प्रकट करता हूँ।

शरीरके मूल कारण—शरीरके मूल कारण त्रिदोष नहीं प्रत्युत शरीरके मूलभूत शरीरके सजीव-कोष (cell) हैं। इन्हीं सजीव कोषोंसे शरीरके रक्त मांस, अस्थि, शिरा, धमनी, नाड़ी, कला, बाल, खाल, वीर्य आदि समस्त अंग बनते हैं। इन्हें शरीरका मूल मानना चाहिये। यह एक एक जीव-कोष उसी तरह स्वतन्त्र जीवित प्राणी हैं जिस तरह हमें कीड़े मकोड़े जूँ आदि चलते-फिरते खाते-पीते और सन्तति उत्पन्न करते दिखाई देते हैं। यह शरीरमें व्यक्तिगत कार्य व्यापारोंमें अन्य प्राणियों की तरह स्वतन्त्र भी हैं। समष्टिगत पराधीन भी। मनुष्य-शरीरमें कितने जीव-कोष होंगे इसको कोई गिन नहीं सकता। इनका जीवन भी व्यक्तिगत स्वतन्त्र है, पर समष्टि रूपसे पर-तन्त्र, यह जीव-कोष शरीरमें सदा उत्पन्न होते, बढ़ते, और मरते भी रहते हैं। इन्हींके वृद्धि-रूपसे शरीरका वृद्धि-क्षय कहाता है। यही जीव-कोष समष्टि रूपसे शरीरकी अंगरचनामें बँटे हैं। और इन्होंने समष्टिरूपसे शरीर संरक्षणार्थ समस्त कामोंको परस्पर बाँट लिया है, इसीलिये दोष-धातुको शरीरका मूल न मान कर जीव-कोषोंको शरीरका मूल मानना चाहिये। यह हमारे विचारोंका पहिला सिद्धान्त है।

व्याधियोंके मूलकारण—इस शरीरका चलता हुआ जीवन-व्यापार जब किसी कारणसे रुकने लग जाता है या शरीरके अंग अपनी ठीक दैनिक चर्या पूर्ण नहीं करते उस समय शरीरमें बाधा उपस्थित होती है। उस बाधाका नाम व्याधि रखा जाता है। शरीरके चलते हुए कार्य-व्यापार किन-किन कारणोंसे बिगड़ने या बन्द होने लग जाते हैं इसका इस समय खूब अनुसन्धान हो रहा है। इसके अबतक चार कारण पाये गये हैं। मल, जैव, अभिघात, परिस्थिति-प्रभाव। हम इनपर संक्षेपमें विचार करेंगे।

मूल—"मलिनीकरणान्मलः" खाद्य, पेय और वायवीय पदार्थ जो शरीरके भीतर चले जाते हैं उनका उपयोग शरीर समय पर न कर सके या अधिक मात्रामें होनेपर वह समयके भीतर ठिकाने न लगें तो वह ग्राह्य द्रव्य शरीरके लिये अग्राह्य बनते चले जाते हैं। वह द्रव्य यदि जल्दी शरीरसे बाहर न निकल जायँ तो मलका (विकृतिका) रूप धारण कर लेते हैं उस मलके शरीरमें तीन रूप देखे जाते हैं ठोस तरल और वायुरूप। इन्हीं तीनों रूपोंमेंसे किसी एक दो या तीनोंकी विद्यमानतासे शरीरके चलते हुए जीवन-व्यापारोंमें व्याघात आता है या बाधा पड़ जाती है जिसे रोग या व्यथाके नामसे सम्बोधित करते हैं। ठोस मल, द्रवमल और वायु-मल सत्रह अठारह प्रकारके होते हैं और एक-एक कई जातिके शरीरमें पाये जाते हैं।

जो द्रव्य शरीरके जीवन व्यापारमें अनुपयुक्त हों, चाहे वह शरीरके भीतर बने हों या एकाएक बाहरसे प्रवेश कर गये हों, वह सब मल संज्ञक हैं! ठोस और द्रवरूप मल संज्ञक पदार्थोंका प्रवेश अधिकतर मुखद्वारसे ही होता है। वायुरूप मल पदार्थोंका प्रवेश नासिकाद्वारा होता है। बहुधा मलोंकी रचना हमारे शरीरकी रसायनशालामें होती रहती है जिसको कम तो किया जा सकता है पर सर्वथा रोका जा नहीं सकता।

हमारे शरीरमें मलोंकी उत्पत्ति कैसे होती है? हम अपने जीवन-व्यापारको चलानेके लिये या यों कहो कि चलते हुए जीवन-व्यापारमें शक्ति-ह्रासको दूर करनेके लिये नयी शक्तिके प्राप्त्यर्थ—अन्न, दाल, शाक, माँस, दुग्ध आदि सैकड़ों प्रकारके जो पदार्थ खाते हैं उन खाद्यपेय द्रव्योंमेंसे—यद्यपि हम अपनी समझके अनुसार अत्यन्त सार-ग्राही ऐसे पदार्थ खाते हैं जो शरीरकी क्षयपूर्त्तिमें पूरी तरह काम दें किन्तु, नित्य देखते हैं कि हम जितना कुछ खा-पी लेते हैं वह सबका सब शरीरमें नहीं खप जाता। उसका बहुतसा अंश मलमूत्रके रूपमें निकल जाता है। कुछ पसीना और श्वाँस-प्रश्वाँस क्रियासे भी निकलता है। खाद्यपेय द्रव्योंका अवशिष्ट भाग जो शरीरसे बाहर निकाला जाता है। कोई यह न समझ ले कि जितना कुछ अवशिष्ट होता है वह सब ही बाहर निकल जाता है। यह बात नहीं। यद्यपि अवशिष्टको निकालनेका व्यापार शरीरके अंग समय-समय पर करते ही रहते हैं, फिर भी उसका संग्रह मानसिक लोलुपता या असावधानीसे ऐसा होता रहता है जिसके कारण शरीरकी पाकशाला बिलकुल शुद्ध नहीं हो पाती। इसीलिये सबसे अधिक मलोंकी उत्पत्ति उस अवशिष्ट द्वारा उदरदरीमें होती है। "उदरम् व्याधि मन्दिरम्" उदर बीमारियोंका घर है यह कहावत अनुसन्धानसे अक्षरशः सत्य सिद्ध होती है। "दोषोऽजीर्णाज्ज्वरं कुर्यात्" ज्वर, जुकाम, सिरदर्द, पेटदर्द, बदनदर्द, अजीर्ण, अरुचि, तृषा, वमन, अतिसार, अध्मान आदि साधारण व्यथाएँ उदरमें मल संजननके आरम्भिक चिह्न हैं। मलोंकी उत्पत्तिका स्थान पाकशालाका समस्त स्थान (मुखसे लेकर गुदा पर्य्यन्त) तथा रसवाहिनी और रक्तवाहिनी तथा जीवकोषतक है। अर्थात् खाद्य द्रव्योंमें जहाँ रासायनिक परिवर्त्तन होता है वहाँ-वहाँ मल भी उत्पन्न होता रहता है। यद्यपि मलोंको शरीर सदा बाहर निकाला करता है किसी अयोग्य अग्राह्य पदार्थको एक क्षण भी किसी एक स्थान पर ठहरने नहीं दिया जाता, तथापि आंगिक शिथिलता, चाप (दबाव), गति-न्यूनता, परिस्थिति-प्रभाव आदि कई ऐसे कारण उपस्थित हो जाते हैं जिससे मल एक ही स्थानपर या उसके आसपास अधिक समयतक बना रहता है। बस, उसके अधिक समयतक बने रहने पर ही शरीरमें व्यथा होने लगती है। जो धीरे-धीरे विशेष लक्षणोंसे रोगका रूप धारण कर लेती है।

जैव—"जीवो जीवस्य जीवनम्" जीव ही जीवका जीवन है। अर्थात् सजीव जगत् सजीव जगत्पर जीवन-निर्वाह कर रहा है। वनस्पति जगत्को छोड़कर समस्त प्राणी-जगत् प्राणिसंसार या वनस्पति-जगत्को खाकर अपना जीवन चला रहा है। वनस्पतियाँ भी वैसी ही सजीव हैं, जैसे प्राणी। इस प्राणीजगत्में शेर, बाघ, बिल्ली, जिराक आदि ही दृश्य जगत्में दूसरे प्राणीको नहीं खाते, प्रत्युत अदृश्य जगत्में ऐसे भी प्राणी विद्यमान हैं जो दृश्य जगत्के प्राणियोंको खाते रहते हैं। लाखों मनुष्य इन शत्रुओंके नित्य शिकार होते हैं। हमने इन्हें अब देख लिया है, पर न तो हम इनको समूल नष्ट कर सकते हैं, न इनसे बच ही सकते हैं। यह जैवी जगत्के मूल जीवाणु कीटाणु अत्यन्त सूक्ष्म एककोषी तक होते हैं। वह सूक्ष्म जैव खाद्य, पेय और श्वांस, स्पर्श आदिके द्वारा शरीरके भीतर घुस जाते हैं। यही जैव शरीरमें घुसकर जब बढ़ने लगते हैं, और शरीरके अंगोंमें अपनी स्थिति दृढ़ कर लेते हैं तो इनसे शरीरमें व्यथा उत्पन्न होती है। इसी व्यथाके विशेष-विशेष लक्षणयुक्त दिखाई देनेपर उसके विविध नाम रख लेते हैं। जैसे क्षय, न्यूमोनियाँ (फुफ्फुसप्रदाह), विषमज्वर, मन्थरज्वर, कुष्ठ, दाद, खाज आदि।

मलोद्भूत व्याधियाँ या व्यथाएँ जो साधारण कहाती हैं, जैवोद्भूत विशेष होती हैं। जितने रोगी जैवोद्भूत व्याधियोंसे मरते हैं उतने मलोद्भूत व्याधियोंसे नहीं। इन सूक्ष्म जीवाणु-कीटाणुओंसे उत्पन्न होनेवाली व्याधिओंको जैवी व्याधियाँ कहते हैं।

जैवी व्याधियाँ कब होती हैं? यह एक बड़े

रहस्यकी बात है। जिसको बहुत कम डाक्टर तथा वैद्य जानते हैं। डाक्टरोंका कथन है कि रोगोत्पादक जैव जिस मनुष्यके भीतर पहुँचा दिये जायँ उसको ही उक्त जैवोद्भूत रोग हो जायगा। यह बात पूर्णतया सत्य नहीं। हमने अनेकों बार इसकी परीक्षा ली है। जैवी रोग होते ही उन व्यक्तियों को होते हैं जिनका शरीर मलोंकी विद्यमानतासे मलिन रहता है या मलोंके प्रभावसे निर्बल हो चुका है। या खाद्यपेय आदि अच्छे भोजनके न मिलनेसे शरीर निर्बल हो रहा है। ऐसे व्यक्तियोंपर ही जैवोंका प्रबल प्रभाव होता है और उन व्यक्तियोंका शरीर ही इनकी वृद्धिके लिये उपयुक्त स्थान होता है।

जिनका शरीर बलवान् हो प्रत्येक अंग स्वस्थतया पूरा काम करते हों, शरीरका कोई अंग मलोंसे मलिन न रहता हो, ऐसे शरीरमें विशूचिका, प्लेग, मलेरिया, क्षय आदि किसी भी बलवान् रोगोत्पादक जातिके जैवोंका प्रवेश कराया जाय तो उनसे कभी रोग उत्पन्न नहीं होता।

इस बातको तो सब समझदार मानने लगे हैं कि कोई भी खाद्यपेय पदार्थ—जो कुछ क्षण भी खुली हवामें पड़ा रहे वह जैवोंसे रहित नहीं रह सकता। मक्खी, धूल-कण, हवा आदिके द्वारा किसी न किसी जातिके जैव उसमें पहुँच ही जाते हैं। भारतवर्षमें जहाँ एकदिनकी बनायी मिठाई छःछः दिनतक खुली रखकर बेंची जाती है, जिसपर मक्खियोंका समूह बैठा रहता है, दूधमें धूलकी तह जम जाती है, घरके भोजन घंटों खुले पड़े रहते हैं, बर्तन और जलके संरक्षणपर ध्यान ही नहीं दिया जाता। ऐसी स्थितिमें क्या कोई पदार्थ उन सर्वव्यापि जैवोंकी बस्तीसे अछूता रह सकते हैं? कदापि नहीं। यह निश्चित हो चुका है कि जैवी जगत् इतना व्यापक है जिससे किसी खाद्यपेय वस्तुको पूर्णतया सुरक्षित रखना सम्भव नहीं। हजारों लाखोंकी संख्यामें इन जैवोंका (किसी न किसी रोगकात्मक जीवोंका) खाद्यपेय द्वारा शरीरमें प्रवेश होता ही रहता है किन्तु सबके सब भीतर पहुँचकर न तो बढ़ते हैं न जीवित ही रहते हैं। जिनके शरीर स्वस्थ हैं, जिनके शरीरकी क्षमता बलवान है उनके अन्दर यह पहुँचते ही मर जाते या मार डाले जाते हैं, उनके अन्दर इनकी वृद्धि सम्भव नहीं। जिनके अन्दर मलोंका संचय हो रहा है, मलिनताके कारण शरीरके अंगोपांग निष्क्रियसे हो रहे हैं या जिनकी क्रियाएँ मन्द हो रही हैं, ऐसे मलिन शरीरमें जैवोंको बढ़ाने तथा शरीरको विध्वंस करने, उसको अपना खाद्य बनानेका अच्छा अवसर पाते हैं। उन्हींमें क्षय, फुफ्फुस-प्रदाह, मन्थरज्वर, विसूचिका, विषमज्वर, आदि भयंकर शरीर-संहारिणी व्याधियाँ प्रादुर्भूत होकर मानव जीवनका अवसान कर देती हैं।

अभिघातज व्याधियाँ—स्वस्थ व्यक्तिके काम करते समय या अकस्मात् चोट लगनेसे—त्वचा, मांस, नस, अस्थि आदिके टूटने फूटनेसे जो व्यथा होती है उसे अभिघातज व्यथा या व्याधि कहते हैं। शल्य क्रिया भी एक व्याधि है, क्योंकि चीरफाड़से भी तो व्यथा होती है। यह अभिघातज व्याधियाँ साधारण चिकित्सकोंके लिये विशेष महत्व नहीं रखतीं, क्योंकि इसकी चिकित्सा भिन्न होनी भी चाहिये। इस चोटकी व्यथामें दोषोंका कोई कोप न तो पूर्व होता है न पश्चात्। न शल्प चिकित्सक कभी दोषोंपर ध्यान ही देते हैं। माँस फटा है तो उसे सी देते हैं, अस्थि टूटी है या अपने स्थानसे हटी है तो उसे बिठा या जोड़ देते हैं और मरहम पट्टीसे ठीक कर देते हैं।

परिस्थिति-प्रभाव-जन्य व्याधियाँ—लू लगनेसे, सर्दी लगनेसे, वर्षामें भींगनेसे भी ज्वर जुकाम, दर्द बदन तृषा व्याकुलता आदि कष्ट एकाएक हो जाते हैं। यह कष्ट भी प्रायः उन्हीं व्यक्तियोंको अधिक देखे जाते हैं जो या तो किन्हीं अयोग्य अधिक आहार विहारसे अपनेको दुर्बल बना लेते हैं या जिनमें मलोंका संचय होता है और शरीरसे मलिन बना रहता है वही चट परिस्थिति-प्रभावसे प्रभावित हो जाते हैं। यह परिस्थिति-प्रभावजन्य व्याधियाँ भी साधारण व्याधियोंकी श्रेणीमें परिगणित की जाती हैं। इन सबोंका कारण दोष नहीं होता। प्रत्युत ऊपर बताये हुए ही कारण होते हैं।

वैद्योंको क्या जानना चाहिये! रोगीको देखकर सर्व प्रथम यह मालूम करना चाहिये कि रोग साधारण है या विशेष। साधारण रोग प्रायः इतने उग्र रूपमें नहीं होते कि जिनसे जीवन संकटमें हो जाय। विशेष रोग ही संकट काल उत्पन्न करते हैं। इस समयके रोगानुसन्धानसे

ज्ञात हो गया है कि कुछ रोग मलजन्य हैं, कुछ जैवी। यथा, अतिसार, अजीर्ण, अरुचि, वमन, दर्दसिर, साधारण एक दो दिनमें उतर जानेवाला ज्वर, बदन-दर्द, अध्मान, उदरशूल, साधारण कास, प्रतिश्याय, सन्धि-पीड़ा, स्नायविक पीड़ा, आधा-सीसी आदि रोग मलजन्य हैं।

विषमज्वर, मन्थरज्वर, मसूरिका, छोटी मसूरिका, शीर्ष-मण्डल-प्रदाह, प्रसूता-ज्वर, फुफ्फुस-प्रदाह, कुकुरकास, क्षय, कण्ठमाला, अर्श, भगन्दर, कुष्ठ, दाद, खाज, विशेष प्रतिश्याय, विशेष कास, इन्फ्लुइञ्जा, स्वरयन्त्र-प्रदाह, श्वास-यंत्र-प्रदाह, पार्श्व-शूल, अभिष्यन्द, काला-आजार, विशूचिका, प्रवाहिका, विशेष अतिसार, संग्रहणी, व्रण, पिटिका, वातरक्त, उपदंश, सुज़ाक, श्लीपद, वृषण-वृद्धि, आदि जैवी रोग हैं।

अश्मरी, पित्ताश्मरी, विद्रधि, कार्बंकल फोड़ा, अर्बुद, अस्थिविद्रूप, हिस्टीरिया, गलाण्ड, प्रमेह, बहूमूत्र, मधुमेह, रक्त-चापवृद्धि, हृदकपाट रोग, अपस्मार, उन्माद, मतिभ्रम आदि रोग शरीरकी आंगिक क्रियाओंके बिगड़ने या मानसिक स्थितिके बिगड़ने या बदलने या मलोंका कोप बना रहनेसे ही होते हैं। इन रोगोंमें उसका यथार्थ कारण ढूँढ़ना चाहिये।

रोगकी दशामें क्या करना चाहिये ?—कोई भी रोगी आवे, इस बातका सदा ध्यान रक्खा जाय कि रोगी को २४ घंटेमें दो बार मल (विष्ठा) अवश्य निकलता रहे। यदि शौच न आता हो तो सर्वप्रथम शौच लानेका प्रबन्ध करें। औषध खिलावे, अनीमा (वस्ति) करावे, ग्लिसरीनकी पिचकारी या बत्ती दे। मूत्र भी काफी आवे इस बातका खूब ध्यान रखे। श्वास-प्रश्वास रोगी लम्बा और ठीक ले रहा है या नहीं, इसको देखे और पूरा श्वास-प्रश्वास न होता हो तो ऐसी क्रिया बतावे या औषध दे जिससे श्वासकी गति ठीक हो जाय। मलवाही स्रोत रोगकी हालतमें कभी बन्द न हों, उनका काम रुकने न पावे। मैं सदा इस बातकी ओर ध्यान रखता हूँ। तीव्र रेचन बहुत कम देना चाहिये। मृदु रेचन या सारक द्रव्य ही सदा प्रयुक्त होने चाहिये। इस प्रक्रियासे मल निकलता रहता है और शरीरमें मलिनता नहीं बढ़ने पाती।

नवीन ज्वर या ज्वरकी दशामें प्रायः लंघन करना चाहिये। अनेक बार शरीर मलसे भरा होता है और उसीके कारण रोगमें वृद्धि होती रहती है। ऐसी दशामें जब कि रोगकी वृद्धि या प्राबल्यसे रोगी निर्बल होता चला जाता है उसकी निर्बलताको दूर करनेके लिये दूध या अन्नयूषका काफी उपयोग कराया जाता है। यह बड़ी भारी भूल है। रोगी कमजोर न हो जाय इस बातका ध्यान चिकित्सक और परिवारवाले दोनों करते हैं और उनका यह बलप्रद पथ्य जैसे-जैसे दिया जाता है वैसे-वैसे रोगी और निर्बल होता चला जाता है। जब शरीर मलिन हो, पाचक यन्त्र पूरी तरह काम न करते हों उस स्थितिमें दिया दूध या अन्नयूष शरीरमें जाकर विष बन जाते हैं, मलमें मिलकर मलिन हो जाते हैं। उससे न बल बढ़ता है न रोग घटता है, उलटे रोगमें वृद्धि हो जाती है। मेरा हजारों बारका अनुभव है कि बढ़े हुए रोगकी दशामें भोजन देना विष-देना है। रोगीको या तो लंघन पर रक्खें या अधिकसे अधिक सेब, सन्तरा आदि फलोंका पतला रस थोड़ा-थोड़ा दे। 'ज्वरादौ लंघनं कुर्यात्' का सिद्धान्त कभी न भूले। जब रोगकी दशामें भोजन बन्द कर दिया जाता है तो शरीरके भीतरका मल पचने लगता है और जो पचता जाता है उसे शरीर मलमूत्र-मार्गसे सदा निकालता रहता है। उस स्थितिमें शरीर हल्का और नीरोग होने लगता है। जैसे-जैसे शरीर मलिनतासे रहित होगा वैसे वैसे स्वस्थ होता चला जायगा। जितनी शक्ति औषधियोंमें नहीं उससे अधिक हम सबोंके शरीरमें है। शरीरको स्वयम् स्वस्थ होनेका अवसर दिया जाय तो वह बहुत जल्दी ही अपनेको रोगसे मुक्त करनेकी चेष्टा करता है।

कई व्यक्ति कहेंगे कि जो निर्बल हो रहा हो उसे जबतक ताकतवर न बनाया जाय वह रोगोंका किस तरह मुकाबला कर सकता है। खुराक देकर बल बढ़ानेसे ही शरीर रोगोंसे बचनेमें समर्थ हो सकता है। यह विचार भ्रमपूर्ण है। मानलो, एक व्यक्ति भूखा है, रोटी खानेके लिये घरमें बैठा, उसपर दीवार आन गिरी, उसके नीचे दब जाता है, उस समय वह भूख-भूख चिल्लायेगा या यह कहेगा 'हमें निकालो, बचाओ !' जो शरीर रोग रूपी दीवारके नीचे दबा हो जिसकी समस्त शक्तियाँ उस रोगसे छूटनेमें प्रयत्नशील हों, उस स्थितिमें भोजन खाने और पचानेका काम वह रोगी शरीर भला कब कर सकता है?

यह सदा स्मरण रखना चाहिये कि शरीर एक राज्यके तुल्य है और इसके समस्त अंग-उपांग उस राज्य-व्यवस्थाको चलानेवाले हैं। जिस समय इस शरीररूपी राज्यके किसी भागमें रोगरूप गड़बड़ हो जाती है उसी समय शरीरके समस्त अंग-उपांगोंका ध्यान उस ओर चला जाता है। जबतक रोग है शरीरके अंग-उपांग अपना ध्यान उधर ही बनाये रखते हैं। इसीलिये शरीरके और कार्य-व्यापार उस गतिसे नहीं चलते जितने स्वस्थावस्थामें चलते थे। हाथ पैर शिथिल हो जाते हैं, उठने बैठनेको जी नहीं चाहता। फिर ऐसी दशामें पेटपर पचानेका बोझ लादना शरीरके प्रति पेटके प्रति अन्याय करना है। यदि वह ऐसी स्थितिमें ठीक-ठीक काम न करे तो उसका दोष नहीं चिकित्सकका दोष है जो खानेका आदेश करता है जिसे वास्तविक प्रकृति प्रदत्त स्थितिका ज्ञान नहीं। हम सौ रोगियोंमेंसे ७५ रोगियोंको निराहार या फलाहारपर रखते हैं। इससे रोग शमन भी जल्दी होता है, दूसरे इस बातका कभी भय नहीं होता कि रोगीकी अवस्था बिगड़ जायगी। सौमेंसे एक रोगी भी खराब नहीं होता। जो रोगी खराब हो जाते हैं या जिनके रोगमें एकाएक वृद्धि होती है, निश्चय ही वह वैद्यके अनुशासनको नहीं मानते।

माधव-निदानसे समयकी पूर्त्ति नहीं होती— इस समय जैसी रोगोंकी स्थिति देखी जाती है उसके रूपको देखकर माधवजीके बताये निदानसे मिलाकर रोगका ठीक-ठीक निश्चय करना चाहें तो इसमें सफलता नहीं मिलती। इस समय नाड़ी देखने मात्रसे रोग बतानेपर रोगी संतुष्ट नहीं होता। रोगी कहता है कोई ऐसा क्रम बताओ या दिखाओ जिससे रोगके कारणको हम भी समझ सकें। हमारा संतोष नाड़ीसे नहीं होता। डाक्टर खून देखता है, थूक देखता है, मल-मूत्रका विश्लेषण कर शरीरमें रोगका कारण बतलाता है, उसके पास अनेक यन्त्र शरीरके अंग-उपाङ्गोंको देखनेके लिये हैं। आपके पास क्या है जिससे हमें सन्तोष हो? इसीलिये जिस रोगीको क्षयका संशय होगा वह वैद्यके निदानसे संतुष्ट नहीं होता। डाक्टरके पास अवश्य जाता है। हमें ऐसा निदान तय्यार करना चाहिये जिसके द्वारा हम रोगोंको पूर्णतया समझ सकें तथा वैज्ञानिक विधिद्वारा दूसरोंको बता सकें, ताकि रोगीको सन्तोष हो। जितना कुछ रोगको देखने समझनेके लिये डाक्टरोंके पास साधन है उतना या उससे अधिक हमारे पास होना चाहिये और उसके व्यवहारका हमें पूरा-पूरा अभ्यास होना चाहिये।

निदान-सम्बन्धी विषयको समझनेके लिये वैद्योंको माधव-निदानपर अवलम्बित नहीं रहना चाहिये। उन्हें आधुनिक गवेषणासे पूरा-पूरा लाभ उठाना चाहिये और रोगोंके वास्तविक कारणको जानकर व्याधिका निश्चित नाम देकर व्याधि-विपरीत चिकित्सा निर्द्धारित करना चाहिये।

व्याधि-विपरीत चिकित्सा-क्रम क्या है?— इस समय आयुर्वेदमें रस पद्धतिकी प्रधानता है। रसोंके आविष्कर्त्ताओंने कहीं भी वात पित्त कफको नहीं देखा। उन्होंने सीधे ही व्याधि-विपरीत चिकित्साका अनुभव लिया। इसीलिये रसग्रन्थोंमें प्रायः रसोंके गुणोंका वर्णन करते हुए उन आचार्योंने स्पष्ट लिख दिया है कि यह रस क्षय, कास, श्वासपर लाभदायी है, यह रस गुल्म, संग्रहणी, अतिसारपर दिया जाता है। यह रस ज्वर, सन्निपातपर है। क्षयके कहनेसे क्षयजन्य ज्वर या राजयक्ष्माका स्पष्ट बोध होता है। जिस रोगीको राजयक्ष्मा हो उसे आप मृगांक राजमृगांक, स्वर्ण, वसन्त-मालती आदि दीजिये, अतिसार पर गंगाधर आदि, ग्रहणी पर ग्रहणी-कपाट आदि। आपको इन रसोंके उपयोगकालमें कहीं भी दोषोंको जानने या देखनेकी आवश्यकता न होगी। बिना दोषोंके ही आयुर्वेदिक चिकित्सापद्धति जीवित रहेगी। इस तरह आयुर्वेदिक चिकित्सापद्धतिसे चिकित्सा करते हुए हरएक वैद्यको यह जानना चाहिये कि किस-किस रसका शरीरके किस-किस रोगपर क्या-क्या प्रभाव होता है, उसको वह नोट करता जाय। इस तरह एक नया निघंटु तय्यार हो सकता है।

देहातियोंका भोजन और उनकी स्वास्थ्य-रक्षा

[श्री सन्तप्रसाद टण्डन, एम्० एस-सी०]

भोजनका प्रश्न जीवमात्रके लिए सबसे मुख्य प्रश्न है। संसारके जीव जितना परिश्रम करते हैं वह सब केवल अपना खाना जुटानाके लिए ही करते हैं। जङ्गलोंमें देखिये तो हरएक जानवरको आप खानेकी फिक्रमें ही इधर-उधर घूमता पाइयेगा। आकाशकी ओर नजर डालिए तो भी यही मालूम होगा कि सारे पक्षी सिर्फ अपने खानेकी खोज करनेके लिये ही इधर-उधर उड़ रहे हैं। मनुष्य भी ऐसा ही एक जानवर है। उसे भी अपने खानेके लिए मेहनत करनी पड़ती है। खाना एक ऐसी चीज है जिसकी प्राप्तिके लिए ही संसारके सारे कार्य होते हुए दिखलाई देते हैं। जीवमात्रके लिए जीवनका मोह सबसे बड़ा है। हरएक चाहता है कि वह संसारमें जितने अधिक दिन भी जिन्दा रह सके रहे। संसारमें जीवित रहनेके लिए भोजन सबसे ज़रूरी चीज़ है। इसी कारण हम देखते हैं कि प्रायः इसके लिए भाई-भाई तथा बाप-बेटेतक आपसमें लड़ जाते हैं। संसारकी बड़ी-बड़ी लड़ाइयोंकी तहमें भी इसी भोजनका प्रश्न रहता है। इटली और अबीसीनियाकी पिछली लड़ाईका भी यही ख़ास कारण था। इटलीमें आबादी बढ़ती जा रही थी और वहाँकी सरकारको अपने आदमियोंके लिए रहने और खानेके प्रबन्धकी चिन्ता थी। अबीसीनियाको जीतकर अब इटली वहाँ अपने आदमियोंको बसाकर इस चिन्तासे मुक्त होगा। यदि भोजनका प्रश्न मनुष्योंके साथ न रहता तो यह जितना फैलाव हम संसारमें देख रहे हैं वह सम्भवतः कुछ भी न होता। इसी भोजनके लिए हम सब लोगोंको मेहनत करनी पड़ती है और तभी हमलोग तरह-तरहके कार्य करते हैं। इस प्रकार यदि यह कहा जाय कि भोजनही एक ऐसी चीज है जो सारी दुनियाँकी चहल-पहलका कारण है तो इसमें कुछ भी अत्युक्ति न होगी।

भोजनका प्रश्न इतना महत्वका होते हुए भी यह बड़े आश्चर्यकी बात है कि इस ओर जितना ध्यान हम लोगोंको देना चाहिए था उतना हम लोगोंने नहीं दिया है। और-और देशोंमें वहाँकी सरकारकी ओरसे वैज्ञानिकोंने विभिन्न खाद्य पदार्थोंकी पूरी जाँच करके अपने-अपने देशके लिए इस प्रश्नको सुलझानेका प्रयत्न किया है। इसमें उन लोगोंको बहुत कुछ सफलता भी मिली है। हमारे देशमें अभी इस बातकी बहुत जरूरत है कि इस सम्बन्धकी वैज्ञानिक खोजें की जायँ तथा यहाँके लोगोंके लिये विभिन्न खाद्य-पदार्थोंका महत्व बतलाया जाय। हमारे देहातियोंकी हालत तो सचमुच बहुत खराब है। उनकी मृत्यु-संख्या बहुत ज्यादा है और उनके यहाँ सदा ही तरह तरहकी बीमारियाँ अपना घर बनाये रखती हैं। उनके बच्चे कमजोर होते हैं और उनका मानसिक विकास नहीं हो पाता। इन सब बातोंका कारण उनके भोजनका ठीक प्रबन्ध न होना ही है। मनुष्यकी शारीरिक तथा मानसिक वृत्तियोंका विकास बहुत कुछ उसके भोजनपर निर्भर करता है। ठीक तरहका भोजन बचपनसेही न मिलनेके कारण हमारे देहातोंके अधिकांश लोगोंके शरीर तथा दिमाग जैसे होने चाहिये वैसे नहीं हो पाते। संसारमें अपना अस्तित्व बनाये रखनेके लिए यह बहुत जरूरी है कि हम अपनेको मजबूत और योग्य बनायें। कमजोर आदमीके लिए संसारमें जगह नहीं है। भारतवासियोंके वर्तमान पतनका बहुत कुछ कारण यह भी है कि हमलोग आजकल शारीरिक तथा मानसिक दोनों बातोंमें बहुत कमजोर हो गये हैं। अतः यदि हम अपनेको संसारकी और जातियोंसे मुकाबला करनेके योग्य बनाना चाहते हैं तो यह बहुत आवश्यक है कि हम अपने देहातियोंके भोजनका उचित तथा स्वास्थ्य-प्रद प्रबन्ध करें। हमारे देहातियोंकी आजकलकी बुरी हालत कुछ तो पैसोंकी कमीके कारण और कुछ इस भोजन-विज्ञानकी नाजानकारीके सबबसे भी है। उन लोगोंको इस बातके समझानेकी सबसे अधिक आवश्यकता है कि उन्हें किस प्रकारका खाना खाना चाहिए।

इस विषयको समझानेके लिए सबसे पहले हमें यह जान लेना चाहिए कि हमारे शरीरमें कौन-कौनसे तत्व मौजूद हैं और हमें किन-किनकी जरूरत अपने खानेमें पड़ती है। हमारे शरीरमें निम्नलिखित चीज़ें मुख्यरूपसे पायी जाती हैं—(१) प्रोटीन, (२) चर्बी, (३) शर्करा या शर्करा उत्पन्न करनेवाले पदार्थ, (४) लवण तथा (५) जल। जब हम परिश्रम करते हैं तब ये ही चीज़ें जलकर हमें शक्ति प्रदान करती हैं। यदि हमारे शरीरके तत्व बराबर जलकर इस प्रकार खर्च होते जायँ और हम उसकी पूर्ति न करें तो हमारा शरीर बराबर क्षीण होता जायगा और अन्तमें हमारी मृत्यु हो जायगी। अतः यह बहुत जरूरी है कि हम अपने शरीरसे जितने तत्व रोज परिश्रम आदिके रूपमें खर्च करें उतनेकी पूर्ति रोज ही भोजनद्वारा कर दिया करें। भोजनका असल मतलब अपने शरीरकी क्षति-पूर्ति करना ही होता है। इसीसे यह बात भी साफ समझमें आजाती है कि हमारे भोजनमें क्यों वे तत्व अवश्य होने चाहिये जिनका कि खर्च हम शरीरकी पूँजीसे रोज करते हैं।

मनुष्यके शरीरमें १८ फ़ी सदी प्रोटीनका भाग होता है। इसका खास काम नस, पुट्ठे और रेशे आदि बनाना है। खानेमें इसकी कमी होनेपर शरीर दुर्बल हो जाता है। चर्बीका अंश मनुष्यके शरीरमें लगभग १५ फ़ी सदी होता है। भोजनमें शरीरकी आवश्यकतासे जब अधिक चर्बी होती है तब वह शरीरमें इकट्ठी हो जाती है और आगे जब ज़रूरत पड़ती है तब जलकर शक्ति उत्पन्न करनेके काममें आ जाती है। चर्बी और शर्करा शरीरमें जलकर शरीरको काम करनेकी शक्ति प्रदान करते हैं। भोजनमें इनकी कमी होनेपर शरीरके अन्य पोषक तत्व शक्ति उत्पन्न करनेके लिए जलते हैं और इसका नतीजा यह होता है कि शरीर धीरे-धीरे दुबला होता जाता है। लवणोंसे शरीरको कोई शक्ति नहीं मिलती। इनका कार्य हड्डियोंको पुष्ट करना है। साथ ही भोजनके अन्य तत्वोंको हज़म करनेमें भी इनकी मददकी जरूरत पड़ती है। शरीरमें इनका अंश ५ या ६ फ़ी सदी है। भोजनमें इनकी उचित मात्रा न होनेपर हड्डियाँ कमज़ोर हो जाती हैं और खाना ठीक प्रकारसे हज़म नहीं होता तथा नाना प्रकारकी बीमारियाँ होने लगती हैं। इस कारण शरीरको स्वस्थ बनाये रखनेके लिए इनका भोजनमें रहना परमावश्यक है। पानीका अंश हमारे शरीरमें लगभग ६५ फ़ी सदी है। चूँकि शरीरकी सारी वैज्ञानिक क्रियायें पानीकी उपस्थिति में ही होती हैं इस कारण इसका उचित अंश भोजनके साथ होना बहुत ज़रूरी है। पानीसे दूसरा फायदा हमारे शरीरको यह होता है कि यह हमारे शरीरके तापक्रमको सदा एकसा रखनेमें मदद करता है। जब अधिक गर्मी पड़ती है तब शरीरसे पानी पसीनेके रूपमें निकलकर या वाष्प बनकर उड़कर शरीरकी अधिक गर्मी खींच लेता है। इसी कारण गर्मीमें हमें पानीकी सर्दीकी अपेक्षा अधिक ज़रूरत पड़ती है। यदि मनुष्य फलोंकी उचित मात्रा अपने भोजनमें रखे तो उसे अलगसे पानी पीनेकी आवश्यकता साधारणतः नहीं पड़ती। फलोंमें इतना काफी पानी होता है जिससे शरीरकी पानीकी आवश्यकता पूरी हो जाती है।

ऊपर लिखी ५ चीज़ोंके अतिरिक्त हमारे शरीरके स्वास्थ्यके लिए विटामीनोंकी भी आवश्यकता पड़ती है। ये विटामीन ऐसी रासायनिक चीज़ें (Chemical bodies) हैं जिनका पूरा रासायनिक हाल अभीतक वैज्ञानिकोंको नहीं मालूम हो सका है। ये कई तरहके होते हैं और प्रायः हरएक प्राकृतिक भोजनमें कुछ न कुछ अवश्य पाये जाते हैं। फलों तथा हरी सब्ज़ियोंमें इनकी मात्रा सबसे अधिक होती है। यद्यपि इनकी मिकदार हर एक खाद्य पदार्थमें इतनी कम होती है कि उसका वैज्ञानिक रीतिसे उस चीज़मेंसे शुद्ध रूपमें निकालना असम्भवसा है, फिर भी यह हमारे बड़े आश्चर्यकी चीज़ है कि इन विटामीनोंकी ज़रासी मिकदारका ही हमारे स्वास्थ्यपर बड़ा प्रभाव पड़ता है। प्राकृतिक वस्तुओंमें पायी जानेवाली विटामनोंकी मिकदार ही हम लोगोंके लिए काफ़ी है। भोजनमें विटामीनोंकी कमी होनेपर तरह-तरहकी बीमारियाँ हो जाती हैं। विटामीनोंके आविष्कारके पहले मनुष्योंमें कई तरहकी ऐसी बीमारियाँ (Rickets, Xero-phthalmia, etc.) फैली थीं जिनका कारण वैज्ञा-निकोंको नहीं लग पाया था। बादमें यह मालूम हुआ कि ख़ास-ख़ास प्रकारके विटामीनोंकी कमीके कारण ही ख़ास-ख़ास प्रकारकी बीमारियाँ हो जाती हैं। इस प्रकार इन

विटामीनोंका ख़ास कार्य शरीरकी सब क्रियाओंको ठीक प्रकारसे संचालित करना तथा उसे बीमारियोंसे बचाना है ।

हरएक मनुष्यको ऊपर लिखे तत्वोंकी अपने भोजनमें कितनी मिकदार रखनी चाहिए यह बात हरएक मनुष्यके लिये एकसी नहीं हो सकती। मनुष्यकी प्रकृति तथा उसके परिश्रमके अनुसार ही उसका भोजन निश्चित किया जा सकता है। जो लोग दिमागी मेहनत अधिक करते हैं उनका भोजन शारीरिक मेहनत करनेवालोंकी तरह नहीं हो सकता। दिमागी मेहनत करनेवालोंको प्रोटीनकी अधिक आवश्यकता पड़ती है और शारीरिक मेहनत करने वालोंको चर्बी तथा शर्करा की। साधारण रीतिसे एक मध्यम स्वास्थ्यवाले मनुष्यके लिये भोजनमें २० फ़ीसदी प्रोटीन, २० फ़ीसदी चर्बी तथा ६० फ़ीसदी शर्करा होना काफ़ी है। लवण और जल इनके अतिरिक्त आवश्यकतानुसार होने चाहिये।

भोजनके वैज्ञानिक तत्वों तथा उनके गुण आदिका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। अब हमें अपने देहातियोंके भोजनकी ओर आना चाहिये। हमारे देहातोंकी हालत आजकल इतनी अधिक शोचनीय है कि उसका वर्णन करना बहुत मुश्किल है। उन्हें यदि एक समय भी रूखा-सूखा खाना मिल जाता है तो वे इसीको बड़ी बात समझते हैं। अच्छे खानेका ज़िक्र करना तो उनके सामने व्यर्थसा ही है। आजकल देहातियोंकी जैसी दशा है उसको देखते हुए तो उनके लिए कोई भी सस्तेसे सस्ता भोजन जो स्वास्थ्यकी दृष्टिसे भी ठीक हो, नहीं बतलाया जा सकता जिसे वे अपने निर्वाहके लिए खरीद सकें। उनके लिये स्वास्थ्य-बर्द्धक भोजनका प्रबन्ध तभी हो सकता है जब कि उनकी आर्थिक दशा भी कुछ सुधर सके। देहातियोंके भोजनके चुनावमें उन लोगोंकी प्राकृतिक दशाका विशेष ख्याल रखना ज़रूरी है। साथ ही इसका ध्यान भी रखना चाहिये कि उनके भोजनमें अधिकतर ऐसी ही चीज़ें हों जो या तो वे स्वयं पैदा करते हों या उनके देहातमें आसानीसे मिल सकती हों। बाहरसे चीज़ मंगानेके खर्चको वे लोग कभी बर्दाश्त नहीं कर सकते। इस दृष्टिसे विचार करनेपर हर-एक जगहके लोगोंके लिए एक ही प्रकारका भोजन उपयुक्त नहीं हो सकता। स्थान विशेषमें पैदा होनेवाली चीज़ोंके अनुसार उनके भोजनमें भी विभिन्नता रहेगी।

प्राकृतिक नियमोंके अनुसार प्रकृतिमें हर जगह वहाँके रहनेवालोंके लिये उपयुक्त भोजन उत्पन्न किया गया है। मैं तो स्वयं यह समझता हूँ कि यदि मनुष्य अपनेको बिलकुल प्राकृतिक भोजनपर छोड़ दे तो उसका स्वास्थ्य बहुत अच्छा रहे। संसारमें हम सब जगह यही देखते हैं कि जो जानवर जिस जगह रहता है वहाँ ही उसके उपयुक्त भोजन प्रकृतिने उत्पन्न किया है। अपने भोजनके लिये एक स्थानके जानवरको किसी दूसरी जगह नहीं जाना पड़ता। उसी जगहके उत्पन्न खाद्य-पदार्थोंको खाकर वे अपना उत्तम स्वास्थ्य रखनेमें समर्थ होते हैं। मनुष्य भी इसी प्रकार प्रकृतिका एक जानवर है। वह अपनेको प्राकृतिक नियमोंसे बाहर नहीं रख सकता। आजकल हम जो तरह-तरहकी बीमारियाँ देखते हैं वे सब मनुष्योंद्वारा प्राकृतिक नियमोंकी अवहेलना करनेके फल-स्वरूप हैं और इनमें भी सबसे अधिक हानि हम लोगोंको भोजन सम्बन्धी नियमोंके तोड़नेके कारण हुई है। आजकलका हमलोगोंका भोजन बहुत ही अस्वाभाविक हो गया है। तरह-तरहके मसाले आदि डालकर और नाना प्रकारकी रीतियोंसे अपने खानेको पकाकर स्वादिष्ट तो हम अवश्य बना लेते हैं, किन्तु साथ ही उसके द्वारा अपना स्वास्थ्य भी नष्ट कर लेते हैं। यदि मनुष्य भोजन सम्बन्धी बातोंमें प्राकृतिक नियमोंका ध्यान रखे तो उसका स्वास्थ्य भी उत्तम रहे तथा खानेमें अधिक पैसा भी खर्च करनेकी ज़रूरत न पड़े। मैं तो स्वयं इस सिद्धान्तका माननेवाला हूँ कि प्रकृतिमें जो चीज़ जिस रूपमें पैदा होती है उसे उसी रूपमें खानेसे ही विशेष लाभ हो सकता है। साथ ही इस बातको भी मैं बहुत जरूरी समझता हूँ कि जो मनुष्य जिस जगह रहता है उसका अधिकांश भोजन वहींके आसपासकी पैदा की हुई चीज़ोंद्वारा ही होना चाहिये। प्रकृति जीव-मात्रकी रक्षक तथा पोषक है। हरएक स्थानके जल-वायुके अनुसार ही उसने विभिन्न जगहोंमें तरह-तरहके खाद्य-पदार्थ उत्पन्न किये हैं जो वहाँके निवासियोंके लिये विशेष उपयुक्त हैं। आजकल रेल तथा अन्य वाहनोंद्वारा दूर-दूरपर पैदा होने

वाली चीज़ें एक जगहसे दूसरी जगह आसानीसे भेजी जाती हैं। पुराने समयमें जब भारतमें रेल आदि नहीं थी और लोगोंको बाहरकी खाद्य-सामग्री नहीं मिलती थी, तब क्या उन लोगोंका स्वास्थ्य अच्छा नहीं रहता था? इतिहास आदिके देखनेसे यह मालूम होता है कि उस समयके हमारे यहाँके लोगोंका स्वास्थ्य आजकलके लोगोंकी अपेक्षा अधिक अच्छा था। आजकल भारतमें लोगोंकी औसत उम्र बहुत कम है। उस समय लोग अधिक वर्षों तक जीवित रहते थे। अब भी हम यह देखते हैं कि बुंदेलखंडकी तरफ जंगलोंमें भील आदि जो जातियाँ रहती हैं और जिनपर अभी वर्तमान सभ्यताका बहुत असर नहीं पड़ पाया है वे अधिक मज़बूत और स्वस्थ हैं। वे लोग जंगलोंमें प्राकृतिक रूपसे रहते हैं और वहींकी पैदा की हुई चीज़ों पर अपनी गुज़र करते हैं। यही कारण है कि उनका स्वास्थ्य अच्छा रहता है। अन्य ऐसी जगहका दृष्टान्त जहाँ लोग प्राकृतिक अवस्थामें ज़िन्दगी बसर करते हैं जब कभी हमलोगोंके सामने आता है हम यही देखते हैं कि वहाँके लोग अन्य जगहोंकी अपेक्षा अधिक स्वस्थ हैं। अतः प्राकृतिक सिद्धान्तके अनुसार मैं यह ज़रूरी नहीं समझता कि लोगोंके स्वास्थ्यके लिये दूर-दूरपर पैदा की हुई चीज़ें ही उन्हें खानेको दी जायँ। आजकल अधिकतर लोगोंका यह ख़्याल है कि अंगूर, सेब आदि महंगे फल जो पहाड़ोंसे आते हैं हम लोगोंके स्वास्थ्यके लिये अधिक लाभप्रद हैं। यों तो फलमात्र ही स्वास्थ्यकी दृष्टिसे बहुत अच्छे होते हैं, किन्तु मैं स्वयं स्थान विशेषमें पैदा हुए फसलके फलोंको इन सब फलोंकी अपेक्षा भी वहाँके निवासियोंके लिये अधिक लाभप्रद समझता हूँ। भोजन क्या यदि हरएक मामलेमें मनुष्य प्राकृतिक नियमोंका पालन करें तो उसकी सारी सांसारिक व्याधियां दूर हो जायँ। जो मनुष्य जितना भी प्रकृतिके अधिक समीप अपनेको रख सकता है उतना ही अधिक सुखी रहता है। आजकल लोगोंने भोजनको एक स्वादकी वस्तु बना रखा है। वास्तवमें भोजनका उद्देश्य केवल शरीरकी रक्षा है। स्वाद तो एक ऐसी चीज़ है जो बहुत-कुछ आदतपर भी निर्भर करती है। हम लोगोंके प्रकृति-विरुद्ध भोजन करते-करते अपने स्वादको उसीके अनुसार कर लिया है। यदि हम प्राकृतिक भोजन खानेकी आदत डाल लें तो हमें वैसा ही भोजन अधिक स्वादिष्ट लगने लगेगा।

यदि मनुष्य गेहूँ चना आदि पानीमें भिगाकर कच्चा ही खानेकी आदत डाल ले तो वह आगपर पके हुए अन्नकी अपेक्षा अधिक लाभप्रद रहेगा। कच्चे अन्नोंमें विटामीन तथा अन्य ऐसे पोषक पदार्थ मौजूद रहते हैं जो पकानेसे नष्ट हो जाते हैं। कच्चा अन्न पके हुएकी अपेक्षा अधिक जल्दी हज़म भी होगा क्योंकि कच्चे अन्नमें इनज़ाइम (Enzymes) रहते हैं जो खाना हज़म करनेमें मदद करते हैं। पके हुए अन्नमें इनज़ाइम नष्ट हो जाते हैं। कच्चा अन्न दाँतोंसे अधिक चबाना पड़ता है इस कारण उसके खानेसे दाँतोंकी भी उचित कसरत हो जाती है। आजकल लोगोंमें दाँतोंकी बीमारी बहुत फैली हुई है। उसका खास कारण दाँतोंकी ठीक कसरतका न होना है। इस प्रकार कच्चे अन्न खानेसे हम दाँतोंको भी अधिक स्वस्थ तथा निरोगी रख सकते हैं। आजकलके विदेशी बड़े-बड़े डाक्टर तथा वैज्ञानिक भी अब प्राकृतिक भोजनके लाभोंको समझकर उसपर अधिक ज़ोर देने लगे हैं। बहुतसे लोगोंका तो यह कहना है कि जबसे मनुष्यने खाना आग पर पकानेकी विद्या सीखी तभीसे उसका स्वास्थ्य गिरने लगा।

अपने देहातियोंके भोजनके प्रश्नपर भी हमें इसी दृष्टिसे विचार करना चाहिये। प्राकृतिक भोजन ही उनके लिये सस्ता तथा स्वास्थ्यप्रद हो सकता है। प्रकृतिमें जो जो चीज़ जिस रूपमें पैदा हुई है उसे बिना आगपर पकाये खानेकी आदत यदि डाली जा सके तब तो बहुत ही अच्छा है। इसमें पकाने आदिके खर्चकी भी बचत हो जायगी। किन्तु मैं यह समझता हूँ कि चूँकि युगोंसे पके अन्नके खानेकी आदत लोगोंकी पड़ी हुई है इस कारण वे ऐसा एकदमसे नहीं कर सकते। इस कारण सब बातोंपर ध्यान रखते हुए मैं यह उचित समझता हूँ कि पहले अपने देहातियोंको यह बतलाया जाय कि वह अपने भोजनमें मसाले आदिकी मात्रा घटाकर जहाँतक हो सके भोजनको सादा रखें। पकानेके लिये जहाँतक हो सके भोजनको पानीके साथ बिना घी-तेलमें भूँजे पकायें। घी-तेलमें भूँजनेकी अपेक्षा उबले हुए भोजन अधिक लाभ-प्रद होते हैं। भूँजनेसे अधिक गर्मीके कारण बहुतसे तत्व जल जाते हैं

और ऐसा भोजन देरसे हज़म होता है। अनाजोंमें हमारे देहातियोंको अधिकतर ज्वार, बाजरा तथा अन्य सस्ते अनाज ही विशेष रूपसे मिलते हैं। इन अनाजोंमें प्रोटीन की मात्रा कम होती है तथा प्रोटीनकी जाति भी (quality of protein) घटिया मेलकी होती है। अतः इन अन्नोंके साथ उत्तम जातिवाले प्रोटीन पदार्थोंका थोड़ा मेल रखना बहुत ज़रूरी है। जहाँ देहातियोंको दूध आसानीसे मिल सकता हो वहाँ वे यदि अपने इन्हीं सस्ते अन्नोंके साथ दूध लेते रहें तब किसी और चीज़की उन्हें ज़रूरत न पड़े। लेकिन अधिकांश जगहोंमें दूधका प्रबन्ध देहातियोंके लिये मुश्किल है, क्योंकि जिनके यहाँ दूध होता भी है वे उसे बेचकर या उसका घी निकालकर पैसा जुटानेकी कोशिश अपने लगान आदिके लिये करते हैं। छाछका प्रयोग भी दूधकी अनुपस्थितिमें काफ़ी लाभदायक है। ऐसी दशामें इन अनाजोंके साथ थोड़ा जुआर, बाजरा या जव, आदि जो जिस जगह आसानीसे मिल सके, मिलाकर तब उसकी रोटी देहातियोंको खानेके लिये बतलाना चाहिये। गेहूँ और जवमें मौजूद प्रोटीन उत्तम जातिकी होती है, इस कारण इनके मेलसे भोजन अधिक स्वास्थ्यप्रद हो जायगा। इसके अलावा प्रोटीनकी मात्रा भोजनमें पूरी करनेके लिये थोड़ा दालका—मूँग, चना, अरहर आदि—प्रबन्ध भी खानेके साथ होना ज़रूरी है। जो दाल जिस जगह होती हो उसका ही प्रयोग वे कर सकते हैं। ऊपरके अन्नोंद्वारा उन्हें प्रोटीन तथा शर्करावाले पदार्थ जरूरतके माफ़िक मिल जायँगे। चर्बीके लिये किसी (vegetable oil) वानस्पतिक तेल का, जैसे तिल, नारियल, सरसों, महुआ आदि, थोड़ा प्रयोग दाल या रोटीके साथ करना चाहिये। तिल तो कच्चा भी बड़ा स्वादिष्ट होता है तथा बहुतसे लोग वैसा ही खाना पसन्द करते हैं। यदि देहाती लोग भी जिनके यहाँ तिल होता है कच्चा खा लें तब तेलकी अलगसे ज़रूरत उन्हें खानेके साथ नहीं होगी। लवण तथा विटामीनके लिये उन्हें अपने खानेमें हरी सब्ज़ियों तथा फलोंकी उचित मात्रा रखना भी बहुत आवश्यक है। फसलमें जो भी सस्ते फल तथा सब्ज़ी जिस जगह पैदा होती हो उसे ही उस फ़सलमें इस्तेमाल करना चाहिये। हरी सब्ज़ियोंमें पालक, कुलफ़ा, चौराई आदिके साग देहातोंमें काफ़ी सस्ते मिलते हैं, बल्कि अधिक स्थानोंमें तो ये चीज़ें मुफ़्त ही मिल जाया करती हैं। इनका काफ़ी उपयोग देहातियोंको अपने खानेके साथ रोज़ करना चाहिये। साथ ही इसका ध्यान भी रखना चाहिए कि सागोंको तेल आदिमें न भूँजकर जहाँतक हो सके केवल उबालकर तथा नमक मिलाकर ही खाया जाय, तभी यह अधिक लाभप्रद हो सकते हैं। एक साधारण तन्दुरुस्त देहातीके लिये मामूली ढंगसे मैं निम्नलिखित भोजन उचित समझूँगा।

सुबह का भोजन

गेहूँ या जव तथा अन्य सस्ते अन्नकी मिलावट का आटा	½ सेर
दाल	१ छटाँक
तेल	१ छटाँक
हरे साग (पालक आदि) तथा फसलके ताजे फल	½ सेर
नमक, जल ज़रूरतके अनुसार	

शाम का भोजन

आटा	१ पाव
दाल	½ छटाँक
तेल	½ छटाँक
साग और फल	½ सेर
नमक, जल ज़रूरतके अनुसार	

ऊपर लिखे भोजनके अतिरिक्त ईखकी फ़सलमें भोजनके साथ थोड़ा गुड़ भी लेनेसे अधिक लाभ हो सकता है। मामूली दशामें यह भोजन देहातियोंके लिये उचित तथा स्वास्थ्यप्रद रहेगा। इसमें अधिक दाम भी नहीं लगना चाहिये, क्योंकि जो चीज़ें जहाँ पैदा होती हैं वहाँ सस्ती मिलती हैं। हमारे यहांके लोग हरी सब्जियों तथा फलोंको बहुत उपेक्षाकी दृष्टिसे देखा करते हैं। वे इनकी उपयोगिताको भली प्रकार नहीं जानते। अतः देहातियोंको इस बातपर हमेशा ध्यान रखनेके लिये कहना चाहिये कि वे फ़सलके ताज़े फल तथा हरी सब्जियाँ अपने खानेमें बराबर रखें, क्योंकि ताज़े फलों और सब्ज़ियोंमें भिन्न-भिन्न प्रकारके विटामीन रहते हैं जिनके द्वारा शरीरका स्वास्थ्य ठीक रहता है और बीमारियाँ नहीं

होतीं। ताज़े फलों और हरी सब्जियोंके न रहनेपर हम चाहे जितना अन्न आदि खायें हमारा स्वास्थ्य कभी वैसा अच्छा नहीं रह सकता जैसा फलों और सब्ज़ियोंके भोजनमें रहनेपर होता है। अन्नोंके आटेका प्रयोग भी बिना चोकर निकाले ही करना चाहिये।

इन सब बातोंके अलावा उन्हें इस बातको भी अच्छी प्रकार समझा देना चाहिये कि फ़सलके शुरूमें जो हरे अन्न कच्चे खाये जा सकते हों उन्हें वे खूब कच्चा ही खाया करें। जैसे चना, गेहूँ, मटर आदि फ़सलके शुरूमें बहुत मुलायम तथा मीठे होते हैं और कच्चा खानेमें काफ़ी स्वादिष्ट लगते हैं।

मेरी समझसे यदि गाँववाले अपना भोजन मेरे ऊपर लिखे ढंगसे रखें तो वे सदा ही स्वस्थ तथा मज़बूत रह सकते हैं। आजकलकी नाना प्रकारकी बीमारियोंसे भी जो वे पीड़ित रहते हैं उससे भी इस प्रकारके भोजनसे उनका छुटकारा हो जायगा। सस्तेके ख्यालसे भी मैं समझता हूँ मेरे बतलाये हुए भोजनके अलावा उन्हें कोई भोजन अधिक सस्ता नहीं पड़ सकता, क्योंकि मेरे अनुसार उनके भोजनमें उनके देहातोंमें पैदा हुई चीज़ें ही सम्मिलित हैं जो उनके यहाँ सदा ही सस्ती मिलनी चाहिये।

नराकार प्राणियोंका वंशवृत्त

[रामदास गौड़]

सृष्टि और विकासका इतिहास प्रकृतिने अपने नुकीले नाखूनसे तथ्योंकी भाषामें और अवशेषोंके अक्षरोंमें बड़ी-बड़ी चट्टानों-पर खोदकर बड़ी हिफाजतसे धरतीकी तहमें गाड़ रखा है। इस मुद्दतके गड़े खजानेको खोदकर निकालनेका काम संसारके अनेक स्थानोंमें हो रहा है। संसारके अनेक भागोंमें प्रत्नतत्त्वज्ञोंने धरती खोद-खोद इस इतिहासको पढ़ा है, और पढ़ते जा रहे हैं। फिर भी गड़े हुए इतिहासके चन्द बिखरे हुए वरक ही हाथ आ सके हैं, खोज जारी है, पढ़नेवाले काममें व्यस्त हैं। अभी बेपढ़ी अनगिनत वरकोंकी किताब गड़ी पड़ी है। जो कुछ अबतक पढ़ा गया है उसपर कोई-कोई वैज्ञानिक काता और ले दौड़ेकी कहावतके अनुसार मनमानी धारणाएँ लेकर विद्वत् समाजके सामने उठ खड़े हुए हैं, परन्तु गंभीर-धीर विचारक उतावली नहीं करते।

पिछले दस सालके भीतर शिवालिक पर्वतोंमें जो खुदाई हुई है उससे ऐसा अनुमान किया जा रहा है कि शायद मानवजातिका पहला पालना प्रकृतिमाताने प्राचीन आर्य्यावर्त्तमें ही झुलाया होगा और वह आदिम मानव-जाति रही होगी। परन्तु इतना हम अपने पाठकोंको इस विषयकी ओर उन्हें आकृष्ट करनेको ही लिख रहे हैं। अभी कोई एतत्सम्बन्धी धारणा निश्चयके दरजेको नहीं पहुँची है।

विकासवादियोंका अनुमान है कि नराकार प्राणियोंका विकास भी अत्यन्त धीरे-धीरे हुआ है। बे-रीढ़वालोंसे रीढ़वाले, रीढ़वाली मछलियोंसे कछुए आदि उभयचर, फिर स्थलचारी व्याल, और फिर व्यालोंसे तीन शाखाएँ फूटीं, जिसमें स्थलचारी स्तनपायी पशु एक ओर और व्योमचारी पक्षी दूसरी ओर उपजे और बढ़ चले। इनके बीचमें नराकार प्राणीका आरंभ हुआ।

ये नराकार प्राणी "असुर" थे

प्रकृतिने पहले चौपाये रचे। फिर देखा कि दो पाँवोंसे काम चले तो अच्छा। इसलिये पक्षी बनाये और आकाश-पर रखा ताकि अधिक सुरक्षित रहें। परन्तु उड़नेमें प्रयास भी अधिक था और आकाशमें स्थिर जीवन संभव न था। इसलिये डैनोंकी जगह दो हाथ बनाये जिनकी कलाइयोंमें पँखके टखनेके बराबर ही हड्डियाँ रखी गयीं परन्तु पंजा चौड़ा रखा गया। स्थलपर जानकी जोखिम अधिक थी इसलिये यह प्राणी वृक्षोंपर रखा गया। इसकी दोनों आँखोंके बीच लम्बे थूथनका व्यवधान न था।

इसके पूँछ थी और पेड़पर रहनेके सुभीतेसे वह लम्बी और बहुत मजबूत थी। वह बालोंका गुच्छा न था, क्योंकि उससे केवल मक्खी उड़ानेका काम नहीं लेना था। वह एक मांसल अंग था जिसमें रीढ़की हड्डियाँ दूरतक अस्थि-कल्पके रूपमें चली गयी थीं। पहलेपहल व्यालोंकी तरह उसको बहुत लम्बा चौड़ा बनाया गया। उस समय जंगल भी घने थे। पेड़ अत्यन्त ऊँचे थे। दो-दो सौ फुटकी ऊँचाईपर उसे रहना था। वह स्थलपर कार्टिलीडन, मैमथ आदिका मुकाबला करता था परन्तु न तो मांदोंमें रहता और न घोंसला बनाता। वह सीधे पेड़की डालियोंको अपने बाहुबलसे नवाकर परस्पर गूँथकर अपने लिये छाजन बना लेता था। वह नराकार प्राणी आग बनाना नहीं जानता था। अधिकांश फलोंपर गुजर करता था किन्तु वह जबरदस्त शिकारी था, उसके दाँत मांसके लिये भी उपयुक्त थे। वह बड़े-बड़े व्यालों और दानवाकार पशुओंसे लड़ता और उन्हें मारकर खा भी जाता था। वह असुर, जातिका प्राणी था। उसमें "असु" अर्थात् प्राण या जीवन-की शक्ति विशेष थी। वह समस्त प्राणियोंसे बलवान था।

धरतीपर असुरोंका करोड़ों बरसतक राज था। इनकी अनेक जातियाँ हुईं। इनकी पूंछ घटती गयी। उसकी जरूरत नहीं रह गयी। इनकी कलाईमें आठ हड्डियाँ हो गयीं। इनके एक-एक पंजेमें पन्द्रह-पन्द्रह हड्डियोंकी पोरें थीं। इनके दाँत जो बड़े-बड़े थे, छोटे हो गये। इनका क़द जो बेडौल था वह भी कुछ घटा। यह बातें इनकी भिन्न-भिन्न जातियोंमें भिन्न प्रकारसे पायी जाने लगीं। पहले तो जब दो शाखाएँ हुईं तो एक लम्बी पूँछवाली शाखा हुई और दूसरी छोटी पूँछवाली। फिर छोटी पूँछवाली शाखामें भी सपुच्छ और अपुच्छ जातियाँ हो गयीं। इन अपुच्छ जातियोंमें भी पूँछ बिलकुल गायब न थी। उसका एक अंश कई करोड़ बरसोंतक रहा। इनमें भी आगे चलकर सपुच्छ और अपुच्छ विभाग होते गये।

कवरपरके चित्रमें पाठक देखेंगे कि पहले नीचे नराकार सृष्टि स्कंध है। फिर अमेरिकाई और जम्बूद्वीपीय दो कपिस्कंध स्वायंभुवमन्वन्तरमें ही बने। दूसरे और तीसरे मन्वन्तरमें छोटे और बड़े लंगूर हुए। इसी तीसरे मन्वन्तरके अन्तमें आदिम-मानववंशका आरंभ हुआ और प्राचीन लांगूली जातियाँ इस वंशसे अलग हो गयीं।

[हमारे पुराणोंके अनुसार यह आदिम मानव वंश स्वायंभुव मन्वन्तरमें ही उत्पन्न हुआ और पहले पहल प्रकृतिने आदर्श अग्रजको उत्पन्न किया, जिनमें भविष्यके विकासका साररूप मौजूद था। इसीको बैबिलमें कहा है कि परमात्माने आदिमको ठीक अपने अनुरूप बनाया। ये ही आदिम और अग्रज कहलाये। इन पहले आदर्श मानव दम्पतिका नाम हमारे पुराणोंके अनुसार था मनु और सतरूपा, मूसाई पुराणों के अनुसार आदिम और हवा।]

आदिम मानववंश कई करोड़ बरसतक रहा होगा। संभवतः ४५ करोड़ बरसतक। तब उसमेंसे एक शाखा अलग फूटी। इसे हम राक्षसवंश मानते हैं। प्रकृतिने मानववंशपर अनेक सिर, अनेक हाथ, अनेक अंगोंसे युक्त शरीरोंकी परीक्षा आरंभ की। राक्षसोंकी सृष्टि भी मानव-वंशके साथ ही साथ चली। वैवस्वत मन्वन्तरतक पहुँचते-पहुँचते इस राक्षसवंशका ह्रास हो चला। जीवन-संघर्षमें ये क्षीण होते गये। रामावतारके कालमें इनका बहुत ह्रास हो गया था। महाभारतकालमें ये अत्यन्त थोड़े रह गये थे। चाक्षुष मन्वन्तरके पूर्वार्द्धमें ही वे मानव और वानर उत्पन्न हुए थे जो पीछे रामावतारके कालमें मौजूद थे। इनमेंसे वह वानरवंश जो मानव-जीवनसे समीपतम था प्रायः रामावतारके बीस हजार बरसोंके भीतर ही लुप्त हो गया। इस वानरवंशकी विशेषता थी **हन्वस्थि**। वानरोंके ठोढ़ीकी हड्डी नहीं होती। मनुष्योंके ही होती है। रामकालीन वानर मनुष्यके अत्यन्त समीपी थे। इनके हन्वस्थि भी थी और लाङ्गूल भी। ये रहते थे वनमें, पेड़ोंपर और गुफाओंमें, और सभी जगह ये घर बनाते थे। आग बनाना ये जानते थे; परन्तु भोजन पकाते न थे। ये मनुष्योंकी तरह शिक्षित होते थे और अनेक भाषाएँ बोलते थे। इनके जीवनका बहुत कुछ इतिवृत्त वाल्मीकीय रामायणसे मिलता है। इनका रामावतारके बाद ही लोप हो गया।

[संसारके साहित्यमें मानव और वानरका संग भारतीय रामकालीन इतिहासमें ही मिलता है और पुराणोंमें सृष्टिका वह विकासक्रम भी मिलता है जो अबतक विज्ञानने विकसित किया है।]

रामावतार-समयका मानववंश भी प्रायः महाभारत-कालके पूर्व ही लुप्त हो गया था। साथ-ही-साथ वैवस्वत मन्वन्तरके आरंभमें ही वर्त्तमान मानव-जातिकी संयुक्त

शाखासे चार शाखाएँ फूट निकली थीं जिनका वंश आज भी चल रहा है—अर्थात् (१) श्वेत, (२) रक्त, (३) पीत, और (४) कृष्ण। ये आज भी मौजूद हैं। श्वेत रंग आर्य्य जाति है। रक्ताङ्ग अमेरिकाके प्राचीन निवासी हैं। पीतांग चीनी जापानी हैं। कृष्णाङ्ग अफ्रिका निवासी हैं। संसारके सभी मनुष्य इन्हीं चारोंके अन्तर्गत हैं। मनु-भगवान्ने भी मानव-जातिको चार वर्णोंमें बाँटा है। श्वेत ब्राह्मण, रक्त क्षत्रिय, पीत वैश्य, और कृष्ण शूद्र हैं। मनुने ये चारों विभाग सारे संसारके मनुष्योंके लिये किये हैं।

कुनैन और मलेरिया ज्वर

[श्रीराधारमण अग्रवाल, एम० एस-सी०]

भारतवर्षमें चिकित्सा विज्ञान बहुत प्राचीन कालसे है। आयुर्वेदमें तरह-तरहकी वनस्पतियोंका वर्णन है जिनको दवाओंके काममें लाया जा सकता है। परन्तु सिनकोनाका वर्णन कहीं नहीं मिलता। सिनकोनाकी छालहीसे कुनैन निकलती है। सिनकोना पेड़ भारतवर्षमें पहिले नहीं होता था। सचमुच इसको सभ्य संसारने अभी हालमें ही अपनाया है। यह तो सब ही जानते हैं कि मलेरिया ज्वरके लिये कुनैनसे अधिक लाभदायक ओषधि कोई नहीं है। भारतवर्षमें आजकल सबसे अधिक प्रचलित रोग मलेरिया होनेके कारण कुनैन एक ऐसी वस्तु होगयी है जिसको गरीब और अमीर सब ही सालमें एकआध बार अवश्य ही पी लेते हैं। कहा जाता है कि भारतवर्षमें प्रायः १८ लाख आदमी प्रतिवर्ष इस रोगसे पीडित होते हैं जिनमें बहुतसे अच्छी चिकित्सा न पानेसे या तो मर जाते हैं या किसी प्रकारसे काम काज करने योग्य नहीं रहते। भाग्यवश इस रोगसे अधिक मृत्यु नहीं होती, नहीं तो यहांकी जनसंख्या कभीकी गिरकर आधी रह गयी होती। आश्चर्य है कि आयुर्वेद विज्ञानने जिसमें प्रायः सब प्रकारके रोगोंकी चिकित्साका साधन है अभी तक मलेरिया ज्वर के लिये कोई भारतीय ओषधि नहीं निकाली है। वैद्य लोग कोई कड़वी वस्तु जैसे चिरायता, करंज इत्यादि इस ज्वरमें दे देते हैं परन्तु आधुनिक आविष्कारोंने इस बातको पूर्णतया प्रमाणित कर दिया है कि इन ओषधियोंसे मलेरियाके कीटाणुओंपर किसी प्रकारका प्रभाव नहीं पड़ता और उनकी संख्या कम नहीं होती।

सिनकोना यूरोपमें कैसे पहुंचा ?

संसार भरमें मलेरिया ज्वर अधिक होनेसे सिनकोना छालकी विशेष आवश्यकता रहती है। अभाग्यवश भारतवर्षमें संसार भरमें अधिक मलेरिया होता है। और इससे इसको सबसे अधिक कुनैनकी आवश्यकता होनी चाहिये। सिनकोनाका पेड़ दक्षिणीय अमेरिकाके ऐंडीस पर्वतके पच्छिमी भागमें उगता था। यह एक बड़ा पेड़ होता है जिसमें प्रायः चालीस प्रकारकी भिन्न-भिन्न जातियाँ पायी जाती हैं। यह २००० से १०००० फीटकी ऊँचाई पर भली प्रकार उग सकता है। कहा जाता है कि सन् १६३६ ई० में सबसे पहिले इसका प्रयोग यूरोपमें हुआ था। स्पेन देशकी एक महिला जिसका नाम काउँटेस ऑफ़ सिनकोन था, पेरू देशमें अपने पतिके साथ गयी थी जो कि वहाँका गवर्नर था। महिलाको मलेरिया ज्वर पेरू देशमें पहिले-पहिल हुआ और वहाँपर इसी छालसे उसका ज्वर जाता रहा। काउँटेसको इस छालके उन अद्भुत गुणोंका इस प्रकार भरोसा हुआ कि उसने स्पेन देशको एक जहाज़ भरकर भेज दिया जिससे वहाँके निवासी भी इससे लाभ उठा सकें। इस पेड़का नाम यूरोपमें इसी महिलाके नामपर सिनकोन रखा गया। स्पेनसे इसकी महिमा इटली पहुंची और इङ्गलैंड और फ्रांसमें भी धीरे धीरे यह सत्तरहवीं शताब्दीमें भली प्रकारसे इस्तेमाल में आने लगा। अँग्रेज ही इसको भारतमें लाये हैं और इसने धीरे-धीरे उन तमाम औषधियों को हटा दिया है जो आयुर्वेदीय पंडित मलेरिया ज्वर में दिया करते थे।

हमारे देशमें इसकी खेती

सन् १८२० ई०में फ्रांसीसी रासायनिक (Pelletier) पेलैटाने सिनकोनाकी छालसे इसका सक्रिय अवयव निकाला जिसका नाम उसने कुनैन रखा। और यह देखा गया कि छालके स्थानमें कुनैन कहीं अधिक भली और प्रभावशाली ओषधि है। इसी समय संसारको यह भय हुआ कि सिनकोना छालकी इतनी अधिक आवश्यकता होनेके कारण दक्षिणीय अमेरिका पूर्णरूपसे इसको नहीं दे सकेगा और इसलिए डच सरकारने सन् १८५२ ई० में जावा देशमें इस पेड़को उगानेका प्रयत्न किया। जावा देशकी आबहवा दक्षिणीय अमेरिकासे बिलकुल मिलती-जुलती है इस कारण वहाँपर यह पेड़ सफलतापूर्वक उगने लगे। कोई आठ वर्ष उपरांत भारत सरकारने भी नीलगिरीपर इन पेड़ोंको लगानेका कार्य प्रारंभ किया। सन् १८६४ में सिक्किम प्रांतके माँगपूमें रांगी की तराईमें भी सिनकोनाके पेड़ भली भांति उगने लगे। यह पेड़ भारतवर्षमें कोई ४५०० फीटसे लेकर ६००० फीटकी ऊँचाईपर सुभीतेसे उग सकते हैं। इस प्रकार यहाँपर दो सरकारी फैक्टरियाँ स्थापित हुईं जो इन पेड़ोंको उगाती हैं और इनमेंसे इनका सक्रिय अवयव कुनैन निकालती हैं। पहिले बहुतसी छोटी-छोटी निजी फैक्टरियाँ भी थीं परन्तु उन्होंने मुकाबिलेमें आकर पछाड़ खायी और धीरे-धीरे मिट गयीं। इन दोनों फैक्टरियोंसे लगभग सत्तर हजार पौंड कुनैन प्रति वर्ष पैदा होता है।

भारतमें कुनैनकी खपत

इस बातका अनुमान लगाया गया है कि भारतवर्ष में दो लाख पौंड कुनैनकी खपत है। भारतीय फैक्टरियोंके सत्तर हजार पौंड ही पैदाकर सकनेके कारण एक बहुत बड़ी मात्रा विदेशोंसे आती है। इतना होनेपर भी भारतके सब लोग इससे लाभ नहीं उठा सकते। इटलीमें प्रतिजन १६ ग्रेन, ग्रीसमें २४ ग्रेन, और भारतवर्षमें प्रतिजन ३ ग्रेन कुनैन प्रतिवर्षका ही औसत पड़ता है। भारतवर्ष संसार भरमें सबसे अधिक मलेरियासे पीड़ित होता है। और सबसे कम कुनैन ले सकता है। इसके कारण कई हैं। परन्तु मुख्य कारण है यहाँकी निर्धनता। लैफ्टीनेन्ट कर्नल चोपराने, जो ड्रग इंकोअरी कमेटीके सभापति थे, सन् १९३१ में इस समस्यापर विशेष ध्यान दिया था। उन्होंने हिसाब लगाया है कि यदि प्रत्येक रोगीको कुनैन दिया जाय तो भारतवर्षमें प्रतिवर्ष डेढ़ करोड़ पौंड कुनैनकी आवश्यकता होनी चाहिये। सिर्फ बंगाल प्राँतमें ही प्रति वर्ष एक लाख पौंड कुनैनका होना अति आवश्यक है। आजकलके मूल्यसे दो करोड़ सत्तर लाख रुपयेकी कुनैनका भारतवर्षमें होना एक आवश्यकता है। इन सब बातोंको देखते हुए हम कह सकते हैं कि निर्धन भारतीय मलेरिया ज्वरसे बचनेके लिये कोई साधन नहीं कर सकते। सारे संसारमें जितनी कुनैन प्रतिवर्ष पैदा होती है यदि वह सब भारतवर्षको ही दे दी जाय तब कहीं इस समस्याका हल होना सम्भव है। परन्तु यह सब होते हुए भी लीग आफ नेशन्स और भारत सरकारका कार्य काफी सराहनीय है। सिर्फ संयुक्त प्रांतहीमें पिछले साल चार हजार पौंड कुनैन गरीबोंको गावोंमें बाँट दी गयी थी।

कुनैनका मूल्य

सिनकोना छालसे कुनैन निकालनेमें लगभग आठ रुपया फी पौंडका व्यय होता है। परन्तु कुनैनकी आवश्यकता अधिक होनेसे इसका मूल्य बढ़ा रहता है। सन् १९२४ ई० में कुनैन २४) फी पौंडके हिसाबसे बिकती थी पर आजकल इसका मूल्य घटकर १८) फी पौंड होगया है। कुनैनका मूल्य बहुत अधिक न बढ़ जाय इस कारण एक सभा स्थापित कर दी गयी है जिसका नाम कीना ब्यूरो (Kina-bureau) है। बिना इस सभाकी सम्मति के कोई भी फैक्टरी न तो कुनैन सस्ती बेच सकती है और न इसका मूल्य बढ़ा सकती है। इसी सभाका फल है कि कुनैनका भाव सन्१९२६ में १८) फी पौंड रखा गया था और आजतक इसी भावमें बिक रही है। संसारमें इन दिनों अधिक बेकारी और बेरोजगारी होनेके कारण कुनैन का भाव कुछ अवश्य गिर जाना चाहिये परन्तु कीना ब्यूरो इसकी आवश्यकता नहीं समझता। भारतवर्ष में कुनैन पैदा करके यहींके लिये बेची जाय तो इसमें संदेह नहीं कि बड़े लाभके साथ इसे १०) या १२) पौंडमें दे सकते हैं और इतना मूल्य कम हो जानेसे इससे अधिक मनुष्य लाभ उठा सकेंगे। कुनैनका मूल्य अधिक होनेसे एक हानि और भी है। जितनी कुनैनकी टिकियाँ या गोलियाँ

बाजारमें बिकती हैं उनमें उतनी कुनैन नहीं होती जितनी कि लिखी होती है। टिकियाँ या गोली बनाने वाले कम कुनैन डालकर ही उसको बाजारमें भेज देते हैं। इस कारण उनका उतना प्रभाव नहीं होता जितना कि होना चाहिये। अभाग्यवश इसको रोकनेका कोई भी साधन कीना ब्यूरो या भारत सरकारने नहीं किया है। अभी हालही में एक नया डिपार्टमेंट खुलनेवाला है। जिसमें आशा है ऐसी बातोंपर विशेष ध्यान दिया जायगा और इस प्रकारकी ओषधि बनानेवालोंका माल बिकने नहीं आ सकेगा। ऐसा हो जानेसे मनुष्योंके स्वास्थ्यके हितमें अधिक सेवा होगी।

सिनकोनाके अन्य उपयोगी अंश

कुनैन का रासायनिक नाम क्षारोद (alkaloid) है। यह प्रायः देखा गया है कि वनस्पति ओषधियोंकी रसायनिक परीक्षा करनेपर उनमें अधिकतर कोई क्षारोद ही होता है जिसके कारण उनके चिकित्सक गुण होते हैं। सिनकोनाकी छालमें भी कुनैन क्षारोदके अतिरिक्त और भी कई क्षारोद हैं जिनपर विशेष ध्यान नहीं दिया गया है। कुनैन प्रायः ४ फी सदीसे १५ फी सदी तक होती है और दूसरे क्षारोद भी अधिक संख्यामें होते हैं। इस प्रकार सौ पौंड सिनकोनाकी छालमें लगभग ९ पौंड कुनैन, १९ पौंड सिनकोनीडीन (एक दूसरा क्षारोद), २५ पौंड सिनकोनीन, १३ पौंड कुनीनीडीन और ३५ पौंड दूसरे बे-रवेदार क्षारोद निकलते हैं। इनका रवा नहीं बन सकता। ९१ पौंड के लगभग दूसरे क्षारोद निकल सकते हैं जिनका अभी कोई विशेष प्रयोग नहीं निकला है। भारतवर्षके विद्वान डाक्टरोंकी राय है कि यदि यह बचे हुए क्षारोद मलेरिया ज्वरमें प्रयोग किये जायँ तो इनसे भी बहुत लाभदायक फल मिल सकते हैं। इनकी मात्रा अवश्य दूनी करनी पड़ेगी। भारतवर्ष एक निर्धन देश है, इस कारण यदि कुनैन यहाँके आदमी नहीं ले सकते तो इन्हीं क्षारोदोंको अवश्य काममें लाना चाहिये। यह कुनैनके अतिरिक्त बहुत ही सस्ता बिक सकता है। ड्रग इंकोअयरी कमेटीने इस बातपर विशेष जोर दिया था कि अस्पतालोंमें यदि कुनैन मिक्स्चरके स्थान पर यही काममें लाये जायें तो चारगुने अधिक रोगियोंकी सेवा उतनेही मूल्यमें हो सकती है। अभाग्यवश सरकारने इस बातपर विशेष ध्यान नहीं दिया परन्तु इसमें संदेह-नहीं कि कमेटीकी यह राय बहुत ही ठीक और विचारणीय थी।

आधुनिक आविष्कारोंके परिणामसे बहुत सी ऐसी कृत्रिम वस्तुएँ निकल चुकी हैं जो कुनैनसे भी अधिक प्रभावशाली हैं। विशेष उल्लेखनीय इनमें दो हैं जिनका नाम एटीब्रीन (Atebrin) और प्लास्मोक्विन (Plasmoquin) है। इनका प्रभाव कुनैनसे कहीं अधिक होता है परन्तु इनका मूल्य इतना है कि अमीरोंके अतिरिक्त करोड़ों निर्धन भारतीय इनसे लाभ नहीं उठा सकते। बहुत सी आयुर्वेदीय वनस्पतियाँ जिनका मलेरियाके लिये लाभदायक होना बतलाया जाता है रासायनिक परीक्षाके उपरांत कोई सराहनीय वस्तु नहीं निकाल सकतीं। इस कारण कुनैन ही एक ऐसी वस्तु है जिसका भारतवर्षके लिये होना अति आवश्यक है। इसके पेड़ोंको लगानेका काम अधिक मात्रामें करना चाहिये और जहाँ-जहाँपर ये पेड़ उग सकते हैं वहाँ-वहाँ इनकी खेती करनी चाहिये।

कुछ इधर-उधरकी

—एक दिन रातमें आप जितनी हवा साँस लेते हैं, उसका वजन आपके २४ घंटेकी खुराकसे अधिक होता है, ऐसा वैज्ञानिक बताते हैं।

—कहते हैं कि काँचके धागेके कपड़े बनने लगे हैं जो न तो सड़ते हैं और न कीड़ोंसे खराब होते हैं। शीघ्र ही उसके गद्दे, झालर, चादर, नहानेके कपड़े मिलने लगेंगे ऐसी आशा है। निउयार्ककी दूकानोंमें उसके चमकीले हैट तो बिकने भी लगे हैं।

—आपके शरीरमें ५२० पेशियाँ हैं, जिनका वजन सामान्यतः लगभग ३० सेर होता है। आपकी रीढ़के साथ १४० पेशियाँ हैं। सिरको धड़के ऊपर ठीक रखने और गति देनेके लिये २० पेशियाँ हैं। नीचेके भागोंमें १०८ पेशियाँ काम करती हैं। जरा सी हरकत करनेमें अनेकानेक पेशियोंमें हलचल हो जाता है। आपका शरीर एक विचित्र कारखाना है। —[जीवनसंदेश]
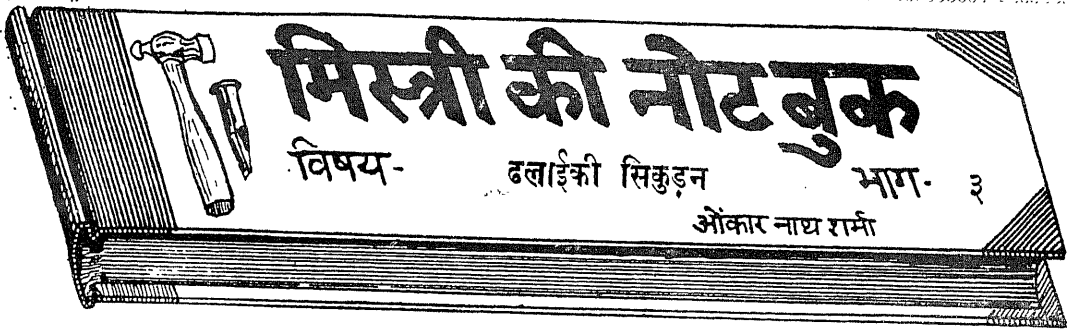
पीतल आदि मिलावटकी धातुएँ

मिलावटकी धातुका नाम और उपयोग	मिलनेवाली जातुओंकी मात्रा भागोंमें					
	ताँबा	टीन	जस्ता	सीसा	अन्य धातु	
					नाम	भाग
सख्त कांसा	८२॥	१७॥				
फौजी पीतल	९१⅔	८⅓				
कन्डेन्सर और हीटरोंके लिये पीतलकी नलियाँ	७०		३०			
जहाजी बेयरिंगोंके लिये पीतल	८८	१०	२			
रेलगाड़ीयोंके बेयरिंगोंके लिये पीतल	८८	१२				
रेलके इञ्जनोंके बेयरिंगोंके लिये पीतल	६४	७	१			
रेलके इञ्जनोंके वाल्व और ग्लान्डोके लिये पीतल	८४	१६				
इञ्जनोंकी टोंटी आदिके लिये पीतल जिनमेंसे वाष्प जाती हो	९	१				
मशीनोंके बेयरिंगोंके लिये पीतल	८	१				
स्लाइड वाल्वोंके लिये खास पीतल	२२	४	१			
पानीके पंप और पानीकी मशीनोंके लिये पीतल	३६	४	१			
तेजाबी पानी खींचनेवाले पंपोंके लिये	९७	३				
लोहेकी छड़ोंपर चढ़ानेके लिये पीतल, जैसे पंपोंके राड इत्यादि	१६	२	१	१		
खड़े हुए धुरोंके बेयरिंगोंके लिये पीतल	२०	५				
पानीकी टोंटियोंके लिये पीतल	१४	१	१			
बेलनोंके लिये पीतल	८६	१२	२			
बेयरिंगोंके लिये सख्त पीतल	१६	२॥				
मुलायम पीतल	१६	१				
सख्त पीतल	१६	२॥				

पीतल आदि मिलावटकी धातुएँ

मिलावटकी धातुका नाम और उपयोग	मिलनेवाली धातुओंकी मात्रा भागोंमें					
	तांँबा	टीन	जस्ता	सीसा	अन्य धातु — नाम	अन्य धातु — भाग
बोल्ट, नट और पहियोंके लिये	१६	१॥	$\frac{१}{२}$			
हलका सामान बनानेके लिये पीतल	४	१	$\frac{१}{२}$			
घोड़ा गाड़ियोंके बेयरिंगोंके लिये पीतल	८६	१४				
बेल बूटेदार पीतलका सामान ढालनेके लिये	२		१			
पैपोंके लिये तांबेकी फलेंज	३६	१	४			
तेज़ब रखनेके लिये बरतनोंकी धातु	६३			३०	एन्टीमनी	७
वैज्ञानिक प्रयोगशालाओंमें काम आनेवाले औजारोंके लिये धातु	१६	२॥	१			
आगकी गरमीमें चलनेवाले बेयारिंगोंके लिये पीतल	१८	१	१			
दांतवाले पहिये (किर्रे) ढालनेके लिये पीतल	९२	८				
मूर्तियाँ ढालनेके लिये पीतल	८८	३	७	२		
गैसकी टोंटियोंके लिये धातु	४०		२०	१		
पीला पीतल	२		१			
चद्दरके लिये पीतल	३		१			
सफेद पीतल	१०	१०	८०			
लाल पीतल	१६		२			
गणितके यंत्रोंके लिये पीतल	१२	१				
घड़ीके पुर्जोंके लिये पीतल (मुलायम)	४		१			
घड़ीके पुर्जोंके लिये पीतल (सख्त)	१		२			
मुलायम पीतल जो गरम करनेपर लोहेकी भांति बढ़े	३३		२५			
सुनहरी रंग बनानेके लिये पीतल	१६		१।			
पीतलकी रिबट बनानेके लिये	१६	२	१।			
ताँबेकी रिवट बनानेके लिये	६०	१				
पीतलका तार	६७		३३			
सुनहरी धातु	१		१			
दर्पणकी धातु	६८।	३१॥।				

शुद्ध और अशुद्ध शरीर

[श्री स्वामी हरिशरणानन्दजी वैद्य]

१. शरीरके मल

शुद्ध और अशुद्ध शरीरके विषयमें कम वैद्य ध्यान देते हैं।

यह तो सभी जानते हैं कि शरीरसे निकले हुए मल, विष्टा, मूत्र, स्वेद, थूक, खखार, आदि, दृष्टिमात्रमें घृणा उत्पन्न करते हैं और थोड़ा या बहुत दुर्गन्ध भी देते हैं जिन्हें मनुष्य सह नहीं सकता। शरीरके बाहर आनेपर जब ये इतने असह्य प्रतीत होते हैं, तो शरीरके भीतर रहते हुए ये कितने हानिकर होंगे, यह आसानीसे समझा जा सकता है। यही बात है कि ये जभी शरीरमें जमा होते हैं, तभी स्वभाव इन्हें बाहर निकालनेकी कोशिश करता है।

"दोष धातु मलमूलं हि शरीरम्" जब मलको शरीरका एक मूल मानते हैं तो वैद्योंके निकट मल तो शरीरका आवश्यक अंश हुआ, अतः वे उससे हानिकी बात तो वैद्य कम ही सोचते हैं।

२. मलकी हानिकारक शक्ति

हम रोटी, दाल, शाक मीठा, खट्टा जो कुछ भी खाते हैं वह जब मुंहमेंसे होकर उदरकी ओर जाता है तो उसमें अन्नप्रणालीकी ग्रन्थियोंके भिन्न-भिन्न अन्नप्रधान रस तथा सन्धानकारी सजीव अवयव निकल-निकलकर मिलते रहते हैं। यह सजीव अवयव और उक्त रस जब भुक्तद्रव्यमें मिलता है तो भुक्त द्रव्यमें इनकी कार्य कारिणी शक्तिसे सन्धान उठता है किण्वक्रिया होने लगती है इसीसे उक्त भुक्तद्रव्यके कण घुलघुलकर एकरूपसे दूसरे रूपको प्राप्त होते चले जाते हैं। इस भोजनकी परिवर्त्तनशील क्रियाका नाम साधारण बोलचाल में तो भोजनका पचना है। पर शरीरविज्ञान इसको भुक्त द्रव्योंपर होनेवाली रासायनिक क्रियाका ही नाम देता है। जिस समय हम किसी वस्तुको मुंहमें डालते हैं उसी समयसे उस द्रव्यपर रासायनिक परिवर्त्तन आरम्भ हो जाता है। जो मुँहसे आरम्भ होकर बृहदन्त्रतक होता ही रहता है।

इस तरह शरीरसे निकलनेवाले भुक्त रस और अम्लादि पदार्थोंद्वारा भोजनमें जो कुछ भी परिवर्तन आता है उस परिवर्त्तनशील द्रव्यके भागका बहुत कुछ आचूषकावयवों द्वारा आचूषण होता रहता है, जिसे वह रसवाही प्रणालीमें पहुँचा देते हैं। इस भुक्तद्रव्यके अवशिष्ट भागमें परिवर्त्तन नहीं होता जैसाका तैसा ही रह जाता है या ऐसा कठिन होता है कि जिसके कण उक्त परिवर्त्तनकारीके रसायनोंके प्रभावमें पड़कर भी नहीं घुलते जैसेके-तैसे ही बृहदन्त्रतक पहुंच जाते हैं। उन अवशिष्ट द्रव्योंपर कई प्रकारके "नये ही जीव जो बृहदन्त्रमें सदा बने रहते हैं-आक्रमण करते हैं। इनका नाम कीटाणु (Bacteria) है। जिस तरह भोजनको पचानेके लिये हमारे शरीरके अंग कई प्रकार के पाचक रस और सन्धानकारी जैवोंको भुक्त द्रव्यपर छोड़ते हैं मिलाते हैं जिससे भुक्त द्रव्य शरीरमें पचनेके योग्य हो जाता है। ठीक इसी तरह उक्त कीटाणु भी उसे पचानेके लिये अपने योग्य बनानेके लिये अवशिष्ट द्रव्यमें छोड़कर उसे घुलन-शील बनाते हैं जिससे अवशिष्ट-द्रव्यमें पुनः खमीरण होता है। जैसे जैसे उस अवशिष्ट अंशका भाग एक रूपसे दूसरे रूपमें परिवर्त्तन होकर उनके ग्रहण योग्य बनता जाता है, वैसे वैसे वह अपने उदरके भीतर करते जाते हैं तथा अपने भीतरके अयोग्य मलिन द्रव्य— जो प्रायः द्रव रूप होते हैं उन्हें निकाल देते हैं। जो अवशिष्ट द्रव्यमें रासायनिक परिवर्त्तन होता है वह ऐसे विषाक्तरूपका होता है जिसे शरीरके अवयव सहन नहीं कर सकते। इसमें कई एमोनियां (नौसादिरके) यौगिक, इन्डोल (गन्धिन) इन्डस्टोल, (दुर्गन्धिन तथा कई गन्धिन, गन्धकके यौगिक वायव्य रूपवाले ऐसे यौगिक बनते हैं जिनकी गन्ध असह्य होती है। यह प्रायः अपान-वायु रूप निकलते रहते हैं। पर यह स्मरण रखना चाहिये कि यह वायव्य जिस समय जनित हो रहे हों सबके सब अपान वायुसे बाहर नहीं निकल जाते। प्रत्युत इनका बहुत सा हिस्सा हलका होनेके कारण ऊर्ध्वगामी हो जाता है शरीरके सूक्ष्म छिद्रोंमें धंसकर आहार रसमें जा मिलता है इसी लिये वह आहार रसके साथ सारे शरीरके सूक्ष्म अव

यवों तक पहुंच जाता है। यह ऊर्ध्वगामी होनेके कारण सिरकी ओर अधिक वेगसे पहुंचता है और फिर जिस वेगसे सिरकी ओर जाता है उस वेगसे वहांसे वापस नहीं होता। बल्कि इसकी अधिक मात्रा सिरकी ओरके अवयवोंमें रुकने लगती है। इससे मस्तिष्कके धमनितक और शिरमें प्रसार होता है रक्तचाप बढ़ जाता है। जिसका मस्तिष्क पर बुरा प्रभाव होता है। सिर दर्द इसका मुख्य चिन्ह है। यद्यपि इस अयोग्य अग्राह्य पदार्थको वृक, त्वचा और फुफुस बेगसे बाहर निकालनेकी चेष्टा करते हैं तो भी जबतक इसकासंजनन बन्द न हो आहार रस लसीका या रक्तमेंसे इसकी मात्रा नहीं घटती। इसका शरीरमें विद्यमान होना या ऐसे पदार्थका संजनन होना जिसकी शरीरको आवश्यकता नहीं उसका शरीरके एक-एक अवयवतक पहुंचना या बना रहना शरीरमें अशुद्धि की विद्यमानताका चिन्ह है।

३-दूसरा कारण

हमने ऊपर खाली एक कारण दिखाया है कि जिससे अयोग्य अग्राह्य पदार्थ उत्पन्न होकर शरीरमें पहुंचते हैं। इससे भिन्न और भी कई कारण हैं। हमारे शरीरमें जो कुछ कार्य व्यवहार होता है सब परिमित होता रहता है। हममें खानेकी शक्ति और पचानेकी शक्ति तथा भुक्त द्रव्यको उदरमें रखनेकी शक्ति सब परिमित है। हमारा बल, पौरुष ज्ञान, विवेक, विचार, सब परिमित हैं। भोजनका एक रूपसे दूसरे रूपको प्राप्त करनेवाली शरीरमें शक्ति भी परिमित है। अर्थात् जितने भी भोजनको पचानेवाले रस और सन्धानकारी अवयव शरीरमें बनते हैं उनका बनना परिमित होता है। जभी तो अधिक भोजन करलेनेपर अजीर्ण (अपच) के चिन्ह प्रादुर्भूत होते हैं। इसमें कोई संशय नहीं कि कई व्यक्तियोंके शरीरमें यह रस और किण्वावयव बड़े बलवान् पाये जाते हैं। इसीसे वह व्यक्ति अधिक खाकर पचा जाते हैं। पर उनकी यह शक्ति भी परिमिति होती है। जो व्यक्ति जितना भोजन करके बिना किसी प्रकारका कष्ट अनुभव किये उक्त भुक्त द्रव्यको सात्म्य रूप दे लेते हैं वही उनका पाचन शक्ति या पाचक रसकी सीमा है। हम इसको सोदाहरण स्पष्ट करेंगे।

मानलो कि हम अहर्निशमें ऽ॥ सेर आटा ऽ= दाल, ऽ। भर सब्जी ऽ– घृत ऽ= शर्करा मिलाकर खाते हैं। जब हम उक्त मात्रामें भोजन कर लेते हैं तो ऐसी दशामें न तो शरीर भारी होता है न पेट भारी होता है न शरीरमें आलस्य आता है न तृषा लगती है। बिना किसी कष्टका अनुभव किये वह भोजन पच जाता है और सुबह चारपाईसे उठतेही मलबिसर्जनकी इच्छा होती है। मल भी बँधा हुआ भूरापीत बिना कष्टसे एक बारमें ही मलमार्गसे बाहर हो जाता है। यदि हम आवसेर आटेके स्थानपर ऽ॥। पाव आटा करदें तथा भोजनकी अन्य सामग्रीकी मात्रा भी कुछ न कुछ बढ़ा लें और इतना भोजन करनेपर पेट भारी हो जाय, शरीरमें बेचैनी हो, तृषा लगे, डकार आवें, या खट्टी डकार उठें, अपान वायु सरने लगे, रात्रिको पूरी नींद भी न आवे सुबह मल भी साफ सही रूपमें न उतरे तो इन सब बातोंको देखकर कहा जा सकता है कि यह भोजनकी बढ़ी हुई मात्रा अपरिमित है, अधिक है। जब कभी हम इस अपरिमित मात्रामें भोजन करते रहेंगे उसका स्पष्ट अर्थ यह होगा कि हम अपनी पाचन शक्तिसे अधिक ग्रहण कर रहे हैं। यह ग्रहण किया हुआ भोजन शरीरको शक्ति नहीं दे सकता। प्रत्युत इसपर शरीरकी सही रसायनिक क्रिया हो ही नहीं सकती। यह पदार्थ सदा पाचक रसों और सन्धानी जैवोंकी शक्तिसे बचकर आगे बढ़ जाता या अन्नप्रणालीके सूक्ष्म छिद्रोंमें फँस जाता है जहां उसके समयसे अधिक रुकनेपर उसमें शरीरके तापक्रमका प्रभाव तथा अन्य जैवी प्रभाव होता रहता है। इससे उसमें इतने रासायनिक परिवर्तन होते रहते हैं इतने प्रकारके अयोग्य अग्राह्य पदार्थ बनते रहते हैं कि उनकी पूरी-पूरी गणना नहीं की जा सकती। उदरमें बननेवाले ऐसे अयोग्य अग्राह्य पदार्थोंकी संख्या अबतक १०८-१० तक मालूम की जा चुकी है। इनकी विद्यमानतासे ही शरीरमें अनेक प्रकारके कष्ट होते हैं। यथा,—आजकल गर्मीके दिनोंमें अकसर देखा जाता है कि रात्रिको सोते-सोते गला सूख जाता है। रात्रिको उठकर कई बार पानी पीते हैं। नासिका और मुँह अत्यन्त सूखता-ही रहता है। कइयोंको सुबहके समय उठते ही जिह्वापर मलिनता चढ़ी होती है। मुँहका स्वाद खराब होता है। ऐसे व्यक्ति कई-कई बार शीतल जल शर्बत इत्यादिका

सेवन करते रहते हैं, किन्तु उनके उक्त दोष दूर नहीं होते। कइयोंको नकसीर छुटती है। कइयोंको सदा मीठा-मीठा सिर दर्द होता रहता है। कई व्यक्तियोंको इतना आलस्य-सवार रहता है कि काम करनेकी इच्छा करनेपर भी काम नहीं कर सकते। कइयोंको नींद बहुत आती है। ऐसे साधारणसे साधारण विकारोंको देखकर वैद्य इन विकारोंके कारणको न समझनेके कारण कइयोंको इन्हें स्वभाव-जन्य-रोग या प्रकृतिप्रदत्त बात बताकर छोड़ देते हैं, क्योंकि कइयोंमें वह इन विकारोंको वर्षोंसे लगातार देखते रहते हैं, इसीलिये ऐसा मान लेते हैं। वास्तवमें यह सब विकार शरीरके अशुद्ध रहने की सूचना देते हैं। इन विकारोंके बने रहनेपर निश्चित कहा जाता है कि इसका शरीर अशुद्ध है शरीरके भीतर अन्नप्रणालीमें कहीं न कहीं ऐसा विकारी कारण विद्यमान है, जहांसे उक्त विकारका कारण उठकर शरीरमें फैलता रहता है। इसीसे शरीरमें उक्त उपद्रव दिखाई देते हैं। यदि उस विकार कारणको दूर कर दिया जाय शरीर शुद्ध हो जाय तो उसी समयसे शरीरमें होने-वाले उक्त उपद्रव समूल जाते रहेंगे। शरीर किसी प्रकारका कष्टतक अनुभव न करेगा।

शरीरको शुद्ध रखनेके लिये यह जरूरी है कि भोजन इतना खाया जाय जो बहुतहो सरलतासे पच जाय। जब तक एक बारका किया हुआ भोजन पूर्णतया सात्म्य रूप न हो जाय तबतक भोजन न किया जाय। भोजन क्रियासे लेकर मलत्याग क्रियातक शरीरके सारे काम बिना किसी कष्टके अज्ञातसी दशामें होते रहें, तो समझना चाहिये कि शरीर शुद्ध है। जब भोजन करनेसे लेकर मलत्यागके समयके मध्य तक मानसिक वृत्तियोंका उधर खिंचाव हो, किसी प्रकारके दुःख या कष्ट या विकारको शरीर अनुभव करे, तभी समझ लो कि शरीर अशुद्ध हो गया है। शरीरमें अशुद्धिका कारण विद्यमान है।

४—शरीरमें अशुद्धिका स्थान

यह बात भी अच्छी तरह ध्यानमें रहनी चाहिये कि शरीरमें अशुद्धिको उत्पन्न करनेवाला तथा उसे बनाये रखनेवाला एकही स्थान है। वह है पाकशाला या अन्न प्रणाली। शरीरमें अन्न प्रणालीही एक ऐसी जगह है जहां अच्छी बुरी सब तरहकी चीजें आसानीसे पहुंच जाती हैं और वहां थोड़े-थोड़े दिन नहीं प्रत्युत बीसों बरसतक रुकी रह सकती हैं। जिन व्यक्तियोंको एक-एक साधारण कष्ट वर्षों तक चले जाते हैं और फिर किसी चिकित्सासे या स्वतः जाते रहते हैं, उक्त कष्टोंके उक्त कालको देखकर यही कहना पड़ता है कि उतने समयतक इसका शरीर उक्त अशुद्धिको अपनेमें बनाये रख सका।

जबतक अन्नप्रणाली अशुद्ध न हो शरीरका अन्य भाग अशुद्ध नहीं होता, क्योंकि शरीरमें जो कुछ पहुंचता और खपता है वह सब इसी मार्गसे पहुंचकर खपता है जब यह पहिले अशुद्ध हो जाय, इसमें ऐसी चीजें आकर संचित हो जांय जिनका प्रयोग शरीर न कर रहा हो तो वही वस्तुएँ मलिनताके नामको धारण करती हैं। कई व्यक्ति कहेंगे कि यह अशुद्ध वस्तुएँ होती क्या चीज हैं? यह वस्तुएं वही होती हैं जिन्हें हम खाद्यपेय द्रव्य कहते हैं किन्तु, जैसा कि हम बता चुके हैं खाद्यपेय द्रव्यके वह अंश जो नहीं पचते, वह अवशिष्ट अपच्य रूपमें रह जाते हैं। वही द्रव्य अधिक कालतक रुके रहनेसे अग्राह्य हो जाते हैं।

कई बार ऐसा देखा गया है कि एक व्यक्तिको कुछ खा लेनेसे अरुचि हो गयी कई दिन भूख न लगी। वैद्यने उसे वमन दिया या रेचन दिया तो देखा गया है कि उस दिनका खाया हुआ द्रव्य उसके टुकड़े या साबित कण जैसेके तैसे वमन और रेचनमें निकले।

प्रायः अन्नप्रणाली जब किसी अपच्य पदार्थसे रुक जाती है तो स्वभावतः देखा जाता है कि मुख बन्द हो जाता है, खानेकी इच्छा नहीं होती, अन्नसे द्वेष हो जाता है। इसका स्पष्ट अभिप्राय यह होता है कि शरीरके पाचक पात्र खाद्य या अपच्य द्रव्योंसे रुके हुए हैं यदि ऐसी स्थितिमें जबरदस्ती खाया जाय तो उसका परिणाम भयंकर व्याधिका आगमन होता है। यह भी अच्छी तरह देखा गया है कि शरीरकी अन्नप्रणाली शुद्ध हो तो जैसी व्याधियां या जीवोंका आक्रमण भी शरीरको कोई हानि नहीं पहुंचा सकते। शुद्ध शरीरपर भयंकरसे भयंकर व्याध्युत्पादकका प्रवेश करानेपर वह उस शुद्ध शरीरमें जीवित ही नहीं रहते, प्रत्युत मार डाले जाते हैं। शुद्ध शरीरमें इतनी अधिक क्षमता होती है कि उसका सामुख्य कोई जीव नहीं कर

सकता। किन्तु, इसके विपरीत अशुद्ध शरीर साधारणसे साधारण रोगोत्पादक जन्तुओंका साम्मुख्य होनेमें असमर्थ देखा जाता है।

आयुर्वेदके ग्रन्थोंमें एक सूत्र आता है "उदरम् व्याधि मन्दिरम्" पेट या अन्नप्रणाली बीमारियोंका घर है। इसका स्पष्ट अर्थ यही है कि पेटके मलिन होने या अशुद्ध पदार्थों के संचित हो जानेसे बीमारियां होती हैं। कई व्यक्ति कहेंगे कि आयुर्वेदमें त्रिदोषको व्याधियोंका कारण माना है। त्रिदोष या चतुर्दोषोंका न तो अन्नप्रणालीमें पता लगता है न यह किसी बीमारीके समय उसके कारण स्थानपर मिलते हैं। हां, यह अंग-विकृतिके चिन्ह अवश्य देखे जाते हैं। पेटमें अयोग्य सन्धान होने लगा, पेटमें वायव्य पैदा होने लगे, तो यह अपानवायु उद्गारसे निकलता देखकर कहना पड़ा कि पेटका कोई भाग विकारी हो रहा है। वमनमें पित्त आने लगे या रक्तमें पित्त जाकर मिल जाय तो कहेंगे कि यकृतका पित्तप्रणाली भाग विकारी हो गया। मुख या गुदाके मार्गसे श्लेष्म जाने लगे तो कहा जाता है कि इन मार्गोंकी श्लैष्मिक कला खराब है। इस तरह यह बात पित्त कफका रूप अवयव-विकृतिका द्योतक होता है जो वास्तवमें शरीरमें अशुद्धि विद्यमान रहनेसे अयोग्य पदार्थोंके शरीरमें प्रवेश होनेपर ही अंग या अवयवोंमें विकृति आ जाती है। जबतक शरीर अशुद्ध न हो कभी किसी अंगमें विकृति आ नहीं सकती। मल अशुद्धिया दोषका तात्पर्य सदा ऐसे खाद्यपेय पदार्थसे लेना चाहिये जो न पचकर शरीरको मलसे दूषित कर रहे हैं।

हमारे प्राचीन इतिहासकी खोज

[श्री जयशंकरप्रसाद जी]

१ त्रिःसप्तके सम्बन्धमें भ्रम। आर्य्योंका उद्गम

पूर्व लेखकोंने सिंधुकी सहायक नदियोंको ही ऋग्वेदके मंत्र ७५—'प्रसप्त सप्त त्रेधारि चक्रमुः प्रसृत्वरीणामति-सिंधुरोजसा'—तथा—त्रिःसप्त सस्रा नद्यो"—१०–६४–८ मंत्रोंमें वर्णित नदियाँ मान लिया है। किंतु मेरा अनुमान है कि ये त्रेधा तीन सप्तक मंत्रार्थके अनुसार ही अलग अलग तीन स्थानोंमें होने चाहिएँ। और ये तीनों सप्तक अपनी सहायक नदियोंके साथ गंगा, सिंधु और सरस्वती के हैं।

"अनुप्रत्नस्यौकसोहुवे" इत्यादिमें प्रत्न ओक = प्राचीन वासभूमिका जो अर्थ लगाया जाता है, और जिससे यह सिद्ध करनेकी चेष्टाकी जाती है कि इन लोगोंकी आदि भूमि कहीं दूसरी है ठीक नहीं। सामश्रमीजीने—'पुराणमोकः सख्यं शिवं वां युवोर्नरा द्रविणं जन्हाव्याम्"—३–५८–६को उद्धृत करके यह दिखलाया है कि समय-समय पर व्यक्तिविशेषोंकी वास-भूमिका इसमें उल्लेख है, न कि आर्य्योंके सामूहिक आवासका। पुराण ओक गंगातट पर भी ऋग्वेदके मंत्रसे प्रमाणित है। यह गंगाका सप्तक यमुना सदानीरा आदि सहायक नदियोंसे बनता था। कीकट आदि तककी नदियां इसमें गिनी जा सकती हैं। इस सप्तककी पूर्व सीमा सदानीरा थी। सिंधुकी सात नदियोंका सप्तक प्रसिद्ध है। तीसरा सप्तक सरस्वतीका होगा, ऐसा मेरा अनुमान है क्योंकि ऋग्वेदके छठे मंडलका ६१ वां सूक्त सरस्वतीकी महिमाका गान करता है। उसमें 'उतवः प्रिया प्रियासु सप्तस्वसा सुजुष्टा"—कहकर सरस्वती सात बहनोंवाली मानी गयी है। सिंधुके सप्तकवाली सरस्वती से ही काम नहीं चल सकता। क्योंकि आगे चलकर उसी सूक्तमें—'प्रिया महिम्ना महिनासु चेकिते द्युम्नेभिरन्या अपसामपस्तमा" इस उक्तिसे और सबोंसे यह अपस्तमा प्रभूत जलवाली मानी गयी है। उधर त्रिसप्त सप्त' वाले मंत्रमें—अति सिंधुरोजसा' है, इसलिये इस सरस्वतीको सिंधुके सप्तकवाली सरस्वतीसे हम भिन्न मानते हैं।

पंजाबकी सरस्वतीके अतिरिक्त एक दूसरी सरस्वती भी थी। अवस्थामें जिन पवित्र देशोंका वर्णन है, उनमें सप्तसिंधु अलग वर्णित है। जैसे—

पंद्रहवाँ उत्तम देश हसहिंदव है*। दसवाँ उत्तम प्रदेश हरहवैती है। हरहवैतीके दो अपभ्रंश रूप मिलते हैं अररोखाग (अरबी साहित्यमें प्रयुक्त देश नाम) और अरगंद (जो आधुनिक 'अरगंद आब' नदीके नाममें पाया जाता है †)।

हसहिंदव जिस प्रकार सप्तसिंधुका विकृत रूप है, वैसा ही हरहवैती सरस्वतीका है। अरगंदाब अफगानिस्तानके कंदहार प्रांतकी एक बड़ी नदी है। वर्तमान कालके मानचित्रमें हारूनसे लेकर कंदहारतककी नदियोंका एक सप्तक आप अच्छी तरहसे देख सकेंगे, जिसके नीचे (Zirreh) जिरेका दलदल और एक रेगिस्तान भी है। अविनाशचंद्र दासने— 'एका चैतत् सरस्वती नदीनाम् शुचिर्यतीगिरिभ्य आसमुद्रात्"—(७-९५-२) के आधार पर पंजाबकी सरस्वतीका राजपूताना समुद्रमें गिरना लिखा है। किन्तु और मंत्रोंमें समुद्रमें गिरनेका वर्णन नहीं मिलता। अतः जिस प्रकार सामश्रमीने—"रसाद्विर्वं तु नूनमङ्गीकार्यम्"—से 'रसा' नामकी दो नदियां मान लेनेकी सम्मति प्रकट की है, वैसे ही सरस्वतीके लिये भी अवश्य मानना होगा। जैसा हम ऊपर दिखला आये हैं कि सरस्वती अपस्तमा है, वैसे ही और भी प्रमाण उसके अपनी सहायक नदियोंमें प्रबल होनेके मिलते हैं। "प्रक्षोदशा धायसा सस्र एषा सरस्वती धरुणमायसी पूः। प्र बाव धाना रथ्येव याति विश्वा अपो महिमा सिंधुरन्याः"—(७-९५-१) इसमें अपने साथकी नदियोंसे वह प्रबल और एक दूसरी सिंधुके सदृश मानी गयी है। इस प्रकार यह सरस्वतीका सप्तक दक्षिण-पश्चिमी अफगानिस्तानमें ठहरता है।

इसमें दासके मतसे भी कोई असम्भावना नहीं दिखाई देती। यद्यपि उन्होंने प्राचीन सप्तसिन्धु वा आर्यावर्त्तको चतुस्समुद्रसे घिरा हुआ माना है, फिर भी वे लिखते हैं कि "सप्तसिन्धु उत्तर-पश्चिमकी ओर गांधार प्रान्तके द्वारा पश्चिमी एशिया या एशिया माइनरसे मिला हुआ था।"—पृ० ५६०, ऋग्वेदिक इण्डिया। इसलिये चारों समुद्रोंवाली सीमाका सिद्धान्त हमारे गांधारके सारस्वत प्रदेशके लिये बाधक नहीं होता।

ऊपर कहे हुए गंगा, सिन्धु, और सरस्वतीके तीनों सप्तकोंकी भूमि, वैदिक कालके आर्योंका लीला-निकेतन थी। जह्नाव्य अर्थात् गंगाकी घाटी, सिन्धु और सरस्वतीके पवित्र मंगलमय तथा परम प्रिय प्रदेशोंके अतिरिक्त अन्य प्रदेशोंसे भी संहिता-कालके आर्य लोग अपरिचित नहीं थे। अथर्वसंहिताके पंचम कांडमें परुष, महावृष, मूजवत् वाह्लीक इत्यादिके नाम तो आये ही हैं इनके अतिरिक्त तत्कालीन आर्यावर्तके अत्यंत पूर्व स्थित मगधका भी उल्लेख मिलता है। परन्तु ऋक् संहितामें मगधका भी कीकट नाम से उल्लेख है।—"किं कृण्वंति कीकटेषु गावः (३-५३ १४)

दास कीकटको ऋक्कालीन प्रदेश नहीं मानना चाहते। वे कहते हैं, पांचाल कोशल आदि भी उस कालके प्रदेश नहीं थे—(पृ० ५६१)। किन्तु विशेष नाम न होनेसे क्या हुआ जब ऋग्वेदके प्राचीन मंडल (क्योंकि दसवें मंडलको लोग पीछेका मानते हैं)—३-५८-६—में 'जह्नाव्य' गंगाके प्रदेशोंका उल्लेख है। सो भी 'पुराणमोकः" प्राचीन वासभूमि कहकर। अतः गंगाके समीपका वह देश ऋक्-काल का अवश्य है जिसकी पूर्व सीमामें कीकट (दक्षिणी विहार) देश था। उधर 'आवदिंद्र यमुना तृत्सवश्च—(७-१८-१९) में यमुना तीरवर्ती देशका भी उल्लेख है, फिर पाँचाल कोशल, मगधका नाम न होनेसे कुछ बिगड़ता नहीं। हो सकता है, अत्यन्त पूर्व स्थित होनेके कारण इनकी बस्ती घनी न रही हो और इन नामोंसे अलग-अलग स्वतन्त्र राष्ट्र न स्थापित हुए हों।

ऐतरेयमें उत्तर मद्रका भी उल्लेख है। उत्तर मद्रको इसी लेखमें पहिले मध्यकालीन मीडियासे अभिन्न माना गया है। उत्तर मद्र पश्चिम और मगध पूर्वमें आर्योंके प्रभावक्षेत्रसे संलग्न थे। पश्चिममें तो—'समुद्रं रसया सहाहुः"—(१०-२१-४) में वर्णित रसा, अर्बिस्तान रूम या मेसोपोटामियाकी, समुद्रमें मिलनेवाली, टिगरिस नदीका

* The fifteenth of the good lands and countries which I, Ahura Mazda, created, was the Seven Rivers,—(P. 9, Vendidad.)

† १६४ पृ० का फुट नोट देखिए।

भी नाम आया है, क्योंकि अवस्थाके अनुसार यह राँधा प्रदेश भी पवित्र माना गया है ।

यद्यपि सरमाके उपाख्यान-संबंधी ऋग्वेदीय सूक्तोंमें रसाके उस पार असुरोंकी आवास-भूमिका उल्लेख है, तो भी उत्तर मद्रकी स्पष्ट सूचना नहीं मिलती । यह प्रदेश ऋक्संहिता-कालमें उतना नहीं बसा था; हो सकता है कि इसी कारण ऋक् कालमें इसकी स्वतंत्र आख्या न बनी हो । ऋक्-कालमें सरस्वतीकी घाटीमें भी रहनेवाले आर्य्यों से संघर्ष ही चल रहा था । इसी लिये सरस्वतीको वृत्रघ्नी कहा है । ऋक् मंत्र १०-२७-१७में सामश्रमीने आक्षस नदीका भी उल्लेख माना है । इस लिये उक्त प्रमाणोंसे गंगासे लेकर वर्तमान हेलमंदकी घाटी और वाह्लीकसे लेकर दक्षिणके ऋक्कालिक राजपूतानाके समुद्रतक हम आर्य्यों की एक घनी बस्ती मानते हैं, जिसके बीचमें मेरु स्थित है । मगध, अंग तथा मीडिया, और मेसोपोटामियाके प्रदेश भी आर्य्य क्षेत्र कहे जा सकते हैं, किंतु इन प्रदेशोंमें आर्य्योंको अनार्यों तथा अपनी ही जातिके भिन्न मतावलंबी अधार्मिकोंसे बराबर युद्ध और संघर्ष करना पड़ता था ।

२-द्रविड़ सभ्यतासे आर्य्यका संघर्ष ?

यहां मुझे थोड़ा सा उस बढ़ते हुए विचारपर भी अपनी सम्मति प्रकट कर देनी है जिसे आजकल बहुत प्रधानता दी जा रही है । वह है आर्य्योंके पहले भारतवर्षमें एक अत्यंत प्राचीन द्रविड़ सभ्यता माननेका सिद्धांत । सो भी ऋग्वेद-कालमें । किंतु, अत्यंत प्राचीनकालमें आर्य्य द्रविड़ सभ्यताका संघर्ष असंभव था, क्योंकि द्रविड़ (कृष्ण) जातिकी जन्मभूमि दक्षिणी महाद्वीप, राजपूताना समुद्रके द्वारा प्राचीन आर्य्यावर्त्तसे अलग था और वह महाद्वीप वर्तमान अरब दक्षिणी भारत और आफ्रिकाको एकमें मिलाये था । प्राचीन ऋग्वेदमें आप कितने ही समयोंके तारतम्यको स्पष्ट देख सकेंगे, किंतु उसके साथ ही—'कृणुध्वं विश्वमार्यम्' का सिद्धान्त स्पष्ट बतलाता है कि मुख्यतः आर्य्य संस्कृति एक थी, जिसे न माननेवाले उसी प्राचीन जातिके लोग भी अनार्य्य कहलाते थे । ऋग्वेदके आर्य्यावर्त्तमें वैदिक सभ्यतावाले आर्य्योंको इन्हीं उच्छृंखल धर्म्म-विहीनों से युद्ध करना पड़ता था जो प्रायः दस्युजीवनकी ओर अधिक प्रवृत्त रहते थे ।

जैसा पहले कहा गया है, दक्षिणी द्रविड़ोंसे या उनकी सभ्यतासे आर्य्योंका संघर्ष होना माननेके लिये कोई विशेष कारण नहीं है, क्योंकि एक तो राजपूताना समुद्र बीचका व्यवधान था दूसरे द्रविड़ोंका अधिक आकृति-सम्बन्ध भी उन सुमेरियन और सिंधुके अवशिष्ट चिन्होंको छोड़ जानेवाले मनुष्योंसे नहीं मिलता । द्रविड़ एक स्पष्ट दक्षिणी महाद्वीप की जाति है जिसका मूल उद्गम दक्षिणी अफ्रिकाकी कालाहारी अधित्यका (Kalahari Plateau in South Africa है,जैसा कि Camron Cadle Expedition के प्रयाससे सिद्ध किया जा रहा है* । यह दक्षिणी द्रविड़ सभ्यता स्वतंत्ररूपसे कहीं भी उस प्राथमिक अवस्थासे ऊपर न उठी जिसे उन्होंने पहली बार अन्य जातिसे ग्रहण किया था । कब कब, कहां कहां, आर्य्यावर्त्तके इन दिव्य विजेताओं और अफ्रिकाके कृष्णोंसे रक्त-मिश्रणके द्वारा न्यूनाधिक श्वेत-कृष्ण-जातियाँ बनीं, इसका अनुमान करना कठिन है ।

३-अर्थभ्रमसे इतिहास समझनेमें भूल

इस प्राचीन सप्तसिंधुके अंतर्गत मेरुप्रदेशमें ही अग्रजन्मा उत्पन्न हुए । मेरुपर ही स्वर्ग था । पश्चिमी विद्वानोंने हमारे उस प्राचीन इतिहासको 'माइथालोजी' मान रखा है । उनमें इस धारणाका कारण हमारे निरुक्तकार भी हैं । निरुक्त संभवतः उस कालमें बना जब कि प्राचीन वैदिक मंत्रोंके अर्थ लोगोंको विस्मृत हो चले थे । क्योंकि, उसमें कहीं-कहीं एक-एक शब्दकी व्याख्या चार-चार प्रकारसे की गयी है । इसमें निरुक्तकारोंका एक और भी उद्देश्य था, वह था वेदोंका अपौरुषेयत्व प्रमाणित करना । किन्तु स्वयं निरुक्तकार अपने पूर्ववर्ती वेदोंके अर्थ-निर्णयमें एक ऐतिहासिक

* I am able definitely to confirm that man emerged in the lap of this mother earth in this strange wild country—(Dr. Cadle, Pioneer, 17th October. 1928.)

मत भी मानते थे। ('तत्को वृत्रः मेघ इति नैरुक्ताः त्वाष्ट्रोऽसुर इत्यैतिहासिकाः'।) वैदिक मंत्रोंके ये अर्थ उपनिषत् और ब्राह्मण-कालकी कल्पनाएँ हैं। जब बहुदेववाद और कर्म्मकांड-सम्बन्धी मंत्रोंका एकेश्वरवादके साथ समन्वय होने लगा था और जब 'उषा वा अश्वस्य मेध्यस्य शिरः' के सिद्धांतका प्रचार हुआ, प्राचीन ऋग्वेद आदिकी मात्राएँ तक गिनी गयीं और वे अपौरुषेय बना दिये गये। यद्यपि ऋग्वेदमें ही एकेश्वरबाद तो क्या शुद्ध दार्शनिक विचारों तथा आत्मानुभूतिकी भी झलक दिखाई देती है। किन्तु देवोंका स्वतंत्र अस्तित्व और उनका इतिहास मान लेनेके लिये पिछले कालके एकेश्वरवादी और अपौरुषेयवादी प्रस्तुत न हुए।

अब भी सनातनधर्मका बहुदेववाद मूलमें प्राचीन ऐतिहासिकोंका अनुयायी है और आर्य्यसमाज एकेश्वरवादी निरुक्तका अनुगमन करता है, जिसके अनुसार देवोंको वे रूपक-द्वारा मूर्तिमान् की गयी सर्वं शक्तिमान्की शक्तियाँ मानते हैं।

वेदोंका अध्ययन करनेवाले पाश्चात्य विद्वानोंने भ्रमवश प्राचीनतर ऐतिहासिक संप्रदायको न मानकर हमारा इतिहास भ्रामक बना देनेके लिये निरुक्तके अर्थको ही पथप्रदर्शक माना है। साथ ही माइथालोजी मानते हुए भी उन्हें ऋग्मंत्रोंसे भूगोल, नदियाँ और ज्योतिष-सम्बन्धी गणनाओं के आधारपर आर्य्य-इतिहास और समय-निर्धारणकी सूझी है। तात्पर्य यह कि प्राचीन ऐतिहासिकोंका मत सर्वथा निर्मूल न हो सका। रैगोजिनने वैदिक इंडियाके ३३० पृष्ठपर लिखा है—'बहुतसे साधारण वैदिक नामोंका एक ही सपाटेमें अप्राकृतिक शक्तियों और अमर्त्योंसे जो संबंध लगाया जाता है, वह ठीक नहीं। वास्तवमें कितने हो अंतरिक्ष युद्धोंका सम्बन्ध प्राकृत मर्त्य वीरोंके भयानक संघर्षों से है *।"

卐

त्रिदोष-विज्ञानम् हिन्दी-भाषा-टीकोपेतम्। दी आयुर्वेदिक एंड यूनानी तिब्बिया कालिज देहलीके प्रोफेसर, काव्यतीर्थ-व्याकरणतीर्थ-सांख्यतीर्थ-सांख्यसागर कविराज श्रीउपेन्द्रनाथदास भिषगाचार्य्यके द्वारा प्रणीत अनूदित और प्रकाशित। सर्वाधिकाररक्षित। डबलक्रौन १६ पेजीके २८० + १६=२९६ पृष्ठ। छपाई सुन्दर, सजिल्द, मूल्य पौने दो रुपये।

* "And it becomes patent that probably a majority of the common names, which are sweepingly set down as names of fiends and other supernatural agents, really are those of tribes, peoples and men while many an alleged atmospheric battle turns out to have been an honest, sturdy, hand-to hand conflict between bona fide mortal champions.—(V. India.)

सन् १९३५ के नवम्बर मासमें काशीके हिन्दू विश्वविद्यालयमें एक अखिल भारतीय विद्वत् सम्मेलनका अनुष्ठान किया गया था उसीमें होनेवाली त्रिदोषचर्चा-परिषत्में पढ़े जानेके लिये, उसी परिषत्की निश्चित विषय-सूचीपर कविराज श्रीउपेन्द्रनाथदासने एक निबन्ध संस्कृतमें लिखा था। परन्तु परिषत्में उसके पढ़े जानेका अवसर नहीं मिला। कविराजजीने उसीका हिन्दी अनुवाद लिखकर मूल संस्कृत सहित प्रकाशित किया है। पंचभूतचर्चा परिषत्की विचार्य्य सूचीपर ऐसा ही एक निबन्ध जो कविराजजीने लिखकर प्रकाशित किया है उसकी आलोचना हम कर चुके हैं।

प्रस्तुत निबन्धमें ऋषिप्रणीत ग्रन्थोंके आधारपर त्रिदोष सिद्धान्तका तर्क और युक्तिसे पुष्ट बहुत ही सुन्दर प्रतिपादन किया है। जिन्हें जानना हो कि हमारा त्रिदोष-सिद्धान्त क्या है वे इस निबन्धको अवश्य पढ़ें। जहांतक प्राच्य आयुर्विज्ञानके सिद्धान्तोंका सम्बन्ध है, कविराजजीने बड़ी योग्यतासे अपने विषयका प्रतिपादन किया है।

साथ ही आपने स्थान-स्थानपर पाश्चात्य मतोंकी भी समीक्षा की है, और अच्छी समीक्षा की है। इसमें संदेह नहीं कि अधकचरे वैज्ञानिकोंके भ्रमोंका आपने सफलतापूर्वक निराकरण किया है। परन्तु विज्ञानकी कई बातें, जिनकी आपने समीक्षा की हैं, ऐसी भी लिखी हैं जिनसे पता चलता है कि आपको विज्ञानके बहुत साधारण बातों का भी पता नहीं है। उदाहरणार्थ पृ० १३४पर आपने कार्बन द्वयोषिद्को "शीघ्र प्राणघातक" बताया है। इतने थोड़े ज्ञानके भरोसे विज्ञानसम्बन्धी बातोंको अपने विमर्शमें लाना एक विद्वान्‌के लिये भयावह एवं विपज्जनक है।

मेरी रायमें ऐसी पोथियोंमें प्राच्यके साथ पाश्चात्यकी समीक्षा तभी की जाय जब निश्चय हो जाय कि लेखक जो कुछ पाश्चात्यके विषयमें कह रहा है, उसमें कोई दोष नहीं है।

समस्त पदार्थोंकी गतिशीलता और रक्तसंचारका कारण सूक्ष्म वायुतत्त्व है, यह सिद्ध करनेमें आपने अन्वय और व्यतिरेकसे अच्छा काम लिया है। पृ० १५-१८। फिर भी आपने यह नहीं दिखलाया है कि आपके तथोक्त वायुतत्त्व पर परीक्षार्थ किसी प्रकारका प्रयोग संभव है या नहीं, अथवा वह प्रयोगसाध्य है या नहीं। सूक्ष्मताकी आपकी परिभाषा आधुनिक विज्ञानकी परिभाषासे भिन्न है। सूक्ष्मसे सूक्ष्म स्रोतोंमें प्रवेश कर सकना त्रिदोषविज्ञानकी परिभाषा है, परन्तु यंत्रोंद्वारा देखकर उनके आकार और आयतनकी कल्पना अथवा यंत्रोंद्वारा भी न दीख सकना यह भी सूक्ष्मता की कल्पना है। वैज्ञानिक केवल प्रवेश्यताको ही प्रमाण नहीं मानता क्योंकि वहां सूक्ष्मता केवल सापेक्ष्य है। वैज्ञानिक तो सूक्ष्मसे सूक्ष्म आयतनकी नाप लेता है और अमुक पदार्थ अमुककी अपेक्षा इतना सूक्ष्म है, यह नापकर निश्चय कर लेता है। वायोरिव सुदुष्करम्के अणुओंको तथा विद्युत्कणोंको भी उसने नाप लिया है। यह कोई नहीं कह सकता कि वह आगे चलकर आयुर्वेदके वात, पित्त, कफका भी पता न लगा लेगा। परन्तु प्रवेश-योग्यता भी आयतनपर निर्भर है और सूक्ष्मतामें भी तारतम्य होता है। अतः यदि आप वात, पित्त, कफवाले वायुतत्त्वके नापका साधन बताते तो अधिक अच्छा होता। आयुर्वेदिक अनुसन्धानशालाकी केवल चिकित्साविषयके बढ़ानेके लिये आवश्यकता नहीं है वरन् इसलिये भी आवश्यकता है कि प्राचीन आयुर्वेदीय सिद्धान्तोंके सम्बन्धमें भी प्रयोग किये जायँ। प्रयोग करनेका इतना ही उद्देश्य कदापि न होना चाहिये कि हम केवल इस बातकी जांच करें कि शास्त्रोंमें जो लिखा है, वह सच है या नहीं, क्योंकि हम यह संदेह ऋषियोंपर कदापि नहीं कर सकते कि उन्होंने अपनी सन्तानको धोखा देनेका प्रयत्न किया है। हमारे यथावत् ज्ञानसम्पादनमें दो बाधाएँ हैं। एक तो यह कि हजारों बरस पहलेकी भाषा आज हम भिन्न परिस्थितिमें होनेसे ठीक-ठीक समझ नहीं सकते। दूसरी यह कि सभी संहिताग्रंथ उपलब्ध भी नहीं हैं। हम यह नहीं कह सकते कि आयुर्वेदकी इयत्ताकी सीमा यही है। हमारा ज्ञान-विज्ञान हमें सम्पूर्ण उपलब्ध नहीं है, इसमें हमें रत्तीभर सन्देह नहीं है। "सत्यंज्ञानमनन्तं ब्रह्म"। सत्य अनन्त अगाध असीम है। पोथियोंमें अंट नहीं सकता। दिमाग या दिलमें अमा नहीं सकता। उसको ज्ञानरूपमें प्रकट करनेके साधन अत्यन्त तुच्छ हैं, चाहे वे पोथियोंमें हों चाहे प्रयोगशालाओंमें। अधिकारीकी योग्यताके अनुसार ही ज्ञान मिलता है। गुरुमुख अक्षर और प्रयोग तो उसके स्थूल मार्ग हैं। इसीलिये प्राच्य या पाश्चात्य विद्याका गर्व व्यर्थ है। दोनों पक्षोंको उचित है कि विनीत भावसे एक दूसरेको

समझनेकी कोशिश करें। परस्परके खंडनसे मूढ़ग्राहसे कोई लाभ नहीं होनेका। इसमें सन्देह नहीं कि प्राच्यविद्या-वाला जिस प्रकारके तर्कसे काम लेता है, पाश्चात्य विधिवाले को धैर्यपूर्वक उसे समझना चाहिये। पाश्चात्य विधिवालेको सन्तोष तभी हो सकता है जब वह अपनी विधिसे नाप सके और तोल सके। हमारा तो विश्वास है कि अनुसन्धानके लिये हमारे यहां बड़ी गुञ्जाइश है। न तो पाश्चात्य विद्वानोंको यह हेकड़ी करनी चाहिये कि जो बात हमारे तोल-नापमें न हो वह सही नहीं हो सकती और न प्राच्य विद्वानोंको अपने आर्ष ज्ञानकी पूर्णताकी डींग हांकनी चाहिये। आर्ष विद्या पूर्ण है, परन्तु आज पूर्णरूपसे न तो कहीं उपलब्ध है और न उसका कोई पात्र ही है। हमारी तो यही धारणा है। अपने पूर्वपुरुषोंके पांडित्यके कोरे मिथ्याभिमानसे हमें कोई लाभ नहीं। ज्ञानके आदानप्रदानका द्वार इस तरहका मिथ्याऽभिमान बन्द कर देता है।

इस पुस्तकमें कहीं-कहीं पाश्चात्य भ्रमोंका बड़ा अच्छा उच्छेदन भी है जिसके लिये मैं कविराजजीको बधाई देता हूँ। जैसे, पृ० २४८ पर कीटाणुवादके उस भ्रमका निराकरण किया है जिसमें कीटाणुओंको सर्वत्र रोगजनक बतलाया जाता है। इसमें सभी बड़े-बड़े वैज्ञानिक कविराजजीसे सहमत हैं। कविराजजीने कीटाणुवादको जिस खूबीसे समझा है यदि सभी डाक्टर समझ जायें तो उनके रोगियोंकी मृत्यु संख्या कुछ अवश्य घट जाय।

त्रिदोष विज्ञानकी ऐसी अच्छी पोथी लिखकर कविराज जी हमारी बधाईके सर्वथा पात्र हैं। रा० गौ०

गौड़ इतिहास ले० ठाकुररुद्रसिंह तामर प्रकाशक क्षत्रिय रिसर्च सोसाइटी, एलगीनरोड, दिल्ली, पृष्ठसंख्या ६ + १६ + १५६=१७८ मूल्य १)

यह पुस्तक एक प्रगाढ़ ऐतिहासिक विद्वान्‌द्वारा बड़े ही परिश्रमके साथ लिखी गयी है। किन्तु सांसारिक कष्टों तथा अनेक बाधाओंके उपस्थित हो जानेसे पुस्तकमें बहुत त्रुटियां रह गयी हैं जिसे लेखक महोदयने स्वयं स्वीकार किया है। यह पुस्तक आद्योपन्त ऐतिहासिक है। इसमें सामाजिक वार्त्ताओंका उल्लेख बहुत कम है। इसमें गौड़ ब्राह्मण तथा क्षत्रियोंका वर्णन तो पाया जाता है किन्तु इसमें अन्य गौड़ नामधारी जातियोंका कहीं जिक्र भी नहीं है। आपने गौड़ राजपूतोंका सूर्यवंशी क्षत्रिय होना लिखा है किन्तु उसके लिये कोई विशेष प्रमाण नहीं ढूंढ़ा। इस पुस्तकमें जो वन-पर्वसे उठा कर सभी तीर्थवर्णन जोड़ दिये गये हैं यदि वे न होते तो पुस्तककी महिमा उससे किसी प्रकार भी नहीं घटती। विद्वान् महानुभावने गौड़ शब्दकी कोई भी व्युत्पत्ति नहीं लिखी। कदाचित् गौड़ शब्द 'गुड रक्षणे'से बना है। यों तो सारा उत्तरी भारत पंचगौड़ देशोंमें आजाती है किन्तु विशेषकर दो ही ऐतिहासिक दृष्टिसे विशेष प्रसिद्ध हैं। एक तो गोरदेश जहांका निवासी मुहम्मद गोरी था तथा दूसरा गौड़ बङ्गाला देश जो अग्निपुराण तथा साहित्यमें उल्लिखित हैं। जब एक-देशके व्यक्ति दूसरे स्थानमें जा बसते थे तो उसका भी नामकरण अपने ही पूर्वाभ्यस्त नाम से करते थे। यथा कम्बोज, कम्बोडिया मथुरा, मदुरा; यार्क, न्यूयार्क इत्यादि। नामकरण तो स्थानके नामसे होते हैं जिस प्रकार दक्षिण भारतके अनेक लोगोंमें अपने नामके साथ अपने गांवके नाम जोड़नेकी परिपाटी है। इसमें बरोदा (बडोदरा) राज्यका विशेष वर्णन है। आशा है इतिहास प्रेमी विद्वान् आपके अनुसन्धानका समुचित आदर करेंगे तथा आशा है कि लेखक महोदय आगामी संस्करणमें इन जातियोंका सामाजिक विवेचन भी विशदरूपसे करेंगे। इस त्रुटिको दूर करेंगे। हम ठाकुर साहबको उनके पाण्डित्यके लिये हृदयसे बधाई देते हैं।

—देवसहाय त्रिवेद, इतिहासशिरोमणिः,
साधोलाल रिसर्चस्कालर, काशी
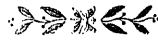
विज्ञान-संसार

दबावके चमत्कार

१. पानी जमकर ठोस

अमेरिकाके आरमर इंस्टिट्यूट आफ टेकनालोजीने ऐसी मशीन बनायी है जिससे पानीको इतना दबाया जायगा कि वह ठोस हो जायगा। एक वर्ग इञ्च पर तीन लाख सेरका बोझ पड़ेगा और इस प्रकार पानी को दबाकर उसकी विद्युत भौतिक और रासायनिक जांच की जायगी। इतना दाब पड़नेपर पानीका आयतन आधा हो जाता है। और वह जमकर ठोस हो जाता है। यह ठोस पानी २१२ डिग्रीपर पिघलता है।

२. वायु फौलादमें से छन जाती है

इसी तरह खूब दाब पड़नेपर उज्जन वायु फौलाद के बर्तनमें बन्द रहनेपर भी उसकी दीवारोंसे बाहर छन जाती है। फ़ौलाद दबनेपर बहुत कमजोर हो जाता है।

३. कांच लचीला हो जाता है

एक कनस्टरमें पानी भरो। कांचके प्लेटका एक टुकड़ा एक हाथमें और कैंची दूसरेमें लेकर पनीमें पेंदेतक ले जाओ। कैंचीसे कांचको काटो। भीगे खपरेकी तरह कट जायगा। फुटभर पानीके दबावका यह फल है। दबाववाले यंत्रसे तो कांच ऐसा लचीला हो जाता है कि जिधर चाहो उधर मोड़तोड़ करो टूटता नहीं। रा० गौ०

चिड़ियोंके लिये अस्पताल

अमेरिकामें एक नया अस्पताल खुला है, जहां केवल चिड़ियोंकी ही दवा और जर्राहीकी जाती है। अभी हालमें एक पालतू तोतेकी टांग टूट गयी थी। डाक्टरने हड्डी जोड़कर पैरमें नन्हीं-नन्हीं लकड़ियां बांध दीं। कुछ दिन बाद तोता चंगा होगया।

मशीनोंसे बेकारी घटती है

अभी हालकी मर्दुमशुमारीसे पता लगा है कि मशीनों से बेकारी बढ़नेकी जगह घटती है। उदाहरणतः सन् १९२९ में जितने आदमी मशीनकी मोटर गाड़ियोंके बनानेमें लगे थे उसके सवाये आदमी आज दिन लगे हैं। जब टेलीफून एक्सचेंजमें ऐसी मशीन लगा दी गयी कि एक टेलीफूनसे

दूसरेका कनेक्शन आपसे आप होजाय तो कारीगरोंकी संख्या जो सन् १९२०में १९५ हजार थी सन १९३०में अढ़ाई लाख होगयी। हवाई जहाज़ मोटरकार और लारियों की वजहसे १० लाख आदमी रेलकी नौकरीसे छुट गये लेकिन २७ लाख आदमी मोटर लारियोंके चलानेमें बढ़ गये। कपड़े बनानेकी मशीनें अब ऐसी बनती हैं कि प्रत्येक मशीनको चलानेके लिये कम आदमियोंकी जरूरत पड़ती है। परन्तु मशीनोंकी संख्या अब इतनी बढ़ गयी है कि पहलेसे एक तिहाई आदमी ज्यादा अब इनपर लगे हैं। टाकी और रेडियोके कारण ग्राहकोंकी संख्या जो पहले सन् १९२०में एक लाख थी अब बढ़कर करीब १॥ लाख हो गयी है। एक्टरोंकी संख्या दो लाखसे बढ़कर ४ लाख हो गयी है। रेडियोमें इस समय १५ हज़ार आदमियोंको वेतन मिलता है। यद्यपि यह रोजगार पहले थे ही नहीं। सन् १९२०में ८ हज़ार आदमी बरफ बेचनेमें लगे थे। अब १९ हज़ारसे भी ज्यादा आदमी इस काममें लगे हैं। गो कि अब ऐसी मशीनें बन गयी हैं जिससे घर घर बरफ़ बनायी जा सकती है।

[विलासिताके सामानको उपजानेकी गुंजाइश तो अब भी है और बहुत कालतक रहेगी ही। जो मशीनें इन

पिछले आयुर्वेद सम्मेलनसे लोग बड़ी बड़ी आशाएं रखते थे, क्योंकि यह काशीमें महामना मालवीयजीके तत्वावधानमें हुआ था। इसके मन्त्री समयकी स्थितिको अच्छी तरह समझते थे वह कोई न कोई योजना ऐसी रखते जिससे आयुर्वेदको कुछ सहायता मिलती, उन्नतिके लिये कुछ सोचा जाता. वैद्योंकी गिरती हुई दशाको सुधारनेकी

सामग्रियोंको तैयार करती हैं, उनके बढ़नेसे उपज बढ़ेगी और अपेक्षाकृत कम परन्तु साधारणतया अधिक काम करने वालोंकी जरूरत पड़ेगी। परन्तु जहांतक साधारण जनता में खपनेवाले जरूरी सामानकी उपज है वहांतक तो वह जरूरतसे ज्यादा तैयार हो रहा है, और खपानेवाले मौजूद हैं, बल्कि भूखों मर रहे हैं, पर उन्हें खरीद नहीं सकते क्योंकि उनके पास पैसे नहीं हैं। पैसोंका न होना बेकारीका कारण है, जो प्रत्यक्ष है। माल तैयार है जरूरतसे ज्यादा इस लिये कारखाने बन्द करने पड़ते हैं, मालको समुद्रमें डुबोना या जला डालना पड़ता है। कारखाने बन्द हुए तो बेकारी बढ़ी संसारकी बेकारीके अंक आज भी कितने ऊंचे हैं। ऊपरके नोटमें जो मजूरोंको काम अधिक मिलनेकी संख्या दी है, उसमें यह ख्याल नहीं रखा गया है कि साथ ही साथ इसी मुद्दतमें आबादी कितनी बढ़ी होगी।

उपर्युक्त नोट भारतेतर देशोंके सम्बन्धमें है। भारतका तो प्रश्न ही अलग है।यहां तो भयंकर बेकारी है जिसे दूर करनेका उपाय इन मशीनोंका बढ़ना कदापि नहीं है। रा० गौ]

चलती मोटरकार पर दाग लगाना

न्यूयार्कके एक विद्वान्ने एक ऐसी पिस्तौल बनायी है जिसके छोड़नेसे चलती मोटर पर लाल दाग पड़ जाता है। अगर कोई मोटर जो पुलिसके रोकने पर न रुके या उसमें कोई बदमाश, डाकू, या खूनीके होनेका शक हो, या जिसमें बत्तियां न जल रही हों, तो इस पिस्तौलके छोड़ने से लाल धब्बा या दाग पड़ जाता है। तब सब लोग जान जाते हैं कि इसमें कोई बदमाश, खूनी या डाकू है या कुछ और बात है। और जब वह मोटर रुक जाती है तब पकड़ ली जाती है। इससे पुलिसको बहुत सुविधा रहती है। [श्रीमदनलाल]

मेघभेदी दूर्बीन

दुनियांमें तरह-तरहके दुर्बीन बने हैं। लेकिन जब आसमानमें बादल होते हैं तो वे सब बेकार सिद्ध होते हैं। अब इटलीकी एक विज्ञानशालाके अध्यापक फिलोमेनो मिनर्वाने एक ऐसा यंत्र बना लिया है, जो बदलीके दिनोंमें भी पूरा पूरा काम देगा। बादलोंको छेदकर इस यंत्रके जरिये आसानीसे आकाशके ग्रह-नक्षत्रोंको देखा जा सकता है। इस यंत्रका नाम है 'पेरलाइजर'—रेग्यूलेटर आफ एटमस्फियरिक रिफ्रैक्शन्स' इतने बड़े नामसे यह नहीं समझना चाहिये कि यंत्र भी इसी तरह बिकट होगा। वह तो साधारण दूर्बीनके ही बराबरका है। युद्धमें यह यंत्र बहुत उपयोगी सिद्ध होगा। जहाजके चालक और ज्योतिषी इस प्रकारके किसी यंत्रकी बड़ी जरूरत महसूस करते थे। मिनर्वा महोदय एक दूसरे यंत्रका भी आविष्कार करने वाले हैं, जिसके जरिये सभी चीजोंके पीछेकी वस्तुएं उसी प्रकार देखी जा सकेंगी, जिस प्रकार कांचके पीछेकी' तात्पर्य यह कि उस यंत्रसे अन्धगर्भ पदार्थ भी पारदर्शक से हो जायंगे　　　(नवशक्ति)

बात होती, पर वहां ऐसा कुछ भी न हुआ। उस समय जो ही वैद्य मञ्चपर आये अपनी अपनी योग्यता दिखाने आये, हर एकको अपने यशकी पड़ी थी, उनकी लालसा यही दीखती थी कि वैद्य मुझे जाने, मेरा मान हो। तीन दिनका समय प्रस्तावोंको बनाने पढ़ने और पास करनेमें ही बिता दिया गया। प्रस्ताव पास करते ही सबने अपने अपने घरका रास्ता नापा जो प्रस्ताव इस बार पास किये गये इसी तरहके या इससे मिलते-जुलते कई बार ऐसे ही प्रस्ताव पास किये जा चुके हैं। जिन पास किये प्रस्तावों पर न तो सरकार ध्यान देती है, न जनता, न स्वयम् वैद्य ही। केवल प्रस्तावोंकी सूचना भेज देनेसे, वह भी वर्षमें एक बार, कोई प्रभाव नहीं होता। इन प्रस्तावोंसे आयुर्वेद जगत्को रत्ती भर लाभ नहीं पहुंचता। प्रतिवर्ष मैं वैद्य सम्मेलनोंमें जाता हूं और आये हुए प्रायःसभी वैद्योंसे मिलता हूं। उनमें न तो सम्मेलनके प्रति प्रेम होता है। न सहानुभूति। पूछो तो वह कहते हैं कि सम्मेलन कुछ व्यक्तियोंका है, समस्त वैद्य समाजका नहीं। साधारण वैद्योंकी तो वहां पूछ ही नहीं है। चुनावकालमे आप ही परस्पर बैठकर जिसको चाहते हैं चुन लेते हैं। प्रस्तावोंके समय वही आपसमें बैठकर प्रस्ताव गढ़ लेते तथा पास कर लेते हैं। जो दो चार दस कर्णधार हैं वह मण्डलकी बाग डोर अपने हाथमें ही रखना चाहते हैं ऐसे सम्मेलनोंसे बहुसंख्यक वैद्योंको कोई भी लाभ नहीं होता, इसी किये हम सब उदासीन रहते हैं। बहुत हदतक यह सब सच है। इन २६ वर्षके जीवनमें वैद्यसम्मेलनने क्या किया? यदि विचार कीजिये तो पता चलता है कि इसका एक भी काम ऐसा नहीं जो विशेष महत्व रखता है। सम्मेलन की ओरसे तीनचार काम वैद्योंके या आयुर्वेदके हितार्थ होते हैं। (१) वार्षिक सम्मेलन (२) विद्यापीठद्वारा परीक्षा (३) सम्मेलन पत्रिकाका प्रकाशन। अब इनके एक-एक कार्यपर दृष्टिपात कीजिये।

सम्मेलनका वार्षिकोत्सव

जिस तरह प्रत्येक सभा सोसायटियां वर्ष भरके अपने कार्यविवरणको वर्षके अन्तमें जनताके सामने या सदस्योंके सामने रखनेके अर्थ वार्षिक उत्सव कर लेती हैं और अपना कार्यविवरण पढ़कर सुना देती हैं यह सम्मेलन भी उसी परिपाटीको पूर्ण करता है। यह विद्यापीठका हिसाब-किताब तथा सम्मेलनका और पत्रिकाका आयव्यय रखकर उस कार्यक्रमको पूर्ण कर देता है। बाकी समयमें प्रस्ताव पासकर लिये जाते हैं। इसके यह दोनोंही काम वैद्योंके लाभके नहीं होते। बाकी समयमें कोई न कोई सम्भाषा परिषद हो जाती है। प्रायः देखा गया है कि उसके लिये इतना कम समय दिया जाता है कि वैद्य परस्पर विचार-विनिमय तक नहीं कर सकते। जो प्रधान बनाये जाते हैं वह अपने भाषणोंके लिये काफी समय लेकर बाकीके लिये इतना कम समय रहने देते हैं कि फिर कुछ हो नहीं पाता। इस तरह सम्मेलनका समय समाप्त हो जाता है और वैद्य बिचारे निराश वापस चले जाते हैं।

विद्यापीठका कार्य

विद्यापीठकी परीक्षाओंमें अनेक वैद्योंकी अभिरुचि है विद्यापीठ परिक्षामें काफी वैद्य सम्मिलित होते हैं। विद्यापीठसे सम्मेलनको काफी आय होती है। वास्तवमें मण्डलका जीवन विद्यापीठकी आयपर निर्भर है। यदि विद्यापीठरूपी आयका द्वार सम्मेलनके पास न होता तो सम्मेलनका अस्तित्व कबका मिट गया होता। सम्मेलनके इतने सदस्य नहीं कि चन्देकी आयसे सम्मेलन अपना व्यय भी निकाल सके। यद्यपि विद्यापीठकी आयको सम्मेलनके कार्यमें व्यय करना एक प्रकारसे अनुचित है तथापि पूछनेवाला कौन है?

क्या विद्यापीठ योग्य वैद्य तय्यार करता है? इसकी ओर दृष्टिपात करें तो नकार में ही उत्तर मिलता है। परीक्षा तो विद्यापीठ लेता है पर आजतक पाठ्यक्रमतक नहीं बन सका। वही चरक, सुश्रुतके समस्तके समस्त अध्याय जिनमेंके शायद आधे अंशकी भी कभी आवश्यकता नहीं पड़ती वैद्योंको पढ़ने पड़ते हैं। अनेक ऐसी बातें भी पढ़नी पड़ती है जो सन्दिग्धही नहीं गलत सिद्ध हो रही हैं। फिर वह आयुर्वेदविशारद और आयुर्वेदाचार्य बननेपर व्यवहारायुर्वेदसे वैसेही शून्य होते हैं जैसे पहिले थे। वैद्योंकी, नहीं-नहीं, आयुर्वेदाचार्योंकी, डाक्टरोंके सामने जो दशा होती है वर्णनातीत है। इन आयुर्वेदाचार्योंसे न रोगी को संतोष होता है न रोगीका। रोगी रोगपरीक्षाके लिये अवश्यही डाक्टरकी शरण लेता है। कई-कई वर्षका सयम

नष्ट करनेपर भी जब समयकी पूर्ति नहीं होती तो ऐसे पाठ्यक्रमसे क्या लाभ ? कौन-कौन ओषधियां अच्छी हैं किस रसको किस तरह बनाना चाहिये । धातुओंके शोधन मारणमें क्या-क्या त्रुटिय , ? किस विधिसे रस भस्म बनाने चाहियें। इसको बनानेवाला शुद्ध ब्रिटिश फार्माकोपियाकी तरहका कोई ग्रन्थ नहीं । उन्हीं बड़े बड़े ग्रन्थोंको रटो और आप अपनी बुद्धि लड़ाकर लिखे ग्रन्थोंके अनुसार रस बनाओ। विद्यापीठका काम है केवल तुम्हें प्रमाणपत्र दे देना और अपनी फीस ले लेना। बस आज तक संसारके जितने भी परीक्षाके केन्द्र हैं जहां शिक्षणका काम होता है वहां उनको समयके अनुसार सिखाया पढ़ाया जाता है। उन्हें प्रत्येक विषयका क्रियात्मक ज्ञान कराया जाता है। उनके अपने कोषग्रन्थ हैं। पर इन्हें क्या पड़ी कि ग्रन्थबनावें यहांकेवल बता दिया कि अमुक अमुक आजसे दस हजार वर्षके लिखे ग्रन्थ पढ़ लो, बस प्रमाणपत्र लेकर वैद्य बन जावो। यह है दूसरा सम्मेलनका काम जिसके विद्यापीठके आचार्य निरे आचार्य ही होते हैं। यह आचार्य विचारे जब कुछ सीखे ही नहीं तो स्वयं क्या लाभ उठा सकते हैं तथा दूसरेको क्या पहुंचा सकते हैं। ऐसे वैद्योंका समूह आज २०-२२ वर्षसे सम्मेलन तय्यार कर रहा है। फिर भला वह कालिजोंके पढ़े डाक्टरोंके सामने रह जांय उनका सान्मुख्य न कर सकें तो कोई आश्चर्यकी बात थोड़े ही है।

पत्रिका प्रकाशन और उसके लाभ

उक्त मण्डलकी ओरसे आज बीस वर्षसे एक आयुर्वेद-सम्मेलन-पत्रिका निकल रही है। यह पत्रिका जिस समय पं० जगन्नाथप्रसादजी शुक्लके सम्पादकत्वमें निकलती थी उस समय तो इसमें कुछ वैद्योपयोगी लेख हुआ भी करते थे। अब तो इसका एकमात्र काम विद्यापीठकी कार्यवाही तथा मण्डलकी कार्यवाही प्रकाशित करना है। कई अंक सम्मेलनोंके अभिभाषणोंसे ही भरे होते हैं। मण्डलके सदस्य होनेकी दृष्टिसे वैद्योंके पास इसे भेजा जाता है। और कोई इसको लेकर करे क्या ?

इस तरह मण्डलके जितने भी कार्य हैं एक भी ऐसा नहीं जो वैद्य समुदायके हितको देखकर किया जाता हो, न जिस रीतिसे यह चल रहा है हितकर हो सकता है।

असंगत अपमानजनक चर्चा

उपर्युक्त शीर्षकसे विज्ञान, जुलाई १९३६ के पृ० १७६पर गतवर्ष जो समाचार छपा था उसके सम्बन्धमें अमृतसरकी श्रीकृष्णफारमेसीके मैनेजर श्रीजगन्नाथमिश्रजीने सूचना दी है और विश्वबन्धुके ७मार्चके अंककी एक प्रति भी भेजी है कि अब उभयश्री वैद्य हरिश्चन्द्रजी और देवराजजीके बीच समझौता होकर झगड़ा खतम हो गया। अच्छा ही हुआ। श्रीहरिचन्द्रजीने श्रीदेवराजजीपर मानहानिका अभियोग चलाया था। उसपर उनपर ५१) जुर्माना हुआ। अपीलपर जुर्माना घटकर १० रह गया। निगरानीपर देवराजशार्स्त्रीजीका जुर्माना वापस मिला। फिर पं० देवराजजीने श्रीहरिश्चन्द्रजीपर मुकदमा चलाया। उनपर अदालतने दरोगहलफी कायम की। फलतः श्रीहरिश्चन्द्रजीको श्रीदेवराजजीसे सुलह करनी पड़ी। इसपर श्रीदेवराजजीने मुकदमा वापस ले लिया। झगड़ा खतम हो गया। रा० गौ०

सहयोगी विज्ञान

विजलीसे चमत्कारिक इलाज

विजलीसे चमत्कारिक इलाज

मईके विशाल भारतमें "डाक्टर नेहरू और उनका चमत्कारिक इलेक्ट्रोकल्चर" नामका लेख श्रीहरिहरप्रसाद मिश्र एम्० ए०, एल्-एल्० बी० का लिखा निकला है। यों तो थोड़ा बहुत बिजलीसे रोगियोंको लाभ पहुंचाया जाता रहा है, परन्तु, डाक्टर श्रीधरनेहरूने जो इंडियन सिविलसर्विसके एक प्रमुख सदस्य और अच्छे वैज्ञानिक भी हैं, बिजलीके प्रयोगोंको बहुत व्यापक रूप दिया है, जिससे आप प्राणिमात्रको लाभ पहुंचाते हैं। मैनपुरीमें आपकी अध्यक्षतामें 'इलेक्ट्रोकलचर एंड फ्रूट ग्रोअर्स असोसिएशन" स्थापित हुआ है। इसके

मंत्रीसे पत्रव्यवहार करनेसे शायद इसका पूरा विवरण और साहित्य मिल सके। अपने पाठकोंके लाभार्थ मैं उक्त लेखका आवश्यक अंश उद्धृत करता हूँ। रा० गौ०

"डाक्टर नेहरूने बड़ी खोज-बीनके बाद कुदरती बिजली का प्रयोग निकाला है जिसे अंगरेज़ीमें इलेक्ट्रोकलचर कहते हैं। इसका सिद्धान्त वृक्ष, पशु और मनुष्यपर एक सा ही लागू होता है। यह तो सभी जानते हैं कि जिस तरह हमारे शरीरमें करोड़ों छिद्र हैं, इसी तरह वृक्षमें भी होते हैं, और जिस तरह हमारे शरीरका खून रगोंद्वारा हरएक हिस्सेके छिद्रोंतक पहुँचकर उनमें हरकत पैदा करता है, इसी तरह पेड़ोंमें भी होता है। पेड़में जो पानी और गैस पहुँचती है वह उसके प्रत्येक भागमें ऐसे छोटे छिद्रोंतक ले जायी जाती है, जिससे उनमें हरकत पैदा होती है। उनकी हरकतसे वृक्षोंके शरीरमें बिजलीका संचार होता है। अगर इन हरकत करते हुए छिद्रोंपर बाहरी बिजलीका असर भी डालें, तो नतीजा यह होगा कि शरीरके अन्दरकी बिजलीकी ताक़त और बढ़ेगी और शरीर अधिक बलिष्ट हो जायगा—

'Wherever there is cellular activity there is electrical energy developed and conversely, wherever electrical energy is applied celluar activity is increased and better growth obtained."

वनस्पति

वनस्पतिकी उन्नतिके लिए डाक्टर नेहरू तीन तरीके बतलाते हैं—(१) बीजमें बिजली लगाना (२) पौधे या क्यारीमें जाली लगाना, (३) बिजलीका पानी देना, जिसे अगरकर साहबके नामपर 'अगरकरायजेशन' भी कहते हैं। मान लीजिए कि आपको एक पपीतेका बीज बोना है, तो पहले बीजको किसी धातुकी तश्तरीपर रखकर अगर आपके पास मोटर है, तो डायनमोसे उसे सम्बन्धित करके २००० वोल्टसे एक मिनट तक 'स्पार्क' कीजिये और फिर हाथमें रबरका दस्ताना पहनकर बिना हाथसे छुए हुए उसे बो दीजिये। गाँववालोंके लिए जहाँ न मोटर है और न बिजली, सबसे सहल तरीक़ा यह है कि सब लोग मिलकर किसी कबाड़ीके यहाँसे किसी पुरानी मोटरका मैगनेट ख़रीद लें। यह अक्सर १२ आनेसे लेकर १०) तक अच्छा मिल जाता है। एक मैगनेट एक छोटे गाँवके लिए काफ़ी है। उसमें बढ़ईसे चलानेके लिए, एक दस्ता लगवा लेना चाहिये। मैगनेटका एक तार धातुकी तश्तरीमें जिसमें बीज रखा हो, सम्बन्धित करके मैगनेटको तीन चार मिनट चलने से बीजमें बिजली आ जायगी। एक दूसरा तरीक़ा यह भी है कि एक मिट्टीके घड़ेमें पानी भरकर बीज उसमें डाल दीजिए और मैगनेटका एक तार घड़ेके अन्दर पानीमें डाल कर तीन-चार मिनट चलाइये। फिर बीजको उसीमें पड़े रखनेके बाद निकालकर बिना हाथसे छुए बो दीजिए।

पौधोंके लिए जालीका प्रयोग बहुत लाभदायक साबित हुआ है। जाली पीतलकी नहीं, बल्कि लोहेकी मामूली पाँच या छै आने गज़वाली इस्तेमाल की जाती है, जिसका जाल क़रीब एक इंच चौड़ा होता है। पौधेकी जड़ और तनेकी मोटाईके हिसाबसे १० इंच लम्बे और ६ इंच चौड़े टुकड़े कर लीजिए और सिर्फ एक टुकड़ा पौधेकी जड़पर चारों ओरसे चिपटाकर इस तरहसे लगाइये कि क़रीब दो इंच जाली मिट्टीसे ऊपर रहे और बाकी हिस्सा जड़के साथ नीचे रहे। अगर किसी शाखापर आपको ज्यादा फल या फूल लगाना है, तो उसपर जालीकी एक जैकेट-सी पहना दीजिए। बस, उसपर बहुतसे कल्ले निकल आवेंगे। अगर बीज क्यारीमें बोना है, तो पहले ६ इञ्च मिट्टी खोदकर बारीक कर लीजिए, फिर जाली इस तरहसे बिछाइये कि उसके चारों ओर किनारे का हिस्सा मिट्टीसे ऊपर रहे। उसपर २-३ इञ्च गहरी मिट्टी फैला दीजिए। बिजलीका पानी डाक्टर नेहरूका रामबाण है। जैसे ऊपर बताया जा चुका है थोड़ी ही देरमें आप मैगनेटद्वारा बहुत-सा पानी बना सकते हैं। वही पानी पौधेमें देना चाहिए। देखा गया है कि बिजलीका पानी साधारण पानीसे ५० गुना अधिक लाभदायक होता है। एक लोटा बिजलीका पानी मामूली पानीसे ५० गुना असर रखता है। जिन जगहोंमें पानीकी कमी है, वहां बिजलीका थोड़ा पानी उसके अभावकी पूर्ति कर सकता है। आंधी आनेपर तजरुबा करके देखा गया है कि जिन पेड़ोंमें बिजली का पानी दिया गया था, उनके फल बहुत कम तादादमें गिरे, और जिनमें साधारण पानी दिया गया था, उनके ज्यादा तादादमें गिरे। कारण यह था कि बिजलीके पानीसे

सिंचे हुए पेड़ोंके फल हवाके झोंके बरदाश्त करनेका ज्यादा माद्दा रखते थे। बिजलीका पानी देनेसे पत्तोंका रंग गहरा हो जाता है, पत्ते ज्यादा बड़े होते हैं और आम तौरपर पेड़ जल्दी बढ़ता और मजबूत हो जाता है।

पशु

पशुओंको ज्यादा बलिष्ठ बनानेके लिये डाक्टर नेहरूकी तीन तरकीबें मुख्य हैं। पहली यह कि उनका चारा सुबह की निकली हुई सूर्य-रश्मियोंके सामने रखा जाय, जिससे हानिकारक कीटाणु नष्ट हो जायं और उनमें किरणोंके समावेशसे बलकारक गुण पैदा हो जायं। दूसरी, उनको बिजली का पानी पिलया जाय। तीसरी, उनके गलेमें बिजलीके तारसे कभी-कभी स्पार्किंग किया जाय। बिजलीका पानी सानीमें मिलनेसे उसको पाचक बना देता है। उससे नहलानेसे जानवर स्वस्थ रहते हैं। गलेपर मैगनेटका तार लगाकर हैंडिल चलानेसे बिजलीकी जो चिनगारियां पशुके शरीरमें प्रवेश करती हैं, उनसे उसके सारे शरीरमें स्फूर्ति-सी आ जाती है। जानवरोंके घावोंपर बिजलीका पानी डालनेसे घाव जल्दी भर जाता है, लेकिन स्पार्किंग ज़रूर करना चाहिए। गलेपर जो गिल्टी (Thyroid Glands) होती है, उसका शरीरके बाकी अवयवोंसे सीधा सम्बन्ध होता है, इसीलिए गलेपर स्पार्किंग किया जाता है। इसका पाचन-शक्तिपर बड़ा असर पड़ता है?

मनुष्योंपर

भोजन सामग्रीको प्रातः सूर्यकी रश्मियोंके सामने रखने, बिजलीका पानी पीने तथा गलेपर स्पार्किंग करनेके अलावा सबसे ज्यादा फायदा नींद न आनेवालोंको डाक्टर नेहरूकी एक साधारण-सी तरकीबसे हुआ है। वह है चारपाईके पावोंके नीचे मोटरके टायरके टुकड़े रखना। किसी पुराने टायरमेंसे चारपाईके पायेकी चौड़ाईके अनुसार ४ टुकड़े काट लीजिए और एक-एक टुकड़ा चारपाईके हरएक पायेके नीचे रख दीजिए, इससे रातमें बहुत गहरी नींद आती है और तन्दुरुस्तीपर भी इसका अच्छा असर पड़ता है। जिन लोगोंको नींदकी पुरानी शिकायत हो, उन्हें डा० नेहरू एक माला पहननेको देते हैं, जिससे नींद खूब आती है; लेकिन हरएक केसमें पहले उनकी राय ले लेना जरूरी है। उनके पास अनेक देशोंसे चिट्ठियां आती हैं, उनका उत्तर जल्द-से-जल्द दिया जाता है। डाक्टर नेहरूकी अध्यक्षतामें मैनपुरीमें 'इलेक्ट्रोकलचर और फ्रूट ग्रोअर्स एसोसियेशन' कायम हुआ है, जिसके मेम्बर कई देशोंमें फैले हुए हैं और वे अपने अपने तजरुबे बराबर भेजते हैं, जो किताबोंकी शकलमें छापे जाते हैं। अभी तक करीब २०० ऐसी किताबें छप चुकी हैं। मेम्बरोंको यह सब किताबें मुफ्त मिलती हैं और अपने बाग़के बारेमें और बिजलीके इलाजके बारेमें सलाह मुफ्त मिलती है। जिलेसे बाहरवालोंसे सिर्फ २५) लाइफ मेम्बर यानी आजीवन सदस्य बननेके लिये जाते हैं। इलेक्ट्रोकलचरके तजरुबे बड़े मनोरंजक हैं। सबसे ज्यादा अचम्भेकी बात यह है कि ऊसरमें भी ऊपर लिखे हुए तरीकोंसे बाग़ लगाया जा सकता है। मैनपुरीके जिलेमें नगलाहारमें चौधरी सियारामने उनका इस्तमाल किया और आज करीब-करीब सभी तरहके फलदार दरख्त वहाँ हरे-भरे नजर आते हैं, जो ऊसरमें ख्वाबमें भी नहीं दिखलाई पड़ते। पपीता, शहतूत, आम, सन्तरा, लुकाट फालसा रबर, क़हवा आदि तरह-तरहके दरख्तोंपर तजरुबे कामयाबीके साथ बहुतसे मुल्कोंमें किये जा चुके हैं। अभी हालमें मिस्टर जोज अन्तोनिया सालवेरियाने सेंट्रल अमेरिकासे लिखा है कि डाक्टर नेहरूके तरीकोंको कुछ ही दिनों इस्तेमाल करनेके बाद क़हवेके वे पौधे, जो बहुत कमजोर नजर आते थे, एकदम बदल-से गये, उनमें नये-नये कल्ले फूटने लगे और वे इतनी जल्दी बढ़ने लगे कि आप यकीन न करेंगे। फिर उन्होंने नारंगियोंपर तजरुबा किया। उनमें बहुत ज्यादा फल आ गये, हालाँकि वे पौधे अपनी पूरी ऊँचाईको भी नहीं पहुंच पाये थे। मिस्टर जोज अब अपने क़हवाके बड़े खेतोंपर इनका तजरुबा करना चाहते हैं, क्योंकि उनका विचार है कि ये तरीके मुश्किल नहीं हैं और इनके इस्तेमालसे बहुत सा रुपया बचता है, जो वे अभी तक तरह-तरहकी खादपर खर्च किया करते थे।

मुर्गियोंकी बीमारियोंपर बिजलीके पानीका कैसा अच्छा असर होता है, यह अमेरिकाके 'Reedley Exparent' नामक अखबारकी एक रिपोर्टसे अच्छी तरहसे जाहिर होता है। वह यह; जान पर्ल रांचमें डाक्टर नेहरूने एक मुर्गीका इलाज किया जो बहुत दिनोंसे बीमार थी। उन्होंने एक प्याला बिजली का पानी

लेकर उसके गलेमें डाल दिया। वह बगैर किसी तकलीफके उस पानीको पी गई, क्योंकि मालूम होता था कि वह उसे अच्छा लगा। थोड़ी देर बाद मिसेज पर्लने देखा कि मुर्गीकी चोटीका गोश्त पीलेसे एकदम लाल रंगका हो गया, और वह अन्य मुर्गियोंकी तरह फिरसे चुगने लगी। उसको पहचानना भी मुश्किल हो गया।

हाथी-जैसे डीलडौलके जानवरपर भी तजरुबे किये गये हैं। एक राजाके हाथीकी आँख बिलकुल बेकार हो गई थी। उसपर बड़े-बड़े प्लास्टर लगाये जा चुके थे और बहुतेरी दवाइयाँ हो चुकी थीं, लेकिन किसीसे कुछ फायदा नहीं हुआ। हाथीकी वह आँख बन्द ही रहती थी। डाक्टर नेहरूने पहले कपड़ेको बिजलीके पानीमें भिगोकर उसकी आँख धुलवाई, फिर धार बाँधकर उसपर वही पानी डाला गया। इससे हाथीको बहुत आराम मिला और थोड़ी देरमें उसने आँख खोल दी, लेकिन आँखका धोना इसी तरहसे जारी रखा गया। उसकी आँखमें जाला सा पड़ गया था, जो बिजलीके पानीसे कट गया और वह भला चंगा हो गया। एक दूसरे हाथीके सिरपर एक बहुत बड़ा आबला पड़ गया था, जिसका कारण महावत दिमागकी खुश्की बतलाता था। उसपर भी बहुत-सी दवाइयाँ लगाई जा चुकी थीं। आखिरकार उस आबलेपर बिजलीके तारसे स्पार्किंग किया गया और वह बहुत जल्दी फूटकर अच्छा हो गया। घोड़ा, बकरी, गाय, बैल, ऊँट आदि जानवरोंपर उनकी तरह तरहकी बीमारियोंमें बिजलीके तरीके इस्तेमाल किये गये और उनसे बहुत जल्द फायदा हुआ। एक खास बात और है। दूध देनेवाले जानवरोंको बिजलीका पानी पिलानेसे देखा गया है कि उनका दूध सवाया हो जाता है। कलकत्तेमें उस दूधका बना हुआ घी 'बिजली मार्का घी' के नामसे बिकता है और उसके दाम भी अच्छे मिलते हैं।

करीब १२, ०० आदमियोंपर तरह-तरहकी बीमारियोंमें यह तरकीबें आजमाई जा चुकी हैं। रेडियमके मुकाबलेमें भी कुदरती बिजली ज्यादा फायदेमन्द साबित हुई है। अभी हालकी बात है कि जिला फरुखाबादकी एक ठकुरानी जिसकी उमर २५ वर्षकी थी, अपने एक बच्चेकी मौतके बादसे पागल हो गई थी। वह न खाती थी और न पीती थी—सिवा चीखने-चिल्लानेके उसे दूसरा काम न था। वह डाक्टर नेहरूके पास लाई गई और उसका इलाज शुरू किया गया। उसकी चारपाईके पायोंके नीचे रबरके टुकड़े रखे गये, सूर्यकी किरणोंके सामने रखी हुई भोजन-सामग्रीसे बना हुआ भोजन खिलाया गया, बिजलीका ही पानी पीने व नहानेको दिया गया और उसकी थायरायड ग्लांड्सपर स्पार्किंग किया गया। २४ घन्टे अन्दर उसका चिल्लाना बन्द हो गया, उसे नींद आ गई और वह तबीयतसे खाने-पीने लगी। कुछ दिन बाद वह बिलकुल भली-चंगी हो गई।

एक दूसरा केस लीजिए। एक महाजन मन्दीकी वजहसे सब-कुछ विभूति खो बैठा और पागल हो गया। वह बहुत चिल्लाता था। जब वह पकड़कर डाक्टर नेहरूके पास लाया गया, तो उन्होंने उसकी गर्दनपर पीछेकी तरफ स्पार्किंग किया। फौरन ही उसका चिल्लाना बन्द हो गया और कुछ दिन बाद वह बिलकुल अच्छा हो गया।

लखनऊके शीशमहलके नवाब सादिक अली खाँको नींद न आनेकी शिकायत थी। बिजलीके पानी पीने, रबरके टुकड़े चारपाईके पायोंके नीचे रखने और एक खास तरहकी माला पहननेसे 'नकी यह शिकायत दूर हो गई।

हरएक मर्जके लिए इतना सस्ता नुस्खा मिलना मुश्किल है। आशा है कि पाठक लाभ उठायेंगे।

सिर्फ १४९ से १६८ तक मेटर ब्रह्मचारी शङ्करचैतन्यने काशी विश्वनाथ प्रेसमें मुद्रित किया
तथा मंत्री विज्ञानपरिषत् प्रयागके लिये वृन्दावनविहारीसिंहने विज्ञान-कार्यालय, काशीसे प्रकाशित किया ।

अगस्त, १९३७ मूल्य ।)

४५ प्रयाग की विज्ञान-परिषद का मुख-पत्र, जिसमें आयुर्वेद-विज्ञान भी सम्मिलित है संख्या ५

Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces & Central Provinces, for use in Schools and Libraries.

विज्ञान

पूर्ण संख्या
२६९

वार्षिक मूल्य ३)

नोट—बदले के सामयिक पत्रादि, लेख और समालोचनार्थ पुस्तकें, यदि वे आयुर्वेद पर न हों, तो 'संपाद विज्ञान, बनारस शहर' के पास भेजे जायँ। अन्यथा वे स्वामी हरिशरणानंद, पंजाब आयुर्वेदिक फ़ारमेसी, अकाली मा अमृतसर के पास भेजे जायँ।

प्रबंध-संबंधी सब पत्र तथा मनीआर्डर 'मंत्री, विज्ञान-परिषद, इलाहाबाद' के पास भेजे जायँ।

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते,
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ०।३।५॥

भाग ४५ } प्रयाग । सिंहार्क, संवत् १९९४ विक्रमी । अगस्त, १९३७ ईसवी । } संख्या ५

मंगलाचरण

मूल प्रकृतिकी धूल व्योम-मगमें बगरायी ।
दृढ़ करनेको तारोंकी-बजरी बिछवायी ॥
छायापथपर मायाकी गाड़ी चलवायी ।
रजकणमें नक्षत्र-राशिकी राशि उड़ायी ॥
जय जय जिसने रविसे बड़े रोड़े छोड़े दस दिशा ।
जय देशकालसे रहित चित, जिसे न दिक् दिन वा निशा ॥

मंसूरी
१४-६-७२

रामदास गौड़

आस्ट्रियाका वैज्ञानिक साधु

जान ग्रीगार मैंडल

[ठाकुर शिरोमणिसिंह चौहान, विद्यालंकार, एम० एस-सी०, विशारद]

जीव-विज्ञानके जानकारोंमें विरले ही होंगे जो आष्ट्रियाके साधु जान ग्रीगार मैंडल और उनके कामोंसे परिचित न हों। जान मैंडल संसारके उन इने-गिने महान व्यक्तियोंमेंसे थे जिन्होंने बिना किसी ख्याति एवं यशःकामनाके अपना सारा जीवन सत्यकी खोजमें व्यतीत कर दिया। उन्होंने मटरकी अनेकों संकर उपजातियोंकी मीमांसाकी और अपने प्रयोगोंके परिणामोंको गणितबद्ध किया। उनके जीते-जी, उनके प्रयोगोंकी ओर किसीका ध्यान न गया। उनकी मृत्युके कई वर्षके उपरांत संसारको उनके लेखोंका पता लगा। यही नहीं, उनकी मृत्युके १६ वर्ष बाद सन् १९०० ई० में तीन वनस्पति-शास्त्र-वेत्ता ठीक वैसेही परिणामोंपर स्वतंत्र रूपसे पहुंचे। ये तीनों व्यक्ति, आष्ट्रियाके डि-व्राइस और शेरमक (Tschermak) और जर्मनीके कारेन्स थे। पर इन उदार-हृदय वैज्ञानिकोंने मृत-आत्माके प्रति आदर प्रगट करनेके भावसे इस सिद्धान्तको 'मैंडल-वादके नाम पुकारना उचित समझा। वस्तुतः जान मैंडलकी खोजोंने जीव-विज्ञान में (Genetics) प्रजनन शास्त्र या गर्भ-विज्ञान की नींव डाली। यही नहीं उनसे विकासवादका मार्ग भी साफ हुआ।

जान मैंडलका जन्म २२ जुलाई सन् १८२२ ई०को हेज्यनड्राफ (Heiuzendrof) नामक सत्तर-अस्सी घरोंके एक छोटेसे गाँवमें हुआ था। यह गाँव मोरैवियाके उत्तर-पूर्व जहाँ पोलैंड, जर्मनी और सीजों-स्लोवैकियाकी सीमाएं परस्पर मिलती हैं कृषि-क्षेत्रोंसे परिपूर्ण अतीव शांत एवं सुरम्य भूमिपर बसा हुआ था। वहाँके निवासी प्रधानतः जर्मन और स्लैव (Slav) वंशज थे और उनका प्रधान व्यवसाय पशु-पालन एवं बागबानी था।

इस गाँवमें सोलहवीं शताब्दीसे किसानोंका मैंडेल नामक एक समृद्धिशाली कुटुम्ब रहता था। यहीं हमारे चरित-नायकके पिता (Anton Mendel) ऐन्टन मैंडलका जन्म सन् १७८९ई०में हुआ था। ऐन्टन मैंडेल नेपोलियनके कई युद्धोंमें भाग लेनेके कारण संसारका बहुत उथल-पुथल देख चुका था। युद्ध समाप्त होनेपर जब ऐंटन मैंडेल अपने घर लौटे तो पड़ोसके एक बागवानकी लड़की—(Rosina Schwirtlich) (रोसिना शिवर्टलिख) से अपना विवाह किया। इन्हीं रोसिना के उदरसे २२ जुलाई सन् १८२२ ई०को (Johann Gregor) जान ग्रीगारका जन्म हुआ। यह अपने

१—जन्म और शैशव

१-जान ग्रीगार मैंडल

माता-पिताके द्वितीय पुत्र थे इनके कारण मैंडल-परिवार का नाम अजर-अमर हो गया।

जान मैंडलके जीवन-चरितके विषयमें, संसारको बहुत काल तक कुछ न मालूम था और यह संभव था कि कुछ कालके उपरान्त उनकी जीवन-सम्बन्धी बातें कहानी-मात्र रह जातीं। परन्तु सौभाग्यवश (Brunn) ब्रून निवासी श्री ह्यूगो ईटिसने बड़े परिश्रम और योग्यतासे मैंडलकी जीवन-सम्बन्धी-सामग्री खोजकर एकत्र की। मैंडलके जीवनका अधिकांश भाग ब्रून नगर ही में बीता था इस कारण ईटिस महाशयको इस काममें कुछ सहूलियत रही। इसके अतिरिक्त, ईटिसके इस पवित्र कार्यमें मैंडलके अनेक शिष्योंके साथ-साथ मैंडलके दो भतीजोंने जी-तोड़ कोशिश की। अपने वंशके एक महान पुरुषका जीवन-चरित्र संसारके सम्मुख उपस्थित करनेमें किसे गर्व न होगा। डाक्टर ईटिसने इस कार्यको कई वर्षों तक ऐसी सतर्कता एवं खूबीके साथ सम्पादित किया कि भविष्यमें उनके जीवन विषयक बातोंकी खोजके लिये बहुत कम गुंजायश रह गयी। ईटिसने एक पुस्तकमें इन सारी बातोंका संग्रह किया और उसके अन्तमें 'मैंडल-वादके' विकासका सूक्ष्म विवरण भी दिया।

जान मैंडल अपने पिताके सदृश पस्ता कद, चौड़े कंधेवाला और बलवान व्यक्ति था। बाल घूंघरदार थे। उसकी मानसिक शक्तियोंका आविर्भाव माताके गुणोंके अनुसार हुआ था। उसकी माताके चचा अपनी योग्यता, लगन और स्वाध्यायके बलसे एक साधारण किसानसे, उस भूभागके स्वामी और शिक्षक बन बैठे थे। लोगोंका कहना है कि मैंडलके नानाके इन सद्‌गुणोंके कारण ही मैंडलका वनस्पति-विज्ञानमें विशेष अनुराग रहा।

२—पैदायशी बागबान

ऊपर इस बातका उल्लेख किया जा चुका है कि मैंडलने एक ऐसे परिवारमें जन्म लिया था जिसका प्रधान पेशा कृषि और बागबानी था। यही कारण था कि आरम्भहीसे वह वृक्षोंसे विशेष प्रेम रखता था और उसका यह प्रेम उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया। इतना ही नहीं, सादगी, सहनशीलता, मितव्ययिता, धैर्य तथा संतोष आदि गुण जो देहाती कृषकोंमें स्वाभाविक होते हैं, मैंडलमें पूरे तौरसे मौजूद थे। कृषि एवं बागबानीके कार्योंमें वह छुटपनही से दिलचस्पी लेने लगा था और उसके पिताको इस बातका पूर्ण विश्वास हो गया था कि एक-न-एक दिन उसका पुत्र उसकी सारी किसानीका काम सँभालेगा। पर उसकी माँकी यह अभिलाषा थी कि उसका पुत्र, विद्याध्ययन करके संसार-क्षेत्रमें उन्नति करे। अपनी माताके आग्रहहीसे ग्यारह वर्षकी अवस्थामें मैंडल पड़ोसकी एक पाठशालामें पढ़नेके लिये प्रविष्ट हो गया। मैंडलने वहांपर बड़े हरिश्रमसे पढ़ा।

दूसरे वर्ष, मैंडलने (Troppau) ट्रोपाके जिमनैशियममें प्रवेश किया। यहांपर उनकी परिगणना बहुत अच्छे विद्यार्थियोंमें होने लगी। पर पढ़ाईके व्ययके प्रबन्ध करनेमें उसके घरवालोंको बड़ी कठिनाई प्रतीत होने लगी। यद्यपि उसकी आधी फीस माफ थी और बीच-बीच भोजन-सामग्री भी घरसे आ जाती थी तथापि नित्य भरपेट भोजन पाना उसको दुर्लभ ही था। कुछ दिनों तो उसने इन कठिनाइयोंको झेला पर सन् १८३८ ई०में यह नौबत आ पहुंची कि उसके घर वालोंने पढ़ाई-व्यय देनेसे साफ इनकार कर दिया और षोडस-वर्षीय बालकको मजदूरी करके अपनी पढ़ाईका व्यय जुटाना पड़ा। वह मजदूरी भी करता और स्कूलमें भी पढ़ता। यह क्रम लगभग दो वर्ष तक रहा। छुट्टियोंमें जब वह घर जाता तब उसे अपने खेतोंपर काम करना पड़ता। अधिक परिश्रमके कारण कई बार बीमार भी पड़ गया। इन समस्त अड़चनोंके होते हुए भी मैंडल अपने दर्जेमें सर्वप्रथम ही रहता था। हां; धर्मके विषयमें वह केवल 'अच्छा' खयाल किया जाता था।

सन् १८४१ ई०में मैंडल अल्मट्ज़कालेजमें भर्ती हुआ क्योंकि जिमनैशियममें (Philosophy) दर्शनकी पढ़ाई नहीं होती थी। यहां वह लगभग दो वर्षतक बीमार पडा रहा पर पढ़ाईसे विमुख न हुआ। ग्रेजुएट होते-होते उसे इस बातका पूरा पता चल गया कि अब ऐसी दशामें पढ़ाई-लिखाईका काम न चल सकेगा। विश्व-विद्यालय की पढ़ाई अभी बाकी ही पड़ी थी। सारांश यह कि आर्थिक कठिनाइयोंके कारण मैंडलका साहस कम होने लगा। उसे इस बातका विश्वास-सा हो गया कि अध्यापक बननेकी उसकी इच्छा अब पूरी न हो सकेगी।

३—साधू हो जाता है

एक दिन मैंडलने अपनी सारी कठिनाइयां दर्शन-शास्त्रके आचार्यसे कह सुनायी। चूँकि आचार्य महोदय ब्रूनके (Convent) विहारमें रह चुके थे, अतः उन्होंने मैंडलको यह सम्मति दी कि वह साधू हो जावे। मैंडलको भी उस समय अपनी पढ़ाई जारी रखने का इससे उत्तम और उपाय न सूझा यद्यपि प्रकृति-विज्ञानकी तुलनामें 'दर्शन' और 'धर्म' में उसका तनिक भी अनुराग न था पर 'मरता क्या न करता।' सन् १८४३ ई० में ब्रूनके विहारमें उन्होंने धर्मगुरुसे दीक्षा ली और वहांके धार्मिक (Augustine order) मतोंको ग्रहण किया। दीक्षा पानेके उपरांत उसका नाम ग्रीगार (Gregor) रक्खा गया जिसे वह जीवनभर अपने बपतिस्मवाले नामके आरंभमें लिखता रहा।

ब्रून नगर उस समय आष्ट्रियाका सातवें नम्बरका नगर समझा जाता था। इसके अतिरिक्त वहाँपर एक सूबेकी राजधानी भी थी। साधुओंका विहार होनेके कारण उन दिनों वह विद्याका केन्द्र भी था। उस समय सभी विहार विद्याके आगार (Home of learning) होते थे। उनमें विद्वानोंका काफी जमघट रहता था। अतएव धार्मिक संस्थामें रहते हुए भी उन्हें साहित्य और विज्ञानके जानकारों और प्रेमियोंका साथ मिला। विशेषतः उस बिहारके (Prelate) महंत अत्यन्त प्रतिभाशाली और उन्नतिशील विचारोंके थे। उन्होंने थोड़ेही समयमें समझ लिया कि मैंडल दीन-दुखियोंकी पीरको न देख सकेगा और वास्तवमें, जब-कभी मैंडलको किसी रोगीकी सेवा-शुश्रूषा करनी पड़ी तो वह स्वतः बीमार पड़ गया। प्रकृति-विज्ञानमें विशेष अनुराग होनेके कारण, महंतको यह निश्चय हो गया कि मैंडल अध्यापकीका काम बड़ी निपुणतासे कर लेंगे। उन्होंने मैंडलको इस दिशामें प्रोत्साहित भी किया। परिणाम यह हुआ कि यद्यपि मैंडलने (Theology) धर्मशास्त्रका विषय चुना था तथापि उनमें (Missioneries) धर्मप्रचारक पादरियोंकी भांति कट्टरताका नामोनिशान भी न था। राजनीतिमें उनके विचार उदार थे। गिरिजाघरके थोथे ठाट बाट एवं धर्माचार्यमें उनकी तनिक भी श्रद्धा न थी। वैज्ञानिक होनेके कारण भला वे ऐसी बातोंमें अंधविश्वास कैसे रख सकते थे। एक बार तो बड़े पादरीने इसी सिलसिलेमें उनकी भर्त्सना भी की क्योंकि उन्होंने कहा था कि आजकल पादरियोंकी परख उनकी विद्वत्तासे नहीं वरन् उनके मोटापेसे की जाती है।

थोड़े दिन बाद मैंडल पड़ोसके एक स्कूलमें भौतिक शास्त्रके सहायकाध्यापक नियत किये गये। वहां वे शीघ्र ही सभी अध्यापकों और विद्यार्थियोंके स्नेह-पात्र बन गये। पर अभीतक उनके पास अध्यापकोंका प्रमाण-पत्र न था। प्रमाण-पत्रकी प्राप्तिके हेतु उन्हें वियना (Vienna) जाना पड़ा। वियना-विश्व-विद्यालयके आचार्यों ने प्रकृति-विज्ञानमें उनकी परीक्षा ली जिसमें अभाग्यवश, मैंडल कृत-कार्य न हुए। वास्तवमें इस विषयका उनका ज्ञान तो स्वाध्यायसे ही था और स्वाध्यायका आधार थोड़ी-बहुत पुस्तकें थीं। अतएव इस विषयकी उनकी योग्यता अव्यवस्थित एवं अपूर्ण थी।

परीक्षामें अनुत्तीर्ण होनेपर, विहारके अधिकारियोंको यह आवश्यक प्रतीत होने लगा कि मैंडलको उनके मनोनीत विषयमें कुछ नियमित शिक्षा दिलावें। इस विचारसे उन्होंने मैंडलको वियना विश्वविद्यालयमें सालभरके लिये विशेष अध्ययनार्थ भेज दिया। वहां उन्होंने बड़ी लगनसे काम किया। उनके विश्व-विद्यालयके जीवनके विषयमें कुछ ज्ञात नहीं है। हां इतना अवश्य मालूम है कि वहां पर उन्होंने एक बार लाटरीका टिकट खरीदा था।

वियनासे लौटनेपर उनकी नियुक्ति ब्रूनके टेकनिकल हाई स्कूलमें सहायकाध्यापकके पदपर हुई। इस पदपर उन्होंने निरंतर चौदह वर्षतक कार्य किया। मैंडलके जीवनमें चौदह वर्षका यह काल बड़े आनन्दमें बीता। उनके छात्र उन्हें बड़ी श्रद्धा और स्नेहदृष्टिसे देखते थे। वे उनके शांत स्वभाव, मित्रवत् व्यवहार, स्पष्ट और नर्महित भरे रोचक लेक्चरोंसे प्रभावित हो गये थे। दर्जोंके बाहर भी वे अपने शिष्योंपर बड़ी ममता और उदारता रखते थे। स्कूलमें वे जीव-विज्ञान, वनस्पति-विज्ञान और भौतिक-विज्ञान पढ़ाते थे। उनके अनेकों छात्रोंने विज्ञान-क्षेत्रमें बड़े-बड़े काम किये हैं। उनका कहना है कि मैंडलके प्रोत्साहनहीसे उनमें प्रकृतिके प्रति प्रेम उत्पन्न हुआ।

४—निवास-स्थान ही प्रयगोशाला

विहारके दो कमरोंमें मैंडल रहा करते थे। उन कमरोंमें अनेकों पिंजड़े रखे हुए थे जिनमें तरह-तरहके पक्षियों और चूहोंके अतिरिक्त एक पालतू लोमड़ी और एक साही (Porcupine) भी थी। उनकी वाटिकामें भांति-भांतिके वृक्षोंके अतिरिक्त मधु-मक्षिकाओंके छत्ते भी लगे थे। उन्होंने (Hot house) गरम्घरमें अनन्नासका एक पेड़ लगा रखा था। इसी भवनके समीप उन्होंने मधुर स्वर वाला यंत्र (Aeolian harps) लगा रखा था जिससे वायुके हलके झकोरोंका पता लग जाता था।

सन् १८५६ ई०में टीचर्स-सार्टीफिकेटकी परीक्षाके हेतु मैंडल एक बार पुनः वियना गये। वहांपर जो बीती, वह तो भगवान् जाने। पर वहांसे अपने सिरमें पट्टियां बांधे हुए अस्वस्थ दशामें वापस आये। वापस आनेपर उन्होंने केवल इतनाही कहा कि परीक्षामें वे पुनः अनुत्तीर्ण हो गये। कुछ लोगोंका कहना है कि वियनाके वनस्पति-विज्ञानके आचार्यसे उनकी कुछ अनबन हो गयी थी। वे उनसे अतीव रुष्ट थे। इस भांति मैंडल अध्यापन-वृत्तिमें लगे तो रहे पर उसमें उन्होंने विशेष उन्नति न कर पायी।

इसी बीच मैंडलने कई विभागोंमे अनुसन्धान कार्य करना आरंभ कर दिया था। ऐसे अधिकांश-कामोंका पता तो उनके उन पत्रोंसे चलता है जो उन्होंने अपने साथियोंको यदा-कदा भेजे थे। उनके एक पत्रसे ज्ञात होता है कि उन्होंने एक प्रयोगद्वारा अपने शिष्योंको यह दिखाया था कि यदि कोई विषैला पौधा बार-बार स्थानान्तरित किया जाय तो धीरे-धीरे उसका विष कम हो जाता है। 'जातियोंकी उत्पत्ति' के विषयमें अपने एक मित्रसे उन्होंने कई बार वाद विवाद किया। यही नहीं अनेक प्रकारके पुष्पों और घास-पातको स्थानान्तरित करके उन्होंने इस बातकी खोजका प्रयास किया कि क्या (Environmental) वातावरणके परिवर्तनसे उनमें कोई स्थायी परिवर्तन होता है। कई वर्षतक उन्होंने अपनी वाटिकाके आसपास जिसमें देशी रैननकुलस की खेती की जाती थी, रैननकुलसकी कई जंगली जातियां यह जाननेके हेतु लगायी थी कि समान वातावरणमें जमने और पलनेके कारण जंगली रैननकुलसका रंग-रूप बागोंके रैननकुलसके समान होने लगता है अथवा नहीं। इस विषयमें उन्होंने अपने एक मित्रसे कहा था कि 'मेरी समझमें वातावरणके परिवर्तनसे नवीन जातियोंकी उत्पत्ति नहीं होती। इसके कुछ और ही कारण हैं!"

डार्विन साहबकी पुस्तकोंके प्रकाशित होनेपर, कैथोलिक मतावलम्बियोंकी मनाही होनेपर भी उन्होंने उन सबको खरीदकर ध्यानपूर्वक पढ़ा। उनके साथीके अनुसार, डार्विनके साधारण परिणामोंसे मैंडल सहमत थे किन्तु उनके मतमें डार्विनके प्राकृतिक-चुनावके सिद्धान्तमें अब भी कुछ कमी थी। ये सब पुस्तकें जहां-तहां मैंडलकी टीका-टिप्पणी सहित आज भी विहारके पुस्तकालयमें मौजूद हैं। इनमें तनिक भी सन्देह नहीं कि अपने विषयका प्रायः समस्त वैज्ञानिक साहित्य उन्होंने भली-भाँति पढ़ा था।

हम ऊपर कह चुके हैं कि मैंडलने प्रयोग करके, मटर की अनेकों संकर उपजातियोंकी मीमांसा की। मटरके पौधोंपर उन्होंने कब और किस भांति प्रयोग करना आरम्भ किया, यह किसीको नहीं ज्ञात है। अलबत्ता जब वे विश्वविद्यालयमें पढ़ते थे तब उन्होंने विज्ञान-परिषद्में एक लेख पढ़ा था। यह लेख एक तुच्छ कीड़ेके सम्बन्धमें लिखा गया था जो घरेलू मटरको नष्ट कर डालता है। इससे इतना अवश्य प्रकट होता है कि लेख पढ़े जानेसे पूर्वही मैंडलने मटरपर प्रयोगात्मक कार्य करना आरम्भ कर दिया था।

डाक्टर ईटिसका यह अनुमान है कि मैंडलने 'लक्षणोंके पृथक (Segregation of characters) होनेके सिद्धान्तकी खोज' चूहोंकी पारस्परिक जनन-क्रियाद्वारा की है। किन्तु जब जानवरोंकी संकर जातियां उत्पन्न करनेके विरुद्ध उनके धार्मिक प्रवृत्तिके साथियोंने आन्दोलन किया तो उन्होंने चूहोंके बजाय मटरपर उसी भांतिके प्रयोग करने आरंभ कर दिये। मैंडल यह जानते थे कि विहार बिशप उनसे रुष्ट हैं और जानवरोंकी संकर जातियां उत्पन्न करनेपर जब लोक-मत उनका विरोध करेगा तो बिशप उनकी तनिक भी तरफदारी न करेगा। इन सब बातोंको ध्यानमें रखकर और यह समझकर कि पुष्पोंकी संकर जातियां उत्पन्न करनेसे किसीके हृदयको ठेस न पहुंचेगी, उन्होंने पौधोंपर प्रयोग करने आरंभ किये,

मैंडलकी प्रसिद्ध बाटिका कुल ३५ मीटर लम्बी और ७ मीटर चौड़ी थी। थोड़ेही कालमें यह बाटिका मैंडलके मन-बहलाव की जगह हो गयी थी। किसी मित्र अथवा अतिथिके आनेपर वे उसे प्रायः यह कहकर विस्मित कर दिया करते थे कि "मैंने अविवाहित रहनेकी प्रतिज्ञाकी थी पर आपके जानेसे पूर्व मैं अपने बाल-बच्चोंको दिखा दूँ।" यह कहकर उन्हें अपनी बाटिका दिखाने ले जाते। वहां चारों ओर मटरकी लम्बी-लम्बी टहनियां फैली हुई थीं।

मटरके पौधोंपर प्रयोगात्मक कार्य करके ही उन्होंने बीज-परम्पराके (heredity) सिद्धान्तका अनुसन्धान किया। पहले-पहल इस सिद्धान्तका स्पष्ट वर्णन उन्होंने सन् १८६५में ही किया था परन्तु वैज्ञानिक संसारको मैंडलके खोजे हुए, बीज-परम्पराके उपयोगी सिद्धान्तोंका पता सन् १९००तक न था। इन नियमोंके ज्ञात होनेपर ही संसारको पौधों और जीव-जन्तुओं की नसल सुधारने की सम्भावना प्रतीत हुई और तभीसे इस ओर जोरोंसे काम होने लगा। मैंडलद्वारा खोजे हुए बीज-परम्पराके नियमोंके द्वारा इस बातका रहस्य पूर्णरूपेण समझमें आ जाता है कि मुसलमानोंमें भतीजियों और भानजियोंके साथ विवाह करने की प्रथा क्यों दूषित समझी जाती है। बीज-परम्पराके सिद्धान्तोंकी खोज मैंडलके अतीव उज्ज्वल और महत्वपूर्ण कार्योंमेंसे है। इन दिनों अमेरिका आदि उन्नतिशील देशोंमें इन्हीं सिद्धान्तोंके आधारपर कितना उपयोगी काम हो रहा है। धन्य है वह पवित्र आत्मा जिसने—

'ऊँची अच्छी जाति जन्तुओंकी जनमायी,
आगामी–आदर्श–मनुज–रचना सिखलायी।'

मटरपर प्रयोग करनेके अतिरिक्त उन्होंने लगभग तीस वंशोंके पुष्पोंपर प्रयोगात्मक कार्य किये। वह नित्य (Meteorological observation) वायु-मंडल सम्बन्धी बातोंका निरीक्षण करता था। उसने मधुमक्षिकाएँ भी पाल रखीं थो। देशी और जंगली मक्खियोंके अतिरिक्त कारिंथिया, इटली, मिश्र और साइप्रसकी पालतू जातिकी मधु-मक्खियां भी उन्होंने पाल रक्खी थी। प्रत्येक छत्तेके निकट एक तालिका (Records sheet) टँगी रहती थी। इस तालिकामें वह नियमपूर्वक उल्लेखनीय बातें जैसे रानी मक्खीने छत्तेमें कब प्रवेश किया, स्थानान्तरित (swarming) होनेकी तिथि और नरों (drones) के उड़नेका समय नोट करता था।

खोजमें मिले हुए उसके लेखोंसे पता चलता है कि वह प्रकृतिका सच्चा पुजारी और पैदायशी बागबान था। पड़ोसमें कोई विरला ही पौधा होगा जिसपर मैंडलकी दृष्टि न पड़ी हो। अपने मित्रों और शिष्योंके साथ प्रायः वह खेतों और बागोंमें घूमने जाता था और वहांसे अनेकों पौधोंको नमूनेके तौरपर लाकर अपनी बाटिकामें लगाता था। एक बार फ्लोरेंस (Florence) नगरमें उन्होंने कुछ अंगूर खाये थे। उनके बीज वे लेते आये और अपनी बाटिकामें उगाये जो आजतक फल देते हैं।

विहारके प्रधान पादरी चुने जानेके अनन्तर प्रयोगात्मक कार्योंमें उनका अनुराग और भी बढ़ा। अब तो सैकड़ों खेतोंकी किसानी उनकी देख-रेखमें होने लगी थी। उनमें वह मन-मानी उन्नति कर सकते थे। बढ़िया पुष्पोंके अनेकों पौधे उन्होंने लगाये थे। उनके बागबानका कथन है कि (Cross pollination) पर-सेचनद्वारा मैंडलने पाँच-छः सौ वृक्षोंसे विविध प्रकारकी नसलें उत्पन्न की थीं। अच्छी नसलके पौधोंकी कलम लगाते थे। प्रदर्शिनियोंमें वह अपने खेतोंकी शाक-भाजी और पुष्प भेजते थे। यही नहीं, प्रदर्शिनियोंके वह निर्णायक भी बनते थे और यही कारण है कि आसपासकी जनता आज भी मैंडलको 'पुष्प-प्रेमी' के नामसे स्मरण करती है। अपनी फोटो खिचाते समय सदैव अपने हाथमें सुन्दर पुष्पोंवाली डालको लेकर बैठते। विहारके ऐबट चुने जानेपर भी वे स्थानीय मधुमक्षिका व्यापारसंघके सदस्य और उप सभापति बने रहे। वे एक बार जर्मनीके (Apiarists) मक्षिकाश्रमपतियों की सभामें सम्मिलित होनेके हेतु कील (Kiel) गये थे।

५—प्रधान चुना गया

सन् १८६८ ई०में मैंडल विहारका ऐबट चुना गया। इस पदके हेतु दर्जनों उम्मेदवार थे। मैंडल किसीका शत्रु तो था ही नहीं। साथ-ही-साथ उसकी आयु भी अधिक न थी। चुनावमें यह विचार रखा जाता था कि जहांतक हो सके कोई नवयुवक चुना जावे ताकि मृत्युके

कारण बार-बार चुनाव न करना पड़े। स्मरण रहे कि चुनावके अवसरपर सरकार विहारसे भारी कर वसूल करती थी। इस चुनावके कारण जानसे प्यारी वैज्ञानिक शिक्षा और अनुसन्धान-कार्यमें अड़चने पड़ने लगीं। भला इससे अधिक असंगत चुनाव क्या हो सकता था। मैंडल जैसे सत्यवादी स्वतंत्र एवं उदार हृदय, प्रकृति-प्रेमी व्यक्तिके हेतु धार्मिक और राजनैतिक कार्यों से क्या प्रयोजन? ऐबटका पद बड़ाही गौरवपूर्ण और असामान्य अधिकारयुक्त था। वह पद बड़े ठाठ-बाट और रौब-दाबका होता था।

२—मैंडलकी जन्मभूमि

किस्मतकी खूबी देखिये! जो देहाती बालक, लाख यत्न करनेपर भी स्कूल की पढ़ाईका व्यय न जुटा सका और विवश होकर विहारमें केवल इस उद्देश्यसे सम्मिलित हुआ कि उसकी शिक्षाका दूसरा कोई साधन न था, वही आज देशकी अत्यन्त समृद्ध एवं धनी संस्थाका स्वामी बन बैठा। वह किसानका वही दीन बालक आज पादरी बनकर और पशु-पक्षियोंसे परिपूर्ण नन्हीं-सी कुटीरसे निकलकर, लगभग चालीस कमरोंके एक सुसज्जित विशाल भवनमें आ बिराजा। जो बालक विद्यार्थी-जीवनमें रातको प्रायः भूखाही सो रहता था, आज आष्ट्रियाके एक प्रख्यात पाकशालाका मालिक बन बैठा।

अब मैंडलने स्कूल की नौकरीसे इस्तीफा दे दिया। स्कूलसे बिदा होते समय अपने पिछले मासके वेतनको उत्तम विद्यार्थियोंमें वितरण करनेको आदेश दे आये। इसके अनन्तर मैंडल विहारके प्रबन्धमें बड़ी लगनसे जुट गये। इसी समय उन्होंने अपने दो भतीजोंको डाक्टरी पढ़नेके हेतु ब्रन बुला लिया। मैंडलने किसी संस्था अथवा व्यक्तिको, याचना करनेपर विमुख नहीं लौटाया। साहित्य, संगीत, एवं कला-कौशलमें विशेष रुचि न रखते हुए भी वह उनके प्रचार करनेवाली संस्थाओंका संरक्षक बना रहा।

मैंडल अतिथि-सत्कारमें बड़ी दिलचस्पी लेता था। प्रायः नित्य ही एक न एक प्रसिद्ध व्यक्ति उसके यहाँ मेहमानके रूपमें टिका ही रहता था। रविवारको तो उसका घर महान व्यक्तियोंके हेतु खुला ही रहता था। स्वादिष्ट और पोषक भोजन मिलने और आराम-तलबीके कारण उसके शरीर पर बादी छा गयी। बादी घटानेके हेतु उसने बीसों प्रयत्न किये। कभी सोनेके कमरेमें फर्श पर लुढ़कना, कभी प्रातः चार बजे उठकर कामपर जाता, कभी बादी-निवारक द्रव्य भोजन करता, पर इन उपायोंसे बादी न घटी।

विहारकी रियासतमें दौरा करनेमें उसका बहुत समय लग जाता था। जब वह घरसे बाहर जाता तो उसके पौधे देख-भाल विना जीर्ण-शीर्ण हो जाते। रियासतका प्रबन्ध उसने इस खूबीसे किया कि थोड़े ही कालमें विहारकी रियासत सुप्रबन्धके हेतु विख्यात हो गयी। वहांकी प्रजा सुखी और सन्तुष्ट रहने लगी। पासमें धन होनेके कारण अब वह विदेशोंकी सैर भी कर सकता था। कभी वह रोम जाता तो कभी वियना, कभी वह निस जाता तो कभी अल्पाचलकी सैर करता। लोगोंका कथन है कि वह इंग्लैंड भी गया था।

रियासतके कार-भार एवं सैर-सपाटेके कारण अनुसन्धान-कार्यमें बड़ी शिथिलता आ गयी। कृषि एवं शिक्षाकी उन्नतिकारी अनेक सरकारी कमीशनोंसे उसने काम किया। देहातमें कर-सम्बन्धी नियमोंमें सुधार करनेवाली कमेटीका भी वह सदस्य था। बहिरों-गूंगोंकी एक संस्थाका भी वह अधिष्ठाता बनाया गया था। यही नहीं, सन् १८७६ ई०में वह सरकारी मारगेज-बैंकका मुख्याधिष्ठाता (Director-General) बनाया गया था। इन पदोंपर मैंडलने अपनी दृढ़ता पैनी सूझ, सादगी और स्पष्टवादिताके कारण बड़ी ख्याति प्राप्त की। पर इन कामोंमें संलग्न होते हुए भी वह गवेषणा-कार्यको भूला न था। उनके विषयमें वह प्रायः चर्चा किया ही करता था।

६—सरकारसे अनबन हो गयी।

इस उत्तरदायित्व एवं गौरवपूर्ण पदपर छः वर्ष काम करनेके अनन्तर मैंडलपर विपत्तिके बादल उमड़ने लगे।

जर्मनीके उदार दलवालोंने पार्लियामेंटमें एक बिल पेश किया कि देशकी बड़ी-बड़ी धार्मिक संस्थाओंमें जो बचतका धन जमा है वह देशकी अन्य लोकोपयोगी संस्थाओंमें व्यय किया जावे। बिल पेश करनेवालोंका मंशा यह था कि वह धन रोमन कैथोलिकको प्राप्त हो जावे। किन्तु इसमें एक भारी कमी थी। हर विहारके व्ययके हेतु कुछ धन नियत था। व्ययकी मदमेंसे तो रुपया लिया नहीं जा सकता था। आय-व्ययका लेखा-जोखा विहारके अधिकारियोंके पास मौजूद था। यह हिसाब दिखाकर वे यह सिद्ध कर सकते थे कि अमुक विहारकी सारी आय उसके व्यय भरको ही पर्याप्त होती है। इतना ही सिद्ध कर देनेसे उन्हें नये विधानसे छुटकारा मिल जाता था। ऐसी दशामें सरकार नियमतः उन संस्थाओंसे कुछ भी नहीं पा सकती थी। अधिकांश विहारोंके अधिकारियोंने तो इसी तरहकी तरकीबों से काम निकाला और कठोर कानूनसे अपनी रक्षा की। किन्तु मैंडल ऐसी अनीतिको चुपचाप सहन कर लेनेवाला व्यक्ति न था। अन्य विहारोंके निबटेरोंको उन्होंने अपमान-जनक समझा और सरकारके इस कार्यका घोर विरोध किया।

मैंडलके इस आचरणसे यह स्पष्ट है कि—उनमें कूट-कौशलका सर्वथा अभाव था और 'जैसी बहै बयार पीठि तब तैसी दीजै' वाली नीतिपर विश्वास न करता। वह बड़ा स्वाभिमानी, स्वातंत्र-प्रिय और सीधा-सादा वैज्ञानिक था। कुछ व्यक्ति मैंडलके इस आचारणकी उनकी दृढ़ता कहेंगे। पर उसके शत्रु इसे प्रभुतापाय-काहि-मद-नाहीं कहकर घमंडी होनेका अपराध लगावेंगे। बहुत कालतक तो वे इस नवीन विधानकी अवहेलना करते रहे पर जब उनकी यह धींगा-धींगी अधिक न चल सकी और सरकारी ओरसे अधिक छेड़-छाड़ होने लगी तो मैंडलने सरकारी बातोंका विविध तर्कनाओं द्वारा खुलकर विरोध किया और उन्हें अवैध और अन्यायपूर्ण सिद्ध किया।

७-सम्पत्ति कोरट हुई

किन्तु सरकारका विरोध करनेमें मैंडलके साथी अधिक समयतक न अड़े। वे एक-एक करके उन्हें छोड़ सरकारसे जा मिले। पर मैंडलने इसकी तनिक भी परवाह न की। उसके विचार अटल रहे। सरकारने उनपर अभियोग चलाया और उनके विहारकी कुछ जायदाद कोरट' कर ली। मैंडलने इसका घोर विरोध किया और अन्तमें यह घोषणा की कि "मैंने यह जायदाद सात प्रतिशत सूदपर सरकार को ऋणस्वरूप दी है। इसी प्रकार सरकारने विहारकी और समृद्धिशाली रियासतें धीरे-धीरे अपने अधिकारमें कर लीं और मैंडलने भी हर बार सरकारके कामोंका घोर विरोध किया। लोग आपसमें काना-फूसी करने लगे कि कूट-नीतिज्ञ सरकार मैंडलके विरोधकी तनिक भी परवा न करनेकी, वह अपनी ही करके मानेगी। मैंडलके कानोंतक जब यह खबरें पहुँची तब उसने अपने कई मित्रोंसे कहा कि मेरे शत्रु मुझे पागल बताते हैं और धोखेमें मेरी हत्या करनेकी तदबीरमें हैं। अब वह अपना अधिकांश समय प्रायः एकांतमें बिताता और दूसरोंपर विश्वास कम करता। हां, अपने भतीजोंसे वह दिल खोलकर बात करता था। विहार की दशा बहुत नाजुक हो गयी थी। उसके कई गुरु-भाई तक उसके विरुद्ध हो गये थे। उसके बिशपने उसके दिमागकी जाँचके लिये गुप्तचर नियत किये थे। मैंडल कहा करता कि मेरे विरोधी मुझे पागलखाना भेजनेकी तदबीर में है' सरकारने बिशपसे अनुरोध किया कि वह मैंडलके विरुद्ध मुकदमा चलावे।

सरकारसे समझौता

सन् १८८३ ई०में मैंडल बीमार पड़ गया अतएव उस पर मुकदमा चलानेकी नौबत न पहुँची। विहारके रुपये-पैसे का हिसाब दूसरे कर्मचारियोंको सौंप दिया गया। मैंडलकी मृत्युके दो सप्ताहके भीतर उसके साथियोंने सरकारसे समझौता कर लिया। उन्होंने सरकारी विधानको स्वीकार लिया और विहारकी ज़ब्तशुदा सम्पत्तिको वापस करनेके हेतु सरकारसे अनुरोध किया। समझौतेका परिणाम यह हुआ कि सरकारने अपनी प्रतिष्ठाकी रक्षा की और विहारके अधिकारियोंने अपनी खोई हुई जायदाद की!

८-मैंडलकी मृत्यु

छठी जनवरी सन् १८८३ ई०को मैंडलकी मृत्यु हो गई। सच्चे वैज्ञानिक होनेके कारण उन्होंने अपना सारा जीवन तो सत्यकी खोजमें लगा ही दिया और मृत्युसे पूर्व यह इच्छा प्रकट की कि उसके मृत-शरीरकी परीक्षा (Post-mortem) करके इस बातका ठीक-ठीक पता लगाया जाय कि उसकी मृत्यु क्यों हुई? पोस्ट-मार्टम परीक्षाके हेतु

अनुरोधका यह भी कारण हो सकता है कि उसे यह भय था कि वह जीता गाड़ दिया जायगा।

क्या सचमुच ही मैंडलके जीवनके अन्तिम दिनोंमें उसके दिमागमें कुछ खलल हो गया था? आजीवन साथ रहनेवाले उसके कुछ सम्बन्धियोंसे यह ज्ञातहोता है कि उसके पूर्वजोंमें यह रोग किसीमें न था। उसके दो भतीजे डाक्टर थे और प्रायः उनके साथ ही रहा करते थे। उनका भी यही कथन है कि मैंडलके दिमागमें कोई खराबी नहीं थी। हां, उसे बहुत दिनों तक पेशाबसे अल्बुमेन जाया करता था। और वर्षोंतक वह दिन भरमें बीस-बीस सिगार तक पीता रहा। अतएव संभव है कि सिगार के विषैले धुंएके कारण ही उसके मस्तिष्कमें कुछ उपद्रव उत्पन्न हो गया हो।

२–मैंडलकी वाटिकाके समीप उसकी प्रस्तर-मूर्ति (स्मारक)

मैंडलकी अंत्येष्टि-क्रियाके उपरान्त उसके साथियोंने उसकी पुस्तकोंको देखा। दुरुस्त जिल्दवाली पुस्तकोंको विहारके पुस्तकालयके लिये रख छोड़ा और शेषको फूंक दिया। इस भांति उसके प्रायः समस्त मौलिक ग्रन्थ नष्ट करदिये गये। हां उसके दो प्रकाशित लेख और भी बच रहे थे जिनका पता वैज्ञानिक संसारको सन् १९०० ई०में लगा।

———

हजारों मीलसे छोड़े हुए कबूतर घर कैसे पहुँचते हैं ?

१५ अगस्त सन् १९३१को उत्तरी पूर्वी फ्रांस के एक छोटे शहर अरससे छोड़े जानेपर एक कबूतर इन्डोचाइनाके सैगों शहर तक आखिर पहुँच ही गया। कबूतर वहीं का निवासी था और उसे जानबूझकर लोग फ्रांस ले गये थे कि देखें वहांसे वह अपने मकानतक पहुंच सकता है या नहीं। ७२०० मीलका रास्ता तै करना था और कैसे आश्चर्यकी बात है कि ९ सितम्बरको छोड़े जानेके कुल २४ दिनमें ही वह अपने घर पहुँच ही गया। इसके पहले और कबूतरोंने भी आश्चर्यजनक घटनायें दिखलायी थीं, ऐसा एक सज्जन सार्यटिफिकट अमेरिकनमें लिखते हैं। लेकिन इस कबूतरके आगे उनकी कोई गिनती नहीं रही। इसके पहले सबसे दूरतक उड़कर अपने घर आनेवाला कबूतर वह था जो अमेरिकाकी राजधानीका रहनेवाला था और ब्रुक्लिनसे जो कि २२०० मीलकी दूरीपर है छोड़े-जानेपर घर पहुंच गया। इसके पहले दुनियांका सबसे दूर तक उड़नेवाला कबूतर वह था जो कि अमेरिकाकी फौजका पाला हुआ था। और वैन्सबोरोसे छोड़े जानेपर २१०० मीलपर स्थित अपने घर सैन अनटोनियो पहुंच गया। चाहे २ हजार मील हो चाहे ७ हजार चाहे कम, आश्चर्य तो यह है कि इतनी दूर ले जानेपर कि उसके मकानका नामो-निशान भी न दिखाई पड़े वह कैसे अपने घर की ओर उड़ सकता है, गो ऐसी जगहपर की कोई चीज ऐसी नहीं रहती जिसकी वह पहचान कर सके। मजबूत जानवर पैदा करना हो तब तो बात दूसरी है परन्तु जब लोग यह चाहते हैं कि अधिकाधिक दूरसे घर पहुंचने वाले कबूतर पैदा किये जायें तो पता नहीं लगता कि क्या उपाय किया जाय। कोई अभी तक जानता ही नहीं कि कबूतरोंमें वह शक्ति कहांसे आती है जिससे वह अपने घरका रास्ता पहचान सकें। कुछ लोग तो आज भी कहते हैं कि यह कोई विशेष शक्ति नहीं है। ऐसे मतावलम्बियोंमेंसे मिस्टर टायसरास हैं। यह अमेरिकाके एक फौजी अफसर हैं। इनका कहना है कि कबूतर केवल सिखानेके कारण ही अपने घर पहुंच जाया करते हैं। कबूतरोंको शुरूसे ही सिखलाया जाता है कि जब कभी वे अपने अड्डेपर लौट आयेंगे तो वहीं उनको खाना मिलेगा। इसीसे वह अपने अड्डेपर लौट आया करते हैं। जब वे बड़े होते हैं और बच्चे पैदा-कर सकते हैं तब अड्डे की ओर उनका आकर्षण बढ़ जाता है। क्योंकि कबूतर एक-स्त्रीगामी होता है और अपनी गृहस्थीसे बहुत प्रेम करता है। अन्तमें जब उसके बच्चे हो जाते हैं तो यह सबसे दृढ़ सम्बन्ध उसके अड्डेसे स्थापित कर देता है। और चूंकि कबूतरोंमें मां और बाप दोनों अन्डेको बारीबारीसे सेते हैं इसलिये अड्डाही उन कबूतरोंके लिये उनकी सारी दुनिया है और जैसे चुम्बक कुतुबनुमाको अपनी ओर खींच लाता है उसी तरह यह अड्डा उनको खींच लाता है चाहे वे कहीं भी हों। मिस्टर रासका कहना है कि खाना, स्त्री-प्रेम और बच्चोंका प्रेम यही तीन चीजें हैं जो कबूतरोंको घर पहुंचा देती हैं घर पहुंचनेकी शक्ति सच पूछा जाये तो कोई शक्ति है ही नहीं। यह तो केवल बार-बार सिखानेसे उनमें आ जाती है।

मिस्टर रास चाहे कुछ कहें औरोंका कहना है कि घर पहुंचनेकी शक्ति विशेष शक्ति है और मिस्टर रासने इस शक्तिके केवल तीन मुख्य अंग बतलाये हैं उन्होंने इसके अस्तित्व न होनेका कोई प्रमाण नहीं दिया है। उनका कहना है कि प्रत्येक शक्ति बड़ी पेचीदा चीज होती है और इसमें कोई भी शक नहीं करेगा कि कबूतर अपने घर इस लिये आता है कि वहां भोजन स्त्री और बच्चे उसका स्वागत करते हैं। और यह भी सही है कि कबूतर बेवकूफ भी होते हैं। उन्हें बड़े धैर्यसे सिखाना पड़ता है कि छोड़ने-पर वे सीधे उड़कर अड्डेपरही जायें। परन्तु इन सब बातोंके सच होते हुए भी यह कोई अभी नहीं बता सकता कि क्यों और कैसे ऐसा कबूतर जिसे लोग उसके घरसे पिंजरे में बन्द कर और फिर मोटरकार रेलगाड़ी और जहाजमें ले जाकर हजारों मीलकी दूरीपर छोड़ देते हैं तो वह केवल २० सेकिंड तक मंडलाकर सीधे अपने घर की ओर ५० मील प्रति घण्टे की वेगसे उड़ चलता है।

देखी हुई जमीनके ऊपर और थोड़ी दूरसे छोड़नेपर (और ज्यादातर कबूतर इसी तरह छोड़े जाते हैं) लोग

कह सकते हैं कि कबूतर तबतक मंडलाता है जब तक उसे कोई पहचाना हुआ पेड़, तालाब या मकान नहीं दिखाई पड़ता और इसके दिखाई पड़ते ही वह सीधे अपने घर की ओर चल पड़ता है। लेकिन हर साल सैकड़ों चिड़ियें इतनी दूरीपर ले जाकर छोड़ी जाती हैं जहांसे उन्हें कोई भी जानी हुई चीज नहीं दिखाई पड़ती और कहना ही पड़ता है कि कबूतरोंमें घरका रास्ता पानेके लिये कोई विशेष शक्ति है।

आजसे हजारों वर्ष पहले भी लोग कबूतरकी इस शक्तिको जानते थे और तभीसे लोग इसके पीछे पड़े हैं। लेकिन वैज्ञानिकों और कबूतर-बाजोंको आज भी यह भेद हाथ नहीं लगा है लेकिन ऐसा जान पड़ता है कि हम लोग इस भेदके जानेके बहुत निकट आ गये हैं क्योंकि कुछ बातों का हमें पता लगा है। यह नीचे गिनायी जाती हैं।

(१) सब कबूतरोंमें घर पहुँचनेकी शक्ति नहीं होती। यह शक्ति केवल एक ख़ास जातिके कबूतरोंमें ही होती है। इस जातिका नाम हम 'लौटू" कबूतर रख सकते हैं।

(२) सिखलाने और नसलके चुनाओंसे लौटू कबूतरमें खूब दूरसे लौट आनेकी शक्ति पिछले दो चार सौ वर्ष में बहुत बढ़ाली गयी है। अमरीकाका कबूतर योरपके जंगली कबूतरोंका वंशज है लेकिन सच पूछा जाय तो यह बड़ा वर्णसंकर है। जो लोग योरपसे पैलेस्टाइन धर्मयुद्ध करने गये थे, वे सुलतान नूरउद्दीन मोहम्मदके चिट्ठी ले जानेवाले कबूतरोंमेंसे दोचार पकड़ लाये थे। मुग़ल बादशाहों और भारतवर्षके कबूतरोंका खून अमरीकाके 'लौटू' कबूतरों में आज दौड़ रहा है। इन्हीं पूर्वजोंसे आजके कबूतरमें ताक़त, नेत्रशक्ति और जिद्दीपन आया है।

(३) इनके सिखलानेकी रीति यह है-ज्यों ही कबूतरके पर निकल आते हैं और वे थोड़ा बहुत उड़ने लायक हो जाते हैं त्योंही उनको सिर्फ अड्डे पर ही खाना अधिकतर मटर और मकई दिया जाता है। जब कबूतर छै सप्ताहका हो जाता है तो उसे अड्डेसे बाहर निकालते हैं और अड्डेके दरवाजेमेंसे ला भीतर छोड़कर उसको फ़ौरन मटर और मकई देते हैं। यह कार्यक्रम कई दिनों जारी रखा जाता है जिससे कबूतर अच्छी तरह समझले कि अड्डेके भीतर घुसनेसे उसको खानेको मिलेगा। उसे अड्डेके बाहर कभी भी कुछ खानेको नहीं दिया जाता और जब वह अड्डेके पास बाहर रहता है तो टीनकी कटोरीमें मटर और मकई खूब खड़-खड़ायी जाती है जिसमें वह आवाज सुनकर तुरन्त अड्डेके भीतर घुस आये।

जब वह १२ सप्ताहका हो जाता है तो उस अड्डेसे थोड़ी दूरपर छोड़ दिया जाता है। और अड्डेके भीतर मटर और मकई जोरसे खड़खड़ाई जाती है। वह दो चार सेकिन्ड तक इस आवाजको ध्यानसे सुनता है और तब अड्डेमें घुस आता है। दिनपरदिन वह अधिकाधिक दूरीपर छोड़ा जाता है और इस प्रकार उसे अड्डेमें घुस आनेकी आदत पड़ जाती है। जब स्त्रीके साथ रहनेका समय आता है। और फिर पीछे बच्चे पैदा हो जाते हैं तब उसकी शिक्षा और जोरसे की जाती है। कबूतरको तब बार-बार बाहरसे छोड़ कर यह अच्छी तरह दिखला दिया जाता है कि अड्डेके भीतर वह अपने स्त्री बच्चोंको भी पायेगा जहाँ उसे बराबर भोजन मिला करता है कबूतर बाजोंमें जब कभी बाजी लगती है तो वह विशेषकर ऐसे कबूतरोंको दौड़में भरती करते हैं जो किसी स्त्रीके प्रेममें फँसे रहते हैं या जिनके छोटे बच्चे होते हैं।

जहांसे कबूतर छोड़े जाते हैं वहाँसे अपने घरतक कबूतर सीधे नहीं उड़कर जाते। वे बीचमें कहीं आंधी चलती हो या कहीं खेसा ? पड़ता हो तो वे चक्कर काटकर जायेंगे।

(५) साधारणतया वे अंधेरेमें नहीं उड़ते। यह ठीक भी है। जो कबूतर दिनभर ५० मील प्रति घंटाकी तेजीसे उड़ता रहे उसे रातभर आराम करना ही चाहिये और दूसरी बात यह है कि कबूतरका जानी दुश्मन उल्लू रातमें ही निकलते हैं (यों तो वे बेवकूफ भी इसके जानी दुश्मन हैं जो बन्दूक लिये सभी उड़ती चीजोंपर धायं-धायं गोली दागा करते हैं)।

(६) 'लौटू' कबूतर साधारणतया आठसे दस वर्ष तक जीता है। यों तो बाज-बाज कबूतर इसके दूने दिनों तक जीते रह जाते हैं। उड़ने और बोझ उठानेकी शक्ति दो वर्षसे पांच वर्ष तककी आयुमें सबसे अधिक रहती है।

(७) यह जरूरी नहीं है कि उनको लगातार अपना घर दिखाई पड़े तभी वे घर पहुँच सकें। सारजन्टस्मिथके पास एक फौजी कबूतर था। थोड़ी दूरसे छोड़नेपर यह कबूतर वक्तसे लौटकर किले पर नहीं आया। कई दिनों

बाद विचारा पैदल चलता हुआ आया। बीचमें उसे किसी ने पकड़ लिया था जो चाहता था कि कबूतर उसके घर रहे। और इस विचारसे उसने इसके पर काट डाले थे। लेकिन कबूतर घर पहुँच ही गया।

(८ कबूतरोंके कान आदमीके कानकी तरह होते हैं। उनमें भी वैसे ही चक्करदार नली होती है। कुछ लोग समझते हैं कि कबूतरोंके घर लौटनेकी विशेष शक्ति इन्हीं कानकी नलियोंमें रहती है। क्योंकि यदि इन नलियों में घाव हो जाये या कबूतरके कान बन्द कर दिये जायँ तो फिर वह घर नहीं लौट सकता।

(९) सभी कबूतरोंकी और विशेषकर लौटू कबूतर की दृष्टि बड़ी तीक्ष्ण होती है। प्रयोगोंसे पता लगा है कि आदमीकी अपेक्षा कबूतर कई गुनी अधिक दूरीसे देख सकता है।

(१०) बेतारके तारकी लहर से कबूतर चक्करमें पड़ जाते हैं। बार-बार देखा गया है कि खूब सधे कबूतर भी घबराकर रास्ता भूल जाते हैं। अगर कोई बेतारके तार भेजनेवाले स्टेशन उनके रास्तेमें पड़ जांय तो बार-बार देखा गया है कि ऐसे स्टेशनोंसे छोड़े गये कबूतर उस वक्त तो केवल २० मिनटतक मंडलाकर अपने घर चल देते हैं जब वहांकी मशीन बन्द रहती है। लेकिन मशीनके चालू होते ही विचारे मिनटों तक मंडलाया करते हैं और अन्तमें फिर जमीनपर आ जाते हैं।

इतनी बातोंका तो पक्का पता है। बाकी बातें केवल अनुमानसे ही जानी जा सकती है। मिस्टर स्टेडसनने एक नया सिद्धान्त बनाया है। इसके समझनेके लिये हमें उस अद्भुत कबूतरपर ध्यान करना चाहिये जो फ्रांससे छोड़े जानेपर इन्डोचाइना पहुंच गया। इस कबूतरको झाबियेमें ? बन्दकर जहाजकी पेंदीमें रखा गया था। और जहाज हिन्दुस्तानका चक्कर लगाता लालसमुद्र और भूमध्यसागर पार करता हुआ फ्रांस पहुंचा था। यह कबूतर रास्ता देखता हुआ तो गया नहीं था और अवश्य ही छोड़े जानेपर ७२०० मीलकी दूरीसे अपना घर वह नहीं देख सकता था, दोनों बात पूर्णतया असम्भव है।

मिस्टर स्टेडसनका कहना है कि हो सकता है कि कबूतरके कान बिजलीके कुतबनुमाकी तरह काम देते हैं। मिस्टर स्टेडसन कबूतरोंके बारेमें कुछ नहीं जानते। लेकिन बिजलीके कुतुबनुमोंके वे पक्के उस्ताद हैं। उन्होंने यह मिसाल दी है कि जब लिन्डबर्ग हवाई जहाजसे अकेले उड़ कर अमरीकासे पैरिस जा रहा था तब उसने एक ऐसा कुतुबनुमा अपने जहाजमें लगा रखा था। जहाजकी दिशा बदलते ही इस कुतुबनुमेसे उसे पता लग जाता था कि वह किधर जा रहा है। अब अगर कबूतरके कान इन कुतुबनुमों की तरह हैं तो जब कबूतर जहाजकी पेंदीमें फ्रांस जा रहा था तो वह याद करता गया होगा कि वह किस दिशामें जा रहा था, और फ्रांससे छूटनेपर उलटी दिशामें चलकर वह घर पहुंच गया होगा।

है तो यह बड़ा सुन्दर सिद्धांत। परन्तु इसके ठीक होनेकी कोई विशेष सम्भावना नहीं मालूम होती। अभी बार-बार इस सिद्धान्तको अपने सामने रखकर प्रयोग करने पड़ेंगे तब कहीं पता चलेगा कि सिद्धान्त सच्चा है कि झूठा।

इधर वैज्ञानिक लोग जबसे ऐसे सिद्धान्तोंपर बहस किया करेंगे तबसे कबूतर अपने आश्चर्यजनक कामका उदाहरण कदाचित अधिकाधिक मात्रामें दिखलाया करेंगे। उन की उपयोगिता दिनपर दिन बढ़ती जा रही है। हजारों वर्ष पहलेसे कबूतर लड़ाईके काममें आता रहा है। इन दिनों वह इस कामके अतिरिक्त मनुष्यकी जान बचाने और विद्या के प्रचार करनेके काममें भी सहायता देता है। इसके अतिरिक्त अमेरीकामें कबूतरोंके दौड़का नया खेल चल निकला है। हालमें कबूतरोंने समाचार पत्रोंकी नौकरी कर ली है। और दूर स्थित स्थानोंसे समाचार और चित्र सम्पादकोंके पास रेलसे भी शीघ्र पहुंचाते हैं।

कबूतरबाजी अमरीकामें इन दिनों इस जोरसे फैली है कि चार मासिक पत्रिकायें केवल इसी विषयपर निकलती हैं। सन् १९३५में ५५९० दौड़ें कबूतरोंकी हुईं और इस में १२ लाखसे ज्यादा कबूतरोंने भाग लिया।

पिछले महासमरमें देखा गया कि कबूतर गोली चलते में भी चिट्ठी पहुंचा दिया करते हैं और ९० प्रतिशत चिट्ठियां ठिकाने पहुंच जाती थीं। तभीसे कबूतरोंका पालन जोरोंसे बढ़ा। 'न्यूयार्क ईवनिङ्ग जरनल'ने कबूतरोंकी एक पूरी फौज पाल रखी है। जहाजी खबरोंके भेजनेके लिये इस समाचार पत्रके संवाददाता जब जहाजपर जाते हैं तो

अपने साथ कबूतर ले जाते हैं और वहां पर बाहरसे आये हुये बड़े लोगोंके फोटो और समाचार इन्हीं कबूतरोंसे भेज भेज देते हैं। रास्ता १४ मीलका है और कबूतर कुल १२ मिनटमें खबर ले आते हैं। प्रतियोगी समाचार पत्रोंके पास कहीं दो घन्टे बाद समाचार मिल पाता है। और इस तरह से 'नयूयार्क इवनिङ्ग जरनल' को बड़ा फायदा रहता है। फौजमें हरएक जगह सैकड़ों कबूतर पाले गये हैं। न्यूयार्क के ७७ नं० वाले बेटलियन कबूतरोंके बड़े अनुग्रहीत हैं। क्योंकि एक कबूतरके छावनीतक खबर पहुंचानेपर ही उनको सहायता मिली और उनकी जानें बची। इसी कबूतरने वार्थरकी लड़ाईमें १२ बार समाचार पहुंचाया परन्तु अन्तमें बैरीकी गोली इसकी टांगमें लग गई और टांग कट गई। परन्तु टूट जानेपर भी यह बहादुर छावनी तक पहुंच ही गया। और समाचार लोगोंको मिल गया। इस बटेलियनके लोग इस कबूतरको अपनी जानसे भी अधिक प्यार करने लगे और उसका बड़ा आदर करने लगे। एक दूसरे कबूतरकी बात है कि एक बमका टुकड़ा लग जानेसे आंख फूट जानेके बाद भी वह अपने अड्डेतक पहुंच ही गया।

शायद इन सब बातोंको देखते हुए यह कहना कि कबूतरोंमें बहादुरी नहीं होती बहुत कृतघ्नता होगी। लेकिन यह बात माननीं पड़ेगी कि कबूतर इतना जिद्दी होता होता है कि घायल होनेके बाद बहादुरीके बदले शायद जिद ही के कारण अपने अड्डेतक पहुंचता है। लेकिन चाहे जिद हो चाहे बहादुरी फौज उनके बिना अपने काम चलाने का इरादा नहीं रखती। फौजने तो अब इन्हें रातमें उड़ना भी सिखा लिया है। अड्डोंको अन्धेरेमें रखा जाता है। और कबूतर शामके बाद ही बाहर निकाले जाते हैं, अड्डेपर रोशनी जलादी जाती है। कबूतरोंको सबेरेसे कुछ खानेको नहीं दिया जाता। और छोड़नेपर वे सीधे अड्डेपर पहुंच जाते हैं जहां उनको खानेको मिलता है। इस तरह धीरे-धीरे वे रातमें उड़नेमें भी होशियार होते जा रहे हैं। जरमनीमें तो कबूतरोंको सिखानेके लिये एक विशेष कालिज खुला है। वहां इन कबूतरोंपर एक खास किसमकी जीन कसी जाती है जिसमें एक छोटा सा फोटोका कैमरा लगा रहता है। इस कैमरामें ऐसा कल लगा रहता है जिससे बार-बार फोटो उतरते रहते हैं। इस तरहसे कबूतर और भी उपयोगी हो जाता है। इस प्रकार कबूतर जो कि शान्ति की मूर्ति समझा जाता है लड़ाईके कामके लिये तैयार किया जा रहा है। यहां तक कि सरकारने यह भी सोचा है कि जितने कबूतरबाज हैं उन्हें अनिवार्य रजिस्टरी करानेका कानून बना दिया जाय जिससे लड़ाईके समय उनके भी कबूतर काममें लाये जा सकें।

लेकिन शान्तिमें भी कबूतरोंकी उपयोगिता बढ़ती जा रही है। समुद्री मछली मारनेवाले मल्लाह अपने साथ कबूतर ले जाते हैं जिन्हे वे विपत्ति पड़नेपर संदेशा बांध कर घर भेज देते हैं। जंगलके सरकारी चौकीदार आग लगनेपर इन्हींके द्वारा मदद मंगाते हैं और जिन उड़ाकोंके पास बेतारके तारका सामान तैयार नहीं रहता वे अपने साथ कबूतर रखते हैं कि कठिनाईके समयमें वे उनकेद्वारा सहायता मंगा सकें। ऐसे कबूतरोंके अड्डेमें एक बिजलीका खटका लगा रहता है जिसमें कबूतरोंके बैठते ही घंटी बजने लगती है। और लोगोंको पता चल जाता है कि कबूतर आया है।

कबूतरोंकी उपयोगिता और भी बढ़ जाय यदि लोग बाज़की सहायतासे शिकार करनेकी आदत छोड़ दें। और उन लोगोंमें भी ज़रा सी अक़्ल आ जाय जो बे मतलब ही कोई भी उड़ती चीज़पर बन्दूकका निशाना जरूर लगा देते हैं। कोई भी कबूतरोंकी बड़ी दौड़ ऐसी नहीं हुई है जिसमें एक दो कबूतर ऐसे गोलियोंसे घायल न हुए हों और इसी कारणसे ऐसी दौड़ोंमें बहुतसे कबूतरबाज़ अपने अच्छे कबूतरोंको नहीं भेजते। अमरीकामें अच्छे लौटू कबूतरोंके दाम ५०) से १००) तक मिल गये हैं। बाज-बाज कबूतरोंके दाम तो २०००) तक मिल गये हैं। कबूतरोंके सिखानेमें भी बहुत समय लगता है। इससे समझा जा सकता है कि कबूतर बाजोंको कितना क्रोध आता होगा जब उनका कोई अच्छा कबूतर गोली या बाजसे घायल हो जाता होगा। कबूतरके विषयपर जो मासिक पत्रिकायें निकल रहीं हैं उनमें बराबर चेष्टा की जा रही है कि लोग इस बातको समझ लें और कबूतरोंका शिकार करना छोड़ दें।

नीमका अत्यन्त सस्ता तेल

[श्री श्यामनारायण कपूर, बी० एस्-सी०]

हम गरीब भारतीयोंके लिए नीम वृक्ष एक ईश्वरीय देन है। नीम वृक्षका एक-एक अंग मनुष्यकी सेवामें अपने आपको उत्सर्ग कर देता है। फूल, पत्ती, लकड़ी, छाल, डालें, कोंपलें और बीज सभी किसी न किसी रूपमें हमारे काम आते हैं। नीमकी मुलायम और ताजी दातुनसे हम अपने दांत और मुंह साफ करते हैं। पत्तियां नानाप्रकारके रोगोंको दूर करती हैं। नीमके फूल पीनेसे हमारा रक्त शुद्ध होता है। फोड़ा फुन्सी निकलनेपर हम नीम की लकड़ी अथवा छाल घिसकर लगाते हैं। ताजी कोमल कोपलोंके व्यवहारसे शरीरके बहुतसे दूषित विकार शान्त होते हैं। प्रस्तुत लेखमें हम इन सब अंगोंका अलग-अलग विस्तृत वर्णन न करके केवल नीमके बीज अथवा निबौरियोंकी ही चर्चा की जावेगी।

युक्त प्रान्त और भारतवर्षके दूसरे भागोंमें नीमका पेड़ बहुतायतसे मिलता है। कुछ वर्ष पहिलेतक गांवोंमें नीमकी निबौरियोंका तेल निकालनेका अच्छा चलन था। अब भी बहुतसे गांवोंमें तेली लोग थोड़ा बहुत नीमका तेल तैयार करते हैं। परन्तु अब इसका व्यवहार कम पड़ता जा रहा है। नीमका तेल सस्ता होता था और गुणकारी भी। लोग इसे जलानेके काममें लाते थे। इससे फोड़े फुन्सियों आदिके लिए दवा भी बनती थी अब भी नीमका तेल कुछ औषधियां तैयार करनेके काममें आता है। "कलकत्ता केमिकल कम्पनी लिमिटेड" कलकत्ता इस तेलकी बनी हुई बहुत सी उपयोगी ओषधियां बेचती है। परन्तु गांवोंमें जहां कुछ बरस पहले नीमका तेल प्रचुर मात्रामें तैयार होता था अब इसके दर्शनतक दुर्लभ हैं। परन्तु यह एक ऐसा धन्धा है जो कौड़ियोंमें किया जा सकता है। नीमकी निबौली जमा करनेमें केवल मजूरी भरका खर्चा पड़ता है। गांवोंमें रहने वाले बेकार आदमी इसे अपने आप इकट्ठा करके तेलीसे तेल तैयार करा सकते हैं।

शहरोंके बड़े बड़े तेल-मिल आमतौर पर नीमका तेल बहुत कम तैयार करते हैं। नीमके तेलकी खपत अच्छी होनेपर भी निबौली जुटाना मुश्किल हो जाता है। फिर शहरोंमें निबौली जमा करना असम्भव जैसा होता है। मिल वालोंको अपनी निबौड़ीके लिये गांववालोंका मुंह जोहना पड़ता है। गांवोंमें निबौरी इकट्ठा कराकर उन्हें शहरतक मंगवानेमें मिलवालोंको निबौरी बहुत महंगी पड़ती है और ऐसी दशामें नीमके तेलको दूसरे तेलोंके मुकाबिले सस्ता नहीं बेच पाते। यदि इसे गांवोंमें तैयार किया जाय तो बहुत ही सस्ता तेल तैयार हो।

निबौरियां जमा करनेका मौसम आम तौरपर बरसात के पहिले होता है। बरसात शुरू होनेसे पहिले जून और जुलाईके महीनेमें निबौरियां नीमके पेड़ोंसे चूने लगती हैं। इस तरहसे गिरनेवाले फलोंकी तायदाद बहुत थोड़ी होती है। वर्षा आरम्भ होनेपर वर्षाके पहिले तीन चार दिनोंमें अधिकांश निबौरियां पेड़ोंसे गिर पड़ती हैं। यह ऐसा मौसम होता है जब अधिकांश ग्रामीण खेती किसानीमें व्यस्त होते हैं। फलस्वरूप निबौरी जमा करनेमें जितनी जल्दी की जानी चाहिए उतनी जल्दी हो नहीं पाती। जहां निबौरियां इकट्ठी की जाती हैं, वहां भी वे अक्सर जमीनपर पड़ी-पड़ी सड़ा करती हैं और गांववाले फुर्सत मिलनेपर उन्हें इकट्ठा कर लेते हैं। परन्तु अधिकांश गांवोंमें तो ये सड़कर ही नष्ट हो जाती हैं और इनसे कोई काम नहीं लिया जाता बरसातके दिनोंमें निबौरियोंका जमीनपर पड़े पड़े सड़ना उनके लिए बहुत हानिकारक होता है। निबौरियोंके सड़नेके साथ ही उनका तेल भी खराब हो जाता है।

निबौरियोंके ऊपर एक पतला छिलका होता है। इस पतले छिलकेके भीतर गूदा रहता है और उसके भीतर गुठली (चियां) होती है। गूदा मीठा होता है और उसमें क्लोरोफिल होता है। ताजा फल हरा होता है। पका और चुआ हुआ फल पीला होता है। पकी निबौलीके भीतरका गूदा सड़ जाता है। यह सड़ा हुआ गूदा भीतर की गुठलीको भी ख़राब कर देता है। तेल गुठलीमेंसे निकाला जाता है। गुठलीके ऊपर रहनेवाले सड़े हुए

गूदेकी खराब रंगत तेलमें भी आ जाती है और तेलका रंग खराब होनेके साथ ही साथ उसमें सड़ाइन्ध भी पैदा हो जाती है। इस तरह जिन निबौरियोंको बटोरनेमें जितनी ज्यादा देर की जाती है उनका तेल भी उतना ही ज्यादा ख़राब हो जाता है।

आमतौर पर बाज़ारमें जो नीमका तेल मिलता है उसका रंग मटमैला और काला-सा होता है। इस तेलमें स्वतंत्र मज्जिकाम्ल अथवा खटास प्रचुर मात्रामें होती हैं। स्वतन्त्र मज्जिकाम्लोंकी मात्रा २५ से ४० प्रतिशततक पहुँच जाती है। स्वतंत्र मज्जिकाम्लोंका इतनी प्रचुर मात्रामें होना तेलके लिए एक बड़ा भारी दोष है इस दोषकी उत्पत्तिका कारण निबौरियोंका सड़ा होना है। गांवोंमें निबौरियां इकट्ठा करके, बड़े-बड़े ढेर बनाकर छोड़ दिया जाता है। वे पड़ी-पड़ी सड़ा करती हैं। सड़ जानेके बाद उनका ऊपरका छिलका और भीतरका गूदा अलग हो जाता है और गुठली रह जाती है। इस गुठली से तेल निकालते हैं। निबौरियोंको इकट्ठा करनेमें यदि सावधानीसे काम लिया जाय तो उन्हें सड़नेसे बचाया जा सकता है।

कुछ वर्ष पूर्व कानपुरकी टेकनोलाजिकल इंस्टिट्यूटमें नीमके तेलको व्यवसायिक रूपसे तैयार करनेके लिए प्रान्तीय सरकारके तेल विशेषज्ञ श्री० जे० ए० हेयर-ड्यूककी अध्यक्षतामें कुछ कार्य हुआ था। उस अवसरपर निबौरीकी विधिवत परीक्षा की गयी थी। इस परीक्षासे मालूम हुआ कि ताजी निबौरीमें विभिन्न पदार्थ निम्नलिखित मात्रामें पाये जाते हैं—

पानी	६७·४६	प्रतिशत
सूखा गूदा	१४·४७	,,
सूखा चूरा (खली)	६·२५	
सूखा छिलका	८·६३	,,
तेल	३·०९	,,

पानीका इतनी अधिक मात्रामें उपस्थित होना, निबौरीको सड़ानेके लिए पर्याप्त है। ऐसी स्थितिमें यथा सम्भव निबौरीको इकट्ठा करनेके बाद जल्दसे जल्द सुखा लेना बहुत जरूरी है। निबौरियोंके बड़े-बड़े ढेर बनानेके बजाय उन्हें फैलाकर रखना भी लाभदायक होता है। बड़े ढेरमें पड़े रहनेसे सड़ाइँध पैदा होनेमें सहायता मिलती है। अच्छा तो यह होगा कि गुठली या गूदीको जल्दसे-जल्द छिलकों और गूदे वगैरहसे अलग करके सुखा लिया जावे। इस तरहसे इकट्ठीकी गई गूदीका जो तेल निकलेगा उसमें स्वतंत्र मज्जिकाम्लोंकी मात्रा बहुत थोड़ी होगी। इसके रंग भी खराब न होगा और सड़ाइँध पैदा होनेकी वजहसे तेलमें जो दुर्गन्ध आती है वह भी न आवेगी।

इस सड़ाइंधके अलावा भी नीमके तेलमें एक स्वाभाविक बदबू आती है। नीम और उसके तेल दोनोंमें गन्धकका अंश होता है। ख्याल किया जाता है कि नीमके तेलकी बदबू गन्धकके किसी उड़नेवाले यौगिकसे पैदा होती है। तेल दवाके काममें आता है। चर्म रोगोंपर तो नीमका तेल और उससे बना हुआ साबुन और मलहम बहुतही अकसीर साबित होते हैं। नीमके तेलके इस विशेष गुणका कारण भी तेलमें गन्धककी उपस्थिति है। और शायद इसी कारण उसका स्वाद भी बहुत कडुवा होता है।

नीमके तेलका साबुन भी बनता है। साबुनका रंग भी तेलके रंगकी तरह मटमैला और भद्दा सा होता है। अगर साफ तेलका साबुन बनाया जाय तो उसका रंग इतना ज्यादा खराब नहीं होता और वह पीलापन लिए हुए हरे रंगका तैयार होता है। साबुन कड़ा होता है और उसमें झाग भी अच्छे आते हैं। इस साबुनमें भी तेलकी गन्ध और उसके अधिकांश गुण मौजूद रहते हैं। इस गन्धके अलावा साबुन व्यवहारमें महुएके तेलके साबुनसे बहुत कुछ मिलता जुलता है। तेलके समान साबुनमें भी कृमिनाशक एवं चर्म रोगोंको शान्त करनेवाले गुण होते हैं। दाद, खाज, खुजली, फोड़ा फुन्सी आदिमें नीमका साबुन लाभदायक सिद्ध होता है। परन्तु इस काममें बहुत थोड़ा साबुन खर्च हो सकता है। यदि प्रचुर मात्रामें नीमका साबुन तैयार किया जाय तो कृषि और बागबानीमें भी उसका अच्छा उपयोग हो सकता है। साबुनको पानीमें घोलकर बागोंमें फलोंके वृक्षोंपर छिड़कनेके काममें लाया जा सकता है। चायके बागोंमें भी इसका अच्छा उपयोग हो सकता है। साबुनका यह घोल और दूसरे पौधोंपर भी छिड़कनेके काममें आ सकता है। गांवोंमें नीमका तेल

सस्ता पड़ेगा और ऐसी हालतमें कपड़े धोनेके लिए भी यह साबुन महँगा न पड़ेगा।

सूखी हुई निबौरियोंमें आम तौरपर २५ फीसदी तक तेल निकलता है। निबौरियोंको इकट्ठा करनेमें गाँवमें कोई विशेष खर्चा न पड़ेगा। सिर्फ मेहनतका खर्च है। थोड़ेसे परिश्रमसे काफी निबौरियाँ इकट्ठी की जा सकती है। निबौरियोंके समुचित मात्रामें न मिलनेकी वजहसे तेलियोंने नीमका तेल तैयार करना भी छोड़ रक्खा है। नीमके तेलकी तैयारीमें एक कठिनाई और पड़ती है। जिस कोल्हूमें एक या दो घानी नीमकी पेर ली जाती हैं वह फिर शीघ्रही दूसरे तेलकी घानी लायक नहीं रह जाता। नीमके तेल की दुर्गन्ध कोल्हूमें भी व्याप्त हो जाती है। इसीलिए तेली लोग महज एक या दो घानीके लिए नीमका तेल तैयार करनेको राजी नहीं होते परन्तु यदि उन्हें काफी काम मिले तो कोई आपत्ति न होगी। तेली खुद भी निबौरियाँ इकट्ठा करके उनका तेल निकाल सकते हैं। साबुन और औषधि आदिके अतिरिक्त नीमका तेल, दूसरे तेलोंकी अपेक्षा, जलानेमें भी अच्छा होता है। कहा जाता है कि दूसरे तेलोंके मुकाबिले इसकी रोशनी ठण्डी और लाभदायक होती है। यह तो कमसे कम निश्चित सी बात है कि मिट्टीके तेलके मुकाबिले यह तेल कहीं अधिक अच्छा है। इसमें लागत भी बहुत थोड़ी लगेगी।

तेलके अलावा नीमकी खली भी बहुत कामकी चीज है। खली खेतोंके काममें बहुत आती है। इनके व्यवहारसे खेतोंमें दीमक आदि नहीं लगती। बीज भी नहीं सड़ते। गन्ने और सिंघाड़ेके लिए तो नीमकी खली खास तौरपर उपयोगी मानी जाती है। इसके साथही नीमकी खली खादके काममें भी लायी जाती है।

तेल और खलीके अतिरिक्त नीमके तेलसे अलकोहल या शराब भी तैयार की जा सकती है। नीमके तेलको व्यावसायिक रूप देनेके लिए निंबौरीका यह अंश बहुतही महत्वपूर्ण है। पक्की निबौरी खानेमें मीठी होती है और उसमें शकरका अंश पाया जाता है। कानपुरकी टेकनोलाजिकल इंस्टिट्यूटके डा० एच० डी० सेनने इस सम्बन्धमें महत्वपूर्ण कार्य किया है। उनका कथन है कि पक्की निबौरीको शीघ्रतापूर्वक जमा करके उससे शकर अलग की जा सकती है। ताजी निबौरियोंको पानीमें भिगोकर मसलना चाहिए। इससे गुठली अलग हो जायगी और मीठा गूदा पानीमें रह जायगा। इस पानीको गूदेके साथ उबाल लिया जाय और बादमें छान लेना चाहिए। छने हुए गूदेको दो बार पानीमें डालकर उबालना चाहिए। इससे गूदेमें मौजूद समस्त शकर पानीमें घुल जाती है। शकरमें अधिकांश भाग ग्लूकोज (Glucose) का होता है। ऐसी हालतमें उसमें बहुत जल्द खमीर पैदा हो जाता है। वह अधिक देरतक शकरके रूपमें नहीं रहने पाता। अस्तु निबौरीकी शराब शीरे और महुएकी शराबहींकी तरह होती है। इसका स्वाद भी नीमका सा कड़ुवा नहीं होता। कभी कभी कड़ुवापन बना रहता है उसे शराब तैयार करते समय अण्डेकी सफेदी मिला देनेसे दूर किया जा सकता है।

परन्तु हम यहाँ इस विषयकी अधिक चर्चा न करके पाठकोंका ध्यान फिर नीमके तेलकी ओर आकर्षित करेंगे। ऊपर इस बातका जिकर किया जा चुका है कि नीमके तेलका रंग बहुतही मटमैला होता है। उसमें एक नागवार बास आती है और उसका स्वाद भी कड़ुवा होता है। तेलमें स्वतंत्र मज्जिकाम्लों या तेजाबकी मात्रा भी अधिक होती है। तेलको साफ कर लेनेपर वह साबुनके अलावा और दूसरे कामोंमें भी लाया जा सकता है। नीमके साफ तेलसे उच्च कोटिके नहानेके साबुन भी बनाये जा सकते हैं। कलकत्तेके कुछ कारखाने ऐसे साबुन बनाते भी हैं। इनमें "मार्गो सोप" (मार्गो अंग्रेजीमें नीमको कहते हैं) और नीम आलिव सोप' के नाम मुख्य हैं। साबुनके अतिरिक्त नीमके टुथपेस्ट आदि भी बनाये गए हैं।

पूरी औटी हुई रीतिसे साबुन तैयार करनेपर नीमकी बदबू बहुत कुछ दूर हो जाती है। अधऔटी रीति और उसी रीतिके साबुनोंमें तेलकी मूल बास पूर्ववत् बनी रहती है। इन दोनों रीतियोंके साबुनोंमें साबुन निर्माणके अवसरपर काममें लाये जानेवाले सभी पदार्थ तैयार साबुनमें मौजूद रहते हैं परन्तु पूरी औटी हुई रीतिके साबुनकी स्थिति सर्वथा भिन्न है। इस विधिमें साबुनको नमकसे फाड़ते हैं। इस क्रियासे तेल और साबुनका बहुतसा मैल और बदबूदार चीजोंका बहुतसा हिस्सा 'लाई' (Lye) खार मिले हुए पानीके साथ निकल जाता है, तेलकी

कड़ुवाहटका भी बहुतसा भाग खार मिले पानीके साथ निकल जाता है। इस तरहके साबुन आमतौर पर भाफसे बनते हैं। साबुनमें दो चार बार भाफ निकल जानेपर उसकी बदबू बहुत कुछ दूर हो जाती है और उसका रंग भी अच्छा हो जाता है। परन्तु फिर भी बास और रंग बिलकुल दूर नहीं होते। साधारणतया नीमके तेलसे ठण्डी अथवा अध-औटी रीतिसे साबुन बनाते समय एक बातका ध्यान रखना बहुत जरूरी है। नीमके तेलमें गन्धकका अंश होता है। गन्धक तांबे और लोहेके बर्त्तनोंको खराब कर देती है। ऐसी दशामें बिना साफ किये हुए नीमके तेलका साबुन तांबे या लोहेके बर्त्तनमें न बनाकर तामचीनीके बर्त्तनोंमें बनाना चाहिए।

नीमके तेलकी कड़ुवाहट गन्धकके तेजाबके व्यवहारसे बहुत कुछ दूर हो जाती है। कड़ुवाहटके साथ बदबूदार चीजें भी नष्ट हो जाती है। टेकनोलाजिकल इन्स्टिट्यूट के भूतपूर्व प्रिंसपल डा० ई० आर० वाटसन और रिसर्च केमिस्ट डा० एन० जी० चटर्जीने नीमका तेल साफ करनेके लिए नीचे लिखे हुए तरीके की सिफारिश की है—

तेलको धीरे धीरे गरम करके खूब अच्छी तरहसे चलाया जावे और उसमें एक या दो घन्टेके बीचमें १०० भाग ते २१।२ भाग खालिस गन्धक का तेज़ाब धीरे-धीरे मिलाया जावे। ऐसा करनेसे बर्त्तनकी तली उसके बग़लोंमें तथा चलानेवाली चीज़पर काला-काला तारकोल जैसा पदार्थ जम जाता है। तेज़ाब मिलानेके बाद तेलके बराबर खौलता हुआ पानी मिलाया जाय और खूब अच्छी तरह चलाकर उसे थिरनेको छोड़ दिया जावे। पानीको निथार कर फेंक दिया जावे और तेलको छान लिया जावे। इस विधिसे तेलका बुरा रंग और बदबू बहुत कुछ दूर हो जाती है। परन्तु तेज़ाब बदबू दूर करनेमें ज़्यादा सफल होता है। कभी कभी तेज़ाबके व्यवहारसे रंगत और ज्यादा ख़राब हो जाती है। सोडा कास्टिकके व्यवहारसे रंगतमें भी अच्छा सुधार होता है और तेलमें मौजूद स्वतंत्र मज्जिकाम्ल भी नष्ट हो जाते हैं। परन्तु अकेले सोडा कास्टिकसे तेलकी कड़वाहट दूर नहीं होती। वास्तवमें कड़वाहट और रंगत दोनोंको दूर करनेके लिए तेज़ाब और सोडा कास्टिक दोनों का व्यवहार आवश्यक है।

यदि पहले गन्धकके तेज़ाबसे कड़ुवाहट और बास दूर करली जावे और उसके बाद कास्टिक सोडेका प्रयोग किया जावे तो बहुत हलके रंगका तेल तैयार होता है जिसमें न कड़वाहट होती है और न बदबू। स्वतन्त्र मज्जिकाम्ल भी नष्ट हो जाता है। कास्टिक सोडाको पांच गुने पानीमें घोल कर मिलाना लाभदायक होता है। इसके व्यवहारसे स्वतंत्र मज्जिकाम्ल सोडासे मिलकर साबुन बनाते हैं। यह साबून नीचे बैठ जाता है। थोड़ी देरतक थिरने देनेके बाद तेल आसानीसे छन जाता है। नीचे बैठनेवाला साबुन, साबुन बनानेके काममें लाया जा सकता है। साफ तेलसे बहुत बढ़िया साबुन तैयार होता है।

हमारे प्राचीन इतिहासकी खोज

[श्री जयशंकर प्रसादजी]

१—असुर दास आदिक विभेद

उस प्राचीन वैदिक काल अथवा वर्तमान संसारके प्राग् ऐतिहासिक कालमें आर्यावर्त्तके आर्योंमें आकाशी देवताओं की उपासना प्रचलित थी। संभव है वीरपूजा भी उस उपासनाका प्रधान अङ्ग रही हो। भौतिक शक्तियोंमें उनकी प्रबल उपास्य बुद्धि थी और इन सब देवताओंके राजा अथवा एकाधिपति वरुण माने जाते थे। वरुणके राजत्वका वैदिक मन्त्रोंमें कई बार उल्लेख मिलता है। वरुण की उपासना आकाशकी सर्वप्रधान शक्तिके रूपमें चन्द्रमाकी उपासनासे संबद्ध थी। चन्द्रमामें सुधा, औषधियोंकी जीवन-सत्ता, माननेवाले लोग थे। असुर शब्द की व्युत्पत्ति (असून् प्राणान् रक्षति) भी इसी का द्योतक है। क्योंकि वेदोंमें वरुण प्रायः असुर-उपाधिसे सम्बोधित किए गए हैं। इस प्रकार असुरोपासक जन प्राणरक्षक

आकाशस्थ वरुणकी केवल प्रधानता मानते थे। उस प्राचीन कालमें जब विचार-धाराका आकस्मिक परिवर्तन हुआ और ज्ञानकी विभिन्नतासे सामाजिक और धार्मिक संघर्ष चला, तब उन अग्रजन्माओंमें दो प्रधान भेद हुए। एक प्राचीन वरुणके अनुयायी असुर और दूसरे इन्द्रके अनुयायी सुर। इन्द्र के नेतृत्वमें देवगण और त्वष्टाके नेतृत्वमें असुर लोग रहने लगे। इन्हीं त्वष्टा अर्थात् जरथुष्ट्र जरत्वष्ट्रिको प्राचीन अहुर्मज़्द (Ahurmazd) असुरके उपासक पारसी आर्यों ने अपना आचार्य माना*।

ऋग्वेदमें त्वष्टा और इन्द्रके संघर्षका स्पष्ट विवरण है, जिसके मूलमें एक क्षुद्र घटना थी। इस प्रकार प्राचीन आर्योंमें ही इन अग्रजन्माओंमें पारस्परिक युद्ध होकर उनके दो विभाग हो गए और सरस्वती-तटपर वृत्र असुर के मारे जानेसे असुरोपासक आर्य धीरे धीरे पश्चिम ईरान की ओर मीडियातक हटनेको बाध्य हुए। ऋग्वेद (२-११-१९) में त्वाष्ट्र दास कहा गया है। यही त्वाष्ट्र वृत्रासुर था, जिसका बध इन्द्रने किया। यों तो इसका नाम वृत्र था पर कहीं कहीं अहि शब्दसे भी यह सम्बोधित किया गया है। "तं दनुश्च दनायुश्च मातेव पितेव च परिजगृहुस्तस्माद् दानव इत्याहुः"—(शतपथ, १-५-२) अर्थात् दनु और दनायुने माता पिताके समान उसको अपनाया इसलिये उसे दानव भी कहते हैं। दास, असुर और दानव ये सभी विरोधसूचक शब्द हैं।

ऋग्वेद (मंडल १-३२) के—"इन्द्रस्यनु वीर्याणि प्रवोचं" इत्यादि मंत्रोंमें इन्द्रके वीर्य और पौरुषका वर्णन है। उसमें वृत्रको मारकर सप्तसिंधुके जलोंको मुक्त करने की भी चर्चा है जो उसी सूक्तके १२ वें मंत्र "अजयोगाः अजयः शूर सोममवासृजः सर्तवे सप्तसिंधून्"—में उल्लिखित है। जिस प्रकार त्वाष्ट्र असुर वीर था, उसी प्रकार ऐतिहासिकोंके मतसे इन्द्रका भी एक महावीर होना असंगत नहीं जान पड़ता। महावीर कहकर इन्द्र कई जगह सम्बोधित किए गए हैं। ऋग्वेद मंडल १०, सूक्त १२० में इन्द्रकी उत्पत्तिके संबंधमें लिखा है—"तदिदास भुवनेषु ज्येष्ठं यतो जज्ञ उग्रस्त्वेष नृम्णः।" यह नृम्ण (पौरुषकी मूर्ति अथवा मनुष्योंसे संपर्क रखनेवाला) भुवनमें ज्येष्ठ उच्च स्थान अर्थात् मेरु प्रदेश* में उत्पन्न हुआ। इन्द्रका सम्बन्ध मनुष्योंसे था—"इन्द्र क्षितीनामसि मानुषीणां विशां (३-३४)।" दिवोदास इत्यादि आर्योंके युद्धमें इन्होंने बहुत सहायता दी थी। यह सम्राट् भी हुए—"आवदिंद्रं यमुना तृत्सवश्च"—(७-१८-१९)का अर्थ करते हुए सामश्रमीने लिखा है—यः इन्द्रः सम्राट्...... इत्यादि। पिछले कालमें इसी कारण सम्राटोंका ऐन्द्र महाभिषेक होने लगा और इन्द्र एक पदवी बन गयी।

त्वष्टाके पुत्र विश्वरूपको भी सोमके लिये इन्द्रने मारा था। गाथा अहुनावैती और स्पेंतमैन्युमें सोमकी निंदाका कारण त्वष्टाके पुत्रका बध हो सकता है। दासने इस ऐतिहासिक घटनाको माईथालोजीसे मिला दिया है। वे यह तो मानते हैं कि पुत्रवधसे त्वष्टा और उनके अनुयायियोंने इन्द्रका विरोध किया, परन्तु साथही वे कहते हैं कि इन्द्रकी पूजा भी बन्द करा दी गयी। पर मैं समझता हूँ कि तबतक इन्द्रकी पूजा का आरम्भ ही नहीं हुआ था। यही घटना तो इन्द्रको विशेषता देती है, जो पीछे जाकर उनकी पूजाका कारण बन गयी है। वरुण भी तो त्वष्टाके अनुयायियोंमें एकही प्रकारसे पूजित नहीं हुए। भिन्न-भिन्न देशोंमें उनकी पूजाका प्रकार बदलता रहा।

२—देवासुर संग्राम

इसी त्वष्टा और इंद्रके विरोधने धीरे-धीरे देवासुर-संग्रामका रूप धारण कर लिया नहीं तो पहले इनमें मेल ही था। रामायणमें तो यहाँतक लिखा है—

असुरास्तेन दैतेयाः सुरास्तेनादितेः सुताः।
हृष्टाः प्रमुदिता आसन् वारुणीग्रहणात्सुराः॥ (वाल्मीकि)

शतपथके अनुसार देवता और असुर दोनोंही प्रजापति की संतान थे। किन्तु यह सोम-सम्बन्धी झगड़ा बहुत बढ़ा। त्वष्टाकी उस समय आर्योंमें विशेष प्रतिपत्ति थी।

* One of them, Tsartvastra, a son of the second wife, subsequently became head of the priestly class (PP. 15 and 16. Zoroaster by Bernard H. Springell.)

* पृष्ठ १७८ का फुटनोट देखिए।

परन्तु इन्द्र अधिक बलशाली थे। इस झगड़ेमें एक रहस्य और भी था। इन्द्रके कुछ नवीन धार्मिक विचार थे। सम्भवतः वे सृष्टिके प्रथम आत्मवादी थे। उपनिषदोंकी इन्द्र-विरोचन-कथामें इसका दार्शनिक रूप मिलता है, परन्तु ऋग्वेदमें तो १०—११९) आत्मस्तुति-परक एक सूक्तही इन्द्रका है। यद्यपि लोगोंने उसे भ्रमसे सोम पिये हुए इन्द्रकी बहक मान ली है, परन्तु—"अहमस्मि महामहोऽभिनभ्यमुदीषितः"—इत्यादि प्रयोगोंको मैं तो ठीक वैसेही समझता हूँ जैसा पिछले कालमें श्रीकृष्णकी आत्मविभूतिका वर्णन गीतामें है। क्योंकि, ऋग्वेद १०-४८ का सूक्त भी इसी भावनासे ओतप्रोत है। देखिए—"अहं भुवं वसुनः पूर्व्यस्पतिरहं धनानि सं जयामि शश्वतः। मां हवंते पितरं न जंतवोऽहं दाशुषे विभजामि भोजनम्।" इसके ऋषिभी स्वयं इन्द्र हैं।

वरुण भी देव ! सो भी कैसे ? आकाशस्थ ! संसारसे बहुत ऊँचे। एक स्वतन्त्र महत्तासे इस आत्मवादका संघर्ष होना अनिवार्य था। ऐसे आत्मवादी प्रत्येक कालके शरियत माननेवालोंके कोपभाजन और नास्तिक बने हैं। त्वष्टा (Zarthustra) ने वाह्लीकके पास अपने प्राचीन धर्मका दृढ़ दुर्ग बनाया और धर्मका संस्कार कर असुर-उपासना प्रचलित की।

"वरुत्रीं त्वष्टुर्वरुणस्य नाभिमविं जज्ञानां रजसः परस्तात्। महीं साहस्रीमसुरस्य मायामग्ने माहिंसीः परमे व्योमन्॥"

—यजुर्वेद, १३-४४।

इसमें त्वष्टा और वरुणका सम्बन्ध और उनकी साहस्री माया का स्पष्ट उल्लेख है। इस सम्बन्धमें ऋग्वेदके प्रथम मंडल के स्वराज्यसूक्त (८०) का यह मन्त्र भी देखि —

"अभिष्टनेते अद्रिवो यत्स्था जगच्च रेजते
त्वष्टा चित्तव मन्यव इन्द्रवेविज्यतेभियार्चन्ननु स्वराज्यम्।"—१४
"नहि नु यादधीमसींद्रं को वीर्या परः। तस्मिन्नृम्णमुतक्रतुं देवा ओजांसि संदधुरर्चन्ननु स्वराज्यम्-१५।"

मन्त्र-संख्या १४में साम्राज्य या स्वराज्य स्थापन करनेवाले इन्द्रके भयसे, त्वष्टाको, काँपते हुए लिखा है। और १५ में देवों का, इन्द्रमें पूर्ण मनुष्यता (नृम्ण) और ओजके स्थापनकी घोषणा है।

आर्य्यों की वाणिज्य करनेवाली जातिके पणि लोग उस संघर्षमें असुरोंसे मिल गये थे। यही लोग संभवतः प्राग् ऐतिहासिक कालके फिनीशियन लोगोंके पूर्वज थे। ऋग्वेद मंडल १०-१०८ के सूक्तमें उनका उल्लेख है। इसी संघर्षके कारण आज भी जरत्वष्टके अनुयायी धर्म्ममें दीक्षित होते हुए प्रतिज्ञा करते हैं—"हम देवोंको भगाते हैं और अपने को जरथुस्त्रियन् देवविरोधी स्वीकार करते हैं।"*

इस प्रकार प्राचीन कालके पूज्यमान् असुर पिछले कालमें वेदोंमें विरोधी माने गये। और, देव लोग ईरानी आर्य्यों के यहाँ शत्रु समझे गये। आज तक ईरानी संस्कृतिमें देवजादा या कालादेव —सफेददेव उसी ध्वनिका द्योतक है। एवं अवेस्ताके अनुसार इन्द्र शौर्व (शर्व ?) तथा नासत्य दुष्टात्माओंमें गिने जाते हैं। (Haug) 'हाग'का भी विचार था कि अहुरमज्दका धर्म, प्राचीन बहुदेव-वादमूलक वैदिक विचारोंसे एक धार्मिक विद्रोहरूप था। यद्यपि ऋग्वेदमें मन्त्रोंके संकलनसे यह सूचित होता है कि उस कालमें वैदिक धर्म, समन्वयवादी हो गया था उसमें सब प्रकारकी भावनाओंके मन्त्र मिलते हैं। फिर भी ईरानी आर्य्योंने उसी धर्मके एक प्राचीन समुदायको विकसित कर स्वतन्त्र उपासना का प्रचार किया, जिसमें असुर वरुणकी प्रधानता थी और सोमपान इत्यादिके सम्बन्धमें कुछ नये सुधार किये गये थे। वैदिक आर्य्योंमें इस तरह दो परस्पर-विरोधी सम्प्रदाय बन गये। और इसके प्रमाण दोनोंके धर्मग्रन्थोंमें मिलते हैं।

यह ईरानी धर्म, वरुणकी प्रधानताके कारण, एकेश्वरवादी होनेपर भी द्वैत अथवा द्वंद्व का माननेवाला था।

* I drive away the Daevas. I profess myself a Zarathustrian an expeller of the Daevas. a follower of the teachings of Ahura, a hymn-singer. a praiser of Amshaspands.—(P. 55. Zoroaster.)

अहुर—सब मलिनताओंसे परे पवित्रात्मा, और अहरिमान—उसका प्रतिद्वंद्वी दुष्टात्मा । इस प्रकार संसारके भले-बुरे काम बांट दिये गये । यही सर्पाकृति अहरिमान पिछले कालमें अन्य धर्मोंके शैतानका रूप धारण करता है, जो स्वर्ग नष्ट करनेके लिये उद्यत था । संभवतः इस स्वर्गनाशका सम्बन्ध अवेस्ता-वर्णित जल-प्रलयसे है ।

एक प्रसिद्ध ग्रन्थ (Conflict between Religion and Science) में लिखा है कि इस द्वंद्वका समाचार यहूदियोंने पहले-पहल बैबिलोनियामें, जहाँ वे बंदी थे, ७ वीं—८ वीं शताब्दी ई० पूर्वमें सुना । प्राचीन बैबिलोनिया, असीरिया और मीडियाके आर्योंकी, अहुर वा असुरकी उपासनामें साम्य देखकर, विशेषकर यहूदियोंके मुखसे बैबिलोनिया द्वंद्वकी गाथा सुननेके आधारपर, यहूदियोंको धर्मपुस्तकको सीमाका पत्थर समझनेवाली भूलसे यह कहा जाता है कि अपने ध्वंसावशेषोंके द्वारा अपनी प्राचीनताका प्रमाण देनेवाले सुमेरिया देशसे ही यह धर्म-संस्कार फैला है* ।

३. पारसी धर्म

फिर आगे चलकर पृष्ठ ३३८में लिखा है कि यह तो हो सकता है कि असुर उपासक संप्रदायोंके विकासमें उन्नत विचारवाले बैबिलोनियाके धर्माचार्योंकी छाप हो और फारसका मित्र धर्म भी उसी प्राचीन संस्कृतिवाले देशके संदेशवाहकोंके प्रचारका परिणाम हो × ।

प्राचीन शिनीर या सुमीरको वर्तमान सभ्यताका जनक माननेके लिये इस प्रकार बहुतसे विद्वानोंने अनुरोध किया है, उसके मूलमें यही सब कारण है । उनके मतसे असुरका धर्म पारसियोंने बैबिलोनियासे सीखा ।

Darmistiter जैसे अवस्ताके अनुवादकने तो यहाँतक कह डाला है—इस धर्मपर ग्रीक-यहूदी और कितने ही धर्मोंका प्रभाव है । और Pror. Geldner का मत है कि ये गाथाएँही सबसे पुरानी हैं जिन्हें कि 'जरथुस्त्र' का संदेश कहा जा सकता है । उनके सम्बन्धमें Darmistiter का मत है कि वे अधिकसे अधिक ईसवी पूर्व पहली शताब्दी का है † ।

किन्तु, पक्षपातपूर्ण संकीर्ण विचारमें कितना सत्य है, नीचेका अवतरण देखनेसे उसका पता लग जायगा, और यह जरदुश्तका धर्म वा संप्रदाय कितना प्राचीन है, यह भी आप जान सकेंगे । जैकब ब्रायंट नामी एक सुधी लेखक अपने 'ऐनालेसिस ऑफ ऐंसेंट माईथालोजी' में बहुतसे प्रामाणिक लेखकोंको उद्धृत करता है, जैसे—'प्लिनी दि एल्डर' प्लुटार्क, प्लेटो, यूडाक्सस इत्यादि; और, वह इस सिद्धान्तपर पहुँचता है कि 'जरथुस्त्र' नाम एक नहीं अनेक व्यक्तियोंका है ।

प्लिनी, मूसासे कई हजार वर्ष पहले जरथुस्त्रको मानता है । प्लुटार्क उसे ट्राय युद्धसे ५००० वर्ष पहलेका कहता है । 'यूडाक्सस' जरथुस्त्रको प्लेटोकी मृत्युसे ६००० वर्ष पूर्वका मानता है । प्लेटोकी मृत्यु ३४८ बी० सी० में हुई = ।"

* If the view is accepted that Ashur is Anshar, it can be urged that he was imported from Sumeria.—(P. 327, Myths of Babylonia)

× It may be, therefore, that the cult of Ashur was influenced in its development by the doctrines of advanced teachers from Babylonia, and that Persian Mithraism was also the product of missionary efforts extended from that great and ancient cultural area.—(P. 338, Myths of Babylonia).

† They can hardly be older than the first century before our era, or even before Philo of Alexandria; for the neo-Platonic ideas and beings are found in them justasin the Philonian stage.—(P. 1-XV, Vendidad)

= Jacob Bryant, a very careful writer, and as accurate as the knowledge of his day permitted him to be, in hiswell-known Analysis of Ancient Mythology

अब आप विचार सकते हैं कि जिस धर्मके आधार पर पवित्र विज्ञानके आकारका निर्माण प्लेटोने किया और ग्रीसके जिन प्राचीन दार्शनिकोंने जिस जरथुस्त्र धर्मसे बहुत कुछ लिया वह पारसी धर्म उनसे भी पीछेका है; ऐसा माननेमें पक्षपातहै या नहीं। ट्रायका युद्ध १३०० या १४०० ई० पूर्वका माना जाता है। उससेभी ६००० वर्ष पूर्व अर्थात् ७५०० ई० पूर्वमें जरत्वष्ट्र प्राचीन त्वष्टाका होना, ग्रीक दार्शनिकों और इतिहासकारेंने माना है। मेगास्थनीजके दिये हुए राजवंश-संख्या और समय-निरूपणसे भी मिलता है। हमारे पुराणोंकी तालिका जिसका समर्थन करती है, उस समयको क्यों न माना जाय? यदि त्वष्टा का धार्मिक संघर्ष इतना प्राचीन है तो यह बात स्वयं प्रमाणित हो जाती है कि प्राचीन सुमेरिया, इजिप्ट और बेबिलोनिया आदिमें प्राचीन असुर-उपासनाका धर्म इन्हीं मीडियामें विताड़ित आर्य्योंके धर्म्मका प्रतिबिम्ब है। इन सब देशोंमें मित्र-वरुणकी उपासना ईरानी धर्म-याजकोंके प्रचारके द्वारा प्रचलित हुई। और उनकी सभ्यतासे ये सब देश आलोकित हुए। अतः यह Indo-Iranian Period इससे सात आठ हजार वर्षोंसे भी प्राचीन है। इसी कालमें सुमेरियन सभ्यताका प्रभात होता है। अब आवश्यक है कि सुमेरिया इत्यादिके संस्कृत-केन्द्र होनेकी परीक्षा की जाय।

त्वष्ट्राके अनुयायी वृत्र या अहिका निवास ऋग्वेदमें निण्य लिखा है—

"वृत्रस्य निण्यं विचरंत्यापो दीर्घतम आशयदिंद्रशत्रुः"
—(१—३२—१०)

यह निण्य प्राचीन सुमेरियाका निन्न नामक स्थान है। अवेस्ताके अनुसार भी Azi Dahak अहि—Bawri बैबिलोनमें रहता था। सरमाके उपाख्यानसे भी असुर-निवासका रसाके उस पार होना प्रमाणित है। सुमेरु प्रदेशसे हटाये जाकर असुर संप्रदायवालोंने वरुणकी नगरी सुषा (Sussa), इलामकी राजधानीके पासहीके प्रदेशको फिरसे सुमेरु नाम दिया। और Land of Nairi ही आर्य साहित्यमें प्रसिद्ध मिश्र (असीरिया Assyria का ऊपरी प्रदेश) रहा हो तो क्या आश्चर्य है?

"असूर्य्या नाम ते लोका अन्धेन तमसा वृताः"—इत्यादि।

अन्ततः असीरियाकी धार्मिक सभ्यताके सम्बन्धमें Myth of Babylonia and Assyria के लेखक को लिखना पड़ा—"संभव है कि असीरियाके धार्मिक संस्कारोंका दूसरा उद्गम फारस हो, क्योंकि असीरियाके असुर भी ठीक फारसके अहुरमज्दके समान पंखदार चक्रमें राजाके ऊपर छाया किये हुए दिखाई देते हैं। पवित्र वृक्ष भी पारसियोंकी माइथालोजीके अनुसारही असीरियामें सम्मानित था। यहाँतक कि प्राचीन असीरियाके राजाओं के नाम भी सेमेटिक नहीं थे।"❀

published in 1807, in which he deals at some length with the subject of Zoroaster, quotes such fairly reliable writers as Pliny the Elder, Plutarch, Plato, and Eudoxus, amongst many others, and comes to the conclusion that the name of Zarthustra or Zerdusht as given by some, masthave been borne by more than one person, and this is possibly correct. It would also account for the tradition that Zarthustra was accorded immortality as a result of his intimate communications with the Creator, Ormuzd. Pliny places him many thousand years before Moses. Plutarch tells us that he lived 5000 years before the war of Troy. Eudoxus considers he lived 6000 years before the death of Plato, which occurred in 348 B. C. (P. 11, Zoroaster.)

❀ Another possible source of cultural infiuence is Persia. The supreme god Ahura-Mazda (Ormuzd) was, as has been indicated, represented, like Ashur, hovering over the King's head, enclosed in a winged disk or wheel, and the sacred tree figured in Persian mythology.—(P. 355. Myths of Babylonia,)

कैनाके फूल देखनेमें बड़े सुन्दर और चटक रंगोंके होते हैं। इसकी पत्तियाँभी हरी और भालेकी शक्लकी बड़ी-बड़ी देखनेमें सुहावनी लगती हैं। फूल पहले नारंगी गुलाबी और लाल रंगके होते हैं। और अक्सर उनमें चटक रंगोंकी चित्तियाँ पड़ी रहती हैं। कैनाका उगाना बहुत आसान है। लेकिन अगर इनकी काफी सेवा न की जायगी तो पत्तियाँही पत्तियाँ रह जायंगी और फूल न लगेंगे। या लगेंगे भी तो बहुत छोटे।

पचास साठ वर्ष पहले कैनाके पौधे पाँच फुट ६ फुट ऊँचे हुआ करते थे। और उनके फूल भी छोटे होते थे। लेकिन भिन्न भिन्न जातियोंके कैनोंके वर्णसंकरसे बौने कैने तैयार किये गये। जो तीन फुट चार फुट ऊँचे होते हैं और उनमें खूब बड़े फूल गुच्छेके गुच्छे लगते हैं। उनको अक्सर फ्रेन्च कैना कहते हैं। क्योंकि पहले-पहल यह फ्रांसमें पैदा किये गये थे। इनको क्रोज़ी कैना भी कहते हैं क्योंकि क्रोज़ी नामक एक व्यक्तिने ही पहले-पहल पैदा किया था। कुछ वर्षोंसे एक नयी जाति कैनाकी पैदा की गयी है। यह इटलीसे आयी है। उसको इटेलियन कैना कहते हैं। इसमें आरचिडके समान फूल लगते हैं इसलिये इन्हें आरचिड तुमा तूल वाले कैना कहते हैं।

कैनाके लिये खूब खाद और पानी चाहिये। मिट्टी भुरभुरी हो। दो पहरकी कड़ी धूपसे यदि यह बचाये जा सकें तो अच्छा है। यदि खूब घना फूलोंका ढेर तैयार करनेकी इच्छा हो तो कैनेको एक-एक या सवा सवा फुट पर रोपना चाहिये। लेकिन यदि यह इच्छा हो कि प्रत्येक पौधेसे अच्छेसे-अच्छा फूल पैदा किया जाय तो इनको तीन तीन या चार-चार फुटपर रोपना चाहिये। जब फूल मुर्झा जायँ तो उन्हें तुरन्त तोड़ देना चाहिये। नहीं तो बीज बनने लगेंगे और अधिकांश शक्ति बीजोंमें चली जायगी। इसलिये फूलोंका लगना बन्द हो जायगा। मुर्झाये फूलोंके तोड़ते रहनेसे यह भी लाभ होता है कि फूलोंका गुच्छा सदा हराभरा दिखलाई देता है।

कैनाके लगानेकी मामूली रीति यह है कि जड़को टुकड़े टुकड़े तोड़कर अलग-अलग रोप दिया जाय। जड़में बहुतसे शाख़ और पुत्तियाँ होती हैं जिनमें अंकुर होते हैं। इनको इस तरहसे अलग करना चाहिये कि प्रत्येक टुकड़ेमें तीन चार अंकुर रहें। अधिक आवश्यकता होनेपर एक-एक अंकुरको अलग-अलग बोया जा सकता है। लेकिन ऐसा करनेसे कई एक पौधे कमज़ोर ही पैदा होते हैं। इन पुत्तियोंको ज़मीनमें बो देना चाहिये। यदि पौधोंको खूब घना उगाना हो तो पुत्तियोंको बिना अलग किये ही बो देना चाहिये। जैसे केलेकी जड़से नये पौधे उग आते हैं उसी तरह कैनामें भी होता है। यदि यह पौधे जड़के साथ कहीं अलग रोप दिये जायँ तो नये पौधे तैयार हो सकते हैं। कैनेके पौधे बड़े ज़बरदस्त होते हैं। यदि उनको खाद पानी मिलता रहे तो इसी तरहसे नये पौधे उगते चले जायँगे। और यह बहुत दूर तक फैल जायंगे।

कैना किसी समय भी बोया जा सकता है। लेकिन बरसातके शुरू होनेके पहले या शुरू बरसातमें बोना अच्छा है। मिट्टीको या ज़मीनको कमसे कम दो फुट गहरा खोदना ज़रूर चाहिये। और उसमें खूब खाद मिला देना चाहिये। गोबर या लीद का खाद इसके लिये अच्छा है। खाद छोड़नेके बाद खूब पानीसे मिट्टीको तर करना चाहिये। और फिर दो चार दिन बाद खाद और मिट्टीको गोंड़कर एकमें अच्छी तरह मिला देना चाहिये। इसीमें

कैनेके नये पौधे या कैनेकी पुत्तियोंको बोना चाहिये। पौधों के निकलनेके बाद उनमें बराबर पानी देते रहना चाहिये। हज़ारेसे सींचनेसे काम न चलेगा। हर तीसरे चौथे दिन पानीसे तर कर देना चाहिये। जिन पौधोंके सब फूल निकल चुकें तो उनको जड़के पाससे काटकर फेंक देना चाहिये। क्योंकि एकही तनेमें एकसे अधिक बार फूल नहीं लगता और यदि यह काटकर फेंक न दिये जायेंगे तो इनकी पत्तियाँ ज़मीनसे खाद और पानी खींचती रहेंगी। कुछ लोगोंका मत है कि जड़ोंके बोनेके बाद उनमें तीन महीनेतक फूल नहीं लगने देना चाहिये। यदि उसमें फूल लगने लगें तो उसे मसल देना चाहिये। ऐसा करनेसे पीछे जो फूल लगते हैं वह अधिक बड़े होते हैं और बहुत दिनों तक फूल लगते रहते हैं। नये पौधे इतने निकलते रहते हैं कि यदि ख्याल न रखा जाय तो वे ऐक दूसरेका गला घोंट देंगे और अच्छे फूल न लगेगें इसलिये बराबर नये पौधोंको ज़रूरतसे ज्यादा जितने नये पौधे निकलें उनको उखाड़ते रहना चाहिये। कभी भी पौधे फुट सवा फुटसे अधिक नज़दीक न होने पायें।

क्यारियोंमें घास वग़ैरा न लगने पाये इसलिये बराबर निराई करनी चाहिये। खुर्पीसे मिट्टीकी ऊपरी सतहको अकसर पोली करनी चाहिये। सालमें दो या तीन बार क्यारियोंमें खाद छोड़ना ज़रूरी है। नहीं तो बराबर अच्छे फूल न निकल सकेंगे। कभी-कभी पानीमें गोबरको सड़ाकर तरल खाद देना भी अच्छा है। कैनेकी नयी जातियां बीजसे पैदाकी जाती हैं। बीज बहुत देरमें उगते हैं और कभी-कभी नहीं भी उगते लेकिन अगर बोनेके पहले इन्हें तीन चार दिन तक पानीमें रखकर फुला लिया जाय या उनके छिलकेको रेतकर पतला कर दिया जाय तो यह आसानीसे उगते हैं। पहलेही सालमें यह पौधे फूल देने लगते हैं।

कैनाके फूल बड़े नाज़ुक होते हैं और इसलिये काटकर गुलदस्तेमें लगानेके लायक़ नहीं होते। कैनेके पौधोंको एक-एक दो-दो करके अलग-अलग रोपनेमें भी कोई विशेष सौंदर्य नहीं है। इनकी क्यारीकी-क्यारी लगानी चाहिये। तब वे फूलेंगे तो दूरसे फूल-ही-फूल दिखलाई पड़ेंगे और क्यारी बहुत सुन्दर लगेगी।

कैनाकी कई सौ जातियां हैं और इनके अलग-अलग नाम रख दिये गये हैं परन्तु इन सबोंके वर्णनकी कोई आवश्यकता यहां नहीं जान पड़ती।

यदि कैना लगातार एकही क्यारीमें लगे रहेंगे तो कुछ दिनोंमें उनका फूल छोटा होने लगेगा। इसलिये बरसात शुरू होनेके करीब २० दिन पहले कैनाको कहीं सायेमें रख देना चाहिये। इस तरहसे पुत्तियोंको आराम करनेका मौक़ा मिल जाता है। जैसे आदमीको नींदकी ज़रूरत होती है इसी तरहसे इन पौधोंको भी हर साल आराम करनेकी ज़रूरत होती है। यदि पत्तियां सूख जायें तो कोई बात नहीं परन्तु पुत्तियां न सूखने पायें। तबसे क्यारीको गोड़कर मिट्टीको धूपमें सूखने देना चाहिये। फिर दस पन्द्रह दिन बाद इसमें खूब खाद छोड़कर पानी देना चाहिये। फिर दो-तीन दिन बाद अच्छी गोड़ाई करनी चाहिये। अब निकाले हुए पौधोंको फिरसे रोप देना चाहिये मगर इनमेंसे बहुत पुराने और बहुत नये पौधोंको निकालकर फेंक देना चाहिये। अगर इस तरहसे पौधोंकी सेवाकी जाय तो बरसोंतक कैने एकही क्यारीमें लगाये जा सकते हैं तो भी फूलोंकी नापमें कुछ अन्तर न आने पायेगा।

सौ कामकी एक चीज

सोया-बीन

ह कौनसी चीज़ है जो खानेमें भी है रंगमें भी है अख़बारमें भी है यहाँतक कि साबुन की तश्तरीमें भी है। इस पहेलीका उत्तर है 'सोया' सोया है तो बड़ी पुरानी चीज़ और अपने देश की ✻(?) चीज़ परन्तु अब वैज्ञानिकोंकी खोजोंसे इसके नये-नये उपयोग निकले हैं। शीघ्रही यह कृषि और उद्योग

✻ सोयाबीन या सेवदाना अरहरकी शकलका होता है, परन्तु उससे भिन्न है। रा० गौ०

विभागोंमें अन्य अनाजोंका राजा हो जायगा। इन दिनो भी सोयासे जितनी खानेकी और इस्तैमालकी चीज़ें बनती हैं उनकी संख्या आश्चर्यजनक है। बिरलाही कोई दूसरा पौधा होगा जिससे इतनी तरहकी चीज़ें तैयार की जा सकती हैं। अमरीकामें तो वहांकी सरकारने एक विशेष प्रयोगशाला खोल रखी है। और कई एक प्रसिद्ध वैज्ञानिकोंको नियुक्त किया है जिनका केवल यही काम है कि वह सोयाकी जांच किया करें और उसके प्रयोगकी नयी रीतियाँ निकाला करें। ऐसा एक लेखक पापूलर मेकेनिक्समें लिखता है।

सोया का पौधा एक झाड़ी है जिसमें रोयेंदार पत्तियाँ होती हैं, और खूब होती हैं। इसकी कई जातियां हैं और फलके दाने कई आकार और नापके होते हैं। रंग तो पीलेसे लेकर काला तक होता है। यह सेमकी जातिकी चीज़ है। चीन देशकी अति प्राचीन पुस्तकोंमें भी इस अनाजकी चर्चा पायी जाती है।

सोयाका पैदा करना बहुत आसान है। प्रायः यह सभी जगह पैदा किया जा सकता है। इसे न कीड़े खाते हैं न बीमारी होती है। और फ़सलोंकी अपेक्षा इसका उगाना आसान है। इसके प्रायः सभी भाग किसी-न-किसी काममें आते हैं। प्रायः सभी जमीनोंमें यह पैदा हो सकती है। लेकिन बलुही ज़मीनमें यह खूब पैदा होती है। मटरकी तरह सोयाको भी खाद बनानेका कारखाना समझना चाहिये। यह हवासे नोषजनको खींचकर उसे पौधोंके लायक़ क्षारमें परिवर्तित कर देता है। इस काममें वे ज़मीनमें पाये जानेवाले कीटाणु-बीजोंकी सहायता लेते हैं। इसलिये अगर सोयाको ऐसी ज़मीनमें बोया जाय जहाँ यह कीटाणु-बीज न रहें तो तगड़े पौधे न पैदा होंगे। इसलिये जैसे दही बनानेके लिये दूधमें जामन डालनेकी आवश्यकता पड़ती है उसी तरह कीटाणुरहित खेतोंमें उन खेतोंकी थोड़ी मिट्टी डाल देनेसे जिनमें सोया खूब उगता है। सारे खेतका खेत खूब उपजाऊ हो जाता है। अगर ऐसी मिट्टी न मिल सके तो सोयाके बीज बेचने वाले दुकानदारोंसे यह कीटाणु तरल घोलके रूपमें खरीदे भी जा सकते हैं। इसे थोड़ी-सी मिट्टीमें मिलाकर उसे खेतमें बखेर देनेसे खेत सोयाके लिये उपजाऊ हो जायगा। एक बार खेतके तैयार हो जाने पर फिर दूसरे साल इन सब बातोंकी ज़रूरत न रहेगी और उसमें हमेशा अच्छा सोया पैदा हो सकेगा। यदि सोयाको उखाड़ कर देखा जाय कि उनकी जड़में छोटी-छोटी गांठें पड़ गयी हैं या नहीं, तो पता चल जायगा कि सोयाको कीटाणुओंकी सहायता मिल रही है या नहीं। जड़ोंमें गांठें पड़ना कीटाणुओंकी सहायता मिलने का प्रमाण है।

सोया रबीकी फ़सल है

जानवरोंके खानेकी चरीसे लेकर मोटरकारोंके रंगतक सोयाका प्रयोग होता है। घास और भूसाकी अपेक्षा जानवरोंके लिये सोया अधिक पुष्टिकर है क्योंकि इसमें प्रोटीनका अंश अधिक रहता है। लेकिन प्रोटीनके अधिक रहनेके कारणही केवल सोया और सोयाकी पत्तियाँ खिलाकर कोई जानवर पाला नहीं जा सकता। इसे भूसेके साथ मिलाकर खिलाना चाहिये। अगर छांटकर सोयाके ऊपरका छिलका निकाल दिया जाय तो यह मनुष्योंके खानेके काममें भी आ सकता है। इसमें प्रोटीन अधिक श्वेतसार कम और विटेमिनकी मात्रा भी अधिक होती है। इसलिये मनुष्योंके भोजनार्थ यह बहुत उपयोगी पदार्थ है। सोयाकी तरकारी बन सकती है। ठीक उसी तरह जैसे मटर या सेम की। इसकी दालमोट बन सकती है। और कुछ लोग भूनकर इसे महुआकी तरह पीते हैं। हरे सोयेको हरे मटरकी तरह घुगनी बनाकर खा सकते हैं। कुछ लोग कच्चा सोयाभी खा सकते हैं, परन्तु इसमें एक प्रकारकी हीक आती है जिसे बहुतसे लोग ना पसन्द करते हैं। सोयाको पेल कर या घोलकोंमें घोलकर तेल निकाला जा सकता है। तेल निकालनेके बाद बची हुई खलीभी बड़े काम की चीज़ है।

या तो सोयाके समूचे दानोंको या सोयाकी खलीको पीसकर सोयाका आटा बनता है। इसकी रोटी रोगियों और बच्चोंको पथ्यकी तरह दी जाती हैं। इसमें दो हिस्सा गेहूँका आटा मिलाकर रोटी बनानेसे यह बहूमूत्रके रोगियों को देना लाभकर होता है, क्योंकि सोयाके आटेमें श्वेतसार की मात्रा कम होती है। सोयाके आटेमें विटेमिन 'बी' खूब होता है। और विटेमिन 'जी' भी काफ़ी होता है। और थोड़ा बहुत विटेमिन 'ए' भी होता है। यदि सोयाको

भिगोकर रख दिया जाय जिससे इसमें अँखुए निकलने लगें तो विटेमिन 'सी' भी उपस्थित रहेगा। सोया काफ़ी सस्ता बिकता है। भारतवर्षके शहरोंमें तीन चार आने सेर मिलता है, लेकिन गाँवमें यह ज्वार बाजरेके भाव मिल सकता है। सोयेका तेल कड़वे तेलकी तरह तरकारी आदि छौंकनेके काममें आ सकता है। पाश्चात्य देशोंमें लोग इसका चटनीका मसाला बनाते हैं जिसे तरकारी आदिपर छोड़कर खाते हैं। इसमें उबाला हुआ सोया, भूना हुआ गेहूं नमक और पानी पिसा रहता है। कुछ लोग आटेको पानीमें पतला घोलकर और उसमें ख़मीर उठाकर पीते हैं लेकिन ख़मीर ६ से लेकर १८ महीनों तकमें उठता है। विशेषज्ञोंका कहना है कि अगर सोयेको भिगोकर रख दिया जाय और जब उसमें अंकुर निकलने लगें तो उसे कच्चाही खाया जाय तो ज़्यादा फ़ायदा करेगा।

सोयेसे दूधभी बनता है जो देखनेमें और गुणमें भी गायके दूधकी तरह होता है। इसके बनानेके लिये सूखे सोयेको पानीमें कई घण्टेतक फुला लेना चाहिये। फिर उसे पीसकर आधे घण्टेतक पानीमें औटा लेना चाहिये। एक हिस्सा पिसा हुआ सोया और तीन हिस्सा पानी रहे। इसको छाननेसे दूध अलग हो जायगा। सोयेकी खलीसे भी इसी तरह दूध बनाया जा सकता है। और जो खली दूध निकालनेके बाद बचे वह जानवरोंको खानेके लिये दी जा सकती है। इस दूधमें भी खट्टी चीज़ें छोड़नेसे छेना अलग हो जाता है, जिसकी मिठाइयां बनायी जा सकती हैं।

उद्योगमें अधिकतर सोयेका तेलही काममें आता है। अलसीके तेलकी तरह हवा लगनेसे सोयेका तेलभी जम जाता है, परन्तु अलसीके तेल जितना जल्द यह नहीं जमता। रंग साज़ीमें यह अलसीके तेलके बदले अब अधिकाधिक बरता जा रहा है। अलसीके तेलमें मिला कर इसे आसानीसे काममें ला सकते हैं। उद्जन (हाइड्रोजन) के रासायनिक मिश्रणसे सोयेका तेल बदलकर ऐसा तेल हो जाता है जिससे बढ़िया साबुन बनाया जा सकता है। रासायनिक विधिसे स्वच्छ करनेपर सोयेके तेलसे बनस्पति घी भी बन सकता है। और अन्य रासायनिक क्रियाओंसे इसकी मोम बत्तियां, छापनेकी स्याही, मोमजामेके लिये रंग, वाटरप्रूफ़ कपड़े, और मशीनोंमें तेल देनेके लिये तेल बन सकते हैं। सोयेकी खलीसे पानीमें फेंटकर रंगनेवाले रंग, सरेस, काग़ज़ और कपड़ेपर देनेके लिये मांड़ी, सेलुलाइडकी तरहकी चीज़ें, विशेष प्रकारकी दवाएं और दूध बनानेके लिये बुकनी बन सकती है।

सोयाके लिये जो नयी प्रयोगशाला खुली है उसमें सोयेकी औद्योगिक उपयोगितापर विशेष ध्यान दिया जायगा। सबसे अधिक आशाएँ रंग, भोजन, मोमजामा, नक़ली रबड़, कीड़े मकौड़े मारनेके लिये ज़हर, नक़ली सेलुलाइड, गिलेसरीन और वार्निश आदिके बनानेकी की जाती हैं। इस बातकी भी जांच की जायगी कि क्यों किसी खेतमें सोयेमें १२ % ही तेल रहता है और क्यों किसी खेतके सोयेमें २६ % क्यों किसी खेतके सोयेमें २८ % प्रोटीन होता है और किसीमें ५४ % लैसीथिन नामक पदार्थ सोयाबीनके तेलसे निकलता है जिससे कई तरह की दवायें मिठाइयाँ और नक़ली मक्खन बनता है।

सोया है तो बहुत पुरानी चीज़ और हज़ारों वर्षसे इसकी खेती चली आ रही है, परन्तु ऐसा जान पड़ता है कि इसके उपयोग-मार्गका द्वार अभी खुला है। कृषिके विशेषज्ञोंका मत है कि सोयेकी खेती अब खूब बढ़ेगी। अमरीकामें तो अब जितनी इसकी मांग है उतनी इसकी उपज नहीं हो रही है। इससे किसानोंका फ़ायदा तो होगा ही जनताको भी लाभ रहेगा। क्योंकि उसे भोजनके लिये एक सस्ती और अति पुष्टकर वस्तु सहजहीमें मिल जायगी।

क्या दूध रक्तका छना हुआ रूपान्तर है ?

[श्रीकुँवर सुरेन्द्रसिंह, साहित्यभूषण, आई० डी० डी०]

विज्ञान भाग ४३, संख्या ६, माह सितम्बर सन् १९३६ ई० के अंक पृष्ठ २१९ में 'दूध में जलकी मिलावटकी सरल जाँच' शीर्षक लेखक श्रीठाकुर शिरोमणिसिंहजी चौहानने दूधमें पानीकी मिलावटकी जाँच करनेके लिये 'लैक्टोमीटर' तथा हार्टवेट क्रायस्कोपको ही तरजीह दी है। उसके विषयमें कुछ भी न कहूंगा क्योंकि वह दोनोंही तरीके ऐसे हैं जो कि सर्वसाधारण जनताके लिये सर्वथा असम्भवसे हैं। उनसे बढ़कर कहीं उत्तम विधि तो श्रीरामदासजी गौड़ ने अपनी सम्पादकीय टिप्पणीमें बतला दी है। यथार्थमें गौड़जी की निकाली हुई क्षीर-नीर-परीक्षक सरल "हंस-शीशी" कहीं हितकर और सस्ती है। ख़ैर इस विषय को तो अब हम यहीं छोड़ देते हैं।

लेखके लेखकने अपने उसी दूधमें जलकी मिलावटकी सरल जाँच नामक लेखमें आगे चलकर विज्ञानके २२२ वें पृष्ठके प्रथम कालमकी २७ वीं लाइनमें यह लिखा है कि चूँकि दूध रक्तसे बनता है, इत्यादि। इस पर मैं ठाकुर साहबसे कदापि किंचित मात्र सहमत नहीं हूं कि दूध रक्त से बनता है। सम्भवतः समस्त डेरी विशेषज्ञ इस बातको स्वीकार करनेमें असमर्थ होंगे कि ठाकुर साहब इस विषयमें यहाँपर ठीक हैं। विषयको यहाँ विस्तार पूर्वक न लिख कर केवल चन्द सुबूतही देकर समाप्त कर दूँगा। यदि कोई महाशय इस विषयपर लिखने बैठ जायें तो मेरे ख्यालमें तो एक पुस्तक ही बन जायेगी, इतना बड़ा मज़मून है!

जब मैं सन् १९२७–१९२९ ई०में डेरीका विद्यार्थी था और एग्रीकलचरल इन्स्टीट्यूट नैनीमें अध्ययन करता था तो इस विषयपर अनेकोंही बार अपने अमेरिकन प्रोफेसरोंसे वादाविवाद हुए। मगर यह कभी भी निश्चित न हुआ कि 'दूध खूनसे' बनता है। मैंने भी अन्यान्य पुस्तकोंमें काफ़ी तौरसे जाँच पड़ताल की कि आख़िरकार दूध खूनका बनता है अथवा नहीं।

दूधकी उत्पत्तिके विषयमें पाश्चात्य डेरी विशेषज्ञों तथा अन्य वैज्ञानिकोंकी सन् १८४० ई० तक यह धारणा थी कि 'दूध छना हुआ रक्त हैं। मगर वे लोग इस धारणा को धारण किये हुए हम लोगोंकी तरह हाथ-पर-हाथ रक्खे हुए चुपचाप बैठे न रहे, वरन्, बराबर खोजही करते रहे। उन्होंने दूध और खून दोनोंको वैज्ञानिक विधिसे पूरे-पूरे तौरसे परीक्षा की। परीक्षा-फल प्राप्त होते ही इस मतका खण्डन हो गया कि दूध छना हुआ रक्त है। दूध और खून दोनोंकी ही परीक्षाओंके पश्चात् जो-जो विभिन्नताएं देखनेमें आयी थीं हम पाठकोंके अवलोकनार्थ नीचे दे रहे हैं।

(१) दूधमें जो मांसजनक पदार्थ होते हैं वे रक्तमें उसी रूपमें नहीं पाये जाते।

(२) दूधमें स्निग्ध पदार्थोंका जो प्रमाण प्रतिशत होता है, रक्तमें किसीभी अवस्थामें नहीं होता।

(३) दूधमें शर्करा होती है किन्तु रक्तमें नहीं होती।‡

(४) भिन्न भिन्न चारोंको खिलानेसे जो भिन्नता रक्तमें होती है वैसी दूधमें नहीं होती, और

(५) रक्तमें नमकके क्षारका प्रमाण अधिक होता है किन्तु दूधमें (Potash) पोटाश के क्षार का।

अतः उपरोक्त इन पाँच बातोंसे तो यह सिद्ध हो ही गया है कि दूध रक्तका छना हुआ रूपान्तर नहीं है। अतः यह कहना ग़लत† है कि "दूध रक्तसे बनता है।" मगर हाँ, इतना अवश्य कहा जा सकता है कि रक्त और दूधमें अत्यन्त घनिष्ट सम्बन्ध है *

* देखिये Manual of Dairy-Farming, Part III, Chap. VII मेरा लेख 'दूध और उसके उपयोग' जो शीघ्रही छपेगा।

‡ रक्त में भी शर्करा होती है, परन्तु उसका परिमाण अत्यन्त कम होता है। सब रक्तों और दूधोंके अवयव समान नहीं होते। रा० गौ०

† "दूध रक्तसे बनता है" यह एक बात है, और "रक्तका छना हुआ रूपान्तर है" यह दूसरी बात है। लेखक ने दोनोंको मिला दिया है। साथ ही यह नहीं दिखलाया कि माताके शरीरमें दूध किस प्रकार बनता है। रा० गौ०

पीतल आदि मिलावटकी धातुएँ

मिलावटकी धातुका नाम और उपोग	मिलनेवाली जातुओंकी मात्रा भागोंमें					
	ताँबा	टीन	जस्ता	सीसा	अन्य धातु नाम	अन्य धातु भाग
तग़मे बनानेकी धातुएँ	९७	३				
,, ,, ,,	८९	८	३			
,, ,, ,,	८		३॥		निकल	३
सफेद तांबा	८				संखिया	½
इङ्गलैंड और फ्रांस देशके कांसेके सिक्के	९५	४	१			
फ्रांस देशके सोनेके सिक्के	१०				सोना	९०
फ्रांस देशके चांदीके सिक्के	१०				चांदी	९०
छर्रेकी धातु				९८	संखिया	२
गोलीकी धातु				५	अन्टीमनी	१
वायु भारमापक यंत्रके डायल	७०				संखिया	३०
स्टेन्डर्ड सोना	१				सोना	११
अमेरिकाका सोनेका सिक्का	७.५		चांदी २.५		सोना	९०
चांदीके तगमोंके लिये धातु	५				चांदी	९५
स्टेन्डर्ड चांदी	७॥				चांदी	९२॥
धातु जो गरम पानीमें गल जाय			१	१	विस्मय	१
धातु जो खौलते हुए पानीमें गल जाय		३		५	विस्मथ	८
जरमन सिलवर (ढलाईके लिये)	६०		२०	३	निकल	२०
जरमन सिलवर	६०		२५		निकल	१५
जरमन सिलवर	५०		२५		निकल	२५

पीतल आदि मिलावटकी धातुएँ

मिलावटकी धातुका नाम और उपयोग	मिलनेवाली धातुका नाम और मात्रा							
	नाम	भाग	नाम	भाग	नाम	भाग	नाम	भाग
स्लाइड वाल्वके खांचोंमें भरने योग्य सफेद धातु	टीन	८२	तांबा	६	एन्टीमनी	१२		
इंजनों और मशीनोंके बेयरिंगोंके खाँचोंमें भरने योग्य सफेद धातु	,,	९६	,,	४	,,	८		
,,	,,	८५	,,	५	,,	१०		
,,	,,	७८	,,	१०	,,	१२		
,,	,,	५६	,,	३	,,	४		
,,	,,	५०	,,	३	,,	५		
,,	,,	४०	,,	५	,,	१०		
,,	,,	२८	,,	२	,,	३		
,,	,,	१६	,,	१॥	,,	२		
,,	,,	१०	,,	१	,,	३	सीसा	६
,,	,,	२०	,,		,,	२०	,,	६०
,,	,,	३२	,,	५	,,	१०	,,	१८
,,	,,	२	,,		,,	२	,,	२०
,,	,,		,,		,,	१	,,	२०
छोटी मशीनोंके बेयरिंगोंके खाँचोंमें भरने योग्य सफेद धातु		१॥	,,		,,	१	,,	१॥
नकली चांदी	संखिया	१	,,	९				
नकली चांदी	तांबा	६४	टीन	३				
अरगनके पैपोंके लिये धातु	टीन	५०	सीसा	५०				
बेलबूटेदार सजावटका सामान	टीन	७६	तांबा	१	अन्टीमनी	४		
छोटी मूर्तियां और खिलौने	टीन	६४	जस्ता	२०	सीसा	१६		
चम्मच और कांटोंके लिये	जस्ता	१	निकल	१	अन्टीमनी	२		
इलेक्ट्रम	जस्ता	७॥	निकल	८॥	तांबा	१७		
छापेका टाइप	अन्टीमनी	२	सीसा	११				
स्टीरोटाइप	बिस्मथ	२	अन्टीमनी	४	सीसा	१८		
नकलीप्लैटिनम	पीलापी०	८	जस्ता	५				
बैलटकी सीसेकी डाट, ३७२°फ़ पर गलनेवाला	टीन	२	सीसा	२				

मिलावटकी धातुएँ

मिलावटकी धातुका नाम और उपयोग	मिलनेवाली धातुका नाम और मात्रा							
	नाम	भाग	नाम	भाग	नाम	भाग	नाम	भाग
बैलटकी सीसेकी डाट, ३८३°फ पर गलनेवाला	टीन*	२	सीसा	६				
,, ३८८°फ ,,	,,	२	,,	७				
,, ४०८°फ ,,	,,	२	,,	८				
घंटा ढालनेकी धातु—बाजोंके लिये	तांबा	२५	टीन	४॥				
,, छोटी घड़ियोंके लिये	,,	२५	,,	५				
,, मंदिरोंका घड़ियाल	,,	२५	,,	६				
,, कारखानोंके लिये	,,	२५	,,	६॥				
,, गिरजा और शिव मंदिरों के लिये छोटे घंटे	,,	२५	,,	७				
,, गिरजाघरोंके लिये बड़े घंटे	,,	,,	,,	७॥				

* इस सारिणीमें जहां कहीं टीन शब्द आया है, वहां रांगा ही समझना चाहिये।
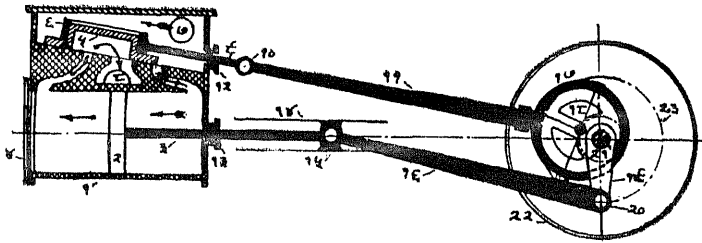
चित्र १

भाग ४
चालकयंत्र अर्थात् इंजन
चालकयंत्रोंके प्रकार

चालक यंत्र—चालक यंत्र उसे कहते हैं जो अपनी शक्तिसे दूसरे यंत्रोंको चलावे। वह स्वयं चाहे प्रकृतिमें प्रत्यक्ष रूपमें शक्ति ले या अप्रत्यक्ष रूपमें। इस प्रकारके यंत्रोंके लिये अंग्रेजी भाषामें **मोटर** (Motor) शब्दका प्रयोग होता हैं।

चालक यंत्र दो प्रकारके होते हैं, एक तो **स्वयं चालक** (Prime mover) और दूसरे परत्र चालक।

जो यंत्र प्रकृतिसे प्रत्यक्ष रूपमें शक्ति लेकर, अर्थात् प्राकृतिक पदार्थोंसे स्वयंही शक्ति उत्पन्न कर दूसरे यंत्रोंको चलाते हैं वे स्वयं चालक यंत्र कहलाते हैं। साधारण बोल-चालकी भाषामें स्वयं चालक यंत्रोंके लिये इञ्जन शब्दका ही प्रयोग होता है। इञ्जन शब्दका अर्थ है, जो शक्ति (Energy) उत्पन्न करे।

तेज हवासे चलनेवाले पंखे, पानीके बहावसे चलनेवाले पंखे, जैसे पनचक्कियोंमें, कमानीसे चलनेवाली मशीनें जैसे ग्रामाफोन और घड़ी आदि। भाप इञ्जन, गैस इञ्जन और तेल इञ्जन आदि स्वयं चालक कहलाते हैं।

परत्र चालक यंत्र—वे होते हैं जो अप्रत्यक्ष रूपसे प्रकृतिसे शक्ति लेकर अर्थात् दूसरे स्वयं-चालक यंत्रोंद्वारा उत्पन्न की हुई शक्तिसे खुद चलकर दूसरे यंत्रोंको चलाते हैं। उदाहरणके लिये बिजलीकी मोटरें, (Compressed air) दबी-हवासे चलनेवाली मोटरें और पानीके दबावसे चलनेवाली मशीनें, इसी जातिमें समझी जाती हैं। इनमें खुद चलने की शक्ति नहीं होती लेकिन बहुत दूरीपर चलने वाले पावर हाउस, एयर कम्प्रेसर इंजन अथवा पंपसे उत्पन्नकी हुई क्रमशः बिजली हवा और पानीकी शक्तिसे यह सब चलते हैं।

स्वयं चालक यंत्रों का "शक्ति माध्यम" (Working substance) सब प्रकारके इंजनोंको, प्रकृतिकी शक्ति, किसी न किसी माध्यमके द्वारा ही मिला-करती है। वाष्प इंजनोंकी शक्तिमाध्यम वाष्प होता है, गैस और तेलके इञ्जनोंका शक्ति माध्यम भड़कने वाली गैस (Explosive gas) होती है। तरह-तरह की टरबा-इनें (पंखे) हवा, जल, और वाष्प के बहावकी गति शक्ति के माध्यम से चला करते हैं।

घूमने और आगे-पीछे चलनेवाले इञ्जन (Rotary and Reciprocating engines)

बनावटके अनुसार स्वयं चालक यंत्र दो प्रकार के होते हैं एकतो वे जिनका 'शक्ति माध्यम" अपने यंत्रके पंखे को उसीकी धुरीपर घुमाकर शक्ति देता है, जैसे टर-बाइनोंको वाष्प, हवा और पानी आदि शक्तिदेते हैं। इस इस प्रकारके चालकयंत्रोंको घुमाने वाला इञ्जन (Rotary Engine) कहते हैं।

दूसरे वे इञ्जन होते हैं जिनमें उनकी शक्ति माध्यम एक पुर्जेको, जिसे अकसर पिस्टन कहते हैं क्रमशः आगे और पीछे सीधी दिशामें गति दिया करता है और फिर उससे सम्बन्धित पुर्जे उस इञ्जनके पहियेको घुमा देते हैं। जैसे कि वाष्प, तैल और गैसके इंजनोंमें होता है इस प्रकारके इञ्जन, आगे पीछे चलनेवाले (Reciprocating Engine) कहलाते हैं।

आगे पीछे चलनेवाले वाष्प-इंजनका सिद्धान्त

हर एक वाष्प इंजनमें दो मुख्य और स्वतंत्र भाग होते हैं। एकतो वायलर, जिसमें वाष्प तैयार की जाती है और दूसरा गतियंत्र(Motion Mechanism)जिसके सिलिंडरमें बायलरकी वाष्प पहुँचकर उसके पिस्टनको आगे पीछे सरका कर यंत्रमें गति उत्पन्न करती है।

चित्र सं० १ में इंजनके गति यंत्र का ख़ाका (Diagram) दिखाया है। इसमें सिलिंडरको चौखानेकी लकीरोंसे प्रदर्शित किया है। इसका उपरी भाग, जिसकी सतह कुछ तिरछी सी है, वाष्प की सन्दूक अर्थात् स्टीम-चेस्ट कहलाता है। बैलटमें से चलीआने वाली ताजा वाष्प, चित्रमें पूँछदार वाणोंद्वारा प्रदर्शित की गयी है।

कलमवाली स्याही कैसे बनती है ?

[डा० योगेशचन्द्र स्वरूप, बी० एस्०-सी०, एम० डी० (आयु०), रामगलीबाजार, लाहौर]

बीसवीं शताब्दीके इस वैज्ञानिक युगमें इण्डिपेण्डेण्ट कलमकी स्याहीका सर्वत्र प्रचार है, और आश्चर्य है कि इस समय जितने भी प्रकारकी फ़ाउण्टेनपेनकी स्याहियाँ व्यवहार की जाती हैं वे सभी इङ्गलैण्ड और अमेरिका आदि विदेशोंसे आती हैं। अभीतक भारतवासियोंका ध्यान इस ओर आकर्षित नहीं हुआ है। यदि बेकार नवयुवक इसे बनाकर बेचें तो आशातीत लाभ होनेकी संभावना है।

आज हम अपने पाठकोंकी सेवामें स्याहीकी एक अत्यन्त सरल विधि प्रस्तुत करते हैं जो स्वानईंकसे किसी भी रूपमें घटकर नहीं है। यह विधि मेरी अनुभूत है। आशा है कि हमारे भारतीय भाई बनाकर लाभ उठावेंगे और हमारे प्रयत्नको सफल करेंगे।

पहला नुसखा

स्रुतजल	(Distilled Water)
जर्मन आसमानी रंग	(German skyblue colour)
फ़िटकरी सफेद	(White Alum)
दानेदार चीनी	(Crystallized sugar)
कार्बोलिक एसिड	(Carbolic Acid)

निर्माण विधि

पहले स्रुतजलमें जर्मन स्काइब्लूकलर इतना डालें कि रंग ठीक हो जाय। पीछेसे प्रतिसेर घोलमें दो तोला सफेद फिटकरी और एक तोला दानादार चीनी और दस बूँद कार्बोलिक एसिड डालकर अच्छी तरह हिलादें।

विशेषता

यह स्याही न दुर्गन्धि देती है और न कागजपर फैलती ही है, लिखाई स्थायी रहती है। तात्पर्य कि जो विशेषताएं विदेशी स्याहियोंमें पायी जाती हैं वे इसमे भी हैं।

सावधानी

डिस्टिल्ड वाटरके अभावमें कोई चिकनाई रहित अर्क भी प्रयुक्त हो सकता है। पाठकोंके लाभार्थ फाउण्टेन-पेन की कुछ अन्य विधियां नीचे लिखी जाती हैं।

दूसरा नुसखा

डिस्टिल्ड वाटर	(Distilled water)	३२० भाग
माजूफल	(Gall nuts)	२४ भाग
गोंद कीकर	(Gum Acacia)	१० भाग
गन्धकाम्ल	(Sulphuric Acid)	१० भाग
ब्लूब्लैक कलर	(blue-black colour)	८ भाग
हीरा कसीस	(Ferrous Sulphate)	१ भाग
गैलिकएसिड	(Gallic Acid)	१ भाग

विधि

गोंद और माजूफलको आधा घन्टातक उबालें। पश्चात् हीरा कसीस और गैलिकएसिड मिलाकर शीतल होने दे तब गन्धकाम्ल और रंग डालकर हिलावें और छानकर सुरक्षित रखें।

तीसरा नुसखा

डिस्टिल्ड वाटर	४० आउंस	
माजूफल	४॥ ,,	
हीरा कसीस	१॥ ,,	
लवङ्गचूर्ण	(Powdered cloves)	१ ड्राम
गन्धकाम्ल	२५ ग्रेन	
नील	(Indigo)	आवश्यकतानुसार

विधि

पहले माजूफल और लवङ्गचूर्णको एक पात्रमें डालकर ऊपरसे डिस्टिल्ड वाटर डालें और खूब हिलाएं। पीछेसे छानकर हीरा कोसीस अच्छी प्रकार घोलें। पुनः गन्धकाम्ल डालकर तुरन्त हिलाएं और नील भलीभांति मिलाकर छानलें।

चौथा नुसखा

मिश्रणाङ्क १

डिस्टिल्ड वाटर (Distilled water) आधा कार्ट

निग्रोसाइन (Nigroeine) ३।४ आंउस

मिश्रणांक २

डिस्टिल्ड वाटर (Distilled water) आधाकार्ट

डेक्सट्राइन (Dextrine) ११२ आंउस
रसकपूर (Corrosive sublimate) २॥ आउंस

पांचवा नुसखा

(१) डिस्टिल्ड वाटर (Distilled water) ८० आउंस
(२) हीरा कसीस (Sulphatse foiron) ६ ,,
(३) गोंद बबूल (Gum acacia) ५ ,,
(४) Extract of Haematoxyli Lignum
(लॉगवुड Logwood नामक लकड़ी का सार) ३ ,,
(५) निग्रोसिन (Nigrosin) १ ,,
(६) बाइक्रोमेट आव पोटास (Bichromate of potassium) चारड्राम

विधि

अङ्क १ और २ के अतिरिक्त अन्य द्रव्योंको अग्निपर पकायें। यहांतक कि अच्छी प्रकार घुल जावें। अब इस मिश्रणके उष्णावस्थामें ही इसमें गोंद बबूल और डिस्टिल्ड वाटर मिलायें और पतले कपड़ेसे छानकर सुरक्षित रखें।

उपर्युक्त सब स्याहियां काली नीली हैं। अब काली स्याहीकी भी एक अत्यन्त सरल सस्ती और विचित्र विधि-जाती है।

नुसखा स्याहीका

डिस्टिल्ड वाटर ६० भाग
पक्का और उत्तम काला रंग १ भाग

विधि

दोनोंको अच्छी प्रकार मिलायें। बस स्याही प्रस्तुत है। इसमें किसी एसिड आदिके मिलानेकी आवश्यकता नहीं। इसमें वे सभी गुण पाये जाते हैं जो कि एक फ़ाउण्टेन-पेन इङ्कमें होने चाहिए॥

सिनेमाकी अजीब तस्वीरें कैसे बनती हैं?

[श्रीयुत गंगासिंहजी, 'भ्रमर']

फिल्मका बहुत कुछ सौंदर्य उसकी फोटोग्राफीपर निर्भर रहता है। मान लीजिये, किसी फिल्ममें अभिनय निर्देशन, रिकार्डिंग तथा म्यूजिक—आदि सब कुछ अच्छा है, पर फोटोग्राफी का उचित उपयोग नहीं किया गया तो सारा मजा किरकिरा हो जाता है। उचित भावोंको प्रदर्शित करनेके लिये उचित क्लोज-अप्स, सेमी क्लोज-अप्स आदि अगर न लिये जायं तो हम स्पष्ट कुछ भी नहीं जान सकते। मान लीजिये, एक रमणी बहुत खुश होकर खड़ी है। इस समय उसकी खुशीका अन्दाज जनता तभी लगा सकेगी, जब कि उसके चेहरेका उचित क्लोज-अप लिया जाय। अगर ऐसी जगह उस रमणीका Snap-shot दे दिया जाय तो वह अत्यन्त कलाहीन फोटोग्राफी कहलायेगी, क्योंकि जनता ठीक-ठीक न जान सकेगी कि उस रमणीको कितनी खुशी है। मतलब यह कि फोटोग्राफी और कैमरामैन डायेरक्टरके कामसे कम महत्वपूर्ण नहीं है।

यदि डायरेक्टर अभिनेताओंसे उच्चकोटिका कार्य करवाये तो फोटोग्राफरही उस कार्यको पूर्ण रूपसे व्यक्त कर सकता है। अगर फोटोग्राफर किसी अभिनेताके साथ व्यक्त न करे तो भलेही डायरेक्टर और अभिनेता कितनी भी कुशलतासे कार्य कर जायेंपर जनतापर कोई प्रभाव न पड़ेगा।

कैमरामैनका कार्य कोई सरल वस्तु नहीं है। उसको एक-से-एक भयंकर कार्य करने पड़ते हैं। फिल्ममें फोकसिंग ठीक रखना सबसे महत्वपूर्ण बात है। हमने कई बार देखा है कि कई सुन्दर क्लोज़-अप्स, भावोंका दिग्दर्शन करनेके लिये, लिये गये, पर फोकस-बाहर होनेके कारण उनका होना नहीं ठीक होता।

फोटोग्राफीकी तीन गतियाँ होती हैं—

१. धीमी चाल (Slow Speed)

२. मध्यम चाल (Normal)

३. तीव्र गति (Extra Speed)

१. धीमी चालसे जब फिल्म खींची जाती है तो एक सेकिंडमें आठ चित्र फिल्ममें खिंचते हैं। यह फिल्ममें उस समय प्रयोग की जाती हैं, जब कि उसे तेज गतिका बनाना हो। Very-fast-tempoके चित्र सदा धीमी चाल Slow Speed पर ही खींचे जाते हैं।

मान लीजिये एक विलेन-हीरोके साथ चलती ट्रेनके डिब्बेकी छत पर लड़ रहा है। इस दृश्यको किस प्रकार लिया जाय कि नुकसान भी न हो और काम भी हो जाय। अगर रेल तेज चालसे चलाकर उन व्यक्तियोंकी फिल्म खींची जाय तो निश्चय है कि वे न तो लड़ सकते हैं और न बिना नुक्सान हुए वे बचही सकते हैं। खुदा न करे कि एक आधकी टांग टूट जाय तो उसे कई दिन दवाखानेमें पड़ा रहना पड़े और चित्रका शूटिंग रुका रहे। इसलिये ऊपरवाला दृश्य निम्नलिखित ढंगसे लिया जाता है।

रेल बहुत धीमी चालसे चलायी जाती हैं और उस पर दोनोंको लड़नेके लिये छोड़ दिया जाता है और कैमरेको Slow Speed से चलाया जाता है। इस प्रकार जो फिल्म ली जाती है, वह पर्दे पर बहुत शीघ्र गामी मालूम पड़ती है। 'तूफान मेल' में बच्चेको रेलके सामनेसे उठाने का दृश्य और 'फ्रांटियर मेल' में डिब्बेके ऊपर लड़ने आदि के दृश्य इसी ढंगसे लिये गये हैं।

चलती मोटरसे कूदना, रेलके साथ मोटर साइकिल दौड़ाना, चलती ट्रेनसे कूदना, आदि आश्चर्यजनक दृश्य इसी प्रकार लिये जाते हैं।

२. Normal Speed से अगर कैमरेको कैमरा मैन चलाये तो एक सेकिंडमें १६-१७ चित्र खींचे जाते हैं। इसी स्पीडमें उसी फिल्मको खींचा जाता है, जिनकी चाल वास्तविक बतलानी होती है। साधारण चालसे होनेवाले कार्य इसी स्पीडद्वारा लिये जाते हैं।

3. Extra Speed

इस चालसे अगर कैमरामैन कार्य करे तो एक सेकेण्डमें २१६ चित्र खींचे जाते हैं। इस चालसे वे ही चित्र लिये जाते हैं जो वास्तवमें तेज हों और पर्देपर धीरे-धीरे काम करते हुए बताना हो। जैसे घुड़दौड़ आदि। अगर घुड़दौड़ का दृश्य Normal पर लिया जाय तो पर्दे पर सारी फिल्म सफेद नजर आयगी और कुछ भी समझमें न आयगा कि क्या हो रहा है। इसलिये उसे Extra स्पीडपर लिया जाता है, ताकि दृश्य साफ आये और पर्देपर मालूम होता रहे कि क्या हो रहा है और क्या नहीं।

इसी स्पीडमें कार्य करना कई कैमरा-मैनकी शक्तिके बाहर है। इस स्पीडमें वही कैमरामैन कार्य कर सकता है, जो पूर्ण अनुभवी हो।

ट्रिक फोटोग्राफी आजकल भारतमें भी प्रचलित होगयी है। पहाड़ परसे कूदना, नीचेसे ऊँचे मकानपर छलांग मारना, कटे सिरका जुड़ना, एक-एक दृश्यमें कई रूप एक ही व्यक्तिके देना—आदि सब कार्य इसी ट्रिक-फोटोग्राफीमें आ जाता है।

मान लीजिये, एक बहुत ऊँचा पेड़ हैं और नीचेसे उछल कर एक अभिनता उस पर चढ़ना चाहता है। अगर वास्तवमें देखा जाय तो उसका प्रयास एकदम फिजूल है. पर सिनेमामें यह भी सम्भव है। उक्त दृश्यको निम्नलिखित ढंगसे लिया जायगा।

सबसे पहिले अभिनेताको पेड़ पर चढ़ाकर खड़ा कर दिया जायगा और उसके बाद कैमरेको फिक्स कर लिया जायगा। कैमरेमें दो स्पूल बॉक्स होते हैं, एकमें बिना खिंची हुई फिल्म होती है और दूसरेमें खिंची हुई। खिंची हुईसे मत है फोटोग्राफी की हुई। यह दोनों स्पूल-बॉक्स

कैमरेमें नम्बरवार होते हैं। पहिलेमें बिना खिंची हुई तथा दूसरेमें खिची हुई। अस्तु। अभिनेताको नीचेसे ऊपर न उछालते हुए, ऊपरसे नीचे कुदाया जाता है और दृश्य ले लिया जाता है। इस समय कैमरेको उलटा चलाया जाता है। अर्थात् खिची हुई फिल्म नम्बर एकमें और बिना खिंची हुई दूसरेमें।

इस प्रकार उल्टा दृश्य लेकर जब पर्दे पर बताया जाता है, तब ऐसा प्रतीत होता है कि एक्टर नीचेसे ऊपर छलांग मार कर चढ़ गया है। यह सब एक्टरकी बहादुरीका नमूना नहीं, पर फोटोग्राफीकी कलामात्र है। इस प्रकारकी फोटोग्राफीके चित्रोंका नाम भारतमें 'स्टंट' चित्र रखा गया है, पर स्टंट चित्रोंका वास्तविकरूप यह नहीं है। स्टंट वे ही हो सकते है जो वास्तविक रूपसे लिये गये हों। अगर रोमांचकारी दृश्य बिना ट्रिक फोटोग्राफीके लिये जायें तो वे वास्तवमें स्टंट दृश्य कहलाने योग्य हैं।

कभी-कभी एकही अभिनेतासे दो व्यक्तियोंका कार्य लिया जाता है। आजकल भारतीय चित्रपटोंमें ऐसे दृश्य खूब पाये जाने लगे हैं। जैसे—'महाभारत' के दृश्यमें कृष्णजी एक तरफ रुक्मिणीके साथ तथा दूसरी ओर सत्य-भामाके साथ बैठे हैं। यह दृश्य आदमियोंको आश्चर्यमें डालनेके लिये काफी है, पर इसमें एक्टर एकका दो नहीं हो जाता, वरन ट्रिक फोटोग्राफीको सहायता ली जाती है। उक्त दृश्य निम्न ढंगसे लिया जाता है।

पहिले एक कोनेमें रुक्मिणी और कृष्णजीको बैठा दिया जाता है। कैमरेमें एक पत्ती ऐसे ढंगसे रख दी जाती है कि फिल्मका आधा भाग छिप जाता है। इस प्रकार फिल्म एक बार ले ली जाती है और फिल्मका आधा भाग फोटोग्राफ हो जाता है और दूसरा आधा नहीं। अब दूसरी बार कृष्णजी और सत्यभामाको दूसरे कोनेमें बैठा दिया जाता है और दुबारा फोटोग्राफीकी जाती है। इस प्रकार ऐसे दृश्योंकी दो बार फोटोग्राफीकी जाती है। पर्दे पर चलनेसे एकही व्यक्ति दो होकर नजर आता है।

'नूरे वतन' में बिलीमोरिया दो रूपमें आता है। दोनों पास-पास बैठे हुए। यह सब फोटोग्राफीकाही चमत्कार है। ऐसे ढंगसे लिये जानेवाले दृश्योंको डबल एक्सपोज्ड दृश्य कहा करते हैं।

कभी कभी कैमरामैन भयंकर स्थितियोंमें कार्य करते हैं। युद्धमें तोपोंकी गोलियां, जंगलमें शेरोंके बीचमें भी फोटोग्राफी की जाती है। यह सब कड़े दिलवाले कैमरामैन का ही कार्य है। कैमरामैन आजकल एक महत्वपूर्ण कार्य करता है। कैमरामैन डायरेक्टरके कामसे पूर्ण परिचित होता है, क्योंकि डायरेक्टरके बाद कैमरामैन अपना कार्य करता है। कैमरामैन और डायरेक्टर पास-पास खड़े होकर कार्य करते हैं। जब तक डायरेक्टर, अपना कार्य करता है, कैमरामैन ध्यानपूर्वक उसका मनन करता है और जब डायरेक्टरका काम खत्म हो जाता है तब फोटोग्राफर अपना कार्य शुरू करता है। इसलिए कैमरामैन डायरेक्टरके कार्यसे परिचित होता है और वह जानता है कि डायरेक्टर क्या चाहता है और उसे क्या करना चाहिये।

विज्ञान-संसार

सिगरेटसे भी छोटा लैंप

एक ऐसे लैंपका आविष्कार हुआ है जिसका आकार आधे सिगरेटके बराबर है, परन्तु रोशनी करीब करीब दिनकी रोशनीके बराबर है। यह रातको दिनमें परिवर्तित कर सकता है। इसका आविष्कार इलेक्ट्रिक लैंप बनाने वाली संस्थाके सदस्योंने एक खोजके सिलसिलेमें किया है। इस लैंपमें रोशनीकी शक्ति प्रति वर्ग इञ्च ५ लाख मोमबत्तियोंकी रोशनीके बराबर है। सूर्यकी रोशनी प्रति वर्ग इञ्च ६ लाख मोमबत्तियोंकी रोशनीके बराबर होती है।

जखम दूर करनेका अजीब तरीका

इङ्गलैंडके सबसे बड़े कहे जानेवाले सर्जन जोन एबरनेथीने १७:७ में एक भाषणमें कहा था कि हड्डी टूट जाने

पर जखम वाले स्थानको बहुत आरामसे रखनेसे वह शीघ्र चंगा हो जाता है। पीढ़ियोंसे उनके इस सिद्धान्त पर लोग चलते आ रहे थे और इस प्रकारकी घटना होनेपर इसी तरीकेको काममें लाते थे। अब हालमें डा० एच० ई० ग्रीफिस्ने एक भाषणमें कहा है कि एबरनेथीकी बातको आस्ट्रियाके सर्जन लेरोनेज बोहलरने असत्य सिद्ध कर दिया है। उनका सिद्धान्त है कि उक्त प्रकारकी घटना होनेपर 'जखमवाले स्थानको कार्यशील बनाये रखना चाहिये।' प्रयोगद्वारा उन्होंने इस बातको सिद्ध किया है। उनका कहना है कि यही तरीका सबसे अच्छा है और इससे दर्द भी बहुत कम होता है, तथा आराम होनेमें समय भी कम लगता है। अब पुरानेकी जगहपर इसी तरीकेको लोग काममें लाने लगे हैं।

मास्कोकी अद्भुत नहर

१ मईको मास्कोमें एक बहुत बड़ी नहरका उद्घाटन हुआ है। इस नहरके द्वारा अब समुद्रमें चलनेवाले बड़े से बड़े जहाज मास्कोतक आ सकेंगे। इस नहरसे एक और लाभ यह हुआ है कि मास्कोका सीधा सम्बन्ध श्वेत बाल्टिक कास्पियन, अजीन और काला समुद्र आदिसे हो जायगा। इस नहरके कारण मास्को और लेनिनग्रेडके बीच की दूरी ६२१ मील कम हो जायगी। यह नहर ५ सालसे बन रहा था। इसके बननेमें लगभग १४ अरब रुपया खर्च हुआ है। इस नहरमें पानी ७ बड़े तालावों या झीलोंसे आता है। इसमें सबसे बड़ी झीलका नाम है 'मास्को सी'। कहा जाता है इस बड़ी झीलको बनानेके लिये उस स्थान पर बसे हुए एक विशाल नगर और २०० गांवोंको वहां से हटाकर दूसरे स्थानपर बसाया गया। उजाड़कर दूसरी जगह बसायी जानेवाली बस्ती ८७ वर्गमील थी। कहा जाता है कि ऐसा करनेमें इञ्जीनियरोंको ४०,००० इमारतोंको तोड़कर फिरसे बनाना पड़ा। कहा जाता है कि 'मास्को सी' में एक बड़ा बन्दरगाह बनाया जायगा तथा इसी विशाल झीलसे पानी पांच पम्पिंग स्टेशनोंकी सहायतासे नहरमें जाया करेगा।

पेटके अन्दरका फोटो लेनेवाला कैमरा

फोटो खीचनेवाले कैमरे इतने छोटे आकारके बना लिये गए हैं कि कोई भी आदमी उन्हें निगल सकता है। इसे

निगलकर, हलकके अन्दरके फोटोतक लिए जा चुके हैं। अब सिनेमा दृश्योंके खींचनेवाले कैमरे भी इतने छोटे आकार के ईजाद कर लिये गये हैं जो निगले जा सकते हैं। इनका उपयोग हलकके अन्दर होनेवाले कार्योंका चित्र लेनेके लिये किया गया है। इन कैमरोंसे मनुष्यकी ध्वनि सम्बन्धी बातोंका पता लगाया जा सकता है और गलेकी बीमारियों की जांच पर भी अच्छा प्रकाश पड़ सकता है।

इन कैमरोंमें एक ऐसा कैमरा है जो एक डोरेके सहारे रोगीके हलकसे पेटतक पहुंचा दिया जाता है। कैमरामें प्रकाश रहता है, जिसकी रोशनीमें पेटके अन्दरका पूरा फिल्म अंकित हो जाता है। बादमें डोरा खींच लिया जाता है और फिल्म डेवेलप करके अन्दरकी हालत देखी जाती है।

दिल निकालकर चिकित्सा

सेंट लुई (अमेरिका) के डाक्टर कौंजने शल्य (चीड़-फाड़) चिकित्सामें बड़ा कमाल हासिल किया है। मनुष्यके शरीरके अवयव अब उसी तरहसे वे अलग अलग निकालकर साफ कर सकते हैं, जैसे कोई घड़ीसाज घड़ीके पुर्जोंको अलग-अलग निकाल कर साफ कर लेता है। अभीतक दिलके रोगोंका इलाज बड़ा ही कठिन माना जाता था। विशेष किरण (एक्सरे) परीक्षाद्वारा दिलके रोगोंका निदान तो

ठीक हो जाया करता था, पर उनके इलाज प्रायः अशक्य ही थे। डाक्टर कौंज साहब अब दिलको बिलकुल बाहर निकालकर उसे ठीक करके लगा दिया करते हैं। अभी तक ६३ व्यक्तियोंपर आपने आजमाइश की और सभीमें सफल रहे हैं। इसी क्रियासे वे स्वस्थ तथा अस्वस्थ हृदयकी तुलना भी कर सकते हैं।

पौधे पँचगुने बढ़ने लगे

हंगरीके सरकारी रेलवेके चीफ मडिकल अफसर डा० जोसेफ सेलटेईने यह देखकर कि कुछ रंगोंसे जख्मको अच्छा करनेमें शीघ्र सफलता मिलती है, इसका प्रयोग उन्होंने पौधों पर किया। इसका परिणाम आश्चर्यजनक हुआ। बहुतसे पौधे तो इस प्रयोगसे अपनी साधारण बाढ़से ५ गुनी अधिक बढ़ने लगे और शीघ्र ही पूर्णावस्था प्राप्त करने लगे। चूर्णके रूपमें इस नये प्रयोगका उपयोग किया जाता है। इसके अधिक प्रयोगसे पौधेको नुकसान भी होता है।

हम बिना आखोंसे देख सकते हैं।

फ्रांसके डाक्टर जूलिस रूइसका कहना है कि हम बिना आंखोंके देख सकते हैं। दृष्टिका सम्बन्ध आंखोंसे न होकर त्वचासे है। हमारी सारी देहकी त्वचामें नन्हीं नन्हीं हजारों आखें भरी पड़ी हैं, जिनसे हम परिचित नहीं हैं, पर उचित रूपसे अभ्यस्त हो जानेपर हम उनसे काम लेना सीख सकते हैं। उक्त डाक्टरका कहना है कि मैंने सैकड़ों व्यक्तियोंको नथनोंसे कानोंसे, हाथसे और पीठसे पढ़ना सिखा दिया।

हवाके द्वारा आग बुझायी जायगी

अमेरिका और कनाडामें जंगलकी आगको हवाई साधनोंके द्वारा बुझाये जानेकी योजना तैयार की जा रही है वे हवाई जहाजों और बेतारके तारद्वारा इष्ट-साधन करेंगे। आग लगनेके स्थानपर हवाई जहाजसे बम गिरा दिये जाया करेंगे जिससे भूमि फटेगी और धूल उड़कर आगको दबाकर बढ़नेसे रोकेगी। तबतक दूसरे साधन पहुंच जाया करेंगे।
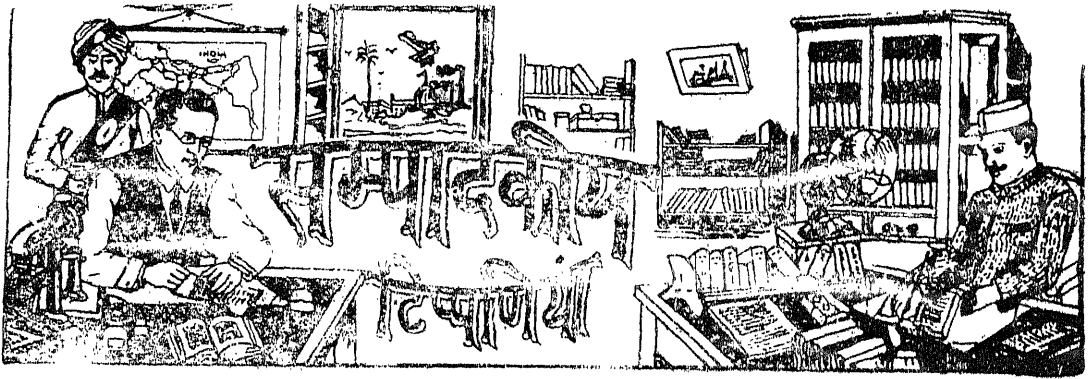
आयुर्वेद मंगडलका सुधार

आयुर्वेद सम्मेलनके सम्बन्धमें अपने कुछ विचार पिछले अंकमें व्यक्त कर चुका हूँ। अब आयुर्वेद मंडलके सम्बन्धमें वैद्यवृन्द से निवेदन करूंगा। पहले तो विचारणीय यह है कि इसका डेरा प्रति पांच वर्षके पश्चात् एक प्रान्तसे दूसरा प्रान्त में बदल जाता है।

जिस समय यह डेरा एक प्रान्तसे दूसरे प्रान्तको बदलता है उस समय मण्डलके कागजात तथा सम्पत्ति इतनी खुर्दबुर्द होती है कि कोइ हिसाब नहीं। जिस प्रान्त से उसका डेरा उठरहा हो उस प्रान्तके वह कवि कर्ता उस समय ऐसी लापरवाही करते हैं इतनी शिथिलता और क्रम रहित स्थितिमें चार्ज देते हैं वह देखनेवाली ही

बात होती है। पश्चात् जब वहांसे मण्डल उठ जाता है फिर उस प्रान्तके कार्य कर्ता सम्मेलनतकमें आनेका कष्ट नहीं उठाते। इस क्रमसे मंडलको हजारों रुपयोंकी सम्पत्तिका नुकसान होता है किन्तु इसके कर्णधार इस नियमको बदलना नहीं चाहते।

इसी काशी-सम्मेलनका जिकर है कि कविराज प्रताप सिंहजीने यह तजबीज की थी कि कुछ रुपया लगाकर काशी जैसे पवित्र क्षेत्रमें मण्डल-कार्यालयके लिये कुछ भूमि लेली जाय और उसपर मण्डलकी इमारत खड़ी करके उसमें इसका कार्यालय बनादिया जाय ताकि इसके रिकार्ड आदि आवश्यक कागजात सुरक्षित बनेरहें। मुझे आपकी यह राय बहुत पसन्द आयी। किन्तु आपने जब यह अपने विचार मण्डलके कर्णधारोंके सामने रखे तो उन्होंने प्रकट में तो कुछ न कहा किन्तु पीछे कहने लगे "देखा! यू० पी० वाले अब मण्डलपर अपना स्थायी आधिपत्य बनानेकी इच्छासे यह एक चाल चल रहे हैं। हमतो मण्डलके कार्यालयको यहां दृढ़ रूपसे कभी स्थिर नहीं रहने देंगे। कुछ रुपया यहांपर मण्डलके सहायतार्थ तथा स्मारकके अर्थ घोषित किया गया था। उन दाताओंको गुप्त रूपसे कहा गया कि यह रुपया बिना हमारी सम्मतिके न दिया जाय। न इससे भूमि आदि खरीदनेकी आज्ञा दी जाय। यह हैं मनोवृत्तियां मण्डलके कर्णधारोंकी। फिर भला इससे क्या आशा हो सकती है कि यह वैद्योंके लिये कुछ कर सकता है।

मण्डलकी स्थितिमें निम्नलिखित सुधार होने चाहियें—

(१) मण्डलका कहींपर स्थानिक कार्यालय होना चाहिये। और जितना भी आवश्यक रिकार्ड हो सब उस कार्यालयमें सुरक्षित रहना चाहिये। (२) पुस्तकका प्रकाशन और पत्रका प्रकाशन इस स्थायी कार्यालयसे होना चाहिये।

(३) इस कार्यालयमें समस्त कार्यकर्ता वैतनिक होने चाहिये। (४) विद्यापीठका कार्यालय भी इसी स्थान पर होना चाहिये। (५) और विद्यापीठकी ओरसे पाठ्य ग्रन्थ बनने चाहिये। (६) शिक्षा और परीक्षाका वही प्रबन्ध होना चाहिये। आधुनिक शिक्षा परिपाटी हितकर नहीं हानिकर है। (७) विद्यापीठमें काम करनेवाले अध्यापक वैतनिक होने चाहिये। और पाठ्यग्रन्थ पुरस्कार देकर योग्य विद्वानोंसे लिखाने चाहिये (८) यह काम विद्यापीठकी आयसे किया जाना चाहिये। (९) मण्डलको विद्यापीठकी आयका उपयोग नहीं करना चाहिये उसे स्वयम् सदस्य बनाकर या अन्य साधनोंसे द्रव्य संग्रहका स्वयम् प्रबन्ध करना चाहिये। (१०) सम्मेलन पत्रिकाको उत्तम लेखोंसे सुसज्जित कर उपयोगी बनाना चाहिये। विद्यापीठके परीक्षा परिणामको सम्मेलन पत्रिकाके कलेवरसे भिन्न छपाकर प्रकाशित करना चाहिये, सम्मेलन पत्रिकाको इसके लिये उपयोगी नहीं लाना चाहिये। (११) मण्डलकी ओरसे किसी कामके सम्पादनार्थ जब उपसमति बने तो उसे खर्च और वेतन देना चाहिये, ताकि समय पर उनसे काम लिया जाय और वह अपने उत्तर दायित्वको भी इस भारसे समझें। इतनी उपसमतियां प्रतिवर्ष बनती हैं एक भी कोई काम नहीं करतीं इसका मुख्य कारण यही है कि कोई वैद्य—जब कि उसे उदर पूर्तिके लिये भी कुछ न मिले—अपनी रोजी छोड़ कर कभी काम नहीं कर सकता। (१२) मण्डलको वैद्योंसे, धनपतियोंसे धन एकत्र करनेके लिये तथा प्रचार कार्यके लिये कुछ वैद्य वैतनिक रखकर उनको बाहर भेजना चाहिये। (१३) आयुर्वेदमें अनेक बातोंके अनुसन्धानार्थ विभाग बनाकर उनमें अनेक योग्य व्यक्तियोंको रखकर अनुसन्धान का काम कराना चाहिये (और इस समय जिस तरह समस्त देशोंकी डाक्टरोंकी सभाएं अनुसन्धानका काम कर रही हैं उस तरह इसे भी करना चाहिये।) लाभकारी वस्तुओंके सत्वोंको फार्मेसियोंके हाथों बेंचकर उस धनको आयुर्वेदके उपकारमें लगाना चाहिये। (१४) मण्डलकी कार्य कारिणीमें उन्हीं व्यक्तियोंको चुनना चाहिये जो काम करनेवाले हों। ऐसे व्यक्तियोंको नहीं चुनना चाहिये जो केवल मिट्टीके माधव हों या जो वर्षमें एक बार भी मण्डलके अधिवेशनमें न आ सकते हों। अधिक फिर कभी लिखूँगा।

कुनैन और मलेरिया ज्वर

इस शीर्षकसे पिछले अंकमें जो लेख छपा है, उस सम्बन्धमें एक पाठकको कुछ भ्रम हुआ है। उस लेखको पढ़नेसे यहतो स्पष्टही हो जाता है कि आरम्भमें सिंकोनासे ही लाभ होता था। कुनैन तो पीछेसे चली। मिक्सचरके बदले सिंकोनाका पंचांग सेवन करनेमेंही लाभकी अधिक

सम्भावना है। क्षारोदोंको बड़े खर्चसे अलग करके और फिर उन्हेंही मिलाकर देना तो व्यर्थ व्ययसाध्य द्राविड़ी प्राणायाम है, और जान-बूझकर ऐसा करना ठगी है। शरीरकीही फैक्टरीमें सुभीतेसे आवश्यकतानुसार क्षारोद निकाले जायँगे और काममें आवेंगे। मेजर बोस और करनेल कीर्त्तिकरने अपनी पुस्तकमें १२०० पौधोंका वर्णन किया है जिनमेंसे केवल तीन-सौका विश्लेषण हुआ है अतः यह कहनेके लिये कोई आधार नहीं है कि भारतीय प्राचीन ओषधियोंमें इन क्षारोदोंका पता नहीं लगता, और न यह कहनाही सही है, कि आयुर्वेदमें मलेरियाकी ओषधिही नहीं है। ऊपरके शीर्षकवाले लेखमें कुनैनके गुणही गाये गये हैं। परन्तु वह निर्दोष नहीं है, यह बात सर्ववादि-सम्मत है। उसकेही दुरुपयोगके अनुभवसे जर्म्मनीके सामुएल हानिमानने होमियोपथी चिकित्सापद्धतिको जन्म दिया है।

मलेरियाके फैलनेका कारण दरिद्रता और अस्वास्थ्यकर परिस्थित है, इस विषयमें मतभेद नहीं है। स्थिति वह उत्पन्न करनी चाहिये कि मलेरिया होनेही न पावे, शरीर उसके विषको पचाले। कुनैन आदि ओषधियोंकी बिक्रीमें तो रोजगारियोंका ही लाभ अधिक है, रोगीका बहुत कम। शायद हानिही हानि है। और यह तो इतिहास सिद्ध है, कि पिछले १५० वर्षोंमें ही यह रोग यहां बढ़ा है और यही इतिहास कुनैनका भी है। क्या दोनोंके प्रचारमें कोई गूढ़ सम्बन्ध तो नहीं है!

हमारे कवरका चित्र, व्यालोंका संसार

हमारे पुराणोंमें व्यालोंका वर्णन बहुत है। व्याल किन प्राणियोंका नाम था, आजकालके पण्डितभी ठीक-ठीक बता नहीं सकते। कोषोंमें व्यालके अनेक अर्थ हैं। सांप, दुष्ट हाथी, बाघ, शेर, पालतू बाघ, आदि। परन्तु सांप, नाग आदिकी अनेक जातियां मानी जाती हैं। पुराणमें कथा है कि कश्यपकी एक स्त्री से व्याल, नाग सर्प, उरग आदि जातिके प्राणी हुए और दूसरीसे अरुण और गरुड़ पक्षिराज हुए। व्याल बड़े भाई थे, पहले हुए। पक्षी पीछे हुए।

विज्ञानके मतसे दूसरे भौगर्भिक युगमें जो पुराणोंके पहले मन्वन्तरसे लेकर तीसरेतक हो सकता है, व्यालों; उरगों आदिका सर्वोत्तम युग समझा जा सकता है। इसी समय धरतीपर दानवाकार उरग, व्याल नाग आदि रेंगने वाले प्राणी फैले। पशुओंके सम्बन्धमें प्रकृतिने असंख्य प्रयोग किये। आरम्भमें जो रेंगनेवाले उरग बनाये उनका नमूना कवरके चित्रपर दिया गया है। ये बड़े विशाल-काय होते थे। पहले इनके अनेक रूप हुए जिनके नाम मत्स्यासुर, उपासुर, चण्डासुर, पत्रासुर आदि हुए जिनके वंशज महाव्याल, मम्मथ काटोलीडन आदि हुए। पीछे उन्हींके वंशज प्राचीन युगोंके हाथी, सिंह, बाघ, हुए। ये सभी नाग, व्याल आदि नामसे प्रसिद्ध हुए। चित्रमें दिये हुए व्याल परमियन व्याल कहलाते हैं। ये जिस समय पृथ्वीपर राज कर रहे थे उस समय वनस्पतियोंमें पर्ण (फर्न) जातिके पौधोंका राज था। रा० गौ०

Psycho-Solar Treatment for the Eye. अंग्रेजी भाषामें आंखका मानसिक और सौर इलाज। लेखक डाक्टर रघुबीरशरण अग्रवाल, डा० अग्र-वाल्स आइ इन्स्टिट्यूट, १५ दरयागंज, दिल्ली। डबल क्रौन १६ पेजीके १६ पेज। १८ चित्र तथा टेस्ट चार्ट। मूल्य ।)।

इस छोटीसी पुस्तिकामें डा० अग्रवालने आंखोंकी प्राकृतिक चिकित्सा सम्बन्धी प्रायः सभी रीतियां बहुत थोड़ेसे शब्दोंमें दी है। अच्छी आंखें कौन हैं, सिनेमा कैसे देखा जाय, दृष्टि-रक्षाके उपाय, दृष्टिको फिरसे ज्योति देनेके उपाय, अभ्यास करनेका चार्ट, स्पर्श-दोला, स्कूलोंमें समीप-दृष्टि से रक्षा, दृष्टिका देवता सूर्य्य, आंखकी डाक्टरी परीक्षा, समलबाई आंखोंसे पानी गिरना आदि विषय इन थोड़ेसे पृष्ठोंमें दिये गये हैं। ये उपयोगी विषय हिन्दीमें होते तो बहुत अच्छा होता। जो अंग्रेजी जानते हैं और विज्ञानके ग्राहक हैं, वे हमारी समालोचनाका हवाला देकर एक आनेका टिकट भेजेंगे तो डाक्टर साहब एक प्रति बिना मूल्य भेज देंगे। रा० गौड़

Persian Influence on Hindi, हिन्दीपर फारसीका प्रभाव। रचयिता, पं० अम्बिकाप्रसादजी वाजपेयी। प्रकाशक, कलकत्ता विश्वविद्यालय, १९३६। डिमाई अठपेजीके २१२ पृष्ठ। मूल्य अज्ञात। प्रकाशक से प्राप्य। सुन्दर जिल्द बँधी।

यह ग्रन्थ श्रीवाजपेयीजीने पहले हिन्दीमें लिखा था। पता नहीं कि वह प्रकाशित हुआ या नहीं। परन्तु इस प्रस्तुत अंग्रेजीकी पुस्तकके प्राक्कथनसे पता लगता है कि स्वर्गीय डाक्टर गणेशप्रसादके अनुरोधसे कलकत्ता विश्वविद्यालयकी खातिर आपने इसका अंग्रेजी अनुवाद कर डाला। दुर्भाग्यवश आज भी हमारे विश्वविद्यालयोंकी भाषा अंग्रेजी है, मानों ये विश्वविद्यालय अंग्रेजोंके लिये ही हैं, इसलिये सारे राष्ट्रकी लगभग बाईस करोड़ भारतीयों की राष्ट्रभाषापर पुस्तक पहले अंग्रेजीमें ही निकलती है! अस्तु।

फारसी भाषा बहुत कालतक एशियामें वही स्थान रखती थी जो फ्रेन्च भाषाका युरोपमें था। तुर्कों, पठानों और मुगलोंके राजमें भी भारतमें फारसीही राजभाषा थी, इसलिये यहांकी राष्ट्रभाषा हिन्दीपर उसका बहुत भारी प्रभाव पड़ा है। श्रीवाजपेयीने बड़ी योग्यतासे इस प्रभाव का इतिहास दिया है और उसके प्रकारका विस्तारके साथ विवरण दिया है। हिन्दी और प्राकृतका सम्बन्ध, डिंगल और पिंगलका विभाग, विदेशी शब्दोंका आगम, हिन्दी और मुसलिमोंका सम्बन्ध, हिन्दीसे उर्दूका उद्गम, मुसल्मानी हिन्दी या उर्दू, दोनोंका शैली-भेद, प्रभावका रूप इन आठ विषयोंपर विद्वतापूर्ण निबन्ध हैं और अन्तमें फारसी अरबी और तुरकीके लगभग ढाई हजार शब्द अर्थ समेत दिये हैं, जो राष्ट्रभाषामें चलनसार सिक्के हो गये हैं और जिनके कारण यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि हिन्दी-उर्दूका थोथा झगड़ा केवल उलटी-सीधी लिखावटके कारण है। अपने निबन्धके अन्तमें वाजपेयीजीने उर्दूको वाजिब दाद दी है और हिन्दी लेखकोंको उचित ही सलाह दी है कि वे अगर हिन्दी लेखनकलामें उस्ताद होना चाहते हैं तो उर्दू-साहित्यका अच्छा अनुशीलन करें। उर्दूके प्रख्यात महाकवि अकबर इलाहाबादीकी भी राय थी कि उर्दूका माहिर लिक्खाड़ होनेके लिये हिन्दीकी 'स्टडी' बहुत जरूरी है। वह अन्त तक ऐसे कोषकी खोजमें थे जिसमें ठेठ हिन्दीके शब्दार्थ उर्दूमें दिये हों।

बात यह है कि हिन्दी-उर्दू भाषा एकही है। पोशाक दो हैं। दोनोंको पहचाननेके लियेही शायद प्रस्तुत ग्रन्थको अंग्रेजी पोशाक पहनायी गयी है। परन्तु मैं तो प्रकाशकों से अनुरोध करूँगा कि ऐसे सुन्दर उपादेय ग्रन्थको नागरी और उर्दू दोनों लिखावटोंमें प्रकाशित करें और किसी परीक्षामें उर्दू और हिन्दी दोनों रूपोंको अनिवार्य्य पाठ्य ग्रन्थ बना दें। रा० गौड़

साहित्य—विहार प्रादेशिक हिन्दी साहित्य सम्मेलनका त्रैमासिक पत्र (सम्पादक, श्रीजनार्दनप्रसाद झा द्विज, एम० ए०। तथा श्री लक्ष्मीनारायण सिंह, सुधांशु, एम० ए०, सर्चलाइट प्रेस पटनेमें मुद्रित तथा तथा पंडित छबिनाथ पांडेय द्वारा वहींसे प्रकाशित। रायल अठपेजी आकारके ८८+१८ पृष्ठ)

इस पत्रका केवल माघका अंक, वर्ष १ खण्ड २, हमारे सामने है। नये पत्रोंकी समालोचना कई अंक देखकरही करना उचित होता है। परन्तु वैशाखका अंक आज आधे आषाढ़ तक हमारे पास नहीं पहुंचा है। इससे मालूम होता है कि या तो दोही अंक निकलकर पत्र बन्द होगया, या देर करके निकलना है, या हमारे पास आगेके अंक भेजना उचित नहीं समझा गया।

प्रस्तुत अंक बहुत अच्छी तरह सम्पादित हुआ है। लेखोंका चयन बड़ी विचारसिकतासे किया गया है। इसमें

कोई आश्चर्य नहीं, क्योंकि सम्पादक युगलका नामही सब तरहके सौष्ठवकी गारंटी है। हम सहयोगीका स्वागत करते हैं, दीर्घायु चाहते हैं, उत्तरोत्तर उन्नतिकी आशा करते है। उसके एक वैज्ञानिक लेखको नमूनेके तौरपर पाठक "सहयोगी विज्ञान" वाले स्तंभमें देखेंगे। यह अंक उपादेय है। रा० गौ०।

सहयोगी विज्ञान

हिन्दीमें वैज्ञानिक साहित्य और उसकी प्रगति

किसी भाषाका साहित्य तभी उन्नत समझा जाता है जब उस साहित्यमें सब विषयोंके ग्रन्थ विद्यमान हों और उनके द्वारा सब प्रकारके ज्ञान और विज्ञान उपार्जित किये जा सकें। इस दृष्टिसे विचार करनेपर भारतके सभी भाषाओंके साहित्य अधूरे जान पड़ते हैं। भारतकी भाषाओं में हिन्दीका स्थान सबसे ऊँचा है। न केवल इस भाषाके व्यवहार करनेवालोंकी संख्या सबसे बड़ी हैं, बल्कि अब सब लोगोंने इस बातको स्वीकार कर लिया है कि भारतकी भाषाओंमें हिन्दी या हिन्दुस्तानीही ऐसी भाषा है जो इस देशकी राष्ट्रीय भाषा बन सकती है। अतः हिन्दीके साहित्य की वृद्धिके लिए विशेष प्रयत्न करनेकी आवश्यकता है। इस लेखमें यह बतानेकी चेष्टा की जायगी कि हिन्दीमें वैज्ञानिक साहित्य किस परिमाणमें विद्यमान है और कैसे इसके निर्माणकी गतिमें तीव्रता लायी जा सकती है इस साहित्य के निर्माणमें क्या-क्या रुकावटें हैं और वे कैसे दूर की जा सकती हैं।

आधुनिक विज्ञानका पहला ग्रन्थ "लघुत्रिकोणमिति" को कुञ्जबिहारीलालने १८५५ ई० में आगरेमें छपवाया। इसके बाद बापूदेव शास्त्रीकी संस्कृतमें 'त्रिकोणमिति" का बेणीशंकरके द्वारा हिन्दी अनुवाद १८५९ ई०में छपा। १८६० ई० में आरेके सेकेण्ड मास्टर बलदेव झाने अंग्रेजीकी Popular Natural Philosophy का हिन्दी अनुवाद "सरल विज्ञान विटप" नामक ग्रन्थ प्रकाशित किया। १८५९ तथा १८६० ई० में ही पादरी शोरिंग-द्वारा सम्पादित "विद्या सागर" नामकी वैज्ञानिक पुस्तकमाला मिर्जापुरसे प्रकाशित हुई। सरकारकी ओरसे पहला ग्रन्थ, भौतिक भूगोल Mann's Lessons in General Chemistry का मथुराप्रसाद मिश्र द्वारा हिन्दी अनुवाद, २०६ पृष्ठोंका मोटे टाइपमें "बाह्य प्रपञ्च दर्पण" १८६१ ई० में छपा।

१८६० में ही बंशीधर, मोहनलाल और कृष्णदत्तद्वारा अनुवादित प्रारम्भिक यन्त्र शास्त्रका "सिद्ध-पदार्थ-विज्ञान" प्रकाशित हुआ। इसी वर्ष बालकृष्ण शास्त्री खण्डकरका ज्योतिषका अनुवाद ग्रन्थ 'खगोल' प्रयागमें छपा। १८६५ ई० में लखनऊमें विजयशङ्करने प्रारम्भिक यन्त्र-शास्त्रपर एक ग्रन्थ छपवाया। १८६७ ई०में जयपुरके राजवैद्य कालिन एस् वैलेन्टाइनने वायुकी उत्पत्ति और रसायन
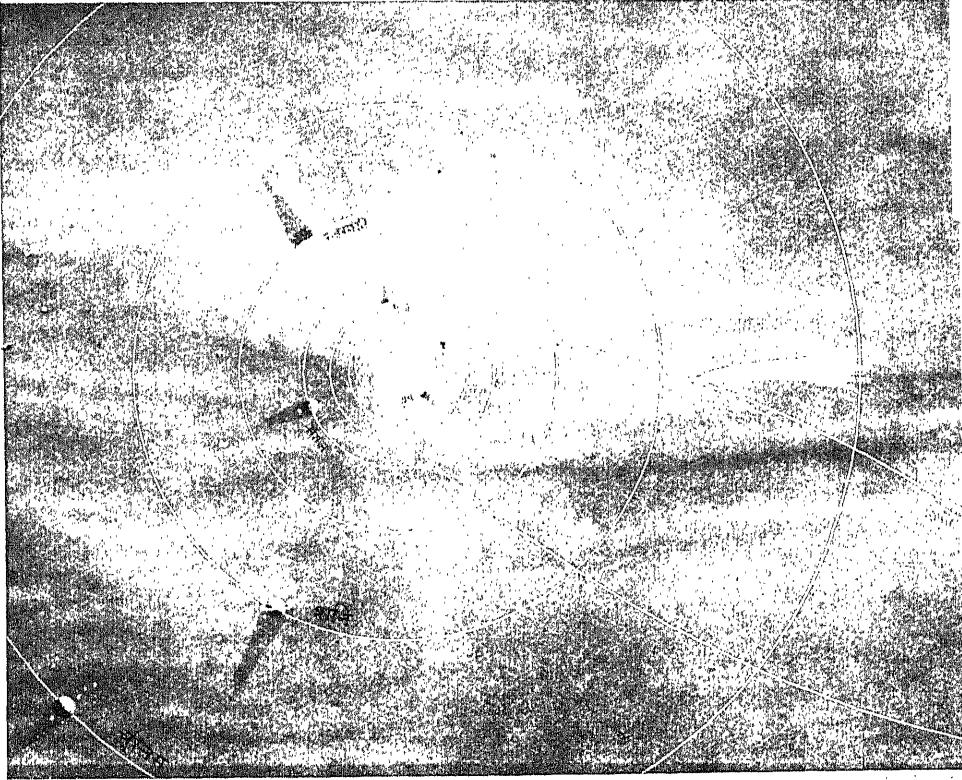
सितंबर, १९३७

भाग ४५ प्रयाग की विज्ञान-परिषद् का मुख-पत्र, जिसमें आयुर्वेद-विज्ञान भी सम्मिलित है

Approved by the Directors of Public Instruction, United Provinces & Central Provinces, for use in Schools and Libraries.

विज्ञान

पूर्ण संख्या
२७०

वार्षिक मूल्य ३)

प्रधान संपादक—**रामदास गौड़, एम० ए०**

विशेष संपादक—**डाक्टर श्रीरंजन, डाक्टर रामशरणदास, श्री श्रीचरण वर्मा, स्वामी हरिशरणानंद, डाक्टर सत्यप्रकाश और डाक्टर गोरखप्रसाद**

नोट—बदले के सामयिक पत्रादि, लेख और समालोचनार्थ पुस्तकें, यदि वे आयुर्वेद पर न हों, तो 'संपादक, विज्ञान, बनारस शहर' के पास भेजे जायँ। अन्यथा वे स्वामी हरिशरणानंद, पंजाब आयुर्वेदिक फ़ारमेसी, अकाली मार्केट, अमृतसर के पास भेजे जायँ।

प्रबंध-संबंधी सब पत्र तथा मनीआर्डर 'मंत्री, विज्ञान-परिषद, इलाहाबाद' के पास भेजे जायँ।

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते,
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ०।३।५॥

भाग ४५ } प्रयाग। कन्यार्क, संवत् १९९४ विक्रमी। सितम्बर, सन् १९३७ ईसवी { संख्या ६

मंगलाचरण

जिसने प्रति अंडाणु बीच ब्रह्माण्ड बनाया।
जिसने अणु अणुसे निजमुख स्वचरित कहलाया॥
रक्त स्रोतमें अखिल विश्वका दृश्य दिखाया।
देवासुर संग्राम प्रतिक्षण जहां कराया॥
उस पराशक्तिके विविध विधि पेखन देखनहार जय।
विज्ञान अनाथ अकर्त्तृ अज प्रकृति परेखनहार जय॥

सेवकाश्रम, देहरादून।
५-७-७२

रामदास गौड़

आदमीकी दुम क्या हुई ?
पूंछकी तलाश

[ठाकुर शिरोमणि सिंह चौहान, विद्यालंकार, एम० एस-सी०, विशारद, सब-रजिस्ट्रार
छिबरामऊ, जिला फर्रुखाबाद]

'ऐं ! मनुष्यके' भी कभी दुम थी ?

'क्यों नहीं, लोगोंका कहना है कि एक समय था जब मनुष्योंके दुम हुआ करती थी ।'

'वाह! आज भंग तो नहीं खाली है ? मैंने तो आजतक किसी मनुष्यके दुम देखी नहीं । ऐसे कहनेको तो जितने मुहँ, उतनी बात ! कुछ समय हुआ मेरे एक समझदार मित्रने मुझसे बातों-ही-बात कहा कि बन्दर तो हम सबके पुरखे हैं ! उनकी इस सनक भरी बातपर उन्हें मैंने फटकार बताई । भला कहां हम बुद्धि-वाणी वाले सभ्य शिरोमणि ! और कहां वे मूक जंगली पशु ! हमारा उनका कैसा रिश्ता? और फिर नाता भी कैसा ? वे हमारे बाप-दादा और हम उनकी सन्तति ! ऐसी बे-सिर-पैरकी बातोंपर हमें तो विश्वास त ह ।'

'जिस बातको आपने कभी देखा न हो अथवा जिसका अस्तित्व, तर्क-वितर्कद्वारा आपको कोई समझा न सकाहो तो क्या यह आवश्यक है कि वह बात असत्य और निराधार है ! अनेक बातोंमें हमारी बुद्धि नित्य ही धोखा खाया करती है । नित्यके जीवन क्रममें अनेकों असत्य और असंभव प्रतीत होने वाली बातें आगे चलकर सत्य और संभव होते पायी जाती हैं । इस भांति मुमकिन है कि ये बातें भी गहराईसे सोचनेपर आपको सच्ची प्रतीत होने लगें ।'

'हां, बातोंके समझने बूझनेमें तो इस प्रकारका धोखा हमें भी कई बार हुआ पर हमारी समझमें यह बात किसी भी तरह नहीं आती है कि बन्दर हमारे पुरखा थे और उनकी भांति पहले हमारे भी दुम हुआ करती थी । परमात्माने आदि-सृष्टिसेही हमलोगोंका निर्माण, इसी भांति किया था ।'

'तो क्या आपका आशय यह है कि जीव-सृष्टिको जिस रूपमें आज हम देखते हैं सृष्टिके आरम्भमें भी यह ठीक इसी रूपकी थी और तबसे आजतक-ज्यों-की-त्यों चली आरही है ।'

हां ऐसा तो हुआ ही है । सृष्टिके आरम्भसे आजपर्यंत कोई परिवर्तन नहीं हुआ । जितने प्रकार और जितने रूपके प्राणी आज हम संसारमें देखते हैं उनमेंसे प्रत्येककी रचना सृष्टि रचते समय परमात्माने स्वतंत्र रूपसे की थी और तबसे आजतक वे सब ठीक उसी रूपमें चले आते हैं ।

पर आजकलके अधिकांश वैज्ञानिकोंके मतमें वर्तमान प्राणियोंका रंग-रूप प्राचीन कालमें सर्वथा भिन्न था । आरम्भमें उनकी बनावट बिलकुल सीधी-सादी थी । बादमें ज्यों-ज्यों समय बीतता गया त्यों-त्यों उनमें थोड़ी-थोड़ी विभिन्नता होती गयी और बस्तुत समयके अनन्तर उनमें कुछ अत्यन्त निराले और ऊँचे दर्जेके प्राणियोंका आविर्भाव हुआ । यह क्रम आजभी ऐसा ही चला जाता है । इस प्रकार आज जो अपार जीव-सृष्टि हमें दिखाई देती है वह सब उन्हीं सीधे-सादे प्राणियोंसे उत्पन्न हुई है ।

इसका तात्पर्य तो यह हुआ कि ये सीधे-सादे प्राणीही मनुष्यों, बन्दरों और सभी प्राणियोंके पुरखे हैं और हम सबके पुरखे एकही होनेके कारण हम सब परस्पर रिश्तेदार हैं । पर इसका कुछ प्रमाण भी है ?
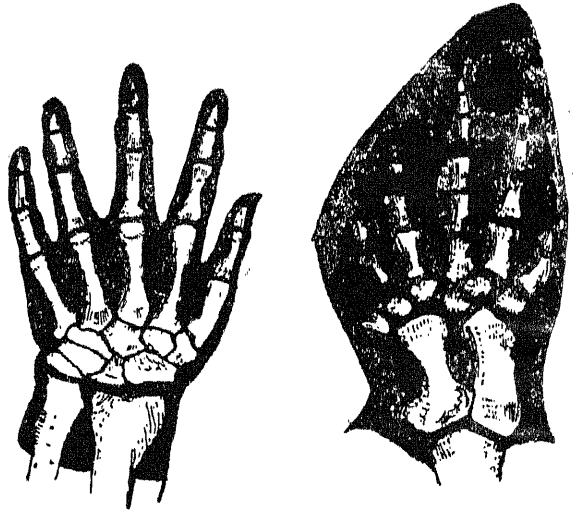
सुनिये ! यदि मनुष्य तथा अन्य पशुओंके शरीरके आवरणोंको हटाकर उनके शरीर-निर्माणकी तुलना करें जो उनमें आश्चर्यजनक सदृशता दिखाई देती है मनुष्य शरीरकी पेशियां और हड्डियाँ बन्दर आदि उच्चकोटिके कई जन्तुओंमें हबहू वर्तमान है । व्यवच्छेदविद्याके अनुशीलनसे भी सृष्टिके समस्त प्राणियोंमें इसी भांतिका पारस्परिक सम्बन्ध सिद्ध होता है । जैसे मनुष्यका हाथ, कुत्तेका पंजा, चमगादड़ एवं पक्षियोंके परोंके बाजू, देव-मछलीके हाथ-पांवकी क्षपणियां तथा घोड़ेकी टांगें—ये 'समस्त अवयव स्वरूपमें भिन्न होते हुए भी, सममूलक (Homologous organ) हैं अर्थात् आकार-प्रकारमें भेद होते हुए भी, उनकी हड्डियों की, बनावट और उनके जोड़ एकही ढंगके होते हैं ।'
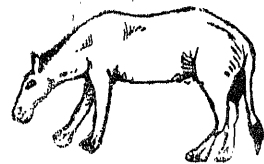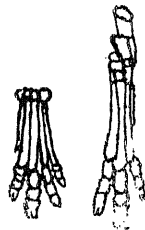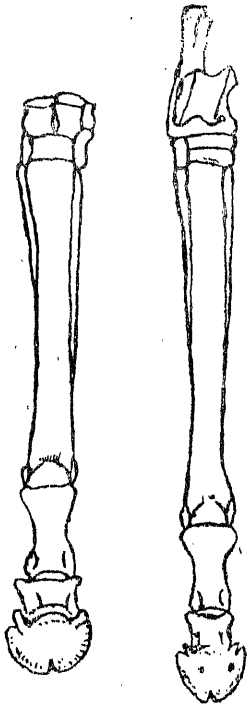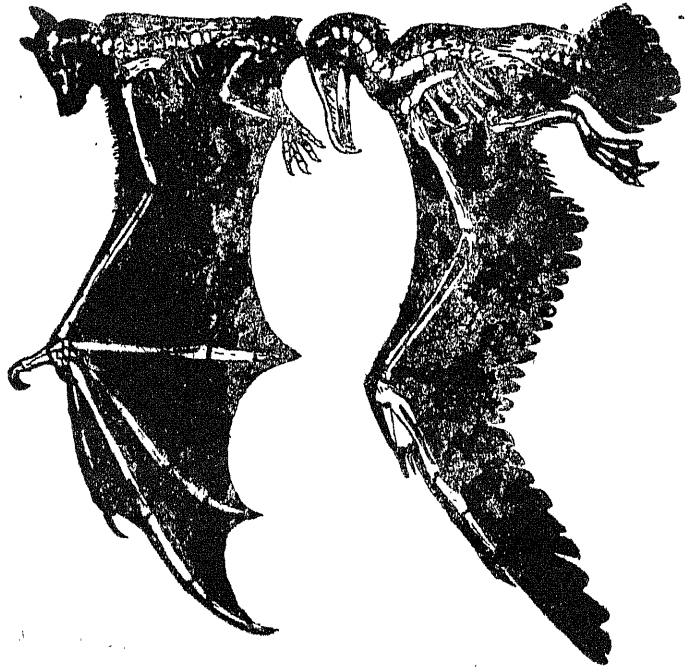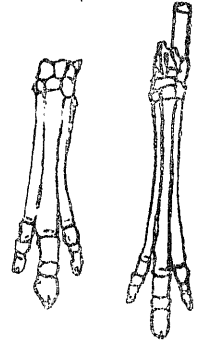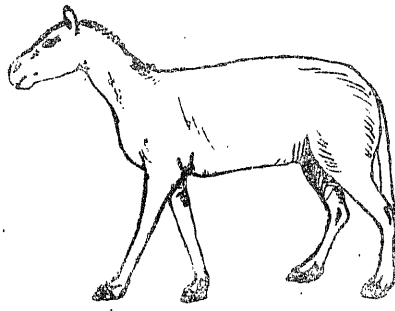
अच्छा, यदि हम मान भी लें कि आरम्भमें ये सारे प्राणी एकही थे तो इनमें इतना भारी अन्तर कैसे हो गया ? ये परस्पर सम्बन्धी कहे जानेवाले प्राणियोंके रंगरूप और रहन-सहनके ढंगको देखकर तो यहअनुमान करना भी कठिन है कि उनमें आपसमें कुछ भी सम्बन्ध होगा। कहां तो पृथ्वीपर रहनेवाले मनुष्य, वायु-मण्डलमें विहार करनेवाले चमगादड़ और पक्षी और कहां जलमें वास करनेवाली देवमछली ?'

'वास्तवमें इन सबके बाप-दादा स्थलपर निवास करनेवाले जन्तु थे! पर उनकी सन्तानमेंसे देव मछलीकी भांति कई प्राणी पानीमें रहनेके अभ्यासी हो गये और इस कारण उन्हें अपने शरीरको जल-जीवनके अनुकूल बनाना पड़ा। चमगादड़ और पक्षी वायु-मण्डलमें उड़ने लगे और मनुष्य एवं बन्दर दोनों जमीनपर ही रहे जमीनपर चलना, पानीमें तैरना, और वायुमें उड़ना—ये तीनों क्रियायें विभिन्न होनेके कारण कोई एकही प्रकारकी शरीर-रचना तीनों परिस्थितियोंमें एक-सी उपयोगी नहीं हो सकती। जैसे (fin) डैने की रचना दोनों ओर सिगारकी तरह होती है ताकि पानीके प्रतिरोधमें कमी होकर तैरनेवालेके तैरनेमें सुगमता हो। पक्षियोंमें पांव होते हैं। इनकी बनावट विशेषके कारण वायुमें संचार करनेमें सुभीता होता है। तात्पर्य यह कि भिन्न-भिन्न परिस्थितिमें जीवन-यापन करनेके कारण प्राणियोंमें भिन्न-भिन्न प्रकारके स्वभाव बना लिये और स्वभावानुकूलही भिन्न-भिन्न रूपोंका विकास हुआ। नहीं तो नवीन परिस्थितिमें उनका अस्तित्वही असंभव हो जाता।

सच पूछो तो 'विकासवाद' की मूल कल्पना यही है कि परिस्थितिमें जैसे-जैसे परिवर्तन होता जाता है वैसे-ही-वैसे बदली हुई परिस्थितिके अनुकूल प्राणियोंकी शरीररचना होती जाती है, ताकि प्राणी परिवर्तित परिस्थितिका मुकाबिला करनेमें समर्थ हो सके। फिर आनुवंशिक संस्कारानुसार भावी पीढ़ियोंमें क्रमशः वृद्धि होते हुए अन्तमें उन प्राणियोंके सारे रंग-रूपही बदल जाते हैं।

मनुष्य सर्वश्रेष्ठ प्राणी कहा जाता है और इसी भांति शेष प्राणियोंमें बन्दर सर्वोपरि माना जाता है। भूमण्डलके
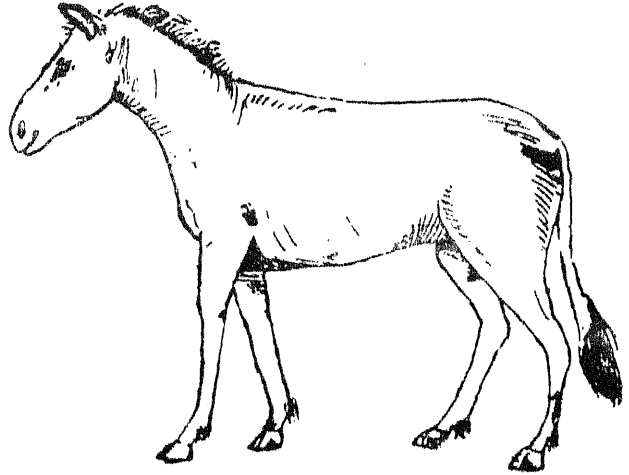
समस्त जीव-जन्तुओंका भिन्न भिन्न गिरोहोंमें वर्गीकरण किया गया है। साथ ही-साथ प्राणियोंके विकास-क्रमके अनुसार एक सिलसिलेवार सीढ़ी बनायी गयी है। मतलब यह कि प्राणी एकके पश्चात् दूसरा विकसित होनेके कारण सीढ़ीके डंडोंकी तरह पृथ्वीपर अवतीर्ण हुए।

विज्ञान' के पाठक 'विकासवाद' के सिद्धान्तसे पूर्ण-

डारविन-

रूपेण परिचित हैं। हां, इतना स्मरण रखना अत्यावश्यक

है कि विकास धीरे धीरे होता है। प्राणी एक सीढ़ीको पार करके दूसरी सीढ़ीपर पैर रखता है। विकास-वादकी मूल कल्पना तो बहुत पहले की है पर उसे पहले-पहल सुलझा हुआ और व्यवस्थित रूप देनेका श्रेय सर चार्ल्स डार्विनको है। विकासवादके नियमको प्राचीनकालके हिन्दू लोग भी जानते और मानते थे।

भू गर्भ शास्त्रके अनुशलीनसे भी इस नियमके अनागिनत प्रमाण मिलते हैं। पाठकोंको विदित होगा कि आज कल पाये जानेवाले प्राणियोंके अतिरिक्त प्राचीन युगमें जब साधारण मनुष्यका कहीं पता तक न था इस पृथ्वीतलपर अनेकों प्रकारके बड़े-बड़े भीमकाय प्राणी जल और थल दोनोंहीमें विचरा करते थे। उनके उदय और अस्तकी कहानी उनके शरीरके कुछ भागोंके रूपमें पृथ्वीके कई भू भागोंके भीतर मिलती है। ये सारे प्राणी आपसमें लड़कर, मर-खप गये। हां, कहीं कहीं, इनके पद और अस्थि-पिंजर के चिन्ह अबतक धरती खोदनेपर मिलते हैं। इन चिन्हों से आजकल पाये जाने वाले प्राणियोंकी वंशावलीका पता लगानेमें बड़ी सहायता मिलती है। उदाहरणके लिये यदि हम घोड़ेको लें तो पता चलता है कि प्राचीन युगके घोड़ों के शरीरकी बनावट आज कलके घोड़ों जैसी न थी। उस समय वे एक कुत्ते और उससे भी पहले वे एक लोमडीके डील-डौलके होते थे। उस समय उनके पैरोंमें तीनचार अंगुलियां होती थी। कालांतरमें वे सब मर खप गये और एक बड़ा जानवर सब बातोंमें घोड़े या गधे जैसा अवतरित हुआ और धीरे-धीरे वर्तमान कालके घोड़ेतक नौबत आन पहुंची जिसके एकही बड़ी अंगुली रह गयी। घोड़ेका सुमवास्तवमें एक अंगुली का नाखून है, समूचा पंजा नहीं। घोड़े जैसे उन जानवरोंको जिनमें एक या दो छोटी-सी अगुलियां थीं और जो चमड़ेमें ढंपी रहती थीं, वर्तमान् घोड़ोंके पुरखा समझना चाहिये क्योंकि आजकलके घोड़े उन्हींसे विकसित हुए हैं।

उरग या पेटके बल रेंगकर चलनेवाले प्राणियोंसे ऊपरकी श्रेणीमें पक्षी हैं। अर्थात रेंगकर चलने वाले प्राणियोंसे पक्षी उत्पन्न हुए। पर छिपकली और कबूतर के बाह्य-स्वरूपमें तनिक भी सदृशता नहीं। पक्षियोंके दांत नहीं होते और वायु-मंडल में उड़नेके हेतु पंख होते हैं। छिपकली आदिमें दांत होते हैं और उड़नेकी शक्ति नहीं होती। यदि पक्षी, छिपकली-सांप आदिसे विकसित हुए हैं तो ऐसे प्राणी, भी अवश्य होने चाहिये जिनमें दांत और उड़नेकी शक्ति पंख भी मौजूद हों। सन् १८६२ ई०में एक ऐसा प्राणी पृथ्वीके भीतर मिला था जिसमें ये बातें मौजूद थी। इसे आर्किओप्ट्रिक्स (Archaeopteryx) कहते हैं। इसकी दुमकी हड्डियां छिपकली जैसी है और उसके पांव आदि पक्षियोंके समान होते हैं। यह प्राणी-आर्किओप्ट्रिक्स-पक्षियों और छातीके बल रेंगकर चलने वाले प्राणियों—उरगोंके बीच (transitional stage) पुलका काम देता है। भिन्न-भिन्न रंगरूपके दो वर्गोंके बीच संबंध स्थापित करनेके हेतु आर्किओ प्ट्रिक्सके समान प्राणियोंकी सत्ता बड़े महत्वकी है। उनका अस्तित्व उस कालका स्मरण दिलाता है जब वहांकी परिस्थितियोंमें घोर उलट-पुलट हो रही थी। नवीन परिस्थितियोंके उदय होनेसे नयी-नयी बातोंकी ज़रूरत पड़ती थी और नये-नये अवयवोंका उदय होता था और अनुपयोगी हो जानेके कारण कुछ पुराने अंगोंका ह्रास होता है। क्या आपने यह कहावत नहीं सुनि कि 'जैसा देस वैसा भेस।'

'हां सुनी तो अनेकों बार है पर मैं इसे अब तक निरी कहावत ही समझता रहा'

नहीं, इसे मामूली कहावत ही न समझिये। यह तो प्रकृतिका एक अखंड और सर्वव्यापी नियम है। देखो, पृथ्वी के भीतर एक बड़ी अंधेरी कंदरा (Mammoth cave) है जिसमें रहनेवाली मछलियां अन्धी होती हैं।

'यह क्यों? यह अन्धी कैसे हो गयीं?'

उनके अंधी होनेके दो ही कारण हो सकते हैं। या तो वे सब इस खोहमें आरंभहीसे जान-बूझकर विशेरूपसे अंधी उत्पन्न की गयी थीं क्योंकि उसके भीतर आखोंकी आवश्यकता न थी। या ये मछलियां साधारण मछलियोंकी वंशज हैं, अंधेरी गुफ़ामें निरंतर निवास करने और वहां आंखोंका उपयोग न होनेके कारण उनकी आंखें जाती रहीं। इन गुफाओंकी मछलियोंका जबसे रहस्य खुला तबसे इस कन्दराके अनगिनत प्राणियोंके अध्ययनकी ओर जिज्ञासुओं का ध्यान गया। मैमथ-गुफ़ा ही नही, नयी और पुरानी दुनियांकी प्रायः समस्त गुफाओंके-प्राणियोंकी भली-भांति

खोज-बीन की गयी । खोज-बीनके फलःस्वरूप लोग नीचे लिखे तत्वोंपर पहुँचे ।

(१) अंधेरी गुफाओंमें मछलियोंके अतिरिक्त और भी प्राणी रहते हुए पाये गये ।

(२) गुफ़ाके जो भाग घोर अंधकारमय थे वहांके निवासी सभी अंधे मिले ।

(३) खोहके मुंहके आस पासके रहनेवाले प्राणी जिनतक काफी उजाला पहुंच सकता है उनकी आंखे बड़ी बड़ी और चमकीली होती हैं ।

(४) खोहके भीतरके ये अंधे प्राणी खोहके बाहर रहने वाले अपने सजातीय प्राणियोंसे मिलते-जुलते हैं । अमरीका की गुफाओंके प्राणी उस देशके सजातीय प्राणियोंके अनुरूप होते हैं और यूरोपकी खोहोंके जानवर उस देशके अन्य सजातीय प्राणियोंके समान होते हैं.।

(५) गुफाओंके इन अंधे प्राणियोंमें नेत्रोंके (Vestigial structure) विकलांग अबतक पाये जाते हैं ।

जिस प्रकार धीरे-धीरे नेत्र घटे हैं वे भिन्न-भिन्न अवस्थाएं अब भी पायी जाती हैं । एक मछलीके बचपनमें आंखें मौजूद होती हैं पर बड़े होनेपर वे कमजोर हो जाती और अंतमें बेकार होकर आसपासकी त्वचासे मुंद जाती हैं । मैमथ-केवके कई केकड़े जैसे प्राणियोंके नेत्र तो बिलकुल लुप्त हो गये हैं पर उनका निचला भाग अब भी शेष है ।

बहुतोंका मत है कि ईश्वरने इन सब मछलियोंको इसी रूपमें रचा था । इस मतको माननेके लिये यह भी मानना पड़ेगा कि एक ही जातिकी कुछ नेत्रवाली और कुछ नेत्र-विहीन मछलियां आरंभमें रची होंगी । साथ ही कुछ ऐसी रची होगी जिनमें नेत्रका कुछ अंश ही बनाया गया । एक मछलीमें तो नेत्रके स्थानपर नेत्रकी (nerve) वात-रज्जु को छोड़ कुछ भी नहीं होता । उन तथ्योंके होते हुए यह मत कैसे ग्रहण किया जा सकता है । कारण कि यह असंभव प्रतीत होता है कि एक ही प्रकारके प्राणियोंमें कुछ तो नेत्रवान और नेत्रहीन उत्पन्न किये जावें और कुछमें नेत्रोंके स्थानपर नेत्रोंका कुछ अंश ही मौजूद हो । किसी भवनके भग्नावशेषको देखकर यह कह देना कि आरंभहीसे वह ऐसा था सरासर मिथ्या प्रतीत होता है । बुद्धिमान तो यही कहेगा—

साबित था कुछ तो जिसके टूटे निशां हैं यह
कुछ छिप गया है जिसके टुकड़े अयां हैं यह

यही दशा मछलियोंकी आखोंकी है परमात्माने संसारमें कोई वस्तु निरर्थक नहीं बनायी; हर वस्तुका कोई-न-कोई उपयोग है । फिर भला आंखकी अनुपस्थितिमें उसकी (eye-nerve) वातरज्जु की आवश्यकता है ? वह तो केवल आंखके साथ ही काम दे सकती है । अतः इससे स्पष्ट है कि खोहकी मछलियां तथा अन्य प्राणी आरम्भसे अंधे न थे वे सब ऐसे प्राणियोंके वंशज है जो किसी समयमें खोहके बाहर रहने वाले जानवरोंकी भांति स्वस्थ एवं नेत्र सहित थे । आंखोंके अवशिष्ट अंगोंका (Vestigial structures) विद्यमान होना इस बातका दृढ़ प्रमाण है कि इस मछलियोंके पूर्वजोंके आँखें थीं और उनका उपयोग होता था ।

'फिर उनकी आंखें लुप्त कैसे हो गयी ?

'सुनिये, यह सभी जानते हैं कि किसी वस्तुको देखनेके लिये आंख उजेलेहीमें काम दे सकती है, अंधेरेमें नहीं । अंधेरेमें यदि आंख खोलकर देखनेका प्रयत्न भी करें तो कुछ दिखाई न देगा । अँधेरेमें आंखका होना-न-होना बराबर-ही है । बलिक अंधेरेमें आंखको लगातार खोल रखने और किसी वस्तुको देखनेका प्रयत्न करनेसे उसपर दबाव पड़ेगा और हानि पहुँचेगी ।

'अंधेरेमें आंखको बन्द क्यों नहीं रखते ?'

'आँखको निरन्तर बन्द रखना भी कष्ट-प्रद होता है । सच तो यह है कि ऐसी परिस्थितिमें नेत्र उपयोगी होनेके बदले कष्टदायक होते हैं इससे तो उनका न होना ही अच्छा है ।

आरंभमें कुछ स्वस्थ मछलियां गुफाके भीतर घुसकर रहने लगीं । गुफ़ामें घोर अंधकार था । वहां आँखे बेकार ही नहीं वरन दुखदाई थीं । इन मछलियोंमें जिनकी आँखे कमजोर थीं वे स्वस्थ नेत्रवाली मछलियोंकी अपेक्षा गुफामें रखनेको अधिक उपयुक्त थी । प्रायः यह देखा जाता है कि रोगी मां-बापकी संतान भी रोगी होती है । यह कमजोर नेत्रवाली अस्वस्थ मछलियां गुफाके भीतर रहीं । जिन मछलियोंको प्रकाशमें थोड़ा बहुत दिखाई देता था वे गुफाके मुंहपर आगयीं और वहां रहने लगी । शेष निरोग मछलियां

गुफाके बाहर आ गयी । अब उन मछलियोंके समूहमें जो गुफाके भीतर घुस गयीं एक प्रकारका चुनाव हुआ । घोर निचाट अंधेरे भागमें निवास करनेवाली अलग हो गयीं और गुफाके मुंहके निकट रहनेवाली अलग ! इस भांतिका चुनाव प्रकृतिभगवती समस्त प्राणियों और पौधोंमें निरंतर किया करती हैं। प्रकृतिके चुनावमे केवल वेही प्राणी जीवित रह सकते हैं जिनके पास ऐसे साधन मौजूद हैं जिनकी उन परिस्थितिमें रहनेके हेतु आवश्यकता होती है जो प्राणी इस प्रकारके साधनोंसे रहित हैं उन्हें प्रकृति कदापि नहीं जीवित छोड़ती ।

'यह तो आपने मैमथ-गुफाकी मछलियोंकी बात कही । क्या आप कुछ और भी प्राणी बता सकते हैं जिनमें परिस्थिति-परिवर्तन होने के कारण उनके एक समय उपयोगमें आनेवाले अंग अब निरर्थक और बेकार हो जानेसे घट गये और अन्तमें उनके अवशेषमात्र रह गये ।

'हां, क्यों नहीं । संसारमें सैकड़ों प्राणी हैं । पर यहां पर हम दोही चारका उल्लेख करेंगे ।

व्हेल मछली जब गर्भमें होती है तो उसके मसूढ़ोंके भीतर दाँत होते हैं । ये दांत बाहर नहीं निकलते क्योंकि अब वे व्हेल मछलीके उपयोगमें नहीं आते । इसके अतिरिक्त इसके शरीरमें और भी कितनीही ऐसी विकलता है जो केवल थलचर प्राणियोंके काम आती हैं और जलमें रहनेके कारण अब वे अंग इस मछलीके लिये बेकार हो गये हैं। इससे यह प्रगट होता है कि स्थलमें रहनेवाले प्राणियोंका व्हेल मछलीसे कुछ-न-कुछ सम्बन्ध अवश्य था और इनके पूर्वजों के दाँत होते थे । अब उनके जीवन-क्रममें परिवर्तन हो जानेके कारण वे बेकार हो गये । वास्तवमें ये सारे अवशिष्ट अंग उस प्राणी विशेषका पूर्व इतिहास बताते हैं । और यदि (Heredity) आनुवंशिकत्वका प्रभाव न होता तो इन बेकार अवयवोंका अबतक नामोनिशान मिट गया होता ।

पाइथान और उसके सम्बन्धी सांपोंमें पिछली टांगों के अवशेष अबतक पाये जाते हैं । बाहरसे देखनेमें तो उनकी गुदाकी दोनों ओर स्पर (Spur) दिखाई देते हैं पर भीतरी भाग देखनेपर ज्ञात होता है कि समूचे पैर— ऊर्वस्थि जघनास्थि टिबिया और नाखूनके सहित मौजूद है । बोआ सांपकी पिछलकी टागोंका विद्यमान होना साफ प्रगट करता है कि वर्तमान सांपोंके पूर्वजोंके टाँगें हुआ करती हैं । गर्भावस्थामें व्हेल मछलीके बड़ेही घने बाल होते हैं जो बादको या तो लुप्त या विचित्ररूपसे अन्य अंगोंमें परिवर्तित हो जाते हैं । क्योंकि उनके जलजीवनमें गरमी सुरक्षित रखनेके लिये चर्बीकी फैली हुई तहके रूपमें एक विशेष साधन प्राप्त हो जाता है । यही नहीं उनमें पिछली टांगोंके भी अवशेष पाये जाते हैं । कंकरथल साहबके विशेष अध्ययनसे मालूम हुआ है कि प्रौढावस्थामें इनमें केवल आगेके हाथ होते हैं, पर गर्भमें इनमें पीछेके पैर भी होते हैं जो बादको बिलकुल तिरोभूत हो जाते हैं ।

अब यदि हम प्राणियोंमें सिरमौर कहे जानेवाले मनुष्योंको लें तो उसे हम 'अवशिष्ट' अङ्गोंका भण्डार पाते हैं। वीडरशैमके अनुसार मानवजातिमें लगभग १८० अवशिष्ट अंग मौजूद हैं । श्री ड्रमांडने भी लगभग सत्तर अंगोंका वर्णन किया है जो प्राचीनकालकी परिस्थि और आवश्यकताओंका स्मरण दिलाते हैं और जो आधुनि कालमें मानव समाजके किसी कामके नहीं रहे । ये अवशि अंग वास्तवमें मानव जातिके यथार्थ ऐतिहासिक लेख जो मानव शरीरके ढांचेके भीतर कुछ दिन या जी भ बन्द रहते हैं ।

मछलियोंसे लेकर स्तनधारिप्राणियोंकी आंखोंमें उ और नीचेके दो पपोटोंके अतिरिक्त एक तीसरा प भी होता है जो पक्षियों और मेढकादि प्राणियोंमें आं कोर्नियांके ऊपर आ-जा सकता है और आंखको बा साफ करता है यह तीसरा पपोटा बन्दरों और मनु सर्वथा छोटा और बेकार होता है । सामनेवाले मनुष्य, बन्दर और पक्षीके नेत्रोंके हैं । उनमें तीसरी प दिखाई गई है । मनुष्य और बन्दरमें यह तीसरी प घटते घटते चिन्हमात्र रह गयी है ।

घोड़ा हाथी बैल इत्यादि चौपायोंके बाहरी का होते हैं। मक्खियां उड़ाने अथवा दूरकी आवाज़ सुननेके हेतु उन्हे हिलाने-डुलाने अथवा आगे-पीछे मोड़नेकी आवश्यकता होती है। इन बाहरी कानोंको हिलानेके इन प्राणियोंके कुछ पट्ठे (muscles) होते हैं । प्राणियोंमें ये पट्ठे बड़े बड़े और मजबूत होते हैं मनुष्य एवं मनुष्य-रूपी बन्दरोंमें पट्ठोंकी पतली प

पट्टियां (bond) जो पहले बाहरी कानोंको हिलाने-डुलानेमें सहायता देती थीं अब भी मौजूद हैं पर प्रायः निरुपयोगी हैं, क्योंकि अब इन प्राणियोंमें बाहरी कान न हिलने-डुलनेके कारण ये काममें नहीं आतीं। सुतरां हमारे बाहरी कानोंके पट्टे भी अवशिष्ट अवयवोंमेंसे हैं।

...इन्हीं प्राणियोंके उपचर्मके पट्टे जो मक्खियां ...नेके खाल हिलानेके काम आते हैं मनुष्योंकी खालके नीचे भी अवशेष रूपमें मौजूद हैं पर अब ...काममें नहीं आते। हां, मनुष्योंके माथेमें बड़े ...होते हैं क्योंकि मनुष्य शत्रुओंसे भयभीत ...नेके लिये अपनी त्योरियां चढ़ाता है। कुछलोग ...और अभ्यास करनेपर सिरकी खाल और बाहरी कान भी हिला सकते हैं। कुछ मनुष्य रूपी बन्दर भी ऐसा करते हुए पाये गये हैं।

मनुष्यकी आंतोंके सिलसिलेमें एक अवयव पाया जाता है जिसे उपाहित आंत कहते हैं। यह अंग घास ...रनेवाले प्राणियोंमें बहुत लम्बा और पाचन-क्रियामें उपयोगी ...ता है। मनुष्योंमें यह अंग बहुत छोटा और प्रायःव्यर्थ होता है।

मनुष्योंमें यह व्यर्थ अंग उस निकम्मे और आलसी ...रुषकी भांति होता है जो अपने दुर्गुणोंसे सारे परिवारको ...र्म-संकटमें डाले रहते हैं। मनुष्योंमें यह अंग कभी कभी एक भयानक रोगको उत्पन्न करता है जिसे अपेंडिसाइटिस कहते हैं। औरंग जातिके मानव-सम बन्दरोंमें यह अवयव मनुष्योंसे बड़ा होता है।

'ये मानव-सम बन्दर कैसे होते हैं ?

जो बन्दर हम साधारणतः देखते हैं उनसे ये मानव-सम बन्दर भिन्न हैं। मानव-सम बन्दरोंके बाहरी पूंछ नहीं होती। मानव-सम बन्दर कई तरहके होते हैं, जैसे गिबन (Gibbon) औरंग उत्तान (Orangootan) चिम्पानजी (Chimpanzee) और गोरिल्ला (Gorilla) डारविन साहबके मतानुसार ये ही मानव-सम बन्दर मनुष्योंके अत्यंत प्राचीन पूर्वज हैं। हम ऊपर यह देख ही चुके हैं कि नेत्रोंकी बनावट और पट्ठोंकी स्थितिमें मनुष्य और बन्दर एक ही से हैं। सच पूछा जाय तो बचपनमें मनुष्यकी दशा बन्दरोंसे और भी मिलती जुलती है। दुध-मुंहे बच्चोंके पाँव बन्दरोंकी भांति भीतरकी ओर मुड़े हुए होते हैं

अर्थात् स्वाभाविक दशामें दोनों पैरोंके तलवे एक दूसरेके सम्मुख होते हैं। यह दशा बन्दरोंमें जीवन-पर्य्यंत रहती है। भीतरको मुड़ी हुई टांगोंसे वृक्षोंकी टहनियोंको वे भली भांति पकड़ सकते हैं।

मनुष्यके दुध-मुहे बच्चोंके पैरोंके अंगूठे अंगुलियोंसे

अलग रहते हैं। पर आयु बढ़नेपर वे अंगुलियोंसे सट जाते हैं। बन्दरोंमें यह दशा जीवन भर रहती है।

पाठकोंने देखा होगा कि बालकोंके हाथोंमें किस वस्तुको पकड़नेकी बिलक्षण शक्ति होती है। असलमें उस समय उन्हें ऐसी शक्तिकी तनिक भी ज़रूरत नहीं होती। वैज्ञानिकोंका अनुमान है कि बच्चोंमें इस विलक्षण शक्तिका सम्बन्ध हमारी पूर्व-स्थितिसे है। बन्दरोंके बच्चे अपनी मांके बाल और खाल पकड़कर उसके पेटसे चिपके रहते हैं। ऊपरके चित्रमें एक शिशु वृक्षकी डाली पर लटक रहा है। मनुष्यके बच्चे वृक्षपर नहीं रहते। फिर बन्दरोंकी भांति उनके हाथ पैर होनेकी क्या आवश्यकता? बन्दरोंकी भांति होना स्पष्ट रूपसे प्रगट करता है कि मनुष्यों और इन मनुष्य-सम बन्दरोंके पूर्वज एक ही थे।

मनुष्य और इन मनुष्य-सम बन्दरोंमें बाहरसे देखनेमें पूंछ नहीं मालूम पड़ती फिर भी इन सबकी भीतरी रचना और गर्भावस्थाके निरीक्षण-परीक्षणसे स्पष्ट विदित होता है कि इन प्राणियोंमें कभी-न-कभी बाहरी दुम अवश्य रही होगी! सामनेके चित्रसे प्रगट होता है कि गर्भावस्थामें खरगोश और मनुष्यके भ्रूणोंमें दोनों टांगोंके जोड़के बीच मुड़ी हुई बाहरी दुम मौजूद है और उस समय उसकी लम्बाई उस समयके पैरोंसे दुगुनी होती है। मनुष्यका यह भ्रूण जैसे-जैसे बढ़ता जाता है, बाहरी दुम घटती जाती है। यही दशा मेढकोंकी भी होती है।
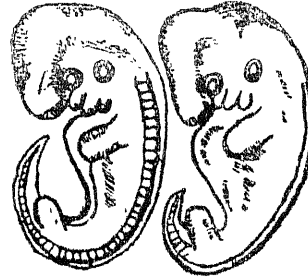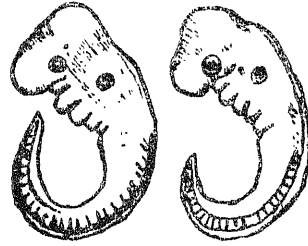
गर्भावस्थाके अतिरिक्त, जब हम मनुष्य एवं मनुष्य-सम बन्दरोंकी अन्तर्रचनाका अवलोकन करते हैं तो हमें उनके शरीरमें पूँछके अवशेष दिखाई देते हैं। इनकी रीढ़में मणि-मालाकी भांति चार छोटी-छोटी हड्डियाँ मिलती हैं और वे एक दूसरेसे जुड़ी हुई होनेके कारण, एक बड़ी हड्डी दिखाई देती है। इन्हें पुच्छास्थियाँ अथवा चन्चु (Coccyx) कहते हैं। गर्भावस्थामें जिस भांति भ्रूणकी पूँछ भीतरको मुड़ी हुई होती है उसी भांति ये हड्डियाँ कुछ अन्दरको मुड़ी हुई होतीं हैं। और इसी कारण वे बाहरसे नहीं दिखाई देतीं। हाँ, उस स्थानपर अंगुलियोंसे टटोलनेपर इन पुच्छास्थियोंका आसानीसे पता लगाया जासकता है। कुछ
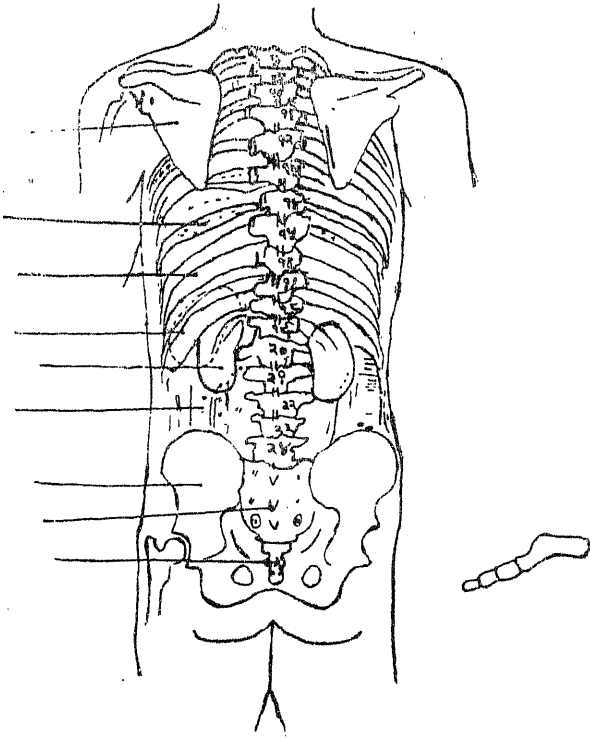
लोगोंके इस स्थानपर दर्द होने लगता है तब डाक्टर आपरेशन करके इन हड्डियोंको निकाल देते हैं। इन हड्डियोंके निकाल देनेपर दर्द मिट जाता है। जिन व्यक्तियोंका इस प्रकार आपरेशन हो चुका है वे तो वास्तवमें पुच्छ-विहीन हैं, नहीं तो सभी मनुष्योंके दुम अबतक मौजूद है फिर चाहे वह बाहरसे न दिखाई देती हो। पूँछ ही नहीं, पूँछके हिलाने-डुलानेमें सहायता देनेवाले स्नायु भी मौजूद होते हैं। मनुष्य-हृदयसे निकलकर पूँछकी ओर एक रक्त-वाहिनी भी जाती है। इस भांति मनुष्यमें पूँछके अवशेष अपने बाल-गोपालों सहित मौजूद हैं।

इसके अतिरिक्त कभी कभी एकाध मनुष्यमें पूँछकीसी कोई वस्तु बाहर लटकती हुई दिखाई देती है। जिसका एक स्पष्ट उदाहरण चित्रमें दिखाया गया है।

[कहते हैं कि महाराष्ट्रके प्रसिद्ध सन्त महाराज शिवाजीके गुरु समर्थ रामदास स्वामीके छोटीसी पूंछ थी। रा० गौ०]
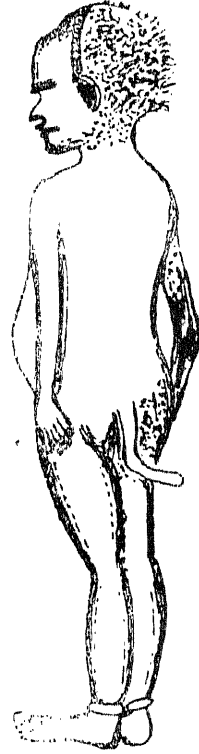
हमारे प्राचीन इतिहासकी खोज

[श्री जयशंकर प्रसादजी]

खत्री जाति और इन्द्र-साम्राज्य

असीरियाकी सभ्यता सुमेरिया और बेबिलोन की सभ्यतासे पीछेकी १२००—१४०० बी० सी०की मानी जाती है। इसलिये इन विद्वानोंने उसपर ईरानी सभ्यताकी छाप मान लेनेमें कोई बाधा न देखी। इसके और भी कारण हैं। Dr. Hugo Winkler ने मैत्रायणों Mittanians के एक शिलालेखका उद्धार किया है। उसका समय ईसवी पूर्व १४ वीं शताब्दी अनुमान किया जाता है। वह शिलालेख एशिया माइनर, वर्तमान अंगोराके समीप

Bagoz Kai में इन्द्र, वरुण, नासत्य आदि आर्य्य नामों को अपनी छातीमें छिपाये पड़ा था। यहींतक नहीं, इन मैत्रायणोंकी ही सहकारी एक और जाति हिटाइट (Hittite) थी जिसने अपनी शूरतासे प्राचीन सुमेरिया और बैबिलोनियाके असुर राजाओंको विकंपित कर दिया था। Story of Assyria में Ragozin लिखते हैं कि "चैल्डिया और असीरियाके शिलालेखोंमें हिटाइट लोगोंका नाम 'खत्ती' लिखा है। इसमें सन्देह नहीं कि यह उल्लेख मेसोपोटामियामें हिटाइट लोगोंके प्राथमिक आक्रमणका प्रमाण है।" †

इसी का समर्थन Myth of Babylonia के लेख में देखिए—"मैस्पेरो जैसे प्रामाणिक लोगोंकी भी सम्मति है कि हट्टी या हिटाइट लोगों का जो उल्लेख वैबिलोनियाकी 'बुक आव ओमेन' नामकी प्राचीन पुस्तक में है, वह अकाद (Chaldia) के प्रथम सार्गनके भी पहलेका है।"*

आगे चलकर उसी लेखकने लिखा है—' विंकलर विश्वास करते हैं कि मित्तानी (मैत्रायण) राज्य हट्टी लोगोंकी पहली लहरके द्वारा स्थापित किया गया था जो पूर्व से आए थे। ‡ इन हिटाइट क्षत्रियोंके उपास्य देवता थे शतक्रतु (Sutekh) और तार्क्ष्य (Torku)। तार्क्ष्य गरुड़का वैदिक नाम है"।

इन पाश्चात्य विद्वानोंके ही विचारसे ये मित्रायण और 'खत्ती' एकही जातिके थे। Old Testament में जाति विभागके अनुसार भी ये लोग सेमेटिक नहीं थे। परन्तु देखना चाहिए कि उस जातिका असली नाम कितनी चालाकीसे छिपाया जाता है। ओल्ड टेस्टामेंटमें व्यवहृत विकृत Hittites का प्रचार किया गया है। २८०० ईसवी-पूर्व यानी सार्गनके पहले भी जो उनका नाम क्षत्रिय (Khatti) था, उसका कहीं प्रयोग नहीं। मेरा अनुमान है कि ये आर्य किसी धर्म-सम्प्रदायके प्रति उतना आग्रह नहीं रखते थे, जितना अपनी शूरता और विजयोंके प्रति। उन्होंने अपना नाम केवल क्षत्रिय ही रखा था।

हीरेनशा (Hearenshaw) अपने संसारके इतिहास पृ० १९ में लिखते हैं—"सबसे पहिले एशिया माइनरकी लोहेकी खानको खोदनेवाले हिटाइट (खत्ती) लोग ही थे। इस लोहेकी सभ्यताके आदि आविष्कारक आर्य्य क्षत्रिय ही थे *"।

Indian Mythical Legend की भूमिकामें लिखा है—"साधारणतः यह मानी हुई बात है कि आर्य्य लोगोंनेही घोड़ोंको पहले पालतू बनाया जिसके कारण आगे चलकर बहुतसे साम्राज्य बने और बिगड़े।" §

मिस्रके इतिहासमें भी आर्य्योंके द्वाराही घोड़ेके प्रचार का उल्लेख मिलता है (Egyptian Myth and Legend, page 264)। Hyksos ने २२००, ई० पूर्वमें मिश्रदेशमें राज्य किया और इन्हीं आक्रमणकारी इक्ष्वाकुओंने घोड़े से मिश्र देशको परिचित कराया था। इसके पहिलेके पिरामिड बनानेवाले राजाओंमें Sonkhkor शंखकार जैसे आर्यध्वनि वाले नाम मिलते हैं। सुमेरियाकी जातिके ही ये प्रागैतिहासिक कालके निवासी माने जाते हैं। नीलनदकी सभ्यताने अधिक-से-अधिक पिरामिड बनानेवालोंको ४००० से ३० ० बी० सी० के बीचमें उत्पन्न किया है। परन्तु सिन्धुकी सभ्यता

---

† As "Khatti" is the name invariably given to the Hittites in the Chaldean and Assyrian inscriptions, there can be no doubt that this is a record of an early Hittite invasion in Mesopotamia. —(P. 34, The Story of Assyria.)

* Some authorities including Maspero are of opinion that the illusions to the Hatti which is found in the Babylonian Book of Omens belong to the earlier age of Sargon of Accad.—(P. 264—Myths of Babylonia.)

‡ Winkler believes that Mittani kingdom was first established by early waves of Hatti People who migrated from the East.–(P. 268, Myths of Babylonia.)

§ Asia Minor was the region where iron mines were first worked and that the Hittites were the peoples who first conveyed this gift of the gods to men.—(Indian Mythical Legend.)

मार्शलके अनुसार ४००० से ३००० बी० सी० का प्रमाण दे दिया है। इसलिये यह माननेमें कोई बाधा नहीं है कि 'ओसेरिस' पूजक मिस्र-निवासियोंकी प्राग् ऐतिहासिक कालकी सभ्यता भी इन्हीं असुर-उपासकोंके विराट् द्वन्द्व का एक अंश मात्र रही।

H. G. Wells ने जिस Sargon of Accad को विजेताओंमें सर्वप्रथम माना है उसके और प्रसिद्ध हम्मूरब्बीके सिंहासनोंको कँपानेवाले यही क्षत्रिय थे, जिन्हें Hittite कहकर पाश्चात्य शोधकोंने घपलेमें डाल रखा है। Khatti जातिकी सभ्यता ३००० बी० सी० से भी पहलेकी है। (देखिये Myth of Babylonia, 263)। यहूदियोंके सर्वप्रधान व्यक्ति Abraham ने Ephron खत्तीसे भूमि ली थी। अस्तु।

यह मानी हुई बात है कि प्रसिद्ध सार्गनने चैल्डियामें सेमेटिक वंशकी स्थापना की थी। इसके पहलेके शासन करने वाले सेमेटिक नहीं थे। सार्गनके पहले भी ३०००ई० पूर्वमें क्षत्रियोंकी सभ्यता सुदूर पश्चिमी दक्षिणी एशियामें सूसासे आरमीनियातक सर्वत्र व्याप्त थी। ये भी आर्य्यों के समान पितृदेवोंकी ही उपासना करते थे। सेमेटिक लोगोंके समान मातृ-उपासक नहीं थे—(Myth of Babylonid, 105)।

आरमीनियाके वान प्रदेशके शिलालेखोंकी भाषासे Mr. Syce ने प्रमाणित कर दिया है कि पूर्व कालिक आर्मीनियन लोग न तो सेमेटिक थे न तूरानी थे, उनका विचार है, और विचार प्रतिदिन पुष्ट होता जा रहा है, कि वे क्षत्रियवंशकी एक शाखा थे। ❀

आर्मीनियन लोग अब तक आर्य जातिके माने जाते हैं, और उस प्रारंभिक कालमें भी भाषाके विचारसे वे सेमेटिक नहीं थे। आर्य्य भाषा-भाषियोंकी विजयका संकेत उस प्राचीन प्राग् ऐतिहासिक कालमें सुमेरिया और इलामके लेखोंमें देखकर पाश्चात्य लोग आश्चर्य तो प्रकट करते हैं, परंतु स्पष्ट आर्यसत्ता स्वीकार करनेमें उन्हें संकोच होता है। (Myth of Babylonia, 248)।

इन ऊपरके अवतरणोंसे मुझे यह दिखला देना था कि सुमेरिया और असीरिया इजिप्ट तथा बाबुलमें प्रारंभिक कालसे ही आर्य्य संस्कृतिका प्राधान्य था और वे उन्हीं आर्योंकी संतान थे जिन लोगोंने प्राचीन आर्य्यावर्त्तसे देव-असुर-द्वंद्व होनेके कारण सुदूर देशोंमें जाकर अपने लिये घर बनाया और उन देशोंमें बसनेवाली आदिम जातियोंसे मिलकर धार्मिक आदान-प्रदानके द्वारा एक नवीन, आर्य्योंसे बिलकुल स्वतंत्र, सम्प्रदाय प्रवर्तित किया। अब यह भी प्रमाणित करना है कि ये असुरोपासक अपने प्राचीन इतिहासको धीरे धीरे भूल चले, कुछतो धार्मिक मतभेदके कारण और कुछ समयके इतने लम्बे अन्तरसे। इनके धर्मों के मूलमें वही असुरोपासना थी, यद्यपि धीरे-धीरे उसमें अनार्य्य या सेमेटिक जातिके संसर्गसे अत्यन्त प्राचीन समय में ही कुछ नयी बातें भी घुस पड़ी थीं। जैसे, स्त्रियोंका छाती पीटकर रोना, "Ailnu ailnu" कहते हुए चिल्लाना। यह प्रथा असीरियामें प्रचलित थी। सम्भवतः शतपथ कांड ३, प्रपाठक १ में-'तेऽसुरा आर्त्तवचसः हेऽलवो हेऽलवो इतिव्वदंतः पराबभूवु......असुर्य्या हैषा गवा।" (सायण ने लिखा है—'असुर्य्या असुरेष्वाहिता') इसी का संकेत है। ऐसी ही एक प्रथा बालक-बलिकी भी उन लोगों में थी।* यह बालक-बलि पूर्ण रूपसे सेमेटिक

† It is generally believed that the Aryans were the tamers of the horse which revolutionised warfare in ancient days and caused the great empires to be overthrown and new empires to be formed.—(P. XXX, Indian Mythical Legend)

❀ Mr. Syce has conclusively shown from the language of monuments at Van (वाण असुर ?) that the proto-Armenians were not Semites, neither were they Suranians. He thinks and the conclusion is gaining wider and firmer ground that they were a branch of the great Hittite family.—(P. 205, The Story of the Nations Series—Assyria.)

* Considering that human sacrifices, and especially of children, were a

पूजा थी। पिछले कालके भारतीय उपाख्यानोंमें क्या ऐतरेयमें ही एक ऐसा प्रसंग आया है—रोहिताश्वकी बलिका। यह जानकर आश्चर्य होगा कि उस बलिके द्वारा तर्पणीय देवता भी असुर वरुण ही थे, जिनके लिये शुनःशेफकी बलि होती। मालूम पड़ता है, संतानार्थी आज भी जिस प्रकार आसुरी मनौतियां करते हैं उसी प्रकार हरिश्चन्द्र भी किसी असुर याजकके चक्रमें पड़ गये थे किन्तु विश्वामित्रने यह अनार्य्य और आसुर कर्म्म आर्य्यावर्त्तमें न होने दिया और शुनःशेफकी मुक्ति करा दी। बालक प्रह्लादके वधकी किंवदन्तीभी हिरण्यकश्यप असुरसे ही सम्बन्ध रखती है।

ऐसे बहुतसे अनार्य्य आचार भी उन असुरोंके क्रिया-कलापमें थे, किन्तु प्रधान असुर आकाशीवरुणकी उपासना तब भी सबसे प्रधान थी।

प्राचीन कालके सुमेरियनोंका स्वर्गभी जल में था। इन्द्र उस कालके विरोधी देवनायक थे, जब त्वष्टा वरुण-सम्प्रदायके आचार्य्य थे और द्वंद्व की रंगभूमि आर्य्यावर्त्त थी। इसका प्रमाण ऋग्वेद और सुमेरियन सभ्यताके पूर्ववर्ती जरथुस्त्र के उदाहरणमें विद्यमान है। पिछले कालतक मौर्य्योंके समयमें भी सरस्वतीतट आर्य्य-सीमामें था, फिर उसके हटनेका कारण आर्य्योंकी कोई प्रवृत्ति नहीं जान पड़ती। क्योंकि, सप्तसिन्धु या आर्य्यावर्त्तसे हटकर ही पश्चिममें असुरउपासकोंको अपनी सभ्यताका प्रचार करना पड़ा। आर्य्यावर्त्त तो अपने धर्मके अवांतर भेदोंके साथ जहां-का-तहां अविचल रहा। यह इन्द्र, वृत्रका युद्ध संसारके प्रागैतिहासिक कालका भले ही हो, परन्तु आर्य्य जातिका इतिहास है। Indian Myth में इन्द्रके सम्बन्धमें लिखा है कि इन्द्र अत्यन्त प्राचीन देवता थे, वे प्रस्तर-युगमें पूजे जाते थे।ꕥ

सुमेरियाका (ई—ऑस) असुर वरुणका विकृत रूप है।ꕥ प्राचीन चैल्डियामें यही ईरानी असुर-उपासना 'अस्सर मआज़श' के नामसे प्रचलित थी। Edamues ठीक वैसेही Arli के God थे जैसे त्वष्टाके वरुण और वे फ़ारसकी खाड़ीके देवता थे। वहींसे उन्होंने सुमेरियामें पदार्पण किया। प्राचीन सुमेरियामें वे आदि निवासियोंको घर बनाना इत्यादि सिखानेके लिये आए थे। (Indian Myth, 12) । वरुणके उपासक त्वष्टाके अनुयायियोंने वहाँ पहुँचकर सभ्यताका प्रचार किया, इस विवरणसे तो ऐसा ही प्रतीत होता है। क्योंकि, सर जान मार्शल भी वर्तमान कालकी खोजोंसे इसी सिद्धांतके समीप पहुँच रहे हैं।†

---

standing institution among other Semetic and Cannanitic races, there can be little doubt that originally in prehistorically remote times, this decree was understood literally and acted upon.— (P. 124, The Story of Assyria.)

ꕥ It is possible that he may hav been invoked and propitiated by Neolithic or even by Paleolithic flint knippers.—(P. 2, Indian Myths.)

* Indian Varuna was similarly a sky-god as well as an ocean-god before systematizing Brahmanic teachers relegated him to a permanent abode at the bottom of the sea. It may be that Ea-onnes and Varuna were of common origin.– (P. 31, Myth of Babylonia.)

† The opinion has lately been gaining ground that the cradle of Sumerian and Egyptian civilization is to be sought somewhere east of Mesopotamia. ....Migrations then undoubtedly were, and those on a large scale, and nothing is more probable than that the teeming pop-ulations of Northern India expanded westward through across the Iranian Plateau and northward to the plains of Transcaspia.—(Sir John Marshall, 92—The Benares H. U. Magazine.)

इजिप्टकी प्राचीन गाथाओंमें एक अत्यन्त प्राचीन देवता 'टाह' की पूजाका उल्लेख मिलता है। कहा जाता है कि इजिप्टमें टाह एक आक्रमणकारी जातिके द्वारा ले आये गये और अत्यन्त प्राचीन प्राग् ऐतिहासिक कालमें वे शिल्पियोंके देवता कहकर पूजित हुए।*

यह Ptah शब्द त्वष्टाका स्मारक है। सबसे पहिले मेम्फिसमें इन्हींका मन्दिर बना और इजिप्टके यही प्रधान देवता माने गये। Osiris assor-ah भी मिस्रकी असुर-उपासनाके अंग थे। उनमें चन्द्रमाकी वैसीही शक्ति मानी जाती थी, जैसी वरुणमें। —(Eygyptian Mythकी भूमिका)।

इस प्रकार आर्य्यावर्त्तसे विताड़ित त्वष्टा और वरुणकी साहस्री मायाके परशिया, मेसोपोटामिया, बैबिलोनिया, सुमेरिया, असीरिया और इजिप्टमें फैलनेका प्रमाण ऋग्वेद और अवेस्तामें मिलता है। बैबिलोनियाका Baal भी ऋग्वेदमें वर्णित इन्द्र शत्रु बलकी प्रतिकृति है। बलके जीतने और बलभिद् आदि उपाधि धारण करनेका प्रायः उल्लेख है। ऋग्वेदमें कहीं कहीं ऐसा ध्वनित होता है कि यह वृत्र का भाई था।

तम्यूज़की कथा और उसके मारे जानेका प्रसंग भी असीरियामें अधिक प्रचलित था। यह तम्यूज़ दानवोंका राजा था। ऋग्वेद (१—५६—४) में वृत्र का एक संकेत 'तमस्' भी है। बैबिलोनियामें भी दुष्टात्माओंका उच्च देवताओंसे युद्ध करनेके प्रसंगका उल्लेख मिलता है, जिसमें तम्यूज़के मारे जानेका वर्णन है। यह तम्यूज़ बैबिलोनियाके मृत और पराजित देवता थे, जिनकी पूजा उस सम्प्रदायके अनुयायी करते थे। उनके यहाँ उसके लिये शोकभी मनाया जाता था। एक प्रकारसे यह 'नृत्ण' इन्द्रकी विजयकी स्वीकृति थी जिसे आसुरी सभ्यता मानती थी।

इस लेखका सारांश यह है कि महावीर इन्द्रकी विजयोंने प्राचीन आर्य्यावर्त्तके 'त्रिसप्तक नद'—प्रदेशसे असुर-उपासकोंको हटा दिया। ईरानमें वह असुर-उपासना 'अहुरमज्द'-धर्म, फूला फला। यह ऐतिहासिक प्रसंग ७५०० ईसवी पूर्वसे भी पहलेका है। पिछले कालमें भी मित्रायण, इक्ष्वाकु और क्षत्रिय जैसी आर्यधर्मानुयायी जातियाँ कभी-कभी उन असुर देशोंमें भी अपनी विजय-वैजयन्ती उड़ा आती थीं।

वह आर्य्य सभ्यताके इतिहासका प्रारंभिक अध्याय है, जब इन्द्रने आत्मवादका प्रचार किया, जब असुरोंपर विजय प्राप्त की और आर्य्यावर्त्तमें साम्राज्य स्थापन किया।

त्रिसप्तक प्रदेशकी बसनेवाली भिन्न-भिन्न आर्य्य संस्थाओका, जो अपना स्वतंत्र शासन करती थीं और आपसमें लड़ती थीं, सम्राट् बनकर इन्द्रने एक व्यूहन किया और वैदिक कालकी भरत तृत्सु पुरु आदि वीर-मण्डलियाँ एक इन्द्रध्वजकी छायामें अपनी उन्नति करने लगीं। संसार में इन्द्र पहले सम्राट् थे। पिछले कालमें असुरोंने उन प्राचीन घटनाओंके संस्मरणसे अपना पुराण चाहे विकृत रूपमें बनाया हो परन्तु है वह सत्य इतिहास, आर्य्योंका ही नहीं, अपितु मनुष्यताका, जब मनुष्यमें आकाशी देवता परसे आस्था हटाकर आत्मसत्ताका विश्वास उत्पन्न हुआ।

* It is possible that Ptah was imported into Egypt by an invading tribe in prehistoric times; he was an artisan god............According to tradition Egypt's first temple was erected to Ptah by King Mena.—(Egyptian Myth and Legend, Introduction, xli.)

चित्र नं १
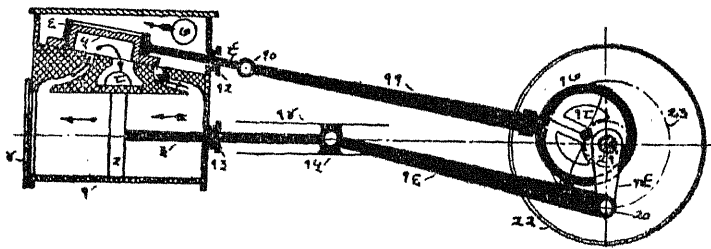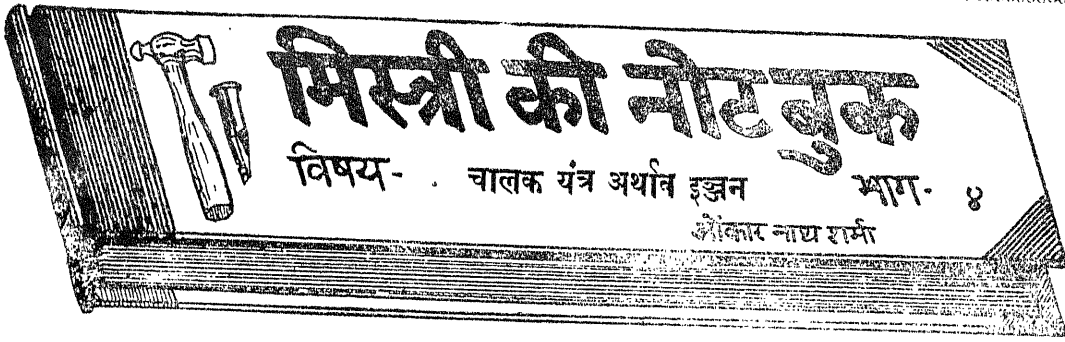
सं० ७ द्वाराचिन्हित नलमेंसे होकर भाफ स्टीमचेस्टमें आती है। सिलिन्डरमें काम कर चुकनेके बाद वह रद्दी अर्थात् झूठी वाष्प (Exhaust steam,) जो सादे वाणों द्वारा प्रदर्शितकी गयी है, स्टीमचेस्टकी खोहमें बने नल (८) मेंसे बाहिर निकल जाती है।

स्टीम-चेस्टसे सिलिन्डरमें वाष्पके लिये दो रास्ते होते हैं जो पोर्ट कहलाते हैं. उनमेंसे एक तो आगेकी तरफ होता है और दूसरा पीछेकी तरफ। इंजनमें जिधरको गतियंत्र होता है उधर वाला वाष्प मार्ग पीछेवाला कहलाता है। चित्र सं० १में पीछेका पोर्ट खुला हुआ बताया है जिसमें से वाष्प आकर पिस्टनको आगेकी तरफ ढकेल रही है। पिस्टनकी यह आगेकी तरफ चलनेवाली दौड़ (Stroke) खतम होते ही पीछेका वाष्प-मार्ग बंद हो जायगा। आगेका खुल जायगा जिससे पिस्टन वापस लौट जायगा। पिस्टनके इस प्रकार आगे और पीछे चलनेसे उसके साथ पका फँसा हुआ पिस्टन दंड (Pistn Rod) भी उसके साथ ही साथ आगे और पीछे सरकता है। इस दंडके दूसरे सिरे पर एक पुर्जा लगा होता है जो क्रासहेड (१५) कहलाता है। यह अपने ऊपर और नीचे लगी हुई दो छड़ोंके बीचमें पिस्टन राडके साथ साथ ही आगे और पीछे सरकता है। इन छड़ोंको अंग्रेजीमें स्लाइड बार (१-४) कहते हैं। जब यह स्लाइडबार इञ्जनकी फ्रेमके साथ ही ढली होती हैं तब यह क्रासहेड गाइड (Crosshead Guide) कहलाती हैं।

इञ्जनमें क्रासहेड एक कब्जे कासा काम देता है। जिस तरहसे किंवाड़ कब्जेके सहारेसे घूमा करते हैं उसी प्रकार क्रासहेडमें लगा हुआ कनेक्टिंग राड (१६) भी घूमता है। इस कनेक्टिंग राडका छोटा सिरा तो क्रासहेडमें लगा होता है जिसे लिटिल एन्ड (Little end) कहते हैं, और उसका बड़ा सिरा जो कि बिग एन्ड (Big end) के नामसे पुकारा जाता है, इञ्जनके धुरे (२१) पर लगे हुए क्रेंक (१९) की क्रेंकपिन (२०) पर लगा होता है। यह क्रेंकपिन इञ्जनके पहिये (२२) को घुमानेके लिये वही काम करती है जो कि हाथसे आटा पीसनेकी चक्कीपर हाथली। कनेक्टिङ्ग-राड वही काम करता है जो कि चक्की चलानेवालेका हाथ, क्रास-हेड उसकी कोहनी, पिस्टन-राड, उसका बाजू और पिस्टन उसका कन्धा। इञ्जनके गतियन्त्रमें पिस्टन सीधा चलता है और पहिया गोल घूमता है अतः कनेक्टिंग राडका काम सीधी गतिको गोल गतिमें बदलना है, यही इसका यह नाम रखने का कारण है, हम इसे संयोजक दण्ड भी कह सकते हैं।

सिलिंडरमें वाष्पका संचालन

सिलिंडरमें वाष्पके आगे और पीछे वाले रास्तों अर्थात् पोर्टोंको समयपर खोलने और बन्द करनेका काम एक वाल्व अर्थात् "ढकने" के द्वारा हुआ करता है। देखिये चित्र संख्या १ में ५। यह पुराने ढंग का "डी" स्लाइड वाल्व है। इसका आकार अंग्रेजीके D अक्षरसे मिलता जुलता है और सरककर काम करता है, इसीलिये इसे "डी स्लाइड वाल्व" कहते हैं। यह वाल्व एक डंडे (९) के सिरेपर बने हुए एक बड़े गाले (६) में फंसा रहता है, जो वाल्वका बकल (Buckle) कहलाता है। वह डंडा (९) जिसमें वाल्व फँसा रहता है वाल्व स्पिंडल (Valve-spindle कहलाता है। इस स्पिंडलके दूसरे सिरेपर भी

एक छोटासा क्रासहेड बना होता है जो चित्र सं० १ में संख्या १० द्वारा प्रदर्शित किया गया है।

वाल्वको चलानेवाला यन्त्र

जिस प्रकार पिस्टनका सम्बन्ध धुरेपर लगे हुए क्रेंक से कनेक्टिंग-राडद्वारा होता है, उसी प्रकार इस वाल्वका सम्बन्ध धुरेपर लगे हुए एक छोटे परन्तु भारी क्रेंक (१८) से रहता है। इस क्रेंकको एक्सेन्ट्रिक शीव (Eccentric sheave कहते हैं। इनके सम्बन्धको मिलानेवाला एक हल्कासा कनेक्टिंग राड (११) रहता है जिसे "एक्सेन्ट्रिक राड" (Eccentric Rod) जिस प्रकार कनेक्टिंग राडका क्रेंक पिनमें फंसनेवाला सिरा "बिग एन्ड" कहलाता है उसी प्रकार "एक्सेन्ट्रिक राड"का एक्सेन्ट्रिक शीवपर फँसने वाला सिरा(१७) एक्सेन्ट्रिक-स्ट्रेप (Eccentric Strap) कहलाता है। यह एक स्वतंत्र पुर्जा है जो एसेन्ट्रिक राडमें बोल्टोंद्वारा कस दिया जाता है। एक्सेन्ट्रिक राडका दूसरा छोटा सिरा वाल्वस्पिंडलके क्रासहेडमें लगा रहता है। इन सब पुर्जोंकी सहायतासे ही धुरेकी गोल गति, वाल्वकी आगे-पीछे चलनेवाली गतिमें परिवर्तित हो जाती है। जिससे बारी-बारीसे आगे और पीछेके पोर्ट खुलते और बंद होते रहते हैं।

वाल्वमें स्वयं कोई शक्ति नहीं होती, वह तो पहियेकी गतिसे ही चलकर सिलिंडरमें यथासमय, दोनों तरफ ताजा वाष्प पहुँचाता है और झूठी अर्थात् रद्दी वाष्पको समयपर निकालता रहता है। उदाहरणके लिये मान लीजिये कि दो स्त्रियां मिलकर एक ही चक्कीको चलाती हैं। अब उनमेंसे एक स्त्री तो अपना पूरा बल लगाकर चक्की चला रही है और दूसरी केवल हल्के हाथसे ही चक्की के डंडेको पकड़े है। जिस प्रकार चक्कीके डंडेको हल्के हाथ से पकड़े रहनेके कारण उस स्त्रीका हाथ और कंधे जबरदस्ती आगे पीछे हिलते रहते हैं, उसी प्रकार इंजनके धुरेके घूमने से वाल्व भी चलता रहता है।

इञ्जनके गतियंत्र सम्बन्धी परिभाषायें

पिस्टनकी दौड़ (Stroke of piston):— सिलिंडरके एक सिरेसे दूसरे सिरेतक पिस्टन जितनी दूरी तय करता है, वह उसकी "दौड़" अथवा "स्ट्रोक" कहलाती है। क्रासहेडकी चालको नापकर इसे नापा जा सकता है। क्रेंकपिनके सेन्टरसे धुरेके सेन्टरकी जो दूरी होती है वह पिस्टनकी स्ट्रोकसे आधी होती है।

पिस्टन क्लियरेंस (Piston clearance)— पिस्टनकी दौड़ खतम होनेपर, पिस्टन और सिलिंडरके ढक्कनके बीचमें जो आधी या पाव इंच जगह खाली रह जाती है वह पिस्टन क्लीयरेंस कहलाती है। यह खाली जगह रखनेके दो उद्देश्य हैं। एक तो यह कि दौड़के खतम होनेपर पिस्टन सिलिन्डरके आगे या पीछेवाले ढक्कन (कवर) से टकराकर टूट न जावे। दूसरा यह कि पिस्टनको वापस लौटानेके लिये ताजे वाष्पको घुसनेकी जगह मिल जावे।

डेड सेन्टर (Dead Centre)— पिस्टन जबकि अपनी दौड़के सबसे आगेवाले विन्दु अथवा सबसे पीछेवाले विन्दुपर होता है तब, क्रेंक भी क्रमशः सबसे आगे अथवा पीछे रहता है। ऐसी हालतमें पिस्टन-राड, क्रासहेड, कनेक्टिंगराड और क्रेंककी मध्यरेखा एक सीधमें रहती है। ऐसे मौकेपर कहा जाता है कि क्रेंक अथवा पिस्टन अपने डेड सेन्टरपर है। इस प्रकारसे प्रत्येक इञ्जनमें हरएक सिलिंडरके लिये दो डेडसेन्टर होते हैं, एक सबसे आगेवाला और दूसरा सबसे पीछेवाला।

ऊपर अथवा नीचेका सेन्टर (Top and bottom Centre)जब क्रेंक दोनों सेन्टरोंके बीचमें होता है तब वह या तो एकदम ऊपरको खड़ा होता है या एकदम नीचेको झुका होता है। ऐसी हालतमें वह क्रमशः ऊपर (Top) और (Bottom) के सेन्टरपर कहलाता है।

कनेक्टिंग-राडको लंबाईका असर

यदि कनेक्टिंग राड क्रेंकके मुकाबिलेमें कमसे कम ८ या १० गुणा बड़ा हो तो ऐसी हालतमें पिस्टन अपनी दौड़के बीचमें रहेगा। कनेक्टिंग राड जितना ही छोटा होगा, ऊपर और नीचेके सेन्टरपर क्रेंकके रहते बखत पिस्टन सेन्टरसे उतना ही परे होगा, कनेक्टिंग राड जितना ही सेन्टरसे नजदीक रहेगा।

नोट—इस लेखमें निर्दिष्ट चित्र १ इसी अंकके पृ० २२६ पर और पिछले अंकके पृष्ठ १९७ पर दिया गया है। रा० गौ०

वाल्व Valve

चित्र सं० २ में वाष्प इञ्जनके सिलिंडरका एक भाग बनाया है। इसमें दोनों स्टीम पोर्टोंका भी कुछ भाग दिखाई दे रहा है, जिसके ऊपर वाल्व चलता है। इस चित्रमें दिखाया हुआ वाष्प, एक बहुत पुराने ढंगका "डो" स्लाइड वाल्व है, जो इस समय अपनी दौड़के बीचमें है। यदि यह दाहिनी या बायीं किसी भी तरफ जरासा भी हटता है तो दूसरी तरफका पोर्ट खुल जाता है, जिसमेंसे होकर वाष्प सिलिंडरमें जा सकती है।
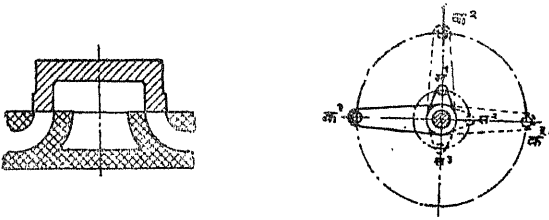
चित्र सं० २

चित्र सं० ३

चित्र सं० २ में दिखाई हुई हालतमें जिस समय वाल्व होगा उस समय इञ्जनका, उस सिलिंडरसे सम्बन्ध रखने वाला, क्रेंक डेड सेन्टरपर होगा जैसा कि चित्र सं० ३ में 'के" स्थान पर दिखाया है और इस वाल्वको चलाने वाली एक्सेन्ट्रिक शीवका सेंन्टर, क्रेंककी मध्यरेखा (Center line)से समकोण (Right angle) पर, अर्थात् 'स¹" स्थानपर होगा।

यदि क्रेंक "क¹" स्थानने घूमकर "क²" स्थान पर आजावे तो वाल्वको चलानेवाली एक्सेन्ट्रिक शीवका सेन्टर "स¹" स्थानसे घूमकर "स²" स्थानपर आजावेगा। इस हालत में पिस्टन तो लगभग अपनी दौड़के बीचमें होगा और वाल्व बायें हाथके स्टीम पोर्टको पूरा खोले हुए अपनी दौड़के अन्तिम विन्दुपर होगा।

यदि वही क्रेंक "क²" स्थानसे चलकर "क³" स्थान पर आजावे तो एक्सेन्ट्रिक शीवका सेन्टर भी "स²" स्थानसे चलकर "स³" स्थानपर आजावेगा। इस हालतमें वाल्व फिर अपनी दौड़के बीचमें रहकर दोनों पोर्टोंको चित्र सं० २ के अनुसार ढके हुए होगा, और पिस्टन अपनी दौड़के दाहिने सिरे पर अर्थात् दाहिने डेड सेन्टरपर होगा।

इस प्रकारके वाल्ववाले इञ्जनमें, जिस समय पिस्टन एक सिरेसे अपनी दौड़ (stroke) आरम्भ करता है उसी समय स्टीमपोर्टका खुलना भी आरम्भ हो जाता है। और जिस समय पिस्टन दूसरे सिरेपर पहुँचकर अपनी दौड़को खतम करता है, तबतक वह पोर्ट पूरा खुलकर वापर बंद भी हो जाता है।

इस प्रकारसे पिस्टनकी पूरी दौड़ भरमें बायलरकी ताज़ा स्टीम आती रहती है और दौड़ खतम होते ही वह पूरी सिलिंडर भर स्टीम हवामें निकल जाती है।

यदि वाल्वके बाहरी किनारोंको चित्र सं० ४ के अनुसार बढ़ाकर बना दिया जावे, जिससे कि वे सिलिंडरके स्टीम पोर्टोंको ढकनेके अलावा अपनी दौड़के बीचकी हालत में सिलिंडरके 'फेस*" को भी कुछ ढकलें (देखिये चित्र सं० ४ में "ल") तो वाष्पका सिलिंडरमें काम करनेका
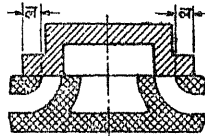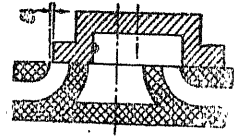
चित्र सं० ४

चित्र सं० ५

तरीक़ा ही बदल जायगा। इस प्रकारके वाल्व वाले इञ्जनमें जब कि पिस्टन डेड सेन्टर पर होता है, वाल्व अपनी दौड़ बीचमें न रहकर कुछ आगे सरका रहता है, और वह भी इतना कि जिससे, जिस तरफके डेड सेन्टरपर क्रेंक हो, उस तरफका पोर्ट वाष्पके लिये लगभग $\frac{1}{16}$" से $\frac{3}{16}$" तक खुल जाय। ठीक कितना खुले यह इञ्जन की शक्ति और बनावट पर निर्भर रहता है। देखिये चित्र सं० ५।

लीड (Lead):-- पिस्टनके डेड सेन्टरपर होने की हालतमें उस तरफका स्टीमपोर्ट जितना खुल जाता है उसे 'लीड" कहते हैं।

देखिये चित्र सं० ५ में "क"

लैप (Lap)-- वाल्वके अपनी दौड़के बीचमें

नोटः—* स्टीम चेस्टके भीतर सिलिंडर की जिस सतह पर वाल्व आगे और पीछे सरकता है, वह, सिलिंडरका "स्टीमफेस" अथवा "फेस" कहलाता है।

होनेकी हालतमें उसके सिरे सिलिंडरके "फेस"को पोर्टों को ढकनेके अलावा जितना अधिक ढकलेते हैं, वह वाल्व का "लैप" कहलाता है। चित्र सं० ४ में "ल"।

लैपवाले वाल्वकी एक्सेन्ट्रिककी जगह

जैसा पहिले बताया जाचुका है कि बिना लैपवाले वाल्वके इञ्जनके धुरेपर तो एक्सेन्ट्रिक क्रैंककी मध्यरेखा से समकोण (९०° का कोण)पर लगायी जाती है। जैसे कि चित्र सं० ३ में "क१" क्रैंकके लिये "स१" जगह पर एक्सेन्ट्रिक लगायी गयी हैं। क्योंकि इस प्रकारके इञ्जनमें जबकि पिस्टन डेडसेन्टरपर होता है वाल्व अपनी दौड़के बीचमें होता है। जैसा कि चित्र सं० २में दिखाया है। लेकिन लैपवाले वाल्वके इञ्जनमें, पिस्टन जब कि किसी डेडसेन्टरपर होता है, तब वाल्व, उस तरफके पोर्टमें "लीड" खोल देता है। इसलिये इस प्रकारके इञ्जनोंके धुरेपर एक्सेन्ट्रिकको समकोणसे कुछ आगे बढ़ाकर लगाते हैं, जिससे कि वाल्व बीचमेंसे इतना हट जावे कि उसके लैपका हिस्सा भी पोर्टके ऊपरसे साफ हो जावे और जरूरी "लीड" भी खुलजाय। चित्र सं०६में एक्सेन्ट्रिक "स" को "अ" अंश आगे घुमाकर लगाया है।

ऐंगिल आफ एडवान्स Angle of advance लैपवाले वाल्वके इञ्जनमें एक्सेन्ट्रिकको क्रैंककी मध्यरेखा के समकोणसे जितने अंश हटाकर लगाया जाता है, उतने अंशोंका कोण "एंगिल आफ एडवान्स, कहलाता है। देखिये चित्र सं० ६ में "अ"।
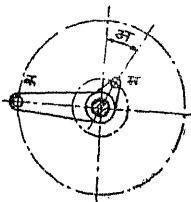
चित्र सं० ६

पिस्टन वाल्व

जिस प्रकारके वाल्वका अब तक जिकर हुआ है वह आजकल बहुत पुराने ढंग का समझा जाता है, और बहुत पुराने और छोटे इञ्जनोंमें ही पाया जाता है। बीचके जमाने के इञ्जनोंमें, जो कि आजकल बहुतायतसे चल रहे हैं और बनाये भी जाते हैं, "पिस्टन वाल्व" लगाये जाते हैं।

पिस्टन वाल्व, एक स्पिंडल पर एक नियत फासले पर दो पिस्टन लगाने से बन जाता है। देखिये चित्र सं० ७ और ८। इस प्रकारके वाल्वसे कई लाभ होते हैं, जो
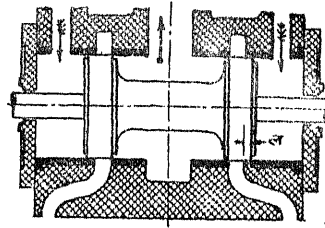
चित्र सं० ७

आगे चलकर वाल्वके अध्यायमें समझाये जावेंगे। पिस्टन-वाल्व भी दो प्रकारके होते हैं। एक तो वे जिनमें दोनों पिस्टनोंके बाहर की तरफसे वाष्प सिलिन्डरमें घुसती है और भीतरसे अर्थात् दोनों पिस्टनोंके बीचमें रहने वाली खाली जगहमें से झूठी वाष्प वाहिर निकल जाती है। चित्र
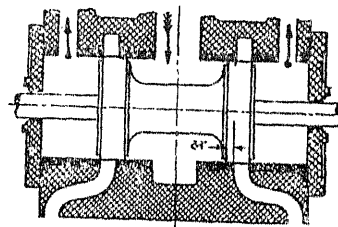
चित्र सं० ८

सं ७ में इसी प्रकारका वाल्व दिखाया है। उसमें "ल" वाल्व का "लैप" बताया है। इसकी कार्यप्रणाली बिलकुल वैसी ही है जैसी की डी-स्लाइड वाल्वकी होती है। इस प्रकारका वाल्व "बाहरी प्रवेश" (Outside admission) वाल्व कहलाता है। यह वाल्व "जलमिश्रित वाष्प "(Saturated steam)के इञ्जनोंमें ही लगाये जाते है।

दूसरी प्रकारके वाल्व होते हैं जिनमें दोनों पिस्टनों के बीचमें से होकर ताज़ा वाष्प सिलिन्डरमें कार्य करनेको जाती है और बाहर की तरफसे झूठी वाष्प निकल जाती है। इस प्रकारके वाल्व अतितप्त वाष्प (Super-heated steam) वाले इञ्जनोंमें लगाये जाते हैं, इस प्रकारके

वाल्वको "भीतरी प्रवेश" (Inside admission) वाल्व कहते हैं।

सिलिन्डरमें वाष्प कैसे काम करती है ?

इस प्रश्नका उत्तर देनेके लिये चित्र सं० ' में, इञ्जन के धुरेके पूरा एक चक्कर लगाने के समयमें सिलिन्डर और स्टीमचेष्टमें क्या क्या घटनाएं बीत जाती हैं उनकी दसदशाओंके १० चित्र अलहदा अलहदा बनाकर समझाया है।

इन चित्रोंमें सिलिंडर, स्टीम चेस्ट, पिस्टन, पिस्टन वाल्व (भीतरी प्रवेशवाला) क्रेंक और कनेक्टिंग राड आदि केवल मोटी रेखाओंद्वारा प्रदर्शित किये गये हैं। पिस्टन, पिस्टन वाल्व और क्रेंक किस दिशामें चल रहे हैं, यह बात उन्हींके पास बने हुए वाणों द्वारा प्रदर्शित की गयी है। बायलरमें से सिलिंडरमें आनेवाली ताज़ा वाष्प गहरे लाल रंगद्वारा प्रदर्शित की गयी है और फैलती हुई वाष्प (Steam in expansion) लालरंगकी तिरछी लकीरों द्वारा, काम कर चुकनेके बाद बाहर निकलने वाली झूठी वाष्प हरेरंगकी तिरछी लकीरोंद्वारा, और वही झूठी वाष्प बाहर न निकल सकनेके कारण जब सिलिंडर में कैद हो जाती है, और पिस्टनकी वापसी दौडके अन्तमें पिस्टनके द्वारा दबायी जाती है गहरे हरे रंगद्वारा प्रदर्शित की गयी है। यदि इस चित्रका नीचे दिये हुए संक्षिप्त वर्णन के साथ मनन किया जावेगा तो आशा है पाठकोंको वाष्प इञ्जनकी सबसे पहिली और कठिन समझी जानेवाली आवश्यक पहेली सरल हो जावेगी।

चित्र सं० ६ क

१—क्रेंक आगेके अर्थात् बायें हाथके डेड सेन्टरपर है और इञ्जनका पहिला पहिया घड़ीकी सुइयोंकी दिशामें घूम रहा है।

२—पिस्टन अपनी आगेकी दौड़ खतम करकर पीछे लौटनेकी तयारीमें है।

३—बायें हाथका पोर्ट वाष्पके लिये, "लीड" की नियत मात्रामें, खुला हुआ है।

४—दाहिने हाथका पोर्ट एग्झहास्टके लिये खुला है।

५—वाल्व बायें हाथकी तरफ सरक रहा है।

६—सिलिंडरमें बायें हाथकी तरफ ताजा वाष्प आरही है।

७—सिलिंडरमें दाहिने हाथकी तरफ एग्झहास्ट होरहा है अर्थात् काम कर चुकनेके बाद वाष्प बाहर निकल रही है।

चित्र सं० ६ ख

१—क्रेंक डेड सेन्टरसे आगे निकल गया है।

२—पिस्टन वाष्पके जोरसे लगभग चौथाई दौड़ खतम कर चुका है।

३—बायें हाथका पोर्ट वाष्पके लिये पूरा खुलगया है।

४—दाहिना पोर्ट एग्झहास्टके लिये पूरा खुला हुआ है।

५—वाल्व अपने आगेकी दौड़के अन्तिम बिन्दुपर पहुँचकर पीछेकी तरफ लौटनेकी तयारीमें है। इसके बाद स्टीम पोर्ट धीरे धीरे, बंद होने लगेगा।

चित्र सं० ६ ग

१—क्रेंक उपरके सेन्टरपर आगया है।

२—पिस्टनने लगभग अपना आधा रास्ता तय कर लिया है।

३—वाल्वने पीछेकी तरफ सरकते सरकते, बायें पोर्ट को, जिसमेंसे अबतक वाष्प सिलिन्डरमें आरही थी, ठीक बंद कर दिया है जिससे अब और अधिक ताज़ा वाष्प सिलिंडरमें नहीं जा सकती। अथवा यों कहिये कि सिलिन्डरका सम्बन्ध बायलरकी ताज़ा वाष्पसे टूट गया। वाल्वके इस प्रकारसे पोर्टको बंद कर देनेकी क्रियाको अंगरेजीमें (Cut off) "कट आफ" कहते हैं।

४—बायें हाथका पोर्ट बंद हो जानेसे, सिलिंडरमें अब तक आयी हुई वाष्प उसमें कैद हो जाती है। यह कैद हुई हुई वाष्प अपनी ताकतसे बाहर निकलनेकी चेष्टा करती है, अथवा यों कहिये कि पिस्टनको आगे ढकेलकर अधिक जगह घेरनेकी कोशिश करती है। वाष्पके इस प्रकार फैलकर पिस्टनको ढकेलनेकी क्रिया को अंगरेजीमें "एक्सपैनशन" (Expansion) कहते हैं। वाष्पके फैलनेकी क्रियाको चित्रमें लाल तिरछी लकीरों द्वारा प्रदर्शित किया है।

५—दाहिने हाथका पोर्ट अभीतक एग्झहास्टके लिये खुला है।

६—पिस्टनके दाहिनी तरफ अभीतक एग्झहास्ट हो रहा है।

चित्र सं० ९ घ

१—सिलिन्डरमें पिस्टन अब भी दाहिनी ओरको ही

चल रहा है और लगभग ८०% अपनी दौड़को पूरी कर चुका।

२–वाल्व भी इस समय दाहिनी ओरको चल रहा है और उसकी स्थिति इस समय ऐसी है कि अपनी दौडके वह बिल्कुल बीचोंबीच है, अब यदि वह हवाभर भी दाहिनी ओरको सरकता है तो बायाँ पोर्ट एग्ज्हास्टके लिये खुल जाता है, जिससे, जो वाष्प पिस्टनके बायीं ओरको कैद हो गयी थी और जिसने अपने प्रसारसे अर्थात् फैलनेकी योग्यतासे पिस्टनको बहुत कुछ चलाया था, बाहिर निकलने लगती है।

४–साथहीमें दाहिना पोर्ट जो अबतक एग्ज्हास्टके लिये खुला था बंद हो जाता है। इस पोर्टके बंद हो जानेसे थोड़ी बहुत वाष्प जो एग्ज्हास्टके रस्तेसे निकलने बचगयी थीं अब कैद हो जाती है, और पिस्टन जो इस समय अपनी शेष दौडको अपने झोंकसे पूरा करता है कैद हुई हुई वाष्प को दबाता है। इस दबानेकी क्रियाको "संकोच" और अंगरेजी भाषामें "कम्प्रेशन" (Compression) अथवा "कुशनिगं" (Cushioning) कहते हैं।

चित्र सं० ९ च

१–पिस्टन अब भी दाहिनी ओर को ही चल रहा है और वाल्व भी उसी तरफ।

२–बाँया पोर्ट एग्ज्हास्टके लिये खुल रहा है याने पिस्टनके बांयीं तरफ एग्ज्हास्ट हो रहा है।

३–ठीक इस समयपर दाहिना पोर्ट वाष्पके लिये खुलना शुरू हो गया है। पोर्टके वाष्पके लिये खुलना आरम्भ होनेकी घटनाको कहते हैं कि "प्रवेश" अर्थात् Admission आरम्भ हो गया।

हमें यहां पर समझलेना चाहिये कि वाष्पका प्रवेश वाष्पके संकोचके अन्तमें, पिस्टनके डेड सेन्टरपर पहुँचनेके जरासी देर पहिले ही आरम्भ हो जाता है।

चित्र सं० ९ छ

१–पिस्टन पीछेवाले अर्थात् दाहिने डेड सेन्टरपर पहुँच गया है।

२–बाँये पोर्टसे एग्ज्हास्ट चालू है।

३–दाहिना पोर्ट "लीड" की नियत मात्रा मे खुल चुका है।

४–पिस्टन बांई तरफको लौटनेकी तयारीमें है।

चित्र सं० ९ ज

१–क्रैंक अबतक तो ऊपरके गोलार्द्धमें चल रहा था अब वह नीचेके गोलार्द्धमें आगया अर्थात् पीछेके डेड सेण्टर से काफी नीचे उतर आया है।

२–इस हालतमें पिस्टनने लगभग एक चौथाई अपनी वापसी दौड़ पूरी करली है।

३–दाहिना अर्थात् पीछेवाला पोर्ट वाष्पके लिये पूरा खुल गया है। इसके बाद अब वह धीरे धीरे बन्द होने लगेगा।

४–वाल्व अपनी पीछेकी दौड़के अन्तिम बिन्दुपर पहुँच गया है।

५–बायाँ पोर्ट एग्ज्हास्टके लिये पूरा खुला है।

६–पिस्टनके बायीं ओर अब भी एग्ज़्हास्ट हो रहा है।

चित्र सं० ९ झ

१–पिस्टनने अपनी वापसी अर्थात् आगेकी दौड़का लगभग आधा रास्ता तय कर लिया है।

२–वाल्वने आगेकी ओर सरकते सरकते दाहिने स्टीम पोर्टको जिसमेंसे अबतक स्टीम आ रही थी, ठीक बंद कर दिया है। यह दूसरी तरफका "कटआफ" हो गया।

३–इस कट आफकी घटनाके कारण पिस्टनके दाहिनी तरफ जो वाष्प कैद हो गई है अब वह अपनी शक्तिसे फैलकर पिस्टनको आगे ढकेलेगी।

४–बायीं तरफका पोर्ट एग्ज्हास्टके लिये खुला है अतः पिस्टनके बाईं तरफ अभीतक एग्ज्हास्ट हो रहा है।

चित्र सं० ९ ट

१–पिस्टन अपनी बायीं तरफकी दौड़का ८०% रास्ता तय कर चुका है।

२–इस समय वाल्व भी बायीं ओरकोही चल रहा है, उसकी स्थिति इस समय ऐसी है कि वह अपनी दौड़के बिल्कुल बीचोंबीच है, अब यदि वह बाँयीं ओरको हवाभर भी अधिक सरकता है तो दाहिना पोर्ट एग्ज्हास्टके लिये खुल जाता है। और जो वाष्प पिस्टनके दाहिनी ओर को कैद हो गयी थी, और जिसने अपने "प्रसार" अर्थात् फैलावके गुणसे कटआफके बाद पिस्टनको यहांतक चलाया, बाहर निकलने लगगयी है।
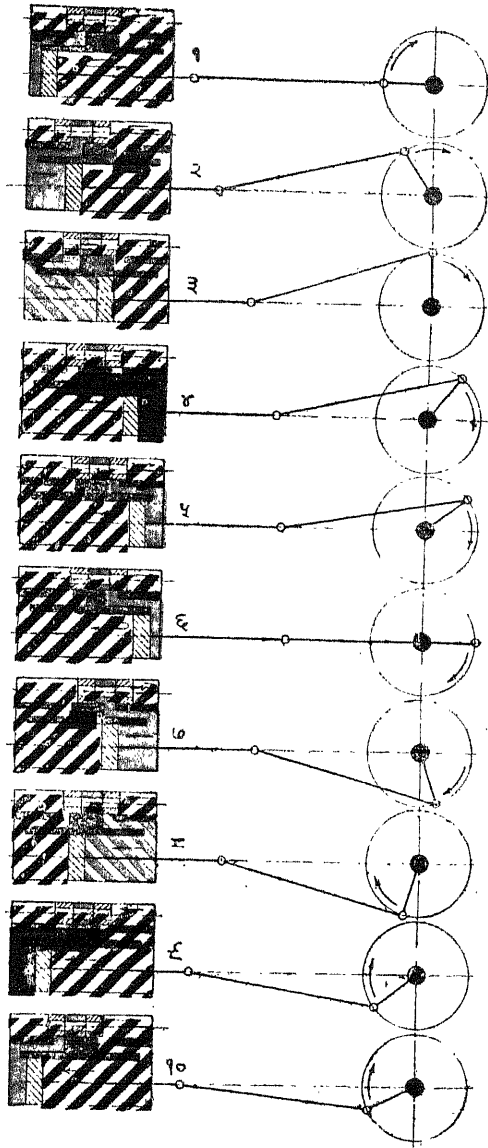
वाष्प इञ्जनके सिलिंडरोंके घटना-चक्रकी सारणी

चित्र सं०	पिस्टनकी गति	बायां पोर्ट	पिस्टनके बांयीं तरफ	दाहिना पोर्ट	पिस्टनके दांहनी तरफ	वाल्वकी गति
९ क	बायाँ डेड सेन्टर	अग्र प्रवेश Lead	प्रवेश admission	मोक्ष Exhaust	मोक्ष Exhaust	बायें हाथको
९ ख	दाहिने हाथको	वाष्पके लिये पूरा खुला Maximum opening to steam	प्रवेश admission	मोक्षके लिये पूरा खुला Maximum opening to exhaust	मोक्ष Exhaust	दाहिने हाथको लौटनेकी तयारी
९ ग	दाहिने हाथको	विच्छेद विन्दु Point of cutoff	प्रसार आरम्भ Expansion Begins	मोक्ष Exhaust	मोक्ष Exhaust	दाहिने हाथको
९ घ	दाहिने हाथको	मोक्ष विन्दु Point of release	मोक्ष आरम्भ (Release) Exhaust Begins	संकोच विन्दु Point of Compression	संकोच आरम्भ Compression Begins	दाहिने हाथको
९ च	दाहिने हाथको	मोक्ष Exhaust	मोक्ष Exhaust	प्रवेश विन्दु Point of Admission	प्रवेश आरम्भ Admission begins	दाहिने हाथको
९ छ	दाहिना डेड सेन्टर	मोक्ष Exhaust	मोक्ष Exhaust	अग्र प्रवेश Lead	प्रवेश Admission begins	दाहिने हाथको
९ ज	बायें हाथको	मोक्षके लिये पूरा खुला Maximum opening to exhaust	मोक्ष Exhaust	वाष्पके लिये पूरा खुला Maximum opening to steam	प्रवेश Admission	बायें हाथको लौटनेकी तयारी
९ झ	बायें हाथको	मोक्ष Exahaust	मोक्ष Exhaust	विच्छेद विन्दु Point of Cutoff	प्रसार आरम्भ Expansion Begins	बायें हाथको
९ ट	बायें हाथको	संकोच विन्दु Point of Compression	संकोच आरम्भ Compression Begins	मोक्ष विन्दु Point of release	मोक्ष आरम्भ (Release) Exhaust Begins	बायें हाथको
९ ठ	बायें हाथको	प्रवेश विन्दु Point of admission	प्रवेश आरम्भ admission begins	मोक्ष Exhaust	मोक्ष Exhaust	बायें हाथको

सारणी २—वाल्वका लैप, दौड़ और अग्रकोणको बढ़ाने और घटानेका सिलिंडरके घटना-चक्रपर असर

			प्रवेश Admission	प्रसार Expansion	मोक्ष Exhaust	संकोच Compressio
बढ़ाने से	बाहरका लैप	आरम्भ समाप्त समय	देरमें जल्दी कम	जल्दी पूर्ववत् अधिक	पूर्ववत् पूर्ववत् पूर्ववत्	पूर्ववत् देरमें अधिक
	भीतरका लैप	आरम्भ समाप्त समय	पूर्ववत् पूर्ववत् पूर्ववत्	पूर्ववत् देरमें अधिक	देरमें जल्दी कम	जल्दी पूर्ववत् अधिक
	अग्रकोण Angle of advance	आरम्भ समाप्त समय	जल्दी जल्दी पूर्ववत्	जल्दी जल्दी पूर्ववत्	जल्दी जल्दी पूर्ववत्	जल्दी जल्दी पूर्ववत्
	वाल्वकी दौड़	आरम्भ समाप्त समय	जल्दी देरमें अधिक	देरमें जल्दी कम	जल्दी देरमें अधिक	देरमें जल्दी कम
घटाने से	बाहिरका लैप	आरम्भ समाप्त समय	जल्दी देरमें अधिक	देरमें पूर्ववत् कम	पूर्ववत् पूर्ववत् पूर्ववत्	पूर्ववत् जल्दी कम
	भीतरका लैप	आरम्भ समाप्त समय	पूर्ववत् पूर्ववत् पूर्ववत्	पूर्ववत् जल्दी कम	जल्दी देरमें अधिक	देरमें पूर्ववत् कम
	अग्र कोण Angle of advance	आरम्भ समाप्त समय	देरमें देरमें पूर्ववत्	देरमें देरमें पूर्ववत्	देरमें देरमें पूर्ववत्	देरमें देरमें पूर्ववत्
	वाल्वकी दौड़	आरम्भ समाप्त समय	देरमें जल्दी कम	जल्दी देरमें अधिक	देरमें जल्दी कम	जल्दी देरमें अधिक

३—बायीं तरफका पोर्ट जिसमेंसे अभीतक एग्ज़हास्ट हो रहा था, बंद हो जाता है। इस पोर्टके बंद हो जानेसे थोड़ी बहुत वाष्प जो एग्ज़हास्टके रास्तेसे निकलनेसे बच-गयी थी वहींपर कैद हो जाती है और पिस्टनके द्वारा दबायी जाती है।

चित्र सं० ६ ठ

१—पिस्टन अब भी बाँयीं ओरको ही चल रहा है और बाल्व भी उसी तरफ।

२—दाहिना पोर्ट एग्ज़हास्टके लिये खुला है।

३—बाँया पोर्ट ठीक इस समय वाष्पके लिये खुलगया।

इसके बाद पिस्टन फिर अपनी आगेकी दौड़के अन्तिम विन्दु अर्थात् आगेके डेड सेन्टरपर पहुँच जाता है और बांयीं तरफ आयी हुई बाष्पके जोरसे पीछेको लौटनेकी तयारी करता है। जैसाकि चित्र संख्या ९ क में दिखाया है। इस प्रकारसे सिलिन्डरमें वाष्पका कार्यक्रम ऊपर बताये हुए घटनाचक्रके अनुसार फिर-फिर-कर होता रहता है। ध्यानमें रखना चाहिये कि पिस्टनकी आगे और पीछेकी दौड़में घटनाचक्र एकसा ही रहता है, अर्थात् पहिले वाष्प आती है फिर उसका कटआफ होकर वह फैलती है, फिर वह झूठी हुई वाष्प बाहर निकलती है और फिर अन्त में उसका थोड़ा हिस्सा कैद होकर दबाया जाता है।

यहांपर पाठकोंके सुविधार्थ उपरोक्त वर्णनको सारणी रूपमें संक्षेपमें दिया जाता है। इस सारणीमें चित्रोंका हवाला भी दिया गया है। इसका अध्ययन चित्रोंके साथ ही करना चाहिये।

वाष्पके प्रसार (Expansion) से लाभ

वाष्पके कम खर्चमें पूरा काम होता है।

वाष्पके संकोच (Compression) से लाभ

१—पिस्टनकी दौड़के अंतमें चलते हुए पुर्जोंकी गतिका सहजहीमें बिना झटकेके अवरोध होता है।

२—वाष्पके मोक्ष समयके अन्त (End of exhaust period) में वाष्पका दबाव बहुत कम हो जाता है, और इससे उसकी गरमी भी कम हो जाती है। यदि इसी हालतमें ताज़ा वाष्प भीतर ले आयी जावे तो वह जम कर ठंडी हो जावेगी और उसकी शक्ति भी कम हो जावेगी। लेकिन पिस्टनकेद्वारा दौड़के अंतमें संकोच (Compression) हो जानेसे उसका दबाव और गरमी बढ़ जाती है जिससे ताज़ा वाष्पसे, जो संकोचके बादही एकदम आजाती है, उसका मेल खा जाता है।

वाष्पके अग्रप्रवेश (Preadmission) से लाभ—

१—पिस्टनको वापस लौटानेके लिये शक्तिका संचय होने लगता है और जबतक पिस्टन अपनी दौड़के अंतमें पहुंचता है तबतक काफी शक्तिका संचय हो चुकता है।

२—पिस्टनकी दौड़के अंतमें चलते हुए पुर्जोंकी गतिका सहजहीमें बिना झटकेके अवरोध हो जाता है।

भीतरी धन लैप (Positive Inside Lap)

अबतक जिस प्रकारके वाल्वको लक्ष्यमें रखकर सिलिंडरके घटनाचक्रोंका वर्णन किया गया है उनमें केवल बाहिरकी तरफ ही लैप था और उनके भीतरी किनारे, अपनी दौड़के बीचकी हालतमें, पोर्टकी भीतरी अर्थात् मोक्षकी तरफवाली कोर (Exhaust edge) को बिल्कुल छूते रहते हैं। जैसा कि चित्र सं० ४ और ७ में दिखाया है। इस प्रकारके वाल्वके द्वारा यदि पिस्टनके एक तरफ वाष्पका निकास आरम्भ होता है तो दूसरी तरफ उसी समय, संकोच आरम्भ हो जाता है। लेकिन जब कई कारणोंसे ऐसी जरूरत पड़ जाती है कि पिस्टनके एक तरफ वाष्पका निकास तो देरसे हो और दूसरी तरफ संकोच पहिलेसे ही आरम्भ हो जाय तब ऐसी हालतमें वाल्वको भीतरी धन लैप (Positive inside lap) वाला बनते हैं। देखिये चित्र सं० १०। पोर्टके भीतरी अर्थात् मोक्षकी तरफवाली किनोरसे वाल्वकी भीतरी किनोर जितनी आगे निकली हुई हो, वह वाल्वका "भीतरी धन लैप" कहलाता है देखिये चित्र सं० १० में "ल१"।

वाल्वका भीतरी ऋण लैप (Negative inside lap)

जब किसी कारणसे ऐसी आवश्यकता पड़े कि इंजनमें पिस्टनके एक तरफ वाष्पका निकास पहिले आरम्भ हो और
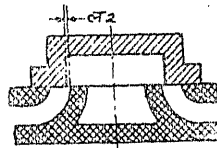
चित्र सं० १०
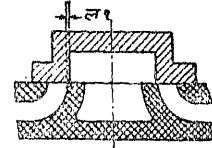
चित्र सं० ११

दूसरी तरफ संकोच बहुत पीछे आरम्भ हो, तब ऐसी हालतमें वाल्वको भीतरी ऋणलैप (Negative inside lap) वाला बनाते हैं। इस प्रकारके वाल्वमें, दौड़के बीचकी हालतमें पोर्ट और वाल्वके मोक्ष किनारोंके बीचमें कुछ झिरी रहती है। यह झिरी ही वाल्वका ऋणलैप कहलाता है। देखिये चित्र सं० ११ में "ल २"

आवश्यकतानुसार सिलिन्डरमें वाष्पके कार्यक्रमके घटनाचक्रमें परिवर्त्तन करनेके लिये वाल्वका भीतरका ऋण और धनलैप, वाल्वकी दौड़ जो इक्सेन्ट्रिककी चालपर अथवा एक्सपैन्शनगीयरपर (Expansion gear) जो अक्सर रेलके इञ्जनोंमें होता है निर्भर रहती है, एक्सेन्ट्रिकके अग्रकोण घटा अथवा बढ़ादिया जाता है। किस प्रकारका क्या परिवर्तन करनेसे क्या नतीजा मिलता है सारणी सं०२ से पता लगेगा।

विषय-सूची

निर्दोष इस्पातकी आश्चर्यमयी कहानी

[श्री हरिश्चन्द्र गुप्त]

लोहेमें जंग लग जानेहीसे प्रति वर्ष लाखों रुपयेकी हानि हो जाती है। वर्तमान युग 'कल-युग' प्रधानतः लोहे का युग है। लोहा हमारे सैकड़ों कामोंमें आता है। शायद ही कोई ऐसी वस्तु हो जिसके बनानेमें लोहेकी सहायता न ली जाती हो। किसी न किसी रूपमें हर काममें लोहेकी आवश्यकता पड़ती है। इसलिये जंगसे लाखों रुपयेके नुकसानका हो जाना कोई आश्चर्यजनक बात नहीं। लगभग २० वर्षसे विज्ञानवेत्ता जंगपर विजय प्राप्ति करनेमें जुटे हुए हैं और उन्हें बहुत कुछ सफलता मिल चुकी है। अजीब बात है कि जंगसे इस युद्धमें वैज्ञानिकोंने लड़ाई की बड़ी बन्दूकोंसे बहुत कुछ सीखा।

जंगपर विजय प्राप्त करनेके प्रयत्नकी कथा बहुत पुरानी है। जिस दिन मनुष्यने लोहेका पहिला औजार बनाया उसी दिनसे जंगसे जंग आरम्भ कर दिया। परन्तु इस कथाके मुख्य अध्याय इस शताब्दीके आरम्भमें ही लिखे गये हैं। इस घोर संग्रामके बाद आज हमारे पास निर्दोष इस्पात, अजीब धातुसंकर है जो कि इस्पातसे सम्बन्ध रखनेवाली वस्तुतः प्रत्येक उद्योगमें विशेषकर मोटरों और हवाई जहाजोंके कारगारमें अद्भुत परिवर्तन पैदा कर रही है।

आधुनिक जंग–सुरक्षित लोहेके धातु-संकरका इतिहास वास्तवमें १९१२से ही आरम्भ हो गया था और इसकी खोजमें अनेकों मनुष्योंने भाग लिया है। कोकोमों नामक शहरके निवासी एलवुड हेन्सने तड़ित-डाट (स्पार्क-प्लग) की नोक बनानेके लिये जिसमें न मोरचा लगे न खरोंच पड़ें, रांगा, नकल, और कोवल्टको लोहेके साथ मलाया। वह एक बड़े आविष्कारके बहुत कुछ निकट पहुँच गया था। पांच साल बाद जर्मनीके क्रूप-वर्क्समें वैनो-स्ट्रास नामक व्यक्तिने उपरोक्त तीन धातुओंके भिन्न-भिन्न धातु-संकरों की जांच की जिससे ताप मापककी बढ़िया नलियां बनाने लायक़ पदार्थ मिल जाय।

और दूसरे दस वर्षतक इधर-उधर इन तीन धातुओं के तरह-तरहके मेलोंसे यह कोशिश होती रही कि ऐसे धातु-संकर और ढाल बन जाय जिनमें निशान या खरोंच न होने पावे। और जो ओष-सिरकीलनकी लपटसे भी न कटें।

लोहेको रांगेके साथ मिलानेकी कोई नयी प्रथा नहीं। सन् १८६९ ई०से ही ताले, सेफ़ आदिके बनानेमें रांगा-इस्पातका प्रयोग होता रहा है। लेकिन यह शैफ़ील्ड शहर की ईस्पात कम्पनीके खोज-विभागके प्रधान हैरी ब्रेरलेका ही सौभाग्य था जो उन्हें लोहे-रांगेके मेलोंके ख़ास गुणका कि ये गलते, कटते नहीं, पता चला। ब्रेरले बड़ी बन्दूकोंके अस्तरके लिये बढ़िया धातुकी तलाशमें थे। सेनसाविभागके अफ़सरोंकी यह आम शिकायत थी कि बंन्दूकें बहुत कम दिन चलती थीं क्योंकि इनके सूराख़में गर्मीसे कटाव बहुत होता था।

एक गोलीके छोड़नेसे ही बड़े कैलीबरकी बन्दूकोंमें इतनी गर्मी पैदा होती थी कि वह धातुकी पतली तहको जो उस समयमें इस्तैमाल होती थी पिघला दे। साथही साथ विस्फोटनसे पैदा हुए रासायनिक पदार्थ सूराख़पर गलावक्रिया करते थे।

ब्रेरलेको यह तो मालुम था ही कि जिस इस्पातमें कम कार्बन मिला होगा वह उतनाही मुश्किलसे पिघलेगा। इसलिये कार्बनका अंश कम करके बन्दूकके अस्तरके इस्पातका द्रवांक तो बढ़ जायगा लेकिन उसमें फिर सख़्ती कम हो जायगी। इसलिये उन्होंने लोहे और रांगेको विविध अनुपातोंमें मिलाया और जांच की, लेकिन बन्दूकके अस्तर की सभी ज़रूरतें पूरी करनेवाला पदार्थ न बना। प्रयोगों का एक ढंग यह भी था कि इन मेलोंके छोटे छोटे टुकड़े काटे। प्रत्येककी एक सतहपर पालिश की और उनकी रवेदार बनावटकी सूक्ष्मदर्शक द्वारा जांच करनेके लिये तेज़ाब से खोदनेकी (एचिङ्ग की) कोशिश की। लेकिन कुछ मेलों पर एचिङ्ग हुआ ही नहीं। रासायनिक पदार्थोंके होते हुए भी उनकी तह दर्पण जैसी चमकीली बनी रही।

तब ब्रेरलेने चाकुओंके फलकी तरफ़ ध्यान दिया। उन्होंने ऐसे धातु संकरोंसे प्रयोग किये जिनसे उन्हें आशा

थी कि मज़बूत और सख्त फल बन जायगा जिसपर धार ठहर सके। बन्दूकके अस्तरके लिये जो मेल देखे थे उनमें से कुछ चाकूके फलपर आज़माइश किये और उन्हें मालुम हुआ कि कुछ फलोंपर जंग नही लगा। ये फल उन्हीं धातु संकरोंके बने हुए थे जिन पर ऐचिङ्ग नही हुआ था।

बस १९१६ में अपने लोहे-रांगेके धातु-संकरपर पेटेन्ट करा लिया और निर्दोष इस्पातके धातुसंकरोंका पहिला प्रयोग कारदफ़रोशीमें हुआ।

इसके बाद अब जर्मनीका नम्बर आता है। कांसा आदि धातु-संकरोंको नकल मिलाकर बढ़िया करनेकी कोशिश की गयी।

निर्दोष इस्पात बड़ा अक्खड़ धातु है। अपने सामने किसी की चलने नहीं देता। अगर लोहा नामको भी इससे चुपक जाय तो इसमें जंग न लगनेकी ख़ासियत नहीं रहती इसी कारण और धातुसंकरोंकी अपेक्षा यह अधिक क़ीमती पड़ता है। इसके बनानेमें शुरूसे आख़ीरतक यह ध्यान रखना पड़ता है कि इसमें कहीं कभी लोहा न चुपक जाय या कोई निशान वगैरःकी खराबी न आजाय। रोलिङ्ग मिल से निकलते ही इसकी चादरें लोहे और इस्पातसे बचाकर रक्खी जाती हैं। जहां भी सम्भव हो लकड़ीके तख्तों और बेलनोंपरहीसे इसे ढकेला जाता है। हर बार गरमकर बुझाने, या ठंडी हालतमें पीटने, या पालिश करनेके पहिले और बादमें यह क़ागजसे ढककर रखाजाता है।

निर्दोष इस्पातकी घोंट (फ़िनिश) उसीके मुआफ़िक है जिस कामके लिये यह चाहिये। कभी कभी केवल रोलिङ्गमिलसे निकली हुई हालतमें ही इसमें आवश्यक होती है। कभी ऐसे ब्रुश जिसके बालोंमें रगड़नेकी कल हो फेरनेसे ही काम हो जाता है। दर्पण-घोंटके लिये पहिले बारीकसे बारीक रेता जाता है और फिर एक ऐसे रासायनिक पदार्थका जिससे कि परावर्तक सतह बन जाय प्रयोग किया जाता है। इस प्रकारके इस्पातसे स्वयं दर्पण बनते हैं और जेलखानोंमें, अस्पतालोंमें लड़ाईके जहाजोंमें या जहां-कहीं शीशेके प्रयोगसे डर हो इसीको इस्तेमाल करते हैं। यह वास्तवमें सजावटके काममें भी आता है।

दुकानपर भी इस निर्दोष इस्पातको लोहे और मामूली इस्पातसे बचाकर रखना पड़ता है। इससे ठप्पे बांक आदि औज़ार बनती हुई हालतमें कागज़से या चुपकते हुये फीतेसे बचाकर रक्खे जाते हैं। जब ऐसा नहीं हो सकता तो विजातीय कणोंको दूर करनेके लिये नोषिकाम्लका प्रयोग किया जाता है।

तरह तरहके कामोंके लिये इस निर्दोष इस्पातमें तरह तरहकी और धातुएं जोड़ी जाती हैं। इनकी वजहसे ही यह कीमती हो जाता है। मोटरोंके बहुतसे अंगोंको बनानेके लिये इसमें १८ प्रतिशततक रांगा मिला रहता है। रंग रोगनसे बचे रहनेवाले इस्पातमें सुनाग धातुका प्रयोग होता है। शशिनम धातुके मिलानेसे यह मशीनके कामका हो जाता है।

निर्दोष इस्पात रसोईके वर्तनमें, दांत और सुश्रुतके विविध औज़ारोंमें, इमारतों, मोटरों, मशीन आदिकी सैकड़ों बहुत सी चीजें बनानेके काम आता है। आश्चर्य तो यह है कि इस इस्पातको इस ढंगपर मिले केवल एक पीढ़ी हुई है और इसका दाम और धातुओंसे कहीं ज्यादा यानी ५ रुपये सेर है। इसकी छीलन भी रुपये सेर बिक जाती है।

इतनी सफलता होनेपर भी वैज्ञानिकोंका विचार है कि अभी तो ख़ाली शुरुआत हुई है। इसके मोटरों और जहाजोंके सामान बनाये जानेके काममें आनेकी बहुत कुछ मैदान ख़ाली पड़ा है। जे० एच० फिशैलका कहना है कि कुछही दिनोंमें बेदाग धातु-संकरोंकी मोटरें जिनमें न पालिश हो न और कोई घोंट हो, चलने लगेंगीं। आज ऐसी मोटरकारमें बहुत रुपया लगेगा लेकिन मज़बूत वे-दाग धातु-संकरोंके बनते ही और उनके सस्ते दामोंपर सुलभ होनेपर (Stream lining) धारा-वाहक मोटरें जिनके अंग प्रत्यङ्ग बनाना सरल होगा हर मनुष्यके पास होंगा।

भविष्यके हवाई जहाज़ोंमें, जैसा फिशैल साहबका कहना है, सबपर इसी बेदाग इस्पातकी मज़बूत, पतली चादरोंके बने हुए टप होंगे। ऐसी चादरें बनानेकी कोशिश हो रही है। इस प्रकारके जहाज़ अधिक मज़बूत होंगे और उनमें गलाव लगनेका डर न रहेगा और न आग लगनेका।

साधरण लोहेके धातु-संकरमें जंग लगनेके दो कारण हैं। पहिला यह है कि लोहा पानीमें घुलनशील है इसलिये ओषजन इसतक पहुँच सकता है और इसका ओषिद बना सकता है। दूसरे सील रहनेसे और लोहेके कणोंमें दूसरी

चीजोंके होनेसे छोटी धारा बैटरी बनजाती हैं जो विद्युत-क्रिया से लोहेको नष्ट करदेती है। निर्दोष इस्पातमें रांगेका जो विशेष भाग होता है हवा लगने पर कुछ क्षणोंमें ओषिद बन जाता है। इस कारण प्रत्येक निर्दोष इस्पातके टुकड़ेकी सतहपर रांगा-ओषिदकी तह होती है जो अन्दरके लोहेतक ओषजन नहीं जाने देती। नकल कोलम्बम् आदि धातुओंका भी एक काम यही है।

यदि यह रांगाओषिदकी सतह टूट जाय तो इतनी जल्दी यह फिर बन जाती है कि गलाव नहीं लगने पाता। वास्तवमें कुछही ऐसी वस्तुएं हैं जिन्होंने इतनी उन्नति पायी हो। अब जंगका भय बहुत कम हो जायगा।

जापानसे रबरके खिलौने और कपड़ेके थान आदि तो भारतमें खूब आते ही है। अब तक लोहेका सामान नहीं आता था क्यों कि जापानमें लोहा मिलता ही कम है। अब उन्होंने हिन्दुस्तानसे जो लोहा फेंक दिया जाता है मँगाना शुरू कर दिया है। अबतक जो बेकाम लोहा गड्ढोंमें फेंका जाता था वह सब निकालकर जापान भेजा जारहा है। कहीं कहीं यहां भी इस बेकार लोहेको गलाकर और ढालकर उनसे कैंचियां बनायी जाती हैं।
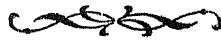
मैं होमियोपैथ कैसे हुआ ?

एक अलोपैथ सर्जनकी स्वीकृति

डाक्टर जगन्नाथप्रसाद साहब, एम० बी०, बी० एस्०, बनारसके ही रहनेवाले हैं, जो आजकल एक कुशल होमियोपैथकी हैसियतसे प्रसिद्ध हैं। आपने लाहौर मेडिकल कालिजसे एम्० बी०बी० एस्०की डिग्री आजसे लगभग पचीस वर्ष पहले ली थी। डिग्री लेनेके बाद दस बरससे अधिक काल तक उन्होंने अलोपैथीकी प्रैक्टिस की। कलकत्तेमें डाक्टरोंको कठिन होड़में डाक्टरी करते हुए बड़े यशस्वी हुए। परन्तु अपनी पारिवारिक घटनाओं से उन्हें होमियोपैथीके गंभीर अनुशीलनका अवसर मिला और उनको इस विज्ञान और उपचारके ऐसे अद्भुत अनुभव हुए कि उन्होंने बड़ी आमदनी वाली डाक्टरीकी चिकित्साका काम छोड़कर बहुत कम आमदनीकी होमियोपैथिक प्रैक्टिस शुरू की।

इनसे पहले कई और अल्लोपैथ होमियोपैथी चिकित्साका अनुशीलन करके होमियोपैथ बन चुके हैं। स्वयं सैमुएल हनिमान जो होमियोपैथीका पिता है, पहले प्रसिद्ध अल्लोपैथ था। कलकत्तेके प्रसिद्ध होमियोपैथ डाक्टर स्व० महेन्द्रलाल सरकार पहले अल्लोपैथ एम० डी० थे। डाक्टर यूननकी भी यही दशा थी। अतः डा० जगन्नाथप्रसाद भी इन्ही प्रसिद्ध विद्वान होमियोपैथोंके पदचिह्नपर चले हैं। बनारसकी होमियोपैथिक अकेडेमीके एक सार्वजनिक अधिवेशनमें डाक्टरसाहबने अपने मतपरिवर्तन की जो कथा सुनायी उसे हम पाठकोंके लाभके लिये संक्षेपमें अपने शब्दोमें देते हैं।

१. भृगुसंहिताकी सत्यता

डाक्टर जगन्नाथप्रसाद साहबके पूज्य पितृचरणोंने अपनी संततिके और अपने भविष्यके सम्बन्धमें भृगुसंहिता के द्वारा विचार करवाया था। जितनी बातें भविष्यके सम्बन्धमें इस परिवारके बारेमें मालूम हुई थी, सिवाय दोके सभी अक्षरशः सत्य निकलीं। इनकी दो बहिनें क्षय रोगमें मरीं। इनके बड़े भाई नौजवानीमें पागल रहे. काशी, बरहामपुर और लाहौरके पागलखानोंमें रहे। पागलपनेका रोग इन सबको नानीकी ओरसे मिला था। ज्योतिषसे डाक्टरसाहब का भी चिकित्सक होना, पागल होना, और ४८ बरसकी उम्रमें मर जाना निश्चित था। आज चार भाइयों और बहिनोंमें केवल डाक्टरसाहब मौजूद हैं, और पागल नहीं हैं, और साथही ४८ बरसकी अवस्थाको पार कर चुके हैं, यह सब होमियोपैथीकी ही बदौलत है, जैसाकि घटनाक्रमसे आगे चलकर स्पष्ट होगा।

२. झूठे अभियोगपर दंड

पिताका विचार था कि पुत्र जगन्नाथप्रसाद वकील हो। म्योर कालिज प्रयागमें ये जब सन् १९०७ में एफ़० ए० पास हुए और बी० ए०में पढ़ना चाहते थे, उस समय एक विचित्र घटना हुई। पुलिसकी इस रिपोर्ट पर कि 'जगन्नाथ प्रसाद राजनीतिक आन्दोलनमें सम्मिलित थे और व्याख्यान दिये, प्रिंसपल जेनिंग्सने इन्हें निकाल दिया। वास्तविक बात यह थी कि क्रिश्चियन कालेजके किसी जगन्नाथप्रसाद की वह करतूत थी जिसका फल नामधारी होनेके कारण इन्हें भुगतना पड़ा। असल में ये निर्दोष थे। इनके पितासे यह सहा नहीं गया। उन्होंने प्रिंसिपल पर दावा करनेकी तैयारी की। अन्ततः प्रिंसिपलने इन्हें सच्चरित्रताका प्रमाणपत्र तो दिया, पर इन्हें अपने कालिजमें भरती नहीं किया और दूसरे आर्ट्स कालिजोंमें भी ये भरती न हो सके। लाचार हो कर बी० ए० एल० एल० बी०, होनेका विचार छोड़ना पड़ा और ये लाहौर मेडिकल कालिजमें प्रवेश करनेके लिये चले। रेलगाड़ीमें इनसे लाहौरके एक प्रोफेसर भेट हो गयी। उन्हींकी सहायतासे ये लाहौरके मेडिकलकालिजमें भरती हो सके। उनकी मदद न होती तो ये कदापि भरती न हो सकते, क्यों कि प्रसिद्ध स्व० डा० त्रिलोकीनाथ वर्म्मा भी उस साल वहां भरती होने गये थे। भरती न हो सकनेसे वे म्योर कालिजमें आकर बी० एस-सी०में पढ़ने लगे। [उनकी जीवनी हम इन्हीं पृष्ठोंमें कभी देंगे। रा० गौ०] श्रीजगन्नाथप्रसादजी इस प्रकार विचित्र परिस्थितियोंसे प्रेरित होकर वकीलके बदले डाक्टर होकर ही रहे और भृगुसंहिताका भविष्य कथन पूरा होके ही रहा।

३. पागलपनका प्रकोप

यह भी भविष्यवाद था कि ये पागल होंगे। लाहौरमें जब ये पढ़ ही रहे थे, पहले ही साल एक परीक्षाके पहले आठ दिन तक ये पागल रहे। उस समय ये स्नानागारमें अपनेको बन्द करके आठ दिन रात बैठे रहे और, इन्हें पता नहीं कि पीछे परीक्षा देकर ये कैसे पास हुए। नानीका प्रसाद और भृगुसंहिताकी बात केवल इसी आठ दिनमें पूरी होकर रही, क्योंकि जीवनमें पागलपनके दोषके परिहारमें होमियोपैथी ही कारण हुई, अन्यथा, भाईकी ही गति इनकी भी होती।

४. मां हैजेसे बची

बालक जगन्नाथ प्रसादकी अवस्था केवल पांच छः बरस की होगी जभी इनके मनमें होमियोपैथीका बीज बोया गया। इनकी माताजीको, जब इनका परिवार प्रयागमें रहता

था, हैज़ा हो गया। उस समयके प्रयागके बड़ेसे बड़े डाक्टर नें जवाब देदिया। उस समय एक बूढ़े होमियोपैथ डाक्टर अमोलक नाथ भट्टाचार्य्यने इनकी माताका उपचार किया और उन्हें अच्छा कर देनेमें पूरे यशस्वी हुए। इस घटनासे इनके पितासे और डाक्टर अमोलकनाथ भट्टाचार्य्यसे घनिष्ट मित्रता हो गयी। डा० भट्टाचार्य्य निर्धन और बूढ़े थे। इनके धनी तहसीलदार मित्रने इनके काशीवासकी सदिच्छा की पूर्ति की और अधिकांश अपने साथ रखने लगे। डा० भट्टाचार्य्यके सत्संगसे तहसीलदार साहबको होमियोपैथीका शौक हो गया। इस विषयकी अच्छी अच्छी पुस्तकें मँगवायीं, ओषधियां मगवायीं और काशीनरेशकी तहसीलदारी करते हुए भी रोगियोंको चंगा करने लगे। चकियाके जब तहसीलदार थे तभी इनकी नयी डाक्टरी खूब चमकी और हजारों रोगी आने लगे। ये इलाज परमार्थके लिये करते थे। बालक जगन्नाथप्रसादके मनपर पिताकी और डाक्टर भट्टाचार्य्यकी होमियोपैथीका अवश्य ही प्रभाव पड़ा होगा।

४. होमियापैथ पिताकी मृत्यु

डा० अमोलक भट्टाचार्य्यके पुत्र डा० एस्० सी० भट्टाचार्य्य कलकत्तेके नामी अलोपैथ डाक्टर और सर्जन थे। खूब कमाते थे, और बड़े ठाटबाट तथा बहुत ऐश आरामसे रहते थे। शायद इसी कारणसे वे ४५ वर्षकी अल्पायुमें ही चल बसे। शल्य चिकित्सा करके ये बड़े धनाढ्य हो गये थे। डा० जगन्नाथप्रसादजी जब एम्० बी०, बी० एस्० की डिग्री लेकर लाहौरसे लौटे तो इन्हें लखनऊ मेडिकल कालेजमें हौस सर्जनका पद मिलता था। परन्तु कलकत्ते जाकर प्रैक्टिस करनेके लोभसे इन्होंने लखनऊकी नौकरी स्वीकार नहीं की। उन्हीं डाक्टर भट्टाचार्य्यके अधीन काम सीखनेके लिये और स्वतंत्र प्रैक्टिसके लिये डा० जगन्नाथप्रसाद सीधे कलकत्ते गये और वहीं डाक्टरी करने लगे। छः सात बरसकी प्रैक्टिसके बाद ही उनके पिताका स्वर्गवास हो गया और उनके सारे होमियोपैथिक साहित्यके ये उत्तराधिकारी हुए। ये सारी पुस्तकें वे अपने साथ कलकत्ते ले गये। फुरसतके समय उनका अनुशीलन करने लगे। साथही अपने रोगियोंपर होमियोपैथिक औषधियोंकी परीक्षा भी करने लगे।

५. होमियोपैथीने पत्नीकी जान बचायी

भृगुसंहितावाले भविष्यवादमें यह भी था कि जब डा० जगन्नाथप्रसादकी अवस्था २८ सालकी होगी तब उनकी पत्नीका देहान्त हो जायगा। इस निर्दिष्ट समयपर उनकी पत्नीको डबल न्यूमोनिया हो गया। साथ ही अतिसार और सन्निपात भी था। कलकत्तेके बड़े-से-बड़े डाक्टरोंने जबाब दे दिया। इस तरह पत्नीके जीवनसे सर्वथा निराश होकर अकेले भगवानके भरोसे उन्होंने मरणासन्न रोगिणीके पास बैठकर होमियोपैथी विधिका अनुशीलन किया और गंभीर विचारपूर्वक उसे पाडो २०० (Podo 200) दिया। इस दवाने जादूका काम किया, पत्नीकी जान बचाली। वह अच्छी हो गयीं और अबतक कुशलसे हैं। वह कई तन्दुरुस्त और सुन्दर बच्चोंकी माता हैं। इस घटनाने डा० जगन्नाथ प्रसादको आधे से अधिक होमियोपैथ बनाया। धीरे धीरे वे पक्के होमियोपैथ बन गये और फिर अलोपैथी सदाके लिये छोड़दी।

६. होमियोपैथीके दुरुपयोगसे जान खोयी

उन्होंने अपनी छात्रावस्थामें ही होमियोपैथी ओषधियोंके दुरुपयोगसे डेढ़ बरसकी एक कन्या खोयी। उसे मामूली ज्वर था। उनके पिताजीने एक चायके प्याले भर पानीमें अकोनाइट ३x (Aconite 3x) की कुछ बूंदें डालकर बच्चीकी मांको दिया कि बच्चीको पिलाये। बेचारी मांने शामतक सारीदवा पिलाडाली और अन्तमें रोगिणी बच्चीका रंग नीला पड़ गया। संभवतः दवा अत्यधिक दी गयी। उस समय डाक्टर जगन्नाथप्रसाद होमियोपैथीसे अनभिज्ञ थे। वे अपने पितासे लड़े कि सींगिया जैसा विष उन्होने बच्चीको कैसे दे दिया। पिताने पुस्तकें पढ़ीं और कबूल किया कि अधिक दवा दे देनेसे यह हुआ है। अलोपैथ डाक्टर बुलाये गये। उन्होंने उत्तेजक ओषधियां और स्ट्रिकनीन आदि दिये पर कुछ न हुआ। रातमें लड़की गुजर गयी। इससे डाक्टर साहबके पिताका जी टूट गया और उन्होंने घरके बच्चोंकी विशेषतः और होमियोपैथिक चिकित्सा साधारणतः छोड़ ही दी।

७. आस्था बढ़ती गयी

साधारणतः लोगोंका अनुमान है कि होमियोपैथी दवा में दवापन कुछ भी नहीं है, शुद्ध जल या शकर है। ऐसी ही बात होती तो अकोनाइट ३ की अधिक मात्रासे कोई भयकंर परिणाम नहीं होना चाहिये था। फिर भी इस

भयंकर परिणामसे एक ओर जैसे पिताने होमियोपैथी छोड़ दी वैसे ही पुत्रके मनमें होमियोपैथीपर विश्वास बढ़ा। उसके मनमें यह बात दृढ़ बैठ गयी कि दवाकी मात्रापर और प्रकारपर रोगीका भला बुरा निर्भर है। आगे चलकर अपनी पत्नीकी जान जब होमियोपैथीसे बची, तब विचारको दृढ़ता मिली। बादको होमियोपैथीने स्वयं डा० जगन्नाथ प्रसाद की दो बार जान बचायी। डाक्टर साहबके तबसे आठ बच्चे हुए। पोते पोतियां तक हुईं। हर हालतमें सारे परिवारकी चिकित्सा होमियोपैथी होती आयी है।

८. होमियोपैथीसे हानि और लाभ

होमियोपैथ बन जानेमें डा० जगन्नाथ प्रसादने आमदनीके नाते भारी नुकसान उठाया। नामी अलोपैथ और नामी होमियोपैथकी आमदनीमें जमीन-आस्मानका फरक है। अलोपैथ या सर्जनकी आमदनीके सामने होमियोपैथकी आमदनी कुछ भी नहीं है। होमियोपैथक चिकित्सामें भी। कभी-कभी चीरफाड़की अनिवार्य्य आवश्यकता पड़ जाती है हर्नियामें जिसमें आँत (Strangulated), कस जाती है, या खोपड़ीके भीतर ही टूट जानेपर अपेंडिसैटिसके कुछ रोगियोंमें, अथवा इस तरहकी और शिकायतोंमें चीर फाड़ बिना काम नहीं चलता। एक रानीकी (Depressed fracnture of the skull) खोपड़ीके भीतर हड्डियां टूटकर धँस गयी थीं। इसके लिये प्रसिद्ध सर्जन डा० राम नारायण भाटियाने एक बारगी तीस हजार रूपये लिये, जो कि एक अच्छे होमियोपैथकी जिन्दगी भरकी कमाई होती है। और हर्निया (आंत उतरने) या अंडकोश वृद्धि के एक आपरेशनमें हजार पाचसौ रुपये कमा लेना तो एक सर्जनके लिये मामूली सी बात है। अंडकोश वृद्धिका कोई इलाज न हो तो जान की कोई जोखिम नहीं है परन्तु होमियोपैथकी बात बिलकुल उलटी है, हैज़ेके भयानक रोगमे जहां मिनटोंमें वाराग्यारा होता है, परन्तु एकही खुराक आरसेनिक या विरेट्रम अलबमसे रोगी अच्छा हो गया तब भी डा० जगन्नाथप्रसाद जैसे डाक्टरको भी चार रूपयेसे अधिक कभी नहीं मिला। बात यह है कि सर्जन रोगीसे अपना चमकीला नश्तर या सूई दिखाकर जो चाहे ऐंठ ले सकता है परन्तु बेचारा होमियोपैथ चाहे कैसाही अद्भुत इलाज करे उसे दो रूपये फीसपर ही सन्तोष करना पड़ता है। बहुधा देखा गया है कि नश्तर चलाकर भी डाक्टरने जवाब दे दिया है और रोगीको होमियोपैथीकी शरणमें जाकर जान बचानी पड़ी है। गरज कि धनकी दृष्टि से होमियोपैथ घाटेमें ही रहता। डा० जगन्नाथ प्रसादने सर्जरी वा अलोपैथिक डाक्टरी छोड़कर होमियोपैथी अख्तियार करके सत्य और श्रद्धा और लोकोपकारके पीछे महान और अनुकरणीय त्याग किया।

इस त्यागसे उन्होंने धन खोया। परन्तु उसके बदले उन्होंने जीवन पाया। होमियोपैथ डाक्टर अमोलक भट्टाचार्य्य दरिद्र रहे परन्तु पंचानबे बरसके होकर शान्तिपूर्वक मरे। उनके पुत्र डाक्टर एस्०सी० भट्टाचार्य्यने अलोपैथी सर्जरी करके अपार धन कमाया, बड़े ऐशो आरामसे रहते थे, परन्तु पैंतालीस बरसकी उमरमें संकटमें तड़पते मरे। होमियोपैथीने पिताको कैसा दीर्घजीवी बनाया। डाक्टर जगन्नाथप्रसादने अपना ही उदाहरण दिया। जो जगह लखनऊमें मिलती थी, जिसे लेनेसे उन्होंने इनकार किया, वह बादको डा० भाटियाको मिली। यदि लखनऊ मेडिकल कालिजकी नौकरी उन्होंने कर ली होती तो अवश्य ही डा० भाटिया जैसे सर्जन होते और अपार धनके स्वामी होते। परन्तु कौन कह सकता है कि वे अबतक अपनी कथा कहनेको जीते होते। क्योंकि उन्होंने ऐसी कड़ी बीमारियां पायीं जिनमें डाक्टरोंने कई बार जवाब, दे दिया था, और होमियोपैथीने ही जान बचायी। अथवा यह कुछ न होता और वे सर्जरीसे बड़े धनवान भी होगये होते तो उनके बाद उनका कोई वारिस ऐशो आराममें उनकी कमाई उड़ा देता। परन्तु दीर्घजीवन और भारी परिवार एवं साधारणतया अच्छी अवस्था जो डाक्टर जगन्नाथ प्रसादको हासिल है, सर्जनोंको शायद ही नसीब हो। सबसे बड़ी बात यह है कि पागलपनकी जो प्रवृत्ति घरानेमें थी, होमियोपैथीके उपचारोंकी बदौलत एक दम उड़ गयी और चौदह पन्द्रह प्राणियोंके परिवारमें कहीं इस रोगका लेशमात्र नहीं दीखता। कारण यह है कि डा० जगन्नाथप्रसादने सारे परिवारको बराबर सोरा-निवारिणी ओषधियोंके उपचारसे स्वस्थ और सुरक्षित रखा।

९. होमियोपैथका पवित्र जीवन

डा० जगन्नाथप्रसादकी सलाह है कि अलोपैथी और

सर्जनोंको आमदनीकी कमीके कारण होमियोपैथ बननेमें रुकावट न होनी चाहिये। उन्हें धन भले ही न मिले परन्तु होमियोपैथी उन्हें जीवन देगी, दीर्घायु देगी, सुखी और समृद्ध परिवार देगी, और विवेकपूर्वक निश्चयात्मक चिकित्सा करनेका साधन देगी, केवल शर्त यह है ईमान्दारीसे पूरा परिश्रम करे। धनकी वस्तुतः वह कीमत नहीं है जो जीवनकी, आयुकी, परिवारकी और स्वस्थ शान्त समृद्ध दशाकी है। डा० जगन्नाथप्रसादने यद्यपि धनाढ्य होनेका अवसर त्याग दिया तथापि उन्हें जरा भी पछतावा नहीं है, क्योंकि बदलेमें वह कम सुखी नहीं है।

यद्यपि होमियोपैथी धनाढ्य नहीं बनाती, तो भी उसके अनुयायी भूखा नहीं मर सकता। डा० जगन्नाथप्रसादने इसकी कई मिसालें दीं। हम यहां एक ही उदाहरण देंगे। डाक्टरसाहबके जामाता बा० गोपीकृष्ण कोहली बी० ए०, एल्-एल्० बी० हैं। उन्होंने छपरेमें और प्रयागमें वकालत की। प्रयागमें वे डाक्टर साहबके पास रहकर उनकी चिकित्सा देखने लगे। उन्होंने जब रोगियोंको लाभ होते देखा तो उनका मन इस चिकित्सा विधिमें लग गया। वे अनुशीलन करने लगे। उन्होंने नैशके लीडर्सका उर्दूमें अनुवाद कर डाला। फिर उन्होंने वकालत छोड़कर होमियोपथिक डाक्टरी शुरूकी। आजकल वे पटनेमें इलाज करते हैं और एक नामी होमियोपैथोंमें समझे जाते हैं और अपने परिवारके कामके लिये काफी कमा लेते हैं।

१०. होमियोपैथीके सुभीते

आजकलकी बेकारी और दरिद्रताके जमानेमें होमिओपैथी इलाज जीविकाका एक अच्छा साधन है और आये दिनकी बीमारीमें अत्यन्त सस्ता इलाज है। अलोपैथी चिकित्सा भयानक रीतिसे खर्चीली है। डाक्टरकी फीस अत्यधिक, दवाका दाम भी बहुत ज्यादा, इलाजकी विषमता ऐसी कि रोगी अच्छा भी हो तो ओषधियोंके अन्य उपद्रवोंमें फँसकर अपना स्वास्थ सदाके लिये खो बैठता है। इन पहलुओंपर विचार करते हुए होमियोपैथी इलाज गरीब नेवाज है और इतनी भयानक नहीं जितनी कि अल्लोपैथी। परन्तु इस चिकित्सा विधिमें बड़े गँभीर अनुशीलनकी और बहुकालीन अनुभवकी आवश्यकता है—अल्लोपैथीकी अपेक्षा कहीं अधिक। फिरभी यदि आदमी मेधावी हो, पढ़ालिखा हो, और बेकार हो तो, चाहे स्कूलमें पढ़कर और चाहे निजी तौरपर अनुशीलन करके यदि होमियोपैथीकी प्रैक्टिस करने लगे तो वह भूखों न मरेगा। अनेक ऐसे डाक्टर और अच्छे होमियोपैथिक डाक्टर हैं जिन्होंने कहीं शिक्षा नहीं पायी है, फिर भी उनका रोजगार बहुत अच्छा चलता है और वे इलाज अच्छा करते हैं। अल्लोपैथोंसे ज्यादा मरीजोंको अच्छा करते हैं गो कम कमाते हैं। इसमें शक नहीं कि होमियोपैथीके ऐसे प्रेमी बहुत हैं, जो दो एक किताबें और दवाओंका एक बक्स रखकर अपने परिवार और पड़ोसियोंका इलाज करलेते हैं। उनके कारण होमियोपैथ पेशेवरोंका कुछ नुकसान होता है, सही। परन्तु इन प्रेमियोंमें कई ऐसे कुशल होमियोपैथ हैं जो बहुतेरे पेशेवरोंसे भी ज्यादा होशियार हैं और वे, कभी कभी काम पड़ने पर, शौकसे कुशल पेशेवरोंको बुलाकर अपनी गुत्थियां सुलझवाते हैं और ठीक पद्धतिसे इलाज करते हैं। इस तरह थोड़ीसी हानिके बदले पेशेवर अन्ततः नफेमें ही रहते हैं। रा० गौड़

समुद्रमें इतना रेडियम निकाला जा सकता है जो कि उस मात्रासे सौगुनी ज्यादा है जो पिछले २५ वर्षोंमें चट्टानोंसे निकाली गई है जिसके एक पाउंडका मूल्य लगभग २,००,००,००० डालर (६००,००,००० रुपये) के होगा। लगभग ५,२५०,००० टनके पोटेसियम क्लोराइड (Potassium Chloride) निकाली जा सकती है जिसका मूल्य ४२५,००० ००० डालर (१२७५०००,००० रुपये) के करीब होगा। इतनी आइयोडीन (Iodine) निकाली जा सकती है जिससे २ ५००,००० गेलन टिंक्चर बन सकता है। लगभग ४६,५००,००० टनके मगनीसियम सल्फेट निकाली जा सकती है जिसका मूल्य १७,५०,००,०००,००० डालर (५२५०,००,००० रुपये) के करीब होगा और यदि वह संसारमें बराबर बांट दी जाय तो प्रत्येक प्राणीके हिस्से में लगभग ७५ पाउंडके आयेगी। केलसियम क्लोराइड नामकी एक धातु जो सड़कों पर तरी रखनेके काममें आती है, इतनी मात्रामें समुद्र-जलमें पाई जाती है कि जिससे २०,००,०० मील की सड़कोंका काम चल सकता है। (जयाजी प्रतापसे)

रत्नाकरकी तहमें अतुल धन

[श्री० विष्णुदत्त मिश्र 'तरंगी']

संसारके खनिज तथा खाद्य पदार्थके लिये समुद्र एक खजाना है। समुद्र-मंथनकी हमारी पौराणिक कथा पर, आजकल लोग विश्वास नहीं करते; लेकिन आजकलके वैज्ञानिकोंने खोज करके यह प्रमाणित कर दिया है कि हमारी उस कहानीमें कहां तक सत्य छिपा हुआ है। उनका कहना है एक क्यूबिक मील सागरमें ८६०० पाउंड सोना छिपा है जिसका मूल्य लगभग १०,००,००० पाउंड अर्थात् १,२०,००,००० रुपये होता है। प्रयोग करनेसे यह मालूम हुआ है कि सागरके गर्भमें कुछ स्थानोंमें तो सोनेके नमक अधिक मात्रामें पाये जाते हैं और कहीं पर बहुत कम, लेकिन अनुमान लगानेसे यह पता चला है कि सब समुद्रोंके गर्भमें इतना सोना वर्तमान है कि यदि वह प्राप्त हो जाय तो संसारके प्रत्येक व्यक्तिको पचास टन सोना मिल सकता है और यह भी अनुमान लगाया गया है कि प्रत्येक पाउंड सोना जो समुद्रसे निकाला जायगा उसका मूल्य दो या तीन पाउंड (३६ रुपये) के लगभग बैठेगा।

अगर समुद्रके सब नमक निकालकर पृथ्वी पर बिछा दिये जांय तो उससे एक सौ छियालीस फीट गहरी तह जम जायगी जिसकी ऊंचाई बारहखनकी अट्टालिकाके बराबर होगी। अमरीकाकी इथील डो (Ethyl-Dow) कम्पनीने क्यूरबीच नामके समुद्र तटस्थ स्थानमें एक मशीन लगा रखी है जो समुद्रसे ब्रोमाइन (Bromine) निकाला करती है। इस वर्ष उस मशीनने लगभग एक मील लम्बाई चौड़ाई और ७६ फीट गहराई तक ब्रोमाइन समुद्र जलसे निकाली है। जिस समय कि ब्रोमाइन समुद्र जलसे निकाली जा रही हो मशीनसे टकराता हुआ पानी कितनी ही मात्रामें और अनेकों मूल्यवान खनिज पदार्थोंको लेकर बहता हुआ जाता है, लेकिन वह खनिज पदार्थ नहीं निकाले जा सकते क्योंकि उनके निकालनेका मूल्य कदाचित उनके मूल्यसे अधिक होगा। कहते हैं कि एक क्यूबिक मील सागरमें लगभग ५०,००,००० डालर (१५,०००,००० रुपये) का सोना होता है और २,५०,००,००,००० डालर (७,५०,००, ०,००० रुपये) का सोडियम क्लोराइड (Sodium Chloride) जिसका वजन लगभग १०,-८०,००,००० टन होगा। एक क्यूबिक मील समुद्रमें पायी जा सकती है— १३५ टन चांदी जिसका मूल्य २५,००,००० डालर (७५, ०,००० रुपये) होगा; १२५० टन लोहा जिसका मूल्य ५०,००० डालर (१, ५०,००० रुपये) होगा, ८०० टन तांबा जिसका मूल्य १,५०,००० डालर (४,५०,००० रुपये) होगा; ११,०० टन अलमोनियम जिसका मूल्य ४,५०,० ००० डालर (१,३५,००,००० रुपये) होगा; ४,२००,००० टन मेगनीसियम (magnesium) जिसका मूल्य २,००,००,००,००० डालर (६,० ,००,००, ००० रुपये) होगा।

यह अनुमान किया जाता है कि एक क्यूबिक मील

(शेष २४३के नीचे देखिये)

आइडियल इंस्टिट्यूटके मंत्री श्री वाकणकरजीका पत्र

Dear Sir,

The "Scientific Literature" section of the Ideal Institute has decided to take up the work of compiling a common Indian Vocabulary of Chemistry, which is a pressing need of the day.

Today all the Indian languages are progressing towards an all-round development in arts and sciences ; and various authors are coming forward in this cause of Nationalisation of Modern Sciences. A new scientific terminology is being evolved. Attempts have been made by individuals, and some societies of each province, to collect and print together the technical words so far coined. But this is not enough.

WHITHER INDIAN LANGUAGES ?

The following illustrations will clearly show how the technical words have deviated much from one another.

Aldehyde—प्रायोज्जिद (ज्ञानकोश), प्रायोर्वक (भागवत), आल (रसा०नि०) मद्यानार्द्र (विज्ञा०परि०)अल्द (वा०)

Ketone—कीतन (ज्ञा० को०), कीत (वा), ओन (रसा० नि०)

Distillation—स्रवण (नाग० प्रचा०) स्रवण (विज्ञा० परि०), उत्पातन (म० शा० प० मं०)

Energy—शक्ति (बंग० सा० प०), ओज (भागवत), तेज (म० शा० प० मं०), सामर्थ्य (विज्ञा० परि०)

Oxidation—ज्वलन-क्रिया (भागवत), प्राणिलीकरण (ज्ञानकोश), उर्वीकरण (वा०), वर्धन, उर्वरण (म० शा० प० मं०) ओषिदीकरण (विज्ञा० परि०)।

Proteins—प्रत्यामिन (विज्ञा० परि), स्नायुपोषक पदार्थ (भागवत), प्रोत द्रव्य (वा०)।

Vitamin—ओजोद्रव्य (भागवत), जीवनशक्ति (ज्ञानकोष), खाद्योज (गौड), बिटेमिन (विज्ञा० परि०)।

Molecule—अणु (बंग० सा० प०), अणु (विज्ञा० परि), रेणु, रेणुक (म० शा० प० मं०)।

Atom—परमाणु (बंग० सा० प०), परमाणु (विज्ञा० परि०), अणु; अणुक, (म० शा० प० मं०)।

No wonder if in the coming few years the different provinces getting accustomed to their provincial terminologies, will be as foreign to each other as are the English, the French, the German, the Russian etc. in Europe.

All our Indian languages are either derived from (संस्कृतोत्पन्न) or are taking their inspiration (संस्कृतनिष्ठ) from Sanskrit, the old National language of India, as similarly as all the Indian scripts are one or the other form of the National Deva-Nagari script. Let Sanskrit and Deva-Nagari be our pivots, and it will be found that Hindi, the Northern Indian National language will in a short time be the medium of inter-communication between the above-mentioned languages and the people.

A COMMON SCIENTIFIC TERMINOLOGY

We propose to take up the work of a common vocabulary of Chemistry (भारतीय रसायन शब्द-कोश) for the present under the guidance of Prof. Ramdas Gaur, M. A., the Editor of the '*Vijnana*' the organ of the Vijnana Parishad, and if the various authors cooperate with us by correspondence (this being the cheapest way of communication), the day will not be far off when an article or a research paper printed in Bengali but in the Deva-Nagari Script, can be understood by a reader in Gujrat, Andhra-Desha, Maharashtra aud Behar with little effort.

We take this opportunity to request the authors and the writers in the country (of Bengali, Hindi, Gujrati, Marathi, Tamil, Telugu, Canarese, Malyalam, Burmese and other Indian languages), to send us scientific terms, coined by themselves or by others in their respective languages as well as their articles and booklets (if possible) in which these words have been used.

For the Ideal Institute, L. S. WAKANKAR, B. Sc., *General Secretary.*

विज्ञान-प्रेमियोंसे प्रार्थना

अखिल भारतीय रसायन-शब्दकोष

आजकल हिन्दी, बंगाली, मराठी, गुजराती, कन्नड़, तामिल, तेलुगु आदि भारतीय भाषाओंमें वैज्ञानिक तथा औद्योगिक विषयोंपर लेख तथा पुस्तकें प्रकाशित हो रही हैं। उनमें कतिपय नये पारिभाषिक शब्दोंका व्यवहार हुआ करता है। ऐसे शब्दोंके कई भाषाओंमें संग्रह भी प्रकाशित हो चुके हैं, पर सर्वसाधारण अवस्था तो यही रही है कि जिसके मनको जो शब्द भावे उसीका वह उपयोग करता है।

आजकलके कुछ पारिभाषिक शब्द

एक ही अंग्रेज़ी शब्दको हमारे लेखकगण किस प्रकार अलग-अलग रूपसे भाषांतरित करते हैं, उसका कुछ नमूना नीचे दिया जाता है।

Aldehyde—प्रायोजिद (ज्ञानकोश), प्रायोर्वक (भागवत), आल (रसा० नि०) मद्यानार्द्र (विज्ञा० परि०) अल्द (वा०)

Ketone—कीतन (ज्ञा० को०), कीत (वा०), ओन (रसा० नि०)

Distillation—स्रवण (नाग० प्रचा०) स्रवण (विज्ञा० परि०), उत्पातन (म० शा० प० मं०)

Energy—शक्ति (बंग० सा० प०), ओज (भागवत), तेज (म० शा० प० मं०), सामर्थ्य (विज्ञा० परि०)

Oxidation—ज्वलन क्रिया (भागवत), प्राणिलीकरण (ज्ञानकोश), उर्वीकरण (वा०), वर्धन उर्वरण (म० शा० प० मं०) ओषदीकरण (विज्ञा० परि०)।

Proteins—प्रत्यामिन (विज्ञा० परि), स्नायुपोषक पदार्थ (भागवत), प्रोत द्रव्य (वा०)।

Vitamin—ओजोद्रव्य (भागवत), जीवनशक्ति (ज्ञानकोष), खाद्योज (गौड), विटेमिन (विज्ञा० परि०)।

Molecule—अणु (बंग० सा० प०), अणु (विज्ञा० परि), रेणु, रेणुक (म० शा० प० मं)।

Atom—परमाणु (बंग० सा० प०), परमाणु (विज्ञा० परि०) अणु; अणुक, (म० शा० प० मं०)

अगर यही चलता रहा तो जब यह शब्द-प्रयोग हमारी भाषाओंमें रूढ़ बन जावेंगे तब हमारी भारतीय भाषाएँ भी विजातीय-सी बन जावेंगी। वह दशा वांछनीय नहीं होगी, यह तो निर्विवाद है।

वरंच, यदि भिन्न-भिन्न भाषाके लेखक पारस्परिक विचार-विनिमयसे समान परिभाषा निर्माण करनेका प्रयत्न करें तो कलको नागराक्षरोंमें लिखे बंगाली भाषाके वैज्ञानिक लेख या ग्रन्थ वा संशोधनवृत्त बिहार, आंध्र, गुजरात अथवा महाराष्ट्र देशस्थ वाचकको पढ़कर समझ लेना थोड़े प्रयाससे साध्य हो जावेगा। इस कार्यका राष्ट्रीय एकताकी दृष्टिसे भी बड़ा ही महत्व है।

रसायनकी अखिल भारतीय परिभाषा

इस कार्यका महत्व तथा उसकी आवश्यकता पर अधिक लिखनेकी ज़रूरत ही नहीं है। इस महत्वपूर्ण तथा साहस युक्त कार्यका भार हमारी संस्थाने मंगलाप्रसाद पारितोषिक-विजेता प्रो० रामदासजी गौड़, एम० ए०, 'विज्ञान'-संपादक के मार्गदर्शनमें आज उठाया है। प्रथम रसायनशास्त्रकी शाखा उपशाखाओंका काम हाथमें लिया गया है और भिन्न-भिन्न भाषाके विद्वानोंका इस राष्ट्रीय कार्यमें सहकार्य भी है।

इस परिपत्रकद्वारा सब राष्ट्रीय वृत्तिवादी भारतीय लेखकोंसे यह प्रार्थना है कि स्वकृत वा अन्यकृत पारिभाषिक शब्द भेजकर, लेखोंके कर्तन (cuttings) तथा पुस्तकें (अगर संभव हो) भेजकर, तथा सूचना चर्चा आदिके द्वारा इस कार्यमें सहयोग दें। जिन्हें अपने कर्तन या पुस्तकें वापिस चाहिए हों, उनके लिये वैसा प्रबंध किया जायगा।

इस ज्ञान-यज्ञमें प्रत्येक देशाभिमानी भारतीय अपना हविर्भाग देगा, ऐसी हमें पूर्ण आशा है।
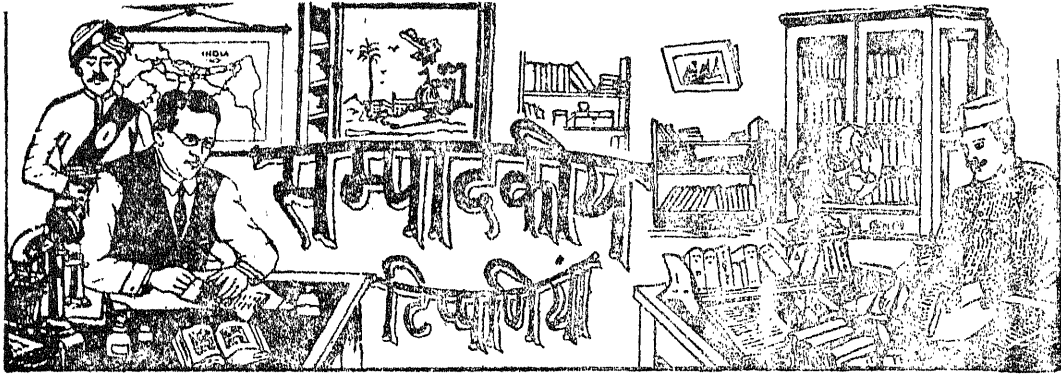
विद्युद्वाणीके अविष्कारक स्वर्गीय मारकोनी

भौतिक विज्ञानके प्रसिद्ध इटालियन पण्डित श्री मार्कोनीका जन्म १८७४ में हुआ था। बोलोना तथा फ्लारेन्स विश्वविद्यालयों और लेबूर्ग मिलिटरी एकेडेमीमें आपका शिक्षण हुआ। बोलोनामें आपने बेतारके समाचारके प्रयोग किये और १८९६में ब्रिटिश सरकारके सामने तथा १८९७में इटालियन सरकारके सामने उनका प्रदर्शन किया। आपने पहले-पहल १८९९ में इंगलैण्ड और फ्रांसके बीच और फिर १९०२में यूरोप और अमेरिकाके बीच बेतारके समाचारका सम्बन्ध स्थापित किया। १९०९में आपको भौतिक विज्ञानके लिये नोबल पुरस्कार मिला। १९१२में आपने बेतारके समाचारकी नयी प्रणाली जारीकी और १९१८ में इंगलैण्डसे पहला सन्देश आस्ट्रेलियामें भेजा। महायुद्धके समय आप-शार्ट-वेव ट्रांसमिशनके प्रयोग करते रहे। १९१९के शान्ति-सम्मेलनमें आप सर्वाधिकार प्राप्त प्रतिनिधिके रूपमें सम्मिलित हुए थे। १९२३ और १९२४में आप न्यूयार्क-इंस्टिट्यूट-आव रेडियो-इंजीनियर्समें शार्ट वेव-ट्रांसमिशनपर व्याख्यान देते और बिजली पर प्रयोग करते रहे। १९२४ में ब्रिटिश और उपनिवेशोंकी सरकारोंने आपके बेतारके समाचारकी प्रणाली अपनायी। १९३० में आप इटालियन रायल एकेडेमीके अध्यक्ष रहे। १९१८ से आप बराबर इटालियन सिनेटके सदस्य रहे।

श्री मार्कोनीकी तबीयत पहले-पहल गत १८ जुलाई रविवारकी शामको ख़राब हुई। हृदय बेकाम होनेके लक्षण मालूम होने लगे। कुछ समय बाद तबीयत सुधर गयी पर रातको १ बजे फिर दौरा हुआ और २० जुलाई मंगलको ३॥ बजे सवेरे शान्तिपूर्वक मृत्यु हो गयी।

सबेरे ८॥ बजे श्री मुसोलिनी आपके अन्तिम दर्शनके लिये आये थे। अनन्तर उनका शव इटालियन एकेडेमीमें अन्तिम दर्शनके लिये रखा गया। अन्त्येष्टि बुधकी शामको ६ बजे हुई।

श्री मार्कोनीके प्रति श्रद्धा प्रकट करनेके ब्रिटिश साम्राज्यके बेतारके समाचार और टेलिफोनके सब स्टेशनका बुधकी शामको श्री मार्कोनीकी अन्त्येष्टिके समय दो मिनटके लिये सारा काम-काज बन्द रहा।

विद्युद्वाणी, बेतारके समाचारके अविष्कारसे मारकोनी का महत्व जगद्व्यापी हो गया था। अपने जीते-जी ही व्यावहारिक रीतिसे सारे जगत्में यशस्वी होना मारकोनीके ही भाग्यमें था। मारकोनीका नाम सभ्य जगत्में अमिट हो गया है। हमारी रायमें बेतारके समाचार को अबसे 'मारकोनी' कहना चाहिए। रा० गौड़

रसायनके पारिभाषिक शब्द

विज्ञानके पारिभाषिक शब्द इस समय भारतकी सभी भाषाओंमें गढ़े जा रहे हैं। परन्तु विविध पारिभाषिक मंडलियोंमें परस्पर सहकारिता न होनेके कारण एकही पारिभाषिक शब्दके अनेक रूपान्तर पैदा हो रहे हैं। जहाँ हम राष्ट्रभाषा और एक भारतव्यापी लिपिके प्रचारद्वारा देशको एक सूत्रमें बाँधनेकी चिंतामें हैं, वहाँ पारिभाषिक शब्दोंके सम्बन्धमें हम कितनी भारी भूल कर रहे हैं और हमारी कितनी उलटी गति है, यह समझनेके लिये किसी विशिष्ट बुद्धिकी आवश्यकता नहीं है। हमने इन कालमोंमें इस प्रसंगमें बारम्बार लिखा है, परन्तु किसी ओरसे हमें प्रोत्साहनका अवसर न मिला। हमारे वैज्ञानिक विद्वान् अभी अँग्रेजीके ही नशेमें

शिकार—लेखक, पंडित श्रीराम शर्मा प्रकाशक श्रीजगन्नाथ शर्मा साहित्य सदन, किरथरा डाकखाना मक्खनपुर (मैनपुर)। मुद्रक, प्रवासी प्रेस कलकत्ता। डबल क्राउन १६ पेजीके २६६ पृष्ठ। ६ प्लेट चित्र + जिल्दपर मनोहर रंगीन चित्र। गेटप सुन्दर। मूल्य २॥) मात्र।

मेरी जानमें शिकारके विषयपर यह अकेली पुस्तक है। सौभाग्यसे जैसे यह अपने विषयमें अद्वितीय है वैसे ही इसके लेखक भी अद्वितीय ही हैं। आपकी उर्वर लेखनीसे चरित्रकी और भावकी तस्वीरें जीती जागती निकलती हैं। आप तुर्गनेवके यशस्वी अनुयायी दीखते हैं। आपकी जोरदार शैली स्वर्गीय पं० पद्मसिंह शर्माकी याद दिलाती है। उन्होंने स्वयं आपका लोहा माना है और जो कुछ आपके संबंध में लिखा है उससे अच्छा लिखना संभव नहीं है, कलम तोड़ दिया है। 'श्रीरामजी तो उत्तरोत्तर गजब ढा रहे हैं। बन्दूकसे बढ़कर इनकी लेखनीका निशाना बैठता है, पढ़नेवाला तड़पकर रह जाता है। नजरसे बचानेके लिए इनके डंडपर भैरवजीका गंडा बाँध दीजिए।' स्वर्गीय शर्माजीने अपने वर्तमान प्रतिनिधि श्रीराम शर्माजीके विषयमें जो कुछ लिखा है, वह अक्षरशः सत्य है। मैं प्रतिनिधि इसलिए लिखता हूँ कि शैलीमें मेरी समझमें पंडित पद्मसिंहजीका स्थान लेनेवाले मुझे श्रीराम शर्मा ही नजर आते हैं।

इस पोथीमें आपकी शिकार कथाओंका संग्रह है। कथाओंमें जो भावुकता है चोट खाये हुए हृदयसेही प्रकट हो सकती है और अनुकम्पा और करुणाको बरबस अपनीओर खींच लेती है। पाठकोंसे मैं सिफारिश करूँगा कि 'अवसि देखिए देखन जोगू।' रा० गौ०

मस्त हैं। उन्हें देशकी आवश्यकता नहीं सूझती। अँग्रेजीमेंही बड़ी-बड़ी पोथियाँ लिखकर कमाईकी फ़िक्रमें हैं, हालांकि अँग्रेजी साहित्यकार उनके पर-भाषा-प्रयासमें यशस्विताकी दाद नहीं देते, बल्कि अनेक प्रकारके दोष निकालते हैं।

हमें यह लिखते हर्ष होता है कि इस ओर हमारे एक उत्साही युवक मित्र श्री बापू वाकणकरका ध्यान गया है। उन्होंने कम-से-कम रसायन-शास्त्रके लिये यह भार लिया है कि सारे विद्वानोंकी सहायतासे ऐसी पारिभाषिक शब्दावली संग्रह करें जो अखिल भारतीय रूपसे सभी भारतीय भाषाओंमें प्रयुक्त हो सके। उनके अँग्रेजी और हिंदीके पत्र हम इसी अंकमें अन्यत्र देते हैं। रा० गौ०

डा० चोपराको डिगरी

कलकत्तेके ट्रापिकल मेडिसिन विद्यालयके संचालक लेफ्टिनेंट कर्नल आर० एन० चोपराको इंगलैण्डके कैम्ब्रिज विश्वविद्यालयने (डाक्टर आफ़ सायंस) विज्ञानाचार्यकी पदवी देनेका निश्चय किया है।

यह उच्च पदवी इसके पहले केवल दो ही भारतीयोंको मिली है—[१] लाहौर सरकारी कालेजके प्रोफ़ेसर जार्ज मथाईको प्राणिविज्ञानके लिये और [२] लखनऊ विश्वविद्यालयके डाक्टर बी० साहनीको उद्भिज्ज विज्ञानके लिये। डाक्टर चोपराको हम हृदयसे बधाई देते हैं।

रा० गौड़।

रामचरितमानस—संपादक श्री बजरंगवली गुप्त विशारद, प्रकाशक श्री सीताराम प्रेस जालिपादेवी काशी, श्रीराम, नवमी, १९९२, प्रथम संस्करण मूल्य ॥) आकार खड़ा डिमाई अठपेजी के ५४२ पृष्ठ।

रामचरितमानसके शुद्ध पाठवाले संस्करणकी नितान्त आवश्यकताको समझकर श्री बजरंगवली गुप्तजीने इस संस्करणमें बालकाण्डका श्री श्रावण कुंजकी पोथीसे, अयोध्याकाण्डका राजापुरकी पोथीसे, और शेष पाँच काण्डका सद्गुरुसदन अयोध्याकी प्रतिसे शुद्ध पाठ प्रकाशित किया है। पाठोंकी प्रामाणिकताके लिए ये नाम पर्य्याप्त हैं। साधारणतया इस संस्करणका पाठ शुद्ध ही समझा जाना चाहिए। कहीं-कहीं पाठान्तर भी दिया हुआ है जिससे सम्पादकके परिश्रमका पता लगता है। यों तो पाठान्तर बहुत हैं, और प्रामाणिक हैं। आवश्यकता तो इस बातकी है कि शुद्ध पाठके लिये भारी-परिश्रम किया जाय। तो भी बारह आने को यह शुद्ध पाठ वाली सुन्दर जिल्द बँधी, अच्छी, साफ और सफेद कागज पर छपी पोथी सस्ती ही है। 　　　　रा० गौ०

विज्ञान-हस्तामलक—अर्थात् सीधी सादी भाषामें रोचक क्रमसे अठारह विज्ञानोंकी कहानी। लेखक श्री काशी हिन्दू विश्वविद्याय और गुरुकुल काँगड़ी के भूतपूर्व रसायनाचार्य तथा विज्ञान के प्रधान सम्पादक रामदास गौड़, एम० ए०। मंत्री विज्ञान, परिषत् प्रयागसे ६) में विना जिल्द. ६॥) में सजिल्द, प्राप्य रायल अठपेजी ४७५ पृष्ठों के लगभग। लगभग दो सौ विना रंग और रंगीन चित्र।

'विज्ञान 'हस्तामलक'को गौरसे पढ़नेपर विश्वास हो जाता है कि यह ग्रन्थ वैज्ञानिक हिन्दू दृष्टिकोणका एक अति श्रेष्ठ नमूना है। साधारणतया पश्चिमी तत्वज्ञान, राज कारण, समाज कारण आदि विश्लेषक (Analytical) विच्छेदक और विग्रहात्मक हुआ करते हैं और भारतीय या हिन्दू दृष्टिकोण संश्लेषक(Synthetical) अनेकमें एकताका अनुभव करनेवाला और संग्रहात्मक हुआ करता है। एच० जी० वेल्स जैसे जगद्विख्यात लेखक सारी पृथ्वीको एक अखंड कुटुम्ब सदृश समझकर उसके तत्वज्ञान, इतिहास, प्रगति आदिका विचार तो अवश्य करते हैं पर उनका दृष्टिकोण जड़वादी होता है, हिन्दू दृष्टिकोण उस अनाद्यन्त अविभाज्य तत्वके प्रकृतिसे दिखनेवाले भिन्न भिन्न (Manifestations) व्यक्त स्वरूपोंका विचार करता है। इसी मूलग्राही हिन्दू दृष्टिकोणसे ज्योतिःशास्त्र, भूगोल, भूगर्भ, जीव, वनस्पति जीवाणु, मानव-शरीर-रचना, मनोविज्ञान, मरणोत्तर जीवन, भौतिक रसायन आदि १८ मनोरंजक और उपयुक्त जड़ विश्वकी बातोंपर विचार श्री गौड़जीके ग्रन्थमें केवल ४७० पृष्ठोंमें किया गया है।

इस असामान्य ग्रन्थको लिखकर श्री गौड़जीने केवल हिन्दीही नहीं वरंच सारे हिन्दू भाषासंघको उपकृत किया है और इस ग्रन्थके लिए लेखक को १२००) का 'मंगला प्रसाद पारितोषिक' देकर हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने अपनी गुणग्राहकता ही प्रकट की है। इस ग्रन्थमें न तो इन अठारह शास्त्रोंका विस्तृत विवरण है, न मूल-सिद्धान्त-प्रयोग अनुभव आदि पाठ्य ग्रन्थोंकी-सी रचना है, परन्तु प्रत्येक स्त्री-पुरुषके मनमें निसर्गका स्वरूप और चमत्कार देखकर जो कुतूहल होता है और जिसके ज्ञानके लिये मनुष्य इधर-उधर ढूँढ़ता फिरता है उसीका मनोरंजक और सुबोध वर्णन किया है। हथेलीपर आँवलेको रखकर उसका जो स्वरूप सम्यक् दृष्टिसे हम देख सकते हैं उसी प्रकार इस पुस्तकसे, ग्रन्थकारकी भाषामें विज्ञान-का ऊपरी विस्तार कुछ समझमें आ जाता है और कुछ थोड़ा बहुत तहके भीतरका भी अनुमान हो जाता है। साहित्य, कला, समाजजीवन, संस्कृति आदिका विचार इस ग्रन्थमें नहीं है। 　　　　—बापू वाकणकर

विज्ञान-संसार
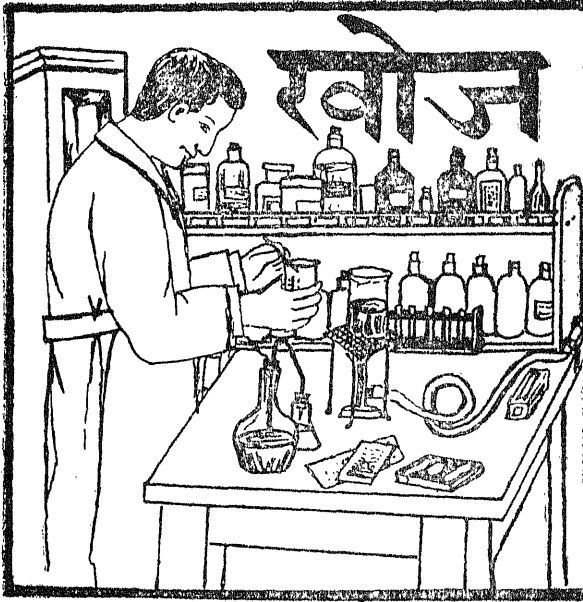
तीन लाख वर्षमें फेरा करनेवाला धूमकेतु और कवरका चित्र

ब्रिटिश ज्योतिष परिषत्के सभापति डाक्टर डेविडसन-ने दिखलाया है कि सप्तर्षि नक्षत्रपुंजके सातवें तारे 'मरीचि'के पास एक नया धूमकेतु देख पड़ता है जिसकी चालसे सिद्ध होता है कि वह तीन लाख वर्षमें सूर्यकी परिक्रमा करता है।

इसके पहले जब वह इधर आया होगा तब (Anthropologists) मानव-विज्ञान-वादियोंके मतानुसार इस पृथ्वीपर (Pekin-man) 'पेकिन' मनुष्यका अस्तित्व रहा होगा जो कि मनुष्यकी अब तककी जानी हुई जातियोंमें प्रथम कहे जाते हैं। परन्तु हमारे शास्त्रोंके मतानुसार उस समय द्वापर युगका तीसरा चरण रहा होगा।

यह धूमकेतु जब अगली बार अबसे तीन लाख वर्षों के बाद फिर फेरा करेगा तब कारनेगी इन्स्टीट्यूटके आचार्य चार्ल्स बी० डेवेनपोर्टके मतानुसार इस पृथ्वीपर मनुष्यके मस्तिष्कके विकासकी अत्यधिक तीव्रताके कारण शायद मानवजातिका नामतक न रहेगा।

इसका नाम 'ह्विपिल धूमकेतु' रखा गया है क्योंकि अमेरिकाके ज्योतिषी ह्विपिलने पहले-पहल इसका पता लगाया। इंगलैंडके ज्योतिषी श्री विलहे और डाक्टर डब्लू० एच० स्टीविन्सनने वेध लेकर ऐसे ध्रुवाङ्क प्राप्त किये हैं जिनसे गणना करके उक्त डाक्टर डेविडसन महोदयने सिद्ध किया है कि इस धूमकेतुका फेरा ३००००० वर्षमें होता है।

यह धूमकेतु इस समय पृथ्वीसे बारह करोड़ चालीस लाख मीलकी दूरीपर है और दूरबीनहीसे देखा जा सकता है। २० जूनको यह पृथ्वीसे अत्यन्त निकट होनेपर भी ग्यारह करोड़ नब्बे लाख मील दूर रहेगा। गणनासे पता चलता है कि जब यह परम दूरीपर पहुँचता है तब पृथ्वीसे दस खरब मील दूर हो जाता है। तुलनाके लिये यह याद रखना चाहिए कि पृथ्वीसे सूर्यकी मध्यम दूरी ९ करोड़ २७ लाख मील है। इसलिए इस धूमकेतुकी निकटतम दूरी सूर्यकी दूरीकी सवायी है। कवरके चित्रसे पता चलेगा कि धूमकेतु प्रायः ब्रह्मांडके बाहरसे भीतरतक चक्कर बनाता है, जैसा हेलीका धूमकेतु। —महावीरप्रसाद श्रीवास्तव्य

सूर्यका ताप

अभीतक यह समझा जाता था कि सूर्यका ताप ६००० शतांशके लगभग है परन्तु अमेरिकाके दो वैज्ञानिकोंके मतानुसार अब यह ४९०० शतांश ही सिद्ध होता है। मेसाचुसेट इन्स्टीट्यूट आव् टेकनालोजीके डाक्टर रावर्ट बी० किंग बतलाते हैं कि उन्होंने लोहे और टाइटेनियम धातुओंको बहुत ऊँचे दरजेकी आँच देकर उनसे निकलनेवाले प्रकाशकी किरणोंको स्पेक्ट्रास्कोप नामक यंत्रसे नापा जो प्रकाशको मौलिक रंगोंमें अलग कर देता है। इस यंत्रसे देखनेपर विदित होता है कि प्रत्येक मौलिक पदार्थके प्रकाशकी किरणोंमें कुछ विशेष रेखाएँ होती हैं जो एक दूसरेसे भिन्न होती हैं। भिन्न-भिन्न तापोंपर लोहे और टाइटेनियमकी इन विशिष्ट रेखाओंकी तीव्रता नापकर इसकी तुलना इन धातुओंकी उन रेखाओंसे की गयी जो सूर्यके प्रकाशसे उत्पन्न होती हैं। इसी तुलनाके

आधारपर कहा जाता है कि सूर्यका तापक्रम ४५०० शतांश-के लगभग होगा।

यह याद रखनेसे तुलनामें सुभीता होगा कि जिस साधारण तापपर पानी उबलता है वह १०० शतांश है और शुद्ध चाँदी जिस तापपर पिघलती है वह ९६० शतांश है। हमारे स्वस्थ शरीरका ताप ३७ शतांशके लगभग होता है। —महावीरप्रसाद श्रीवास्तव्य

साँपके विषसे दवा

कोबरा साँपके विषसे पक्षाघात या लक़वाकी नयी दवा तैयार की जा सकती है। इसकी सूचना बालटीमोर-के एक डाक्टरने अमेरिकाके प्रयोगात्मक प्राणविद्या परिषत्-को दी है। इस डाक्टरका कहना है कि उसने इस विषका प्रयोग एक ऐसे रोगीपर किया जो (Paralysis agitans) 'कंपबाई'से पीड़ित था। इस रोगके आरंभमें स्नायु या मांसपेशी कड़ी पड़ जाती है। कभी चेहरेकी स्नायु जकड़ जाती है। और कभी हाथ या पैर इतना जकड़ जाता है कि इसका हिलना कठिन हो जाता है और अंतमें 'कंपबाई'का आक्रमण हो जाता है जिससे हाथ पैर सदा काँपते रहते हैं।

डाक्टर साहब कहते हैं कि पीड़ा शान्त करनेमें कोबराका विष मारफ़ीनसे भी अधिक गुणकारी होता है क्योंकि इसमें दवा खानेकी उत्कण्ठा उत्पन्न करनेका दोष नहीं होता। कंपबाईमें कड़ी वेदना होती है इस लिए उक्त डाक्टरने इस दवाका प्रयोग ऐसे ही रोगियों पर किया। तीन रोगी जो कठिन वेदनासे तड़प रहे थे इस विषके खाते ही शांत हो गये और इनकी कँपकपीमें भी कमी पड़ गयी। इसके बाद यह ऐसे रोगियोंको दिया गया जिनको वेदना नहीं होती थी। उनकी कँपकपीमें भी कमी पड़ गयी।

—महावीरप्रसाद श्रीवास्तव्य

दीवालपर फोटो छपेगी

इंगलैंडके दो आविष्कारकोंने मिलकर दीवालपर फोटोग्राफ़ छापनेकी रीति निकाली है। इससे बड़े बृहद्-काय फोटो आसानीसे छप सकते हैं। दीवालपर पहले एक ऐसा सफेद रंग छिड़का जाता है जिसमें अस्बेस्टस मिला रहता है, इसके ऊपर फिर परिवर्तनशील मसाला फुवारेके ज़रिये चढ़ाया जाता है। अब प्रवर्द्धित लालटेनसे नेगेटिवका प्रवर्द्धित चित्र, इस प्रकार तैयार की गयी दीवालपर डाला जाता है। फिर क्रमानुसार डेवेलप करनेके और स्थायी करनेके घोल भी फुवारेसे इसपर छिड़का जाता है। अंतमें चित्रपर पारदर्शक वार्निश छिड़क दी जाती है। इस रीतिसे बड़े-बड़े थियेटर एक रातमें रंग डाले गये हैं। चित्र जो बनते हैं धूप या पानीसे नष्ट नहीं होते। इस लिये ऐसे चित्र बाहरी दीवालोंपर भी बनाये जा सकते हैं। इस आविष्कारसे साइनबोर्ड आदि रंगना बड़ा सरल हो जायगा।

बिना दर्दका आपरेशन

आपरेशनमें कितना दर्द होता है यह भुक्तभोगी ही जान सकता है। अब वैज्ञानिकोंने आपरेशनकी ऐसी तरकीब निकाली है जिसमें आदमीको होशमें भी रहते हुए उसे आपरेशनमें दर्द नहीं होता। आदमीको अपने मस्तिष्कमें यह पता चला करता है कि उसे दर्द है या नहीं। ज्ञानतन्तु रीढ़की हड्डीके अन्दरसे जाते हैं। अगर यह तार बेकाम कर दिये जावें तो दर्द मालूम भी न होगा। यही किया गया है। आपरेशनके समय मरीजकी रीढ़की हड्डीके ढाँचेके अन्दर एक सुई लगाकर इंजेक्शन दिया जाता है। रीढ़के ज्ञानतन्तु कुछ देरके लिए बेकाम हो जाते हैं और कष्ट की खबर दिमागतक नहीं पहुँच सकती।

भयंकर बमका आविष्कार

संसारमें नर-संहारके साधन दिनोंदिन आविष्कृत होते चले जा रहे हैं। हालमें एक ऐसे बमका आविष्कार हुआ है जिसके मुक़ाबलेमें पहिलेके बम कुछ नहीं हैं। जब यह बम फटता है तो इसकी हरियाली लिये हुए नीली रोशनी आँखोंमें चकाचौंध कर देती है और मनुष्य अंधा हो जाता है। इसकी गर्मी इतनी तेज होती है कि पत्थर भी पिघलकर बहने लगता है। पानी पड़नेसे आगकी लपटें और भी ज़्यादा तेज हो जाती हैं। केवल बालू ही उन्हें रोक सकती है। इस बमकी एक साधारण-सी चिनगारी भी किसी स्थानको भस्मसात् करनेके लिए काफी है।

उम्र १३ वर्ष, लम्बाई ६। फीट

लन्दनके पूर्वी डलविच मुहल्लेमें सिडनी वेलकम्बु नामक एक १३ वर्षका लड़का है। इतनी कम उम्र होते हुए भी इस लड़केकी लम्बाई सवा छः फीट है और अभी

तक उस लड़केकी बाढ़ बन्द नहीं हुई है। पढ़ाईके क्लास में इस लड़केके लिये खास तौरपर डेस्क बनायी गयी है। उसे सबसे पीछे बैठना पड़ता है जिससे वह ब्लेकबोर्ड-की आड़ न ले ले। वह इतना लम्बा है कि उसके लिए किसी लड़कीका मिलना एक समस्या हो गयी है। उसकी आकांक्षा बहुत बड़ी नहीं है। वह केवल पुलिस कर्मचारी होना चाहता है।

गर्मीसे मनुष्य शरीरकी वृद्धि

वैज्ञानिकोंद्वारा यह अकसर कहा जाता है कि गर्मी और ठण्डसे चीजें बढ़ा घटा करती हैं। धातु आदि निर्जीव पदार्थोंपर इसका प्रयोग सही साबित हुआ। धातुका छड़ गर्मी पहुँचानेसे लम्बा हो गया। इसी सिद्धान्तको मनुष्यके शरीरपर प्रयोग किया गया। एक आदमीको पूरी गर्मी पहुँचायी गयी और उसका हाथ-पाँव वस्तुतः लम्बा हो गया। एक आदमीने गर्म कहवा पीया। नापने-से पता चला कि उसके बाँह और पैर लम्बे हो गये हैं।

प्राकृतिक बमवर्षा

प्रकृति जब अप्रसन्न होती है तो वह भी कृत्रिम हवाई बम—वर्षा की तरह आकाशसे बहुत बड़े-बड़े ओलोंकी वर्षाकरने लगती है। भारतवर्ष इस प्राकृतिक बम-वर्षा से खूब परिचित है। कभी-कभी इतने बड़े-बड़े ओले गिरे हैं कि एक बारकी ओला-वर्षासे सैकड़ों मनुष्योंकी मृत्यु होती देखी गयी है।

काले पानीकी नदी

भारतवर्षमें यमुना नदीका पानी जिस तरहसे हरा होता है उसी तरह उत्तरी अफ्रीकाके अलजीरिया प्रदेश-में एक ऐसी नदी है जिसका पानी बिलकुल काला—स्याहीके समान होता है।

प्राकृतिक सोडावाटर

पूर्वीय अफ्रीकामें एक झील है। कहा जाता है कि उसका जल शुद्ध सोडावाटर होता है। यह झील एक बुझे हुए ज्वालामुखीके लावासे मिलनेके कारण जल खारा हो जाता है।

ज्वालामुखीसे बरफकी वर्षा

साधारणतः ज्वालामुखीसे आगकी लपटें और अंगारे निकला करते हैं पर मैक्सिकोमें एक ज्वालामुखी ऐसा है जिसमेंसे बरफकी वर्षा होती है। जब यह ज्वालामुखी उफनता है तो इसके मुँहसे चारों तरफ बड़े-बड़े ओलोंकी वर्षा होने लगती है।

आदमी सोते हुए उड़े

इस समय ६ हवाई जहाज़ इतने बड़े बन रहे हैं कि प्रत्येकमें ६० यात्री आ सकेंगे। रातके समय इसमें ४० यात्री लिए जायेंगे और प्रत्येकके सोनेके लिए बिस्तर लगा रहेगा। यह हवाई जहाज़ दो मंज़िला रहेगा। ऊपर वाले में असबाब और ड्राइवर, मिस्त्री आदिके लिए स्थान रहेगा नीचे यात्रियोंकी कोठरियाँ, रास्ता, गुसलखाना आदि रहेगा पंखके भीतर इंजनों तक जानेका रास्ताभी रहेगा, जिससे हवामें ही इंजनोंकी देख-भालकी जा सकेगी, यात्रियों की कोठरियाँ शब्द-अभेद्य बनेंगी जिसमें उनके भीतर इंजनका शोर न पहुँच सके। कोठरियोंको गरम करनेका भी प्रबन्ध रहेगा। प्रत्येक जहाजका वजन १००० मन, दोनों पंखोंकी सम्मिलित नाप १५२ फुट और जहाज़की लम्बाई १०९ फुट होगी। आवश्यकता होनेपर यह जहाज पानीपर भी उतर सकेंगे।

औषधिसे अपराधकी स्वीकृति

सचाईका पता लगानेके लिये वैज्ञानिकोंने एक ऐसा पदार्थ तैयार किया है, जिसका प्रवेश शरीरमें होनेके बाद मनुष्यकी झूठ बोलनेकी ताकत नष्ट हो जाती है। अंगरेजीमें इसे स्कोपोला—'माइन' कहते हैं। स्मृति, सुनने और बोलनेकी शक्ति इससे ज्यों की त्यों बनी रहती है। व्यक्तिको अपनी सारी इन्द्रियों पर अधिकार बना रहता है—केवल मस्तिष्कके कुछ हिस्सोंकी क्रिया स्तिम्भित हो जाती हैं, जिससे झूठ बोलना असंभव हो जाता है। व्यक्तिकी जानकारीमें जितनी बातें होती हैं, उन्हें वह कबूल देता है—यहाँतक कि उसे भूली हुई बातें भी याद हो आती हैं। इस बातपर सहसा विश्वास नहीं होता, परन्तु कर्नल कालविन एच० गोडार्डने प्रयोग द्वारा यह सिद्ध किया है कि वह अपने गुणमें बिलकुल ठीक उतरता है। उसमें केवल एक त्रुटि है और वह यह कि 'स्कोपोलामइन'का प्रयोग तीव्र विष होने कारण कोई विशेषज्ञही कर सकता है।